॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीमद्द्वैपायनमुनि वेदव्यासप्रणीत

महाभागवत (देवीपुराण)

(सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित)



Hindi Book "Maha Bhagvat (Devi Puran)"

॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

श्रीमद्द्वैपायनमुनि वेदव्यासप्रणीत

महाभागवत (देवीपुराण)

(सचित्र, हिन्दी-अनुवादसहित)

ॐ

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

भगवती महाशक्ति ही परब्रह्म परमात्मा हैं, जो विविध रूपोंमें विभिन्न लीलाएँ करती हैं। इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मा विश्वकी उत्पत्ति करते हैं, इन्हींकी शक्तिसे विष्णु सृष्टिका पालन करते हैं और शिव जगत्का संहार करते हैं अर्थात् यही सृजन, पालन और संहार करनेवाली आद्या पराशक्ति हैं। ये ही पराशक्ति नवदुर्गा, दशमहाविद्या हैं। ये ही अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी, ललिताम्बा हैं। गायत्री, भुवनेश्वरी, काली, तारा, बगला, षोडशी, त्रिपुरा, धूमावती, मातङ्गी, कमला, पद्मावती, दुर्गा आदि इन्हींके रूप हैं। ये ही शक्तिमान् और ये ही शक्ति हैं। ये ही नर और नारी हैं और ये ही माता, धाता तथा पितामह भी हैं।

भगवती कहती हैं—**'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्'** अर्थात् समस्त विश्व मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त दूसरा कोई भी सनातन या अविनाशी तत्त्व नहीं है।

अपने यहाँ सर्वव्यापी चेतनसत्ता अर्थात् अपने उपास्यकी उपासना मातृरूपसे, पितृरूपसे अथवा स्वामीरूपसे—किसी भी रूपसे की जा सकती है, किंतु वह होनी चाहिये भावपूर्ण और अनन्य। लोकमें सम्पूर्ण जीवोंके लिये मातृभावकी महिमा विशेष है, व्यक्ति अपनी सर्वाधिक श्रद्धा स्वभावतः माँके चरणोंमें अर्पित करता है; क्योंकि माँकी गोदमें ही सर्वप्रथम उसे लोकदर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है। इस प्रकार माता ही सबकी आदिगुरु है और उसीकी दया और अनुग्रहपर बालकोंका ऐहिक और पारलौकिक कल्याण निर्भर करता है। इसीलिये **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'**—इन मन्त्रोंमें सर्वप्रथम स्थान माताको ही दिया गया है। जो भगवती महाशक्तिस्वरूपिणी देवी समष्टिरूपिणी माता और सारे जगत्की माता हैं, वे ही अपने समस्त बालकों (अर्थात् समस्त संसार)-के लिये कल्याण-पथ-प्रदर्शिका ज्ञान-गुरु हैं।

शास्त्रोंमें भगवती देवीकी उपासनाके लिये विभिन्न प्रकार वर्णित हैं। मान्यता है कि भगवतीकी साधनासे सद्यः फलकी प्राप्ति होती है। पराम्बा भगवती राजराजेश्वरी अपने भक्तोंको भोग और मोक्ष दोनों एक साथ प्रदान करती हैं, जबकि सामान्यतः दोनोंका साहचर्य नहीं देखा जाता। जहाँ भोग है वहाँ मोक्ष नहीं, जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग नहीं रहता; फिर भी शक्तिसाधकोंके लिये दोनों एक साथ सुलभ हैं। अर्थात् संसारके विभिन्न भोगोंको भोगता हुआ वह परमपद मोक्षका अधिकारी हो जाता है—

यत्रास्ति मोक्षो नहि तत्र भोगो यत्रास्ति भोगो नहि तत्र मोक्षः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

भारतीय धर्म एवं संस्कृतिमें भोगोंका सर्वथा निषेध नहीं है, वरन् उनकी मानव-जीवनके एक क्षेत्रमें आवश्यकता बतायी गयी है, पर वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष एवं भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल भोग तो आसुरी सम्पदाकी वस्तु है और वह मनुष्यका अधःपतन करनेवाला है। आधिभौतिक उन्नति हो, पर वह हो अध्यात्मकी भूमिकापर—आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्तिके लिये। ऐसा न होनेपर केवल कामोपभोग-परायणता मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्के अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर सन्ताप, अशान्ति, चिन्ता, पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। आजके भौतिकवादी भोग-परायण मानव-जगत्में यही हो रहा है और इसी कारण नित्य नये उपद्रव, आतंक, अशान्ति, अनाचार, पाप तथा दुःख बढ़ रहे हैं। कीट-पतंगकी तरह सहस्रों मानवोंका जीवन एक क्षणमें अनायास एक साथ समाप्त हो जाता है। अपने देशमें इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोग-परायणताका विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा

है। अतः इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर पाप-पथसे लौटकर फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़—अग्रसर हों। इस दिशामें यदि उचित रूपसे इस **महाभागवत** (देवीपुराण)-का अध्ययन तथा तदनुसार आचरण किया जाय तो यह मानवके भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्षमें बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकेगा।

प्रस्तुत देवीपुराणमें मुख्यरूपसे देवीके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चरित्रोंकी प्रधानता है, इसी कारण इसे देवीपुराण कहा गया है। इसमें मूल प्रकृति भगवती आद्याशक्तिके गंगा, पार्वती, सावित्री, लक्ष्मी, सरस्वती तथा तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके रोचक आख्यान विस्तारसे आये हैं। साथ ही तुलसी, आमलक, बिल्वपत्र तथा रुद्राक्षकी महिमाका भी विस्तारसे निरूपण हुआ है। अन्तमें शिव शक्त्यात्मक पार्थिव तथा अन्य लिंगोंकी पूजन-विधि, उपासना, आराधना एवं महिमा उपवर्णित है।

महाभागवत (देवीपुराण) वेदव्यासकी रचनाओंमें उपपुराण होते हुए भी पूर्णरूपसे महिमामण्डित है, इसमें ८१ अध्याय और प्रायः ४५०० श्लोक हैं। वस्तुतः इस उपपुराणका नाम 'महाभागवत' ही है, परंतु भगवती महादेवीके चारुचरितोंका ही इसमें मुख्यतः प्रतिपादन होनेके कारण इसे देवीपुराण भी कहा गया है। वैसे 'देवीपुराण' नामक अन्य प्राचीन उपपुराण भी मिलता है, जिसमें १२८ अध्याय हैं। उसके वचन भी धर्मशास्त्रीय ग्रन्थोंमें मिलते हैं। 'बृहद्विवेक' प्रभृति ग्रन्थोंमें 'महाभागवत' तथा 'देवीपुराण' दोनोंको ही पृथक्-पृथक् उपपुराण मानकर गणना की गयी है। दोनों ही पुराणोंका अपना विशिष्ट महत्त्व है, जिज्ञासु पाठकोंको नाम सादृश्यसे भ्रमित नहीं होना चाहिये।

Pdf pages correspond with granth pages

॥ श्रीहरिः ॥

महाभागवत [देवीपुराण] की विषय-सूची

(रेखा-चित्र)

महाभागवत [देवीपुराण]—सिंहावलोकन

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्त्रष्टा हरिः पालकः
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञाः परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम्॥

जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत्‌के सृजनकर्ता हुए, भगवान् विष्णु पालनकर्ता हुए तथा भगवान् शिव संहार करनेवाले हुए, योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्त्वार्थ जाननेवाले मुनिगण जिन्हें मूल प्रकृति कहते हैं—स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली उन जगज्जननी भगवतीको मैं प्रणाम करता हूँ।

पुराणोंकी परम्परामें अठारह महापुराणोंके साथ-साथ अठारह उपपुराण भी प्राप्त हैं। उपपुराणोंमें महाभागवत [देवीपुराण]-का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह पुराण धर्मसारयुक्त, भक्तिभाव तथा सभी काव्यगुणोंसे समलंकृत है। इसके उपदेश भी हृदयग्राही तथा नीतिपूर्ण होनेसे स्मरणीय एवं आचरणीय हैं। इसमें मुख्यरूपसे भगवती पराम्बा देवीकी महिमा, उनके विविध स्वरूपों, लीलाओंके आख्यान और उपासना-पद्धतियोंका विस्तृत वर्णन है।

इस पुराणके आदिवक्ता भगवान् सदाशिव तथा श्रोता देवर्षि नारदजी हैं। एक बार नैमिषारण्यमें शौनक आदि महर्षियोंने मुनिवर सूतजीसे स्वर्ग तथा मोक्षका सुख प्रदान करनेवाले और भगवतीकी उत्तम महिमाका वर्णन करनेवाले पुराणको सुननेकी इच्छा प्रकट की, इसपर श्रीसूतजीने इस पुराणके उद्भवका एक रोचक आख्यान सुनाते हुए कहा—

देवीपुराणके प्रादुर्भावका आख्यान—जब भगवान् वेदव्यासजी अठारह पुराणोंकी रचना करनेपर भी सन्तुष्ट नहीं हुए, तब उनके मनमें यह विचार आया कि इस पवित्र पुराणमें भगवतीका परमतत्त्व और विस्तृत माहात्म्य विद्यमान है, परंतु महाज्ञानी महेश्वर शिव भी जिस देवीतत्त्वको भलीभाँति नहीं जानते हैं, उसका वर्णन मैं अनभिज्ञ होकर भला कैसे कर सकता हूँ? यह विचार कर देवी-भक्तिपरायण व्यासजीने हिमालय पर्वतपर जाकर कठोर तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवतीने बिना प्रकट हुए आकाशवाणीमें कहा—'महर्षे! आप ब्रह्मलोक जायँ, जहाँ समस्त श्रुतियाँ विद्यमान हैं, वहीं आपको मेरा दर्शन होगा और सारे रहस्योंका भी पता चल जायगा।' इसपर व्यासजी ब्रह्मलोक गये, वहाँ उन्होंने मूर्तिमान् चारों वेदोंको प्रणाम कर उनसे अविनाशी ब्रह्मपदकी जिज्ञासा की। तब चारों वेदोंने क्रम-क्रमसे देवी भगवतीको ही साक्षात् परमतत्त्व (परब्रह्म) बतलाते हुए कहा कि आप अभी हमारे प्रयत्नसे इस तत्त्वका प्रत्यक्षरूपसे दर्शन कर सकेंगे। ऐसा कहकर सभी श्रुतियाँ सच्चिदानन्दस्वरूपा, सर्वदेवमयी परमेश्वरीका स्तवन करने लगीं। परिणामस्वरूप ज्योतिस्वरूपा सनातनी जगदम्बा प्रकट हो गयीं। उनमें सहस्त्रों सूर्योंकी आभा एवं करोड़ों चन्द्रोंकी शीतल चन्द्रिका व्याप्त थी और वे सहस्त्रों भुजाओंमें विविध आयुधोंको धारण किये हुए दिव्य अलंकरणोंसे अलंकृत थीं। वे विविध रूप धारण करती हुई कभी विष्णुरूपमें होकर उनके वामभागमें लक्ष्मीका रूप धारण करके विराजमान दिखायी पड़ती थीं, कभी राधासहित कृष्णके रूपमें हो जाती थीं, कभी ब्रह्माका रूप धारण करके उनके वामभागमें सावित्रीके रूपमें दृष्टिगत होती थीं और कभी शिवका रूप धारण कर उनके वामभागमें गौरीरूपसे स्थित हो जाती थीं। इस प्रकार उन सर्वव्यापिनी ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीने अनेक प्रकारके

रूप धारण कर व्यासजीका संशय दूर कर दिया।

देवीका प्रत्यक्ष दर्शन करके उन्हें परब्रह्मके रूपमें जानकर व्यासजी तत्क्षण जीवन्मुक्त हो गये। तत्पश्चात् भगवतीने उनकी मानसिक अभिलाषा जानकर उन्हें अपने चरणतलमें स्थित सहस्रदलकमलका दर्शन कराया, जिसके सहस्रों पत्रोंपर महाभागवत [देवीपुराण] दिव्याक्षरोंमें अङ्कित था। भगवान् व्यासदेवने भगवतीके चरणमें स्थित कमलमें जिस रूपमें परमाक्षरस्वरूप पवित्र पुराणका दर्शन किया था, उसी रूपमें उसे प्रकाशित किया।

पुराणमहिमा—महामुनि सूतजी इस पुराणकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि हजारों अश्वमेधयज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेययज्ञ इस देवीपुराणकी सोलहवीं कलाके भी तुल्य नहीं हैं। इस प्रकार महापातकी प्राणियोंकी भी रक्षाके लिये इस भूलोकमें यह पवित्र पुराण प्रकाशित हुआ।

सूतजी बोले—एक बारकी बात है—मुनिश्रेष्ठ जैमिनि व्यासजीको प्रणाम करके देवीमाहात्म्यके श्रवणकी इच्छा व्यक्त करते हुए उनसे बोले—प्रभो! यह मनुष्यशरीर अत्यन्त दुर्लभ है, सैकड़ों जन्मोंके बाद इसे प्राप्तकर जिसने भगवती-माहात्म्यका श्रवण नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है।[१] अतः आप भगवतीके उत्तम चरित्रको सुनानेकी कृपा करें।

यह सुनकर व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—वत्स! आपने इस समय बड़ी ही कल्याणप्रद बात पूछी है, जिसका श्रवण करके भक्ति और धर्मसे शून्य महान् पापी मनुष्योंका भी इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता और जिसे सुनकर पापी मनुष्य ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूट जाता है, उस कथाको आप सुनना चाहते हैं, अतः आप परम भाग्यशाली हैं।

मुने! उन भगवतीके अतुलनीय माहात्म्यको बता सकनेमें भला कौन समर्थ है? जिस माहात्म्यका वर्णन अपने पाँच मुखोंसे भगवान् शंकर भी नहीं कर सके हैं। मोक्ष तथा निर्वाणपद प्रदान करनेवाली वे भगवती सभी मन्त्रोंकी एकमात्र बीजस्वरूपिणी हैं।

वाराणसीपुरीमें भगवान् शिव स्वयं उन भगवतीका ही ब्रह्मसंज्ञक तारक महामन्त्र 'दुर्गा' कानमें कहते हुए मोक्षपद प्रदान करते हैं[२], जिसके फलस्वरूप मनुष्यके साथ-साथ पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि तुच्छ प्राणी भी जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं।

भगवान् व्यास मुनिश्रेष्ठ जैमिनिको एकाग्रचित्त होकर सुननेकी प्रेरणा करते हुए इस पवित्र देवीपुराणकी कथाका आरम्भ करते हैं—

एक समयकी बात है—मन्दराचल पर्वतपर सभी देवगणों तथा भगवान् विष्णुकी उपस्थितिमें महर्षि नारदने नम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हुए भगवान् शिवसे पूछा कि भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा आपकी भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे जीवको परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। यहाँतक कि इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंने भी आप तीनोंकी उपासना करके ही श्रेष्ठ पद प्राप्त किया है, परंतु देवेश! आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि आप सबका उपास्य देवता कौन है? आप किस अविनाशी देवताकी आराधना करते हैं? यह कहते हुए नारदमुनि भगवान् विष्णु तथा शिवका स्तवन करने लगे। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर निर्मलमति भगवान् शंकरने सतत समाधिस्थ होकर पराम्बा भगवतीका पूर्ण परात्पर ब्रह्मके रूपमें दर्शन किया तथा बोले—शुद्ध शाश्वत प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जगदम्बा ही साक्षात् परब्रह्म हैं और वे ही हमारी

१. दुर्लभं मानुषं देहं बहुजन्मशतात्परम्। प्राप्य तन्न श्रुतं येन विफलं तस्य जीवनम्॥ (महाभागवत २।८)
२. 'दुर्गेति तारकं ब्रह्म स्वयं कर्णे प्रयच्छति।' (महाभागवत २।२१)

देवता भी हैं। निराकार रहते हुए भी वे महादेवी अपनी लीलासे देह धारण करती हैं, उन्हींके द्वारा इस विश्वका सृजन, पालन तथा अन्तमें संहार किया जाता है, उनके द्वारा ही यह जगत् मोहग्रस्त होता है। प्राचीन कालमें वे पूर्णा भगवती ही अपनी लीलासे दक्षकन्या सतीके रूपमें, हिमवान्‌की पुत्री पार्वतीके रूपमें तथा अपने ही अंशसे विष्णुभार्या लक्ष्मीके रूपमें एवं ब्रह्माकी भार्या सरस्वती तथा सावित्रीके रूपमें प्रकट हुईं। उन पूर्णाप्रकृतिने ही सृष्टि-कार्यमें त्रिदेवोंको नियुक्त करते हुए कहा—मैंने सृष्टिके निमित्त ही आप तीनोंको अपनी इच्छासे उत्पन्न किया है। अतः आप मेरे इच्छानुसार सृष्टिका कार्य करें। मैं सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, गङ्गा तथा सती—पाँच श्रेष्ठ देवियोंके रूपमें विभक्त होकर आपलोगोंकी पत्नियाँ बनकर स्वेच्छापूर्वक विहार करूँगी और सभी प्राणियोंमें नारीरूप धारण कर शम्भुके सहयोगसे सभीको जन्म दूँगी। ब्रह्मा आदिसे ऐसा कहकर पराप्रकृति भगवती महाविद्या उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं।

भगवतीद्वारा महेश्वरको अपने आविर्भावकी बात बताना—भगवान् महेश्वर उन पूर्णाप्रकृतिको पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके लिये संयतचित्त होकर तपके द्वारा आराधना करने लगे। महेश्वरको ऐसा करते देखकर विष्णु और ब्रह्मा भी तपमें बैठ गये। इन तीनोंके तपकी परीक्षा करनेके लिये स्वयं भगवती विराट् रूप धारण कर उनके पास आयीं, जिसे देखकर ब्रह्मा तथा विष्णु तो डर गये, परंतु भगवान् सदाशिव इस परीक्षाके रहस्यको जानकर समाधिमें ही बैठे रहे। तपस्यामें रत भगवान् शिवपर पराम्बा भगवतीने प्रसन्न होकर उन्हें यह आश्वासन दिया कि दक्षप्रजापतिके यहाँ अपनी मायासे उत्पन्न होकर पूर्णाप्रकृति मैं ही आपकी भार्या बनूँगी। साथ ही भगवतीने यह भी कहा कि जब दक्षके यहाँ उनके देहाभिमानसे मेरा तथा आपका अनादर होगा, तब मैं उन्हें विमोहित कर अपने स्थानको चली जाऊँगी। उस समय आपसे मेरा वियोग हो जायगा और तब आप भी मेरे बिना कहीं ठहर नहीं सकेंगे। इस प्रकार हम दोनोंके बीच प्रीति बनी रहेगी। यह कहकर परमेश्वरी प्रकृति अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् शिवके मनमें प्रसन्नता व्याप्त हो गयी। इस प्रकार तीसरा अध्याय पूरा हुआ।

दक्षप्रजापतिके घरमें भगवतीका सतीरूपमें जन्म तथा सती-स्वयंवर—कुछ ही दिनों बाद दक्षपत्नीने शुभ दिनमें एक कन्याको जन्म दिया। वह कन्या प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती पूर्णा ही थीं। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, सैकड़ों दुन्दुभियाँ बज उठीं, उल्लासका वातावरण बन गया। दसवें दिन उस कन्याका 'सती' नामकरण किया गया। कुछ समय बाद जब सती विवाहयोग्य हुईं तो दक्षप्रजापतिने सतीके पाणिग्रहणकी दृष्टिसे देवताओं तथा असुरोंको आमन्त्रित कर एक स्वयंवरका आयोजन किया। इस स्वयंवरमें भगवान् शिवको आमन्त्रित नहीं किया गया था। देवता, असुर, ऋषि तथा महात्मालोग सभामें उपस्थित थे। दक्षप्रजापतिने स्वयंवरमें देवीस्वरूपा अपनी कन्या सतीको बुलाया और कहा कि आपको जो भी सुन्दर, गुणवान् और श्रेष्ठ प्रतीत हो, उसे माला पहनाकर वरण कर लें। इसी बीच सर्वश्रेष्ठ महेश्वर भी नन्दीपर सवार होकर वहाँ आ गये और अन्तरिक्षमें स्थित हो गये। प्रकृतिस्वरूपिणी देवी भगवती सतीने '**शिवाय नमः**'—ऐसा कहकर वह माला भूमिको समर्पित कर दी और वहाँपर प्रकट होकर भगवान् शिवने उस मालाको अपने सिरपर धारण कर लिया। यह सब देखकर दक्षप्रजापति खिन्न हो गये, परंतु ब्रह्माजीके कहनेपर उन्होंने महेश्वरको बुलाकर सती उन्हें सौंप दी। भगवान् शंकरने भी प्रसन्नतापूर्वक

विधि-विधानसे उनका पाणिग्रहण कर लिया तथा भगवती सतीको साथमें लेकर महेश कैलासके लिये प्रस्थान कर गये। चौथे अध्यायमें यह कथा पूर्ण होती है।

नन्दीको भगवान् शिवका वरदान—कैलास पर्वतपर देवता, गन्धर्व, महर्षिगण, देवपत्नियाँ तथा किन्नरियाँ और मुनिपत्नियाँ—सभी पधार गये और नृत्यगान करते हुए विवाहोत्सव मनाने लगे। कुछ समय बाद ज्ञानी और शिवभक्त नन्दी जो दक्षकी सेवामें थे, वहाँ आये और भगवान् शंकरको भूमिपर दण्डवत् प्रणाम कर उनकी स्तुति करते हुए प्रार्थना करने लगे—भगवन्! मैं आपका नित्य निकट रहनेवाला दास बना रहूँ और निरन्तर आपका दर्शन करता रहूँ। भगवान् शंकरने नन्दीकी प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया और उन्हें अपने प्रमथगणोंका अधिपति बना दिया।

दक्षद्वारा यज्ञका आयोजन तथा शिवको आहूत न करना—दक्षका भगवान् शंकरके प्रति द्वेषभाव बना ही रहा। एक बार उन्होंने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया जिसमें इन्द्र आदि प्रधान देवताओं, ब्रह्मा, देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों, यक्षों, गन्धर्वों, पितरों, दैत्यों, किन्नरों तथा पर्वतोंको तो निमन्त्रित किया, किंतु विद्वेषके कारण शिव तथा उनकी पत्नी सतीको नहीं बुलाया। इस यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना कर उन्हें भी आवाहित कर लिया।

महर्षि दधीचिद्वारा दक्षको शिवमहिमा बताना—उस यज्ञमें महामति दधीचि भी उपस्थित थे, उन्होंने यज्ञमें शिवका भाग न देखकर दक्षप्रजापतिको समझानेका प्रयास करते हुए कहा कि शिवविहीन किया गया यज्ञ उसी प्रकार फलदायक नहीं होता है, जिस प्रकार अर्थसे रहित वाक्य, वेदज्ञानसे शून्य ब्राह्मण तथा गङ्गासे रहित देश। जैसे पतिके बिना स्त्रीका तथा पुत्रके बिना गृहस्थका जीवन व्यर्थ है, जैसे निर्धन व्यक्तिकी आकाङ्क्षा व्यर्थ होती है, जिस प्रकार कुशविहीन संध्या-वन्दन, तिलविहीन तर्पण, हविसे रहित होम निष्फल रहता है, उसी प्रकार शम्भुविहीन यज्ञ भी निष्फल होता है। दधीचिकी इन बातोंको सुनकर दक्ष और भी क्रुद्ध हो गये और अपने अनुचरोंसे बोले—'इस ब्राह्मणको यहाँसे दूर ले जाओ।' मुनिश्रेष्ठ दधीचि भी उनकी सभासे चले गये।

देवी सतीका पिताके यज्ञमें जाना—इधर नारदजी भगवान् शंकरके पास पधारे तथा उन्हें दक्षप्रजापतिके यज्ञमें जानेके लिये प्रेरित करने लगे। भगवान् शंकरने स्वयं तथा अपनी प्राणप्रिया सती दोनोंके लिये जाना अस्वीकार कर दिया। तब नारदजीने देवी सतीको जानेके लिये प्रोत्साहित किया। सतीने नारदकी बात सुनकर पिताके यज्ञमें जानेका मन बना लिया। यद्यपि शिवने यज्ञमें न जानेके लिये समझानेका प्रयास किया, परंतु सतीका जानेका निश्चय दृढ़ था। भगवान् शंकरको अपना प्रभाव दिखानेकी दृष्टिसे सतीने अपना भयंकर रूप प्रदर्शित किया, जिसे देखकर शिव घबरा गये। वे भयभीत होकर चारों दिशाओंमें आश्रय ग्रहण करना चाहते थे। उसी क्षण भगवती जगदम्बाके द्वारा दसों दिशाओंमें दस महाविद्याओंका प्राकट्य हुआ। भगवतीने इन दस महाविद्याओंकी महिमा तथा उपासना आदिका भी वर्णन सुनाया। कुछ ही देरमें दस महाविद्याएँ अन्तर्धान हो गयीं। भगवान् शिवने सतीसे प्रभावित होकर उन्हें जानेकी अनुज्ञा प्रदान कर दी। सती अपने पिता दक्षके यज्ञमें पहुँच गयीं।

सर्वप्रथम वे अपनी माता प्रसूतिसे मिलीं। माताने सतीका सम्मान किया और स्नेहभरी बातें कीं। मातासे मिलकर सती अपने पिता दक्षप्रजापतिकी ओर उन्मुख

हुईं। उनके द्वारा अपने पति भगवान् शिवकी निन्दा सुनकर तथा उनका यज्ञमें भाग न देखकर वे अत्यन्त क्रोधित हो गयीं और उन्होंने भयंकर रूप धारण कर लिया। वहाँ उपस्थित सभी देवता और ऋषि भी अत्यन्त भयभीत हो गये।

छायासतीका प्राकट्य तथा यज्ञाग्नि-प्रवेश— भगवती सतीने तत्क्षण एक छायासतीका प्रादुर्भाव किया। छायासतीको अपना मन्तव्य बताकर वे अन्तर्धान होकर आकाशमें स्थित हो गयीं। इधर छायासती दक्षप्रजापतिसे कुपित होकर कहने लगीं कि तुम सनातन शिव और मुझ सतीकी निन्दा क्यों कर रहे हो? दक्षने भी छायासतीको भला-बुरा कहा। इस प्रकार वाद-विवाद बढ़ जानेपर क्रोधसे प्रदीप्त नेत्रोंवाली छायासती देवताओंके देखते-देखते यज्ञाग्निमें प्रवेश कर गयीं। उसी क्षण यज्ञकुण्डकी अग्नि बुझ गयी। यज्ञमण्डप मात्र आधे ही क्षणमें श्मशानके रूपमें परिणत हो गया।

वीरभद्रद्वारा यज्ञ-विध्वंस— इधर नारदजीने सदाशिव भगवान् शंकरको सारे समाचारोंसे अवगत कराया। वे यह समाचार सुनकर शोकाकुल हो उठे। कुछ ही क्षणोंके अनन्तर उनके ऊर्ध्व नेत्रसे अत्यन्त तेजस्वी अग्नि प्रादुर्भूत हुई और उस अग्निसे एक परम पुरुष उत्पन्न हुआ। जिसका नाम वीरभद्र रखा गया। भगवान् शिवने वीरभद्रको दक्षके यज्ञमें जाकर उसे विध्वंस करनेकी आज्ञा प्रदान की। वीरभद्र प्रमथगणोंके साथ दक्षपुरीमें पहुँच गये और यज्ञका विध्वंस कर डाला तथा दक्षका भी सिर काट डाला।

इस प्रकार यज्ञके विनष्ट हो जानेपर ब्रह्माजी कैलास पर्वतपर गये और उन्होंने भगवान् सदाशिवको प्रणाम कर दक्षको जीवित करने और यज्ञको पूर्ण करनेकी प्रार्थना की। ब्रह्माकी प्रार्थनासे द्रवीभूत होकर भगवान् शिवने वीरभद्रको दक्षको जीवित करने तथा यज्ञको पूर्ण करनेका आदेश दिया। वीरभद्रने एक बकरेका सिर जोड़कर दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया। चूँकि दक्षने भगवान् शिवकी निन्दा की थी, इसलिये गूँगे पशुका सिर जोड़ा गया। इसके साथ ही यज्ञको भी विधि-विधानसे पूर्ण कराया गया। अन्तमें दक्षप्रजापतिने भी भगवान् शंकरका स्तवन किया। ब्रह्माजीने कहा कि जो नराधम यज्ञमें शिवके बिना अन्य देवताओंका यजन करेंगे, उनका यज्ञकार्य नष्ट हो जायगा और वे महान् पापके भागी होंगे।

शोकसंतप्त भगवान् शिवको देवीके दिव्य दर्शन, शक्तिपीठोंके आविर्भावका रहस्य— सतीके वियोगमें भगवान् शंकरके दुःखी होनेपर ब्रह्मा और विष्णुने उन्हें समझानेका प्रयास किया और कहा कि वे देवी जगदम्बा तो सनातन पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा हैं। उनकी मृत्यु तो वास्तविक नहीं, केवल कल्पनामात्र है। इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनोंने भगवतीका स्तवन किया। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर महादेवीने आकाशमें स्थित होकर उन्हें दर्शन दिया तथा भगवान् शिवको आश्वस्त करते हुए कहा कि आप स्थिरचित्त हों, मैं स्वयं हिमालयकी पुत्री बनकर तथा मेनकाके गर्भसे जन्म लेकर पुनः आपको प्राप्त करूँगी। उन्होंने शिवसे यह भी कहा कि दक्षकी यज्ञाग्निमें मेरे जिस छायाशरीरने प्रवेश किया था, उसे सिरपर लेकर मेरी प्रार्थना करके आप इस पृथ्वीपर भ्रमण करें। वह मेरा छायाशरीर अनेक खण्डोंमें विभक्त होकर इस पृथ्वीपर गिरेगा और उन-उन स्थानोंपर पापोंका नाश करनेवाले महान् शक्तिपीठ उदित होंगे।* जहाँ योनिभाग गिरेगा, वह सर्वोत्तम

* मम छाया यज्ञवह्नौ प्रविष्टा या महेश्वर। तां मूर्ध्नि कृत्वा मां प्रार्थ्य भ्रम पृथ्वीमिमां शिव॥
स देहो बहुधा भूत्वा पतिष्यति धरातले। तत्र तद्धि महापीठं भविष्यत्यघनाशनम्॥ (महाभागवत ११।४०-४१)

शक्तिपीठ होगा। वहाँ रहकर तपस्या करके आप मुझे प्राप्त करेंगे। तदनन्तर शिवजीने यज्ञशालामें प्रवेश करके सतीके छायाशरीरका आलिंगन करते हुए उसे सिरपर उठा लिया और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक धरतीपर नाचने लगे। ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवगण इस अपूर्व दृश्यको देखनेके लिये आकाशमें आ गये। दसों दिशाओंसे पुष्पवृष्टि होने लगी। प्रमथगण मुखवाद्य (गाल) बजाने और गाने लगे। चारों ओर नाचते हुए शिवजी सतीके छायाशरीरको कभी सिरपर, कभी दाहिने हाथमें, कभी बायें हाथमें, कभी कन्धेपर तो कभी प्रेमपूर्वक वक्षःस्थलपर धारण कर अपने चरण-प्रहारसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए नृत्य करने लगे। देवताओंको चिन्ता हुई कि ये जगत्संहारक रुद्र कैसे शान्त होंगे? जगत्की रक्षाके लिये भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्रसे सतीके छायाशरीरके टुकड़े करके गिरा दिये। शरीरके वे सारे अङ्ग धरातलपर अनेक स्थानोंपर गिरे, पृथ्वीपर वे ही स्थान महातीर्थ और सिद्धपीठके रूपमें विख्यात हुए।

भगवान् विष्णुके कहनेपर नारदने शिवसे शान्तचित्त होनेकी प्रार्थना की। नारदकी प्रार्थना सुनकर भगवान् सदाशिवने नृत्य त्यागकर बार-बार निःश्वास छोड़ते हुए विष्णुको शाप दे दिया कि त्रेतायुगमें विष्णुको पृथ्वीपर सूर्यवंशमें जन्म लेना पड़ेगा। जिस प्रकार मुझे छायापत्नीका वियोगी बनना पड़ा, उसी प्रकार राक्षसराज रावण विष्णुकी छायापत्नीका हरण करके उन्हें भी वियोगी बनायेगा। विष्णु मेरी ही भाँति शोकसे व्याकुलचित्त होंगे।*

भगवान् शिवका कामरूपमें तपस्या करना— इस प्रकार विष्णुको शाप देकर शिवजी स्वस्थचित्त हो गये और उन्होंने जगदम्बाके बताये हुए पूर्व वृत्तान्तको याद करके गुह्यपीठ 'कामरूप' में तपस्या की। भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया तथा उनके इच्छानुसार यह वरदान दिया कि मैं अपने अंशसे जलमयी गङ्गाका रूप धारण करके आपको पतिरूपमें प्राप्त करूँगी। इसके साथ ही मैं पूर्णावतार लेकर पार्वतीके रूपमें भी आपकी पत्नी बनूँगी।

देवी गङ्गा तथा पार्वतीका प्राकट्य— महादेवी दुर्गाने हिमालयके यहाँ मेनकाके गर्भसे गङ्गा तथा पार्वतीके रूपमें अवतार लिया। ब्रह्माजी हिमालयसे गङ्गाको माँगकर देवताओंके साथ उन्हें स्वर्गलोक ले गये तथा उन्हें शिवजीको समारोहपूर्वक पत्नीरूपमें प्रदान किया। जो जगदम्बा ब्रह्माजीके कमण्डलुमें रही थीं, उन्होंने ही भगवान् शिवको प्राप्त करनेके बाद जलरूपमें अवतीर्ण होकर ब्रह्मद्रवके रूपमें पृथ्वीलोकमें आकर सगरपुत्रोंका उद्धार किया तथा अन्य सभी प्राणियोंका वे कल्याण करती रहती हैं।

इस प्रकार सतीने अपने अंशरूपसे गङ्गाके रूपमें हिमालयकी पुत्री होकर तथा पूर्णांशसे पार्वतीरूपमें जन्म लेकर भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया।

नारदजीके द्वारा पार्वतीजीके जन्मकी कथा सुननेकी जिज्ञासा करनेपर महादेवजीने कहा कि देवी मेनाने शुभ दिनमें जगन्माता भगवतीको पुत्रीरूपसे जन्म दिया। उस समय गिरिराज हिमालयने भगवती जगदम्बाके रूपमें कन्याका दर्शन करते हुए प्रणाम किया तथा उनसे अपना वृत्तान्त सुनानेकी प्रार्थना की।

महादेवजी कहते हैं कि हिमालयने विभिन्न प्रकारसे भगवतीकी प्रार्थना करते हुए ब्रह्मविद्या प्रदान करनेका उनसे अनुरोध किया।

देवीद्वारा हिमालयको देवीगीताका उपदेश— पार्वतीजीने योगके साररूपमें ब्रह्मविद्याका यहाँ वर्णन

* यहाँ पत्नीके वियोगमें भगवान् शिवका शोकसंतप्त होना तथा भगवान् विष्णुको शोकसंतप्त होनेका शाप देना—यह लोकशिक्षणके लिये लीलामात्र है। तत्त्वतः शिव और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही काम, क्रोध, शोक, मोहादि प्रवृत्तियोंसे नितान्त परे हैं।

किया है, जिसे 'देवीगीता', 'पार्वतीगीता' या 'भगवतीगीता' भी कहा जाता है। इसके जाननेमात्रसे प्राणी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भगवती पार्वती कहती हैं कि मुमुक्षु साधकको चाहिये कि मेरेमें चित्त और प्राणको लगाकर तत्परतापूर्वक मेरे नामका जप करता रहे। मेरे गुण और लीला-कथाओंका श्रवण करते हुए अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधि-विधानसे मेरी पूजा और यज्ञ आदि सम्पन्न करना चाहिये। सभी यज्ञ, तप और दानसे मेरी ही अर्चना करनी चाहिये।

जब इस आत्माकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है, उसी क्षण मुक्ति हो जाती है, परंतु मेरी भक्तिसे विमुख प्राणियोंके लिये यह प्रत्यक्षानुभूति अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये मुमुक्षु साधकोंको यत्नपूर्वक मेरी भक्तिमें ही संलग्न रहना चाहिये। राग-द्वेष आदि दोषोंसे प्राणी जन्म-मरणकी प्रक्रियासे निरन्तर बँधा रहता है। अतः शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमें उस आत्मबुद्धिका परित्याग कर देना चाहिये। वास्तवमें सच्चिदानन्दस्वरूप यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, न सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें लिप्त होता है और न कष्ट ही भोगता है। जैसे घरके अंदर अवस्थित आकाशपर घरके जलनेका कोई प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार शरीरमें स्थित आत्मापर शरीरमें होनेवाले छेदन आदिका कोई प्रभाव नहीं होता।* शरीरके मारे जानेपर जो आत्माको मारा गया समझता है, ऐसा व्यक्ति भ्रमित चित्तवाला है; क्योंकि आत्मा न मरता है, न मारा जाता है।

सृष्टिके समय यह जीव पूर्वजन्मकी वासनाओंसे युक्त अन्तःकरणके साथ उत्पन्न होता है और जगत्में निवास करता है। विद्वान्‌को चाहिये कि ज्ञान, विवेकके द्वारा इच्छित पदार्थोंमें आसक्ति तथा अनिच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिमें द्वेषका परित्याग कर सुखी हो जाय। पाप-पुण्यके अनुसार जीवको सुख तथा दुःखकी प्राप्ति होती है। पुण्यकर्मोंसे स्वर्गकी प्राप्ति होनेके बाद पुण्यके क्षीण होनेपर जीव पुनः मृत्युलोकमें गिरता है। अतएव विद्वान् पुरुषको आसक्तिका त्याग करते हुए विद्याभ्यासमें तत्पर रहना चाहिये तथा सत्संग करते हुए परम सुखको प्राप्त करना चाहिये। वास्तवमें विषयभोगोंका सेवन करनेवालोंका आत्यन्तिक कल्याण नहीं होता, अतः आत्मतत्त्वका विचार करके वासनात्मक सुखका परित्याग कर शाश्वत सुखकी प्राप्ति करनी चाहिये।

भगवती पार्वती गिरिराज हिमालयसे कहती हैं कि अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी यदि अनन्यभावसे मेरी उपासना करता है तो वह भी पापरहित होकर भवबन्धनसे छूट जाता है। निरन्तर एकनिष्ठ चित्तवाला होकर जो नित्य मेरा स्मरण रखता है, उस भक्तिपरायण योगीको मैं मुक्ति प्रदान करती हूँ। अतः महामते! आप पराभक्तिसे युक्त होकर मेरी आराधना कीजिये।

इस प्रकार पार्वतीजीके मुखसे देवीगीता सुनकर पर्वतश्रेष्ठ हिमालय जीवन्मुक्त हो गये।

श्रीमहादेवजी श्रीनारदजीसे कहते हैं—इस पार्वतीगीताका जो मनुष्य पाठ करता है, उसके लिये मुक्ति सुलभ हो जाती है।

शिव-पार्वतीका विवाहोत्सव—भगवती पार्वती हिमवान्‌के घरमें रहकर बालोचित क्रीड़ा करती हुई विभिन्न लीलाओंसे हिमालय और मेनकाको आनन्दित करने लगीं। धीरे-धीरे वे बढ़ने लगीं तथा विवाहके

---

* आत्मा शुद्धः स्वयम्पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः॥

न जायते न म्रियते निर्लेपो न च दुःखभाक्। विच्छिद्यमाने देहेऽपि नापकारोऽस्य जायते॥
यथा गेहान्तरस्थस्य नभसः क्वापि लक्ष्यते। गृहेषु दह्यमानेषु गिरिराज तथैव हि॥ (महाभागवत १६।१४—१६)

योग्य भी हो गयीं। एक दिन नारदमुनि हिमालयके पास आये। उन्होंने भगवान् शंकरकी महिमाका वर्णन करते हुए सतीका पूर्व इतिहास हिमवान्से बताया तथा भगवान् शंकरसे पार्वतीका पाणिग्रहण करनेकी प्रेरणा की।

भगवान् शंकर हिमालय पर्वतपर तपस्यामें संलग्न थे। भगवती पार्वती भी भगवान् सदाशिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये हिमालयके शिखरपर तपस्याके लिये पहुँच गयीं।

उन दिनों तारकासुर नामक एक राक्षससे सभी देवता पीड़ित हो रहे थे, जिसके वधके लिये सभी देवता चिन्तित थे। उस राक्षसको ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनोंमेंसे कोई नहीं मार सकता था। ब्रह्माजीने बताया कि शंकरजीका पुत्र ही उसे मार सकता है, अतः भगवान् शंकरका विवाह किसी प्रकार भगवती पार्वतीसे हो जाय—इसका उपाय करना चाहिये। अतः देवराज इन्द्रने तपस्यामें संलग्न भगवान् शंकरको मोहित करनेके लिये कामदेवको आदेश दिया। कामदेव वसन्त-ऋतु और अपनी पत्नी रतिके साथ भगवान् शिवके आश्रममें प्रवेश कर गये, जिससे उस आश्रमके सभी प्राणी कामवासनासे मोहित हो गये, परंतु भगवान् शंकरका ध्यान किञ्चित् भी विचलित नहीं हुआ। कामदेवके विशेष प्रयास करनेपर भगवान् शंकरके तीसरे नेत्रसे निकली अग्निने सहसा कामदेवको भस्मसात् कर दिया। तदनन्तर पराम्बा भगवतीसे सदाशिवका साक्षात्कार हुआ। शिवके निवेदन करनेपर भगवतीने अपने उस भयंकर स्वरूपका दर्शन कराया, जो प्रजापति दक्षके यज्ञके नाशके लिये उन्होंने धारण किया था। उस स्वरूपका दर्शन कर भगवान् सदाशिव अभिभूत होकर भूमिपर लेट गये और भगवतीके चरणकमलको अपने हृदयपर धारण कर उन्होंने सहस्रनामके द्वारा भगवतीका स्तवन किया।

भगवतीने भी प्रसन्न होकर सदाशिवसे कहा कि मैं आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये ही गिरिराजके यहाँ पुत्रीरूपमें प्रादुर्भूत हुई हूँ। इसके बाद महादेव तथा पार्वती दोनों ही एक-दूसरेको पति-पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके लिये तीन हजार वर्षोंतक तपस्यामें संलग्न हो गये। तदनन्तर भगवान् शंकरने मरीचि आदि सप्तर्षियोंको विवाहका प्रस्ताव लेकर हिमवान्के पास भेजा। हिमवान् सप्तर्षियोंसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् सदाशिवको अपनी पुत्री पार्वतीको पत्नीरूपमें प्रदान करनेके लिये सहर्ष सहमत हो गये। कुछ ही समय बाद गिरिराजके घरमें संसारका आनन्दवर्धन करनेवाला पार्वती-विवाह-महोत्सव प्रारम्भ हो गया। विवाहोत्सवमें देवताओं, गन्धर्वों और किन्नरोंको साथ लिये देवराज इन्द्र, लोकपितामह ब्रह्मा, महर्षि वसिष्ठ, भगवान् विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मीके साथ वहाँ पहुँच गये।

इस अवसरपर अपने पतिके वियोगसे व्यथित रतिके द्वारा अपने पति कामदेवको पुनर्जीवन प्राप्त करानेकी प्रार्थना करनेपर देवताओं तथा ब्रह्माने भगवान् शंकरसे कामदेवको पुनर्जीवित करनेका मार्मिक अनुरोध किया। प्रणतजनोंपर कृपा करनेवाले भगवान् शंकरने कामदेवको फिरसे शरीरकी प्राप्ति करा दी।

विवाहकी तैयारी पूर्ण हो जानेपर सुन्दर चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण करनेवाले वृषभध्वज भगवान् शिवने सभी देवताओं, मुनीश्वरों और किन्नरोंके साथ गिरिराज हिमालयके पुरके लिये प्रस्थान किया। सुन्दर मुहूर्तमें गिरिराज हिमालयने पार्वतीका पूजन करके वैवाहिक विधिसे उन्हें सदाशिवको प्रदान कर दिया और प्रसन्नमन शम्भुने जगत्का सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली उन हिमालयपुत्री पार्वतीका पत्नीरूपमें पाणिग्रहण किया। इस प्रकार महादेवके साथ पार्वतीका विवाह सम्पन्न होनेपर देवताओंका मनोरथ पूर्ण हो

गया और ब्रह्मादि सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। हिमालयकी प्रार्थनापर भगवान् शंकर हिमालय पर्वतपर सुरम्य नगरका निर्माण कर भगवती पार्वतीके साथ रहने लगे।

कार्तिकेयका प्रादुर्भाव—तारकासुरके अत्याचारसे पीड़ित पृथ्वी गायका रूप धारण करके देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास आयी और उसने अपनी व्यथा सुनायी। ब्रह्माजीने देवताओंको बताया कि शिवके तेजसे उत्पन्न बालकसे ही तारकासुरका वध हो सकेगा, किंतु यदि पार्वतीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा तो वह देवता तथा असुर दोनोंका विनाश कर देगा, अत: किसी अन्य स्थानमें शिवके तेजसे पुत्र उत्पन्न हो, यह चेष्टा करनी चाहिये। वायुदेवके प्रयाससे शिवका तेज कृत्तिकाओंमें स्थापित हुआ, परंतु वे उसे सहन नहीं कर सकीं। कृत्तिकाओंने उस तेजको काष्ठकोशमें रखकर गङ्गाजीमें प्रवाहित कर दिया। उस काष्ठकोशको ब्रह्माजी निकालकर अपने स्थानपर ले गये। इसी काष्ठकोशसे आश्विनमासकी पूर्णिमा तिथिको ब्रह्मलोकमें बारह भुजाओं, बारह नेत्रों और छ: मुखोंसे युक्त तारकासुरके शत्रु महाबली शिवपुत्रका जन्म हुआ। ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि शिवजीका यह पुत्र कृत्तिकाओंसे उत्पन्न होनेके कारण 'कार्तिकेय' नामसे विख्यात होगा। चूँकि वे कृत्तिकाएँ संख्यामें छ: कही गयी हैं, अत: इसका नाम 'षाण्मातुर' भी होगा। लोकमें यह 'स्कन्द' नामसे भी विख्यात होगा। तारकासुरका संहार करनेके कारण इसका नाम 'तारकवैरी' भी प्रसिद्ध होगा। इस प्रकार तीसवें अध्यायमें कार्तिकेयके जन्मकी कथा सम्पन्न हुई। इकतीसवें अध्यायसे चौंतीसवें अध्यायतक तारकासुरके वधकी कथा है।

तारकासुरवध—देवताओंके विशेष आग्रह करनेपर ब्रह्माजीने कार्तिकेयको तारकासुरवधकी प्रेरणा की। कार्तिकेय तथा तारकासुरमें भीषण संग्राम हुआ और अन्तमें कार्तिकेयजीके शक्ति-प्रहारसे तारकासुरका वध हो गया। उस भयंकर दैत्यके मारे जानेसे देवता-गन्धर्व और किन्नरगणोंमें महान् हर्ष व्याप्त हुआ। सभी प्रसन्न हो गये और भगवान् कार्तिकेयकी वन्दना करने लगे। इसके बाद ही ब्रह्माजीने भगवान् शिव तथा जगन्माता पार्वतीसे कार्तिकेयका परिचय कराया तथा कार्तिकेयको बताया कि तुम शिव-पार्वतीके ही पुत्र हो। भगवान् शंकर तथा माता पार्वतीने भी बड़े हर्षोल्लाससे पुत्रोत्सव मनाया।

गणेशजन्मोत्सवकी कथा—अध्याय पैंतीसमें गणेशजीके जन्मका वृत्तान्त है। भगवान् विष्णु ही गजाननके रूपमें पार्वतीपुत्र हुए। एक बार भगवान् महेश्वर उमाको घरमें छोड़कर अपने प्रमथगणोंके साथ वनमें पुष्प लाने गये। इधर भगवती गौरी अपने शरीरमें हल्दीका उबटन लगाकर स्नानको जानेके लिये उद्यत हुईं। भगवान् विष्णुकी पूर्व प्रार्थनाका स्मरण करके अपने शरीरपर लगे हरिद्रा-उबटनका कुछ अंश लेकर उन्होंने एक पुत्रका निर्माण किया। प्रसन्नतापूर्वक उसे अपना दूध पिलाते हुए भगवतीने कहा—पुत्र! जबतक मैं नहाकर न लौटूँ, तबतक तुम मेरे इस नगरकी रक्षा करना। इसी बीच भगवान् शंकर वनसे लौटकर नगरद्वारपर आ गये। बालकके रोकनेपर शूलपाणि भगवान् शिवने त्रिशूलसे उस बालकका मस्तक छिन्न कर दिया। उसी समय पार्वती स्नानसे लौट आयीं। उन्होंने गणेशको जीवित, किंतु सिरविहीन देखकर महादेवसे पूछा कि मेरे इस द्वाररक्षक पुत्रकी ऐसी दशा किसने की? भगवान् शंकरने कहा कि मुझे ज्ञात नहीं था कि यह तुम्हारा पुत्र है। फिर उन्होंने पूरा वृत्तान्त बता दिया। तदनन्तर सिरका पता लगानेके लिये भगवान् शंकर जंगलमें गये और वहाँ उत्तरकी ओर सिर करके सोये हुए एक हाथीका मस्तक

काटकर बालककी ग्रीवापर स्थापित कर दिया। तबसे बालकका नाम 'गजानन' हो गया।

इस प्रकार दो पुत्रोंके संनिधानसे शिव-पार्वती स्वेच्छासे कैलास तथा काशीपुरीमें विहार करने लगे।

अध्याय छत्तीससे लेकर अध्याय अड़तालीसतक विस्तारसे 'श्रीरामोपाख्यान' या रामायणकी कथाका सार निरूपित है, जिसके सार अंशमें देवीकी आराधनाके द्वारा श्रीरामके सर्वत्र विजयी होने एवं भगवान् श्रीरामकी सहायताके लिये भगवान् शंकरके द्वारा पवनपुत्र हनुमान्‌के रूपमें प्रकट होकर निरन्तर सहयोग करनेका वर्णन है।

श्रीरामोपाख्यान—महामुनि नारद तथा भगवान् महादेवका संवाद चल रहा है। नारदजीने महादेवजीसे पूछा कि भगवान् विष्णुने पृथ्वीपर मनुष्यरूपमें अवतार लेकर असमयमें पराम्बा भगवतीकी आराधना किस रूपमें की ? इसका उत्तर देते हुए महादेवजी कहते हैं कि प्राचीन कालमें त्रैलोक्यजननी भगवतीकी प्रार्थना करके दशकन्धर रावण उनकी कृपासे त्रैलोक्यविजयी हो गया। रावणके भक्तिभावसे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बा उसकी राजधानी लङ्कामें उसे विजय प्रदान करते हुए निवास करने लगीं। इसके परिणामस्वरूप पृथ्वी तथा इन्द्र आदि सभी देवता अत्यन्त त्रस्त हो गये। उन सभीने ब्रह्माजीके साथ विष्णुभगवान्‌से प्रार्थना की। तब भगवान् विष्णुने राजा दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें जन्म लेनेका आश्वासन दिया। तदनन्तर ब्रह्मा और विष्णु कैलास गये और वहाँ भगवान् शंकरके साथ तीनोंने भवानी जगदम्बाका स्तवन किया। भगवतीने प्रसन्न होकर विष्णुके द्वारा मनुष्यरूपमें रावणके विनाशका आश्वासन दिया तथा रावणपर विजय प्राप्त करनेके उपायरूपमें अपनी उपासनाकी प्रक्रिया भी बतायी तथा यह भी कहा कि जब वे अपनी योगिनियोंके साथ लङ्काका त्याग कर देंगी, तभी रावणका वध हो सकेगा। इस प्रकार भगवती जगदम्बाकी कृपासे भगवान् विष्णुने रामावतार लेकर वानरोंकी सहायतासे भीषण युद्ध करते हुए रावणका संहार किया।

श्रीकृष्णोपाख्यानका रहस्य [देवीका श्रीकृष्णरूपमें तथा महादेवजीका राधारूपमें प्राकट्य]—अध्याय उनचासमें श्रीकृष्णजन्मकी कथाका उपक्रम प्रस्तुत है। एक समयकी बात है—परम कौतुकी भगवान् शिव कैलास-शिखरपर सुरम्य मन्दिरके एकान्तमें पार्वतीजीके साथ विहार कर रहे थे। उन्होंने भगवतीसे अपनी एक अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा कि यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो पृथ्वीतलपर कहीं भी पुरुषरूपसे अवतीर्ण हों और मैं स्त्रीरूपसे अवतीर्ण होऊँगा। इस समय जिस प्रकार मैं आपका प्रिय पति हूँ और आप मेरी प्राणप्रिया पत्नी हैं, उसी प्रकारका दाम्पत्य-प्रेम हम दोनोंका उस समय भी हो। भगवान् शंकरने जोर देकर अपनी इस अभिलाषाको पूर्ण करनेकी याचना की।

देवीने भी इसे स्वीकार करते हुए महादेवजीसे कहा—प्रभो! आपकी प्रसन्नताके लिये मैं पृथ्वीतलपर वसुदेवके घर पुरुषरूपमें श्रीकृष्ण होकर अवश्य ही जन्म लूँगी, मेरी प्रसन्नताके लिये आप भी स्त्रीरूपमें जन्म लीजिये। भगवतीकी बात सुनकर भगवान् शिवने भी वृषभानुकी पुत्री राधाके रूपमें जन्म लेनेका वचन दिया। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि मेरी आठ मूर्तियाँ भी रुक्मिणी, सत्यभामादि पटरानियोंके रूपमें मृत्युलोकमें अवतरित होंगी। इस प्रकार इस देवीपुराणके अनुसार भगवती जगदम्बा ही भगवान् कृष्णके रूपमें तथा भगवान् सदाशिव राधारानीके रूपमें पृथ्वीलोकमें अवतरित हुए। आगेकी कथामें ब्रह्माजीके अनुरोध करनेपर भगवान् विष्णुने भी कृष्णके बड़े भाई बलदेवके रूपमें तथा पाण्डवोंमें

अर्जुनके रूपमें जन्म लिया। इसी प्रकार पवनदेवने भीमके रूपमें, धर्मराजने युधिष्ठिरके रूपमें तथा अश्विनीकुमारोंने नकुल-सहदेवके रूपमें जन्म लिया। आगेके अध्यायोंमें पचाससे बावनतक भगवान् श्रीकृष्णका बालचरित, तिरपनवेंमें रासलीला, चौवनवेंमें अक्रूरके व्रज जाकर श्रीकृष्णको मथुरा लाने तथा उनके द्वारा सपरिकर कंसका वध कर वसुदेव-देवकीको बन्दीगृहसे मुक्त कर उनके दर्शन प्राप्तिका वर्णन है। पचपनवेंमें युधिष्ठिरके राजसूययज्ञकी कथा, शिशुपालवध, श्रीकृष्णका रुक्मिणीसे पाणिग्रहण तथा पाण्डवोंकी द्यूतमें पराजयके पश्चात् वनवासकी कथा है। छप्पनवें अध्यायमें पाण्डवोंके अज्ञातवासका विशद वर्णन है।

बारह वर्षका वनवास पूर्ण करनेके अनन्तर पाण्डव द्रौपदीके साथ कामाख्यादेवी पहुँचते हैं, वहाँ उन्होंने भगवतीकी उपासना कर उन्हें प्रसन्न किया तथा एक वर्षका अज्ञातवास कुशलपूर्वक सम्पन्न होनेका वरदान माँगा। भगवती कामाख्यादेवीने धर्मराज युधिष्ठिरको मत्स्यदेशके राजा विराटके यहाँ अज्ञातवासके रूपमें एक वर्षका समय व्यतीत करनेका निर्देश दिया। तदनुसार युधिष्ठिरने अपने भाइयों और पत्नीसहित राजा विराटके यहाँ अज्ञातवासके रूपमें एक वर्ष बिताया। वहाँकी कुछ घटनाओंका वर्णन इस अध्यायमें प्राप्त होता है।

महाभारतयुद्धका संक्षिप्त वर्णन—सत्तावनवें अध्यायमें महाभारतके युद्धका वर्णन है, कौरवोंके पक्षमें कृष्णकी सेना और पाण्डवोंके पक्षमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके रथके सारथिके रूपमें तत्पर हैं। सर्वप्रथम पाण्डवोंने भगवतीकी आराधना कर कौरवोंपर विजयप्राप्तिका वरदान प्राप्त किया। अठारह दिनके महाभारतके संग्राममें अगणित क्षत्रिय योद्धा कालकवलित हो गये, कौरव भी मारे गये और अन्तमें पाण्डवोंकी विजय हो गयी।

भगवान् श्रीकृष्णका परमधामगमन—अट्ठावनवें अध्यायमें भगवान् कृष्णके द्वारा अपनी लीलाका संवरणकर परमधामगमनका वर्णन है। भगवान् कृष्ण विप्रोंको धन देकर अपने परिकरोंके साथ समुद्रके किनारे आ जाते हैं। नन्दीके द्वारा रत्नजटित रथ अन्तरिक्षमें आ जाता है। कृष्ण अपने मूलरूपमें अचानक महाकालीका रूप धारण कर सिंहके द्वारा खींचे जानेवाले रथपर आरूढ़ हो कैलासके लिये प्रस्थान कर जाते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर भी रथारूढ़ होकर स्वर्गलोक चले जाते हैं तथा पाण्डव आदि सभी लोग समुद्रजलका स्पर्श करते हुए अपने शरीरका त्याग कर वैकुण्ठलोकको प्राप्त होते हैं।

श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं कि इस प्रकार जगन्माता भगवती पृथ्वीका भार मिटानेके लिये शम्भुकी इच्छाके वशीभूत होकर पृथ्वीतलपर लीलापूर्वक पुरुषरूपमें आविर्भूत हुईं और पृथ्वीके भारस्वरूप राक्षसोंका संहार करके पुनः अपना वास्तविक रूप धारण कर अपने स्थानको चली गयीं। इस तरह श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंकी कथासे यहाँकी कथामें कुछ भिन्नता होनेके कारण इसे कल्पान्तरकी कथा माननी चाहिये तथा इसकी प्रामाणिकतामें कोई संशय नहीं रखना चाहिये। यहाँ भी श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं कि महामुने! जगत्प्रभु श्रीविष्णुभगवान् दूसरे कल्पमें द्वापरके अन्तमें पृथ्वीतलपर अपने पूर्ण अंशसे श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण होंगे और अपनी लीलासे इसी तरहसे पृथ्वीके भारका हरण करेंगे।

भगवतीके दिव्यलोकका वर्णन—उनसठवें अध्यायमें भगवतीके परमधाममें स्थित अत्यन्त गुप्त, परम रम्य, अति सुन्दर तथा ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंद्वारा अत्यन्त कठिनाईसे पहुँचा जा सकनेवाले दिव्यलोकका वर्णन है। यह स्थान चारों ओरसे आकर्षक तथा अमृतमय महासागरसे घिरा है, बहुमूल्य रत्न-सम्पदाओंसे

सम्पन्न है तथा अग्निके समान प्रभावाला है। उसके मध्यमें रत्ननिर्मित विशाल परकोटे (चहारदीवारी)-से आवृत, चार द्वारोंवाला, चारों दिशाओंमें मोतियोंकी जालियोंसे अत्यन्त सुशोभित और चित्रमय ध्वजा-पताकाओंसे अलंकृत एक सुरम्य पुर है। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ जगदम्बाकी आज्ञाके बिना देवता, राक्षस तथा ब्रह्मादि देवेश्वर भी प्रवेश नहीं पा सकते। इस पुरमें विजया आदि चौंसठ योगिनियाँ परिचारिकाके रूपमें सदा कार्यरत रहती हैं। यहाँ दाहिने भागमें महाकाल सदाशिव विराजमान हैं, भगवती महाकाली उन सदाशिवके साथ प्रसन्न होकर सदा विहार करती रहती हैं।

साठवें अध्यायमें वृत्रासुरके संहारकी कथा है। नारदजीके पूछनेपर महादेवजीके द्वारा यह कथा कही गयी है।

वृत्रासुरवधोपाख्यान—पूर्वकालमें ब्रह्माजीसे वर प्राप्त कर वृत्रासुर सभी देवताओंको जीतकर स्वयं इन्द्र बन बैठा था तथा उसने तीनों लोकोंको अपने अधिकारमें कर लिया था। ब्रह्माजीने दधीचिकी हड्डीसे बनाये गये महास्त्रसे देवराज इन्द्रके द्वारा उसकी मृत्यु सुनिश्चित की थी। देवराज इन्द्र दधीचिके पास जाते हैं और उनसे सब समाचार बताकर वृत्रासुरके वधके लिये उनकी अस्थियोंकी याचना करते हैं। महर्षि दधीचि इन्द्रकी प्रार्थना सहर्ष स्वीकार करते हुए योगबलसे अपने शरीरका त्याग कर उन्हें अस्थियाँ प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् देवेन्द्र उन हड्डियोंसे निर्मित अस्त्रोंद्वारा वृत्रासुरको मार डालते हैं। महामुनि दधीचिसे अस्थियों (हड्डियों)-का दान लेनेके कारण उनका शरीर छूट जानेसे इन्द्रको ब्रह्महत्याका दोष लगा, इससे वे विचलित हो जाते हैं तथा ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्त होनेके लिये विविध उपाय करते हैं। सर्वप्रथम उन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया, पर इससे भी ब्रह्महत्यासे पूरी तरह निवृत्त न होनेके कारण वे अपने गुरु महर्षि गौतमसे उपाय पूछते हैं। महर्षि गौतमने कहा कि यदि तुम इस ब्रह्महत्यासे निवृत्त होना चाहते हो तो तुम्हें महापातकनाशिनी भगवती महाकालीके दर्शन करने चाहिये।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों बहुत प्रयासपूर्वक इन्द्रको साथ लेकर भगवतीके परमधाममें पहुँचते हैं, स्तवन करनेपर उन्हें भगवती जगदम्बाका दर्शन प्राप्त होता है तथा भगवतीके दर्शनके प्रभावसे इन्द्र ब्रह्महत्याके दोषसे मुक्त हो जाते हैं।

श्रीगङ्गाजीके प्रादुर्भावका रहस्य—चौंसठवें अध्यायमें गङ्गाजीके प्रादुर्भूत होनेकी कथा है। नारदजीके द्वारा जिज्ञासा करनेपर महादेवजी कहते हैं कि पूर्वकालमें गङ्गाके विवाहमहोत्सवकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने गङ्गासहित प्रसन्नचित्त भगवान् शंकरको देखनेकी इच्छासे अपनी वैकुण्ठपुरीमें उन्हें सत्कारपूर्वक आमन्त्रित किया। एक सुन्दर रत्नसिंहासनपर महेश्वर शिवको विराजमान कर भगवान् विष्णु उनसे संगीत सुनानेका आग्रह करते हैं। विष्णुके आग्रहपर भगवान् शंकरने अत्यन्त अद्भुत और मनोहर गायन प्रस्तुत किया। भगवान् शंकरके गीतोंको सुनकर परमेश्वर भगवान् विष्णु तत्काल द्रवीभूत हो जाते हैं, वही ब्रह्मद्रव गङ्गाजीके रूपमें ब्रह्माजीके कमण्डलुमें आ जाता है। ब्रह्माजी गङ्गाकी इस जलमयी मूर्तिको कमण्डलुमें लेकर अपने धाम चले जाते हैं। आगे चलकर ये ही गङ्गा विष्णुपदी होकर लोक-कल्याणके लिये पृथ्वीपर अवतरित होती हैं।

वामनावतारकी कथा—पैंसठवें अध्यायमें वामनावतारकी कथा है। भगवान् विष्णु वामनरूपमें अवतार लेते हैं तथा राजा बलिसे तीन पग भूमिका दान माँगते हैं। शुक्राचार्यके मना करनेपर भी राजा बलि तीन पग भूमि वामनभगवान्को देनेका संकल्प

कर लेते हैं। वामनभगवान् अपना विराट् स्वरूप बनाकर दो पगमें समस्त लोकोंको नाप लेते हैं। तीसरे पगसे स्वयं बलिको नापकर उसे पाताललोकमें जानेका आदेश देते हैं। उसी क्षण गङ्गाजी ब्रह्माके कमण्डलुसे निकलकर भगवान्के पादपद्मोंमें स्थित हो जाती हैं। इसी कारण गङ्गामाता '**विष्णुपादाब्जसम्भूता**' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निःसृत गङ्गाजी पुनः ब्रह्माके कमण्डलुमें आ गयीं।

छाछठवें अध्यायमें ब्रह्माजीने भगवती गङ्गाकी प्रार्थना की और गङ्गामाताने राजा भगीरथके पूर्वजों तथा अन्य प्राणियोंके उद्धारके निमित्त तीनों लोकोंमें पधारनेका आश्वासन दिया। इसके अनन्तर महाराज भगीरथद्वारा गङ्गाजीको लानेके लिये भगवान् विष्णु, भगवती गङ्गा और भगवान् शिवकी आराधनाका वर्णन है।

सड़सठवें अध्यायमें राजा भगीरथने भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नताके लिये स्तवन करते हुए शिवसहस्रनामस्तोत्रका पाठ किया है। तदनन्तर महाराज भगीरथको मनोभिलषित वरकी प्राप्ति होती है। इस अध्यायके अन्तमें शिवसहस्रनामस्तोत्रके पाठका विशेष महत्त्व वर्णित है।

गङ्गावतरणकी कथा—अड़सठवें अध्यायमें पुण्यात्मा राजा भगीरथ एक सुन्दर रथमें आरूढ़ होते हैं और शङ्ख बजाते हैं। उनकी शङ्खध्वनि वैकुण्ठधाममें सुनायी देने लगी, तब भगवती गङ्गा प्राकृतिक जलरूपमें परिणत होकर भगवान् विष्णुके पदकमलसे निकलकर कल-कल ध्वनि करती हुई स्वयं धारारूपमें मेरु पर्वतके शिखरपर गिरने लगीं। जलधारारूपी गङ्गाका दर्शन कर राजा कृतकृत्य हो गये और शङ्ख बजाना छोड़कर नाचने लगे। शङ्खकी ध्वनि शान्त हो जानेपर भगवती गङ्गा भी अपनी धाराको छोड़कर मेरु पर्वतके शिखरपर विश्राम करने लगीं। उसी समय पृथ्वीमाता त्रैलोक्यपावनी गङ्गाके समीप आकर भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करते हुए कहने लगीं—'देवि गङ्गे! आप जगत्का पालन करनेवाली, ब्रह्मस्वरूपिणी, देवताओंकी स्वामिनी और द्रवरूपिणी हैं। लोगोंके उद्धारके लिये मुझपर प्रसन्न होइये। जिनकी आपमें भक्ति है, प्रीति है—वे लोग कभी भी मृत्युके वशमें नहीं होते। देवि! आपकी कृपासे उनको न अधःपतनका भय रहता है, न दुःखका।'

इस प्रकार स्तुति करती हुई पृथ्वीमाताने गङ्गाजीसे यह प्रार्थना की कि समुद्रपर्यन्त चारों दिशाओंसे चार धाराओंमें प्रवाहित होकर मेरे इस बृहत् शरीरको पवित्र कीजिये।

तदनन्तर सुरनदी गङ्गाकी धारा स्वर्गलोकको आप्लावित करती हुई दक्षिणाभिमुखी होकर तीव्र वेगसे कुछ दूरतक चली गयी। आगे-आगे मध्याह्न-सूर्यकी भाँति कान्तिमान् राजा भगीरथ अद्वितीय रथपर शङ्ख बजाते हुए चल रहे थे। इसी बीच देवराज इन्द्रने राजा भगीरथसे प्रार्थना करते हुए कहा कि ब्रह्मादि देवताओंके लिये दुर्लभ गङ्गा आपके द्वारा लायी जा रही हैं। आप उन सम्पूर्ण गङ्गाजीको पृथ्वीपर ही क्यों ले जा रहे हैं? गङ्गाकी एक निर्मल जलधारा स्वर्गमें भी स्थापित कीजिये। देवराज इन्द्रकी इस बातको सुनकर राजा भगीरथने भी भगवती गङ्गासे अपनी एक निर्मल धाराके द्वारा देवताओंको पवित्र करनेके लिये स्वर्गमें प्रतिष्ठित होनेकी प्रार्थना की। राजाकी प्रार्थना सुनकर भगवती गङ्गाकी एक पुण्य धारा 'मन्दाकिनी' के नामसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हो गयी।

इसके बाद राजा भगीरथने रथपर सवार होकर शङ्ख बजाते हुए भगवती गङ्गाके आगे-आगे चलते हुए दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें दशमीके दिन पतितपावनी भगवती गङ्गाका

प्राकट्य पृथ्वीलोकमें हुआ।

श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं—गङ्गादशहराकी इस पुण्य तिथिपर जो गङ्गामें स्नान करता है, तप और दान करता है, उसके दस जन्मोंमें अर्जित पापोंका नाश होता है तथा अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। इसलिये सभी पापोंसे मुक्ति चाहनेवाले मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक गङ्गामें स्नान करना चाहिये। इस प्रकार उनहत्तरवें अध्यायमें भगवती गङ्गाके प्राकट्यकी कथा विस्तारसे वर्णित है।

सत्तरवें अध्यायमें भगवती गङ्गाकी धाराके विस्तारका वर्णन हुआ है। भगवती गङ्गा बहुत योजनोंतक प्रवाहित होती हुई राजा भगीरथके साथ हरिद्वार पहुँच गयीं। वहाँ सप्तर्षियोंने सातों दिशाओंमें महाशङ्ख बजाया। उन शङ्खध्वनियोंको सुनकर गङ्गाका यह प्रवाह सात धाराओंमें परिणत हो गया। इसीलिये हरिद्वारमें सप्तधारामें स्नानकी महिमा है। वहाँसे गङ्गाजी प्रयागराज आती हैं। वहाँ यमुना और सरस्वतीके साथ संगम होता है। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ त्रिवेणीसङ्गम है, जहाँ स्नान-दान और तप करनेका विशेष महत्त्व है। तत्पश्चात् भगवती गङ्गा कुछ दूर चलकर भगवान् शंकरके दर्शनके लिये काशीमें उत्तराभिमुखी हो गयीं। काशीमें जाने या अनजाने जो शरीर त्याग करता है, उसे भगवती गङ्गा शान्ति और मोक्ष प्रदान करती हैं।

गङ्गाजीका काशीमें आगमन—श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं—परम वेगवती गङ्गा जब काशीमें पहुँच गयीं तब काशीकी रक्षामें तत्पर कालभैरव हाथमें दण्ड उठाकर पूछने लगे—'तुम जलरूपमें कौन हो? और कहाँसे आकर काशीको जलप्लावित कर रही हो?'

भगवती गङ्गाने कहा कि मैं भगवान् शंकरकी अनुगामिनी द्रवमयी गङ्गा हूँ तथा भगवान् शंकरके मस्तकपर प्रतिष्ठित हूँ। यहाँ काशीमें भगवान् विश्वेश्वरके दर्शनके लिये चली आयी हूँ। कालभैरव! आप सुस्थिर रहें, मैं काशीको जलप्लावित नहीं करूँगी। यह सुनकर कालभैरवने शान्तभावसे भगवती गङ्गाको नमस्कार किया।

तदनन्तर भगवती गङ्गा कामाख्यादेवीके दर्शनके लिये पूर्वाभिमुखी हो गयीं। उसी समय ऋषि जह्नुने शङ्ख बजाया, शङ्खकी ध्वनि सुनकर गङ्गाजी उनके आश्रममें आ गयीं। मुनिश्रेष्ठ जह्नुने हठात् हाथकी अञ्जलिमें भरकर सम्पूर्ण गङ्गाका पान कर लिया। इससे स्वर्गलोकमें तथा पृथ्वीलोकमें सभी देवताओं और मनुष्योंमें हाहाकार मच गया। राजा भगीरथ भी अत्यन्त दुःखी हो गये। भगवती गङ्गाके संकेतसे राजाने पुनः महाशङ्खकी ध्वनि की। महाशङ्खकी आवाज सुनकर महादेवी गङ्गा तीव्रधाराके साथ जह्नुमुनिकी जङ्घाका भेदन कर बाहर निकल गयीं। यह देखकर जह्नुमुनि भी भगवती गङ्गाको नमस्कार कर उनकी स्तुति करने लगे।

गङ्गाजीको 'जाह्नवी' नामकी प्राप्ति—जह्नुमुनिके द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवती गङ्गाने मुनिसे कहा—तात! मैं आपके शरीरसे निकली हूँ, इसलिये आपकी पुत्री हूँ। आजसे मैं 'जाह्नवी'के नामसे विख्यात होऊँगी। इस संसारमें जो लोग मुझे जाह्नवीके नामसे एक बार भी स्मरण करेंगे, उनको न पाप लगेगा और न वे दुःखी होंगे।

भगीरथके पितरोंका उद्धार—तत्पश्चात् भगवती गङ्गा दक्षिणदिशाकी ओर प्रस्थान कर सगरके पुत्रोंका अन्वेषण करती हुई समुद्रके निकट पहुँचकर सहस्रधाराओंमें विस्तीर्ण हो गयीं तथा समुद्रके साथ संयुक्त होकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक पातालमें कपिलमुनिके निकट पहुँच गयीं। कपिलमुनिने भगवती गङ्गाका पदार्पण जानकर उनकी पूजा की। इसके बाद

गङ्गाजीके पूछनेपर कपिलमुनिने भस्मरूपी सगरपुत्रोंको दिखाया। भस्मसात् किये गये उन सगरपुत्रोंको त्रिलोकगामिनी गङ्गा वेगपूर्वक बहाकर ले गयीं। उसी क्षण वे सगरपुत्र दिव्यरूपधारी होकर अलौकिक रथमें आरूढ़ हो ब्रह्मलोकको चले गये। पितरोंके उद्धारको देखकर महाराज भगीरथ परम प्रसन्न होकर रथमें नृत्य करते हुए गङ्गाजीकी जय-जयकार कर स्तुति करने लगे।

गङ्गा-माहात्म्य—७२ वें अध्यायमें श्रीमहादेवजी मुनिश्रेष्ठ नारदको सावधान करते हुए द्रवरूपिणी गङ्गाके माहात्म्यका वर्णन करते हैं और कहते हैं कि जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर अवहेलनापूर्वक भी गङ्गाका स्मरण कर लेता है, तीनों लोकोंमें उसे किसीसे भी अमङ्गलका भय नहीं रहता। उसके घरमें सम्पदा विद्यमान रहती है, क्षणभरमें उसकी सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं, जन्म-जन्मान्तरमें किये गये पाप भी नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षयपुण्योंकी प्राप्ति होती है।*

जो पुण्य सभी तीर्थोंमें किये गये स्नान, सभी देवताओंके पूजन, सब प्रकारके यज्ञ, तप, दान, समस्त तीर्थोंके दर्शन तथा परमेश्वरके वन्दन और स्तवनसे नहीं होता है, वह पुण्य गङ्गाके स्मरणमात्रसे हो जाता है—

सर्वतीर्थकृतस्नानैः सर्वदेवाभिपूजनैः।
सर्वयज्ञतपोदानैः सर्वतीर्थाभिदर्शनैः॥
सर्वाभिवन्द्यपादाब्जवन्दनैः स्तवनैरपि।
यथा न जायते पुण्यं तथा गङ्गास्मृतेर्भवेत्॥

(महाभागवत ७२। ११-१२)

जो विशुद्धात्मा मनुष्य गङ्गास्नानको उद्देश्य करके यात्रा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध तथा वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस अध्यायके अन्तमें सर्वान्तक नामक एक अत्यन्त क्रूर व्याधकी कथा श्रीमहादेवजीने नारदजीको सुनायी है। इस कथाके अनुसार महान् पापी सर्वान्तकको मृत्युके पूर्व गङ्गाके दर्शन प्राप्त हो गये, जिसके कारण यमदूत उसे यमलोक नहीं ले जा सके, बल्कि शिवदूत उसे शिवलोक ले गये। इस सम्बन्धमें धर्मराजके पूछनेपर चित्रगुप्तने बताया कि भगवती गङ्गाके दर्शनके पुण्यसे इस व्याधको शिवलोककी प्राप्ति हुई। यह सुनकर धर्मराज अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए और भगवती गङ्गाको प्रणामकर उन्होंने यमदूतोंसे कहा—जो लोग पतितपावनी भगवती गङ्गाका सांनिध्य प्राप्त कर उनका दर्शन प्राप्त करते हैं, वे मेरे द्वारा कभी दण्डित नहीं किये जाते हैं। यमदूत यह सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए।

७३वें अध्यायमें श्रीमहादेवजी गङ्गाकी महिमाका वर्णन करते हुए नारदजीसे कहते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्महत्या करनेवाला, गोका वध करनेवाला, सुरापान करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला महापापी भी गङ्गामें स्नान कर लेनेपर महादेवी गङ्गाकी कृपासे घोर पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो लोग एकाग्रचित्त होकर गङ्गामें पितरोंका तर्पण करते हैं, उनके पितर निर्विकार ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं। गङ्गाके जलमें पकाया हुआ अन्न देवताओंको भी दुर्लभ है। उस अन्नसे श्राद्ध किये जानेपर पितरोंको भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है—

संतर्पयन्ति गङ्गायां पितॄन्ये तु समाहिताः।
तेषां तु पितरो यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥

---

* प्रातरुत्थाय यो गङ्गां हेलयापि नरः स्मरेत्। न तस्याशुभभीतिस्तु विद्यते भुवनत्रये॥
प्रवर्तते गृहे सम्पद्विनश्यन्त्यापदः क्षणात्। पापानि संक्षयं यान्ति जन्मान्तरकृतान्यपि॥
भवन्ति च सुपुण्यानि चाक्षयानि महामते। (महाभागवत ७२। ३—५)

गङ्गासलिलपक्वान्नं देवानामपि दुर्लभम्।
तदन्नेन कृते श्राद्धे पितरो यान्ति निर्वृतिम्॥

(महाभागवत ७३। १७,२३)

इस अध्यायमें कुछ विशेष तिथियोंपर गङ्गास्नानका विशेष महत्त्व वर्णित है। जो मनुष्य तुला, मकर और मेषकी संक्रान्तियों, माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी, कार्तिक पूर्णिमा तथा चैत्रकृष्ण त्रयोदशीको अरुणोदयकालमें गङ्गास्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है। चन्द्र अथवा सूर्यग्रहणके अवसरपर यदि भाग्यसे गङ्गाका सांनिध्य प्राप्त हो जाय तो उस समय गङ्गामें स्नान कर विधिपूर्वक पितृश्राद्ध करना चाहिये। वह श्राद्ध अक्षय, पितरोंके लिये तृप्तिकारक, गयामें किये गये सौ श्राद्धोंसे श्रेष्ठ तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है[१]। ग्रहणके पूरे कालमें मन्त्रका जप करनेसे एक पुरश्चरण सम्पन्न हो जाता है, जो असाध्य कार्योंको भी सिद्ध कर देता है और वह साधक स्वयं भी शिवतुल्य हो जाता है। भूलकर भी मनुष्यको गङ्गामें मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। गङ्गामें मल-मूत्रका विसर्जन करनेवाला जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति (एक कल्पपर्यन्त) बनी रहती है, तबतक नरकमें निवास करता है।[२]

गङ्गा सभी स्थानोंपर सुलभ हैं, किंतु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसङ्गम—इन तीन स्थानोंपर दुर्लभ हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्तिको वहाँपर विशेष प्रयत्नके साथ स्नान, दान आदि कृत्योंको करना चाहिये। जो मनुष्य काशीमें भक्तिभावसे विधिपूर्वक उत्तरवाहिनी गङ्गामें स्नान करता है, वह साक्षात् शिवत्वको प्राप्त हो जाता है। काशीमें मणिकर्णिकापर स्नान करनेवाला व्यक्ति बिल्वपत्र आदिसे भगवान् विश्वेश्वरका पूजन करके शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है। मरे हुए प्राणीका मांस तथा हड्डियाँ किसी भी प्रकार गङ्गाजीमें पड़ जायँ तो वह प्राणी स्वर्गलोकको प्राप्त हो जाता है।[३] इस संदर्भमें धनाधिप नामक एक वैश्यकी कथा भी यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

श्रीमहादेवजी कहते हैं कि वास्तवमें गङ्गा ही परम बन्धु हैं, गङ्गा ही परम सुख हैं, गङ्गा ही परम धन हैं, गङ्गा ही परम गति हैं, गङ्गा ही परम मुक्ति हैं और गङ्गा ही परम तत्त्व हैं—जो लोग ऐसी भावना करते हैं, गङ्गाजी उनसे कभी भी दूर नहीं रहतीं।[४]

वह देश धन्य है जहाँ तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली गङ्गाजी बहती हैं, जिस देशमें वे नहीं बहतीं वह प्रकृष्ट देश नहीं है—

धन्यः स देशो यत्रास्ति गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
गङ्गाहीनस्तु यो देशो न प्रदेशः स भण्यते॥

गङ्गाके नामका स्मरण ही परम आनन्द है तथा गङ्गाके नामका स्मरण ही परम तप है। जो मनुष्य 'गङ्गा'—इस नामका नित्य स्मरण करता है, उसे यमराजका भय नहीं रहता।

गङ्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र— ७५ वें अध्यायमें भगवती गङ्गाके १०८ नामोंका वर्णन करते हुए श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ! मैंने आपसे भगवती गङ्गाके नाम बता दिये। ये नाम समस्त पापोंका विनाश करनेवाले हैं। जो व्यक्ति प्रातःकाल

१-गङ्गायां यदि भाग्येन चन्द्रसूर्यग्रहं लभेत्। तदा स्नात्वा पितृश्राद्धं कुर्याद्विधिविधानतः।
अक्षय्यं तद्भवेच्छ्राद्धं पितृणां तृप्तिकारकम्॥ गङ्गाश्राद्धशतं श्रेष्ठं निर्वाणपददायकम्। (महाभागवत ७३। २६-२७)

२-गङ्गायां मोहतो नैव विण्मूत्रं विसृजेन्नरः। विसृजन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ (महाभागवत ७३। ३३)

३-मृतस्य यत्रकुत्रापि मांसमस्थि च नारद। प्रपतेज्जाह्नवीतोये सोऽपि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ (महाभागवत ७४। ३)

४-गङ्गैव परमो बन्धुर्गङ्गैव परमं सुखम्। गङ्गैव परमं वित्तं गङ्गैव परमा गतिः॥
गङ्गैव परमा मुक्तिर्गङ्गा सारतरेति ये। विभावयन्ति तेषां तु न दूरस्था कदाचन॥ (महाभागवत ७४। २७-२८)

उठकर गङ्गाके इन परम पुण्य देनेवाले १०८ नामोंको भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसके ब्रह्महत्या आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति आरोग्य तथा अतुलनीय सुख प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

आगे चलकर भगवान् शंकर नारदजीसे कहते हैं कि दूसरे स्थानके गङ्गातीर्थमें निर्वाण ज्ञानपूर्वक होता है; किंतु मुनिश्रेष्ठ! वाराणसीमें भूमिपर अथवा जलमें—कहीं भी ज्ञान या अज्ञानपूर्वक विज्ञानकी प्राप्ति कही गयी है। यहाँ स्थलपर, गङ्गाजलमें अथवा आकाशमें ज्ञान या अज्ञान किसी भी तरहसे शरीरका त्याग करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है।[१]

अतः 'मृत्युने मेरे केशोंको पकड़ रखा है'—ऐसा सोचकर मनुष्यको तीर्थोंमें सर्वश्रेष्ठ, मनुष्योंके सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाली, शक्तिस्वरूपिणी, मूर्तिमयी, जलमयी, लोगोंका उद्धार करनेवाली, अविद्याका नाश करनेवाली तथा ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाली भगवती गङ्गाका आश्रय ग्रहण करना चाहिये—

तीर्थश्रेष्ठतमां गङ्गां नृणां सर्वार्थसाधिनीम्।
शक्तीं नीरमयीं मूर्तिं लोकनिस्तारकारिणीम्॥
अविद्याछेदिनीं देवीं ब्रह्मविद्याप्रदायिनीम्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना समुपाश्रयेत्॥

(देवीपुराण ७५। ३४-३५)

कामरूपतीर्थ [कामाख्या]-की महिमा— ७६वें अध्यायमें श्रीमहादेवजी नारदजीको कामरूपतीर्थका माहात्म्य बताते हुए कहते हैं कि मृत्युलोकमें प्रत्यक्ष फल देनेवाला इससे उत्तम कोई तीर्थ नहीं है। यहाँ पृथ्वीपर लोगोंके कल्याणके लिये योनिरूपमें महामाया आदिशक्ति परमेश्वरी अपनी इच्छासे विराजती हैं। मनुष्य योनिरूपा अतिगोपनीय भगवती कामाख्याका दर्शन-पूजन करके जीवन्मुक्त हो जाता है। कामाख्यादेवीकी महिमाका विशेषरूपसे वर्णन करते हुए इस अध्यायके अन्तमें श्रीमहादेवजी कहते हैं—

कामाख्या परमं तीर्थं कामाख्या परमं तपः।
कामाख्या परमो धर्मः कामाख्या परमा गतिः॥
कामाख्या परमं वित्तं कामाख्या परमं पदम्।
विभाव्यैवं मुनिश्रेष्ठ न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥

भगवती कामाख्या सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं, वे सर्वश्रेष्ठ तपस्या हैं। उनका चिन्तन सर्वश्रेष्ठ धर्म है तथा वे भगवती कामाख्या परम गति हैं। भगवती कामाख्या सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ पद हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकारकी भावना करनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता।

७७वें अध्यायमें श्रीनारदजी जिज्ञासा करते हैं कि कामरूप महाक्षेत्रमें दस महाविद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी महेश्वरी कौन हैं? श्रीमहादेवजी कहते हैं—कामाख्या कालिका देवी स्वयं आदिशक्ति हैं। उन्हींके पास दस महाविद्याएँ भी स्थित हैं।

कामाख्यापीठमें महाविद्याओंकी स्थिति— श्रीमहादेवजी कहते हैं—नारद! जगन्माता भगवतीके वामभागमें देवी तारा, दक्षिणभागमें भुवनेश्वरी, अग्निकोणमें षोडशीविद्या, नैर्ऋत्यकोणमें स्वयं भैरवी, वायव्यकोणमें छिन्नमस्ता, पीठकी ओर बगलामुखी, ईशानकोणमें सुन्दरी विद्या, ऊर्ध्वभागमें मातङ्गी तथा दक्षिणभागमें धूमावती विद्या प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार कामाख्या शक्तिपीठकी सभी दिशाओंमें महाविद्याएँ प्रतिष्ठित हैं। उनके नीचे भस्माचल विग्रहरूपमें स्वयं भगवान् शंकर विराजमान हैं।[२]

१-अन्यत्र जाह्नवीतीर्थे निर्वाणं ज्ञानतो भवेत्। वाराणस्यां स्थले वापि जले वा मुनिसत्तम॥
ज्ञानादज्ञानतश्चापि विज्ञानं परिकल्पितम्। स्थले वा जाह्नवीतोये गगनेऽज्ञानतोऽपि च।
अज्ञानादपि संत्यज्य देहं मुक्तिमवाप्नुयात्॥ (महाभागवत ७५। ३१-३२)

२-वामे तारा भगवती दक्षिणे भुवनेश्वरी। अग्नौ तु षोडशीविद्या नैर्ऋत्यां भैरवी स्वयम्॥
वायव्यां छिन्नमस्ता च पृष्ठतो बगलामुखी। ऐशान्यां सुन्दरी विद्या चोर्ध्वमातङ्गनायिका॥
याम्यां धूमावती विद्या महापीठस्य नारद। अधस्ताद्भगवान्रुद्रो भस्माचलमयः स्वयम्॥ (महाभागवत ७७। ९—११)

कामाख्याकवचकी महिमा—महादेवजी कहते हैं—आत्मरक्षाके लिये और मन्त्रसिद्धिके लिये जो व्यक्ति देवी भगवतीके कवचका पाठ करता है, उसको कभी भय नहीं होता। यह कहते हुए भगवान् शंकर भगवती कामाख्याका परम गोपनीय तथा महाभयको दूर करनेवाला सर्वमङ्गलदायक कवच सुनाते हैं।

७८वें अध्यायमें वैशाखमासकी तृतीया, शिवरात्रि तथा चैत्रशुक्लपक्षकी अष्टमी आदि प्रमुख तिथियोंपर भगवती कामाख्यादेवी तथा सदाशिव भगवान् शंकरकी उपासनाकी महिमाका विशेषरूपसे वर्णन हुआ है।

बिल्ववृक्षकी महिमा—बिल्वपत्रके महत्त्वका वर्णन करते हुए श्रीमहादेवजी कहते हैं कि हजारों स्वर्णपुष्पोंके अर्पण करनेसे तथा मणि-माणिक्य एवं मूल्यवान् रत्नोंके द्वारा मेरी पूजा करनेसे मुझे वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी बिल्वपत्र चढ़ानेसे होती है (महाभागवत ७८। ८१$\frac{१}{२}$)।

इसी प्रकार बिल्ववृक्ष एवं इसके मूलकी महिमाका वर्णन करते हुए महादेवजी कहते हैं कि बिल्ववृक्षके नीचे सर्वश्रेष्ठ तीर्थोंका निवास है। वहाँ भगवान् शंकरकी पूजा करनेसे महापातकोंका नाश हो जाता है—

बिल्वमूले वसेत्तीर्थं सर्वश्रेष्ठतमं परम्।
तत्र सम्पूजनं शम्भोर्महापातकनाशनम्॥

(महाभागवत ७८। १०)

गङ्गा, काशी, गया, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा तथा अन्य उत्तम तीर्थ बिल्ववृक्षके मूलमें ही सदा संनिहित जानने चाहिये। वहाँ जो भी देवता तथा पितरोंसे सम्बन्धित कर्म विधिपूर्वक किये जाते हैं, वे निश्चित ही करोड़ों जन्मोंतक अक्षय पुण्यके रूपमें विद्यमान रहते हैं।

(महाभागवत) ७८। १३—१५)

अन्तमें श्रीमहादेवजी कहते हैं कि भगवती कामाख्याके शक्तिपीठसे बढ़कर महापुण्यफलप्रदायक कोई दूसरा स्थान नहीं है। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें अष्टमी तिथिके दिन सर्वतीर्थस्वरूप ब्रह्मपुत्र नदमें विधिवत् स्नानकर उसके जलसे जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक भगवती कामाख्यादेवीकी पूजा करता है, वह संसारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

(महाभागवत ७८। २१-२२)

देवी तुलसी तथा धात्रीवृक्षका माहात्म्य—७९वें अध्यायमें नारदमुनिके जिज्ञासा करनेपर भगवान् शंकर तुलसीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाले विश्वात्मा विश्वपालक भगवान् श्रीपुरुषोत्तम ही तुलसीवृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित हैं—

तुलसीद्रुमरूपस्तु भगवान्पुरुषोत्तमः।
सर्वलोकपरित्राता विश्वात्मा विश्वपालकः॥

(महाभागवत ७९। ५)

दर्शन, स्पर्श, नाम-संकीर्तन, धारण तथा प्रदान करनेसे तुलसी मनुष्यके सभी पापोंका सर्वदा नाश करती है। प्रातः उठकर स्नान करके जो व्यक्ति तुलसीवृक्षका दर्शन करता है, उसे सभी तीर्थोंके दर्शन करनेका फल निःसंदेह प्राप्त होता है।*

जो व्यक्ति वैशाख, कार्तिक तथा माघमासमें प्रातःकाल स्नानकर सुरेश्वर भगवान् विष्णुको विधिपूर्वक तुलसीपत्र अर्पित करता है, उसका पुण्यफल अनन्त कहा गया है। (महाभागवत ७९। २२-२३)

इस अध्यायके अन्तमें तुलसीके साथ धात्री (आँवला)-वृक्ष तथा बिल्ववृक्षकी भी अतुलनीय महिमा बतायी गयी है। यदि तुलसीवृक्षके पास

* दर्शनात्स्पर्शनान्नामकीर्तनाद्धारणादपि । प्रदानात्पापसंहर्त्री नराणां तुलसी सदा॥
प्रातरुत्थाय सुस्नातो यः पश्येत्तुलसीद्रुमम्। स सर्वतीर्थसंसृष्टिफलमाप्नोत्यसंशयम्॥ (महाभागवत ७९। ६-७)

धात्रीवृक्ष हो और उन दोनोंके निकट बिल्ववृक्ष हो तो वह स्थान काशीके समान महातीर्थस्वरूप है। उस स्थानपर भगवान् शंकर, देवी भगवती तथा भगवान् विष्णुका भक्तिभावसे पूजन महापातकोंका नाश करनेवाला और पुण्यप्रद जानना चाहिये। मनुष्य वहाँ प्राण त्यागकर मोक्ष प्राप्त करता है तथा उस क्षेत्रके प्रभावसे वह पुनर्जन्म नहीं लेता।

रुद्राक्षकी महिमा—८०वें अध्यायमें श्रीमहादेवजी रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि शरीरके अङ्गोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे यह मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पापसमूहोंका नाश कर देता है—

अङ्गेषु धारणात्सर्वदेहिनां पापसंचयम्।
विनाशयति रुद्राक्षफलं जन्मशतार्जितम्॥

(महाभागवत ८०।२)

महादेवजी कहते हैं—नारद! अभिमानपूर्वक अथवा अज्ञानसे गुरु, देवताओं, महात्माओं तथा द्विजातियोंको प्रणाम न करनेसे उत्पन्न हुए करोड़ों जन्मका जो भी पाप संचित रहता है, वह पाप सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाता है।

(महाभागवत ८०।३-४)

लोभके कारण, असत्य भाषण तथा उच्छिष्ट आदि पदार्थोंके भक्षण और सुरापानसे होनेवाले करोड़ों जन्मोंके पाप कण्ठमें रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। (महाभागवत ८०।५) दूसरोंके धनका हरण करने, दूसरोंके शरीरपर अत्यधिक चोट पहुँचाने, अस्पृश्य पदार्थोंका स्पर्श करने तथा निन्दित वस्तुओंको ग्रहण करनेसे करोड़ों पूर्वजन्मोंके संचित पाप हाथमें रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं।

(महाभागवत ८०।६-७)

निन्दनीय बातोंको सुननेसे पूर्वजन्मके संचित पाप कानमें रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या तथा वैदिक [नित्य] कर्मोंके त्याग करनेसे बहुत जन्मोंके संचित पाप शरीरमें जहाँ-कहीं भी रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं।

(महाभागवत ८०।८-९)

भगवान् शंकर कहते हैं कि रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य देवताओंमें पूज्यतम तथा साक्षात् महारुद्रकी भाँति पृथ्वीतलपर विचरण करता है—

रुद्राक्षधारी विहरेन्महारुद्र इवापरः।
निर्भयो धरणीपृष्ठे देवपूज्यतमः स्वयम्॥

(महाभागवत ८०।११)

जिस मनुष्यके घरमें एकमुखी रुद्राक्ष रहता है, उसके घरमें भलीभाँति स्थिर होकर लक्ष्मी निवास करती हैं—

एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं गृहे यस्य हि वर्तते।
तस्य गेहे वसेल्लक्ष्मीः सुस्थिरा मुनिसत्तम॥

इस प्रकार ८०वें अध्यायमें महापातकोंके नाशक तथा कल्याणकारी रुद्राक्षका संक्षेपमें वर्णन हुआ है।

पार्थिवलिङ्गार्चनसे कलियुगका प्रभाव नहीं पड़ता—इस अन्तिम अध्यायमें कलियुगमें मानवोंके स्वभावका वर्णन, भगवान् शंकरकी उपासनासे उनका परम कल्याण तथा शिवनाम-संकीर्तनकी महिमाका वर्णन समारोहपूर्वक हुआ है। श्रीमहादेवजी कलियुगका वर्णन करते हुए कहते हैं कि कलियुगमें मनुष्य धर्महीन, निरन्तर पापोंमें रत तथा सत्यसे विमुख हो जायँगे। वे नित्य परायी स्त्रीमें आसक्त, परनिन्दा तथा परद्रोहपरायण और दूसरेके धनका हरण करनेवाले होंगे। कलियुगमें वे सदैव गुरुभक्तिसे हीन, गुरुनिन्दामें रत, अपने कर्तव्यकर्मोंसे विमुख तथा धनके लोभी होंगे। इतना ही नहीं, द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) शूद्रकी तरह आचरण करनेवाले, वेद, तप, योगाभ्याससे रहित तथा कामुक और उदरपूर्ति करनेवाले

होंगे। स्त्रियाँ भी कलियुगमें पतिभक्तिसे हीन, भ्रष्ट तथा अपनी साससे द्वेष रखनेवाली होंगी। पृथ्वीमें अन्नकी उपज कम होगी, मनुष्य अन्नरहित होंगे। प्रजासे नित्य 'कर' ग्रहण करनेमें संलग्न राजा म्लेच्छरूप होंगे। सज्जनोंकी हानि तथा दुर्जनोंकी उन्नति होगी।[१]

इस प्रकारके घोर कलियुगमें पापीजनोंका कल्याण भगवान् शंकरकी पूजासे हो जायगा।[२] जो व्यक्ति शिवशक्तिस्वरूप भगवान् शंकरका पार्थिव लिङ्ग बनाकर संयतेन्द्रिय होकर उसका पूजन करता है, उसपर कलियुगका प्रभाव नहीं पड़ता। श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं कि मुनिश्रेष्ठ! कलियुगमें भगवान् शंकरके पूजनसे सरल कल्याणका कोई दूसरा उपाय नहीं है।

भगवान् शंकरकी आराधनामें मिट्टीके पार्थिव लिङ्गका बिल्वपत्रसे पूजन तथा बिना किसी प्रयासके गाल बजा देना सायुज्यपद प्रदान करनेवाला है। इस प्रकार अकिंचनके एकमात्र देव विश्वनाथ ही हैं। अतः कलियुगमें भगवान् शंकरकी पूजाके समान कोई अन्य पूजा नहीं है।[३]

शिवाराधनाकी महिमा—कहते हैं कि भगवान् शंकरका प्रसाद सामान्यरूपसे अग्राह्य होता है, परंतु स्वयम्भूलिङ्गके निर्माल्य (प्रसाद)-की विशेष महिमा बतायी गयी है। इस प्रसादको ग्रहण करनेवाला व्यक्ति शिवरूप हो जाता है। साथ ही भगवान् विष्णुके प्रतिरूप शालग्रामसे युक्त भगवान्का प्रसाद भी विशेष महिमायुक्त ग्राह्य है।

आगेके श्लोकोंमें भगवान् शिवके समीप नृत्य, गीत, वाद्य और भजन आदिकी विशेष महिमाका वर्णन किया गया है। महादेवजी कहते हैं—मुने! जो व्यक्ति भगवान् शंकरके समीप भक्तिपूर्वक नृत्य करता है, वह सुन्दर शिवलोकको प्राप्त कर चिरकालतक आनन्द प्राप्त करता है, जो मानव भगवान् शंकरके समीप गान करता है तथा वाद्य बजाता है, वह भगवान् शंकरके समीप रहकर उनके प्रमथगणोंका स्वामी हो जाता है। (महाभागवत ८१।२४-२५)

बिल्ववृक्षके नीचे, भगवती गङ्गामें तथा काशीमें भगवान् शंकरके पूजनका विशेष महत्त्व बताते हुए श्रीमहादेवजी कहते हैं कि जो व्यक्ति बिल्ववृक्षके नीचे भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरका पूजन करता है, वह निश्चितरूपसे हजारों अश्वमेधयज्ञोंका फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति भगवती गङ्गामें भगवान् शंकरका बिल्वपत्रसे पूजन करता है, यदि वह सैकड़ों पाप भी किया हो तब भी उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। जो श्रेष्ठ व्यक्ति काशीमें अवहेलनापूर्वक भी भगवान् शंकरकी पूजा करता है, उसे भी भगवान् महेश्वर मुक्ति प्रदान कर देते हैं।[४]

---

१. कलौ सर्वे भविष्यन्ति मानवा धर्मवर्जिताः। सदा पापरताः सर्वे सत्यधर्मपराङ्मुखाः॥
परदाररता नित्यं परद्रोहपरायणाः। परनिन्दारताश्चैव परवित्तापहारिणः॥
गुरुभक्तिविहीनाश्च गुरुनिन्दारताः सदा। स्वस्वकर्मविहीनाश्च धनलुब्धाः कलौ युगे॥
भविष्यन्ति द्विजाः सर्वे शूद्राचाररताः सदा। श्रुतिहीनास्तपोहीना योगाभ्यासविवर्जिताः॥
भविष्यन्ति कलौ वत्स शिश्नोदरपरायणाः। स्त्रियः सर्वा भविष्यन्ति पतिभक्तिविवर्जिताः॥
भ्रष्टाश्च प्रायशस्ता वै श्वश्रूद्रोहपरायणाः। अल्पसस्या वसुमती नराश्चान्नविवर्जिताः॥
करग्रहरता नित्यं राजानो म्लेच्छरूपिणः। भविष्यति सतां हानिरसतामुन्नतिः सदा॥ (महाभागवत ८१।२—८)

२- एवं घोरकलौ चापि नराणां पापचेतसाम्। मुक्तिप्रदं महादेवपूजनं मुनिसत्तम॥ (महाभागवत ८१।९)

३- मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा अयत्नसाध्यं वदनेनवाद्यम्। फलं च सायुज्यपदप्रदानं निःस्वस्य विश्वेश्वर एव देवः॥
शम्भोराराधनसमं नास्ति कर्म कलौ युगे। (महाभागवत ८१।१२-१३)

४- बिल्वमूले महादेवं यः पूजयति भक्तितः। सोऽश्वमेधसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्॥
गङ्गायां यो महादेवं बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत्। स कैवल्यमवाप्नोति कृतपापशतोऽपि चेत्॥
काश्यां यः पूजयेच्छम्भुं हेलयापि नरोत्तमः। तस्यान्ते मुक्तिदाता स महेशः स्वयमेव हि॥ (महाभागवत ८१।२७—२९)

जो व्यक्ति भगवान् शम्भुके नामोंको स्मरण करता हुआ वेद तथा शास्त्रोंमें बताये गये कर्म करता है, उसका किया हुआ कर्म अक्षय्यतम हो जाता है—

संस्मृत्य शम्भोर्नामानि यत्किंचित्कुरुते नरः।
कर्म वेदादिशास्त्रोक्तं तदक्षय्यतमं भवेत्॥

(महाभागवत ८१।३६)

'शिव, विश्वनाथ, विश्वेश, हर, गौरीपते! आप प्रसन्न हों'—इस प्रकार जो व्यक्ति एक बार भी कहता है, उसकी रक्षाके लिये उसके पीछे-पीछे अपने गणोंके साथ शीघ्र ही शूल लेकर स्वयं भगवान् शंकर दौड़ पड़ते हैं। महामते! जो व्यक्ति शिवनामस्मरण करता हुआ शरीर त्याग देता है, यदि वह सैकड़ों पाप भी किया हो, साक्षात् महेशत्वको प्राप्त कर लेता है—

शिवेति विश्वनाथेति विश्वेशेति हरेति च।
गौरीपते प्रसीदेति यो नरो भाषते सकृत्॥
तस्य संरक्षणार्थाय पृष्ठतः प्रमथैः सह।
शूलमादाय वेगेन स्वयं धावति शूलभृत्॥
शिवनाम स्मरन्मर्त्यस्त्यक्त्वा देहं महामते।
साक्षान्महेशतां याति कृतपापशतोऽपि चेत्॥

(महाभागवत ८१।३७—३९)

देवीपुराणके पाठ अथवा श्रवणका फल—

अन्तमें श्रीमहादेवजी नारदजीसे कहते हैं कि मुनिश्रेष्ठ! जो आपने पूछा, वह महापापको हरनेवाला, पुण्यदायक सभी प्रकारके मङ्गलको प्रदान करनेवाला प्रसंग मैंने आपको बता दिया। जो श्रद्धावान् व्यक्ति इसको पढ़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम पद प्राप्त करता है—

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टं मुनिसत्तम।
महापापहरं पुण्यं सर्वमङ्गलदं परम्॥
य इदं शृणुयान्मर्त्यः सश्रद्धः पठतेऽथवा।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥

(महाभागवत ८१।४१-४२)

इस प्रकार यह देवीपुराण [महाभागवत] पूर्ण हुआ। श्रीव्यासजी महाराज कहते हैं—जैमिने! यहाँ देवर्षि नारदके द्वारा पूछनेपर स्वयं भगवान् शंकरने जो बात कही है, वह महान् पुण्यप्रदायक और परम कल्याणकारी है।

इस पुराणके श्रवणसे व्यक्ति करोड़ों जन्मके सञ्चित पापोंसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है—

अप्यनेकशतं कोटिजन्मान्तरसुसंचितम्।
एतदाकर्ण्य संत्यज्य पापं मोक्षमवाप्नुयात्॥

(महाभागवत ८१।४७)



॥ श्रीहरिः ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

महाभागवत [देवीपुराण]

पहला अध्याय

श्रीसूत-शौनक-संवादमें महाभागवत [देवीपुराण]-का प्रारम्भ, महाभागवतकी रचनाके लिये श्रीवेदव्यासजीद्वारा भगवती दुर्गाकी उपासना, भगवतीका प्रकट होकर अपने चरणतलमें स्थित सहस्त्रदलकमलमें परमाक्षरोंमें उत्कीर्ण महाभागवत [देवीपुराण]-का व्यासजीको दर्शन कराना और पुनः व्यासजीद्वारा महाभागवतकी रचना

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥ १ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥

यामाराध्य विरिञ्चिरस्य जगतः स्त्रष्टा हरिः पालकः
संहर्ता गिरिशः स्वयं समभवद्ध्येया च या योगिभिः।
यामाद्यां प्रकृतिं वदन्ति मुनयस्तत्त्वार्थविज्ञाः परां
तां देवीं प्रणमामि विश्वजननीं स्वर्गापवर्गप्रदाम् ॥ ३ ॥

या स्वेच्छयास्य जगतः प्रविधाय सृष्टिं
सम्प्राप्य जन्म च तथा पतिमाप शम्भुम्।
उग्रैस्तपोभिरपि यां समवाप्य पत्नीं
शम्भुः पदं हृदि दधे परिपातु सा वः ॥ ४ ॥

एकदा नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः।
पप्रच्छुर्मुनिशार्दूलं सूतं वेदविदां वरम् ॥ ५ ॥

पुराणं साम्प्रतं ब्रूहि स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्।
विस्तृतं परमं यत्र देव्या माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६ ॥

जायते नवधा भक्तिर्यस्य संश्रवणेन वै।
दिव्यज्ञानविहीनानां नृणामपि महामते ॥ ७ ॥

॥ श्रीगणेशजीको नमस्कार है ॥

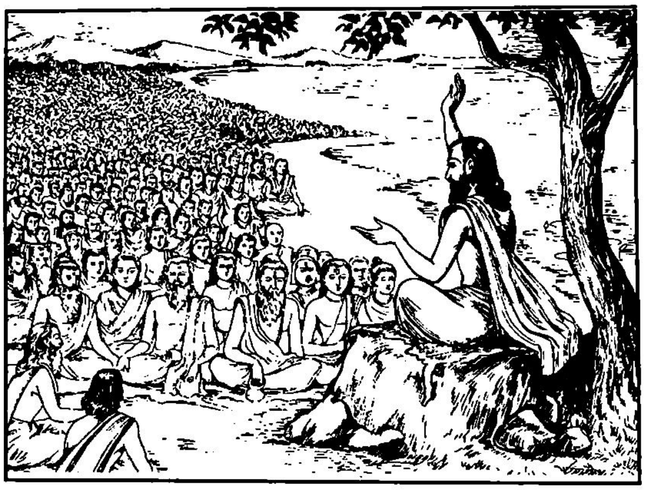
श्रीगणेशजीके चरण-कमलके परागकण, जो देवेन्द्रके मस्तकपर विराजमान मन्दार-पुष्पके परागकणोंके समान अरुणवर्णके हैं, वे विघ्नोंका नाश करें ॥ १ ॥ नारायण, नरश्रेष्ठ श्रीनर, भगवती सरस्वती और व्यासजीको नमस्कार करके जय (पुराण एवं इतिहास आदि ग्रन्थों)-का पाठ करना चाहिये ॥ २ ॥ जिनकी आराधना करके स्वयं ब्रह्माजी इस जगत्के सृजनकर्ता हुए, भगवान् विष्णु पालनकर्ता हुए तथा भगवान् शिव संहार करनेवाले हुए; योगिजन जिनका ध्यान करते हैं और तत्त्वार्थ जाननेवाले मुनिगण जिन्हें परा मूलप्रकृति कहते हैं—स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली उन जगज्जननी भगवतीको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ जिन्होंने स्वेच्छासे इस जगत्की सृष्टि करके तथा स्वयं जन्म लेकर भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया और शम्भुने कठोर तपस्यासे जिन्हें पत्नीरूपमें प्राप्तकर जिनका चरण अपने हृदयपर धारण किया, वे भगवती आप सबकी रक्षा करें ॥ ४ ॥ एक बार नैमिषारण्यमें शौनक आदि महर्षियोंने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिवर सूतजीसे पूछा—महामते! अब आप स्वर्ग तथा मोक्षका सुख प्रदान करनेवाले उस पुराणका वर्णन कीजिये, जिसमें भगवतीकी उत्तम महिमाका अत्यन्त विस्तारसे वर्णन किया गया है और जिसके यथाविधि श्रवण करनेसे दिव्य ज्ञानसे रहित मनुष्योंमें भी नवधा-भक्ति* उत्पन्न हो जाती है ॥ ५—७ ॥

---

* भगवान्की भक्तिके दो भेद हैं—वैधी और परा। वैधी भक्तिको साधनभक्ति और पराको साध्यभक्ति कहते हैं। वैधी या साधनभक्तिके पुनः नौ भेद हैं—भगवान्के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-

सूत उवाच

एतदुक्तं महेशेन नारदाय महात्मने।
पुराणं परमं गुह्यं महाभागवताह्वयम्॥ ८ ॥



तदाह भगवान्व्यासः श्रद्धया भक्तिशालिने।
स्वयं जैमिनये पूर्वं पुनस्तद्वो ब्रवीम्यहम्॥ ९ ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न प्रकाश्यं कदाचन।
एतस्य श्रवणे पाठे यत्पुण्यं लभते द्विजः॥ १० ॥
तद्वक्तुं न महेशोऽपि शक्तो वर्षशतैरपि।
किमहं कथयिष्यामि संख्याविरहितं यतः॥ ११ ॥
श्रुत्वैवं विस्मयाविष्टा ऋषयस्त्वतिहर्षिताः।
पुनरूचुर्मुनिश्रेष्ठाः सूतं वेदविदां वरम्॥ १२ ॥

ऋषय ऊचुः

यथा पुराणश्रेष्ठं तत्प्रकाशमभवत्क्षितौ।
एतदाचक्ष्व तत्त्वेन कृपया मुनिपुङ्गव॥ १३ ॥

सूत उवाच

महर्षिर्भगवान् व्यासः सर्ववेदविदां वरः।
अशेषं धर्मशास्त्राणां वक्ता ज्ञानी महामतिः॥ १४ ॥
कृत्वा त्वष्टादशैतानि पुराणानि महामुनिः।
न तृप्तिमभिलेभे स कथंचिदपि धर्मवित्॥ १५ ॥

सूतजी बोले—महाभागवत नामक इस अत्यन्त गोपनीय पुराणका वर्णन सर्वप्रथम भगवान् शिवने महात्मा नारदके लिये किया था॥ ८॥

पूर्वकालमें उसे फिर स्वयं भगवान् व्यासने भक्तिनिष्ठ महर्षि जैमिनिके लिये श्रद्धापूर्वक कहा था और फिर उसीको मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ। इसे प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये तथा कभी भी प्रकट नहीं करना चाहिये। इसके श्रवण करने तथा पाठ करनेमें द्विजको जो पुण्य प्राप्त होता है, भगवान् शिव भी सौ वर्षोंमें उस पुण्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं; तो फिर मैं उसका वर्णन कैसे कर पाऊँगा? क्योंकि वह पुण्य असीम है॥ ९—११॥ यह सुनकर सभी ऋषिगण विस्मित एवं अत्यन्त हर्षित हुए। उन श्रेष्ठ मुनियोंने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजीसे पुनः कहा—॥ १२॥

ऋषिगण बोले—मुनिवर! जिस तरहसे वह श्रेष्ठ पुराण इस पृथ्वीलोकमें प्रकाशित हुआ, आप कृपा करके इसका यथार्थरूपमें वर्णन कीजिये॥ १३॥

सूतजी बोले—समस्त धर्मशास्त्रोंके वक्ता, सभी वेदविदोंमें श्रेष्ठ, धर्मज्ञ, ज्ञानसम्पन्न, महान् बुद्धिवाले, महामुनि भगवान् महर्षि व्यासजी अठारह पुराणोंकी रचना करनेपर भी किसी प्रकारसे संतुष्ट नहीं हुए॥ १४-१५॥

अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ (श्रीमद्भागवत ७।५।२३)

महापुराणं परमं यत्परं नास्ति भूतले।
भगवत्याः परं तत्त्वं माहात्म्यं यत्र विस्तृतम्॥ १६॥

तत्कथं वर्णयिष्येऽहमिति चिन्तापरायणम्।
देव्यास्तत्त्वमविज्ञाय क्षुब्धचित्तो बभूव सः॥ १७॥

यस्यास्तत्त्वं न जानाति महाज्ञानी महेश्वरः।
यस्या हि परमं तत्त्वं ज्ञातव्यमतिदुष्करम्॥ १८॥

विचिन्त्यैवं महाबुद्धिश्चकार परमं तपः।
गत्वा हिमवतः पृष्ठं दुर्गाभक्तिपरायणः॥ १९॥

तेनैव विधिना तुष्टा शर्वाणी भक्तवत्सला।
अदृष्टरूपा चाकाशे स्थित्वैवं वाक्यमब्रवीत्॥ २०॥

यत्रासन् श्रुतयः सर्वा ब्रह्मलोके महामुने।
गच्छ तत्र परं तत्त्वं मम वेत्स्यसि निष्कलम्॥ २१॥

प्रत्यक्षतां गमिष्यामि तत्रैव श्रुतिभिः स्तुता।
तत्र सम्पादयिष्यामि तवाभिलषितं च यत्॥ २२॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्व्यासो ब्रह्मलोकं तदा ययौ।
वेदान्प्रणम्य पप्रच्छ किं ब्रह्मपदमव्ययम्॥ २३॥

ऋषेस्तद्वचनं श्रुत्वा विनयावनतस्य वै।
वेदाः प्रत्येकशः प्राहुस्तत्क्षणान्मुनिपुङ्गवम्॥ २४॥

ऋग्वेद उवाच

यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्तते।
यदाह तत्परं तत्त्वं साक्षाद्भगवती स्वयम्॥ २५॥

यजुर्वेद उवाच

या यज्ञैरखिलैः सर्वैरीश्वरेण समिज्यते।
यतः प्रमाणं हि वयं सैका भगवती स्वयम्॥ २६॥

सामवेद उवाच

ययेदं धार्यते विश्वं योगिभिर्या विचिन्त्यते।
ययेदं भासते विश्वं सैका दुर्गा जगन्मयी॥ २७॥

उन्हें चिन्ता हुई कि 'यह महापुराण परम श्रेष्ठ है, जिससे बढ़कर दूसरा कुछ भी इस पृथ्वीतलपर नहीं है। भगवतीका परम तत्त्व तथा विस्तृत माहात्म्य इसमें विद्यमान है; देवीतत्त्वसे अनभिज्ञ मैं इसका वर्णन कैसे कर सकूँगा'—ऐसा सोचकर उनके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ। महाज्ञानी महेश्वर शिव जिनके तत्त्वको भलीभाँति नहीं जानते हैं, जिनके परम तत्त्वको जान पाना अत्यन्त कठिन है—ऐसा विचारकर परम बुद्धिमान् तथा दुर्गाभक्तिपरायण व्यासजीने हिमालय पर्वतपर जाकर कठोर तपस्या की॥ १६—१९॥

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भक्तोंसे स्नेह रखनेवाली भगवती शर्वाणीने अदृश्यरूपसे आकाशमें स्थित होकर उनसे यह वचन कहा—॥ २०॥ महामुने! जहाँ ब्रह्मलोकमें समस्त श्रुतियाँ विद्यमान थीं, आप वहाँपर जाइये। वहाँ आप मेरे सम्पूर्ण परम तत्त्वको जान लेंगे। वहाँ श्रुतियोंके द्वारा मेरी स्तुति किये जानेपर मैं प्रकट होऊँगी और आपकी जो भी अभिलाषा होगी, उसे पूर्ण करूँगी॥ २१-२२॥ तदनन्तर भगवतीकी आकाशवाणी सुनकर महर्षि व्यासजी ब्रह्मलोक गये। वहाँ उन्होंने वेदोंको प्रणाम करके पूछा—अविनाशी ब्रह्मपद क्या है? विनयसे नम्र महर्षिका वह वचन सुनकर एक-एक करके सभी वेदोंने तत्काल मुनिश्रेष्ठ व्यासजीसे कहा—॥ २३-२४॥

ऋग्वेदने कहा—सभी प्राणी जिनके भीतर स्थित हैं और जिनसे सम्पूर्ण जगत् प्रकट होता है तथा जिन्हें परम तत्त्व कहा गया है; वे साक्षात् स्वयं भगवती ही हैं॥ २५॥

यजुर्वेदने कहा—सभी प्रकारके यज्ञोंसे जिनकी आराधना की जाती है, जिसके साक्षात् हम प्रमाण हैं; वे एकमात्र भगवती ही हैं॥ २६॥

सामवेदने कहा—जो इस समग्र जगत्को धारण करती हैं तथा योगिजन जिनका चिन्तन करते हैं और जिनसे यह विश्व प्रकाशित है; वे एकमात्र भगवती दुर्गा ही इस जगत्में व्याप्त हैं॥ २७॥

अथर्व उवाच

यां प्रपश्यन्ति देवेशीं भक्त्यानुग्रहिणो जनाः।
तामाहुः परमं ब्रह्म दुर्गां भगवतीं पुमान्॥ २८॥

सूत उवाच

श्रुतीरितं निशम्येत्थं व्यासः सत्यवतीसुतः।
दुर्गां भगवतीं मेने परं ब्रह्मेति निश्चितम्॥ २९॥

श्रुतयस्त्वेवमुक्त्वा ताः पुनरूचुर्महामुनिम्।
प्रत्यक्षं दर्शयिष्यामो यथास्माभिरुदाहृतम्॥ ३०॥

इत्येवमुक्त्वा श्रुतयस्तुष्टुवुः परमेश्वरीम्।
सर्वदेवमयीं शुद्धां सच्चिदानन्दविग्रहाम्॥ ३१॥

श्रुतय ऊचुः

दुर्गे विश्वमपि प्रसीद परमे सृष्ट्यादिकार्यत्रये
ब्रह्माद्याः पुरुषास्त्रयो निजगुणैस्त्वत्स्वेच्छया कल्पिताः।
नो ते कोऽपि च कल्पकोऽत्र भुवने विद्येत मातर्यतः
कः शक्तः परिवर्णितुं तव गुणाँल्लोके भवेद्दुर्गमान्॥ ३२॥

त्वामाराध्य हरिर्निहत्य समरे दैत्यान् रणे दुर्जयान्
त्रैलोक्यं परिपाति शम्भुरपि ते धृत्वा पदं वक्षसि।
त्रैलोक्यक्षयकारकं समपिबद्यत्कालकूटं विषं
किं ते वा चरितं वयं त्रिजगतां ब्रूमः परित्र्यम्बिके॥ ३३॥

या पुंसः परमस्य देहिन इह स्वीयैर्गुणैर्मायया
देहाख्यापि चिदात्मिकापि च परिस्पन्दादिशक्तिः परा।
त्वन्मायापरिमोहितास्तनुभृतो यामेव देहस्थितां
भेदज्ञानवशाद्वदन्ति पुरुषं तस्यै नमस्तेऽम्बिके॥ ३४॥

अथर्ववेदने कहा—भगवतीके कृपापात्र लोग भक्तिपूर्वक जिन देवेश्वरीका दर्शन करते हैं, उन्हीं भगवती दुर्गाको लोग परम ब्रह्म कहते हैं॥ २८॥

सूतजी बोले—वेदोंका यह कथन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीने निश्चितरूपसे मान लिया कि भगवती दुर्गा ही परम ब्रह्म हैं॥ २९॥ ऐसा कहकर उन वेदोंने महामुनि व्यासजीसे पुनः कहा—जैसा हमलोगोंने कहा है, वैसा हम प्रत्यक्ष दिखायेंगे॥ ३०॥ ऐसा कहकर सभी श्रुतियाँ सच्चिदानन्द विग्रहवाली, शुद्धस्वरूपा तथा सर्वदेवमयी परमेश्वरीका स्तवन करने लगीं॥ ३१॥

वेदोंने कहा—दुर्गे! आप सम्पूर्ण जगत्पर कृपा कीजिये। परमे! आपने ही अपने गुणोंके द्वारा स्वेच्छानुसार सृष्टि आदि तीनों कार्योंके निमित्त ब्रह्मा आदि तीनों देवोंकी रचना की है, इसलिये इस जगत्में आपको रचनेवाला कोई भी नहीं है। माता! आपके दुर्गम गुणोंका वर्णन करनेमें इस लोकमें भला कौन समर्थ हो सकता है!॥ ३२॥ भगवान् विष्णु आपकी आराधनाके प्रभावसे ही दुर्जय दैत्योंको युद्धस्थलमें मारकर तीनों लोकोंकी रक्षा करते हैं। भगवान् शिवने भी अपने हृदयपर आपका चरण धारण कर तीनों लोकोंका विनाश करनेवाले कालकूट विषका पान कर लिया था। तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली अम्बिके! हम आपके चरित्रका वर्णन कैसे कर सकते हैं!॥ ३३॥ जो अपने गुणोंसे मायाके द्वारा इस लोकमें साकार परम पुरुषके देहस्वरूपको धारण करती हैं और जो पराशक्ति ज्ञान तथा क्रियाशक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं; आपकी उस मायासे विमोहित शरीरधारी प्राणी भेदज्ञानके कारण सर्वान्तरात्माके रूपमें विराजमान आपको ही पुरुष कह देते हैं; अम्बिके! उन आप महादेवीको नमस्कार है॥ ३४॥

स्त्रीपुंस्त्वप्रमुखैरुपाधिनिचयैर्हीनं परं ब्रह्म यत्
त्वत्तो या प्रथमं बभूव जगतां सृष्टौ सिसृक्षा स्वयम्।
सा शक्तिः परमाऽपि यच्च समभून्मूर्तिद्वयं शक्तित-
स्त्वन्मायामयमेव तेन हि परं ब्रह्मापि शक्त्यात्मकम्॥ ३५॥

तोयोत्थं करकादिकं जलमयं दृष्ट्वा यथा निश्चय-
स्तोयत्वेन भवेद्ग्रहोऽप्यभिमतां तथ्यं तथैव ध्रुवम्।
ब्रह्मोत्थं सकलं विलोक्य मनसा शक्त्यात्मकं ब्रह्म त-
च्छक्तित्वेन विनिश्चितः पुरुषधीः पारं परा ब्रह्मणि॥ ३६॥

षट्चक्रेषु लसन्ति ये तनुमतां ब्रह्मादयः षट्शिवा-
स्ते प्रेता भवदाश्रयाच्च परमेशत्वं समायान्ति हि।
तस्मादीश्वरता शिवे नहि शिवे त्वय्येव विश्वाम्बिके
त्वं देवि त्रिदशैकवन्दितपदे दुर्गे प्रसीदस्व नः॥ ३७॥

स्त्री-पुरुषरूप प्रमुख उपाधिसमूहोंसे रहित जो परब्रह्म है, उसमें जगत्‌की सृष्टिके निमित्त सर्वप्रथम सृजनकी जो इच्छा हुई, वह स्वयं आपकी ही शक्तिसे हुई और वह पराशक्ति भी स्त्री-पुरुषरूप दो मूर्तियोंमें आपकी शक्तिसे ही विभक्त हुई है। इस कारण वह परब्रह्म भी मायामय शक्तिस्वरूप ही है। जिस प्रकार जलसे उत्पन्न ओले आदिको देखकर मान्यजनोंको यह जल ही है—ऐसा ध्रुव निश्चय होता है, उसी प्रकार ब्रह्मसे ही उत्पन्न इस समस्त जगत्‌को देखकर यह शक्त्यात्मक ब्रह्म ही है—ऐसा मनमें विचार होता है और पुनः परात्पर परब्रह्ममें जो पुरुषबुद्धि है, वह भी शक्तिस्वरूप ही है—ऐसा निश्चित होता है। जगदम्बिके! देहधारियोंके शरीरमें स्थित षट्चक्रोंमें* ब्रह्मादि जो छः विभूतियाँ सुशोभित होती हैं, वे प्रलयान्तमें आपके आश्रयसे ही परमेशपदको प्राप्त होती हैं। इसलिये शिवे! शिवादि देवोंमें स्वयंकी ईश्वरता नहीं है, अपितु वह तो आपमें ही है। देवि! एकमात्र आपके चरणकमल ही देवताओंके द्वारा वन्दित हैं। दुर्गे! आप हमपर प्रसन्न हों॥ ३५—३७॥

सूत उवाच

इत्येवं श्रुतिवाक्यैस्तु श्रुतिभिः संस्तुता सती।
स्वरूपं दर्शयामास जगदम्बा सनातनी॥ ३८॥

ज्योतीरूपा हि सा देवी सर्वप्राणिव्यवस्थिता।
व्यासस्य संशयं छेत्तुं स्वतन्त्राकृतिमादधे॥ ३९॥

स्फुरत्सूर्यसहस्राभां चन्द्रकोटिसमद्युतिम्।
सहस्रबाहुभिर्युक्तां दिव्यास्त्रैरभिसंवृताम्॥ ४०॥

दिव्यालंकारभूषाढ्यां दिव्यगन्धानुलेपनाम्।
सिंहपृष्ठे समारूढां कदाचिच्छववाहनाम्॥ ४१॥

सूतजी बोले—इस प्रकार श्रुतियोंके द्वारा वेदवचनोंसे स्तुत की गयीं सनातनी जगदम्बा सतीने अपना स्वरूप दिखाया॥ ३८॥ सभी प्राणियोंके भीतर स्थित रहनेवाली उन ज्योतिस्वरूपिणी भगवतीने व्यासजीके संशयका नाश करनेके लिये इच्छारूप धारण किया। उनकी आकृति हजारों सूर्योंकी प्रभासे युक्त थी, करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिसे सुशोभित हो रही थी, हजारों भुजाओंसे सम्पन्न थी, दिव्य शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित थी, दिव्य अलंकारोंसे शोभायमान थी एवं उनके शरीरपर दिव्य गन्धोंका लेप लगा हुआ था, वे सिंहकी पीठपर विराजमान थीं और कभी-कभी शवपर सवार भी दिखायी पड़ती थीं॥ ३९—४१॥

* गुदादेशमें मूलाधारचक्र, गुदा और लिङ्गके मध्यमें स्वाधिष्ठानचक्र, नाभिदेशमें मणिपूरचक्र, हृदयमें अनाहतचक्र, कण्ठमें विशुद्धाख्यचक्र तथा भ्रूमध्यमें आज्ञाचक्र स्थित है।

चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्ता नवीनजलदप्रभा।
द्विभुजा च चतुर्हस्ता तथा दशभुजा क्षणे ॥ ४२ ॥

अष्टादशभुजा क्वापि शतसंख्यभुजा तथा।
अनन्तबाहुभिर्युक्ता दिव्यरूपधरा क्षणे ॥ ४३ ॥

कदाचिद्विष्णुरूपा च वामे च कमलालया।
राधया सहिताकस्मात्कदाचित्कृष्णरूपिणी ॥ ४४ ॥

वामाङ्गाधिगता वाणी कदाचिद्ब्रह्मरूपिणी।
कदाचिच्छिवरूपा च गौरी वामाङ्गसंस्थिता ॥ ४५ ॥

एवं सर्वमयी देवी कृत्वा रूपाण्यनेकधा।
व्यासस्य संशयच्छेदं चकार ब्रह्मरूपिणी ॥ ४६ ॥

सूत उवाच

एवं रूपाणि चालोक्य पराशरसुतो मुनिः।
तां ज्ञात्वा परमं ब्रह्म जीवन्मुक्तो बभूव ह ॥ ४७ ॥

ततो भगवती देवी ज्ञात्वा तस्याभिवाञ्छितम्।
स्वपादतलसंलग्नं पङ्कजं समदर्शयत् ॥ ४८ ॥

मुनिस्तस्य सहस्रेषु दलेषु परमाक्षरम्।
महाभागवतं नाम पुराणं समलोकयत् ॥ ४९ ॥

प्रणम्य शिरसा देवीं नानास्तुतिभिरादरात्।
जगाम स्वाश्रमं भूयः कृतकृत्यः स्वयं द्विजाः ॥ ५० ॥
यथा तत्पङ्कजे दृष्टं पुराणं परमाक्षरम्।
महाभागवतं पुण्यं प्रकाशमकरोत्तथा ॥ ५१ ॥

स्नेहात्तु कथितं तेन श्रुतं चाधिगतं मया।
स्नेहाद्वः कथयिष्यामि गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
महाभागवतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ५३ ॥

एवं महाभागवतं प्रकाशमभवत्क्षितौ।
परित्राणाय लोकानां महापातकिनामपि ॥ ५४ ॥

वे भगवती चार भुजाओंसे सुशोभित थीं; उनके शरीरकी प्रभा नवीन मेघके समान थी; वे क्षण-क्षणमें कभी दो, कभी चार, कभी दस, कभी अठारह, कभी सौ तथा कभी अनन्त भुजाओंसे युक्त होकर दिव्य रूप धारण कर लेती थीं ॥ ४२-४३ ॥ वे कभी विष्णुरूपमें होकर उनके वामभागमें लक्ष्मीका रूप धारण करके विराजमान दिखायी पड़ती थीं, कभी राधासहित कृष्णके रूपमें हो जाती थीं, कभी स्वयं ब्रह्माका रूप धारण करके उनके वामभागमें सरस्वतीके रूपमें दृष्टिगत होती थीं और कभी शिवका रूप धारण कर उनके वामभागमें गौरीरूपसे स्थित हो जाती थीं। इस प्रकार उन सर्वव्यापिनी ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीने अनेक प्रकारके रूप धारण कर व्यासजीका संशय दूर कर दिया ॥ ४४—४६ ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार पराशरपुत्र व्यासजी भगवतीका दर्शन करके उन्हें परम ब्रह्मके रूपमें जानकर जीवन्मुक्त हो गये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर भगवतीने उनकी अभिलाषा जानकर उन्हें अपने चरणतलमें स्थित कमलके दर्शन कराये। मुनि व्यासजीने उस कमलके हजार दलोंमें परमाक्षरस्वरूप महाभागवत नामक पुराणको देखा। द्विजो! तब सिर झुकाकर स्तुति करते हुए देवीको सादर प्रणाम करके कृतकृत्य होकर वे महर्षि व्यासजी अपने आश्रम चले गये ॥ ४८—५० ॥

उन्होंने भगवतीके चरणमें स्थित कमलमें परमाक्षर-स्वरूप पवित्र महाभागवतपुराणका जिस रूपमें दर्शन किया था, उसी रूपमें उसे प्रकाशित किया। उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक मुझे वह पुराण सुनाया और मैंने उसे सुना तथा सम्यक् रूपसे हृदयमें धारण किया। अब मैं स्नेहके कारण आपलोगोंसे उस पुराणका वर्णन करूँगा; आपलोग प्रयत्नपूर्वक इसे गुप्त रखियेगा ॥ ५१-५२ ॥ हजारों अश्वमेधयज्ञ तथा सैकड़ों वाजपेययज्ञ इस महाभागवतपुराणकी सोलहवीं कलाके भी तुल्य नहीं हैं। इस प्रकार महापातकी प्राणियोंकी भी रक्षाके लिये इस भूलोकमें महाभागवतपुराण प्रकाशित हुआ ॥ ५३-५४ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीसूतशौनकवाक्ये महाभागवतप्रकाशनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीसूत-शौनक-वाक्यमें 'महाभागवतप्रकाशन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

महामुनि जैमिनिद्वारा श्रीवेदव्यासजीसे शिव-नारद-संवादके रूपमें वर्णित देवीके माहात्म्यवाले महाभागवतको सुनानेकी प्रार्थना करना

सूत उवाच

श्रुत्वा बहुपुराणानि जैमिनिर्मुनिपुङ्गवः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ व्यासं पप्रच्छ सादरम्॥ १॥

जैमिनिरुवाच

सर्ववेदविदां श्रेष्ठ नमस्ते मुनिपुङ्गव।
त्वत्तोऽधिकतरो लोके वक्ता नास्ति महामते॥ २॥

श्रुत्वा तव मुखाम्भोजे कथां पुण्यतमां मुने।
कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि न संशयः॥ ३॥

अथान्यच्छ्रोतुमिच्छामि चिरं यन्मे हृदि स्थितम्।
जगतामादिभूता या दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी॥ ४॥

त्रैलोक्यजननी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्याः पादाम्बुजद्वन्द्वं दधद्धृदयपङ्कजे॥ ५॥

विश्वेशः शवरूपेण ब्रह्मादीनां च दुर्लभम्।
तस्या अतुलमाहात्म्यं संक्षेपेण त्वयोदितम्॥ ६॥

न तृप्तिस्तेन जाता मे इदानीं विस्तरेण तु।
कथयस्व महाभाग नमस्ते मुनिपुङ्गव॥ ७॥

दुर्लभं मानुषं देहं बहुजन्मशतात्परम्।
प्राप्य तन्न श्रुतं येन विफलं तस्य जीवनम्॥ ८॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः।
प्रशंस्य मुनिशार्दूलं जैमिनिं प्रत्युवाच तम्॥ ९॥

व्यास उवाच

साधु साधु महाबुद्धे जैमिने भक्तिमानसि।
ज्ञानवानसि हे वत्स भद्रं पृच्छसि साम्प्रतम्॥ १०॥

सूतजी बोले—बहुत-से पौराणिक आख्यानोंका श्रवण कर लेनेके बाद मुनिश्रेष्ठ जैमिनिने भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर व्यासजीको प्रणाम करके उनसे आदरपूर्वक पूछा॥ १॥

जैमिनि बोले—समस्त वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिवर! आपको नमस्कार है। महामते! इस लोकमें आपसे बढ़कर वक्ता और कोई नहीं है॥ २॥ मुने! आपके मुखारविन्दसे पुण्यमयी कथा सुनकर मैं कृतार्थ हो गया हूँ, कृतार्थ हो गया हूँ, कृतार्थ हो गया हूँ; इसमें संदेह नहीं है॥ ३॥ अब एक दूसरी बात जो मेरे मनमें चिरकालसे स्थित है, उसके विषयमें सुनना चाहता हूँ। जगत्के आदिमें उत्पन्न, भक्तोंके दुर्गम कष्टोंको दूर करनेवाली, तीनों लोकोंकी माता, नित्यस्वरूपा, सच्चिदानन्दस्वरूपिणी जो भगवती दुर्गा हैं; ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ जिनके दोनों चरणारविन्दोंको अपने हृदयकमलपर धारण करते हुए विश्वेश्वर शिव शवरूपसे स्थित हैं, उनके अनुपम माहात्म्यका आपने जो संक्षेपमें वर्णन किया है, उससे मेरी तृप्ति नहीं हुई है। अतः महाभाग! अब आप उसका विस्तारसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये। मुनिश्रेष्ठ! आपको नमस्कार है॥ ४—७॥ यह मनुष्य-शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। अनेक सैकड़ों जन्मोंके बाद इसे प्राप्तकर जिसने उस भगवती-माहात्म्यका श्रवण नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है॥ ८॥ उनका वह वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीने मुनिवर जैमिनिकी प्रशंसा करके उनसे कहा॥ ९॥

व्यासजी बोले—महामति! जैमिनि! आप परम भक्ति तथा ज्ञानसे युक्त हैं। वत्स! आपने इस समय बड़ी ही कल्याणप्रद बात पूछी है; इसके लिये आप साधुवादके पात्र हैं॥ १०॥



यच्छ्रुत्वा न पुनर्जन्म लभन्ते मनुजा भुवि।
महापातकिनो मर्त्या भक्तिधर्मविवर्जिताः ॥ ११ ॥
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महत्यादिपापतः।
तां श्रोतुमिच्छसे यस्मात्तस्मात्त्वं भाग्यवानसि ॥ १२ ॥
तावत्सर्वाणि पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि।
यावन्न दुर्गाचरितं भवेत्कर्णगतं मुने ॥ १३ ॥
कृतपापशतोऽप्येतच्छृणोति यदि मानवः।
तं दृष्ट्वा यमराड् दण्डं त्यक्त्वा पतति पादयोः ॥ १४ ॥
माहात्म्यमतुलं तस्याः कः शक्तः कथितुं मुने।
शिवोऽपि पञ्चभिर्वक्त्रैर्यद्वक्तुं न शशाक ह ॥ १५ ॥
शम्भुर्वाराणसीक्षेत्रे मुमुक्षूणां नृणां स्वयम्।
तस्या एव महामन्त्रं यमस्मै गुरुणेरितम् ॥ १६ ॥
स्वयं तु तरसागत्य तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।
कर्णे ब्रुवन्महामोक्षं निर्वाणाख्यं प्रयच्छति ॥ १७ ॥
सर्वेषामेव मन्त्राणां निर्वाणपददायिनी।
सैका हि बीजं विप्रर्षे जैमिने मोक्षदायिनी ॥ १८ ॥
तत्रत्यानां समस्तानां मन्त्राणां तां महामते।
वेदाः प्राहुरधिष्ठात्रीं देवतां मोक्षदायिनीम् ॥ १९ ॥
शशका मशकाद्याश्च ये चान्ये प्राणिनो भुवि।
तेषां मोक्षप्रदानाय शम्भुर्वाराणसीपुरे ॥ २० ॥
दुर्गेति तारकं ब्रह्म स्वयं कर्णे प्रयच्छति।
शृणुष्वावहितस्तत्ते जैमिने मुनिसत्तम ॥ २१ ॥
वक्ष्ये माहात्म्यमतुलं दुर्गायास्त्वतिविस्तरात्।
शिवनारदसंवादं महापातकनाशनम् ॥ २२ ॥

जिसका श्रवण करके भक्ति और धर्मसे शून्य महान् पापी मनुष्योंका भी इस लोकमें पुनर्जन्म नहीं होता और जिसे सुनकर पापी मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे भी छूट जाता है, उस कथाको आप सुनना चाहते हैं; अतः आप परम भाग्यशाली हैं ॥ ११-१२ ॥ मुने! ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप भी तभीतक मनुष्यको ग्रस्त किये रहते हैं, जबतक भगवतीका चरित्र उसके कानमें पड़ नहीं जाता है। यदि सैकड़ों पाप किया हुआ मनुष्य भी इस दुर्गाचरित्रका श्रवण करता है तो उसे देखकर यमराज भी अपना दण्ड छोड़कर उसके चरणोंपर गिर पड़ते हैं ॥ १३-१४ ॥

मुने! उन भगवतीके अतुलनीय माहात्म्यको बता सकनेमें भला कौन समर्थ है? जिस माहात्म्यका अपने पाँच मुखोंसे भगवान् शंकर भी वर्णन नहीं कर सके हैं ॥ १५ ॥ वाराणसीक्षेत्रमें भगवान् शिव स्वयं उन भगवतीका ही ब्रह्मसंज्ञक तारक महामन्त्र जो गुरुकृपासे मुझे प्राप्त हुआ, उसे तत्परतापूर्वक आकर मुमुक्षुजनोंके कानमें कहते हुए उन्हें निर्वाण नामक महामोक्षपद प्रदान करते हैं। ब्रह्मर्षि जैमिनि! मोक्ष तथा निर्वाणपद प्रदान करनेवाली वे भगवती सभी मन्त्रोंकी एकमात्र बीजस्वरूपिणी हैं। महामते! सभी वेद मोक्ष प्रदान करनेवाली उन भगवतीको वहाँके समस्त मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवता कहते हैं ॥ १६—१९ ॥

शशक (खरगोश), मशक (मच्छर) आदि तथा और भी जो अन्य प्राणी इस पृथ्वीपर हैं, उन्हें मोक्ष देनेके लिये भगवान् शिव वाराणसीपुरीमें 'दुर्गा'—यह तारक मन्त्र कानमें स्वयं प्रदान करते हैं। मुनिश्रेष्ठ जैमिनि! एकाग्रचित्त होकर आप उसे सुनिये ॥ २०-२१ ॥

मैं शिव-नारद-संवादरूप महान् पापोंका नाश करनेवाले अतुलनीय दुर्गामाहात्म्यका विशेष विस्तारके साथ वर्णन करूँगा ॥ २२ ॥

मन्दरस्य गिरेः पृष्ठे सर्वे देवाः समागताः।
ऋषयश्च सगन्धर्वाः सर्वे तत्र समागताः॥ २३॥

तस्मिन् गिरिवरे रम्ये नानावृक्षसमाकुले।
सुगन्धिकुसुमोत्फुल्लगन्धामोदितदिङ्मुखे॥ २४॥

सुमेरुशृङ्गसंकाशे पृष्ठे मन्दरपर्वते।
उपविष्टं महादेवं महर्षिर्नारदो मुनिः॥ २५॥

कृष्णं विलोक्य पप्रच्छ प्राञ्जलिर्विनयान्वितः।

नारद उवाच

त्रिजगद्वन्द्य देवेश भक्तानुग्रहकारक॥ २६॥

त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः शुद्धात्मा ब्रह्मसंज्ञकः।
त्वमेव वस्तुनस्तत्त्वं जानासि परमेश्वर॥ २७॥

न जानन्त्यपरे देवा ऋषयो वा जगत्पते।
त्रिजगत्पावनीं गङ्गां मूर्ध्ना वहसि सादरम्॥ २८॥

शशाङ्कं रम्यमालोक्य तच्छिरोभूषणं कृतम्।
त्वं मे कथय सर्वज्ञ यत्त्वां पृच्छामि साम्प्रतम्॥ २९॥

युष्माकं तपसोपास्यं दैवतं किं महेश्वर।
त्वं यथा भगवान् विष्णुर्ब्रह्मापि जगतां पतिः॥ ३०॥

एतान् सम्भजते भक्त्या जायते परमं पदम्।
यादृक् त्वद्वचसा लोके शक्तो वक्तुं न भूतले॥ ३१॥

एवंविधानां भवतां यदुपास्यं हि दैवतम्।
तदवश्यं मया ज्ञेयं ब्रूहि मे तत्कृपामय॥ ३२॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा महादेवः पुनः पुनः।
विचार्य तमुवाचेदं जैमिने मुनिपुङ्गव॥ ३३॥

श्रीमहादेव उवाच

यत्त्वया प्रस्तुतं तात तत्तु गुह्यतमं परम्।
न प्रकाश्यं कथं वत्स वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव॥ ३४॥

एक समयकी बात है—सभी देवतागण मन्दर पर्वतपर एकत्र हुए थे। वहाँपर गन्धर्वोंसहित सभी ऋषिगण भी आये हुए थे। अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त, सुगन्धित और विकसित पुष्पोंकी गन्धसे दिशाओंको सुरभित करनेवाले और सुमेरुशिखरके समान प्रतीत होनेवाले उस रमणीक गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलके पृष्ठपर बैठे हुए भगवान् कृष्ण और भगवान् शिवको देखकर महर्षि नारद मुनिने हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक भगवान् शिवसे पूछा॥ २३—२५$\frac{1}{2}$॥

नारदजी बोले—भक्तोंपर कृपा करनेवाले तथा तीनों लोकोंमें वन्दनीय देवेश! ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और विशुद्ध आत्मावाले आप ही ब्रह्म नामसे जाने जाते हैं। परमेश्वर! केवल आप ही वास्तविक तत्त्वको जानते हैं। जगन्नाथ! अन्य देवता या ऋषि उस तत्त्वको नहीं जानते हैं। आप तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली गङ्गाजीको आदरपूर्वक अपने सिरपर धारण करते हैं और चन्द्रमाको अत्यन्त सुन्दर देखकर आपने उन्हें अपने सिरका आभूषण बनाया है। सर्वज्ञ! इस समय मैं आपसे जो पूछ रहा हूँ, उसे आप मुझे बतानेकी कृपा करें॥ २६—२९॥ महेश्वर! स्वयं आप, भगवान् विष्णु और जगत्पति ब्रह्मा—इन देवताओंकी भक्तिपूर्वक उपासना करनेसे परम पद प्राप्त होता है तो फिर तपके द्वारा आपलोगोंका उपास्य देवता कौन है? आपके समान इस बातको वाणीसे बतानेमें इस भूमण्डलमें और कोई भी समर्थ नहीं है। कृपामूर्ति महेश्वर! इस प्रकारके प्रभाववाले आपलोगोंके जो उपास्य देवता हैं, उनके विषयमें मुझे भी अवश्य जान लेना चाहिये। अतः कृपापूर्वक मुझे बताइये॥ ३०—३२॥

व्यासजी बोले—मुनिश्रेष्ठ जैमिनि! इस प्रकार उन देवर्षि नारदका वचन सुनकर और उसपर बार-बार विचार करके महादेवजीने उनसे यह कहा॥ ३३॥

श्रीमहादेवजी बोले—तात! आपने जो बात पूछी है, वह तो परम गोपनीय है। वत्स! ऐसी बात भला आपको बतानेयोग्य क्यों नहीं है? मुनिश्रेष्ठ! मैं आपको बताऊँगा॥ ३४॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो देवदेवेन नारदस्तत्र संस्थितः।
प्राञ्जलिर्जगतां नाथं प्राह नारायणं विभुम्॥ ३५॥
भक्तानुकम्पी भगवान्देवदेवो महेश्वरः।
वक्तुं कृपणतां धत्ते समुपास्यं स्वदैवतम्॥ ३६॥
त्वमाज्ञापय देवेश प्रणतानां कृपाकर।

श्रीनारायण उवाच

किं कार्यं तेन ते तात युष्माकं देवता वयम्॥ ३७॥
अस्मानेव समाराध्य परं पदमवाप्स्यसि।
अस्माकं दैवतेनात्र भवतः किं प्रयोजनम्॥ ३८॥

व्यास उवाच

एवं तस्यापि तद्वाक्यमाकर्ण्य मुनिसत्तमः।
तुष्टाव स्तुतिवाक्यैस्तु शिवविष्णू कृताञ्जलिः॥ ३९॥

नारद उवाच

प्रसीद विश्वेश्वर देवदेव
प्रसीद नारायण वासुदेव।
प्रसीद सर्पाभरणोज्ज्वलाङ्ग
प्रसीद मां कौस्तुभभूषिताङ्ग॥ ४०॥



प्रसीद गङ्गाधर मां शरण्य
प्रसीद चक्रायुध मां वरेण्य।
प्रसीद विश्वेश्वर मां दिगम्बर
प्रसीद विश्वेश्वर मां गदाधर॥ ४१॥
नमस्त्रिपुरनाशाय कंसासुरविघातिने।
अन्धकासुरनाशाय तृणावर्तविनाशिने॥ ४२॥
नमस्ते पञ्चवक्त्राय विष्णवे ते नमो नमः।
गरुडासनसंस्थाय वृषारूढाय ते नमः॥ ४३॥

व्यासजी बोले—देवाधिदेव शिवके ऐसा कहनेपर देवर्षि नारदजी दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये और सर्वव्यापी जगन्नाथ नारायणसे कहने लगे—भक्तोंपर कृपा करनेवाले देवाधिदेव भगवान् महेश्वर अपने उपास्य इष्टदेवके विषयमें बतानेमें कृपणता कर रहे हैं, अतः शरणागतोंपर कृपा करनेवाले देवेश! आप उनसे कहनेकी कृपा करें॥ ३५-३६½॥

श्रीनारायण बोले—तात! उस देवतासे आपका क्या प्रयोजन? आप सबके देवता तो हम हैं ही। हमारी ही आराधना करके आप परम पद प्राप्त कर लेंगे, अतः हम सबके देवतासे आपका क्या प्रयोजन?॥ ३७-३८॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन नारायणका भी वह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद हाथ जोड़कर स्तुतिवचनोंसे शिव तथा विष्णुका स्तवन करने लगे॥ ३९॥

नारदजी बोले—विश्वेश्वर! देवदेव! प्रसन्न होइये। नारायण! वासुदेव! प्रसन्न होइये। अपने शुभ्र शरीरके अङ्गोंमें सर्परूपी आभूषण धारण करनेवाले शिव! प्रसन्न होइये। कौस्तुभमणिसे विभूषित शरीरवाले नारायण! मुझपर प्रसन्न होइये॥ ४०॥ शरण देनेवाले गङ्गाधर! मुझपर प्रसन्न होइये। सुदर्शन चक्रको धारण करनेवाले पूजनीय विष्णो! मुझपर प्रसन्न होइये। दिगम्बररूप विश्वेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये। गदा धारण करनेवाले विश्वेश्वर! मुझपर प्रसन्न होइये॥ ४१॥

त्रिपुरका वध करनेवाले शिवको नमस्कार है। असुर कंसका वध करनेवाले [कृष्णरूप] विष्णुको नमस्कार है। अन्धकासुरका विनाश करनेवाले शिवको नमस्कार है और तृणावर्तका संहार करनेवाले विष्णुको नमस्कार है। पाँच मुखवाले आप शिवको नमस्कार है। विष्णुको बार-बार नमस्कार है। गरुड-आसनपर विराजमान आप विष्णुको तथा नन्दीपर आरूढ आप शिवको नमस्कार है॥ ४२-४३॥

व्यास उवाच

इत्येवं संस्तुवन्तं तं दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमम्।
विलोक्य भगवान् विष्णुः प्राह देवं महेश्वरम्॥ ४४॥

विष्णुरुवाच

भक्तोऽयं ज्ञानवान् देव विनीतो ब्रह्मणः सुतः।
अनुग्राह्यस्त्वयावश्यं यतस्त्वं भक्तवत्सलः॥ ४५॥

व्यास उवाच

महेश्वरोऽपि तेनोक्तं वाक्यमाकर्ण्य विष्णुना।
भद्रं मेऽवहितं प्राह प्रणतानां कृपाकरः॥ ४६॥

ततः पुनर्महादेवं महाज्ञानी महामतिः।
नारदः परिपप्रच्छ देवदेवं कृपानिधिम्॥ ४७॥

नारद उवाच

त्वामुपास्य तथा विष्णुं ब्रह्माणं च जगत्पतिम्।
इन्द्रादयो लोकपालाः सम्प्रापुः परमं पदम्॥ ४८॥

युष्माकं यत्समाराध्यं दैवतं पूर्णमव्ययम्।
तन्मे कथय देवेश यदि ते मय्यनुग्रहः॥ ४९॥

एतादृशं महैश्वर्यं यत्प्रसादाच्च लब्धवान्।
तच्चेद्वदसि मे देव तदा सोऽनुग्रहो मयि॥ ५०॥

व्यास उवाच

इत्येवं प्रतिभाषितो मुनिवरं श्रीनारदं शंकरः
कृत्वादौ प्रणिधानमेव सततं योगीश्वरं सादरम्।
श्रीदुर्गाचरणाम्बुजं हृदि मुहुर्ध्यायन्यदेकं परं
पूर्णं ब्रह्म तदेव निर्मलमतिर्वक्तुं समारब्धवान्॥ ५१॥

व्यासजी बोले—परम पूज्य उन देवर्षि नारदको इस प्रकार स्तुति करते हुए देखकर महादेवजीकी ओर दृष्टि करके भगवान् विष्णुने कहा॥ ४४॥

विष्णुजी बोले—देव! ये ब्रह्मापुत्र देवर्षि नारद परम भक्त, ज्ञानी एवं विनम्र स्वभाववाले हैं। आप भक्तवत्सल हैं, इसलिये आपको इनपर अवश्य ही कृपा करनी चाहिये॥ ४५॥

व्यासजी बोले—भगवान् शिवने भी भगवान् विष्णुद्वारा कही हुई बातको सुनकर कहा—आप शरणागतोंपर कृपा करनेवाले हैं और आपने मेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी बात कही है॥ ४६॥ तत्पश्चात् महान् ज्ञानी और बुद्धिमान् नारदने कृपासिन्धु देवाधिदेव महादेवसे पुनः पूछा॥ ४७॥

नारदजी बोले—इन्द्र आदि समस्त लोकपालोंने आप (शिव), विष्णु तथा जगत्पति ब्रह्माकी उपासना करके श्रेष्ठ पद प्राप्त किया है। देवेश! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह हो तो आपलोग जिस पूर्ण तथा अविनाशी देवताकी आराधना करते हैं; उसके विषयमें मुझे बताइये। देव! जिसकी कृपासे आपने ऐसा महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया है; उस देवताके विषयमें यदि आप मुझे बताते हैं तो मेरे ऊपर यह आपका अनुग्रह होगा॥ ४८—५०॥

व्यासजी बोले—योगीश्वर मुनिवर नारदजीद्वारा इस प्रकार प्रार्थना करनेपर निर्मलमति भगवान् शंकर पहले तो सतत समाधिस्थ हो गये। पुनः भगवती श्रीदुर्गाके चरणकमलका अपने हृदयमें ध्यान करते हुए और उन्हें ही एकमात्र पूर्णब्रह्म जानकर उन्होंने आदरपूर्वक कहना प्रारम्भ किया॥ ५१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीव्यासजैमिनिसंवादे व्रतोपासनावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीव्यास-जैमिनि-संवादमें 'व्रतोपासनावर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

देवीमाहात्म्य-वर्णन, देवीद्वारा त्रिदेवोंको सृष्ट्यादिके कार्योंमें नियुक्त करना, आदिशक्तिका गङ्गा आदि पाँच रूपोंमें विभक्त होना, ब्रह्माजीके शरीरसे मनु तथा शतरूपाका प्रादुर्भाव, दक्षकी कन्याओंसे सृष्टिका विस्तार, आदिशक्तिद्वारा भगवान् शंकरको भार्यारूपमें प्राप्त होनेका वर प्रदान करना

श्रीमहादेव उवाच

या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी।
सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च॥ १॥

अयमेको यथा ब्रह्मा तथा चायं जनार्दनः।
तथा महेश्वरश्चाहं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः॥ २॥

एवं हि कोटिकीटानां नानाब्रह्माण्डवासिनाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्री सा महेश्वरी॥ ३॥

अरूपा सा महादेवी लीलया देहधारिणी।
तयैतत्सृज्यते विश्वं तयैव परिपाल्यते॥ ४॥

विनाश्यते तयैवान्ते मोह्यते च तया जगत्।
सैव स्वलीलया पूर्णा दक्षकन्याभवत्पुरा॥ ५॥

तथा हिमवतः पुत्री तथा लक्ष्मी सरस्वती।
अंशेन विष्णोर्वनिता सावित्री ब्रह्मणस्तथा॥ ६॥

नारद उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश मयि प्रीतिरनुत्तमा।
तदा कथय मे नाथ विस्तरेण महामते॥ ७॥

यथा सा प्रकृतिः पूर्णा दक्षकन्याभवत्पुरा।
यथा च तां हरः प्राप पत्नीं ब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ ८॥

पुनश्च सा यथा जाता हिमालयगृहे सुता।
तथा भूयोऽपि तां प्राप महादेवस्त्रिलोचनः॥ ९॥

यथा सा सुषुवे पुत्रौ महाबलपराक्रमौ।
कार्तिकेयगणेशौ द्वौ षडाननगजाननौ॥ १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—जो शुद्ध, शाश्वत और मूलप्रकृतिस्वरूपिणी जगदम्बा हैं; वे ही साक्षात् परब्रह्म हैं और वे ही हमारी देवता भी हैं॥ १॥ जिस प्रकार ये ब्रह्मा, ये विष्णु और स्वयं मैं शिव इस जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहारके कार्यमें नियुक्त हैं; उसी प्रकार अनेक ब्रह्माण्डोंमें निवास करनेवाले करोड़ों प्राणियोंके सृजन, पालन और संहारका विधान करनेवाली वे महेश्वरी ही हैं॥ २-३॥ निराकार रहते हुए वे महादेवी अपनी लीलासे देह धारण करती हैं। उन्हींके द्वारा इस विश्वका सृजन किया जाता है, पालन किया जाता है और अन्तमें उन्हींके द्वारा संहार किया जाता है। उनके द्वारा ही यह जगत् मोहग्रस्त होता है। प्राचीन कालमें वे पूर्णा भगवती ही अपनी लीलासे दक्षकी कन्याके रूपमें, हिमवान्‌की पुत्रीके रूपमें तथा अपने ही अंशसे विष्णुभार्या लक्ष्मीके रूपमें एवं ब्रह्माकी भार्या सावित्री तथा सरस्वतीके रूपमें प्रकट हुईं॥ ४—६॥

नारदजी बोले—देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरे प्रति आपकी उत्तम प्रीति है; तब नाथ! महामते! मुझे विस्तारपूर्वक वह सब प्रसंग बताइये, जिस प्रकार वे प्रकृतिरूपा पूर्णा भगवती प्राचीन कालमें दक्षकन्याके रूपमें अवतरित हुईं और जिस प्रकार भगवान् शिवने उन ब्रह्मस्वरूपिणीको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया; जिस प्रकार वे हिमालयके घरमें पुनः पुत्री होकर उत्पन्न हुईं और फिर त्रिनेत्र महादेवने उन्हें पत्नीके रूपमें प्राप्त किया और जिस प्रकार उन्होंने छः मुखोंवाले कार्तिकेय तथा गजानन गणेश—इन दो महान् बलशाली और पराक्रमी पुत्रोंको जन्म दिया॥ ७—१०॥

श्रीमहादेव उवाच

आसीज्जगदिदं पूर्वमनर्कशशितारकम्।
अहोरात्रादिरहितमनग्निकमदिङ्मुखम् ॥ ११ ॥

शब्दस्पर्शादिरहितमन्यत्तेजोविवर्जितम् ।
तत्तद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्या सदेकं प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥

स्थिता प्रकृतिरेका सा सच्चिदानन्दविग्रहा।
शुद्धज्ञानमयी नित्या वाचातीता सुनिष्कला ॥ १३ ॥

दुर्गम्या योगिभिः सर्वव्यापिनी निरुपद्रवा।
नित्यानन्दमयी सूक्ष्मा गुरुत्वादिभिरुज्झिता ॥ १४ ॥

सृष्टीच्छा समभूत्तस्या मुदा सद्यस्तदैव हि।
अरूपापि दधे रूपं स्वेच्छया प्रकृतिः परा ॥ १५ ॥

भिन्नाञ्जननिभाचारुफुल्लाम्भोजवरानना ।
चतुर्भुजा रक्तनेत्रा मुक्तकेशी दिगम्बरा ॥ १६ ॥

पीनोत्तुङ्गस्तनी भामा सिंहपृष्ठनिषेदुषी।
ततस्तु स्वेच्छया स्वीयै रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥ १७ ॥

ससर्ज पुरुषं सद्यश्चैतन्यपरिवर्जितम्।
तं जातं पुरुषं वीक्ष्य सत्त्वादित्रिगुणात्मकम्॥ १८ ॥

सिसृक्षामात्मनस्तस्मिन् समाक्रामयदिच्छया।
ततः स शक्तिमान् दृष्ट्वा पुत्रोऽयं गुणत्रयैः ॥ १९ ॥

त्रयो बभूवुः पुरुषा ब्रह्मविष्णुशिवाह्वयाः ।
तथापि जायते नैव सृष्टिरेवं विलोक्य सा ॥ २० ॥

द्विधा चक्रे पुमांसं तं जीवं च परमं तथा।
त्रिधा चकार चात्मानं स्वेच्छया प्रकृतिः स्वयम्॥ २१ ॥

माया विद्या च परमा चेत्येवं सा त्रिधाभवत्।

श्रीमहादेवजी बोले—पहले यह जगत् सूर्य, चन्द्रमा, तारों, दिन-रात, अग्नि, दिशा, शब्द, स्पर्श आदिसे तथा अन्य किसी प्रकारके तेजसे रहित था। उस समय श्रुतिके द्वारा एकमात्र जिनका प्रतिपादन किया जाता है, ब्रह्मस्वरूपिणी वे भगवती विद्यमान थीं। सच्चिदानन्द-विग्रहवाली वे प्रकृतिरूपा भगवती शुद्ध ज्ञानसे युक्त, नित्य, वाणीसे परे, निरवयव, योगियोंके द्वारा कठिनतासे प्राप्त होनेवाली, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली, उपद्रवोंसे रहित, नित्यानन्दस्वरूपिणी तथा सूक्ष्म और गुरुत्व आदि गुणोंसे परे हैं ॥ ११—१४ ॥ उन भगवतीकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई। उसी समय रूपरहित होते हुए भी प्रकृतिस्वरूपिणी उन पराम्बाने अपनी इच्छासे शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक रूप धारण कर लिया। उनका विग्रह निखरे हुए काजलके समान था, विकसित कमलके समान सुन्दर मुख था, चार भुजाएँ थीं, नेत्र लालवर्णके थे, बाल खुले हुए थे और दिशारूपी वस्त्रसे सुशोभित, स्थूल तथा उन्नत स्तनधारिणी ज्योतिर्मयी वे सिंहकी पीठपर विराजमान थीं ॥ १५-१६½ ॥ तदनन्तर उन्होंने अपनी इच्छासे अपने रजस्, सत्त्व और तमोगुणके द्वारा शीघ्र ही चैतन्यरहित एक पुरुषकी सृष्टि की। सत्त्व आदि तीनों गुणोंसे युक्त उस उत्पन्न पुरुषको देखकर भगवतीने स्वेच्छासे उस पुरुषमें सृष्टि करनेकी अपनी इच्छाका समावेश किया। यह देखकर वह शक्तिमान् पुत्र तीनों गुणोंके आश्रयसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामवाले तीन पुरुषोंके रूपमें प्रकट हो गया ॥ १७—१९½ ॥ इसपर भी सृष्टि नहीं हो रही है—ऐसा देखकर उन भगवतीने उस पुरुषको जीवात्मा और परमात्मा—इन दो रूपोंमें विभक्त कर दिया। इसके बाद वे प्रकृति अपनी इच्छासे स्वयं अपनेको भी तीन भागोंमें विभक्त कर माया, विद्या और परमा—इन तीन रूपोंमें प्रकट हो गयीं ॥ २०-२१½ ॥

माया विमोहिनी पुंसां या संसारप्रवर्तिका ॥ २२ ॥
परिस्पन्दादिशक्तिर्या पुंसां सा परमा मता।
तत्त्वज्ञानात्मिका चैव सा संसारनिवर्तिका ॥ २३ ॥
मायाकृतो हि जीवस्तां व्यपनेक्षत्तदा मुने।
तां तां समाश्रितास्तेऽपि पुरुषा विषयैषिणः ॥ २४ ॥
बभूवुर्मुनिशार्दूल मत्तास्तन्मायया तदा।
सा तृतीया परा विद्या पञ्चधा याभवत्स्वयम् ॥ २५ ॥
गङ्गा दुर्गा च सावित्री लक्ष्मीश्चैव सरस्वती।
सा प्राह प्रकृतिः पूर्णा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ २६ ॥
प्रत्यक्षगा जगद्धात्री योज्य सृष्टौ पृथक् पृथक्।
सृष्ट्यर्थं हि पुरा यूयं मया सृष्टा निजेच्छया ॥ २७ ॥
तत्कुरुध्वं महाभागा यथेच्छा जायते मम।
ब्रह्मा सृजतु भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ २८ ॥
विविधानि विचित्राणि चासंख्येयमसंयतः।
विष्णुरेव महाबाहुः करोतु प्रतिपालनम् ॥ २९ ॥
निहत्य जगतः क्षोभकारकान् बलिनां वरः।
शिवस्तमोगुणाक्रान्तः शेषे सर्वमिदं जगत् ॥ ३० ॥
नाशयिष्यति नाशेच्छा यदा मे संभविष्यति।
परस्परं च सृष्ट्यादिकार्येषु त्रिषु वै ध्रुवम् ॥ ३१ ॥
विधातव्यं हि साहाय्यं युष्माभिः पुरुषत्रयैः।
अहं च पञ्चधा भूत्वा सावित्र्याद्या वराङ्गनाः ॥ ३२ ॥
भवतां वनिता भूत्वा विहरिष्ये निजेच्छया।
तथा शंभुश्च संभूय सर्वजन्तुषु योषितः ॥ ३३ ॥
प्रसविष्यामि भूतानि विविधानि निजेच्छया।
ब्रह्मंस्त्वं मानुषीं सृष्टिं कुरुष्व मम शासनात् ॥ ३४ ॥
साम्प्रतं नान्यथा सृष्टिर्विस्तृतेयं भविष्यति।
इत्युक्त्वा तान्महाविद्या प्रकृतिः सा परात्परा ॥ ३५ ॥
स्वयमन्तर्दधे तेषां ब्रह्मादीनां च पश्यताम्।
आकर्ण्य च वचस्तस्या ब्रह्मा सृष्टिं प्रचक्रमे ॥ ३६ ॥

प्राणियोंको विमोहित करनेवाली जो शक्ति है, वही माया है और संसारको संचालित करनेवाली तथा प्राणियोंमें स्पन्दन आदिका संचार करनेवाली जो शक्ति है, वही परमा कही गयी है। वही तत्त्वज्ञानमयी तथा संसारसे मुक्ति दिलानेवाली भी है। मायाके वशीभूत जीव जब उस परमा शक्तिकी उपेक्षा करने लग गया, तब मुने! मोहात्मिका उस मायाका आश्रय ग्रहण करनेवाले वे पुरुष भी विषयोंके प्रति आसक्त होने लगे। मुनिश्रेष्ठ! उस समय वे उस मायाके प्रभावसे अत्यन्त प्रमत्त हो गये। तीसरी जो परा विद्या है, वह स्वयं गङ्गा, दुर्गा, सावित्री, लक्ष्मी और सरस्वती—इन पाँच रूपोंमें विभक्त हो गयी ॥ २२—२५½ ॥

उन साक्षात् जगत्पालिनी पूर्णा प्रकृतिने सृष्टिकार्यमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको अलग-अलग नियुक्त करके कहा—मैंने सृष्टिके निमित्त ही आपलोगोंको अपनी इच्छासे उत्पन्न किया है। अतएव महाभाग! आपलोग वैसा ही कीजिये, जैसी मेरी इच्छा है ॥ २६-२७½ ॥ ब्रह्मा अनेक प्रकारके विचित्र तथा असंख्य स्थावर और जंगम प्राणियोंकी निर्बन्धभावसे उत्पत्ति करें। विशाल भुजाओंवाले और बलशालियोंमें श्रेष्ठ विष्णु जगत्को क्षुब्ध करनेवाले दुष्टोंका संहार करते हुए सृष्टिका पालन करें और अन्तमें जब मेरी नाश करनेकी इच्छा होगी, तब तमोगुणयुक्त शिव सम्पूर्ण जगत्का नाश करेंगे। आप तीनों पुरुषोंको सृष्टि आदि तीनों कार्योंमें एक-दूसरेकी सहायता भी अवश्य करनी चाहिये ॥ २८—३१½ ॥ मैं सावित्री आदि पाँच श्रेष्ठ देवियोंके रूपोंमें विभक्त होकर आपलोगोंकी पत्नियाँ बनकर स्वेच्छापूर्वक विहार करूँगी और सभी प्राणियोंमें नारीरूप धारण कर शम्भुके सहयोगद्वारा स्वेच्छासे सभी प्राणियोंको जन्म दूँगी। ब्रह्मन्! अब आप मेरी आज्ञासे मानुषी सृष्टि कीजिये; नहीं तो इस सृष्टिका विस्तार नहीं हो पायेगा ॥ ३२—३४½ ॥ ब्रह्मा आदिसे ऐसा कहकर वे प्रकृतिस्वरूपिणी परात्पर महाविद्या उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं और उनका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने सृष्टिकार्य आरम्भ कर दिया ॥ ३५-३६ ॥

पूर्णां तां प्रकृतिं लब्धुं पत्नीभावेन संयतः।
तपसाराधितुं भक्त्या समारेभे महेश्वरः॥ ३७॥

तज्ज्ञात्वा ज्ञाननेत्रेण विष्णुः परमपूरुषः।
सोऽपि तामेव संलब्धुं तपस्तमुपाविशत्॥ ३८॥

तज्ज्ञात्वा भगवान्ब्रह्मा सृष्टिं त्यक्त्वा सुनिश्चलः।
अभिलाषेण तेनैव तपसे समुपाविशत्॥ ३९॥

एवं समाराधयतां त्रयाणां प्रकृतिः स्वयम्।
तपसस्तु परीक्षार्थं तेषामन्तिकमाययौ॥ ४०॥

कृत्वा तु भीषणां मूर्तिं ब्रह्माण्डक्षोभकारिणीम्।
तां दृष्ट्वा भयसंत्रस्तो ब्रह्माभूद्विमुखस्तदा॥ ४१॥

सापि तत्सम्मुखं प्रायात्ततोऽपि विमुखस्थितः।
एवं चापि चतुर्दिक्षु चतुर्वारं समागमत्॥ ४२॥

सोऽपि भूत्वा चतुर्वक्त्रो भीतभीतस्तदैव हि।
तपस्त्यक्त्वा भयत्रस्तः पलायनपरोऽभवत्॥ ४३॥

अथ सा प्रययौ यत्र विष्णुः परमपूरुषः।
तपश्चरति संयत्तो महाभयकरी द्रुतम्॥ ४४॥

तथा दृष्ट्वा च तां सोऽपि परं भीतस्तदाभवत्।
सहस्रशीर्षः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ ४५॥

मुद्रिताक्षस्तपस्त्यक्त्वा मग्नोऽभूज्जलमध्यतः।
एवं भग्ने च तपसि तयोः सा भीमरूपिणी॥ ४६॥

महेशसन्निधिं प्रायान्न च ध्याननिवारणे।
समर्थाभून्महेशस्य कदाचिदपि सा स्वयम्॥ ४७॥

ज्ञात्वा विज्ञानमात्रेण प्रकृतिं भीमरूपिणीम्।
परीक्षार्थं समायातां समाधौ संस्थितो हरः॥ ४८॥

तेन तुष्टा भगवती स्वयं प्रकृतिरुत्तमा।
पूर्णैव गिरिशं प्राप स्वर्गे गङ्गास्वरूपिणी॥ ४९॥

अंशेन भूत्वा सावित्री प्राक्स्वीकृतबलेन च।
पतिमाप विधिं देवी तथा लक्ष्मीः सरस्वती॥ ५०॥

भूत्वा प्राप पतिं विष्णुं निजांशेन महामते।

इधर भगवान् महेश्वर उन पूर्ण प्रकृतिको पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके लिये संयतचित्त होकर भक्तिपूर्वक तपके द्वारा आराधना करने लगे॥ ३७॥ अपने ज्ञाननेत्रसे महेश्वरको ऐसा करते देखकर वे परम पुरुष विष्णु भी उन्हींको प्राप्त करनेके निमित्त तपस्या करनेके लिये बैठ गये॥ ३८॥

यह सब जानकर भगवान् ब्रह्मा भी सृष्टि करना छोड़कर उसी अभिलाषाके साथ तपस्याहेतु निश्चल होकर बैठ गये॥ ३९॥ इस प्रकार आराधनारत उन तीनोंके तपकी परीक्षा करनेके लिये स्वयं प्रकृति ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेवाला भयंकर रूप धारण कर उनके पास आयीं। उन्हें देखकर ब्रह्माजी भयाक्रान्त हो गये और उन्होंने अपना मुख फेर लिया। वे उनके सम्मुख पुनः गयीं, तब भी ब्रह्माजी विमुख हो गये। इस प्रकार वे चारों दिशाओंमें क्रमसे चार बार गयीं। इससे अत्यन्त डरे हुए वे ब्रह्मा चार मुखवाले हो गये और भयसे संत्रस्त होकर वे तपस्या छोड़कर उसी समय वहाँसे भाग गये॥ ४०—४३॥ इसके बाद महान् भय उत्पन्न करनेवाली वे प्रकृति वहाँपर शीघ्र पहुँचीं, जहाँ परम पुरुष विष्णु एकाग्रचित्त होकर तप कर रहे थे। उन्हें देखकर हजार सिर, हजार नेत्र तथा हजार पैरोंवाले वे विष्णु भी उस समय भयभीत हो गये और तपस्या छोड़कर आँखें बंद किये हुए जलके अंदर प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार उन दोनोंकी तपस्या भङ्ग हो जानेपर भीषण रूपवाली वे प्रकृति महेशके पास गयीं, किंतु वे किसी भी तरह उनका ध्यान भङ्ग करनेमें समर्थ नहीं हो सकीं॥ ४४—४७॥ अपने विज्ञानविशेषसे भगवान् शिव भयंकर रूपवाली देवी प्रकृतिको परीक्षाके लिये आयी हुई जानकर समाधिमें ही बैठे रहे॥ ४८॥ उससे अत्यन्त प्रसन्न हुई प्रकृति-स्वरूपिणी श्रेष्ठ भगवती जो गङ्गास्वरूपसे स्वर्गमें स्थित हैं, भगवान् शिवको देवी पूर्णाके स्वरूपमें प्राप्त हुईं। उन्होंने अपनी पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार अपने अंशसे सावित्री होकर पतिरूपमें ब्रह्माजीको प्राप्त किया। महामते! इसी प्रकार उन्होंने अपने ही अंशसे लक्ष्मी होकर विष्णुको पतिरूपमें प्राप्त किया और अपने ही अंशसे सरस्वतीके भी रूपमें वे भगवती प्रतिष्ठित हुईं॥ ४९-५०½॥

अथ भग्नसमाधिस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ५१॥
सृष्ट्वा क्षित्यादिभूतानि तत्त्वानि च महामते।
ससर्ज तनयांश्चापि मानसान् दश तत्क्षणात्॥ ५२॥
मरीचिमत्रिं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा।
प्रचेतसं वसिष्ठं च नारदं च तथा भृगुम्॥ ५३॥
पुलस्त्यं सर्व एवैते दश तुल्या महामते।
ससर्ज दक्षप्रमुखान्प्रजाधीशांश्च मानवान्॥ ५४॥
संध्यां च मानसीं कन्यां कामं चापि मनोभवम्।
स्त्रीपुंसानां विमोहार्थं स्वर्गे मर्त्ये रसातले॥ ५५॥
स्वयं नियोजयामास पुरुषं कामरूपिणम्।
पौष्पांश्च सायकान्पञ्च धनुः पुष्पमयं तथा॥ ५६॥
सर्वलोकविमोहाय ददौ तस्मै प्रजापतिः।
ततो ब्रह्मा द्विधा चक्रे स्वकीयं वपुरुत्तमम्॥ ५७॥
वामार्धं शतरूपाख्या जाता स्त्री चारुरूपिणी।
दक्षिणार्धं समभवन्नाम्ना स्वायंभुवो मनुः॥ ५८॥
स तां जग्राह चार्वङ्गीं भार्यार्थे चारुहासिनीम्।
प्रविद्धां पञ्चबाणेन पञ्चभिः कुसुमायुधैः॥ ५९॥
स तस्यां शतरूपायां तिस्रः कन्याः सुतद्वयम्।
उत्पादयामास तदा मनुः स्वायंभुवो मुने॥ ६०॥
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिश्चैव कन्यकाः।
प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ देवर्षिसत्तमः॥ ६१॥
आकूतिं रुचये प्रादान्मध्यमां कर्दमाय च।
दक्षाय प्रददौ कन्यां तृतीयां चारुरूपिणीम्॥ ६२॥
कर्दमो जनयामास देवहूत्यां सुतान्नव।
अरुन्धतीप्रभृतयो वसिष्ठादिस्त्रियश्च ताः॥ ६३॥

इसके बाद महामते! समाधि भङ्ग हो जानेके अनन्तर उन लोकपितामह ब्रह्माने पृथ्वी आदि महाभूतों तथा अन्य तत्त्वों[1] की उत्पत्ति करके मरीचि, अत्रि, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, प्रचेता, वसिष्ठ, नारद, भृगु और पुलस्त्य—इन दस मानस पुत्रोंका सृजन किया। महामते! ये सभी दस पुत्र समान गुण-प्रभाववाले थे। इसके बाद उन्होंने दक्ष आदि प्रमुख प्रजापतियों तथा मनुष्योंकी उत्पत्ति की॥ ५१—५४॥ तदनन्तर उन्होंने मानसी पुत्री सन्ध्या और मनोभव कामदेवको उत्पन्न किया तथा पुनः स्वर्ग, मृत्युलोक एवं पाताललोकमें स्त्री-पुरुषोंको विमोहित करनेके लिये कामरूप उस पुरुषको स्वयं नियुक्त कर दिया। प्रजापति ब्रह्माने सभी प्राणियोंमें विमोह उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे उन्हें पुष्पमय धनुष तथा पुष्पमय पाँच बाण[2] प्रदान किये॥ ५५-५६½॥ तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने उत्तम शरीरको दो भागोंमें विभक्त किया। उनके शरीरके बायें आधे भागसे शतरूपा नामक सुन्दर रूपवाली स्त्री उत्पन्न हुई और दायें आधे भागसे स्वायम्भुव नामवाले मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने कामदेवके पाँच पुष्पबाणोंसे आहत मनोहर मुसकानयुक्त उस सुन्दर अङ्गोंवाली शतरूपाको भार्याके रूपमें ग्रहण किया॥ ५७—५९॥ मुने! तत्पश्चात् उन स्वायम्भुव मनुने उस शतरूपासे तीन कन्याएँ तथा दो पुत्र उत्पन्न किये। देवर्षिवर! वे आकूति, देवहूति और प्रसूति नामकी कन्याएँ थीं तथा प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके पुत्र थे॥ ६०-६१॥ उन्होंने आकूति नामक अपनी पुत्री रुचि प्रजापतिको, मध्यमा पुत्री देवहूति ऋषि कर्दमको तथा सुन्दर स्वरूपवाली तीसरी पुत्री प्रसूति दक्षप्रजापतिको समर्पित कर दी॥ ६२॥ कर्दमने देवहूतिसे अरुन्धती आदि नौ पुत्रियाँ उत्पन्न कीं। वे पुत्रियाँ वसिष्ठ आदि ऋषियोंकी भार्याएँ हुईं॥ ६३॥

१. पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), पाँच तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रस, रूप तथा गन्ध), अन्तःकरणचतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) तथा दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रिय तथा पाँच ज्ञानेन्द्रिय)—ये चौबीस तत्त्व हैं। पचीसवाँ तत्त्व पुरुष है।

२. अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका। नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः॥ (शब्दकल्पद्रुम)
अरविन्द (रक्तकमल), अशोक, आम्रमञ्जरी, नवमल्लिका तथा नीलोत्पल (नीलकमल)—ये कामदेवके पुष्पमय पाँच बाण हैं।

दक्षस्यापि समुद्भूताः कन्यकाश्च चतुर्दश।
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा चारिष्टा सुरसा तिमिः ॥ ६४ ॥
मनुः क्रोधवशा ताम्रा विनता कद्रुरेव च।
स्वाहा भानुमती चेति तासामाख्याः प्रकीर्तिताः ॥ ६५ ॥
तां स्वाहामग्नये प्रादात्कश्यपाय त्रयोदश।
कश्यपस्तासु पत्नीषु प्रजा नानाविधाः स्वयम् ॥ ६६ ॥
उत्पादयामास ततस्तैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
एवं ससर्ज भगवान् ब्रह्मा सर्वमिदं जगत् ॥ ६७ ॥
तं प्राह प्रकृतिर्देवी भूत्वांशेन महामते।
सावित्री यां द्विजाः सर्वे संध्यात्रयमुपासते ॥ ६८ ॥
तथांशेन समुत्पन्ना लक्ष्मीश्चापि सरस्वती।
त्रिजगत्पालकं विष्णुं पतिं प्राप स्वलीलया ॥ ६९ ॥
भवन्तौ विषयासक्तौ ब्रह्मविष्णू बभूवतुः।
शिवोऽभूत्परमो योगी साक्षात्तां प्रकृतिं पराम् ॥ ७० ॥
अन्विच्छन्पूर्णभावेन पत्नीं देवर्षिसत्तम।
तथा तपस्यतस्तस्य शम्भोः प्रकृतिरुत्तमा।
प्रसन्ना वचनं प्राह प्रत्यक्षं जगदम्बिका ॥ ७१ ॥

प्रकृतिरुवाच

किं तेऽभिलषितं शम्भो वरं तद्वरयस्व मे।
दास्यामि परमप्रीत्या तपसा समुपासिता ॥ ७२ ॥

शिव उवाच

सा पूर्वं प्रकृतिः शुद्धा यस्याः पञ्च वराङ्गनाः।
समवाप्स्यसि चास्मांस्तान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥ ७३ ॥
तत्र प्राप्तासि सावित्री भूत्वांशेन विधातरम्।
तथा विष्णुं निजांशेन भूत्वा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ ७४ ॥
किंतु मां परमा पूर्णा प्रकृतिः स्वयमेव हि।
त्वमेहि जन्म संप्राप्य कुत्रचिन्निजलीलया ॥ ७५ ॥

प्रकृतिरुवाच

पूर्णा प्रकृतिरेवाहं भविष्ये तव गेहिनी।
सम्भूय मायया चारुदेहा दक्षप्रजापतेः ॥ ७६ ॥

प्रजापति दक्षकी भी चौदह कन्याएँ हुईं। अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, तिमि, मनु, क्रोधवशा, ताम्रा, विनता, कद्रु, स्वाहा और भानुमती—ये उन कन्याओंके नाम कहे गये हैं॥ ६४-६५॥ उन्होंने उनमेंसे स्वाहा नामकी कन्या अग्निको और शेष तेरह कन्याएँ ऋषि कश्यपको प्रदान कर दीं। कश्यपने स्वयं उन पत्नियोंसे नानाविध प्रजाएँ उत्पन्न कीं। तब उन प्रजाओंसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। इस प्रकार भगवान् ब्रह्माने इस सारे संसारकी सृष्टि की॥ ६६-६७॥

तदनन्तर देवी प्रकृतिने उन ब्रह्मासे कहा—महामते! द्विजगण तीनों संध्याओंमें जिनकी उपासना करते हैं, वे सावित्री मेरे अंशसे उत्पन्न हुई हैं। वे सरस्वती तथा लक्ष्मी भी मेरे ही अंशसे उत्पन्न हुई हैं, जिन्होंने अपनी लीलासे तीनों लोकोंके पालनकर्ता विष्णुको पतिरूपमें प्राप्त किया। आप दोनों ब्रह्मा तथा विष्णु विषयासक्त हो गये॥ ६८-६९॥ देवर्षिवर! उन साक्षात् पराप्रकृतिको पूर्णभावसे पत्नीरूपमें पानेकी अभिलाषा करते हुए भी शिव परम योगी बने रहे। उस प्रकारकी तपस्यामें रत उन भगवान् शिवसे पराप्रकृति जगदम्बिकाने प्रसन्न होकर प्रत्यक्षरूपसे कहा॥ ७०-७१॥

प्रकृति बोलीं—शम्भो! आपका कौन-सा अभीष्ट वर है? मुझसे वह माँग लें। आपकी तपस्यापूर्ण उपासनासे परम प्रसन्नताको प्राप्त मैं वह वर आपको अवश्य दूँगी॥ ७२॥

शिवजी बोले—जिनसे पूर्वमें पाँच श्रेष्ठ नारियाँ प्रकट हुई थीं, वे आप विशुद्ध प्रकृति ही हम ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरको प्राप्त होंगी। उनमेंसे अपने अंशसे सावित्रीके रूपमें उत्पन्न होकर आप ब्रह्माजीको प्राप्त हुईं और अपने ही अंशसे लक्ष्मी एवं सरस्वती होकर विष्णुको प्राप्त हुई हैं, किंतु परमा पूर्णा प्रकृति आप स्वयं अपनी लीलासे कहीं जन्म लेकर मुझे प्राप्त हों॥ ७३—७५॥

प्रकृति बोलीं—दक्षप्रजापतिके यहाँ अपनी मायासे उत्पन्न होकर मनोहर शरीरवाली पूर्णा प्रकृति मैं ही आपकी भार्या बनूँगी॥ ७६॥

यदा देहाभिमानेन भविष्यति मयि त्वयि।
अनादरस्तु दक्षस्य तदांशेन विमोह्य तम्॥ ७७॥
माययैव गमिष्यामि भूयः स्वस्थानमुत्तमम्।
तदा त्वया मे विच्छेदो भविष्यति महेश्वर॥ ७८॥
तदा त्वमपि कुत्रापि नैव स्थास्यसि मां विना।
एवं हि परमा प्रीतिरावयोः सम्भविष्यति॥ ७९॥

जब दक्षके यहाँ उनके देहाभिमानसे मेरा तथा आपका अनादर होगा, तब अपने मायारूपी अंशसे उन्हें विमोहित कर मैं अपने स्थानको चली जाऊँगी। महेश्वर! उस समय आपसे मेरा वियोग हो जायगा और तब आप भी मेरे बिना कहीं भी नहीं ठहर सकेंगे। इस प्रकार हम दोनोंके बीच परम प्रीति बनी रहेगी॥ ७७—७९॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा सा महेशानं प्रकृतिः परमेश्वरी।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ हरः प्रीतमना अभूत्॥ ८०॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! वे परमेश्वरी प्रकृति महेश्वरसे ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गयीं और शिवके मनमें प्रसन्नता व्याप्त हो गयी॥ ८०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीशिवनारदसंवादे महेश्वरवरदानवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीशिव-नारद-संवादमें 'महेश्वरवरदानवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

दक्षप्रजापतिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवती शिवाका 'सती' नामसे उनकी पुत्रीके रूपमें जन्म लेना, भगवती सती एवं भगवान् शिवकी परस्पर प्रीति

श्रीमहादेव उवाच

अथैकदा जगत्स्रष्टा प्राह दक्षं प्रजापतिम्।
हर्षयन् शृणु पुत्र त्वं वक्ष्ये तव हितं वचः॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक बारकी बात है जगत्‌की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माने दक्षप्रजापतिको हर्षित करते हुए उनसे कहा—पुत्र! मैं तुम्हारे कल्याणकी एक बात बता रहा हूँ; तुम उसे सुनो॥ १॥

प्रकृतिः परमा पूर्णा शम्भुनाराधिता स्वयम्।
याचिता वनिताभावं तथेत्यङ्गीकृतं तया॥ २॥
तस्मादवश्यं कुत्रापि समुत्पन्ना महेश्वरी।
पतिमाप्स्यति सा नूनं तत्र मे नास्ति संशयः॥ ३॥

साक्षात् भगवान् शिवने परमा पूर्णा प्रकृतिकी आराधना करके तथा उन्हें भार्या बनानेके विचारसे उनसे प्रार्थना की इसपर उन प्रकृतिने वह बात स्वीकार कर ली। अतः वे महेश्वरी कहीं-न-कहीं जन्म लेकर उन शिवको पतिके रूपमें अवश्य प्राप्त करेंगी; इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है॥ २-३॥

सा यथा त्वत्सुता भूत्वा हरपत्नी भविष्यति।
तथा प्रार्थय सद्भक्त्या महोग्रतपसा च ताम्॥ ४॥
सा यस्य तनया लोके सम्भविष्यति भाग्यतः।
सफलं जीवनं तस्य धन्यास्तत्पितरोऽपि च॥ ५॥
तस्मादत्र समुद्भूतां मायां तां जगदम्बिकाम्।
पुत्रीं प्राप्य जगद्वन्द्यां स्वजन्म सफलं कुरु॥ ६॥

वे प्रकृति जिस प्रकार आपकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर शम्भुकी भार्या होवें; इसके लिये आप अति कठोर तपस्याके द्वारा भक्तिपूर्वक उनकी प्रार्थना कीजिये। वे इस लोकमें भाग्यसे जिसकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होंगी; उसका जीवन सफल हो जायगा और उसके पितृगण भी धन्य हो जायँगे। अतः इस जगत्‌में उत्पन्न मायारूपिणी लोकवन्द्या उन जगदम्बिकाको पुत्रीरूपमें प्राप्तकर आप अपना जन्म सार्थक कीजिये॥ ४—६॥

दक्ष उवाच

एवमेव पितर्नूनं यतिष्ये तव शासनात्।
यथा सा मत्सुता साक्षात्प्रकृतिः सम्भविष्यति॥ ७ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा वेधसं दक्षः प्रजापतिरतिद्रुतम्।
क्षीरोदतीरमासाद्य समाराधयदम्बिकाम्॥ ८ ॥
दिव्यवर्षसहस्राणां निनाय त्रितयं मुने।
आराधयन्भगवतीमुपवासादिभिः परैः॥ ९ ॥
तथा तपस्यतः सापि प्रत्यक्षमभवच्छिवा।
स्निग्धाञ्जननिभाचारुवरबाहुचतुष्टयैः ॥ १० ॥



खड्गाम्बुजाभयकरा नीलोत्पलदलेक्षणा।
सुचारुदशना चारुमुण्डमालाविभूषिता॥ ११ ॥
दिगम्बरा मुक्तकेशी मणिजालविभूषिता।
सिंहपृष्ठे समारूढा मध्याह्नार्कशतप्रभा॥ १२ ॥
सा प्राह दक्षं किं वत्स मत्तः प्रार्थयसि द्रुतम्।
तत्प्रीत्याहं प्रदास्यामि तव भावात्प्रजापते॥ १३ ॥

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्ना मातस्त्वं मयि दासे तवानघे।
तदा मम सुता भूत्वा जन्म प्राप्नुहि मद्गृहे॥ १४ ॥

श्रीदेव्युवाच

शम्भुना प्रार्थिता पत्नीकामेनाहं स्वयं पुरा।
सा मन्ये कुत्रचिज्जन्मेदानीमङ्गीकृतं पुरा॥ १५ ॥

दक्ष बोले—पिताजी! मैं आपकी आज्ञासे निश्चितरूपसे वैसा ही प्रयत्न करूँगा, जिससे वे साक्षात् प्रकृतिरूपा जगदम्बा मेरी पुत्रीके रूपमें जन्म लें॥ ७॥

श्रीमहादेवजी बोले—ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर दक्षप्रजापति अतिशीघ्रतासे क्षीरसागरके तटपर आकर जगदम्बाकी आराधना करने लगे। मुनिवर! उन्होंने उपवास इत्यादि तपश्चरणसे भगवतीकी आराधना करते हुए तीन हजार दिव्य वर्ष बिताये॥ ८-९॥ उस प्रकारकी तपस्यामें रत दक्षके सम्मुख भगवती शिवा प्रकट हुईं। उनका विग्रह निखरे हुए काजलके समान था तथा वे चार सुन्दर विशाल भुजाओंसे युक्त थीं। वे अपने हाथोंमें खड्ग, कमल तथा अभय मुद्रा धारण किये हुए थीं, उनके नेत्र नीलकमलके दलकी भाँति सुशोभित थे, उनके दाँत अत्यन्त मनोहर थे, वे सुन्दर मुण्डमालासे विभूषित थीं। वे दिशारूपी वस्त्र धारण किये हुए थीं, उनके बाल खुले हुए थे, वे अनेकविध मणियोंसे शोभा पा रही थीं, सिंहकी पीठपर सवार थीं और मध्याह्नकालीन सैकड़ों सूर्यकी प्रभाके समान प्रकाशमान थीं॥ १०—१२॥ उन्होंने दक्षसे कहा—वत्स! तुम मुझसे क्या याचना कर रहे हो? प्रजापते! तुम्हारे भावसे प्रसन्न होकर मैं उसे तुम्हें शीघ्र दूँगी॥ १३॥

दक्ष बोले—माता! यदि आप मुझ निष्पाप दासपर प्रसन्न हैं तो आप मेरी पुत्रीके रूपमें मेरे घरमें जन्म लीजिये॥ १४॥

श्रीदेवीजी बोलीं—मुझे पत्नीके रूपमें प्राप्त करनेकी कामनासे शम्भुने पूर्वकालमें मुझसे प्रार्थना की थी। वह प्रार्थना मैंने पूर्वमें स्वीकार कर ली थी। अब मुझे कहीं जन्म लेना है॥ १५॥

तज्जन्म प्राप्य ते गेहे भविष्ये हरगेहिनी।
तपसानेन तुष्टाहं पूर्णैव प्रकृतिः स्वयम्॥ १६॥
लसत्कनकगौराङ्गी भविष्ये तव नन्दिनी।
चार्वङ्गी सौम्यरूपा च स्थास्येऽहं तावदेव हि॥ १७॥
यावत्ते तपसः पुण्यं क्षीणत्वं नाभ्युपैति वै।
क्षीणे तु तपसः पुण्ये मयि मन्दादरो भवान्॥ १८॥
भविष्यति तदैवाहं पुनरेतादृशीं तनुम्।
धृत्वा तव पुरो गत्वा गमिष्ये स्वीयमालयम्॥ १९॥
विमोह्य मायया सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता दक्षं प्रकृतिरुत्तमा॥ २०॥
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ सहसा तस्य पश्यतः।
दक्षोऽपि स्वपुरीं गत्वा वेधसे तं न्यवेदयत्॥ २१॥
वरो यः स जगद्धात्र्या दत्तः प्रीत्या प्रजापतिः।
अथ सा प्रकृतिः पूर्णा स्वयमाद्या सनातनी॥ २२॥
प्रपेदे जन्मना दक्षपत्नीं सर्वगुणाश्रयाम्।
ततः प्रसूतिः सुषुवे कन्यामेकां शुभेऽहनि॥ २३॥
तामेव प्रकृतिं पूर्णां गौराङ्गीं दीर्घलोचनाम्।
शशाङ्ककोटितुल्याभां फुल्लेन्दीवरलोचनाम्॥ २४॥
अष्टाभिर्बाहुवल्लीभिर्भ्राजमानां शुभाननाम्।
तथाभूत्सर्वतः पुष्पवृष्टिर्दुन्दुभयस्तथा॥ २५॥
आकाशे शतशो नेदुर्दिशश्चासन्सुनिर्मलाः।
दक्षः श्रुत्वा समागत्य दृष्ट्वा तां तनयां तदा॥ २६॥
प्रहृष्टमानसोऽकार्षीन्महोत्सवमतीव सः।
सतीति चाकरोन्नाम दशमेऽहनि बन्धुभिः॥ २७॥
ववृधे सा प्रतिदिनं चारुतां च समादधे।
वर्षासु स्वर्णदीवेन्दुज्योत्स्नेव शरदि स्वयम्॥ २८॥
अथैकदा विलोक्यैव तां दक्षो रुचिराननाम्।
विवाहार्हां विवाहार्थं चिन्तयामास चेतसा॥ २९॥

अब मैं आपके घरमें जन्म लेकर शम्भुकी भार्या बनूँगी। मैं साक्षात् प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती पूर्णा आपकी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ। स्वर्णतुल्य गौर अङ्गोंसे युक्त विग्रहवाली मैं आपकी कन्या होऊँगी। सुन्दर शरीरवाली तथा सौम्य रूपवाली मैं तभीतक आपके यहाँ रहूँगी, जबतक आपकी तपस्याका पुण्य क्षीण नहीं हो जाता। पुनः तपस्याका पुण्य क्षीण होनेपर जब आपके द्वारा मेरा अनादर होगा, तब मैं इसी तरहका विग्रह धारण कर अपनी मायासे स्थावर-जङ्गममय सम्पूर्ण जगत्को विमोहित करके अपने धाम चली जाऊँगी॥ १६—१९ $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! तीनों लोकोंकी जननी तथा उत्तम गुणोंवाली प्रकृतिदेवी दक्षसे ऐसा कहकर उनके देखते-देखते अचानक अन्तर्धान हो गयीं और इसके बाद प्रजापति दक्षने भी अपने घर जाकर ब्रह्माजीसे उस वरदानके विषयमें बताया, जिसे जगद्धात्री भगवतीने प्रसन्न होकर उन्हें दिया था॥ २०-२१ $\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् उन आद्या सनातनी पूर्णा प्रकृतिने जन्म लेनेके लिये सर्वगुणसम्पन्ना दक्षपत्नीके गर्भमें प्रवेश किया। तदनन्तर दक्षपत्नी प्रसूतिने शुभ दिनमें एक कन्याको जन्म दिया। वह कन्या प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती पूर्णा ही थीं, उस कन्याके अङ्ग गौरवर्णके थे, करोड़ों चन्द्रमाके समान उसकी आभा थी, खिले हुए कमलके समान उसके बड़े-बड़े नेत्र थे, वह आठ भुजलताओंसे सुशोभित थी और उसका मुख अतीव सुन्दर था। उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, सैकड़ों दुन्दुभियाँ बज उठीं और दिशाएँ अत्यन्त स्वच्छ हो गयीं॥ २२—२५ $\frac{1}{2}$ ॥ तब पुत्रीका जन्म सुनकर दक्षप्रजापति वहाँ आ गये और उस कन्याको देखकर अत्यन्त प्रसन्न मनवाले उन दक्षने बन्धु-बान्धवोंके साथ महान् उत्सव आयोजित किया तथा दसवें दिन उस कन्याका 'सती' ऐसा नामकरण किया॥ २६-२७॥ वह कन्या वर्षाकालीन मन्दाकिनीकी भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगी और शरत्कालीन चन्द्रज्योत्स्नाके समान दिव्य कान्तिसे सुशोभित होने लगी॥ २८॥ प्रजापति दक्ष एक बार सुन्दर मुखवाली उस कन्याको विवाहके योग्य देखकर अपने मनमें उसके विवाहके लिये विचार करने लगे॥ २९॥

कन्येयं क्र प्रदेया वा प्रकृतिः परमा च या।
अनया हि वरस्तस्मै तदैव हि प्रतिश्रुतः॥ ३०॥
तस्मात्तदन्यथा नैव भविष्यति कथञ्चन।
कृतेऽपि बहुयत्नेऽद्य मया सर्वात्मनापि च॥ ३१॥
यस्यांशसम्भवा रुद्रा ममाज्ञावशवर्तिनः।
तमाहूय सुरूपेयं दातव्या सर्वथा नहि॥ ३२॥
आहूय त्रिदशश्रेष्ठान् दैत्यगन्धर्वकिन्नरान्।
शिवशून्यां सभां कृत्वा तमनाहूय शूलिनम्॥ ३३॥
स्वयंवरमुदे यागः कर्तव्यः सर्वथा मया।
तत्र तत्तु भवेदेव यद्विधेर्मनसि स्थितम्॥ ३४॥
इति निश्चित्य सुमनाः समाहूय सुरासुरान्।
विना शिवं सभां चक्रे तदा सत्याः स्वयंवरे॥ ३५॥
तस्य चित्रमये रम्ये सापि चित्रमयी सभा।
देवदैत्यमुनीन्द्राणां कान्त्यातीव व्यराजत॥ ३६॥
तेजसा सूर्यसंकाशा कान्त्या चन्द्रसमा तथा।
दिव्यमालाम्बरधराः किरीटकनकोज्ज्वलाः॥ ३७॥
विरेजुस्त्रिदशेन्द्राश्च सभायां मुनिसत्तम।
तेषां रथाश्वनागेन्द्रैर्मणिहेमपरिष्कृतैः॥ ३८॥
ध्वजैश्छत्रैः पताकाभिर्नानावर्णैः समंततः।
सर्वैः परिष्कृता दक्षपुरी कान्त्या व्यराजत॥ ३९॥
भेरीमृदङ्गपणवैः शतशोऽथ सहस्रशः।
विनेदुस्तेन शब्देन सर्वतः पूरितं नभः॥ ४०॥
गानं सुललितं चक्रुर्गन्धर्वास्तत्र संसदि।
ननन्दुश्चाप्सरोमुख्याः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४१॥
अथ प्रजापतिर्दक्षः काले प्राप्ते सुलक्षणे।
आनयामास तां कन्यां सतीं त्रैलोक्यसुन्दरीम्॥ ४२॥
तत्रागता सती चारुकान्त्या परमया मुदा।
विबभौ मुनिशार्दूल सौन्दर्यप्रतिमैव सा॥ ४३॥

यह कन्या किसे प्रदान करनी चाहिये अथवा ये तो स्वयं पराप्रकृति हैं, जो अपने वरहेतु पहलेसे ही वचनबद्ध हैं। इसलिये वह बात मेरे पूरी तरह बहुत प्रयत्न करनेपर भी किसी प्रकार अन्यथा नहीं हो सकती। जिन शिवके अंशसे उत्पन्न रुद्रगण मेरी आज्ञाका अनुगमन करते हैं, उनको बुलाकर यह रूपवती कन्या देनेयोग्य नहीं है। इसलिये शूलधारी शिवको बिना आमन्त्रित किये श्रेष्ठ देव, दैत्य, गन्धर्व और किन्नरोंकी एक शिवशून्य सभा बुलाकर मुझे स्वयंवरोत्सव-यज्ञका आयोजन करना चाहिये। तब वही होगा, जो विधिका विधान होगा॥ ३०—३४॥ तब अपने मनमें भलीभाँति ऐसा निश्चय करके मनस्वी दक्षप्रजापतिने सभी देवताओं तथा असुरोंको बुलाकर बिना शिवके ही सभाका आयोजन कर दिया। सतीके उस अद्भुत तथा मनोहर स्वयंवरमें देवताओं और दैत्यों तथा मुनीन्द्रोंकी कान्तिसे वह सभा भी अत्यन्त सुशोभित हो रही थी। वह सभा सूर्यके सदृश तेजमयी और चन्द्रमाके समान कान्तिमती होकर सुशोभित हो रही थी॥ ३५-३६½॥

मुनिवर! दिव्य माला और वस्त्र तथा प्रभामय स्वर्णके मुकुट धारण किये हुए श्रेष्ठ देवगण उस सभामें विराजमान थे। मणियों तथा स्वर्णसे सजाये गये उनके रथों, घोड़ों और हाथियों एवं विभिन्न वर्णोंके ध्वजों, छत्रों तथा पताकाओं—इन सभीसे सुसज्जित वह दक्षपुरी कान्तियुक्त होकर शोभा पा रही थी॥ ३७—३९॥ सैकड़ों-हजारों नगाड़े, मृदङ्ग और ढोल बजने लगे। उस ध्वनिसे सारा आकाश गूँज उठा। उस सभामें गन्धर्वगण मनोहर गीत गा रहे थे और सैकड़ों-हजारों श्रेष्ठ अप्सराएँ आनन्दित होकर नाच रही थीं॥ ४०-४१॥ इसके बाद प्रजापति दक्षने शुभ समय आनेपर त्रैलोक्यसुन्दरी उस कन्या सतीको सभामें बुलाया। मुनिश्रेष्ठ! मनोहर तथा कान्तियुक्त वह सती परम प्रसन्नतापूर्वक वहाँ उपस्थित हुई। वह सौन्दर्यकी प्रतिमाके समान सुशोभित हो रही थी॥ ४२-४३॥

एतस्मिन्नेव काले तु महेशः समुपागतः।
स्थितोऽन्तरिक्षे वृषभोपरि सर्वपरो यतः॥ ४४॥

अथालोक्य सभां तां च शिवेन रहितां तदा।
प्रजापतिरुवाचेदं सतीं परमसुन्दरीम्॥ ४५॥

मातरेते समायाताः सुरासुरगणास्तथा।
ऋषयश्च महात्मान एतेषु गुणशालिनम्॥ ४६॥

वृणु त्वं मालया चारुरूपिणं यत्र ते रुचिः।
इत्युक्ता तेन सा देवी सती प्रकृतिरूपिणी॥ ४७॥

शिवाय नम उच्चार्य मालां भूमौ समर्पयत्।
सत्या दत्तां च तां मालां दधार शिरसा हरः॥ ४८॥

आविर्भूय ततः स्थानाद्दिव्यरूपधरस्तदा।
रत्नशोभितसर्वाङ्गशशिकोटिसमप्रभः॥ ४९॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः।
प्रफुल्लपङ्कजप्रख्यनयनत्रितयोज्ज्वलः॥ ५०॥

तां मालां स समादाय सत्या दत्तां सदाशिवः।
सहसान्तर्दधे हृष्टः सर्वदेवस्य पश्यतः॥ ५१॥

तस्मै सती ददौ मालां तेन दक्षप्रजापतिः।
तस्यां मन्दादरः किञ्चिद्बभूव मुनिपुङ्गव॥ ५२॥

अथ ब्रह्माब्रवीद्वाक्यं दक्षं सर्वप्रजापतिम्।
सहान्यैर्मानसैः पुत्रैर्मरीच्यादिमुनीश्वरैः॥ ५३॥

कन्या तवेयं देवेशं शिवं वृतवती वरम्।
तमाहूय विधानेन सुतां त्वं देहि यत्नतः॥ ५४॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा स्मृत्वा प्रकृतिभाषितम्।
समानीय महेशानं तस्मै दक्षो ददौ सतीम्॥ ५५॥

सोऽप्युद्वाहविधानेन पाणिं जग्राह हर्षितः।

इसी बीच सर्वश्रेष्ठ महेश्वर नन्दीपर सवार होकर वहाँ आ गये और अन्तरिक्षमें स्थित हो गये। तदनन्तर शिवविहीन उस सभाको देखकर प्रजापति दक्षने अपनी परम सुन्दरी कन्या सतीसे यह कहा— ॥ ४४-४५ ॥ माता! ये देवता, असुर, ऋषि तथा महात्मा लोग यहाँ उपस्थित हैं। इनमें जो भी आपको अच्छा प्रतीत होता हो, उस गुणवान् तथा सुन्दर रूपवालेको माला पहनाकर आप उसका वरण कर लें। उनके ऐसा कहनेपर प्रकृतिरूपिणी देवी सतीने '**शिवाय नमः**'—ऐसा कहकर वह माला भूमिको समर्पित कर दी और वहाँपर प्रकट होकर भगवान् शिवने सतीके द्वारा अर्पित की गयी उस मालाको अपने सिरमें धारण कर लिया। रत्नोंसे विभूषित समस्त अङ्गोंवाले, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रभावाले, दिव्य माला तथा वस्त्र धारण करनेवाले, दिव्य गन्धोंसे लिप्त शरीरवाले, खिले हुए कमलके समान तीन सुन्दर नेत्रवाले, दिव्यरूपधारी भगवान् सदाशिव सतीके द्वारा प्रदत्त उस मालाको धारणकर प्रसन्नतापूर्वक सभी देवताओंके देखते-देखते उस स्थानसे सहसा अन्तर्धान हो गये॥ ४६—५१॥

मुनिश्रेष्ठ! सतीने महेश्वरको माला अर्पित कर दी थी, उस कारणसे दक्षप्रजापतिका उस सतीके प्रति आदरभाव कुछ कम हो गया॥ ५२॥ इसके बाद मरीचि आदि अपने मानस पुत्रों तथा अन्य मुनीश्वरोंके साथ वहाँ विराजमान ब्रह्माजीने सभी प्रजाओंके स्वामी दक्षसे यह बात कही—'आपकी इस कन्याने देवाधिदेव शिवका वरण किया है, इसलिये उन श्रेष्ठ महेश्वरको बुलाकर प्रयत्नपूर्वक वैवाहिक विधि-विधानसे अपनी पुत्री उन्हें दे दीजिये'॥ ५३-५४॥ उनका यह वचन सुनकर और प्रकृतिदेवीद्वारा कही गयी पूर्व बातको याद करके दक्षने महेश्वरको बुलाकर उन्हें सतीको सौंप दिया। महेशने भी वैवाहिक-विधानके साथ उनका प्रसन्नतापूर्वक पाणिग्रहण कर लिया॥ ५५½॥

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च नारदाद्या महर्षयः ॥ ५६ ॥
तुष्टुवुर्वेदवाक्यैस्तु शुश्रूषू तौ सतीशिवौ।
ववर्षुः पुष्पवृष्टिं च सर्व एव दिवौकसः ॥ ५७ ॥
नेदुर्दुन्दुभयश्चापि शतशोऽथ सहस्रशः।
सर्वे प्रहृष्टा अभवन्देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ ५८ ॥
दक्षस्तून्मादचित्तोऽभूत्सतीं चापि व्यगर्हयत्।
चेतसा वीक्ष्य विश्वेशं जटाभस्मविभूषितम् ॥ ५९ ॥
ततः सतीं समादाय सर्वलोकैकसुन्दरीम्।
महेशः प्रययौ प्रस्थं हिमाद्रेरतिशोभनम् ॥ ६० ॥
हरेण सार्धं यातायां सत्यां दक्षप्रजापतेः।
दिव्यज्ञानं समभवद्विलुप्तं मुनिपुङ्गव ॥ ६१ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और नारद आदि ऋषिगण वेद-वाक्योंके द्वारा उन स्तुति-प्रिय शिव तथा शिवाको स्तुतिसे प्रसन्न करने लगे। सभी देवतागण उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। सैकड़ों-हजारों दुन्दुभियाँ भी बजने लगीं और सभी देवता, गन्धर्व तथा किन्नर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ५६—५८ ॥ जटा तथा भस्म धारण किये हुए विश्वेश्वर शिवको देखकर दक्षप्रजापतिके चित्तमें बड़ी व्याकुलता छायी हुई थी और वे मन-ही-मन सतीको भी कोस रहे थे ॥ ५९ ॥ तत्पश्चात् सभी लोकोंमें एकमात्र सुन्दरी सतीको साथमें लेकर महेश्वर हिमालयके अत्यन्त सुन्दर शिखर (कैलास)-के लिये प्रस्थान कर गये ॥ ६० ॥ मुनिश्रेष्ठ! महादेवके साथ सतीके चले जानेपर दक्षप्रजापतिका दिव्य ज्ञान विलुप्त हो गया ॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीशिवनारदसंवादे सतीविवाहवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीशिव-नारद-संवादमें 'सतीविवाहवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

दक्षप्रजापतिकी शिवके प्रति द्वेषबुद्धि, महर्षि दधीचिद्वारा दक्षको समझाना तथा भगवान् शिवके माहात्म्यको बताना

श्रीमहादेव उवाच

ततो रुरोद दुःखार्तः क्षीणपुण्यः प्रजापतिः।
विनिन्दन् शंकरं देवं तथा दाक्षायणीमपि ॥ १ ॥
तं दृष्ट्वा दुःखसंतप्तहृदयं मुनिपुङ्गव।
दधीचिस्तमुवाचेदं ज्ञानी शिवपरायणः ॥ २ ॥

दधीचिरुवाच

किं रोदिषि सतीं मोहादज्ञात्वा परमं शिवम्।
सती च बहुभाग्येन जाता तव गृहे सुता ॥ ३ ॥
सतीयमाद्या प्रकृतिः स्वयमेवाशरीरिणी।
शिवः परः पुमान् साक्षादत्र मा संशयं कुरु ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर भगवान् शंकर और सतीकी भर्त्सना करते हुए क्षीण पुण्यवाले दक्षप्रजापति दुःखसे व्याकुल होकर रोने लगे ॥ १ ॥ मुनिश्रेष्ठ! दुःखसे संतप्तहृदयवाले उन दक्षको देखकर शिवजीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले परम ज्ञानी मुनि दधीचिने उनसे यह वचन कहा— ॥ २ ॥

दधीचि बोले—मोहके कारण परम शिव तथा सतीके तत्त्वको न जानकर आप क्यों रो रहे हैं? आपके महान् भाग्यसे ही ये सती आपके घरमें पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई हैं। ये सती साक्षात् निराकार आदि प्रकृति ही हैं और शिव साक्षात् परम पुरुष हैं; इसमें आप लेशमात्र भी संदेह न करें ॥ ३-४ ॥

उग्रैरपि तपोभिर्या ब्रह्मेन्द्रादिसुरासुरैः।
दृश्यते न कदाचित्तां प्राप्य पुत्रीं प्रजापते॥ ५ ॥

अज्ञात्वा कुरुषे निन्दां कथं मोहेन तां सतीम्।
तयैव वञ्चितो नूनं महामोहस्वरूपया॥ ६ ॥

दक्ष उवाच

स चेत्परः पुमान् शम्भुरनादिर्जगदीश्वरः।
प्रेतभूमिप्रियः कस्माद्विरूपाक्षस्त्रिलोचनः॥ ७ ॥

भिक्षुको भस्मलिप्ताङ्गो भवेद्वापि कथं मुने।

दधीचिरुवाच

नित्यानन्दमयः पूर्णः स हि सर्वेश्वरेश्वरः॥ ८ ॥

समाश्रयन्ति तं ये वै नापि ते दुःखभागिनः।
स भिक्षुर्भगवान् शम्भुरिति ते दुर्मतिः कथम्॥ ९ ॥

ब्रह्माद्यैस्त्रिदशश्रेष्ठैर्योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
यस्य तत्परमं रूपं लक्षितुं नैव शक्यते॥ १० ॥

तमज्ञात्वा तथा शम्भुं विरूपं निन्दसे कथम्।
सर्वत्रगामी भगवान् सर्वस्थश्च सदाशिवः॥ ११ ॥

श्मशाने वा पुरे रम्ये विशेषो नास्य दृश्यते।
अपूर्वः शिवलोकः स विष्णुब्रह्मादिदुर्लभः॥ १२ ॥

वैकुण्ठो ब्रह्मलोकश्च यस्य नैव कलासमः।
तथा स्वर्गोऽपि कैलासं पुरं देवसुदुर्लभम्॥ १३ ॥

नानादेवसमाकीर्णं संतानकवनावृतम्।
स्वर्गाधिपपुरं यस्य कलां नार्हति षोडशीम्॥ १४ ॥

मर्त्येऽपि रम्या नगरी पुरी वाराणसी परा।
मुक्तिक्षेत्रात्मिका चैव देवा ब्रह्मपुरोगमाः॥ १५ ॥

अपि मृत्युं समिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः।
एवं दिव्यालयस्तस्य महेशस्य परात्मनः॥ १६ ॥

विना श्मशानमावासो नास्तीति तव दुर्मतिः।

प्रजापति! ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं तथा बड़े-बड़े असुरोंके द्वारा कठोर तप करनेपर भी जो भगवती उन्हें कभी दर्शन नहीं देती हैं, उन्हें आपने पुत्रीरूपमें प्राप्त किया है। मोहमें पड़कर उन सतीको बिना जाने आप उनकी निन्दा क्यों कर रहे हैं? निश्चित रूपसे उन्हीं महामोहस्वरूपिणी भगवतीने आपको ठगा है॥ ५-६॥

दक्ष बोले—वे शम्भु यदि जगत्के ईश्वर, अनादि और परम पुरुष हैं तो भयंकर रूप तथा तीन नेत्रोंवाले उन्हें प्रेतभूमि (श्मशान) क्यों प्रिय है? और मुने! वे भिक्षुकरूपमें अपने शरीरमें भस्म क्यों पोते रहते हैं?॥ ७½ ॥

दधीचि बोले—वे शम्भु पूर्ण, नित्यानन्दस्वरूप तथा सभी ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। जो लोग उनकी शरण ग्रहण करते हैं, वे कभी भी दुःख प्राप्त नहीं करते। वे भगवान् शम्भु भिक्षुक हैं—ऐसी दुर्बुद्धि आपकी क्यों हो गयी है?॥ ८-९॥ ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता और तत्त्वदर्शी योगिजन भी जिनके परम स्वरूपको देख पानेमें समर्थ नहीं होते हैं; आप उन विरूपाक्ष शम्भुकी निन्दा क्यों कर रहे हैं? सर्वत्र विचरणशील वे भगवान् सदाशिव सभी जगह विराजमान हैं। वे श्मशानमें रहें अथवा सुरम्य पुरीमें रहें, उन्हें इसमें कोई विशेषता नहीं दिखायी पड़ती है॥ १०-११½॥

शिवलोक बड़ा ही अपूर्व है। वह ब्रह्मा, विष्णु आदिके लिये भी दुर्लभ है। वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा स्वर्ग उस शिवलोककी एक कलाके भी तुल्य नहीं हैं। कैलासपुरी देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। अनेक देवताओंसे सुशोभित तथा कल्पवृक्षोंसे युक्त नन्दनवनसे घिरी हुई स्वर्गके अधिपति इन्द्रकी पुरी अमरावती भी उस शिवलोककी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है॥ १२—१४॥ मृत्युलोकमें भी वाराणसी-नगरी नामक उनकी एक परम रमणीय पुरी है, जो मुक्ति प्रदान करनेके कारण 'मुक्तिक्षेत्र' कहलाती है। जहाँ ब्रह्मा आदि प्रधान देवता भी मृत्युकी अभिलाषा रखते हैं तो फिर मानव आदि प्राणियोंकी बात ही क्या? वह परमात्मा शिवकी ऐसी दिव्य पुरी है। यह विचार आपकी दुर्बुद्धिका सूचक है कि बिना श्मशानके अन्यत्र कहीं भी उनका ठिकाना नहीं है॥ १५-१६½॥

सत्यमेवंविधं देवं त्रिलोकेशं सदाशिवम्॥ १७॥
कदाचिदपि मोहेन नैव निन्द्यात्सुरेश्वरम्।
सतीमपि महेशानीं साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ १८॥
बहुभाग्यवशाज्जातां पुत्रीभावेन ते गृहे।

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्तोऽपि बहुधा मुनिना तत्त्वदर्शिना॥ १९॥
न मेने परमेशानमसदाचारवर्जितम्।
प्रोवाच वचनैश्चापि गर्हयंस्तं मुहुर्मुहुः॥ २०॥
रुरोदाक्षिप्य तनयां सतीं चापि स नारद।
हे वत्से सति हा पुत्रि त्वं प्राणसदृशी मम॥ २१॥
विहाय मां क्व यासि त्वं क्षिप्त्वा शोकमहार्णवे।
हा पुत्रि चारुसर्वाङ्गि महार्हशयनोचिते॥ २२॥
प्रेतभूमौ कथं स्थेयं त्वया पत्या विरूपिणा।
तच्छ्रुत्वा स पुनः प्राह दधीचिर्मुनिसत्तमः॥ २३॥
सान्त्वयन् प्रियवाक्येन पाणिना चक्षुषी मृजन्॥ २४॥

दधीचिरुवाच

प्रजापते ज्ञानवतां प्रवीर
त्वं मूर्खवद्रोदिषि किं महात्मन्।
विज्ञाय देवेशमशेषतोऽपि
छिन्नं न तेऽज्ञानमिदं तु चित्रम्॥ २५॥
क्षितौ जले वा गगने रसातले
याः सन्ति नार्यः पुरुषास्तथा च ये।
तयोस्तु ते रूपमयाः समागता
इत्येवमाकर्णय शुद्धचेतसा॥ २६॥
नूनं महेशानमनादिपूरुषं
स्वयं विजानीहि यथार्थतः परम्।
सतीं च विद्धि त्रिगुणां परात्परां
चिदात्मरूपां प्रकृतिं प्रजापते॥ २७॥
संप्राप्य भाग्येन सतीं परात्परां
विश्वेश्वरं तत्पतिभावतोऽपि।
न मन्यसे यत्खलु भाग्यमात्मनः
प्रतप्यसे त्वं विधिनात्र वञ्चितः॥ २८॥

ऐसे सत्य-स्वरूप त्रिलोकेश्वर देवाधिदेव भगवान् सदाशिव और साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी महेश्वरी सतीकी भी निन्दा आपको अज्ञानवश कभी नहीं करनी चाहिये। वे आपके बड़े भाग्यसे ही आपके घर पुत्रीरूपमें प्रादुर्भूत हुई हैं॥ १७-१८½॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार तत्त्वदर्शी मुनि दधीचिके अनेक प्रकारसे समझानेपर भी प्रजापति दक्षने उन परमेश्वर शिवको असदाचारसे रहित नहीं माना और वे बार-बार उन महादेवके प्रति निन्दास्पद वचन बोलते रहे॥ १९-२०॥ नारद! वे प्रजापति दक्ष पुत्री सतीको उलाहना देते हुए ऐसा कहकर रोने लगे—हा वत्से! सति! पुत्री! तुम मेरे प्राणके समान हो; मुझे शोकसमुद्रमें निमग्न करके मेरा परित्याग कर तुम कहाँ जा रही हो? बहुमूल्य पर्यङ्कपर शयन करनेयोग्य सर्वाङ्गसुन्दरी पुत्री! कुरूप पतिके साथ तुम श्मशानभूमिमें कैसे रहोगी?॥ २१-२२½॥ उनका वह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीचिने अपने हाथसे उनके नेत्रोंके आँसू पोंछते हुए तथा प्रिय वचनोंसे उन्हें सान्त्वना प्रदान करते हुए पुनः कहा—॥ २३-२४॥

दधीचि बोले—ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ प्रजापति! आप मूर्खोंकी भाँति क्यों रो रहे हैं? महात्मन्! देवेश्वर शम्भुको समग्ररूपसे जानकर भी आपका अज्ञान नष्ट नहीं हुआ, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है!॥ २५॥ पृथ्वीपर, जलमें, आकाशमें और रसातलमें जो भी नर तथा नारीरूप प्राणी हैं, वे सभी उन्हीं दोनों (शिव-शिवा)-के रूपमें उत्पन्न हैं—ऐसा आप पवित्र मनसे समझ लीजिये॥ २६॥ प्रजापति! आप इन महेश्वरको यथार्थरूपसे साक्षात् अनादि परमपुरुषके रूपमें जान लीजिये और इन सतीको त्रिगुणात्मिका, चिदात्मस्वरूपिणी परात्पर प्रकृतिके रूपमें ही समझिये॥ २७॥ इन परात्पर सतीको भाग्यवश अपनी पुत्रीरूपमें तथा विश्वेश्वर शिवको उनके पतिके रूपमें प्राप्त करके भी यदि आप अपना सौभाग्य नहीं मानेंगे तो विधाताके द्वारा ठगे गये आपको बहुत सन्ताप होगा॥ २८॥

सत्यं शृणुष्व शोकार्तः श्रेयःप्रेप्सुः प्रजापते।
प्रकृतिं पुरुषं चापि विजानीहि सतीशिवम्॥ २९॥

दक्ष उवाच

सत्यं वदसि मे पुत्रीं सतीं प्रकृतिरूपिणीम्।
शिवं पुराणपुरुषं त्रिलोकेशं मुनीश्वर॥ ३०॥

श्रुत्वापि न भवेद्बुद्धिस्तथापि परमार्थतः।
महेशान्नापरो देव इत्येवं मुनिसत्तम॥ ३१॥

ऋषयः सत्यवचसः कथयन्ति च यद्यपि।
तथापि शम्भुः परम इत्येवं न मतिर्मम॥ ३२॥

शिवं च यदसूयामि तस्य मूलं निबोधय।
पूर्वं ब्रह्मा मम पिता यदा समसृजत्प्रजाः॥ ३३॥

तदा प्रादुर्बभूवुश्च रुद्रा एकादशैव हि।
सर्वे ते तुल्यवपुषस्तथाभीमपराक्रमाः॥ ३४॥

भीमरूपा महात्मानः क्रोधरक्तविलोचनाः।
द्वीपिचर्माम्बरधरा जटामण्डितमस्तकाः॥ ३५॥

ते ब्रह्मसृष्टिलोपार्थमुद्यताश्चाभवंस्ततः।
ततो निरीक्ष्य तान्ब्रह्मा सृष्टिलोपार्थमुद्यतान्॥ ३६॥

आज्ञया शमयामास मामप्युच्चैरुवाच ह।
यथैते भीमकर्माणः प्रशमं यान्ति चैव हि॥ ३७॥

तथा कुरु सुत क्षिप्रं वशे नय ममाज्ञया।
इत्येवं ब्रह्मवचनाद्भीतास्ते भीमविक्रमाः॥ ३८॥

स्थिता मद्वशगाः सर्वे गतप्रश्रयविक्रमाः।
तदारभ्य ममावज्ञा शिवे जाता महामुने॥ ३९॥

यस्यांशसम्भवा एते रुद्रा भीमपराक्रमाः।
ममाज्ञावशगास्तस्य किं श्रेष्ठत्वं ममाग्रतः॥ ४०॥

सती मे यादृशी कन्या रूपेण च गुणेन च।
त्वयैव ज्ञायते सम्यक् किं तेऽन्यत्प्रवदाम्यहम्॥ ४१॥

तस्याः किं भर्तृयोग्यः स्यान्ममाज्ञावशगः शिवः।

प्रजापति! इस सचाईको सुनो, शोकसे व्याकुल तथा कल्याणकी इच्छा रखनेवाले तुम सतीको प्रकृतिके रूपमें तथा शिवको परमपुरुषरूपमें जान लो॥ २९॥

दक्ष बोले—मुनीश्वर! आप यह सत्य कह रहे हैं कि मेरी पुत्री सती प्रकृतिरूपा है और शिव ही सनातन पुरुष तथा तीनों लोकोंके ईश्वर हैं। मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर भी मेरी बुद्धि दृढ़तापूर्वक वैसी नहीं हो पा रही है कि महेश्वरसे बढ़कर दूसरा देवता नहीं है। सत्य बोलनेवाले ऋषिगण भी यद्यपि यही कहते हैं, फिर भी शम्भु ही सर्वश्रेष्ठ देव हैं—ऐसा मेरा निश्चय नहीं है॥ ३०—३२॥ [मुने!] मैं जिस लिये शिवकी निन्दा कर रहा हूँ, उसका कारण सुनिये। पूर्वकालमें जब मेरे पिता ब्रह्माजीने प्रजाओंकी सृष्टि की, तब ग्यारह रुद्रोंका प्रादुर्भाव हुआ था। समान शरीरवाले वे सभी रुद्र महात्मा, प्रचण्ड पराक्रमी, भीषण रूपवाले तथा क्रोधके कारण लाल आँखोंवाले थे। वे सभी व्याघ्रचर्म धारण किये हुए थे तथा उनके सिरोंपर जटाएँ सुशोभित हो रही थीं॥ ३३—३५॥

वे सभी रुद्र ब्रह्माजीकी सृष्टिका लोप करनेहेतु तत्पर हो गये। तब सृष्टिके लोपके लिये उद्यत उन रुद्रोंको देखकर ब्रह्माजीने आज्ञा देकर उन्हें शान्त किया और मुझसे जोर देकर कहा—भयंकर कर्मवाले ये रुद्र जिस भी तरहसे शान्त हो जायँ, तुम शीघ्र ही वैसा उपाय करो। पुत्र! मेरी आज्ञासे तुम इन्हें वशमें करो। ब्रह्माजीके इस प्रकारके वचनसे भयभीत वे सभी भीषण पराक्रमवाले रुद्र मेरे अधीन हो गये और उनका बल तथा पराक्रम क्षीण हो गया। महामुने! उसी समयसे मुझमें शिवके प्रति अनादरभाव उत्पन्न हो गया है॥ ३६—३९॥ मेरी आज्ञाके अधीन रहनेवाले प्रचण्ड पराक्रमी ये रुद्र जिसके अंशसे उत्पन्न हैं, मेरे समक्ष उसकी क्या श्रेष्ठता है?॥ ४०॥ मेरी पुत्री सती रूप तथा गुणसे जिस प्रकारकी है, उसे तो आप भलीभाँति जानते ही हैं; अब मैं आपसे और क्या कहूँ? क्या मेरी आज्ञाके अधीन रहनेवाला शिव उस कन्याके योग्य वर हो सकता है?॥ ४१½॥

सत्पात्रे विहितं दानं पुण्यकीर्तिकरं भवेत्॥ ४२॥

अतः सत्पात्रमालोक्य कन्यां दद्याद्विचक्षणः।
कुलं शीलं तथा रूपं विचार्य सह बान्धवैः॥ ४३॥

दद्याद्दुहितरं प्राज्ञः सत्पात्राय महामुने।
इत्यादीनि विचार्यैव पूर्वं सत्याः स्वयंवरे॥ ४४॥

मया न स समाहूतः कुलशीलविवर्जितः।
शृणु यच्चेतसि मम स्फुटमेव वदामि ते॥ ४५॥

यावदेते महारुद्रा ममाज्ञावशवर्तिनः।
यस्यांशसंभवा मां स साकमेष्यति वै शिवः।
तावत्तस्मिन्मम त्वीर्ष्या सत्यमेव वदामि ते॥ ४६॥

तद्विद्वेषफलं शम्भुर्यदा दातुं भवेत्क्षमः।
तदैव पूज्यः स मया प्रतिज्ञैषा दृढा मम॥ ४७॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स दक्षस्य वचो मुनीश्वरः
श्रुत्वा दधीचिर्मनसा व्यचिन्तयत्।
अयं महामूढमतिः प्रजापति-
र्नूनं भवान्या च शिवेन वञ्चितः॥ ४८॥

कायेन वाचा मनसापि ये जनाः
समाश्रयन्तीह सतीमहेश्वरौ।
न ते विजानन्त्यपि ये विमोहिता
न ज्ञायतेऽसौ कथमेव मूढधीः॥ ४९॥

विज्ञेन केनापि जनेन यद्यसौ
प्रशक्यते ज्ञापयितुं कुधीर्जनः।
तद्भक्तिहीनो जगतीह को जन-
स्तदा न मुक्तिं समुपैति नारद॥ ५०॥

एवं विचिन्त्यैव ययौ निकेतनं
न किञ्चिदुक्त्वा स मुनिः पुनस्तदा।
दक्षः स्वकीयं गृहमाविवेश
दुःखेन निःश्वस्य पुनः पुनर्मुने॥ ५१॥

सत्पात्रको दिया गया दान पुण्य और यश बढ़ानेवाला होता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि योग्य पात्र देखकर ही उसे अपनी कन्या प्रदान करे। महामुने! बन्धु-बान्धवोंको साथमें लेकर वरके रूप, स्वभाव तथा कुलपर सम्यक् विचार करनेके बाद ही प्राज्ञ पुरुषको अपनी कन्या सत्पात्रको देनी चाहिये॥ ४२-४३½॥ इन्हीं सभी बातोंपर विचार करके मैंने पूर्वमें सतीके स्वयंवरमें कुल तथा शीलसे रहित उस शिवको आमन्त्रित नहीं किया था। सुनिये, मेरे मनमें जो कुछ भी है, उसे आपको साफ-साफ बता रहा हूँ। जिसके अंशसे मेरी आज्ञाके वशीभूत ये महारुद्र उत्पन्न हुए हैं, वह शिव जबतक इनके साथ मेरे पास आता रहेगा तबतक मैं उनके प्रति ईर्ष्या रखूँगा; यह सच-सच कह रहा हूँ। जब ये शम्भु उस विद्वेषका फल प्रदान करनेमें समर्थ हो जायँगे, तभी मैं उनकी पूजा करूँगा, यह मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा है॥ ४४—४७॥

श्रीमहादेवजी बोले—दक्षका यह वचन सुनकर वे मुनीश्वर दधीचि अपने मनमें सोचने लगे कि भवानी तथा शिवने इस महामूर्ख प्रजापति दक्षको निश्चय ही अपनी कृपासे वञ्चित कर दिया है॥ ४८॥

जो लोग मन, वाणी और कर्मसे सती और महेश्वरका आश्रय ग्रहण करते हैं, वे भी मोहमें पड़ जानेके कारण उन्हें भलीभाँति जाननेमें समर्थ नहीं हो पाते, तब यह मूढमति भला कैसे जान सकता है?॥ ४९॥ नारद! किसी ज्ञानी महापुरुषद्वारा यदि यह शिव-भक्तिहीन मूढमति (दक्ष) समझाया जा सकता तो भला इस संसारमें कौन मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता?॥ ५०॥ मुने! ऐसा सोचकर और फिर बिना कुछ बोले मुनि दधीचि अपने आश्रमको चले गये। इसके बाद दक्षप्रजापति दुःखसे बार-बार लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए अपने भवनमें प्रविष्ट हो गये॥ ५१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीशिवनारदसंवादे दक्षप्रजापतिविषादवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीशिव-नारद-संवादमें 'दक्षप्रजापतिविषादवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

सतीके साथ भगवान् शिवका हिमालय पर्वतपर आना, सभी देवोंका हिमालयपर विवाहोत्सवमें पहुँचना, नन्दीद्वारा हिमालयपर आकर शिवकी स्तुति करना और शंकरद्वारा उनको प्रमथाधिपतिपद प्रदान करना

श्रीमहादेव उवाच

अथागते महादेवे हिमाद्रेः पृष्ठमुत्तमम्।
सत्या सार्धं ततः सर्वे देवास्तत्र समागताः॥ १ ॥

महर्षयस्तथा याता देवपत्न्यस्तथोरगाः।
गन्धर्वाश्च समायाताः किन्नर्यश्च सहस्रशः॥ २ ॥

गिरीन्द्रवनिता मेरुतनया मेनकापि च।
सखीभिः सहिता याता मुनिपत्न्यस्तथागताः॥ ३ ॥

मुमुचुस्त्रिदशाः पुष्पवृष्टिं परमहर्षिताः।
ननृतुश्चाप्सरोमुख्या गन्धर्वपतयो जगुः॥ ४ ॥

यथाचारं स्त्रियश्चक्रुर्महोत्सवपुरःसरम्।
प्रमथा हृष्टमनसः प्रणेमुस्तौ सतीशिवौ॥ ५ ॥

ननृतुः करवाद्यं च चक्रुर्गानध्वनिं तथा।
अथ प्रणम्य देवेशं सतीं च सुरसत्तमाः॥ ६ ॥

विसृष्टास्तेन ते याताः स्वं स्वं स्थानं सुरोत्तमाः।
तथैवान्ये ययुः स्वीयं स्थानं परमहर्षिताः॥ ७ ॥

स्त्रियश्च प्रययुः सर्वा मेनाद्या मुनिपुङ्गव।
मेना विलोक्य चार्वङ्गीं सतीं परमसुन्दरीम्॥ ८ ॥

चेतसा चिन्तयामास धन्यास्या जननी तु या।
अहमेनां समागत्य प्रत्यहं रुचिराननाम्॥ ९ ॥

आराध्य पुत्रीभावेन प्रार्थयामि न संशयः।
एवं विचिन्त्य मनसा सतीं त्रिजगदम्बिकाम्॥ १० ॥

विस्मृता न कदाचित्तु गिरिराजस्य गेहिनी।
आगत्यानुदिनं चापि सतीं शंकरगेहिनीम्॥ ११ ॥

प्रीतिं संवर्धयामास तस्याः परमभावतः।
अथैकदा समायातो नन्दी बुद्धिमतां वरः॥ १२ ॥

दक्षस्यानुचरो ज्ञानी शिवभक्तिपरायणः।
प्रणनाम महेशानं दण्डवत्पतितो भुवि॥ १३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—हिमालयके श्रेष्ठ शिखरपर सतीके साथ महादेवजीके आ जानेपर सभी देवगण भी वहाँ पहुँच गये। महर्षिगण, देवपत्नियाँ, सर्प, गन्धर्व एवं हजारों किन्नरियाँ वहाँ पहुँच गयीं। सखियोंके साथ मेरुदुहिता गिरीन्द्रवनिता मेनका तथा मुनिपत्नियाँ भी वहाँ आ गयीं। परम आह्लादित देवताओंने आकाशसे पुष्पवृष्टि की। मुख्य अप्सराएँ नाचने लगीं और श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे॥ १—४॥ सभी स्त्रियाँ समारोहपूर्वक विवाहसे सम्बन्धित माङ्गलिक कृत्य करने लगीं और सभी प्रमथगणोंने प्रसन्न होकर भगवान् शंकर एवं सतीको प्रणाम किया और वे ताली बजा-बजाकर नाचने तथा गीत गाने लगे॥ ५½ ॥

तदनन्तर सभी श्रेष्ठ देवगण सती और देवेश भगवान् शंकरको प्रणाम कर तथा उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर अपने-अपने स्थानको चले गये। मुनिश्रेष्ठ! उसी प्रकार अन्य सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये तथा मेना आदि स्त्रियाँ भी चली गयीं॥ ६-७½॥ परम सुन्दरी, कोमलाङ्गी सतीको देखकर मेना मनमें सोचने लगीं कि जिसकी यह पुत्री है वह माता धन्य है! मैं प्रतिदिन यहाँ आकर सुमुखी सतीकी आराधना करके पुत्री-भावसे इसे प्राप्त करनेकी प्रार्थना करूँगी, इसमें संशय नहीं है॥ ८-९½ ॥ इस प्रकार गिरिराजपत्नी मेना मनमें विचार करके त्रिलोकमाता अम्बिकाको कभी भी नहीं भूल पायीं। शंकरप्रिया सतीके घर प्रतिदिन आकर वे उनके प्रति परम स्नेहभावसे प्रीति बढ़ाने लगीं॥ १०-११½ ॥ तदनन्तर एक बार बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानी और शिवभक्त नन्दी, जो दक्षकी सेवामें थे, वहाँ आये और उन्होंने भगवान् महेशको भूमिपर दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया॥ १२-१३॥

स प्राह देवदेवाहं दक्षस्यानुचरः प्रभो।
शिष्यो दधीचिविप्रर्षेस्त्वत्प्रभावविदः सतः॥ १४॥

न मां मोहय देवेश शरणागतवत्सल।
जानामि त्वां परात्मानं साक्षात्परमपूरुषम्॥ १५॥

सतीं च मूलप्रकृतिं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
एवमुक्त्वा महादेवं भक्तानुग्रहकारिणम्॥ १६॥
तुष्टाव नन्दी परया भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १७॥

वे बोले—देवाधिदेव! प्रभो! मैं प्रजापति दक्षका सेवक और ब्रह्मर्षि दधीचिका शिष्य हूँ, जो आपके प्रभावको जाननेवाले संत हैं। देवेश! शरणागतवत्सल! आप मुझे मोहित मत कीजिये। मैं आपको साक्षात् परमेश्वर और परमात्माके रूपमें जानता हूँ। मैं सृष्टि, स्थिति और संहारकारिणी भगवती सतीको मूल प्रकृतिके रूपमें जानता हूँ॥ १४-१५½॥ इस प्रकार कहकर नन्दीने भक्तोंपर कृपा करनेवाले भगवान् शंकरका अपनी परम भक्तिपूर्ण गद्‌गद वाणीसे स्तवन किया॥ १६-१७॥

नन्द्युवाच

त्वमादिर्लोकानां परमपुरुषः सर्वजगतां
विधाता सम्पाता शिव प्रलयकर्ता त्वमपि च।
त्वमैश्वर्योपेतस्त्वमपि युवको वृद्ध इति च
त्वमेकं ब्रह्म त्वं सुरवर भवानीश वरद॥ १८॥

अचिन्त्यं ते रूपं जितशशिसमूहं हिमरुचिं
शशाङ्कार्धभ्राजद्विमलमुखपञ्चेन्दुरुचिरम्।
स्फुरन्मौलौ सर्पामलमणिभुजङ्गाभरणकं
नमामि ब्रह्माद्यैर्नमितपदपङ्केरुहयुगम्॥ १९॥

त्वां नित्यं परिपूजयन्ति भुवि ये गायन्ति नामानि ते
मन्त्रं सम्प्रति सञ्जपन्ति सततं भक्त्याप्यभक्त्याथ वा।
तेऽपि त्वत्पदवीमुपेत्य सततं स्वर्गे रमन्ते प्रभो
को दीनेषु दयापरः पशुपते त्वां देवदेवं विना॥ २०॥

नन्दी बोले—शिव! आप त्रिलोकीके आदि परम पुरुष हैं और समस्त जगत्‌के सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले भी आप ही हैं। देवश्रेष्ठ! वरदायक भवानीपति! आप ऐश्वर्ययुक्त, युवक, वृद्ध और एकमात्र ब्रह्म हैं॥ १८॥ हिमधवलकान्तिसे युक्त, शशिसमूहको पराजित करनेवाला और अर्धचन्द्र धारण किये, चन्द्रमाके समान पाँच मुखोंवाला सुन्दर आपका स्वरूप अचिन्त्य है। निर्मल नागमणिसे सुशोभित सर्परूपी आभूषणको सिरपर धारण करनेवाले और ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा पूजित युगचरणकमलवाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १९॥ इस पृथ्वीपर जो व्यक्ति निरन्तर भक्ति अथवा अभक्तिपूर्वक भी आपकी नित्य पूजा करते हैं, आपके नामोंका संकीर्तन करते हैं और आपके मन्त्रका निरन्तर जप करते हैं, वे आपके चरणोंकी संनिधि प्राप्तकर निरन्तर स्वर्गमें रमण करते हैं। प्रभो! पशुपति! आप देवाधिदेवको छोड़कर दीनोंपर दया करनेवाला और कौन है?॥ २०॥

श्रीमहादेव उवाच

नन्दिनेवं स्तुतो देवो महेशः प्राह तं मुने।
किं तेऽभिलषितं नन्दिन् वृणु तत्प्रददामि ते॥ २१॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! नन्दीकी ऐसी स्तुति सुनकर भगवान् शंकर उससे बोले—नन्दी! तुम्हारी क्या इच्छा है, माँगो। वह मैं तुम्हें देता हूँ॥ २१॥

नन्द्युवाच

सदा त्वन्निकटस्थायी दासतां जगदीश्वर।
त्वत्तो याचे तथा नित्यमनुपश्यामि चक्षुषा॥ २२॥

नन्दीने कहा—जगदीश्वर! मैं आपका हमेशा निकट रहनेवाला दास बना रहूँ और अपनी आँखोंसे नित्य आपके दर्शन करता रहूँ, यही आपसे याचना करता हूँ॥ २२॥

शिव उवाच

यथा सम्प्रार्थितो वत्स भविष्यति तथा ध्रुवम्।
सदा मन्निकटे वासो नूनं तव भविष्यति॥ २३॥

शिवजी बोले—वत्स! जो तुमने माँगा है, निश्चित रूपसे वही होगा। अवश्य ही तुम हमेशा मेरे समीप निवास करोगे॥ २३॥

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या स्तोष्यन्ति भुवि मानवाः।
तेषां न विद्यते किञ्चिदशुभं भुवनत्रये॥ २४॥

मर्त्येऽपि सुचिरं स्थित्वा चान्ते मोक्षमवाप्नुयुः।
त्वमेषां प्रमथानां मे श्रेष्ठो भूत्वा महामते॥ २५॥
वसेह मत्पुरे नन्दिन् भक्तोऽसि मम च प्रियः॥ २६॥

पृथ्वीपर जो मानव इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करेंगे, उनका तीनों लोकोंमें कभी अशुभ नहीं होगा। इस मृत्युलोकमें दीर्घकालतक रहकर वे अन्तमें मोक्ष प्राप्त करेंगे॥ २४॥ महामते! तुम मेरे इन प्रमथगणोंके अधिपति होकर मेरे इस शिवलोकमें निवास करो; नन्दी! तुम मेरे प्रिय भक्त हो॥ २५-२६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं वरमनुप्राप्य नन्दीप्रमथवृन्दपः।
बभूव मुनिशार्दूल महादेवप्रभावतः॥ २७॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार वर प्राप्त करके भगवान् शंकरके प्रभावसे नन्दी शिवके गणोंके अधिपति हो गये॥ २७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीशिवनारदसंवादे नन्दिकेश्वरप्रमथाधिपत्ववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीशिव-नारद-संवादमें 'नन्दिकेश्वरप्रमथाधिपत्ववर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

भगवती सती तथा भगवान् शिवका आनन्द विहार, दक्षद्वारा यज्ञ करने और उसमें शंकरको न बुलानेका निश्चय करना, महर्षि दधीचिद्वारा दक्षकी निन्दा, नारदजीद्वारा सतीको पिताके यज्ञमें जानेके लिये प्रेरित करना

श्रीमहादेव उवाच

अथ शम्भुः सतीं प्राप्य भृशं कामप्रपीडितः।
प्रमथानाह भगवान्नन्दिनं च महाबलम्॥ १॥

प्रमथा यूयमेतस्मात्स्थानात्किंचित्सुदूरतः।
कुरुध्वं च स्थितिं शीघ्रं सुचिरं मम शासनात्॥ २॥

यदा युष्मान् स्मरिष्यामि तदा यास्यथ मेऽन्तिकम्।
न ममाज्ञां विना कोऽपि समायातु कदाचन॥ ३॥

इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा प्रमथाः सर्व एव ते।
महेशसन्निधिं त्यक्त्वा स्थिताः किञ्चित्सुदूरतः॥ ४॥

ततः स निर्जने तस्मिन् सत्या सार्धं महेश्वरः।
यथाभिलषितं रेमे दिवारात्रं महामुने॥ ५॥

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] भगवान् शंकर भगवती सतीको प्राप्तकर अत्यन्त कामार्त हो गये और उन्होंने प्रमथगणों तथा महान् बलशाली नन्दीसे कहा—॥ १॥ प्रमथगण! मेरी आज्ञासे यहाँसे शीघ्र कुछ दूर जाकर तुमलोग देरतक स्थित हो जाओ। जब तुमलोगोंको याद करूँगा, तब तुमलोग मेरे पास आ जाना। मेरी आज्ञाके बिना कोई भी यहाँ कदापि नहीं आयेगा॥ २-३॥ भगवान् शंकरका यह वचन सुनकर वे सभी प्रमथगण उनका सांनिध्य त्याग कर कुछ दूरीपर स्थित हो गये॥ ४॥ महामुने! उसके बाद भगवान् शंकर सतीके साथ उस निर्जन वनमें दिन-रात यथारुचि रमण करने लगे॥ ५॥

आनीय वन्यपुष्पाणि मालां निर्माय शोभनाम्।
दत्त्वा सतीं कौतुकेन कदाचित्स ददर्श ह॥ ६ ॥
कदाचित्प्रेमभावेन मुखं फुल्लाम्बुजोपमम्।
अमृजत्पाणिना स्वेन रुचिरं परमादृतः॥ ७ ॥
कदाचिद्गह्वरे रेमे कदाचित्पुष्पकानने।
कदाचित्सरसां तीरे रेमेऽभिलषितं यथा॥ ८ ॥
दृष्टिं व्यापारयामास नान्यत्र क्षणमण्वपि।
विना सतीं महादेवः सती चापि शिवं विना॥ ९ ॥
कदाचित्प्रययौ सत्या कैलासेऽपि महेश्वरः।
प्रययौ यत्र कुत्रापि पुनः सत्या महागिरेः॥ १० ॥
प्रस्थं हिमवतः शम्भुः समायाति स नारद।
तया विहरमाणोऽसौ दशवर्षसहस्रकम्॥ ११ ॥
दिनं वा रजनीं वापि ज्ञातवान्न महामते।
एवं हिमवतः पृष्ठे सती त्रैलोक्यमोहिनी॥ १२ ॥
समास्थिता महादेवं विमोह्य निजमायया।
मेनका समयं ज्ञात्वा गत्वा चानुदिनं सतीम्॥ १३ ॥
पुत्रीभावेन सततं प्रार्थयामास भक्तितः।
व्रतं चकार चारभ्य महाष्टम्यामुपोषिता॥ १४ ॥
वर्षं यावत्सिताष्टम्यां सम्पूज्य हरगेहिनीम्।
पुनर्देवीं महाष्टम्यां सम्पूज्य विधिवन्मुने॥ १५ ॥
उपोषिता व्रतं पूर्णं चकारगिरिगेहिनी।
ततः प्रसन्ना भूत्वा तु सती शङ्करगेहिनी॥ १६ ॥



अङ्गीचक्रे भविष्यामि सुता तव न संशयः।

एक बार उन्होंने वनके फूलोंको लाकर उनकी सुन्दर माला बनायी तथा सतीको समर्पित कर वे कुतूहलपूर्वक उन्हें देखने लगे। कभी वे प्रेमवश खिले हुए कमलकी तरह सतीके सुन्दर मुखको आदरपूर्वक हाथसे सहलाते थे और कभी इच्छानुसार पर्वतकी कन्दराओंमें, कभी पुष्पवाटिकामें तथा कभी सरोवरके किनारे रमण करते थे। इस प्रकार भगवान् शंकर सतीके अतिरिक्त तथा भगवती सती शिवके अतिरिक्त एक पल भी दूसरी ओर दृष्टि नहीं डालते थे॥ ६—९॥

नारद! भगवान् शंकर भगवती सतीके साथ कभी कैलास पर्वतपर चले जाते थे तो कभी उस श्रेष्ठ हिमालय पर्वतके जिस किसी शिखरपर सतीके साथ फिर पहुँच जाते थे। महामते! इस प्रकार सतीके साथ विहार करते हुए भगवान् शंकरको दस हजार वर्ष व्यतीत हो गये तथा उन्हें दिन-रातका भी भान न रहा। इस प्रकार अपनी मायासे महादेवको मोहित करके त्रैलोक्य-मोहिनी भगवती सती हिमालयके शिखरपर विराजती रहीं॥ १०—१२½॥

मेनका भगवती सतीके पास नित्य जाकर उचित समय जानकर भक्तिपूर्वक निरन्तर उन्हें पुत्रीरूपमें पानेकी प्रार्थना करती थीं। हिमवान्‌की पत्नी मेनकाने शुक्लपक्षकी महाष्टमीके दिन उपवासपूर्वक व्रतका आरम्भ किया। पुनः एक वर्षतक शुक्लपक्षकी महाष्टमीके दिन विधिपूर्वक भगवती सतीकी पूजा करके पुनः महाष्टमीको उपवास करके व्रतका समापन किया॥ १३—१५½॥ तब शंकरकी भार्या सतीने प्रसन्न होकर यह अङ्गीकार कर लिया कि 'मैं आपकी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत होऊँगी, इसमें संदेह नहीं है'॥ १६½॥

एवं सत्या वचः श्रुत्वा मेनका हृष्टमानसा ॥ १७ ॥

संध्यायाहर्निशं देवीं संस्थिता गिरिमन्दिरे।
दक्षश्चानुदिनं शम्भुं निनिन्दासौ विमोहितः ॥ १८ ॥

शम्भुश्चापि न मेने तं सम्मान्यत्वेन नारद।
अप्रीतिरेवंभूताभूत्तयोरन्योन्यमद्भुता ॥ १९ ॥

शिवदक्षप्रजापत्योरतीव मुनिसत्तम।
अथैकदा समागत्य नारदो ब्रह्मणः सुतः ॥ २० ॥

प्रोवाच वचनं दक्षप्रजापतिमिदं मुने।
प्रजापते त्वया नित्यं निन्द्यते यन्महेश्वरः ॥ २१ ॥

तेन क्रुद्धः स च यथा कर्तुमिच्छति तच्छृणु।
नूनं त्वामेत्य भवतः पुरं भूतगणैः सह ॥ २२ ॥

भस्मास्थिवर्षणं कृत्वा सकुलं नाशयिष्यति।
स्नेहान्निवेदितं तुभ्यं न प्रकाश्यं कदाचन ॥ २३ ॥

उपायं मन्त्रिभिः सार्धं मन्त्रयाशु विचक्षणैः।
इत्युक्त्वाकाशमार्गेण स ययौ निजमालयम् ॥ २४ ॥

दक्षोऽपि मन्त्रिणः सर्वानाहूयेदमभाषत।
यूयं तु मन्त्रिणः सर्वे सर्वदा हितकारकाः ॥ २५ ॥

चेष्टितं मद्विपक्षेण न केनाप्यवधीर्यते।
अथ मां नारदः प्राह महर्षिः समुपेत्य वै ॥ २६ ॥

मत्पुरे शिव आगत्य सर्वभूतगणैः सह।
वर्षां भस्मास्थिरक्तानां करिष्यति न संशयः ॥ २७ ॥

तदत्र यद्विधेयं हि साम्प्रतं ब्रूत तन्मम।
इति दक्षवचः श्रुत्वा मन्त्रिणः सर्व एव ते ॥ २८ ॥

ऊचुर्हि वचनं चेदं भयत्रस्ता महामुने।

मन्त्रिण ऊचुः

शिवेन देवदेवेन कथमेवं करिष्यते ॥ २९ ॥

अनये कारणं नैव चास्माभिरुपलक्ष्यते।
त्वं तु बुद्धिमतां श्रेष्ठः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३० ॥

आज्ञापय यथा युक्तं ततो भद्रं विरच्यते।

सतीका यह वचन सुनकर मेनकाका चित्त प्रसन्न हो गया। वे रात-दिन सतीका ध्यान करके हिमालयके भवनमें रहने लगी थीं ॥ १७½ ॥ नारद! वे दक्ष अज्ञानतावश प्रतिदिन शंकरकी निन्दा करते थे और शंकरजी भी उन प्रजापति दक्षको सम्मानका पात्र नहीं मानते थे। मुनिश्रेष्ठ! शिव तथा प्रजापति दक्षके बीच एक-दूसरेके प्रति इस प्रकारका महान् अद्भुत वैमनस्य हो गया ॥ १८—१९½ ॥ मुने! एक बार ब्रह्मापुत्र नारदने दक्षप्रजापतिके यहाँ आकर उनसे यह बात कही—प्रजापते! आप जिन महेश्वरकी प्रतिदिन निन्दा करते हैं, वे उससे कुपित होकर जो करना चाहते हैं, उसे आप सुन लीजिये—वे शिव अपने भूतगणोंके साथ आपके नगरमें आकर भस्म तथा हड्डियोंकी वर्षा करके निश्चय ही कुलसहित आपका नाश कर देंगे। आपसे स्नेहके कारण ही मैंने आपसे यह बताया है, इसे आप कभी प्रकाशित न करें। अब आप अपने विद्वान् मन्त्रियोंके साथ इसके उपायके लिये विचार-विमर्श कीजिये। ऐसा कहकर वे नारद आकाशमार्गसे अपने स्थानको चले गये ॥ २०—२४ ॥ इधर दक्षप्रजापतिने सभी मन्त्रियोंको बुलाकर यह कहा—'मन्त्रिगण! आपलोग तो सदासे मेरा हित करनेवाले रहे हैं, किंतु मेरे शत्रुके क्रियाकलापका किसीने ध्यान नहीं रखा।' महर्षि नारदने मेरे पास आकर ऐसा कहा है—शिव अपने समस्त भूतगणोंके साथ मेरे पुरमें आकर भस्म, हड्डी और रक्तकी वृष्टि करेगा, इसमें संदेह नहीं है। तो फिर इस सम्बन्धमें मुझे इस समय जो करना हो उसे आपलोग बतलाइये ॥ २५—२७ ॥ महामुने! दक्षकी यह बात सुनकर वे सभी मन्त्री भयसे व्याकुल हो उठे और उनसे यह वचन कहने लगे— ॥ २८½ ॥

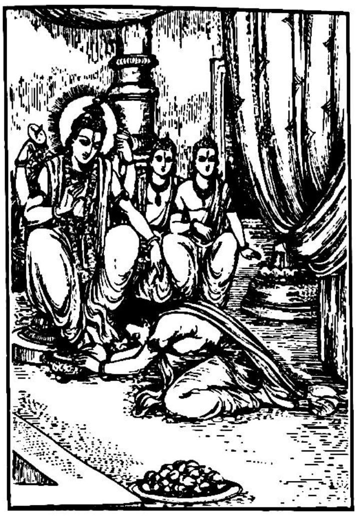
मन्त्रियोंने कहा—देवाधिदेव शिव ऐसा क्यों करेंगे? हमलोग उनकी इस अनीतिका कारण नहीं समझ पा रहे हैं। आप तो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ तथा सभी शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। आप यथोचित आज्ञा दीजिये। इसके बाद हमलोगोंके द्वारा कल्याणकारी साधनानुष्ठान किये जायँगे ॥ २९-३०½ ॥

दक्ष उवाच

अहं यज्ञं करिष्यामि सर्वा आहूय देवताः॥ ३१॥
विना श्मशानसंवासं शिवं भूतगणाधिपम्।
विष्णुं यज्ञेश्वरं देवं सर्वविघ्ननिवारकम्॥ ३२॥
मखसंरक्षकत्वेन परिकल्प्य प्रयत्नतः।
एवं पुण्यक्रियारम्भे कृते भूतपतिः शिवः॥ ३३॥
कथमायास्यति पुरं पुण्यकर्मयुतं मम।

श्रीमहादेव उवाच

तथोक्तवति दक्षे तु भयात्ते मन्त्रिणस्तदा॥ ३४॥
भद्रमेतन्महाराजेत्येवमूचुः प्रजापतिम्।
ततः प्रजापतिर्गत्वा क्षीरोदतटमाश्रितः॥ ३५॥
विष्णुं सम्प्रार्थयामास यज्ञरक्षणकारणात्।



ततः प्रसन्नो भगवान् विष्णुः परमपूरुषः॥ ३६॥

मखसंरक्षणार्थाय स्वयं प्रायाच्च तत्पुरम्।
तत आहूतवान्दक्षो देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ३७॥
ब्रह्माणमथ देवर्षीन् ब्रह्मर्षींश्च पुरोगमान्।
सेन्द्रान्यक्षांश्च गन्धर्वान् पितॄन्दैत्यांश्च किन्नरान्॥ ३८॥
अद्रींश्च सर्वानाहूय तस्मिन्यज्ञमहोत्सवे।
विद्वेषाद्वर्जितः शम्भुस्तत्पत्नी च सती मुने॥ ३९॥
सर्वांस्तान्कथयामास मम यज्ञमहोत्सवे।
मया शिवस्तु नाहूतः सती नापि शिवप्रिया॥ ४०॥
अत्र ये नागमिष्यन्ति ते स्युर्भागबहिष्कृताः।
नारायणस्तु भगवानादिः परमपूरुषः॥ ४१॥
रक्षार्थं मम यज्ञस्य स्वयमेव समागतः।
तस्मात्त्यक्तभयाः सर्वे समागच्छन्तु मन्मखे॥ ४२॥

दक्ष बोले—श्मशानमें निवास करनेवाले तथा भूतगणोंके अधिपति शिवको छोड़कर अन्य सभी देवताओंको बुलाकर मैं यज्ञका आयोजन करूँगा और समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुको यज्ञका संरक्षक बनाकर मैं प्रयत्नपूर्वक यज्ञ सम्पन्न करूँगा। इस प्रकार पुण्य यज्ञका आरम्भ हो जानेपर वह भूतपति शिव मेरे पुण्यकर्मयुक्त नगरमें कैसे आ पायेगा?॥ ३१—३३½॥

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] तब दक्षप्रजापतिके ऐसा कहनेपर भयके कारण उन मन्त्रियोंने दक्षप्रजापतिसे कहा—महाराज! यह ठीक ही है। तत्पश्चात् क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर दक्षप्रजापतिने भगवान् विष्णुसे यज्ञकी रक्षाके लिये प्रार्थना की। तब परम पुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर यज्ञकी रक्षा करनेके लिये उन दक्षके पुरमें स्वयं पहुँच गये॥ ३४—३६½॥

उसके बाद दक्षने इन्द्र आदि प्रधान देवताओं, ब्रह्मा, देवर्षियों, प्रधान ब्रह्मर्षियों, प्रधान यक्षों, गन्धर्वों, पितरों, दैत्यों, किन्नरों तथा पर्वतोंको निमन्त्रित किया। मुने! दक्षने उस यज्ञमहोत्सवमें सभीको तो बुलाया था, किंतु विद्वेषके कारण शिवको तथा उनकी पत्नी सतीको छोड़ दिया था॥ ३७—३९॥

दक्षप्रजापतिने उन सभी लोगोंसे कहा—मैंने अपने यज्ञमहोत्सवमें शिव तथा उनकी प्रिय पत्नी सतीको नहीं बुलाया है। जो लोग इस यज्ञमें नहीं आयेंगे वे यज्ञभागसे वञ्चित हो जायँगे। स्वयं सनातन परम पुरुष भगवान् विष्णु मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये यहाँ आये हुए हैं। इसलिये आप सभी लोग भयमुक्त होकर मेरे यज्ञमें आइये॥ ४०—४२॥

एवं तस्य वचः श्रुत्वा भीता एव सुरादयः।
शिवशून्यामपि सभामागताः सर्व एव हि॥ ४३॥

विष्णुं समागतं श्रुत्वा यज्ञरक्षणतत्परम्।
निर्भीताः सकला आसन् देवाश्चान्येऽपि शङ्करात्॥ ४४॥

अदित्याद्याः सुताः सर्वाः समानीय विना सतीम्।
वस्त्रालंकारनिचयैस्तोषयामास सादरम्॥ ४५॥

महाद्रिसदृशं चक्रे अन्नानां सञ्चयं मुने।
पयोदधिघृतादीनां महानद्यः प्रकल्पिताः॥ ४६॥

अथान्यद्वस्तु यज्ञार्थं द्रव्यं तेषां तु सञ्चयम्।
रसानां सागरसममन्येषां गिरिणा समम्॥ ४७॥

चक्रे प्रजापतिर्दक्षस्ततो यज्ञः प्रवर्तत।
वसुधाभूत्स्वयं वेदी स्वयं कुण्डे हुताशनः॥ ४८॥

जज्वालोर्ध्वामलशिखो विधूमो मुनिसत्तम।
वेदपाठनियुक्ताश्च समासंस्तत्र ये मखे॥ ४९॥

स्वयं यज्ञः समायातस्तत्र वेद्यां महामते।
नारायणस्तु भगवानादिः परमपूरुषः॥ ५०॥

यज्ञसंरक्षकस्वामी जगतां रक्षकः स्वयम्।
एवं प्रवृत्ते यज्ञे तु दधीचिर्ज्ञानिनां वरः॥ ५१॥
अदृष्ट्वा शिवमेवैकं दक्षमाह महामतिः।

दधीचिरुवाच

प्रजापते महाप्राज्ञ यज्ञोऽयं यादृशस्त्वया॥ ५२॥

क्रियते न कदाप्येवं भूतो वा न भविष्यति।
यत्रैते त्रिदशाः सर्वे समागत्य स्वयं स्वयम्॥ ५३॥

गृह्णन्ति चाहुतिं साक्षात्प्रलभ्य निजभागतः।
प्राणिनः सर्व एवात्र दृश्यन्ते वै समागताः॥ ५४॥

दृश्यते न कथं शम्भुस्त्रिदशानामधीश्वरः।

दक्ष उवाच

न मया स समाहूतो यज्ञेऽस्मिन्मुनिसत्तम॥ ५५॥

पुण्यकर्मणि लब्धो न स इत्येष महेश्वरः।

इस प्रकार उन दक्षका वचन सुनकर भयभीत हुए देवता आदि सभी शिवविहीन होनेपर भी उस यज्ञसभामें आ गये॥ ४३॥ यज्ञकी रक्षा करनेमें तत्पर भगवान् विष्णुको आया हुआ सुनकर सभी देवता तथा अन्य भी शिवकोपसे भयरहित हो गये॥ ४४॥

दक्षने सतीको छोड़कर अदिति आदि सभी पुत्रियोंको आदरपूर्वक बुलाकर उन्हें पुष्कल वस्त्र और आभूषणोंसे सन्तुष्ट किया॥ ४५॥ मुने! उन्होंने यज्ञके निमित्त महान् पर्वतके समान अन्नोंका संचय किया एवं दूध, दही, घी आदिकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बहा दीं। इस प्रकार प्रजापति दक्षने यज्ञके लिये जो-जो वस्तु तथा द्रव्य अपेक्षित थे, उन सबका संचय कर डाला। उन्होंने रससामग्रियोंका सागरसदृश तथा अन्य पदार्थोंका पर्वतसदृश संचय कर दिया। उसके बाद यज्ञ आरम्भ हुआ॥ ४६-४७½॥ मुनिश्रेष्ठ! उस यज्ञमें स्वयं पृथ्वी वेदी बनीं और यज्ञकुण्डमें ऊर्ध्व तथा निर्मल शिखावाले धूमरहित अग्निदेव स्वयं प्रज्वलित हुए॥ ४८½॥ जो लोग उस यज्ञमें वेदपाठके लिये नियुक्त किये गये थे, वे सब-के-सब आसनपर विराजमान हो गये। महामते! यज्ञकी रक्षा करनेवालोंके स्वामी, जगत्के रक्षक, आदि, परम पुरुष तथा यज्ञस्वरूप साक्षात् भगवान् नारायण यज्ञवेदीपर प्रतिष्ठित हो गये॥ ४९-५०½॥

इस प्रकार यज्ञ आरम्भ हो जानेपर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महामति दधीचिने वहाँ एकमात्र शिवको न देखकर दक्षसे ऐसा कहा—॥ ५१½॥

दधीचि बोले—महान् बुद्धिवाले प्रजापति! आप जिस प्रकारका यह यज्ञ कर रहे हैं, वैसा न तो कभी हुआ है और न कभी होगा। ये सभी देवता इस यज्ञमें स्वयं ही साक्षात् प्रकट होकर अपने-अपने यज्ञ-भागसे आहुति ग्रहण कर रहे हैं। इस यज्ञमें सभी प्राणी तो आये हुए दिखायी दे रहे हैं, किंतु देवताओंके अधिपति शम्भु क्यों नहीं दीख रहे हैं?॥ ५२—५४½॥

दक्ष बोले—मुनिश्रेष्ठ! मैंने उन महेश्वरको इस यज्ञमें बुलाया नहीं था। अतः वे इस पुण्ययज्ञमें नहीं दिखायी दे रहे हैं॥ ५५½॥

दधीचिरुवाच

यथा विविधरत्नेन देहः सम्भूषितोऽपि च ॥ ५६ ॥
न शोभते जीवहीनः सर्वथापि प्रजापते।
तथेश्वरं विना यज्ञः श्मशानमिव दृश्यते ॥ ५७ ॥

दक्ष उवाच

त्वं केन वा समाहूतः कथमागतवानसि।
पृष्टस्त्वं केन वा दुष्ट यदेवं वदसि द्विज ॥ ५८ ॥

दधीचिरुवाच

आहूतो वाप्यनाहूतस्त्वयाहं तव दुर्मखे।
शृणोषि यदि मे वाक्यं तदाह्वय सदाशिवम् ॥ ५९ ॥
विना तेन कृतो यज्ञः कदाचिन्न फलप्रदः।
यथाऽर्थवर्जितं वाक्यं श्रुतिहीनो यथा द्विजः ॥ ६० ॥
गङ्गाहीनो यथा देशस्तथा यज्ञः शिवं विना।
पतिहीना यथा नारी पुत्रहीनो यथा गृही ॥ ६१ ॥
यथा काङ्क्षा निर्धनानां तथा यज्ञः शिवं विना।
दर्भहीना यथा संध्या तिलहीनं च तर्पणम् ॥ ६२ ॥
यथा होमो हविर्हीनस्तथा हीनश्च शम्भुना।
यो विष्णुः स महादेवः शिवो नारायणः स्वयम् ॥ ६३ ॥
नानयोर्विद्यते भेदः कदाचिदपि कुत्रचित्।
एवं विनिन्दते यः स स्वयमेव हि गर्हितः ॥ ६४ ॥
एकं द्विषन्तमपरो न प्रसन्नः कदाचन।
शिवापमानकामेन क्रियते यत्त्वया मखः ॥ ६५ ॥
एतेन शम्भुः संक्रुद्धो यज्ञं ते नाशयिष्यति।

दक्ष उवाच

सर्वस्य जगतो गोप्ता यस्य गोप्ता जनार्दनः ॥ ६६ ॥
तत्र श्मशानसंवासी शम्भुर्मे किं करिष्यति।
यदि चायाति मे यज्ञे प्रेतभूमिप्रियः शिवः ॥ ६७ ॥
तदा विष्णुः स्वचक्रेण वारयिष्यति ते शिवम्।

दधीचि बोले—प्रजापति! जैसे विविध रत्नोंसे भलीभाँति विभूषित होनेपर भी प्राणविहीन शरीर बिलकुल सुशोभित नहीं होता, वैसे ही महेश्वरके बिना आपका यह यज्ञ श्मशानकी भाँति दिखायी दे रहा है ॥ ५६-५७ ॥

दक्ष बोले—दुष्ट ब्राह्मण! तुम्हें यहाँ किसने बुलाया है और तुम यहाँ क्यों आये हो? तुमसे किसने पूछा है, जो तुम इस प्रकार बोल रहे हो? ॥ ५८ ॥

दधीचि बोले—मैं तुम्हारे इस अनिष्टकारी यज्ञमें तुम्हारे द्वारा बुलाया जाऊँ अथवा न बुलाया जाऊँ, किंतु यदि मेरी बात मानो तो सदाशिव महादेवको बुला लो; क्योंकि शिवविहीन किया गया यज्ञ फलदायक नहीं होता है। जिस प्रकार अर्थसे रहित वाक्य, वेदज्ञानसे शून्य ब्राह्मण तथा गङ्गासे रहित देश व्यर्थ होता है, उसी प्रकार शिवके बिना यज्ञ निष्फल होता है। जैसे पतिके बिना स्त्रीका और पुत्रके बिना गृहस्थका जीवन व्यर्थ है और जैसे निर्धनोंकी आकाङ्क्षा व्यर्थ है, वैसे ही शिवके बिना यज्ञ व्यर्थ है। जिस प्रकार कुशविहीन सन्ध्या-वन्दन, तिलविहीन तर्पण और हविसे रहित होम निष्फल होता है, उसी प्रकार शम्भुविहीन यज्ञ भी निष्फल होता है ॥ ५९—६२½ ॥

जो विष्णु हैं वे ही महादेव हैं और जो महादेव हैं, वे ही स्वयं नारायण विष्णु हैं। इन दोनोंमें कभी भी कहीं कोई भेद नहीं है। इस प्रकार जो इनकी निन्दा करता है, वह स्वयं ही निन्दित होता है। इनमें किसी एककी निन्दा करनेवालेसे दूसरा कभी प्रसन्न नहीं होता। शिवको अपमानित करनेकी कामनासे युक्त होकर तुम जो यह यज्ञ कर रहे हो, इससे अत्यन्त कुपित होकर वे शम्भु तुम्हारा यज्ञ नष्ट कर देंगे ॥ ६३—६५½ ॥

दक्ष बोले—सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णु जिस यज्ञके रक्षक हैं, उस यज्ञमें वह श्मशानवासी शम्भु मेरा क्या कर लेगा? प्रेतभूमि (श्मशान)-से प्रेम रखनेवाला वह शिव यदि मेरे यज्ञमें आयेगा तो भगवान् विष्णु अपने चक्रसे तुम्हारे शिवको रोक लेंगे ॥ ६६-६७½ ॥

दधीचिरुवाच

भवादृशो न मूढोऽयं भगवान्पुरुषोऽव्ययः ॥ ६८ ॥

येनार्थेन स्वयं युद्धं करिष्यति विमोहितः ।

यत्त्वया दृश्यते शम्भुरक्षार्थं समुपागतः ॥ ६९ ॥

यथा रक्षिष्यति मखं चक्षुषा द्रक्ष्यसेऽचिरात् ।

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ७० ॥

दक्षः स्वकीयानाहेदमिमं दूरयत द्विजम् ।

दधीचिरपि तं दक्षं प्राहसन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७१ ॥

किं मां दूरयसे मूढ दूरीभूतोऽसि मङ्गलात् ।

शिवस्य क्रोधजो दण्डः पतिष्यत्यचिरेण तु ॥ ७२ ॥

तव मूर्धनि नास्त्यत्र संशयो दुर्मते क्वचित् ।

इत्युक्त्वा क्रोधताम्राक्षो मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥ ७३ ॥

निर्जगाम सभामध्याद्दधीचिर्मुनिसत्तमः ।

दुर्वासा वामदेवश्च च्यवनो गौतमादयः ॥ ७४ ॥

शिवतत्त्वविदः सर्वे पश्चादुत्थाय निर्ययुः ।

गतेषु तेषु सर्वेषु दक्षः शेषद्विजातये ॥ ७५ ॥

द्विगुणां दक्षिणां दत्त्वा महायज्ञं समारभत् ।

उक्तः स बन्धुभिः सर्वैरपि देवीं सतीं नहि ॥ ७६ ॥

समानयत्त्वत्र यज्ञे कदाचिदपि नारद ।

प्रक्षीणपुण्यस्तेनावामन्यत् प्रकृतिमुत्तमाम् ॥ ७७ ॥

तदैव वञ्चितो दक्षो महामायास्वरूपया ।

अथ ज्ञात्वा तु तत्सर्वं सर्वज्ञा जगदम्बिका ॥ ७८ ॥

चिन्तयामास पार्श्वस्था शम्भोर्गिरिवरोपरि ।

दधीचि बोले—ये अविनाशी पुरुष भगवान् विष्णु तुम्हारी तरह मूर्ख नहीं हैं, जो कि वे विमोहित होकर तुम्हारे लिये स्वयं युद्ध करेंगे। जिन विष्णुको तुम भगवान् शिवसे यज्ञकी रक्षाके लिये यहाँ आया हुआ देख रहे हो, वे जिस प्रकार यज्ञकी रक्षा करेंगे उसे तुम अपनी आँखोंसे शीघ्र ही देखोगे ॥ ६८-६९½ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—उन दधीचिकी यह बात सुनकर क्रोधसे अत्यन्त लाल नेत्रोंवाले दक्षने अपने अनुचरोंसे यह कहा—'इस ब्राह्मणको यहाँसे दूर ले जाओ'। मुनिश्रेष्ठ दधीचि भी उस दक्षकी बातपर हँस पड़े और बोले—'अरे मूढ! तुम मुझे क्या दूर करोगे, तुम तो स्वयं ही अपने कल्याणसे दूर हो गये हो। दुर्मति! भगवान् शिवके क्रोधसे उत्पन्न दण्ड तुम्हारे सिरपर शीघ्र ही गिरेगा; इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ७०—७२½ ॥

ऐसा कहकर मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजसम्पन्न तथा क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले मुनिश्रेष्ठ दधीचि सभाके मध्यसे निकल गये। तत्पश्चात् शिवतत्त्वको जाननेवाले दुर्वासा, वामदेव, च्यवन, गौतम आदि समस्त ऋषिगण भी वहाँसे उठकर चल दिये। उन सभी ऋषियोंके चले जानेपर दक्षने शेष ब्राह्मणोंको दूनी दक्षिणा देकर महान् यज्ञ आरम्भ किया ॥ ७३—७५½ ॥

नारद! सभी बन्धु-बान्धवोंके कहनेपर भी उस दक्षने देवी सतीको यज्ञमें किसी प्रकार नहीं बुलाया। उससे अत्यन्त क्षीणपुण्यवाले दक्षने उस परा प्रकृतिका घोर अपमान किया। दक्षप्रजापति तो उसी समय महामायास्वरूपिणी जगदम्बाके द्वारा ठग लिये गये ॥ ७६-७७½ ॥ इसके बाद गिरिराज हिमालयपर भगवान् शिवके पास विराजमान सर्वज्ञा जगदम्बिका वह सब बातें जान गयीं और वे विचार करने लगीं— ॥ ७८½ ॥

प्रर्थिता गिरिराजस्य पत्न्याहं मेनया स्वयम्॥ ७९ ॥

पुत्रीभावेन सद्भक्त्या विनयात्प्रेमभावतः।
अङ्गीचक्रे भविष्यामि सुताहं नात्र संशयः॥ ८० ॥

पूर्वं सम्प्रार्थयामास यदा मां स प्रजापतिः।
तदा तस्मै ममाप्युक्तं यदा मन्दादरो भवान्॥ ८१ ॥

भविष्यति क्षीणपुण्यस्तदा संमोह्य मायया।
त्यक्ष्यामि ध्रुवमित्येवं सोऽयं काल उपस्थितः॥ ८२ ॥

प्रजापतिः क्षीणपुण्यो मयि मन्दादरोऽधुना।
तं परित्यज्य यास्यामि स्थानं तन्निजलीलया॥ ८३ ॥

ततश्च हिमवद्गेहे प्राप्य जन्म महेश्वरम्।
पतिमाप्स्यामि देवेशं भूयः प्राणैकवल्लभम्॥ ८४ ॥

मुझे पुत्रीरूपमें प्राप्त करनेके लिये गिरिराज हिमालयकी पत्नी मेनाने विनम्रतापूर्वक प्रेमभावसे सच्ची भक्तिके साथ मेरी प्रार्थना की थी। मैंने उसे स्वीकार कर लिया था कि 'मैं उनकी पुत्रीके रूपमें निस्संदेह जन्म लूँगी।' उसी प्रकार पूर्वकालमें जब दक्षप्रजापतिने मुझे पुत्रीरूपमें पानेके लिये मुझसे प्रार्थना की थी, तब मैंने उनसे कहा था कि 'जब मेरे प्रति आपका आदरभाव कम हो जायगा, तब आपका पुण्य क्षीण हो जायगा। उस समय अपनी मायासे आपको मोहित करके मैं निश्चितरूपसे आपका त्याग कर दूँगी।' तो अब वह समय आ गया है। इस समय मेरे प्रति अनादरभाववाले दक्षप्रजापतिका पुण्य नष्ट हो चुका है, अतः अपनी लीलासे उनका परित्याग कर मैं अपने स्थानको चली जाऊँगी। तदनन्तर हिमालयके घरमें जन्म लेकर एकमात्र प्राणवल्लभ देवेश महेश्वर शिवको पतिरूपमें पुनः प्राप्त करूँगी॥ ७९—८४॥

एवं विचिन्त्य मनसा दक्षकन्या महेश्वरी।
क्षणं प्रतीक्षमाणाभूद्दक्षयज्ञविनाशने॥ ८५ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो ब्रह्मणः सुतः।
दक्षालयात्समायातो यत्रास्ति भगवान् हरः॥ ८६ ॥

त्रिधा प्रदक्षिणी कृत्य देवदेवं त्रिलोचनम्।
सर्व एव समाहूतास्तेन तस्मिन्महामखे॥ ८७ ॥

देवा मनुष्या गन्धर्वाः किन्नरोरगपर्वताः।
ये चान्ये प्राणिनः सन्ति स्वर्गे मर्त्ये रसातले॥ ८८ ॥

ते सर्वे तेन चाहूता युवामेव विवर्जितौ।
युवाभ्यां रहितां वीक्ष्य पुरीं तस्य प्रजापतेः॥ ८९ ॥

दुःखेनाहं परित्यज्य समायातस्तवान्तिकम्।
उचितं युवयोस्तत्र गमनं मा चिरं कुरु॥ ९० ॥

इस प्रकार अपने मनमें विचार करके दक्षपुत्री महेश्वरी सती उस क्षणकी प्रतीक्षा करने लगी जब दक्षके यज्ञका विनाश होगा॥ ८५॥ उसी समय ब्रह्मापुत्र नारद दक्षके घरसे वहींपर आ गये, जहाँ भगवान् शिव विराजमान थे॥ ८६॥ तीन नेत्रवाले देवाधिदेव शिवकी तीन बार परिक्रमा करके नारदने कहा—'उस दक्षने अपने उस महायज्ञमें सभीको बुलाया है। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग, पर्वत तथा अन्य जो भी प्राणी स्वर्ग-मृत्युलोक और रसातलमें हैं—उन सभीको उसने बुलाया है, केवल आप दोनों (शिव-सती)-को ही छोड़ दिया है। उस प्रजापति दक्षकी पुरीको आप दोनोंसे रहित देखकर उसका परित्याग करके दुःखी मनसे मैं आपके पास आया हूँ। आप दोनोंका वहाँ जाना उचित है। अतः अब आप विलम्ब मत कीजिये'॥ ८७—९०॥

शिव उवाच

किं तत्र गमनेनैव प्रयोजनमथावयोः।
यथारुचि तथा यज्ञं स करोतु प्रजापतिः॥ ९१॥

नारद उवाच

तवापमानमन्विच्छन् यद्येवं स महाध्वरम्।
निष्पादयति लोकानां तदावज्ञा भवेत्त्वयि॥ ९२॥

तज्ज्ञात्वा यज्ञभागं वै गृहाण परमेश्वर।
विघ्नं वा चर तद्यज्ञे सुचिरं त्रिदशेश्वर॥ ९३॥

शिव उवाच

न तत्राहं गमिष्यामि न सत्येषा मम प्रिया।
आगतेऽपि च नो यज्ञभागं मे सम्प्रदास्यति॥ ९४॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं शम्भुना प्रोक्तो महर्षिर्नारदस्तदा।
सतीमाह जगन्मातर्गमनं तूचितं तव॥ ९५॥

कन्या पितृगृहे श्रुत्वा महायज्ञमहोत्सवम्।
कथं धैर्यं समास्थाय स्थातुमुत्सहते गृहे॥ ९६॥

भगिन्यस्तव या दिव्यास्ताः सर्वास्तु समागताः।
ताभ्यः संप्रददौ नानाविधं स्वर्णादिभूषणम्॥ ९७॥

त्वमेका वर्जिता तेन यथा दर्पात्सुरेश्वरि।
तथा त्वं दर्पनाशाय यतस्व जगदम्बिके॥ ९८॥

शिवस्तु परमो योगी समः पूजापमानयोः।
न गमिष्यति तद्यज्ञे न विघ्नं वा करिष्यति॥ ९९॥

इत्युक्त्वा दक्षतनयां महर्षिर्नारदस्तदा।
प्रणम्य शंकरं प्रायाद्दक्षस्य निलयं पुनः॥ १००॥

शिवजी बोले—[देवर्षे!] हम दोनोंके वहाँ जानेका प्रयोजन ही क्या है? जैसी उनकी रुचि हो, उसके अनुसार वे प्रजापति दक्ष अपना यज्ञ करें॥ ९१॥

नारदजी बोले—यदि वे दक्ष आपके अपमानकी इच्छा करते हुए वह महान् यज्ञ सम्पन्न करते हैं तो इससे आपके प्रति लोगोंमें अनादरका भाव उत्पन्न हो जायगा। परमेश्वर! यह जान करके आप या तो अपना यज्ञभाग ग्रहण कीजिये अथवा सुरेश्वर! उस यज्ञमें ऐसा विघ्न डालिये, ताकि वह सम्पन्न न हो सके॥ ९२-९३॥

शिवजी बोले—वहाँ न मैं जाऊँगा और न तो मेरी प्राणप्रिया यह सती ही जायगी। वहाँ पहुँचनेपर भी वे दक्ष मुझे यज्ञभाग नहीं देंगे॥ ९४॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब शिवजीके ऐसा कहनेपर महर्षि नारदने सतीसे कहा—जगज्जननी! उस यज्ञमें आपका जाना तो उचित है। अपने पिताके घरमें यज्ञमहोत्सव होनेका समाचार सुनकर कोई कन्या धैर्य धारण कर घरमें भला कैसे रह सकती है! जो आपकी सभी दिव्य बहनें हैं, वे यज्ञमें आयी हुई हैं और दक्षने उन सभीको स्वर्ण आदिके अनेकविध आभूषण प्रदान किये हैं। सुरेश्वरि! जगदम्बिके! अभिमानके कारण जिस प्रकार उन्होंने एकमात्र आपको नहीं बुलाया है, उसी प्रकार आप भी उनके घमण्डको नष्ट करनेका प्रयत्न कीजिये। मान तथा अपमानके प्रति समभाववाले परम योगी शिव न तो उनके यज्ञमें जायँगे और न तो विघ्न ही पैदा करेंगे॥ ९५—९९॥ तदनन्तर दक्षपुत्री सतीसे ऐसा कहकर महर्षि नारदने शिवजीको प्रणाम करके पुनः दक्ष-प्रजापतिके घरके लिये प्रस्थान किया॥ १००॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीशिवनारदसंवादे दक्षप्रजापतियज्ञारम्भवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीशिव-नारद-संवादमें 'दक्षप्रजापतियज्ञारम्भवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

भगवान् शंकरद्वारा सतीका दक्षके घर जानेको अनुचित बताना, देवी सतीके विराट्रूपको देखकर शंकरका भयभीत होना, सतीद्वारा काली, तारा आदि अपने दस स्वरूपों (दस महाविद्याओं)-को प्रकट करना, देवीका यज्ञ-भूमिके लिये प्रस्थान

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य मुनीन्द्रस्य वचनं दक्षकन्यका।
गन्तुमैच्छत्पितुर्यज्ञे शिवमाह शिवाङ्गना॥ १ ॥

सत्युवाच

प्रभो देव महेशान पिता दक्षः प्रजापतिः।
करोति सुमहायज्ञं बहुसंचयपूर्वकम्॥ २ ॥
आवयोर्गमनं तत्र न्याय्यं चेतसि राजते।
समुपस्थितयोर्नूनं सम्मानं स करिष्यति॥ ३ ॥

शिव उवाच

नैवं सति प्रिये चिन्तां मनसापि समाचर।



अनाहूतस्य गमनं मरणं च द्वयं समम्॥ ४ ॥
यक्षविद्याधरकुले गर्वितो मम हेलनम्।
करोति निलयं तस्य गन्तव्यं न कदाचन॥ ५ ॥
ममापमानमेवेच्छन्कुरुते स महाध्वरम्।
यदि यामि च तत्राहं त्वं यासि यदि वा सति॥ ६ ॥
आवयोस्तत्र सम्मानं पिता ते न करिष्यति।

श्रीमहादेवजी बोले—मुनीश्वर नारदका यह वचन सुनकर दक्षकी पुत्री तथा शिवकी भार्या सतीने पिताके यज्ञमें जानेका मन बना लिया और उन्होंने शिवजीसे कहा—॥ १॥

सती बोलीं—प्रभो! देव! महेश्वर! मेरे पिता दक्ष-प्रजापति बहुत तैयारीके साथ एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। उस यज्ञमें हम दोनोंका जाना मेरे मनमें तो न्यायोचित प्रतीत हो रहा है। हम दोनोंके वहाँ उपस्थित हो जानेपर वे निश्चित रूपसे सम्मान करेंगे॥ २-३॥

शिवजी बोले—प्रिय सती! इस प्रकारका विचार अपने मनमें भी मत लाओ। बिना बुलाये जाना और मृत्यु—ये दोनों ही एक समान हैं। यक्ष-विद्याधरोंके समक्ष वे अहंकारी दक्ष मेरा तिरस्कार कर रहे हैं। अतः उनके घर कभी नहीं जाना चाहिये। मेरा अपमान करनेकी इच्छासे ही वे यह महायज्ञ कर रहे हैं। सती! यदि मैं वहाँ जाऊँगा अथवा तुम वहाँ जाओगी तो तुम्हारे पिता हम दोनोंका सम्मान नहीं करेंगे॥ ४—६½॥

श्वशुरस्यालये गच्छेद्यदि तत्रास्ति गौरवम्॥ ७ ॥
अगौरवं चेद्गमनं मरणादतिरिच्यते।
जामाता श्वशुरस्थानेऽपेक्षते परमादरम्॥ ८ ॥
श्वशुरोऽपि तमादृत्य स्वालयेषु समानयेत्।
अनादरं च श्वशुरो जामातरि विवर्जयेत्॥ ९ ॥
अन्यथा धर्महानिः स्यात्सत्यं सत्यं वरानने।
जामातुर्द्वेषतः पापं जायते हि सुदारुणम्॥ १० ॥
तस्माद्विवर्जयेद्द्वेषं जामातरि विचक्षणः।
जामातापि न कुर्याद्वै श्वशुरस्याप्रियं क्वचित्॥ ११ ॥
कुर्वन् स निरयं याति बहुजन्मशतान्यपि।
अमानितो नैव गच्छेत्कदाचिच्छ्वशुरालयम्॥ १२ ॥
यत्रकुत्रचिदाह्वानं विनैव गमनं प्रिये।
मरणेन समं प्रोक्तं किं पुनः श्वशुरालये॥ १३ ॥
तदहं न गमिष्यामि श्वशुरस्यालयेऽधुना।
अप्रियं तत्र गमनं यतो दक्षः प्रजापतिः॥ १४ ॥

यदि श्वशुरके घरमें अपनी प्रतिष्ठा हो, तभी वहाँ जाना चाहिये। यदि वहाँ अपमान होता हो तब वहाँका जाना मरनेसे भी बढ़कर होता है। दामाद श्वशुरके घरमें परम आदरकी अपेक्षा रखता है। श्वशुरको भी चाहिये कि वह उस दामादका आदर करके अपने भवनमें ले आवे। वरानने! श्वशुरको अपने दामादके प्रति अनादरभाव नहीं रखना चाहिये, अन्यथा धर्मकी हानि होती है, यह बात पूर्णरूपसे सत्य है। दामादके प्रति द्वेषभावना रखनेसे घोर पाप उत्पन्न होता है। अतः बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह अपने दामादके प्रति द्वेष न रखे। दामादको भी अपने श्वशुरका किसी तरहका अप्रिय नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेवाला नरकमें जाता है और कई सौ वर्षोंतक वहाँ पड़ा रहता है। बिना सम्मानके ससुराल कभी नहीं जाना चाहिये। प्रिये! बिना बुलाये जहाँ-कहीं भी जाना मृत्युके तुल्य कहा गया है, फिर ससुरालमें जानेकी बात ही क्या? अतः इस समय मैं श्वशुरके घर नहीं जाऊँगा। वहाँ जाना प्रीतिकारक नहीं होगा; क्योंकि वे दक्ष प्रजापति हैं॥ ७—१४॥

श्वशुरप्रीतिकरणाद्रूपवृद्धिः प्रजायते।
प्रजावृद्धिर्धर्मवृद्धिरपि संजायते सति॥ १५ ॥
अप्रीतिकरणाद्धानिर्जायते च तथा प्रिये।
तन्न गच्छामि यज्ञेऽस्मिन् पितुस्तव सुरोत्तमे॥ १६ ॥
भाषतेऽहर्निशं दक्षो मां दरिद्रं सुदुःखिनम्।
अनाहूते मयि गते तद्वक्ष्यति विशेषतः॥ १७ ॥
अनाह्वानं च दुर्वाक्यं न सह्यं श्वशुरालये।
आयान्तं वीक्ष्य दुहितुः पतिं श्वशुर एत्य तम्॥ १८ ॥
समर्चयेद्यथाशक्ति धर्मलोपोऽन्यथा भवेत्।
एवमेवंविधो यत्र सम्मानः प्रतिपादितः॥ १९ ॥
तत्रापमानलाभाय को गच्छति सुबुद्धिमान्।
तत्क्षमस्व महेशानि पितुस्तव महाध्वरे॥ २० ॥
नावयोर्गमनं युक्तं विनाह्वानं सुरार्चिते।

सती! श्वशुरके स्नेह करनेसे रूपवृद्धि, प्रजावृद्धि और धर्मवृद्धि भी होती है और प्रिये! अनादर करनेसे सर्वथा हानि ही होती है। अतः सुरोत्तमे! मैं तुम्हारे पिताके इस यज्ञमें नहीं जाऊँगा। वे प्रजापति दक्ष मुझे दिन-रात दरिद्र तथा अत्यन्त दुःखी कहते रहते हैं। बिना बुलाये मेरे जानेपर तो वे विशेष रूपसे ऐसा कहेंगे। न बुलाना तथा दुर्वचन—ये बातें श्वशुरके घरमें सहनीय नहीं हैं। श्वशुरको चाहिये कि वह अपनी पुत्रीके पति (दामाद)-को आते हुए देखते ही उसके पास पहुँचकर यथाशक्ति उसकी पूजा करे, अन्यथा धर्मकी हानि होती है। जिस ससुरालमें इस-इस प्रकारके सम्मानकी बात कही गयी है, वहाँ अपमान पानेके लिये भला कौन बुद्धिमान् जायगा। अतः देवताओंके द्वारा पूजित महेशानि! मुझे क्षमा करो, बिना निमन्त्रणके तुम्हारे पिताके महायज्ञमें हम दोनोंका जाना उचित नहीं है॥ १५—२०½॥

सत्युवाच

यदुक्तं सत्यमेवैतत्प्रभो नास्त्यत्र संशयः ॥ २१ ॥
गतस्य हि कदाचित्ते सम्मानं स करिष्यति ।

शिव उवाच

न तादृशस्तव पिता यदाह्वानं विना गतम् ॥ २२ ॥
कदाचिन्नौ सभामध्ये सम्मानेन ग्रहीष्यति ।
मन्नामस्मरणादेव निन्दते मामहर्निशम् ॥ २३ ॥
स करिष्यति सम्मानं ममेति तव दुर्मतिः ।

सत्युवाच

त्वं याहि वा महादेव मा वा कुरु यथारुचि ॥ २४ ॥
अहं यास्यामि तत्राज्ञां देहि मां त्वं महेश्वर ।
कन्या पितृगृहे श्रुत्वा महायज्ञमहोत्सवम् ॥ २५ ॥
कथं धैर्यं समास्थाय स्थातुमुत्सहते गृहे ।
असम्मान्याः समाहूता लभन्ते यत्र पूजनम् ॥ २६ ॥
सम्मान्यस्तु समाकर्ण्य कथं धैर्यं समाश्रयेत् ।
अन्यत्र विद्यतेऽपेक्षा चाह्वानस्य महेश्वर ॥ २७ ॥
गन्तुं पितृगृहे कन्या नाह्वानं समपेक्षते ।
तस्मात्पितृगृहे नूनं गमिष्याम्यनुमन्यताम् ॥ २८ ॥
मम तत्र गतायाश्च सम्मानं कुरुते यदि ।
तदोक्त्वा पितरं तुभ्यं दापयिष्यामि चाहुतिम् ॥ २९ ॥
ममाग्रे यदि ते निन्दां करिष्यति विमूढधीः ।
तदा तस्य महायज्ञं नाशयामि न संशयः ॥ ३० ॥

शिव उवाच

न तत्र गमनं युक्तं कदाचिदपि ते सति ।
ब्रवीमि सत्यं सम्मानस्तत्र ते न भविष्यति ॥ ३१ ॥
मन्निन्दनमसह्यं ते करिष्यति पिता तव ।
प्राणान् हास्यति तच्छ्रुत्वा तस्य त्वं किं करिष्यसि ॥ ३२ ॥

सत्युवाच

यास्याम्येव महादेव सत्यं मत्पितुरालये ।
तदाज्ञापय वा नो वा सत्यं सत्यं वदामि ते ॥ ३३ ॥

सती बोलीं—प्रभो! आपने जो कुछ कहा, वह सत्य ही है। इसमें किसी भी प्रकारका संशय नहीं है, किंतु हो सकता है कि वहाँ जानेपर वे आपका सम्मान करें ॥ २१ १/२ ॥

शिवजी बोले—तुम्हारे पिता वैसे नहीं हैं, जो कि बिना निमन्त्रणके वहाँ जानेपर वे सभाके मध्यमें हम दोनोंको सम्मानपूर्वक स्वीकार करें। मेरे नामके स्मरणमात्रसे ही वे दिन-रात मेरी निन्दा करते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें वे मेरा सम्मान करेंगे, यह तुम्हारी दुर्बुद्धि है ॥ २२-२३ १/२ ॥

सती बोलीं—महादेव! आप जायँ अथवा न जायँ, आपकी जो इच्छा हो कीजिये। किंतु महेश्वर! मैं वहाँ जाऊँगी। अतः आप मुझे अनुमति दीजिये। पिताके घरमें महायज्ञके महोत्सवका समाचार सुनकर कोई कन्या धैर्य रखकर अपने घरमें कैसे रह सकती है? जहाँ असम्मान्य लोग बुलाये जाते हैं और पूजित होते हैं, तब वहाँ सम्मान्य व्यक्ति भला इसे सुनकर कैसे धैर्य रख सकता है? महेश्वर! किसी दूसरे स्थानपर जानेके लिये निमन्त्रणकी अपेक्षा होती है, अपने पिताके घर जानेके लिये कन्याको आमन्त्रणकी कोई अपेक्षा नहीं होती है। अतः मैं पिताके घर अवश्य जाऊँगी, इसके लिये आप अनुमति दीजिये। वहाँ मेरे जानेपर यदि पिताजी मेरा सम्मान करेंगे तो मैं उनसे कहकर आपके लिये भी आहुति दिलवा दूँगी। यदि वे मूढ़बुद्धि दक्ष मेरे सामने आपकी निन्दा करेंगे तो मैं उसी समय उनके महायज्ञका निःसंदेह विध्वंस कर डालूँगी ॥ २४—३० ॥

शिवजी बोले—सती! उस यज्ञमें तुम्हारा जाना कभी भी उचित नहीं है। मैं सच कहता हूँ कि वहाँपर तुम्हारा सम्मान नहीं होगा। तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये मेरी असह्य निन्दा करेंगे। उसे सुनकर अपने प्राणोंको छोड़ दोगी, उसका तुम क्या कर लोगी ॥ ३१-३२ ॥

सती बोलीं—महादेव! मैं आपसे सच-सच कह दे रही हूँ कि अपने पिताके घर अवश्य ही जाऊँगी; इसके लिये आप आज्ञा दें अथवा न दें ॥ ३३ ॥

शिव उवाच

मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य पुनः पुनः किं
ब्रवीषि गन्तुं पितुरालये वचः।
प्रयोजनं वात्र किमस्ति सत्यं
ब्रूहि स्फुटं तत्कथये तदुत्तरम्॥ ३४॥
असम्मानभयं येषां वर्तते न दुरात्मनाम्।
त एव तत्र गच्छन्ति यत्रासम्मानसम्भवः॥ ३५॥
मान्यः कदापि नो गच्छेदपूजकगृहे सति।
अपूजकस्य या पूजा न सा पूजेति भण्यते॥ ३६॥
मन्निन्दनश्रुतौ चेन्न प्राप्तिस्ते जायते सति।
मन्निन्दकगृहे कस्माद्धेतोस्त्वं गन्तुमिच्छसि॥ ३७॥

सत्युवाच

त्वन्निन्दनश्रुतौ शम्भो न प्राप्तिर्जायते मम।
तच्छ्रोतुमिच्छेर्नो वापि तत्र गन्तुं समुत्सहे॥ ३८॥
यदैव त्वां परित्यज्य सर्वानाहूय दैवतान्।
समारभन्महायज्ञमसम्मानस्तदैव हि॥ ३९॥
जातस्तव महेशान तत्समालोकते प्रजा।
यद्येनं स महायज्ञं सम्पादयति मत्पिता॥ ४०॥
त्वामनादृत्य दर्पेण तदा ते कोऽपि नो जनः।
आहुतिं श्रद्धयोपेतः सम्प्रदास्यति भूतले॥ ४१॥
ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा।
प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥ ४२॥

श्रीशिव उवाच

वारितापि महादेवि न शृणोषि वचो मम।
अपकर्म स्वयं कृत्वा परं दूषयते कुधीः॥ ४३॥
जानामि वाग्बहिर्भूतां त्वामहं दक्षकन्यके।
यथारुचि कुरु त्वं च ममाज्ञां किं प्रतीक्षसे॥ ४४॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्ता महेशेन तदा दाक्षायणी सती।
चिन्तयामास सा क्रुद्धा क्षणमारक्तलोचना॥ ४५॥
सम्प्रार्थ्य मामनुप्राप्य पत्नीभावेन शंकरः।
अधिक्षिपत्यद्य तस्मात्प्रभावं दर्शयाम्यहम्।
शम्भुः समीक्ष्य तां देवीं क्रोधविस्फुरिताधराम्॥ ४६॥
कालाग्नितुल्यनयनां मीलिताक्षस्तदाभवत्॥ ४७॥

शिवजी बोले—मेरे वचनोंका उल्लंघन कर तुम बार-बार अपने पिताके घर जानेकी बात क्यों कह रही हो? वहाँ जानेका क्या प्रयोजन है? इसे सही और स्पष्टरूपसे बता दो; तब मैं उसका उत्तर पुनः दूँगा। जिन दुरात्माओंको अनादरका कोई भय नहीं रहता, वे ही उन स्थानोंपर जाते हैं जहाँ अपमानकी सम्भावना रहती है। सती! सम्मानके योग्य व्यक्तिको सम्मान न करनेवालेके घर कभी नहीं जाना चाहिये; क्योंकि उस अपूजकके द्वारा की गयी वह पूजा, पूजा नहीं कही जाती। मेरी निन्दा सुननेमें यदि तुम्हें सुख न मिलता तो मेरे निन्दकके घर जानेकी इच्छा तुम क्यों कर रही हो॥ ३४—३७॥

सती बोलीं—शम्भो! आपकी निन्दा सुननेमें मुझे कोई सुख नहीं है। उस निन्दाको सुननेकी मेरी अभिलाषा भी नहीं है, किंतु फिर भी मैं वहाँ जाना चाहती हूँ। महेशान! जिस समय मेरे पिताने केवल आपको छोड़ अन्य सभी देवताओंको बुलाकर महायज्ञ आरम्भ किया, उसी समय आपका अपमान हो गया और उसे प्रजा देख भी रही है। यदि मेरे पिता दक्ष आपका अनादर करके अभिमानपूर्वक इस महायज्ञको सम्पन्न कर लेते हैं तो इस पृथ्वीतलपर कोई भी मनुष्य श्रद्धासे युक्त होकर आपको आहुति नहीं देगा। इसलिये आप आज्ञा दीजिये या न दीजिये मैं वहाँ अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो आपके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी अथवा यज्ञका नाश कर डालूँगी॥ ३८—४२॥

श्रीशिवजी बोले—महादेवी! मेरे रोकनेपर भी तुम मेरी बात नहीं सुन रही हो। दुर्बुद्धि व्यक्ति स्वयं निषिद्धाचरण करके दूसरेपर दोषारोपण करता है। दक्षपुत्री! अब मैंने जान लिया कि तुम मेरे कहनेमें नहीं रह गयी हो। अतः अपनी रुचिके अनुसार तुम कुछ भी करो, मेरी आज्ञाकी प्रतीक्षा क्यों कर रही हो?॥ ४३-४४॥

श्रीमहादेवजीने कहा—[नारद!] तब महेश्वरके ऐसा कहनेपर क्रोधके मारे लाल-लाल आँखोंवाली वे दक्षपुत्री सती क्षणभरके लिये सोचने लगीं कि 'इन शंकरने पहले तो मुझे पत्नीरूपमें प्राप्त करनेहेतु प्रार्थना की थी और फिर मुझे पा लेनेके बाद अब ये मेरा अपमान कर रहे हैं। इसलिये अब मैं इन्हें अपना प्रभाव दिखाती हूँ।' तदनन्तर उन भगवान् शिवने क्रोधसे फड़कते हुए ओठोंवाली तथा कालाग्निके समान नेत्रोंवाली उन भगवती सतीको देखकर अपने नेत्र बंद कर लिये॥ ४५—४७॥

सहसा भीमदंष्ट्रास्या साट्टहासं तदाकरोत्।
तन्निशम्य महादेवो भीतभीतो विमुग्धवत्॥ ४८॥

कष्टेनोन्मील्य नेत्राणि तां ददर्श भयानकाम्।
एवं संवीक्ष्यमाणा सा सहसा तेन नारद॥ ४९॥

त्यक्त्वा हेमपटीमासीद्वृद्धावस्थासमप्रभा।
दिगम्बरा लसत्केशा ललज्जिह्वा चतुर्भुजा॥ ५०॥

कालानललसद्देहा स्वेदाक्तेनतनूरुहा।
महाभीमा घोररावा मुण्डमालाविभूषणा॥ ५१॥

उद्यत्प्रचण्डकोट्याभा चन्द्रार्धकृतशेखरा।
उद्यदादित्यसंकाशा किरीटोज्ज्वलमस्तका॥ ५२॥

एवं समादाय वपुर्भयानकं
जाज्वल्यमानं निजतेजसा सती।
कृत्वाट्टहासं सहसा महास्वनं
सोत्तिष्ठमाना विरराज तत्पुरः॥ ५३॥

तथाविधां कार्यवतीं निरीक्ष्य तां
विहाय धैर्यं सह चेतसा तदा।
चकारबुद्धिं स पलायने भयात्
समभ्यधावच्च दिशो विमुग्धवत्॥ ५४॥

तं धावमानं गिरिशं विलोक्य वै
दाक्षायणी वारयितुं पुनः पुनः।
चकार माभैरिति शब्दमुच्चकैः
साट्टाट्टहासं सुमहाभयानकम्॥ ५५॥

निशम्य तद्वाक्यमतीव सम्भया-
त्तस्थौ न शम्भुः क्षणमप्यमुत्र वै।
दिगन्तमागन्तुमतीववेगतः
समभ्यधावद्भयविह्वलस्तदा॥ ५६॥

भयानक दाढ़ोंसे युक्त मुखवाली भगवतीने सहसा उस समय अट्टहास किया, जिसे सुनकर महादेव विमूढ़के समान भयाक्रान्त हो गये। बड़ी कठिनाईसे आँखोंको खोलकर उन्होंने भगवतीके भयानक रूपको देखा। नारद! उनके द्वारा इस प्रकार देखी जानेपर उन भगवतीने सहसा अपने स्वर्णिम वस्त्रोंका परित्याग करके वृद्धावस्थाके समान कान्तिको धारण कर लिया। वे दिगम्बरा थीं। उनके केशपाश सुशोभित हो रहे थे, जिह्वा लपलपा रही थी, उनकी चार भुजाएँ थीं। उनके शरीरकी ज्योति कालाग्निके समान सुशोभित हो रही थी, रोमराशि पसीनेसे व्याप्त थी, अत्यन्त भयंकर स्वरूपवाली वे भयानक शब्द कर रही थीं और उन्होंने मुण्डमालाका आभूषण धारण कर रखा था। उगते हुए करोड़ों सूर्यके समान तेजोमयी उन्होंने अपने मस्तकपर चन्द्ररेखा धारण कर रखी थी। उगते हुए सूर्यके समान आभावाले किरीटको धारण करनेसे उनका ललाट देदीप्यमान था॥ ४८—५२॥

इस प्रकार अपने तेजसे देदीप्यमान एवं भयानक रूप धारण करके देवी सती घोर गर्जनाके साथ अट्टहास करती हुई उन शम्भुके समक्ष उठकर सहसा खड़ी हुईं॥ ५३॥ तब उन सतीको इस प्रकारका विचित्र कार्य करती हुई देखकर भगवान् शिवने चित्तसे धैर्यका परित्याग कर भयके मारे भागनेका निश्चय किया और वे विमूढ़की भाँति सभी दिशाओंमें इधर-उधर भागने लगे॥ ५४॥ उन शिवको दौड़ते हुए देखकर वे दक्षपुत्री सती उन्हें रोकनेके लिये ऊँचे स्वरोंमें 'डरो मत, डरो मत'—इन शब्दोंका बार-बार उच्चारण करती हुई अत्यन्त भयानक अट्टहास कर रही थीं॥ ५५॥ उस शब्दको सुनकर वे शिव अत्यधिक डरके मारे वहाँ एक क्षण भी नहीं रुके। वे उस समय भयसे व्याकुल होकर दिशाओंमें दूरतक पहुँच जानेके लिये बड़ी तेजीसे भागे जा रहे थे॥ ५६॥

एवं पतिं वीक्ष्य भयाभिभूतं
दयान्विता सा पतिवारणेच्छया।
सर्वासु दिक्षु क्षणमग्रतः स्थिता
तदा च भूत्वा दश मूर्तयः पराः ॥ ५७ ॥
संधावमानो गिरिशोऽतिवेगतः
प्राप्नोति यां यां दिशमेव तत्र ताम्।
भयानकां वीक्ष्य भयेन विद्रुतो
दिशं तथान्यां प्रति चाप्यधावत ॥ ५८ ॥
न प्राप्य शम्भुर्हि भयोज्झितां दिशं
तत्रैव संमुद्रितचक्षुरास्थितः।
उन्मील्य नेत्राणि ददर्श तां पुरः
श्यामां लसत्पङ्कजसंनिभाननाम्॥ ५९ ॥
हसन्मुखीं पीनपयोधरद्वयां
दिगम्बरां भीमविशाललोचनाम्।
विमुक्तकेशीं रविकोटिसन्निभां
चतुर्भुजां दक्षिणसम्मुखस्थिताम्॥ ६० ॥
एवं विलोक्य तां शम्भुरतिभीत इवाब्रवीत्।
का त्वं श्यामा सती कुत्र गता मत्प्राणवल्लभा ॥ ६१ ॥

सत्युवाच

न पश्यसि महादेव सतीं मां पुरतः स्थिताम्।
काली तारा च लोकेशी कमला भुवनेश्वरी ॥ ६२ ॥
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी बगलामुखी।
धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै ॥ ६३ ॥

शिव उवाच

कस्याः किं नाम देवि त्वं विशिष्य च पृथक् पृथक्।
कथयस्व जगद्धात्रि सुप्रसन्नासि मे यदि ॥ ६४ ॥

देव्युवाच

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता ॥ ६५ ॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी।

इस प्रकार अपने स्वामीको भयाक्रान्त देखकर वे दयामयी भगवती सती उन्हें रोकनेकी इच्छासे क्षणभरमें अपने दस श्रेष्ठ विग्रह धारण करके सभी दिशाओंमें उनके समक्ष स्थित हो गयीं ॥ ५७ ॥ अत्यन्त वेगसे भागते हुए वे शिवजी जिस-जिस दिशामें जाते थे, उस-उस दिशामें उन्हीं भयानक भगवतीको देखते थे और फिर भयसे व्याकुल होकर अन्य दिशामें भागने लगते थे ॥ ५८ ॥

तब किसी भी दिशाको भयमुक्त न पाकर वे भगवान् शिव अपनी आँखें बंद करके वहीं ठहर गये और इसके बाद जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तब कमलके समान सुन्दर मुखवाली, हासयुक्त मुखमण्डलवाली, दो उन्नत उरोजोंवाली, दिगम्बर, भयानक तथा विशाल नेत्रोंवाली, खुले हुए केशोंवाली, करोड़ों सूर्योंके समान तेज धारण करनेवाली, चार भुजाओंसे युक्त तथा दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके स्थित श्यामा भगवती कालीको अपने सामने स्थित देखा ॥ ५९-६० ॥ इस प्रकार उन भगवतीको देखकर अत्यन्त डरे-डरे-से भगवान् शिव बोले—श्यामवर्णवाली आप कौन हैं और मेरी प्राणप्रिया सती कहाँ चली गयी? ॥ ६१ ॥

सती बोलीं—महादेव! क्या अपने सम्मुख स्थित मुझ सतीको आप नहीं देख रहे हैं? काली, तारा, लोकेशी कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती और मातङ्गी—इन देवियोंके ये नाम हैं ॥ ६२-६३ ॥

शिवजी बोले—जगत्का पालन करनेवाली देवी! यदि आप मुझपर अति प्रसन्न हैं तो किस देवीका क्या नाम है और उनकी क्या विशेषता है—यह सब आप मुझे अलग-अलग बताइये ॥ ६४ ॥

देवी बोलीं—कृष्णवर्णा तथा भयानक नेत्रोंवाली ये जो देवी आपके सामने स्थित हैं, वे भगवती 'काली' हैं और जो ये श्यामवर्णवाली देवी आपके ऊर्ध्वभागमें विराजमान हैं, वे साक्षात् महाकालस्वरूपिणी महाविद्या 'तारा' हैं ॥ ६५½ ॥

सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा ॥ ६६ ॥

इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते।
वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी ॥ ६७ ॥

पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी।
वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी ॥ ६८ ॥

सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी।
नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी ॥ ६९ ॥

वायौ यत्ते महाविद्या सेयं मातङ्गकन्यका।
ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी ॥ ७० ॥

अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु ॥ ७१ ॥

भक्त्या सम्भजतां नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाः।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यः साधकानां महेश्वर ॥ ७२ ॥

मारणोच्चाटनक्षोभमोहनद्रावणानि च।
वश्यस्तम्भनविद्वेषाद्यभिप्रेतानि कुर्वते ॥ ७३ ॥

इमाः सर्वा गोपनीया न प्रकाश्याः कदाचन।
तासां मन्त्रं तथा यन्त्रं पूजाहोमविधिं तथा ॥ ७४ ॥

पुरश्चर्याविधानं च स्तोत्रं च कवचं तथा।
आचारं नियमं चापि साधकानां महेश्वर ॥ ७५ ॥

त्वमेव वक्ष्यसि विभो नान्यो वक्तात्र विद्यते।
त्वदुक्तागमशास्त्रं तु लोके ख्यातं भविष्यति ॥ ७६ ॥

महामते! आपके दाहिनी ओर ये जो भयदायिनी तथा मस्तकविहीन देवी विराजमान हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी भगवती 'छिन्नमस्ता' हैं। शम्भो! आपके बायीं ओर ये जो देवी हैं, वे भगवती 'भुवनेश्वरी' हैं। जो देवी आपके पीछे स्थित हैं, वे शत्रुनाशिनी भगवती 'बगला' हैं। विधवाका रूप धारण की हुई ये जो देवी आपके अग्निकोणमें विराजमान हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी 'धूमावती' हैं और आपके नैर्ऋत्यकोणमें ये जो देवी हैं, वे भगवती 'त्रिपुरसुन्दरी' हैं। आपके वायव्यकोणमें जो देवी हैं, वे मातङ्गकन्या महाविद्या 'मातङ्गी' हैं और आपके ईशानकोणमें जो देवी स्थित हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी 'षोडशी' हैं। मैं तो भयंकर रूपवाली 'भैरवी' हूँ। शम्भो! आप भय मत कीजिये। ये सभी रूप भगवतीके अन्य समस्त रूपोंसे उत्कृष्ट हों॥ ६६—७१ ॥

महेश्वर! ये देवियाँ नित्य भक्तिपूर्वक उपासना करनेवाले साधक पुरुषोंको चारों प्रकारके पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) तथा समस्त वाञ्छित फल प्रदान करती हैं। इन्हींकी कृपासे मारण, उच्चाटन, क्षोभन, मोहन, द्रावण, वशीकरण, स्तम्भन और विद्वेष आदि अन्य प्रकारके वाञ्छित प्रयोग भी सिद्ध होते हैं। ये सभी गोपनीय महाविद्याएँ हैं, इनका प्रकाशन कभी नहीं करना चाहिये॥ ७२-७३½ ॥

महेश्वर! उन देवियोंके मन्त्र, यन्त्र, पूजन, हवनविधि, पुरश्चर्याविधान, स्तोत्र तथा कवच और उनके उपासकोंके आचार, नियम आदिका वर्णन आप ही करेंगे; क्योंकि विभो! इस विषयमें आपसे बड़ा अन्य कोई वक्ता नहीं है। आपके द्वारा दिया गया उपदेश आगमशास्त्रके नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगा॥ ७४—७६ ॥

आगमश्चैव वेदश्च द्वौ बाहू मम शंकर।
ताभ्यामेव धृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ७७॥

यस्त्वेतौ लङ्घयेन्मोहात्कदाचिदपि मूढधीः।
सोऽधः पतति हस्ताभ्यां गलितो नात्र संशयः॥ ७८॥

तावेव श्रेयसां हेतू दुरूहावतिदुर्घटौ।
सुधीभिरतिदुर्ज्ञेयौ पारावारविवर्जितौ॥ ७९॥

यश्चागमं वा वेदं वा समुल्लङ्घ्यान्यथा भजेत्।
तमुद्धर्तुमशक्ताऽहं सत्यमेव न संशयः॥ ८०॥

विविच्य चानयोरैक्यं मतिमान्धर्ममाचरेत्।
कदाचिदपि मोहेन भेदयेन्न विचक्षणः॥ ८१॥
आसां ये साधकास्ते तु सभायां वैष्णवा मताः।
मय्यर्पितान्तःकरणा भवेयुः सुसमाहिताः॥ ८२॥

मन्त्रं यन्त्रं च कवचं दत्तं यद्गुरुणा स्वयम्।
गोपनीयं प्रयत्नेन तत्प्रकाश्यं न कुत्रचित्॥ ८३॥

प्रकाशात्सिद्धिहानिः स्यात्प्रकाशादशुभं भवेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपयेत्साधकोत्तमः॥ ८४॥

इति ते कथितं कर्म महादेव महामते।
अहं तव प्रियतमा त्वं च मेऽतिप्रियः पतिः॥ ८५॥

पितुः प्रजापतेर्दर्पनाशायाद्य व्रजाम्यहम्।
तदाज्ञापय देवेश त्वं न गच्छसि चेद्यदि॥ ८६॥

इति देव ममाभीष्टं त्वयि वानुमताप्यहम्।
गच्छामि यज्ञनाशाय पितुर्दक्षप्रजापतेः॥ ८७॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा भीतभीत इव स्थितः।
प्रोवाच वचनं शम्भुः कालीं भीमविलोचनाम्॥ ८८॥

शंकर! आगम तथा वेद—ये दोनों ही मेरी दो भुजाएँ हैं। उन्हीं दोनोंसे मैंने स्थावर-जङ्गममय सम्पूर्ण जगत्को धारण कर रखा है। जो मूर्ख इन दोनों (वेद तथा आगम)-का मोहवश कभी भी उल्लंघन करता है, वह मेरे हाथोंसे च्युत होकर अध:पतित हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। वे दोनों ही कल्याणके हेतु हैं तथा अत्यन्त दुरूह, दुर्घट और विद्वानोंके द्वारा भी कठिनाईसे जाने जाते हैं एवं उनका आद्यन्त भी नहीं है। जो मनुष्य आगम अथवा वेदका उल्लंघन कर अन्यथा आचरण करता है, उसका उद्धार करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, यह सत्य है और इसमें कोई भी संशय नहीं है। इन दोनोंकी एकतापर सम्यक् विवेचन करके बुद्धिमान् व्यक्तिको धर्मका आचरण करना चाहिये और कभी भी अज्ञानतावश इन दोनोंमें भेद नहीं मानना चाहिये॥ ७७—८१॥

इन महाविद्याओंके जो साधक हैं, वे लोकमें वैष्णव माने जाते हैं और मुझमें समर्पित अन्त:करणवाले वे प्रशान्तात्मा हो जाते हैं। स्वयं गुरुके द्वारा दिये गये मन्त्र, यन्त्र तथा कवचको सावधानीपूर्वक गुप्त रखना चाहिये और उसे जहाँ कहीं भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। उसे प्रकाशित करनेसे सिद्धिकी हानि होती है तथा अशुभ होता है। अत: उत्तम साधकको चाहिये कि पूरे प्रयत्नके साथ उसे गोपनीय रखे॥ ८२—८४॥ महादेव! महामते! आपके द्वारा यह करणीय कर्म मैंने आपसे कहा; क्योंकि मैं आपकी प्रियतमा हूँ और आप भी मेरे अत्यन्त प्रिय पति हैं। अपने पिता दक्ष-प्रजापतिके अभिमानके विनाशके लिये मैं आज वहाँ जाऊँगी। अत: देवेश! यदि आप वहाँ नहीं चल रहे हैं तो मुझे ही जानेकी आज्ञा दीजिये। देव! यही मेरा अभीष्ट है और आपका भी। अत: यदि आप मुझे अनुमति दे दें तो मैं अपने पिता दक्षप्रजापतिके यज्ञके विध्वंसके लिये चली जाऊँ॥ ८५—८७॥

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] उन भगवतीका यह वचन सुनकर शिव डरे-डरे-से खड़े रहे और फिर उन्होंने भयानक नेत्रोंवाली उन देवी कालीसे कहा—॥ ८८॥

शिव उवाच

जाने त्वां परमेशानीं पूर्णां प्रकृतिमुत्तमाम्।
अजानता मया मोहाद्यदुक्तं क्षन्तुमर्हसि॥ ८९ ॥
त्वमाद्या परमा विद्या सर्वभूतेष्ववस्थिता।
स्वतन्त्रा परमा शक्तिः कस्ते विधिनिषेधकः॥ ९० ॥
त्वं चेद्गमिष्यसि शिवे दक्षयज्ञविनाशने।
का मे शक्तिस्त्वां निषेद्धुं कथं तत्रास्मि वा क्षमः॥ ९१ ॥
यच्चोक्तं पतिभावेन मया ते ह्यप्रियं वचः।
तत्क्षमस्व महेशानि यथारुचि कुरुष्व च॥ ९२ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्ता महेशेन तदा सा जगदम्बिका।
ईषत्सुहास्यवदना वचनं चेदमब्रवीत्॥ ९३ ॥
त्वं तिष्ठ सर्वप्रमथैरत्र देव महेश्वर।
याम्यहं मत्पितुर्गेहे साम्प्रतं यज्ञदर्शने॥ ९४ ॥
इत्युक्त्वा सा महादेवं ताराप्यूर्द्ध्वं व्यवस्थिता।
एकरूपा समभवत्सहसा तत्र नारद॥ ९५ ॥
अन्याश्च मूर्तयश्चाष्टौ सहसान्तर्हितास्तदा।
अथ शम्भुः समालोक्य गन्तुकामां सुरेश्वरीम्॥ ९६ ॥
प्रमथानाह भगवान् रथमानयतोत्तमम्।
युतं चायुतसिंहेन रत्नजालविराजितम्॥ ९७ ॥
तच्छ्रुत्वा तत्क्षणादेव प्रमथाधिपतिः स्वयम्।
रथं समानयत्सिंहैरयुतैर्युतमाशुगैः॥ ९८ ॥
तं रत्नजालसंयुक्तं रथं पर्वतसंनिभम्।
नानाविधपताकाभिः सर्वतः समलंकृतम्॥ ९९ ॥
वायुप्रवेगैः सिंहैश्च युतं चायुतसंख्यकैः।
तां समारोपयामास प्रमथाधिपतिः स्वयम्॥ १०० ॥
तस्मिन् रथे स्थिता काली विबभौ भीमरूपिणी।
सुमेरुशृङ्गमारूढामेघपंक्तिरनुत्तमा ॥ १०१ ॥
त्रासयन्ती जगत्सर्वं युगान्ते मुनिसत्तम।
ततो नन्दी रथं तूर्णं चोदयामास बुद्धिमान्॥ १०२ ॥

शिवजी बोले—मैं आपको पूर्णा, परमेशानी तथा पराप्रकृतिके रूपमें जान गया हूँ। अतः अज्ञानवश आपको न जानते हुए मैंने जो कुछ कहा है, उसे क्षमा करें। आप आद्या हैं, परा विद्या हैं तथा सभी प्राणियोंमें विराजमान हैं। आप स्वतन्त्र रहनेवाली परमा शक्ति हैं। अतः कोई भी कार्य करने या न करनेके लिये आपको आदेश देनेवाला कौन है? शिवे! प्रजापति दक्षके यज्ञनाशके लिये यदि आप जायँगी तो मेरी कौन-सी शक्ति आपको रोकनेमें समर्थ है और मैं भी आपको कैसे रोक सकूँगा। महेशानि! पतिभावसे मैंने आपको जो भी अप्रिय वचन कहा है, उसे आप क्षमा करें और आपकी जो रुचि हो, वैसा करें॥ ८९—९२॥

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] तब महेशके ऐसा कहनेपर थोड़ी-सी मुसकानसे युक्त मुखमण्डलवाली उन जगदम्बिकाने यह वचन कहा— ॥ ९३ ॥

देव! महेश्वर! आप अपने समस्त प्रमथगणोंके साथ यहीं रहिये और मैं अपने पिताके घर यज्ञ देखनेके लिये इसी समय जा रही हूँ॥ ९४॥ नारद! महादेवसे ऐसा कहकर वे भगवती तथा ऊर्ध्व दिशामें स्थित देवी तारा—ये दोनों अचानक एकरूप हो गयीं। तदनन्तर अन्य आठों मूर्तियाँ (देवियाँ) भी सहसा अन्तर्धान हो गयीं॥ ९५½ ॥ इसके बाद भगवान् शिवने उन सुरेश्वरीको जानेकी इच्छुक देखकर अपने प्रमथगणोंसे कहा—दस हजार सिंहोंसे युक्त तथा रत्नजालोंसे सुशोभित उत्तम रथ ले आओ॥ ९६-९७॥ उसे सुनते ही स्वयं प्रमथगणोंके अधिपति उसी क्षण तेज गतिसे चलनेवाले दस हजार सिंहोंसे जुते हुए रथको ले आये॥ ९८॥ प्रमथाधिपतिने रत्नजालसे सुशोभित, पर्वताकार, चारों ओरसे अनेक प्रकारकी पताकाओंसे अलंकृत तथा वायुवेगके समान चलनेवाले दस हजार सिंहोंसे जुते हुए उस रथपर उन भगवतीको स्वयं विराजमान कराया॥ ९९-१००॥ मुनिश्रेष्ठ! युगके अन्तमें प्रलयके समान सम्पूर्ण जगत्को भयभीत करनेवाली वे भीमरूपिणी भगवती काली उस रथमें स्थित होकर सुमेरु पर्वतके शिखरपर आरूढ उत्तम मेघमालाकी भाँति सुशोभित हो रही थीं। तदनन्तर बुद्धिमान् नन्दी उस रथको बड़ी तेजीसे हाँकने लगे और महामते! इधर वे शिव शोक तथा दुःखसे व्याकुल हो रुदन करने लगे॥ १०१-१०२½ ॥

रुरोद शोकदुःखार्तः शम्भुः सोऽपि महामते।
कालीं क्रोधान्वितां दृष्ट्वा चलिताः सर्वदेहिनः ॥ १०३ ॥
चण्डांशुरपि सम्भीतः पततीति धरातले।
संक्षुब्धाः सागराश्चासन् दिशो व्याकुलितास्तथा ॥ १०४ ॥
वायुर्ववौ महावेगः सूर्यं निर्भिद्य भूतले।
पेतुरुल्काश्च शतशो महाऽमङ्गलसूचकाः ॥ १०५ ॥
प्रायाच्च दक्षनिलयं स रथश्च क्षणार्धतः।
दृष्ट्वा तां भयसंत्रस्ताः सतीं दक्षालयस्थिताः ॥ १०६ ॥

कोपाविष्ट कालीको देखकर सभी प्राणी भागने लगे, सूर्य भी भयभीत होकर पृथ्वीपर गिरने-से लगे, सागर विक्षुब्ध हो गये, सभी दिशाएँ व्याकुल हो उठीं, महान् वेगसे वायु बहने लगी और घोर अमङ्गलका संकेत देनेवाले सैकड़ों उल्कापिण्ड सूर्यमण्डलका भेदन कर पृथ्वीतलपर गिरने लगे ॥ १०३—१०५ ॥

इस प्रकार वह रथ आधे क्षणमें ही दक्षप्रजापतिके घर पहुँच गया। तब उन भगवती सतीको देखते ही दक्षके घरमें स्थित सभी लोग भयभीत हो उठे ॥ १०६ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कालीरथागमनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'कालीरथागमन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

नवाँ अध्याय

सतीका पिताके घर पहुँचना, माता प्रसूतिद्वारा सतीका सत्कार करना तथा यज्ञ-विध्वंसके भयंकर स्वप्नको सुनाना, दक्षद्वारा शिवकी निन्दा, क्रुद्ध सतीद्वारा छायासतीका प्रादुर्भाव और उसे यज्ञ नष्ट करनेकी आज्ञा देकर अन्तर्धान हो जाना, छायासतीका यज्ञकुण्डमें प्रवेश

श्रीमहादेव उवाच

अथ दाक्षायणी देवी मुक्तकेशी शुभस्तनी।
अवतीर्य रथात्तूर्णं प्रययौ मातृसन्निधिम् ॥ १ ॥
दक्षपत्नी प्रसूतिस्तु पुत्रीं दृष्ट्वा चिरागताम्।
क्रोडे कृत्वा मुखाम्भोजं वाससा परिमृज्य च ॥ २ ॥
चुम्बयन्ती सतीं प्राह विलपन्ती मुहुर्मुहुः।
मातस्त्वं सर्वदेवेशं पतिं प्राप्य सदाशिवम् ॥ ३ ॥
अशोच्यासि गतास्यस्मान् क्षिप्त्वा शोके महार्णवे।
त्वमाद्या परमा शक्तिस्त्रिजगज्जननी स्वयम् ॥ ४ ॥
त्वं ममोदरजातासि भाग्यं मम महत्तरम्।
दूरीभूतोऽद्य मे शोकश्चिरेणाधिगतः सति ॥ ५ ॥
यत्त्वां पश्यामि मद्गेहे कृपया समुपस्थिताम्।
पितापि तव दुर्बुद्धिरज्ञात्वा परमं शिवम् ॥ ६ ॥
तमेव विद्विषन्मोहात्कुरुते यज्ञमुत्तमम्।
न त्वामसावाह्वयति न शिवं परमेश्वरम् ॥ ७ ॥
उक्तोऽपि बहुधास्माभिर्मुनिभिश्च विचक्षणैः।

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] इसके बाद सुन्दर वक्षःस्थल तथा खुले हुए केशोंवाली दक्षपुत्री भगवती सती रथसे उतरकर शीघ्रतापूर्वक अपनी माताके पास चली गयीं ॥ १ ॥ अपनी पुत्रीको बहुत दिनों बाद आयी हुई देखकर दक्षपत्नी प्रसूति उन्हें गोदमें लेकर वस्त्रसे उनका मुखकमल पोंछने लगीं और बार-बार उनका मुख चूमती हुई रो-रोकर कहने लगीं— ॥ २½ ॥ माता! सर्वदेवेश्वर सदाशिवको पतिरूपमें प्राप्त करके आप सोचने योग्य नहीं रह गयी हैं और आप हमलोगोंको शोकरूपी महासागरमें छोड़कर चली गयीं। आप अत्यन्त श्रेष्ठ, तीनों लोकोंकी माता तथा आदिशक्ति हैं। यह मेरा महान् भाग्य है कि आप साक्षात् भगवती मेरे गर्भसे उत्पन्न हुई हैं। सती! मेरे घरमें कृपापूर्वक उपस्थित हुई आपको जो मैं देख रही हूँ, इससे बहुत दिनोंसे विद्यमान मेरा शोक आज दूर हो गया। आपके दुर्बुद्धि पिता भी परम शिवको न जानकर उनसे विशेष द्वेषभाव रखते हुए मोहवश महान् यज्ञ कर रहे हैं। हमारे तथा विद्वान् मुनियोंके द्वारा अनेक तरहसे कहे जानेपर भी इन्होंने न तो आपको और न ही परमेश्वर शिवको बुलाया ॥ ३—७½ ॥

सत्युवाच

शिवं यज्ञेश्वरं देवं सर्वदैवतदैवतम्॥ ८ ॥
अनादृत्य पिता यज्ञं कुरुते सर्वदैवतैः।
निर्विघ्नेन समाप्तिस्तु नैवास्य परिदृश्यते॥ ९ ॥
ममैवं जायते बुद्धिर्मन्यतां कोऽपि किंचन।

प्रसूतिरुवाच

शृणु वत्से मया स्वप्ने यद्रात्राववलोकितम्॥ १० ॥
अतीवभयदं घोरं तुमुलं लोमहर्षणम्।
यत्र दक्षो देवगणैर्महायज्ञे व्यवस्थितः॥ ११ ॥
तत्राकस्मात्समायाता काचिद्देवी महेश्वरी।
महामेघप्रभाश्यामा मुक्तकेशी दिगम्बरा॥ १२ ॥
चतुर्भुजा अट्टहासा ज्वलन्नेत्रत्रयोज्ज्वला।
तां दृष्ट्वा चकितो दक्षः पप्रच्छ विनयान्वितः॥ १३ ॥
कासि कस्यासि दयिता कथमत्र समागता।
सा प्राह किं न जानासि सती ते तनया ह्यहम्॥ १४ ॥
ततो दक्षः शिवं निन्दन्नुवाच बहुधा वचः।
तच्छ्रुत्वा सा महाक्रोधाद्यज्ञवह्नौ विवेश ह॥ १५ ॥
ततश्च भीमकर्माणः प्रमथाः कोटिशः क्षणात्।
समायाता भीमरूपास्ततश्च पुरुषो महान्॥ १६ ॥
महोग्रकर्मा चायातः कालान्तकयमोपमः।
स तु विष्णुमुखान्देवान् विनिर्जित्य महाध्वरम्॥ १७ ॥
बभञ्ज प्रमथैः सार्द्धं दक्षमुण्डं समच्छिनत्।
प्रजापतिर्विवक्त्रहीनो यज्ञकुण्डतटे स्थितः॥ १८ ॥
महोग्ररूपिणः क्रुद्धाः खादितुं तं समुद्यताः।
कौपीनवाससः सर्वे जटामुकुटमण्डिताः॥ १९ ॥
विभूतिलिप्तसर्वाङ्गाः शूलपाशासिपाणयः।
पिबन्ति शोणितं तस्य नृत्यन्ति च हसन्ति च॥ २० ॥
दृष्ट्वैवं तु तदा सर्वे दक्षस्य पुरवासिनः।
व्याकुला रोदमानाश्च हाहाकारपरायणाः॥ २१ ॥

सती बोलीं—सभी देवताओंके देवता यज्ञेश्वर भगवान् शिवका अपमान करके मेरे पिता समस्त देवताओंके साथ यज्ञ कर रहे हैं। कोई कुछ भी माने, किंतु मेरा तो ऐसा निश्चय है कि इस यज्ञकी समाप्ति निर्विघ्न नहीं हो सकेगी॥ ८-९½ ॥

प्रसूति बोलीं—पुत्री! मैंने रातमें जो अत्यधिक भयानक, दारुण तथा अत्यन्त रोमाञ्चक स्वप्न देखा है, उसे सुनो—॥ १०½ ॥

उस महायज्ञमें जहाँ दक्षप्रजापति देवताओंके साथ स्थित थे, वहाँ कोई देवी महेश्वरी अकस्मात् आ गयीं। वे महान् मेघोंकी कान्तिके समान श्यामवर्णवाली थीं, उनके बाल खुले हुए थे, वे दिगम्बर थीं, उनकी चार भुजाएँ थीं, वे अट्टहास कर रही थीं और जाज्वल्यमान तीन नेत्रोंसे प्रकाशित थीं। उन्हें देखकर दक्षप्रजापति आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने विनयपूर्वक पूछा—'आप कौन हैं, किसकी पत्नी हैं और यहाँ क्यों आयी हैं?' उन्होंने कहा—'क्या आप नहीं जानते कि मैं आपकी पुत्री सती हूँ।' इसके बाद दक्षप्रजापतिने शिवकी निन्दा करते हुए बहुत तरहकी बात कही। उसे सुनते ही वे बड़े क्रोधसे यज्ञाग्निमें कूद पड़ीं॥ ११—१५ ॥ उसके बाद भयानक कर्म करनेवाले तथा भीषण आकारवाले करोड़ों प्रमथगण क्षणभरमें ही वहाँ उपस्थित हो गये और फिर कालान्तक यमराजके समान महान् उग्र कार्य करनेवाला कोई महान् पुरुष भी वहाँ आ गया। उसने विष्णु आदि प्रमुख देवताओंको जीतकर प्रमथगणोंके साथ महायज्ञका विध्वंस कर डाला और दक्षप्रजापतिका सिर काट लिया। अब वे दक्षप्रजापति मुखविहीन होकर यज्ञकुण्डके किनारे पड़े रहे। कौपीन-वस्त्र धारण किये तथा जटामुकुटसे सुशोभित महान् उग्र रूपवाले वे सभी प्रमथगण क्रोधित होकर उन दक्षप्रजापतिको खानेको उद्यत हो गये। अपने समस्त अङ्गोंमें भस्म लपेटे तथा हाथोंमें शूल, पाश और खड्ग धारण किये हुए वे उनका रक्त पी रहे थे, नाच रहे थे और हँस रहे थे। तब दक्षके सभी नगरवासी ऐसा देखकर व्याकुल हो उठे और रोते हुए हाहाकार करने लगे॥ १६—२१ ॥

ततो ब्रह्मा तु सम्प्रार्थ्य देवदेवं सदाशिवम्।
समानीय स्वयं प्राह दक्षं जीवय जीवय॥ २२॥

यज्ञं समापय विभो देवदेव प्रसीद माम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दक्षं स समजीवयत्॥ २३॥

दत्त्वैकं छागमुण्डं तु शिवनिन्दनकारणात्।
एवं दृष्टो मया स्वप्नो रजन्याः शेष एव हि॥ २४॥

सा च त्वं श्यामवर्णाद्य समायातासि मत्पुरम्।
यथा स्वप्ने मया दृष्टा तथा साक्षात्प्रदृश्यसे॥ २५॥

भवितव्यं यथादृष्टं दक्षस्यापि प्रजापतेः।
यतस्त्वां स्वप्नसंदृष्टां तथैव हि विलोकये॥ २६॥

मातः कदाचित्तत्स्वप्नं विफलं सम्भविष्यति।
शिवनिन्दाफलं प्राप्य मूर्खत्वं सोऽपि हास्यति॥ २७॥

युवां ज्ञास्यति विद्वेषमचिरेणैव हास्यति।
त्वं चिरं जीव हे पुत्रि न ते हानिः कदाचन॥ २८॥

भूयात्स्वप्ने वियोगं तु दृष्ट आयुश्च वो भवेत्।
त्वं यस्य स ह्यशोच्यश्च धन्यश्च स हि भाग्यवान्॥ २९॥

नाहं त्वया कदाचित्तु त्यक्तव्या जननी तव।

श्रीमहादेव उवाच

एवं सम्प्राप्य सन्मानं सती नत्वा च मातरम्॥ ३०॥

अनुज्ञाता तया तूर्णं ययौ दक्षस्य सन्निधिम्।
एतस्मिन्नेव काले तु दक्षस्य पुरवासिनः॥ ३१॥

परस्परं समाजस्थाः किमेतन्महदद्भुतम्।
सती कनकगौराङ्गी सौम्यरूपा वराङ्गना॥ ३२॥

भीमरूपा कथमभून्नवीनजलदप्रभा।
मुक्तकेशी भीमदंष्ट्रा क्रोधाद्दीप्तविलोचना॥ ३३॥

द्वीपिचर्मपरीधाना वीरबाहुचतुष्टया।
कथमेवं समायाता यज्ञेऽस्मिन्सुरसंसदि॥ ३४॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने देवाधिदेव सदाशिवकी विनयपूर्वक प्रार्थना करके उन्हें स्वयं बुलाकर कहा—'इन दक्षप्रजापतिको अवश्य ही जीवित कीजिये। विभो! देवदेव! इस यज्ञका समापन कीजिये और मुझपर प्रसन्न होइये।' उनकी वह बात सुनकर शिवकी निन्दा किये जानेके कारण एक बकरेका सिर जोड़कर भगवान् शिवने दक्षको जीवित कर दिया॥ २२-२३½॥

रातके थोड़ा शेष रहनेपर मैंने इस प्रकारका स्वप्न देखा था और आज वही श्यामवर्णवाली तुम मेरे नगरमें आयी हुई हो। मैंने जैसा स्वप्नमें देखा था, तुम वैसी ही दिखायी पड़ रही हो और दक्षप्रजापतिके विषयमें जैसा देखा, वही होनेवाला है; क्योंकि जिस देवीको मैंने स्वप्नमें देखा था, तुम्हें वैसी ही देख रही हूँ॥ २४—२६॥ माता! क्या यह स्वप्न कभी विफल हो सकेगा? और शिवनिन्दाका समुचित फल प्राप्तकर वे दक्ष क्या अपनी मूर्खताका त्याग करेंगे? वे तत्त्वतः तुम दोनोंको जानकर शीघ्र ही अपना द्वेष त्याग देंगे, पुत्री! तुम चिरञ्जीवी होओ और तुम्हारी कभी भी कोई हानि न हो। यह वियोग स्वप्नमात्र ही हो, प्रत्यक्षमें तो तुम दोनों दीर्घायु प्राप्त करो। तुम जिसकी अपनी हो, वह निश्चय ही शोक करनेयोग्य नहीं है। वह धन्य है और भाग्यवान् है। तुम कभी भी मेरा त्याग मत करना; क्योंकि मैं तुम्हारी माँ हूँ॥ २७—२९½॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार मातासे सम्मान प्राप्त करके सतीने उन्हें प्रणाम किया तथा उनसे आज्ञा लेकर वे शीघ्र ही दक्षप्रजापतिके पास चली गयीं॥ ३०½॥ उसी समय दक्षके नगरवासी एकत्र होकर आपसमें विचार करने लगे कि यह कैसा महान् आश्चर्य है?॥ ३१½॥ सुवर्णके समान गौर अङ्गों एवं शान्त रूपवाली सुन्दरी सती अब काले मेघके समान वर्णवाली तथा भयंकर रूपवाली कैसे बन गयीं? इनके बाल खुले हुए हैं, ये भयानक दाँतोंसे युक्त हैं, क्रोधके मारे इनकी आँखें लाल-लाल हो गयी हैं, इन्होंने व्याघ्रचर्म धारण कर रखा है और ये चार पराक्रमी भुजाओंसे युक्त हैं। इस यज्ञकी देवसभामें इस तरहसे इनका आगमन क्यों हुआ है?॥ ३२—३४॥

मन्ये जगदिदं क्रोधाद्ग्रसन्तीव क्षणार्धतः।
न जाने का गतिर्वा स्यादद्यदक्षप्रजापतेः॥ ३५॥

कृत्वापमानमस्यास्तु यज्ञं तु कुरुते सुरैः।
नूनं तस्य फलं दातुं क्रुद्धैषा समुपागता॥ ३६॥

संहारकाले या विष्णुं ब्रह्माणमपि नाशयेत्।
सैषा चेन्नाशयेद्यज्ञं विष्णुर्वा किं करिष्यति॥ ३७॥

ऐसा मानता हूँ कि ये सम्पूर्ण जगत्को क्षणार्धमात्रमें ग्रसित कर लेंगी। आज दक्षप्रजापतिकी न जाने क्या गति होगी? इनका अपमान करके ये दक्षप्रजापति देवताओंके साथ यज्ञ कर रहे हैं। निश्चय ही उसीका फल प्रदान करनेके लिये ये क्रुद्ध होकर आयी हुई हैं। संहारके समय जो ब्रह्मा तथा विष्णुका भी नाश कर देती हैं, वे ही ये यदि यज्ञ नष्ट कर दें तो विष्णु भी क्या कर सकेंगे?॥ ३५—३७॥

अथागत्य सती यज्ञशालायां तं प्रजापतिम्।
ददर्श शिवविद्वेषोद्भवहर्षसमाकुलम्॥ ३८॥

तां दृष्ट्वा हव्यभोक्तारो देवाश्च ऋषयस्तथा।
बृहस्पतिः सुराश्चापि समकम्पन्त साध्वसात्॥ ३९॥

निश्चलाक्षास्त्यक्तकार्यास्तामेव ददृशुः पराम्।
देवाः सर्वे महात्मानः पटे चित्रार्पिता इव॥ ४०॥

न नमन्ति भयात्केचित्साक्षाद्दक्षभयात्सुराः।
प्रणेमुर्मनसा कालीं देवीं संहारकारिणीम्॥ ४१॥

इसके बाद यज्ञशालामें आकर सतीने भगवान् शिवके विद्वेषजनित हर्षसे परिपूर्ण उस दक्षप्रजापतिको देखा। उन सतीको देखते ही हव्यके भोक्ता देवता, ऋषि, बृहस्पति तथा अन्य देवगण भी भयसे काँपने लगे। सभी देवता तथा महात्मागण अपना-अपना कार्य छोड़कर पटपर अङ्कित चित्रकी भाँति स्थिर दृष्टिसे उन पराशक्तिको देखने लगे। कुछ देवताओंने दक्षके भयसे उस संहारकारिणी भगवती कालीको प्रत्यक्ष प्रणाम नहीं किया, अपितु उन्होंने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम कर लिया॥ ३८—४१॥

ततो दक्षो विलोक्यैव सर्वानेव तथाविधान्।
दिक्ष्वक्षिणी प्रसार्यैव सर्वतः समलोकयत्॥ ४२॥

ततो ददर्श तां कालीं क्रोधाद्दीप्तविलोचनाम्।
मुक्तकेशीं त्यक्तवस्त्रां धूमाञ्जनचयप्रभाम्॥ ४३॥

तत्पश्चात् दक्षप्रजापतिने पूर्वोक्त स्थितिवाले उन लोगोंको देखकर सभी दिशाओंमें दृष्टिपात करते हुए चारों ओर देखा॥ ४२॥ तदनन्तर दक्षप्रजापतिने क्रोधसे दीप्त नेत्रोंवाली, खुले बालवाली, वस्त्ररहित तथा काले धुएँसे निर्मित अञ्जनसमूहकी कान्तिवाली उन भगवती कालीको देखा॥ ४३॥

दक्ष उवाच

कासि कस्यासि दुहिता वनिता विगतत्रपा।
कथमत्र समायाता सतीव समलक्ष्यसे॥ ४४॥

किं वा शिवालयात्पुत्रि सती मे त्वं समागता।

दक्ष बोले—तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो तथा किसकी पत्नी हो? इस तरह निर्लज्ज होकर यहाँ क्यों आयी हो? तुम तो सतीकी तरह दिखायी पड़ रही हो। पुत्री! क्या तुम मेरी पुत्री सती ही हो और शिवके घरसे यहाँ आयी हो?॥ ४४ १/२॥

सत्युवाच

पितः किमेतत्त्वां कन्यां मां न जानासि ते सतीम्॥ ४५॥

त्वं मे पिताहं त्वत्कन्या पितरं त्वां नतास्म्यहम्।

सती बोलीं—पिताजी! क्या आप अपनी इस पुत्री मुझ सतीको नहीं पहचानते? आप मेरे पिता हैं और मैं आपकी पुत्री हूँ। आप पिताको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ४५ १/२॥

दक्ष उवाच

किं मातरेवं कस्मात्त्वं श्यामा भूतासि हा सति ॥ ४६ ॥
लसत्कनकगौराङ्गी शरच्चन्द्रसमप्रभा।
दिव्यवस्त्रपरीधाना पूर्वमासीर्गृहे मम ॥ ४७ ॥
सा त्वं विगतवस्त्राद्य सभायामागतासि किम्।
कथं वा मुक्तकेशी त्वं कथं वा भीमलोचना ॥ ४८ ॥
किमयोग्यं पतिं लब्ध्वा प्राप्ता त्वमीदृशीं दशाम्।
मम यज्ञमहोत्साहे त्वं नाहूता मया पुनः ॥ ४९ ॥
शिवपत्नीत्वहेतोर्वै न तु स्नेहाद्यभावतः।
भद्रं कृतवती या त्वं स्वयमेव समागता ॥ ५० ॥
त्वदर्थे वस्त्रभूषादि स्थापितं परिगृह्यताम्।
हा सुते प्राणतुल्यासि सति त्रैलोक्यसुन्दरि ॥ ५१ ॥
प्राप्यायोग्यं पतिं शम्भुं दुःखितासि सुलोचने।
इति दक्षोदितं श्रुत्वा शिवनिन्दाकरं वचः ॥ ५२ ॥
रुषा ज्वलितसर्वाङ्गी चिन्तयामास सा सती।
क्षणार्धेनैव पितरं समखं दैवतैः सह ॥ ५३ ॥
शक्नोमि भस्मसात्कर्तुं पितृहत्याभयेन तत्।
न करिष्यामि किंत्वेनं मोहये सह दैवतैः ॥ ५४ ॥
एवं विचिन्त्य मनसा सती दाक्षायणी तदा।
आत्मनस्तुल्यरूपा सा छायासमसृजत्क्षणात् ॥ ५५ ॥
छायासतीं सती प्राह मद्वाक्यमवधारय।
त्वमेकं कुरु मत्कार्यं यज्ञमेनं विनाशय ॥ ५६ ॥
उक्त्वा बहुविधं वाक्यं पित्रा सह सुलोचने।
शिवनिन्दाकरं वाक्यं श्रुत्वा पितृमुखान्मम ॥ ५७ ॥
विशस्व यज्ञवह्नौ त्वं रुषा ज्वलितविग्रहा।
अहमस्य सुतेत्यस्माद्गर्वितः शिवनिन्दनम् ॥ ५८ ॥
करोति तेन तं गर्वं त्वमाशु परिचूर्णय।
त्वयि वह्नौ प्रविष्टायां श्रुत्वा देवो महेश्वरः ॥ ५९ ॥
शोकसंतप्तहृदयः समायास्यति निश्चितम्।
निर्जित्य देवान् विष्णुं च यज्ञरक्षणतत्परम् ॥ ६० ॥
नाशयिष्यति यज्ञं च पितरं च वधिष्यति।

दक्ष बोले—माता! सती! आप इस तरह कृष्णवर्णकी कैसे हो गयी हैं। आप तो पहले मेरे घरमें स्वर्णके समान गौर अङ्गोंवाली थीं, आपकी कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमाके समान थी और आप दिव्य वस्त्र धारण किये रहती थीं, वही आप आज निर्वस्त्र होकर मेरी सभामें क्यों आयी हुई हैं? आप इस तरह खुले बालों तथा भयानक नेत्रोंवाली क्यों हो गयी हैं? क्या अयोग्य पति पानेके कारण आप इस दशाको प्राप्त हैं? मैंने अपने यज्ञमहोत्सवमें तुम्हें नहीं बुलाया, इसका कारण तुम्हारा शिवपत्नी होना है न कि तुम्हारे प्रति हमारे स्नेह आदिका अभाव। तुमने अच्छा किया जो स्वयं ही यहाँ चली आयी। तुम्हारे लिये वस्त्र, आभूषण आदि रखे हुए हैं, वह सब तुम ले लो। त्रैलोक्यसुन्दरी पुत्री सती! तुम मेरे प्राणके समान प्रिय हो। सुन्दर नेत्रोंवाली! अयोग्य शंकरको पतिके रूपमें पाकर तुम बहुत ही दुःखित हो ॥ ४६—५१ $\frac{१}{२}$ ॥

शिवके प्रति दक्षके द्वारा कहा गया यह निन्दासे परिपूर्ण वचन सुनकर क्रोधसे प्रज्वलित समस्त अङ्गोंवाली वे सती सोचने लगीं कि मैं मात्र आधे क्षणमें सभी देवताओं तथा यज्ञसहित अपने पिताको जलाकर राख कर सकती हूँ, किंतु पितृहत्याके भयसे वैसा नहीं करूँगी। अपितु देवताओंके सहित इन्हें मोहित कर दे रही हूँ ॥ ५२—५४ ॥ इस प्रकार मनमें विचार करनेके बाद उन दक्षपुत्री सतीने क्षणभरमें अपने ही समान रूपवाली एक छायाकी रचना कर दी ॥ ५५ ॥ तब सतीने उस छाया सतीसे कहा—मेरी बातपर ध्यान दो। तुम मेरा एक काम कर दो, इस यज्ञका विध्वंस कर डालो। सुलोचने! मेरे पिताके साथ बहुत प्रकारकी बातें करके तथा उनके मुखसे शिवके प्रति अपमानजनक वाक्य सुनकर क्रोधसे प्रज्वलित शरीरवाली तुम यज्ञाग्निमें प्रवेश कर जाना। मैं इसकी पुत्री हूँ—इसीसे गर्वित होकर यह दक्ष शिवकी निन्दा कर रहा है। इसलिये तुम शीघ्र ही दक्षके उस गर्वको चूर-चूर कर दो। यज्ञाग्निमें तुम्हारे प्रविष्ट होनेकी बात सुनकर शोकसे संतप्त हृदयवाले भगवान् महेश्वर यहाँ निश्चितरूपसे आयेंगे और सभी देवताओं तथा यज्ञकी रक्षा करनेमें संलग्न विष्णुको पराजित करके यज्ञको नष्ट कर देंगे और पिताका वध कर डालेंगे ॥ ५६—६० $\frac{१}{२}$ ॥

एवमुक्त्वा महाकाली छायाकालीं हसन्मुखी ॥ ६१ ॥
स्वयमन्तर्हिता भूत्वा देवी गगनमास्थिता।
भेरीमृदङ्गनादैश्च तूर्यशब्दैर्महोत्सवैः ॥ ६२ ॥
तत्राभवत्पुष्पवृष्टिरतीव मुनिपुङ्गव।
नैतदालोकितं कैश्चिद्देवैर्वापि महर्षिभिः ॥ ६३ ॥
तन्मायामोहितैस्तस्या निकटे संस्थितैरपि।
अथ छायासती क्रुद्धा प्राह दक्षं प्रजापतिम् ॥ ६४ ॥
किं निन्दसि सतीं मोहाद्देवदेवं सनातनम्।
वाचं नियच्छ कल्याणं यदीच्छसि सुदुर्मते ॥ ६५ ॥
छिन्दे जिह्वां महामूर्ख शिवनिन्दाकरामिमाम्।
चिरं यत्परमेशानो निन्दितः सुरसंसदि ॥ ६६ ॥
फलं समागतमिति तस्याद्यैव हि लक्षये।
यो निन्दति महेशानं सर्वलोकैककारणम् ॥ ६७ ॥
शिरश्छिनत्ति तेषां स परमात्मा सदाशिवः।

दक्ष उवाच

बालिके स्वल्पमतिके मा पुनर्ब्रूहि मेऽग्रतः ॥ ६८ ॥
जानामि तं दुराचारं प्रेतभूमिनिवासिनम्।
स्वयं समार्जितं बुद्ध्या पतिं भूतगणाधिपम् ॥ ६९ ॥
गत्वा स्वयोग्यं परमं सुखमाप्नोषि दुर्मते।
अहं प्रजापतिर्दक्षो देवदेवीषु गोचरः ॥ ७० ॥
ममाग्रे किं शिवं स्तौषि यच्छ्रोतुं नैव शक्यते।

छायासत्युवाच

पुनर्ब्रवीमि हे दक्ष यदि कल्याणमिच्छसि ॥ ७१ ॥
त्यज पापमतिं भक्त्या भज देवं सदाशिवम्।
यदि मोहात्परात्मानं पुनर्निन्दसि शंकरम् ॥ ७२ ॥
तदा त्वां समखं शम्भुर्नाशयिष्यति निश्चितम्।

छायाकालीसे ऐसा कहकर मुसकानभरे मुखवाली महाकाली स्वयं अन्तर्धान होकर आकाशमें स्थित हो गयीं ॥ ६१ ॥ मुनिश्रेष्ठ! उस समय भेरी, मृदङ्ग और तुरही आदि बाजे बजने लगे, महोत्सव होने लगे और भारी पुष्पवर्षा होने लगी। उन देवीके निकट रहनेपर भी उनकी मायासे मोहित होनेके कारण किसी देवता और महर्षिने यह सब नहीं देखा ॥ ६२-६३½ ॥ इसके बाद छायासतीने क्रुद्ध होकर दक्षप्रजापतिसे कहा—तुम अज्ञानवश देवाधिदेव सनातन शिव तथा मुझ सतीकी निन्दा क्यों कर रहे हो? दुर्बुद्धि! यदि कल्याण चाहते हो तो अपनी वाणीपर नियन्त्रण रखो, अन्यथा महामूर्ख! शिवकी निन्दा करनेवाली तुम्हारी इस जीभको मैं काट दूँगी। जो तुम देवसभामें बहुत कालसे परमेश्वर शिवकी निन्दा करते रहे हो, उसका फल आज ही तुम्हें मिल जायगा, ऐसा मुझे लगता है। जो मनुष्य सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कारण महेशान शिवकी निन्दा करता है, वे परमात्मा सदाशिव उसका सिर काट देते हैं ॥ ६४—६७½ ॥

दक्ष बोले—अल्प बुद्धिवाली बालिके! मेरे सामने ऐसी बात फिर मत बोलना। श्मशानमें रहनेवाले उस दुराचारीको मैं जानता हूँ। दुर्मति! तुमने स्वयं ही अपनी बुद्धिसे भूतगणोंके अधिपति शिवको पतिरूपमें वरण किया है। अब उसीके पास जाकर अपने योग्य परम सुख प्राप्त कर रही हो। मैं प्रजापति दक्ष हूँ—ऐसा सभी देवताओं तथा देवियोंको मालूम है। मेरे आगे तुम शिवकी प्रशंसा क्यों कर रही हो, जिसे मैं सुन ही नहीं सकता ॥ ६८—७०½ ॥

छायासती बोलीं—दक्ष! मैं फिर कह रही हूँ कि यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो पापबुद्धिका त्याग कर दो और भक्तिपूर्वक भगवान् सदाशिवकी उपासना करो। यदि तुम पुनः अज्ञानवश परमात्मा शिवकी निन्दा करोगे तो वे शम्भु निश्चितरूपसे यज्ञसहित तुम्हें नष्ट कर डालेंगे ॥ ७१-७२½ ॥

दक्ष उवाच

कुपुत्रि दुश्चरित्रा त्वं चक्षुषोर्मे बहिर्भव॥ ७३॥

प्राप्ता यदा पतिं शम्भुं तदैव त्वं मृतासि मे।
पुनः पुनः स्मारयसि कथं रुद्रं निजं पतिम्॥ ७४॥

तुषानल इवान्तःस्थो येन मे वर्धतेऽनलः।
त्वं मे कुपुत्रि दुर्बुद्धिः शिवं पतिमुपागता॥ ७५॥

त्वद्दर्शनेन मद्देहो दह्यते शोकवह्निना।
सा त्वं मे चक्षुषोर्बाह्यं शीघ्रं भव दुरात्मिके॥ ७६॥

भर्तुर्गुणानुवादं ते मा कुरुष्व ममाग्रतः।

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्ता तु सा देवी छायाकाली रुषान्विता॥ ७७॥

दधौ भयानकां मूर्तिं ज्वलन्नेत्रत्रयोज्ज्वलाम्।
नक्षत्रलोकसम्प्राप्तमस्तकां विस्तृताननाम्॥ ७८॥

आपादलम्बिसंमुक्तकेशपाशविराजिताम्।
मध्याह्नार्कसहस्राभां युगान्तजलदप्रभाम्॥ ७९॥

ततः सा क्रोधदीप्ताङ्गी साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
कृत्वा गम्भीरया वाचा दक्षमाह महेश्वरी॥ ८०॥

अहं ते चक्षुषोर्बाह्यं भविष्यामि न केवलम्।
त्वज्जातदेहबाह्यापि भविष्याम्यचिरादिह॥ ८१॥

एवं छायासती देवी क्रोधाद्दीप्तविलोचना।
पश्यतां सर्वदेवानां यज्ञवह्नौ समाविशत्॥ ८२॥

ततश्चचाल वसुधा वायुः सुतुमुलो ववौ।
पेतुः सूर्यं विनिर्भिद्य महोल्का धरणीतले॥ ८३॥

दिशश्च व्याकुला ह्यासन् ववर्षुः शोणितं घनाः।
देवाः सर्वे विवर्णाः स्युः कुण्डेऽग्निर्निर्ववौ ततः॥ ८४॥

शृगालकुक्कुरैर्हव्यं भक्षितं यज्ञमण्डपे।
श्मशानवद्यज्ञगृहं समभूच्च क्षणार्धतः॥ ८५॥

दक्षोऽपि म्लानवदनो निःश्वासान्मुमुचे मुहुः।
पुनर्यथाकथञ्चिच्च यज्ञं प्रावर्तयन् द्विजाः॥ ८६॥

दक्ष बोले—कुपुत्री! तुम बुरे चरित्रवाली हो, मेरे नेत्रोंके सामनेसे हट जाओ। मेरे लिये तो तुम उसी समयसे मर चुकी हो जब तुमने शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया था। तुम मुझे बार-बार अपने पति रुद्रकी याद क्यों दिला रही हो? जिससे कि मेरे अंदर स्थित क्रोधाग्नि भूसीकी आगकी तरह बढ़ती जा रही है। कुपुत्री! दुष्टबुद्धिवाली तुमने शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया है, अतः तुम्हें देखनेसे मेरा शरीर शोकाग्निसे दग्ध हो रहा है। दूषित अन्तःकरणवाली! तुम शीघ्र ही मेरी आँखोंसे दूर हो जाओ। मेरे समक्ष अपने पतिका गुणगान मत करो॥ ७३—७६ १/२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] दक्षके ऐसा कहनेपर उन भगवती छायाकालीने कोपाविष्ट होकर भयंकर रूप धारण कर लिया। उनके जाज्वल्यमान तीनों नेत्र अत्यन्त प्रकाशित थे, उनका मस्तक नक्षत्रलोक पहुँचा हुआ था, उनका मुख फैला हुआ था, पैरोंतक लटकनेवाले खुले हुए केशपाशसे वे सुशोभित हो रही थीं, वे मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी कान्तिसे सम्पन्न थीं और प्रलयकालके बादलोंके समान प्रतीत हो रही थीं॥ ७७—७९॥

तत्पश्चात् क्रोधसे दीप्त अङ्गोंवाली उन महेश्वरीने बार-बार अट्टहास करके गम्भीर वाणीमें दक्षसे कहा—मैं केवल आपकी आँखोंसे ही दूर नहीं हो जाऊँगी, अपितु आपसे उत्पन्न इस देहसे भी अविलम्ब दूर हो जाऊँगी॥ ८०-८१॥ इस प्रकार क्रोधसे प्रदीप्त नेत्रोंवाली छायासती सभी देवताओंके देखते-देखते यज्ञाग्निमें प्रवेश कर गयीं॥ ८२॥ उसके बाद पृथ्वी हिलने लगी, महाप्रचण्ड वायु बहने लगी और सूर्यको भेदकर बड़े-बड़े उल्कापिण्ड पृथ्वीतलपर गिरने लगे। सभी दिशाएँ विक्षुब्ध हो उठीं, मेघ रक्त बरसाने लगे, समस्त देवतागण विकृत वर्णवाले हो गये। यज्ञकुण्डकी अग्नि बुझ गयी और सियार तथा कुत्ते यज्ञमण्डपमें रखी हवनीय सामग्री खाने लगे। इस प्रकार वह यज्ञमण्डप मात्र आधे ही क्षणमें श्मशानके रूपमें परिवर्तित हो गया। इससे दक्षप्रजापतिका मुख-मण्डल मलिन हो गया और वे बार-बार गहरी साँसें छोड़ने लगे। इसके बाद ब्राह्मणोंने जिस किसी तरह फिरसे यज्ञ आरम्भ किया॥ ८३—८६॥

देवास्तु चकिता आसन् भयात्पशुपतेर्मुने।
ऊचुः परस्परं सर्वे देवाश्चापि महर्षयः॥ ८७॥

वार्ताऽशुभा क्षणेनैव सञ्चरत्यतिदूरतः।
अद्यैव श्रोष्यति शिवः सत्या देहविसर्जनम्॥ ८८॥

स तु क्रुद्धो महाराजो जगत्संहारकारकः।
न जाने कस्य किं कुर्यात्किंवा सृष्टिं विलोपयेत्॥ ८९॥

नारदस्तु सभामध्यादतर्कितरवोत्थितः।
कैलासं प्रययौ शीघ्रं महर्षिर्मुनिपुङ्गवः॥ ९०॥

मुने! भगवान् शिवके भयसे देवता अत्यन्त घबराये हुए थे। सभी देवता तथा महर्षिगण आपसमें कहने लगे कि यह अमङ्गलकारी बात क्षणभरमें ही दूरतक फैल जायगी और शिवजी आज ही सतीके देहत्यागका समाचार सुन लेंगे। जगत्का संहार करनेवाले वे महाराज शम्भु क्रुद्ध होकर न जाने किसका क्या कर डालेंगे अथवा हो सकता है वे सृष्टिका ही लोप कर दें॥ ८७—८९॥ इसके बाद मुनिश्रेष्ठ महर्षि नारद सभाके बीचसे चुपचाप उठकर शीघ्रतापूर्वक कैलासकी ओर चल दिये॥ ९०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे छायासत्यग्निप्रवेशो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥
॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'छायासत्यग्निप्रवेश' नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

सतीके यज्ञकुण्ड-प्रवेशका समाचार सुनकर भगवान् शंकरका शोकसे विह्वल होना, उनके तृतीय नेत्रकी अग्निसे वीरभद्रका प्राकट्य, वीरभद्रद्वारा दक्षका यज्ञ-विध्वंस कर उनका सिर काटना, ब्रह्माजीका भगवान् शंकरसे यज्ञ पूर्ण करनेकी प्रार्थना करना, भगवान् शंकरकी कृपासे दक्षका जीवित होना

श्रीमहादेव उवाच
अथागत्य मुनिश्रेष्ठो नारदो ब्रह्मणः सुतः।
अश्रुपूर्णेक्षणं प्राह देवदेवं त्रिलोचनम्॥ १॥

देवदेव नमस्तुभ्यं नारदोऽहं महेश्वर।
दक्षालयात्समायातो वार्तां त्वं श्रुतवान्नहि॥ २॥

दक्षयज्ञे गता देवी सती ते प्राणवल्लभा।
तव निन्दां ततः श्रुत्वा जहौ देहं रुषान्विता॥ ३॥

दक्षः सति सतीत्येवमाक्षिप्य स मुहुर्मुहुः।
पुनर्दधौ मनो यज्ञे देवा गृह्णन्ति चाहुतिम्॥ ४॥

श्रीमहादेवजी बोले—इसके बाद ब्रह्माजीके पुत्र मुनिश्रेष्ठ नारदजीने वहाँ (कैलासपर) आकर देवाधिदेव त्रिलोचन शिवजीसे अश्रुपूरित नेत्रोंसे कहा—देवदेव! आपको नमस्कार है। महेश्वर! मैं नारद दक्षप्रजापतिके घरसे आया हूँ। आपने यह समाचार सुना है या नहीं कि आपकी प्राणप्रिया सती दक्षप्रजापतिके यज्ञमें गयी हुई थीं। वहाँ आपकी निन्दा सुनकर उन्होंने क्रोधित होकर अपना देह त्याग दिया। दक्ष 'सती', 'सती' ऐसा बार-बार आक्षेप करके पुनः यज्ञ करनेमें लग गये और देवगण आहुति ग्रहण करने लगे॥ १—४॥

इति नारदवक्त्रात्स श्रुत्वा दुःखपरं वचः।
रुरोद बहुधा शोकाद्देवदेवस्त्रिलोचनः॥ ५ ॥
हा हा सति गता क्वासि त्यक्त्वा मां शोकसागरे।
त्वया विना कथं वाद्य जीवितं धारये ह्यहम्॥ ६ ॥
किं त्वं पितृगृहे गन्तुं निषिद्धा बहुधा मया।
तेन सञ्जातरोषा मां परित्यज्य गता शिवे॥ ७ ॥
विलप्यैवं बहुविधं महादेवस्त्रिलोचनः।
चुक्रोध रक्तनेत्रास्यो बभूव च महामुने॥ ८ ॥
रुद्रं क्रोधान्वितं दृष्ट्वा सर्वभूतानि तत्रसुः।
क्षुब्धमासीज्जगत्सर्वं चचाल वसुधा भृशम्॥ ९ ॥
अथोर्ध्वनयनादग्निः प्रादुरासीन्महाद्युतिः।
तस्मादग्नेः समभवदेकः परमपूरुषः॥ १० ॥
प्रदधन्महतीं मूर्तिं कालान्तकयमोपमः।
ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गाभनेत्रत्रयभयानकः॥ ११ ॥
विभूतिलिप्तसर्वाङ्गश्चन्द्रार्धकृतशेखरः।
मध्याह्नकोटिसूर्याभजटामण्डितमस्तकः॥ १२ ॥
स प्रणम्य महादेवं देवदेवं महेश्वरम्।



त्रिश्च प्रदक्षिणीकृत्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्॥ १३ ॥
किं पितः करवाण्यद्य ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
नाशयामि क्षणार्धेन यद्यनुज्ञां ददासि मे॥ १४ ॥
किमिन्द्राद्यान् सुरश्रेष्ठान्केशे धृत्वा तवाग्रतः।
आनयामि यमं मृत्युं नयामि वद चेद्विभो॥ १५ ॥
प्रतिज्ञा मे महेशान सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते।
यस्य त्वं शमनार्थाय कथयिष्यसि मामिह॥ १६ ॥
तथैव शमयिष्यामि अपि शक्रं सुरेश्वरम्।
अपि वैकुण्ठनाथश्चेत्तत्सहायं करिष्यति॥ १७ ॥
तदा तं कुण्ठितास्त्रं च करिष्येऽहं तवाज्ञया।

नारदके मुखसे यह महान् कष्टकारी बात सुनकर तीन नेत्रोंवाले देवाधिदेव शिवने शोकाकुल होकर बहुत तरहसे विलाप किया। हा सती! मुझे शोकसागरमें छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो? अब मैं तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगा? पिताके घर जानेके लिये मैंने तुम्हें अनेक तरहसे रोका था; शिवे! क्या उसीसे रुष्ट होकर तुम मेरा परित्याग करके चली गयी!॥ ५—७॥ महामुने! इस प्रकार बहुत तरहसे विलाप कर लाल-लाल नेत्रों तथा मुखवाले त्रिलोचन महादेव अत्यन्त कुपित हो उठे॥ ८॥ भगवान् रुद्रको कोपाविष्ट देखकर सभी प्राणी भयभीत हो गये, सारा जगत् अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठा और पृथ्वी डोलने लगी॥ ९॥ उनके ऊर्ध्वनेत्रसे अत्यन्त तेजस्वी अग्नि प्रादुर्भूत हुई और उस अग्निसे एक परम पुरुष उत्पन्न हुआ। विशाल विग्रह धारण करते हुए वह कालान्तक यमराजके समान प्रतीत हो रहा था और प्रज्वलित अग्निके स्फुलिङ्गोंकी आभावाले तीन भयानक नेत्रोंसे युक्त था। वह अपने समस्त अङ्गोंमें विभूति धारण किये हुए था, अपने ललाटपर उसने अर्धचन्द्रमाको मुकुटकी भाँति धारण कर रखा था और मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्योंकी आभा तथा जटाजूटसे उसका मस्तक सुशोभित हो रहा था॥ १०—१२॥ देवाधिदेव महेश्वर महादेवको प्रणाम करके तथा तीन बार उनकी प्रदक्षिणा कर उसने दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहा—पिताजी! मैं क्या करूँ? यदि आप मुझे आज्ञा प्रदान करें तो अभी आधे क्षणमें इस चराचर ब्रह्माण्डको नष्ट कर डालूँ। क्या इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंको उनके बाल पकड़कर आपके सामने ला दूँ? विभो! यदि आप कहें तो यमराजको भी मार डालूँ। महेशान! यह मेरी प्रतिज्ञा है मैं आपसे यह सच-सच कह रहा हूँ। जिसके शमनके लिये आप मुझसे इस समय कहेंगे मैं उसका शमन कर दूँगा। चाहे वह सुरश्रेष्ठ इन्द्र ही क्यों न हो। यदि वैकुण्ठनाथ विष्णु भी उसकी सहायता करने लगेंगे तो मैं आपकी आज्ञासे उन्हें भी कुण्ठित अस्त्रवाला कर दूँगा॥ १३—१७½ ॥

शिव उवाच

त्वं नाम्ना वीरभद्रोऽसि प्रमथानां पतिः स्वयम्॥ १८॥

गत्वा दक्षपुरं यज्ञं नाशयाशु ममाज्ञया।
तत्सहायाश्च ये देवा मां परित्यज्य चागताः॥ १९॥

तेषामपि नियन्ता त्वं भव वत्स ममाज्ञया।
मन्निन्दनरतं वक्त्रं दक्षस्यापि प्रजापतेः॥ २०॥

छिन्धि गच्छ द्रुतं तत्र मा चिरं कुरु हे सुत।
इत्युक्त्वा वीरभद्रं स महादेवस्त्रिलोचनः॥ २१॥

निःश्वासान्मुमुचे तस्माद्गणा जाताः सहस्त्रशः।
सर्वे ते भीमकर्माणः सर्वे युद्धविशारदाः॥ २२॥

गदासिमुशलप्रासशूलपाषाणपाणयः।
तैर्वृतो वीरभद्रश्च प्रणम्य परमेश्वरम्॥ २३॥

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा निर्जगाम महामतिः।
सिंहनादं ततः कृत्वा सर्वे ते प्रमथाः क्षणात्॥ २४॥

ययुर्दक्षपुरीं यत्र यज्ञमारब्धवान् हि सः।
अथ क्रुद्धो वीरभद्रः प्रमथानाह कोपितान्॥ २५॥

यज्ञं नाशयत क्षिप्रं विद्रावयत वै सुरान्।
ततस्ते प्रमथाः सर्वे बभञ्जुस्तं महाध्वरम्॥ २६॥

केचिदुत्पाट्य यूपांश्च चिक्षिपुश्च दिशो दश।
कश्चिन्निर्वापयामास कुण्डं हव्यं तथापरे॥ २७॥

बुभुजुः क्रोधताम्राक्षा देवान् व्यद्रावयंस्तथा।
एवं विध्वंसितं यज्ञं प्रमथैर्भीमरूपिभिः॥ २८॥

दृष्ट्वा विष्णुरथागत्य प्रमथानब्रवीद्वचः।
कथं विनाशितो यज्ञो युष्माभिर्देवता अपि॥ २९॥

कथं विद्राविता यूयं के तद्वदत मा चिरम्।

प्रमथा ऊचुः

वयं श्रीदेवदेवेन प्रेषिताः प्रमथाः प्रभो॥ ३०॥

शिवापमानजनकं नाशयामो महाध्वरम्।

शिवजी बोले—तुम्हारा नाम वीरभद्र है और तुम प्रमथगणोंके अधिपति हो। मेरी आज्ञासे दक्षके नगरमें जाकर तुम शीघ्र ही उनके यज्ञको नष्ट कर डालो। वत्स! मेरा परित्याग करके जो देवतागण वहाँ गये हैं और उस दक्षकी सहायता कर रहे हैं, मेरी आज्ञासे तुम उनका भी निग्रह करो। मेरी निन्दा करनेमें संलग्न दक्षप्रजापतिका भी मुख काट डालो। पुत्र! वहाँ शीघ्र जाओ, विलम्ब मत करो॥ १८—२०½॥ वीरभद्रसे ऐसा कहकर त्रिनेत्रधारी महादेव शिवने लम्बी साँसें छोड़ीं, उनसे हजारों शिवगण उत्पन्न हो गये। वे सब-के-सब भयंकर कर्म करनेवाले तथा युद्धविद्यामें पूर्ण पारङ्गत थे। वे अपने हाथोंमें गदा, खड्ग, मुसल, प्रास, त्रिशूल तथा पाषाण आदि अस्त्र लिये हुए थे। २१-२२½॥ उन गणोंसे घिरे हुए महामति वीरभद्र परमेश्वर शिवको प्रणाम कर तथा तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करके वहाँसे चल पड़े॥ २३½॥

तत्पश्चात् वे सभी प्रमथगण सिंहनाद करते हुए क्षणभरमें ही दक्षपुरी पहुँच गये, जहाँ उसका यज्ञ चल रहा था॥ २४½॥ इसके बाद क्रोधयुक्त वीरभद्रने कोपाविष्ट प्रमथगणोंसे कहा—शीघ्र ही यज्ञका नाश कर दो और देवताओंको भगा दो॥ २५½॥ उसके बाद उन प्रमथगणोंने उस महायज्ञका विध्वंस कर डाला। कुछ गणोंने यज्ञके खम्भे उखाड़कर उन्हें दसों दिशाओंमें फेंक दिया, किसीने यज्ञकुण्डकी अग्नि बुझा दी तथा अन्य गण हव्य खाने लगे और क्रोधसे लाल-लाल आँखोंवाले कुछ गण देवताओंको खदेड़ने लगे॥ २६-२७½॥ इस प्रकार उन भयानक रूपवाले प्रमथगणोंके द्वारा ध्वस्त किये गये यज्ञको देखकर विष्णुने वहाँ आकर प्रमथगणोंसे यह वचन कहा—तुमलोगोंने यज्ञको क्यों नष्ट किया और देवताओंको क्यों भगा दिया? तुमलोग कौन हो? इन सभी बातोंको बताओ, देर मत करो॥ २८-२९½॥

प्रमथोंने कहा—प्रभो! हमलोग देवाधिदेव शिवके द्वारा भेजे गये प्रमथगण हैं। हम शिवको अपमानित करनेवाले इस महायज्ञको नष्ट कर रहे हैं॥ ३०½॥

अथाह प्रमथान् क्रुद्धो वीरभद्रः प्रतापवान्॥ ३१ ॥

क्व स दक्षो दुराचारः शिवद्वेषपरायणः।
क्व च ते हव्यभोक्तारो धृत्वानयत मत्पुरः॥ ३२ ॥

इत्याज्ञप्ता गणाः क्रुद्धाः प्राभ्यधावन् दिशो दश।
गृहीत्वा त्रिदशान् सर्वान् ममर्दुः क्रोधमूर्च्छिताः॥ ३३ ॥

केचित्सूर्यं प्रगृह्यैव दन्तपङ्क्तिमचूर्णयन्।
कश्चिदग्निं बलाद्धृत्वा जिह्वां तस्य समाच्छिनत्॥ ३४ ॥

भयात्पलायमानस्य यज्ञस्य मृगरूपिणः।
कश्चिच्छिरोऽच्छिनन्नासां सरस्वत्याश्च कश्चन॥ ३५ ॥

अर्यम्णश्चाच्छिनद्बाहू ओष्ठमङ्गिरसोऽपरः।
यमं बबन्ध कश्चिच्च नैर्ऋतं वरुणं तथा॥ ३६ ॥

प्रमथा ब्राह्मणान् दृष्ट्वा प्रणम्य विनयान्विताः।
भयं त्यजत हे विप्रा यात यातेति चाब्रुवन्॥ ३७ ॥

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणाः सर्वे वस्त्रालङ्करणादिकम्।
यज्ञलब्धं गृहीत्वैव प्रययुः स्वीयमालयम्॥ ३८ ॥

सहस्राक्षो महाबुद्धिर्मायूरं वपुरास्थितः।
उड्डीय पर्वतं गत्वा छन्नः कौतुकमैक्षत॥ ३९ ॥

एवं विद्रावितान् दृष्ट्वा प्रमथैर्देवपुङ्गवान्।
विष्णुर्नारायणो मौनी चिन्तयामास चेतसा॥ ४० ॥

दक्षो मूढमतिः शम्भुं विद्विषन्कुरुते मखम्।
तस्मै तादृक् फलं नो चेद्विफलं स्याच्छ्रुतीरितम्॥ ४१ ॥

शिवविद्वेषणेनैव विद्विष्टोऽस्मि न संशयः।
अहं शिवः शिवो विष्णुर्भेदो नास्त्यावयोर्यतः॥ ४२ ॥

इसी बीच प्रतापशाली वीरभद्रने क्रोधमें आकर प्रमथगणोंसे कहा—शिवके प्रति द्वेषभाव रखनेवाला वह दुराचारी दक्ष कहाँ है? और हवि ग्रहण करनेवाले देवगण कहाँ हैं? इन सभीको पकड़कर मेरे सामने ले आओ॥ ३१-३२॥ इस प्रकार आदेश पाकर प्रमथगण क्रोधित होकर दसों दिशाओंमें दौड़ पड़े। वे क्रोधाभिभूत होकर सभी देवताओंको पकड़-पकड़कर रौंदने लगे। कुछ गणोंने सूर्यको पकड़कर उनके दाँतोंको चूर-चूर कर दिया और किसी गणने अग्निदेवको बलपूर्वक पकड़कर उनकी जीभ काट ली। किसीने भयके मारे भागते हुए मृगरूपधारी यज्ञपुरुषका सिर काट लिया और किसीने देवी सरस्वतीकी नाक काट ली। किसी गणने अर्यमाकी दोनों भुजाएँ काट डालीं तो दूसरे गणने अङ्गिरा ऋषिका ओष्ठ ही काट लिया। किसी गणने यम, नैर्ऋत तथा वरुणदेवको बाँध लिया॥ ३३—३६॥ ब्राह्मणोंको देखकर उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम करके प्रमथगणोंने कहा—विप्रगण! आपलोग भयका त्याग कर दीजिये और यहाँसे चले जाइये। उसे सुनते ही सभी ब्राह्मण यज्ञमें प्राप्त वस्त्र, अलंकार आदि लेकर अपने-अपने घर चले गये॥ ३७-३८॥ परम बुद्धिमान् इन्द्रने मोरका रूप धारण कर लिया और उड़कर पर्वतपर जा करके वे छिपकर यह सब कौतुक देखने लगे॥ ३९॥

इस प्रकार प्रमथगणोंके द्वारा भगा दिये गये श्रेष्ठ देवताओंको देखकर नारायण विष्णु मौन होकर मन-ही-मन सोचने लगे—यह मूर्खबुद्धि दक्ष शिवसे विद्वेष करते हुए यज्ञ कर रहा है। तब यदि उसे वैसा फल नहीं मिलता तो वेदवचन ही निरर्थक हो जाता। शिवके प्रति दक्षका विद्वेष होनेसे निःसंदेह मेरे प्रति भी उसका द्वेषभाव ही हुआ; क्योंकि मैं ही शिव हूँ और शिव ही विष्णु हैं। इस प्रकार हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है॥ ४०—४२॥

अनेन विष्णुरूपेण प्रार्थितोऽस्मि विशेषतः।
निन्दितोऽस्मि महादेवस्वरूपेणाहमेव हि॥ ४३॥

अस्यापि भावद्वैविध्यं कर्मणा मनसापि च।
विधत्ते द्विविधं भावं करिष्याम्यहमेव तत्॥ ४४॥

रक्षिता विष्णुरूपेण संहर्ता शिवरूपतः।
कृत्वा स्नेहात्स्वयं युद्धं लब्ध्वा तत्र पराजयम्॥ ४५॥

रुद्ररूपेण तं दक्षं शमयिष्याम्यसंशयम्।
पश्चात्तु यज्ञं सम्पूर्णं करिष्यामि सुरैः सह॥ ४६॥

विष्णोराराधनस्यात्र फलमेतद्धि कीर्तितम्।
एवं निश्चित्य मनसा शङ्खचक्रगदाधरः॥ ४७॥

प्रमथान्वारयामास सिंहनादं मुमोच ह।
अथ क्रुद्धो वीरभद्रः प्राह विष्णुं सनातनम्॥ ४८॥

विष्णो यज्ञपुमांस्त्वं हि श्रूयतेऽस्मिन्महाध्वरे।
क्व स दक्षो दुराचारः शिवनिन्दापरायणः॥ ४९॥

समानीय स्वयं देहि न त्वं युद्धं मया कुरु।
प्रायशः शम्भुभक्तानां विशिष्टेषु त्वमग्रणीः॥ ५०॥

विद्वेषिणां हितायापि त्वं चाप्येको व्यवस्थितः।
ततः स्मित्वा प्राह विष्णुरहं योत्स्ये त्वया सह॥ ५१॥

विजित्य मां रणे दक्षं नय पश्यामि ते बलम्।
इत्युक्त्वा धनुरुद्यम्य शरजालमवाकिरत्॥ ५२॥

क्षतविक्षतसर्वाङ्गा गणास्तैरभवन् क्षणात्।
रक्तं वेमुश्च शतशो मूर्च्छिताश्च सहस्रशः॥ ५३॥

ततः स वीरभद्रोऽपि गदां चिक्षेप तं प्रति।
सा तद्देहमनुप्राप्य विदीर्णा शतधाभवत्॥ ५४॥

विष्णुश्चापि गदामेव प्रचिक्षेप रुषान्वितः।
वीरभद्रं समासाद्य साप्यासीत्तु महामुने॥ ५५॥

मैं दक्षके द्वारा इस विष्णुरूपसे विशेषरूपसे प्रार्थित हुआ और महादेवके रूपमें निन्दित भी मैं ही हुआ हूँ। इसका भी दो प्रकारका भाव है। यह कर्म तथा मनसे दो तरहका भाव रखता है। अतः मैं भी अब वही करूँगा। मैं विष्णुरूपसे रक्षक और शिवरूपसे संहारक बनूँगा। इस प्रकार स्नेहमिश्रित युद्ध करके और फिर उसमें पराजित होकर स्वयं रुद्ररूपसे उस दक्षका शमन भी करूँगा, इसमें संदेह नहीं है। इसके बाद मैं देवताओंको साथ लेकर यज्ञ पूर्ण करूँगा, यही विष्णुकी आराधनाका फल कहा गया है॥ ४३—४६½॥ इस प्रकार मनमें निश्चय करके शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने प्रमथगणोंको रोक दिया और वे सिंहनाद करने लगे॥ ४७½॥ इसके बाद वीरभद्रने क्रोधित होकर सनातन विष्णुसे कहा—विष्णो! आप ही यज्ञाधिपति हैं—ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं। इस महायज्ञमें शिवकी निन्दा करनेवाला वह दुराचारी दक्ष कहाँ है? उसे आप स्वयं लाकर मेरे हवाले कर दीजिये, नहीं तो आप मेरे साथ युद्ध कीजिये। प्रायः विशिष्ट शिवभक्तोंमें आप अग्रणी हैं और आप ही शिवके प्रति द्वेषभाव रखनेवालोंके हितके लिये तत्पर भी दिखायी दे रहे हैं॥ ४८—५०½॥

तत्पश्चात् विष्णुने मुसकराकर कहा—मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। मुझे युद्धमें पराजित कर दक्षको ले जाओ, मैं भी तुम्हारा पराक्रम देखता हूँ॥ ५१½॥ इतना कहकर विष्णुने धनुष उठाया और चारों ओर बाणोंका जाल-सा फैला दिया। उन बाणोंसे क्षणभरमें ही प्रमथगणोंके सभी अङ्ग क्षत-विक्षत हो गये। सैकड़ों गण रक्तका वमन करने लगे और हजारों बेहोश हो गये॥ ५२-५३॥ उसके बाद उस वीरभद्रने भी विष्णुको लक्ष्य करके गदा चलायी। उनके शरीरका स्पर्श करते ही उस गदाके सैकड़ों खण्ड हो गये। तब विष्णुने भी रोषमें आकर वीरभद्रकी ओर गदा चलायी। महामुने! वह

ततः पुनरमेयात्मा क्रोधाद्दीप्तविलोचनः।
जग्राहान्यामपि गदामद्रिसारमयीं क्षणात्॥ ५६॥

ततः खट्वाङ्गमादाय वीरभद्रो गदाधरम्।
संताड्य बाहुदण्डे तं गदां भूमौ न्यपातयत्॥ ५७॥

ततः प्रकुपितो विष्णुश्चक्रं चिक्षेप तं प्रति।
सुदर्शनं महाघोरं ज्वलन्तं निजतेजसा॥ ५८॥

तं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽपि शिवं संस्मार चेतसा।
तेन कण्ठगतं चक्रं मालेव विबभौ मुने॥ ५९॥

ततः क्रुद्धो रणे विष्णुः खड्गं सूर्यशतप्रभम्।
जग्राह वीरभद्रं च निहन्तुं सोऽभ्यधावत॥ ६०॥

ततः खड्गं च तं विष्णुं वीरभद्रः प्रतापवान्।
हुंकारेण महाबाहुस्तम्भयामास तत्क्षणात्॥ ६१॥

ततः संस्तम्भितं विष्णुं वीरभद्रः समभ्यगात्।
शूलमुद्गरमुद्यम्य निहन्तुं क्रोधमूर्च्छितः॥ ६२॥

ततोऽभवद्देववाणी वीरभद्र स्थिरो भव।
किमात्मानं विस्मृतोऽसि क्रोधमासाद्य चाहवे॥ ६३॥

यो विष्णुः स महादेवः शिवो नारायणः स्वयम्।
नानयोर्विद्यते भेदः कदाचिदपि कुत्रचित्॥ ६४॥

इति श्रुत्वा वीरभद्रो नत्वा विष्णुं शिवात्मकम्।
दक्षं गृहीत्वा केशेषु वाक्यमाह महामतिः॥ ६५॥

येन वक्त्रेण देवेशं शिवं परमपूरुषम्।
निनिन्दिथ त्वं तद्वक्त्रं प्रहरामि प्रजापते॥ ६६॥

इत्युक्त्वा सम्प्रहार्यैव दक्षवक्त्रं पुनः पुनः।
नखाग्रेण प्रचिच्छेद क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ६७॥

तथान्ये ये महादेवनिन्दामाकर्ण्य हर्षिताः।
तेषां जिह्वाः श्रुतीश्चापि चिच्छेद प्रमथाधिपः॥ ६८॥

गदा भी उसके पास आते ही उसी तरह सौ टुकड़ोंमें हो गयी। तदनन्तर क्रोधसे दीप्त नेत्रोंवाले अनन्तात्मा विष्णुने क्षणभरमें ही लौहमयी एक दूसरी गदा उठा ली। तत्पश्चात् खट्वाङ्ग लेकर वीरभद्रने उन गदाधर विष्णुके बाहुदण्डपर प्रहार करके उनकी गदा भूमिपर गिरा दी। इससे अत्यन्त कुपित विष्णुने अपने तेजसे प्रज्वलित महाभयंकर सुदर्शन चक्रको उस वीरभद्रके ऊपर चला दिया। मुने! उसे देखकर वीरभद्रने भी मनमें भगवान् शिवका स्मरण किया। उससे वीरभद्रके कण्ठतक पहुँचा हुआ वह चक्र मालाकी भाँति सुशोभित होने लगा॥ ५४—५९॥ तत्पश्चात् युद्धमें भगवान् विष्णुने क्रुद्ध होकर सैकड़ों सूर्योंकी कान्तिवाला खड्ग ले लिया और वे वीरभद्रको मारनेके लिये दौड़े। तब विशाल भुजाओंवाले प्रतापी वीरभद्रने उसी क्षण अपने हुंकारमात्रसे खड्ग तथा उन विष्णु—दोनोंको स्तम्भित कर दिया। उसके बाद क्रोधोन्मत्त वह वीरभद्र स्तम्भित हुए उन विष्णुको मारनेके लिये शूल तथा मुद्गर उठाकर उनकी ओर झपटा॥ ६०—६२॥ उसी बीच यह आकाशवाणी हुई—'वीरभद्र! रुक जाओ। युद्धमें इस तरहसे क्रोधको प्राप्त होकर क्या तुम अपनेको भूल गये हो। जो विष्णु हैं, वे ही महादेव हैं और जो शिव हैं वे ही स्वयं विष्णु हैं। इन दोनोंमें कभी कहीं कोई भी अन्तर नहीं है'॥ ६३-६४॥

यह सुनकर महामति वीरभद्रने शिवस्वरूप विष्णुको नमस्कार कर 'दक्षके केश पकड़कर' यह वचन कहा—प्रजापते! तुमने जिस मुखसे परम पुरुष देवेश्वर शिवकी निन्दा की है, अब मैं उसी मुखपर प्रहार करता हूँ॥ ६५-६६॥ ऐसा कहकर क्रोधसे अत्यन्त लाल नेत्रोंवाले वीरभद्रने दक्षके मुखपर बार-बार प्रहार करके अपने नखके अग्रभागसे उसे काट डाला। साथ ही जो लोग महादेवजीकी निन्दा सुनकर हर्षित हुए थे, प्रमथाधिपति वीरभद्रने उनकी भी जीभ तथा कान काट डाले॥ ६७-६८॥

एवं विनष्टे यज्ञे तु विधिः कैलासमभ्यगात्।
प्रणम्य च महादेवं विधिलोपं न्यवेदयत्॥ ६९॥

उवाच तं महादेवं कथमेवं करोषि वा।
सती नित्या जगद्धात्री जाता ब्रह्मस्वरूपिणी॥ ७०॥

तस्या देहपरिग्राह इति भ्रान्तं विडम्बनम्।
सा तु दक्षविमोहाय महामाया जगन्मयी॥ ७१॥

छायासती यज्ञकुण्डसन्निधौ स्थापिता तया।
सैव छाया यज्ञवह्नौ मोहार्थं वै प्रजापतेः॥ ७२॥

प्राविशत्प्राकृता देवी स्वयं गगनमास्थिता।
तद्धि किं त्वं न जानासि कथमेवं करोषि वा॥ ७३॥

आगच्छ देवदेवेश प्रणतेषु कृपां कुरु।
विधिसंरक्षकस्त्वं हि मा विधिं परिलोपय॥ ७४॥

अत्र यज्ञं समाप्यैव सहितोऽस्माभिरेव च।
सम्प्रार्थ्य परमेशानीं पुनर्द्रक्ष्यसि निश्चितम्॥ ७५॥

तदागच्छ महादेव दक्षस्य निलयं प्रति।
अनुगृह्णीष्व मां देव नान्यथा कर्तुमर्हसि॥ ७६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा शिवो दक्षालयं ययौ।
समागतं विलोक्यैव वीरभद्रो ननाम तम्॥ ७७॥

ततो ब्रह्मा पुनर्देवं सम्प्रार्थ्योवाच सम्भ्रमात्।
आज्ञापय महेशान पुनर्यज्ञः प्रवर्तताम्॥ ७८॥

ततः शम्भुर्वीरभद्रं समाज्ञापयदुत्सुकम्।
त्यज कोपं वीरभद्र पुनर्यज्ञं प्रकल्पय॥ ७९॥

इत्याज्ञप्तो वीरभद्रो महादेवेन तत्क्षणात्।
पूर्ववत्कल्पयामास यज्ञं देवानमोचयत्॥ ८०॥

ततो ब्रह्मा पुनः प्राह देवदेवं त्रिलोचनम्।
दक्षं जीवयितुं चाज्ञां विधेहि परमेश्वर॥ ८१॥

इस प्रकार यज्ञके विनष्ट हो जानेपर ब्रह्माजी कैलास पर्वतपर गये और भगवान् शिवको प्रणाम करके यज्ञविधानके लोपकी बात कहने लगे॥ ६९॥ ब्रह्माजीने महादेवजीसे कहा—आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? जगन्माता ब्रह्मस्वरूपिणी सती तो सनातन हैं। उनका देहग्रहण और जन्म लेना तो भ्रान्तिपूर्ण और विडम्बनामात्र है। वे तो जगद्व्यापिनी महामाया हैं। उन्होंने ही दक्षको मोहित करनेके लिये यज्ञकुण्डके पास छायासतीको स्थापित कर दिया था। दक्षप्रजापतिको मोहित करनेके उद्देश्यसे वही छाया यज्ञाग्निमें प्रवेश कर गयी और परा प्रकृति भगवती स्वयं आकाशमें विराजमान हो गयीं। क्या उस रहस्यको आप नहीं जानते हैं? फिर ऐसा क्यों कर रहे हैं?॥ ७०—७३॥ देवदेवेश! आइये और अपने शरणागतोंपर कृपा कीजिये। आप तो विधिका संरक्षण करनेवाले हैं, अतः विधिका लोप मत कीजिये। हमलोगोंके साथ वहाँ यज्ञ सम्पन्न करनेके पश्चात् परमेशानी सतीकी विधिवत् प्रार्थना करके आप उन्हें पुनः अवश्य ही देखेंगे। महादेव! अब आप दक्षप्रजापतिके घर चलिये। भगवन्! मुझपर अनुग्रह कीजिये, आपको अन्यथा नहीं करना चाहिये॥ ७४—७६॥ उनकी यह बात सुनकर शिवजी दक्षप्रजापतिके घर गये। वहाँ शिवको आया देखकर वीरभद्रने उन्हें प्रणाम किया॥ ७७॥ उसके बाद भगवान् शिवकी प्रार्थना करके ब्रह्माजीने उनसे पुनः आदरपूर्वक कहा—महेशान! अब आप आज्ञा दीजिये, जिससे यज्ञ पुनः आरम्भ हो सके॥ ७८॥

तब शिवजीने उत्सुक वीरभद्रको आज्ञा दी—वीरभद्र! क्रोध छोड़ो और यज्ञकी सारी व्यवस्था फिरसे कर दो॥ ७९॥ महादेवसे आज्ञा प्राप्त करके वीरभद्रने उसी क्षण पूर्वकी भाँति यज्ञको व्यवस्थित कर दिया और सभी देवताओंको बन्धनमुक्त कर दिया॥ ८०॥ उसके बाद ब्रह्माजीने देवाधिदेव त्रिलोचन शिवसे फिर कहा—परमेश्वर! अब दक्षको जीवित करनेके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ८१॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मणः प्राह शंकरः।
वीरभद्र महाबाहो दक्षं जीवय जीवय॥ ८२॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्य बुद्धिमान्।
दत्त्वैकं छागमुण्डं तु स दक्षं समजीवयत्॥ ८३॥
ईश्वरं ये विनिन्दन्ति ते मूकाः पशवो ध्रुवम्।
एवं विविच्य दक्षाय छागमुण्डं ददौ मुने॥ ८४॥
ब्रह्मणा प्रार्थिताः सर्वे निर्भीताः पुनराययुः।
दत्त्वाहुतिं महेशाय दक्षो यज्ञं समापयत्॥ ८५॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च दक्षं प्राह प्रजापतिम्।
शिवं पूजय देवेशं नानास्तुतिभिरादरात्॥ ८६॥
चिरं विनिन्द्य देवेशं यत्पापं समुपार्जितम्।
तस्माद्विमुक्तिकामस्त्वं स्तुहि देवं सनातनम्॥ ८७॥
आशु तुष्यत्ययं देवः स्वभावाच्छिवनामतः।
न चास्य स्थास्यति तदा वैरस्यं त्वत्कृते पुनः॥ ८८॥
तयोरिति वचः श्रुत्वा दक्षस्तं प्रणनाम ह।
स्तोतुं समारभद्देवं परमेश्वरमव्ययम्॥ ८९॥

दक्ष उवाच

न त्वां जानाति विष्णुर्न च कमलरुहो योगविद्योगमुख्य
एवं दुर्गम्यरूपं कथमतिकुमतिर्ज्ञातुमेवास्य योग्यः।
त्वं सर्वेषां च बुद्धिस्तव मतिवशगाः सर्व एवेह लोका-
स्तत्को मे वापराधस्तव मतिवशगस्यास्ति ते निन्दनेन॥ ९०॥



उन ब्रह्माकी वह बात सुनते ही भगवान् शंकरने कहा—वीरभद्र! महाबाहु! दक्षको अब अवश्य ही जीवित कर दो॥ ८२॥ देवाधिदेव शंकरका वचन सुनकर बुद्धिमान् उस वीरभद्रने एक बकरेका सिर जोड़कर दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया॥ ८३॥ जो लोग ईश्वरकी निन्दा करते हैं, वे निश्चय ही गूँगे पशु हैं। मुने! ऐसा विचार करके वीरभद्रने दक्षको बकरेका सिर जोड़ा था॥ ८४॥ ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर सभी देवादि भयमुक्त होकर पुनः आ गये। दक्षप्रजापतिने महेश्वरको आहुति देकर यज्ञका समापन किया॥ ८५॥ उसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुने दक्षप्रजापतिसे कहा—अनेक स्तुतियोंके द्वारा आदरपूर्वक शिवकी आराधना कीजिये। बहुत दिनोंतक देवेश्वर शिवकी निन्दा करके आपने जो पाप अर्जित किया है, उससे मुक्तिकी इच्छा रखते हुए आप सनातन भगवान् शिवकी स्तुति कीजिये। ये भगवान् शिव स्वभावसे ही आशुतोष हैं और शिव नाम लेनेमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं। आपके प्रति इनकी अप्रसन्नता तब नहीं रहेगी॥ ८६—८८॥ उन दोनोंकी यह बात सुनकर दक्षने शाश्वत परमेश्वर महादेवको प्रणाम किया और उनका स्तवन करना आरम्भ किया॥ ८९॥

दक्ष बोले—आपको तत्त्वतः न तो विष्णु, न ब्रह्मा और न मुख्य योगीगण ही जान पाते हैं। अतः दुर्बुद्धि मैं आपके उस दुर्गम्य स्वरूपको जाननेमें कैसे समर्थ होता? आप ही सबके बुद्धितत्त्व हैं। आपकी इच्छाके अधीन ही ये सभी लोक हैं। तब आपकी इच्छाके वशीभूत मेरे द्वारा आपकी निन्दा करनेसे मेरा कैसा अपराध हुआ?॥ ९०॥

त्वं शुद्धः परमः परात्परतरो ब्रह्मादिदेवार्चितः
किं तेऽहं चरितं वदामि परमं किं वा स्वरूपं तव।
दासोऽहं शरणागतस्तव पदद्वन्द्वं विना का गतिः
शम्भो तन्मेऽपराधं क्षमसि निजगुणैस्त्राहि पापार्णवान्माम्॥ ९१ ॥

त्वं देवः परमेश्वरो जगति ये दीना महान्तोऽपि च
ते सर्वे तव मूर्तयः पशुपते त्वं विश्वरूपो यतः।
तस्मिन्नेव हि संस्थिते मम कथं निन्दाकृतं पातकं
दीनं मां शरणागतं करुणया विश्वेश्वर त्राहि माम्॥ ९२ ॥

त्वत्पादपङ्कजरजः शिरसा विधृत्य
ब्रह्मा हरिश्च सुरवृन्दविवन्द्यपादः।
यत्त्वां सभागतमिहात्मदृशा सुरेशं
पश्यामि भाग्यमतुलं मम पूर्वजानाम्॥ ९३ ॥

त्वं कुबुद्धिः सुबुद्धिश्च सर्वेषां देहिनामिह।
निन्दनीयश्च वन्द्यश्च नापराधस्ततो मम॥ ९४॥

एवं सम्प्रार्थितः शम्भुराशुतोषः प्रजापतिम्।
आकृष्य निजपाणिभ्यामुद्दधार दयानिधिः॥ ९५ ॥

शिवाङ्गस्पर्शनादेव कृतकृत्यः प्रजापतिः।
जीवन्मुक्तमिवात्मानं मेने भाग्यं महत्तरम्॥ ९६ ॥

विविधैरुपहारैश्च पूजयामास शङ्करम्।
कायेन मनसा वाचा भक्त्या परमया युतः॥ ९७॥

आप शुद्ध परम परात्पर तत्त्व हैं तथा ब्रह्मा आदि देवताओंके द्वारा पूजित हैं। मैं आपके महान् चरित्र तथा स्वरूपका वर्णन कैसे करूँ? मैं आपकी शरणमें आया हुआ दास हूँ। आपका चरणयुगल छोड़कर मेरे लिये दूसरा अवलम्ब ही क्या है? शम्भो! आप मेरे उस अपराधको क्षमा कीजिये और अपने कृपागुणोंसे पापरूपी सागरसे मेरा उद्धार कीजिये॥ ९१॥ पशुपते! आप भगवान् परमेश्वर हैं। इस जगत्में जो भी निर्बल अथवा महान् लोग हैं, वे सब आपके ही रूप हैं; क्योंकि आप विश्वरूप हैं। उस आप परमेश्वरके विद्यमान रहते मेरे द्वारा की गयी निन्दासे उत्पन्न पाप भला कैसे रह सकता है? विश्वेश्वर! कृपापूर्वक मुझ शरणागत तथा दीनकी रक्षा कीजिये॥ ९२॥

आपके चरणकमलके परागको अपने सिरपर धारण करके ही ब्रह्मा तथा विष्णु समस्त देवताओंके द्वारा वन्दित चरणवाले हो पाये हैं। इस सभामें आये हुए आप सुरेश्वरको जो मैं अपने नेत्रसे देख पा रहा हूँ, वह तो मेरे पूर्वजोंका अतुलनीय भाग्य है॥ ९३॥ इस जगत्में सभी देहधारियोंमें कुबुद्धि तथा सुबुद्धिके रूपमें आप ही हैं। आप ही सबकी निन्दा तथा वन्दनके पात्र हैं, अतः मेरा कोई अपराध नहीं है॥ ९४॥ दक्षके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर आशुतोष दयासिन्धु भगवान् शिवने अपने दोनों हाथोंसे उन्हें खींचकर उठा लिया॥ ९५॥

शिवके अङ्गके स्पर्शमात्रसे ही दक्षप्रजापति कृतकृत्य हो गये और अपनेको जीवन्मुक्तके समान तथा महान् भाग्यशाली समझने लगे॥ ९६॥ मन, वाणी तथा शरीरसे परम भक्तिसे सम्पन्न होकर दक्षप्रजापतिने अनेकविध उपहारोंके द्वारा शंकरका बहुत सत्कार किया॥ ९७॥

ततो ब्रह्मा महादेवं पुनः प्रोवाच भक्तितः।
भक्तानुकम्पी भगवान् त्वमेव हि सदाशिवः॥ ९८ ॥

सानुग्रहेण भवता निशम्य वचनं मम।
यतः प्रजापतिर्दक्षो रक्षितः परमेश्वर॥ ९९ ॥

विहाय देवास्त्वां यज्ञे यास्यन्ति यदि कुत्रचित्।
तादृशीं च दशां नूनं लभिष्यन्त्येव तत्क्षणात्॥ १०० ॥

ये त्वां विना सुराश्चान्यान्यजन्ते च नराधमाः।
हतयज्ञा भविष्यन्ति महापातकिनश्च ते॥ १०१ ॥

उसके बाद ब्रह्माजीने महादेवजीसे पुनः भक्तिपूर्वक कहा—परमेश्वर! एकमात्र आप भगवान् सदाशिव ही भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं; क्योंकि आपने अनुग्रहपूर्वक मेरी प्रार्थना सुनकर दक्षप्रजापतिकी रक्षा की। आपको छोड़कर यदि देवतागण कहीं भी यज्ञमें जायँगे तो वे उसी क्षण निश्चय ही पूर्वोक्त दशाको प्राप्त होंगे। जो नराधम यज्ञमें आपके बिना अन्य देवताओंका यजन करेंगे, उनका यज्ञकार्य नष्ट हो जायगा और वे महापापके भागी होंगे॥ ९८—१०१ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

त्रिदेवोंद्वारा जगदम्बिकाकी स्तुति करना, देवीका भगवान् शंकरको पार्वतीरूपमें पुनः प्राप्त होनेका आश्वासन देना, छायासतीकी देह लेकर शिवका प्रलयंकारी नृत्य करना, भगवान् विष्णुका सुदर्शन चक्रसे सतीके अङ्गोंको काटना और उनसे इक्यावन शक्तिपीठोंका प्रादुर्भाव

श्रीमहादेव उवाच

एवं यज्ञे तु सम्पूर्णे महादेवः पुनः पुनः।
सतीवियोगदुःखार्तो रुरोद प्राकृतो यथा॥ १ ॥

ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च तमुवाच महेश्वरम्।
किं रोदिषि महाज्ञानिन् भ्रान्तवत्त्वं विमोहितः॥ २ ॥

पूर्णब्रह्ममयी देवी जगदम्बा सनातनी।
महाविद्या विश्वकर्त्री विश्वचैतन्यरूपिणी॥ ३ ॥

यस्या मायावशात्सर्वे वयं चापि विमोहिताः।
तस्या देहपरित्याग इति भ्रान्तिविडम्बनम्॥ ४ ॥

मृत्युञ्जयस्त्वं भगवान्यत्प्रसादान्महेश्वर।
तस्या देहपरित्यागो मोहमात्रं न वास्तवम्॥ ५ ॥

वयं त्रयस्तु पुरुषास्तस्या एव हि मूर्तयः।
एषा तु तव निन्दा न तस्या निन्दा प्रजायते॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार यज्ञके सम्पूर्ण होनेपर सतीके वियोगसे दुःखी शिव साधारण मनुष्योंके समान बार-बार रुदन करने लगे॥ १ ॥ तब ब्रह्मा और विष्णुने उन भगवान् शिवसे कहा—महाज्ञानी! आप अज्ञानीके समान मोहग्रस्त होकर क्यों रुदन कर रहे हैं?॥ २ ॥ वे देवी जगदम्बा तो सनातन पूर्णब्रह्मस्वरूपा हैं। वे ही महाविद्या हैं, समस्त विश्वकी सृष्टि करनेवाली हैं और सर्वचैतन्यस्वरूपिणी हैं। जिनकी मायाके प्रभावसे सम्पूर्ण संसार तथा हम सभी विमोहित हैं, उनके द्वारा शरीर छोड़नेकी बात तो भ्रान्तिपूर्ण विडम्बना ही है॥ ३-४ ॥ प्रभो! महेश्वर! जिनकी कृपासे आप मृत्युञ्जय हैं, उनकी मृत्यु तो वास्तविक नहीं है। यह भ्रममात्र ही है॥ ५ ॥ हम तीनों पुरुष (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) भी उन्हींके स्वरूप हैं। इस बातसे (अर्थात् भगवतीको मृत मानकर प्राकृत पुरुषकी भाँति विलाप करनेसे) आपहीकी निन्दा ध्वनित होती है, उनकी नहीं॥ ६ ॥

तन्निन्दा तु महापापजनिका परमेश्वर।
यस्य सञ्जायते पापं सा तं त्यजति निश्चितम्॥ ७ ॥
धर्मिष्ठं सा महादेवी न जहाति कदाचन।
अधर्मिणः परित्यागे न पित्रादिविवेचना॥ ८ ॥
विद्यतेऽस्या धर्ममात्रं सम्बन्धो न तु लौकिकः।
धर्मं यः कुरुते सोऽस्याः पिता माता च बान्धवः॥ ९ ॥
अधर्मकारी परमः शत्रुरेव न बान्धवः।
तस्मात्प्रजापतिर्दक्षं तन्निन्दनपरायणम्॥ १० ॥
कृतपापं विलोक्यैव सा तत्याज महेश्वरी।
यद्यस्य पुत्रीभावेन सा तिष्ठति परा स्वयम्॥ ११ ॥
तदा कथं स्याद्दमनं दुर्दान्तस्य प्रजापतेः।
इत्यस्मात्सा महादेवी धर्मकर्मफलप्रदा॥ १२ ॥
त्यक्त्वातिपापिनं पूर्वं स्वयं स्वस्थानमाययौ।
सा क्षणेनापि किं हन्तुमसमर्था प्रजापतिम्॥ १३ ॥
तथापि यत्कृतोपेक्षा तल्लोकान् प्रति शिक्षितुम्।
धर्मोपदेशकर्त्री सा यद्येवं न समाचरेत्॥ १४ ॥
तदा लोकाः कथं धैर्यं विदध्युः पितरं प्रति।
तस्मात्सा परमा नित्या मोहयन्ती प्रजापतिम्॥ १५ ॥
माययान्तर्हिता भूत्वा स्वयं गगनमास्थिता।
शोकं त्यज महादेव वह्नौ छायासती गता॥ १६ ॥

शिव उवाच

यदुक्तं सत्यमेवैतत्सती मे प्रकृतिः परा।
नित्या ब्रह्ममयी सूक्ष्मा नैव देहं जहौ स्वयम्॥ १७ ॥
किंतु कुत्र गता सा मे सती प्राणैकवल्लभा।
पश्यामि चेच्छान्तमना भवामि परमेश्वरीम्॥ १८ ॥

ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऊचुः

स्तुवीमस्तां जगद्धात्रीं सर्वलोकैकवन्दिताम्।
तदैव सुप्रसन्ना सा पुनर्दृश्या भविष्यति॥ १९ ॥

परमेश्वर! उन भगवतीकी निन्दा घोर पापको उत्पन्न करनेवाली है, जिसके द्वारा इस प्रकारका पाप होता है, उसका वे निश्चय ही त्याग कर देती हैं॥ ७॥ वे महादेवी धर्मशील पुरुषका कभी त्याग नहीं करतीं। अधर्मीका त्याग करनेमें वे पिता आदि सम्बन्धोंका भी विचार नहीं करतीं॥ ८॥ उनका सम्बन्ध तो मात्र धर्मसे ही रहता है न कि लौकिक कारणोंसे। जो धर्माचरण करता है, वही उनका पिता, माता और बान्धव है॥ ९॥ जो अधर्म करनेवाला है, वह उनका बान्धव नहीं परम शत्रु है। इसी कारण भगवान् शिवकी निन्दारूपी पापमें रत देखकर दक्षप्रजापतिका उन महेश्वरीने त्याग कर दिया। यदि वे पराम्बा दक्षकी पुत्रीके भावमें स्थित होतीं तो दुर्दान्त दक्षप्रजापतिका दमन कैसे होता? इसलिये धर्म-कर्मके फलको प्रदान करनेवाली वे महादेवी उस महापापीका त्याग करके स्वयं अपने धाममें चली आयीं॥ १०—१२$\frac{1}{2}$॥

क्या वे क्षणमात्रमें ही प्रजापतिका संहार करनेमें असमर्थ थीं? फिर भी उन्होंने इसकी जो उपेक्षा की वह लोकशिक्षणके लिये था। धर्मका उपदेश करनेवाली वे भगवती यदि ऐसा आचरण नहीं करतीं तो लोग पिताके प्रति सहिष्णु कैसे हो पाते? इसलिये वे नित्या परमा शक्ति प्रजापति दक्षको अपनी मायासे मोहित करते हुए और स्वयं अपनी मायाशक्तिसे अन्तर्धान होकर गगन-मण्डलमें स्थित हो गयीं। महादेव! आप शोकका त्याग करें; क्योंकि अग्निमें तो सतीकी छायाने ही प्रवेश किया है॥ १३—१६॥

शिवजी बोले—आपलोगोंने जो कुछ कहा वह सत्य ही है। सती मेरी परा प्रकृति हैं। वे नित्या, ब्रह्ममयी और सूक्ष्मरूपा हैं। उन्होंने स्वयं अपनी देहका त्याग नहीं किया है। किंतु वे मेरे प्राणोंकी एकमात्र प्रियतमा सती कहाँ चली गयीं? (इस भावनासे मुझे व्याकुलता होती है) पुनः जब मैं शान्तचित्त होता हूँ तो उन्हें परमेश्वरीके रूपमें देखता हूँ॥ १७-१८॥

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र बोले—उन सर्वलोककी एकमात्र वन्दिता जगज्जननीकी हमलोग स्तुति करते हैं, तभी प्रसन्न होकर वे पुनः दर्शन देंगी॥ १९॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं निश्चित्य ते देवाः शम्भुना सह नारद।
तुष्टुवुस्तां महादेवीं साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ २०॥

ब्रह्मविष्णुशिवा ऊचुः

त्वं नित्या परमा विद्या जगच्चैतन्यरूपिणी।
पूर्णब्रह्ममयी देवी स्वेच्छया धृतविग्रहा॥ २१॥

अद्वैतं ते परं रूपं वेदागमसुनिश्चितम्।
नमामो ब्रह्म विज्ञानगम्यं परमगोपितम्॥ २२॥

सृष्ट्यर्थं सशरीरा त्वं प्रधानं पुरुषः स्वयम्।
कल्पितं श्रुतिभिस्तेन द्वैतरूपा त्वमुच्यसे॥ २३॥

तत्रापि त्वां विनाऽपूर्णः पुरुषः शवरूपवत्।
अतः सर्वेषु देवेषु तव प्राधान्यमुच्यते॥ २४॥
तां त्वामेवंविधां देवीमचिन्त्यचरिताकृतिम्।
किं खर्वबुद्धयस्तोतुं समर्थाः स्मो वयं शिवे॥ २५॥

अस्मांश्च स्वेच्छया त्वं हि सृष्ट्वा संहरसि स्वयम्।
तस्मात्स्तोतुं समर्थः को भवेदिह जगत्त्रये॥ २६॥

त्वन्मायामोहिताः सर्वे ज्ञानिनो मानवा इव।
वयं तत्त्वां कथं स्तोतुं शक्ताः स्मः परमेश्वरीम्॥ २७॥

त्वमस्माकं चेतना च बुद्धिः शक्तिस्तथैव च।
विना त्वां शववत्सर्वे स्तोष्यामस्त्वां कथं वयम्॥ २८॥

यत्त्वं गुणैस्त्रिभिर्बद्ध्वा विमोहयसि मायया।
अज्ञानिन इवास्मांश्च कस्त्वां विज्ञातुमुत्सहेत्॥ २९॥

दृष्टं तु तादृशं रूपमस्माभिर्दक्षवेश्मनि।
तथैव दर्शनं देहि कृपया परमेश्वरि॥ ३०॥

त्वामदृष्ट्वा जगद्धात्रीं विवर्णाः स्मो महेश्वरीम्।
ततः प्राणमिवात्मानं लक्षयामः शवा वयम्॥ ३१॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारद! भगवान् शिवके साथ वे देवगण ऐसा निश्चय करके साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी महादेवीकी स्तुति करने लगे॥ २०॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव बोले—आप नित्या, परमा विद्या, जगत्में चैतन्यरूपसे व्याप्त और पूर्ण-ब्रह्मस्वरूपा देवी हैं। आप स्वेच्छासे शरीर धारण करती हैं। आपका वह परम रूप वेद और आगमसे सुनिश्चित अद्वैत ब्रह्म ही है। अपरोक्षानुभूतिसे जाननेयोग्य तथा परम गोपनीय आपको हम नमस्कार करते हैं॥ २१-२२॥ आप सृष्टिके निमित्त प्रकृति और पुरुषके रूपमें स्वयं ही शरीर धारण करती हैं, इसलिये वेदोंके द्वारा आपको कल्पित द्वैतरूपा कहा गया है। उस सृष्टिप्रक्रियामें भी आपके बिना पुरुष अपूर्ण और शवके समान ही है। अतः सभी देवताओंमें आपकी प्रधानता कही जाती है॥ २३-२४॥

शिवे! इस प्रकारकी अचिन्त्य रूप और लीलावाली आपकी स्तुति करनेमें हम अल्पबुद्धिवाले कैसे सक्षम हो सकते हैं! आप स्वयं स्वेच्छासे हमारी सृष्टि और संहार करती हैं। इसलिये इस त्रिलोकीमें आपकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है!॥ २५-२६॥ सभी ज्ञानीजन भी सामान्य मनुष्योंकी भाँति आपकी मायासे मोहित हैं तो हम आप परमेश्वरीकी वन्दना करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं? आप ही हमारी चेतना, बुद्धि और शक्ति हैं, आपके बिना हम सभी शवकी तरह हैं। अतः हम आपकी स्तुति कैसे करें! आप त्रिगुणात्मक बन्धनसे बाँधकर अपनी मायासे अज्ञानियोंकी भाँति हमें भी भ्रान्त कर रही हैं, अतः आपके यथार्थ स्वरूपको कौन जान सकता है!॥ २७—२९॥ परमेश्वरी! दक्षप्रजापतिके घरमें हमलोगोंने आपके उस रूपके दर्शन किये थे, कृपापूर्वक उसी प्रकार हमें पुनः दर्शन दें। जगत्को धारण करनेवाली आप महेश्वरीको न देखकर हम कान्तिहीन हो गये हैं। इस कारण शवके समान हम आपको अपनी आत्मा तथा प्राणके रूपमें देखते हैं॥ ३०-३१॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुता महादेवी दृष्ट्वा देवविषण्णताम्।
शिवं च व्याकुलं दृष्ट्वा गगने दर्शनं ददौ॥ ३२॥

भूत्वा तु यादृशी काली दक्षयज्ञे समागता।
छाया च यादृशी वह्नौ प्रविष्टा निजमायया॥ ३३॥

प्रकृतिं तादृशीं तेऽपि ददृशुर्निश्चलेक्षणाः।
शिवमाह महादेवी महादेव स्थिरो भव॥ ३४॥

पुनस्त्वां प्रतिलप्स्यामि हिमालयसुता स्वयम्।
भूत्वा मेनोदराज्जाता सा सत्यं तद्ब्रवीमि ते॥ ३५॥

न मया सम्परित्यक्तस्त्वं कदाचिन्महेश्वर।
तवैव हृदयस्थानं महाकालीपराश्रयः॥ ३६॥

तस्मात्त्वं हि महाकालो जगत्संहारकारकः।
त्वं प्रभुत्वाभिमानेन किंचिन्मामुक्तवानसि॥ ३७॥

अहं तेनापराधेन साक्षात्पत्नीस्वरूपतः।
न स्थास्यामि कियत्कालं भव शान्तमनाः शिव॥ ३८॥

उपायं कथयाम्येकं कुरु शम्भो तदेव हि।
प्रतिलप्स्यसि मां नूनं पूर्वतोऽधिकरूपिणीम्॥ ३९॥

मम छाया यज्ञवह्नौ प्रविष्टा या महेश्वर।
तां मूर्ध्नि कृत्वा मां प्रार्थ्य भ्रम पृथ्वीमिमां शिव॥ ४०॥

स देहो बहुधा भूत्वा पतिष्यति धरातले।
तत्र तद्धि महापीठं भविष्यत्यघनाशनम्॥ ४१॥

योनिः पतिष्यते यत्र तत्तु पीठोत्तमं परम्।
तत्र स्थित्वा तपस्तप्त्वा पुनर्मां प्रतिलप्स्यसे॥ ४२॥

इत्युक्त्वा सा महादेवं समाश्वास्य पुनः पुनः।
बभूवान्तर्हिता सद्यः सहसा मुनिपुङ्गव॥ ४३॥

ब्रह्माद्यास्त्रिदशश्रेष्ठाः स्वस्वस्थानं विनिर्ययुः।
ततः शिवः समागत्य पुनर्दक्षालये मुने॥ ४४॥

प्रिये सति सतीत्येवं रुरोद प्राकृतो यथा।

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवीने देवताओंके विषाद और शिवकी विकलता देखकर आकाशमें उन्हें दर्शन दिया॥ ३२॥ भगवती काली जिस रूपमें दक्षके यज्ञमें आयी थीं और अपनी मायाके द्वारा उनकी छाया जिस प्रकार अग्निमें प्रविष्ट हुई थी, उस मूल प्रकृतिको उन्होंने निर्निमेष दृष्टिसे देखा। उन महादेवीने शिवसे कहा—महादेव! आप स्थिरचित्त हों, मैं स्वयं हिमालयकी पुत्री बनकर तथा मेनाके गर्भसे जन्म लेकर पुनः आपको प्राप्त करूँगी। यह मैं आपसे सत्य कहती हूँ॥ ३३—३५॥ महेश्वर! मैंने आपका परित्याग कभी नहीं किया, आप ही मुझ महाकालीके हृदयस्थान और परम आश्रय हैं, इसीसे आप जगत्संहारक महाकाल कहे जाते हैं॥ ३६½॥ आपने प्रभुताके अभिमानसे मुझे कुछ कहा था, उसी अपराधके कारण मैं आपकी साक्षात् पत्नीके रूपमें कुछ समयतक नहीं रह सकूँगी। शिव! आप शान्तचित्त हो जायँ॥ ३७-३८॥

शम्भो! मैं एक उपाय बताती हूँ, उसे ही आप सम्पन्न करें। तब निश्चय ही आप मुझे पहलेसे भी अधिक सुन्दर स्वरूपमें पुनः प्राप्त करेंगे॥ ३९॥ महेश्वर! शिव! दक्षकी यज्ञाग्निमें मेरे जिस छाया-शरीरने प्रवेश किया था, उसे सिरपर लेकर मेरी प्रार्थना करके, आप इस पृथ्वीपर भ्रमण करें॥ ४०॥ वह मेरा छायाशरीर अनेक खण्डोंमें होकर इस पृथ्वीपर गिरेगा और उस-उस स्थानपर पापोंका नाश करनेवाला महान् शक्तिपीठ उदित होगा॥ ४१॥ जहाँ योनिभाग गिरेगा, वह सर्वोत्तम शक्तिपीठ होगा। वहाँ रहकर तपस्या करके आप मुझे पुनः प्राप्त करेंगे॥ ४२॥ मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर और महादेवको बार-बार आश्वासन देकर वे देवी अचानक उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं॥ ४३॥ मुने! ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवगण अपने-अपने लोकोंको चले गये और शिवजी पुनः दक्षके घरमें आकर प्रिये! सती! सती! ऐसा कहते हुए सामान्य जनके समान रुदन करने लगे॥ ४४½॥

यज्ञशालां प्रविश्यैव छायासत्याः शरीरकम्॥ ४५ ॥

ददर्श दीप्यमानं स भूमिष्ठं मुद्रितेक्षणम्।
अक्षुण्णां तां विलोक्यैव निद्रितां प्राकृतामिव॥ ४६ ॥

शोकसंतप्तहृदयः प्राहेदं वचनं शिवः।
सति तेऽहं पतिः शम्भुस्त्वत्समीपमुपागतः॥ ४७ ॥

उत्तिष्ठ त्वं पूर्ववन्मां कथं न परिभाषसे।
कृतागसं मां दक्षं च क्षिप्त्वा शोकमहार्णवे॥ ४८ ॥

स्वयमन्तर्हितास्यस्मान्मोहयन्ती स्वमायया।
न त्वां कदाचित्त्यक्ष्यामि मम प्राणैकवल्लभाम्॥ ४९ ॥

प्रगृह्य परमामोदात्कियत्कालं भ्रमाम्यहम्।
एवं विलप्य बहुधा शम्भुः प्राकृतलोकवत्॥ ५० ॥

बाहुभ्यां तां समालिङ्ग्य जग्राह शिरसा मुने।
छायासत्यास्तु तं देहं धृत्वा शिरसि शंकरः॥ ५१ ॥

सम्प्राप्य परमं मोदं ननर्त धरणीतले।
ब्रह्मादयः सुराधीशा देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ ५२ ॥

अपूर्वं रथमास्थाय गगने द्रष्टुमागमन्।
पुष्पवृष्टिः समभवत्प्रमथाश्च दिशो दश॥ ५३ ॥

मुखवाद्यं ततश्चक्रुर्ननृतुश्च लसज्जटाः।
कदाचिच्छिरसा धृत्वा कदाचिद्दक्षिणे करे॥ ५४ ॥

कदाचिद्वामहस्ते च कदाचित्स्कन्धदेशके।
कदाचिद्वक्षसि प्रीत्या परिनृत्यन् सदाशिवः॥ ५५ ॥

ननर्त चरणाघातैः कम्पयन् धरणीतलम्।
चन्द्रलोकस्थितश्चन्द्रो ललाटे तिलकोऽभवत्॥ ५६ ॥

ज्वलज्जटाविनिक्षिप्ता बभूवुस्तारकागणाः।
सूर्यलोकस्थितः सूर्यः कण्ठे भूषणतां गतः॥ ५७ ॥

यज्ञशालामें प्रवेश करके उन्होंने सतीके छाया-शरीरको देदीप्यमान देखा। वह शरीर भूमिपर स्थित था, नेत्र मुँदे हुए थे एवं सभी अङ्गोंसे परिपूर्ण था। सतीकी उस छायाको सहज भावमें सोयी हुई-सी देखकर शोकसे व्याकुलहृदय होकर शिवजीने इस प्रकार कहा— ॥ ४५-४६ १/२ ॥ सती! मैं तुम्हारा पति शिव तुम्हारे पास आया हूँ, तुम उठो, पहलेकी भाँति मुझसे वार्तालाप क्यों नहीं कर रही हो? अपराधी मुझे एवं दक्षको शोकके महासमुद्रमें गिराकर अपनी मायासे हमें मोहित करती हुई तुम स्वयं अन्तर्धान हो गयी हो। अब मैं अपनी एकमात्र तुझ प्राणप्रियाका त्याग कभी नहीं करूँगा। प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें लेकर मैं कितने दिन घूमता रहूँगा?॥ ४७—४९ १/२ ॥ मुने! इस प्रकार साधारण मनुष्योंकी भाँति बहुधा विलाप करते हुए शिवजीने अपनी भुजाओंसे सतीके छायाशरीरका आलिङ्गन करते हुए उसे सिरपर उठा लिया॥ ५० १/२ ॥ शंकरजी सतीके उस छाया-शरीरको सिरपर रखकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक धरतीपर नाचने लगे। ब्रह्मा आदि सुरश्रेष्ठ तथा इन्द्रके नेतृत्वमें अन्य देवगण इस अपूर्व दृश्यको देखने अपने-अपने रथोंमें बैठकर आकाशमें आ गये। दसों दिशाओंमें सम्यक् पुष्पवृष्टि होने लगी। तदनन्तर सुशोभित जटाओंवाले प्रमथगण मुखवाद्य (गाल) बजाने लगे और नाचने लगे॥ ५१—५३ १/२ ॥ चारों ओर नाचते हुए शिवजी सतीके छायाशरीरको कभी सिरपर, कभी दायें हाथमें, कभी बायें हाथमें तो कभी कन्धेपर और कभी प्रेमपूर्वक वक्षःस्थलपर धारण कर अपने चरण-प्रहारसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए नृत्य करने लगे॥ ५४-५५ १/२ ॥ चन्द्रलोकमें स्थित चन्द्रमा उनके ललाटपर तिलकके समान सुशोभित होने लगा, नक्षत्रमण्डल देदीप्यमान जटाओंमें गुँथ गया और सूर्यलोकमें स्थित भगवान् भास्कर उनके कण्ठाभरण बन गये॥ ५६-५७ ॥

कूर्मानन्तौ पीडितौ तां धरणीं त्यक्तुमुद्यतौ।
नृत्यवेगप्रवृद्धेन वायुना च महीधराः॥ ५८॥
सुमेरुप्रमुखाश्चेलुर्वृक्षा इव महामुने।
एवं भूतानि संक्षोभ्य नृत्यन् सर्वां वसुन्धराम्॥ ५९॥
बभ्राम शिरसा धृत्वा छायासत्यङ्गविग्रहम्।
शिवस्तु परमामोदो मनसैवं व्यचिन्तयत्॥ ६०॥
सति त्वं मम भार्येति लोकलज्जां परित्यजन्।
मूर्ध्ना वहामि ते छायां भाग्यं मम महत्तरम्॥ ६१॥
एवं स आत्मनो भाग्यमुपवर्ण्य सदाशिवः।
अतीव परमामोदो ननर्त च मुहुर्मुहुः॥ ६२॥
क्षुब्धमासीज्जगत्सर्वं पक्षिणो मृतका इव।
अकालप्रलयं भूता गणयामासुरग्रतः॥ ६३॥
ब्रह्माज्ञया तु ऋषयश्चक्रुः स्वस्त्ययनं महत्।
देवास्तु चिन्तयामासुः किमिदं समुपस्थितम्॥ ६४॥
उपायं नैव पश्यामो जगद्रक्षा कथं भवेत्।
दक्षोऽस्माकं विनाशाय जगतोऽस्य क्षयाय च॥ ६५॥
आरब्धवान् कुयज्ञं स शिवविद्वेषकारणात्।
शम्भुरानन्दसम्मग्नो विघूर्णनयनः प्रभुः॥ ६६॥
न चिन्तयति लोकानां विपत्तिं समुपस्थिताम्।
कथं शान्तो भवेद्देवो जगत्संहारकारकः॥ ६७॥
ब्रवीम्युपायं त्रिदशा यत्नतः कुरुताधुना।
उक्तं तदा महादेव्या छायादेव्यास्तु विग्रहम्॥ ६८॥
भूतले विविधो भूत्वा पतिष्यति सुनिश्चितम्॥ ६९॥
यत्र यत्र च देहोऽयं खण्डशः प्रपतिष्यति॥ ७०॥
तत्तत्स्थानं महापीठं पुण्यतीर्थं भविष्यति।
तया यदुक्तं तन्मिथ्या कदाचिन्न भविष्यति॥ ७१॥
पतिष्यति धरापृष्ठे छायासत्यास्तु विग्रहः।
अहं तु सृष्टिरक्षार्थं कृत्वा साहसमुत्तमम्॥ ७२॥
परमानन्दमग्नस्य महेशस्य शिरःस्थितम्।
खण्डशः पातयिष्यामि छायासत्याः शरीरकम्॥ ७३॥
सुदर्शनेन चक्रेण प्रभोः शम्भोरजानतः।
एवं मयि कृते नूनं जगद्रक्षणकारिणी॥ ७४॥
सैव ब्रह्ममयी देवी मां रक्षिष्यति शंकरात्।

महामुने! कच्छप और शेषनाग उनके चरणाघातोंसे पीड़ित होकर धरणी छोड़नेको उद्यत हो गये। अत्यन्त वेगपूर्वक नृत्य करनेसे प्रचण्ड वायु बहने लगी, जिसके कारण सुमेरु आदि बड़े-बड़े पर्वत वृक्षोंके समान काँपने लगे। इस प्रकार चराचर जगत्को क्षुब्ध करते हुए और सतीके छायाशरीरको सिरपर धारण किये हुए नटराज शिव सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूमते रहे और वे प्रसन्नतापूर्वक मनमें ऐसा सोचने लगे— ॥ ५८—६० ॥ सती! तुम मेरी पत्नी हो, इसलिये मैं लोकलाज छोड़कर तुम्हारी छायाको सिरपर ढो रहा हूँ, यह मेरा अहोभाग्य है। इस प्रकार अपने भाग्यकी सराहना करते हुए शिवजी आनन्दमग्न होकर पुनः-पुनः नृत्य करने लगे॥ ६१-६२॥ इससे सारा संसार अत्यन्त क्षुब्ध हो गया, पक्षीगण मृतकके समान हो गये और लोग अकाल प्रलयकी कल्पना करने लगे॥ ६३ ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञासे ऋषिगण महान् स्वस्तिवाचन करने लगे। देवताओंको चिन्ता हुई कि यह कैसी विपत्ति आ गयी। वे सोचने लगे कि अब संसारकी रक्षाका कोई उपाय नहीं दीखता। इस दक्षने शिवजीसे द्वेष करनेके कारण ऐसा कुयज्ञ प्रारम्भ किया, जिससे इस संसारसहित हम सबका नाश हो जायगा। विघूर्णित नेत्रवाले, सर्वसमर्थ शिवजी तो आनन्दसे मतवाले होकर सृष्टिपर आयी इस विपत्तिका विचार नहीं कर रहे हैं, वे जगत्संहारक रुद्र कैसे शान्त होंगे ?॥ ६४—६७॥

[**भगवान् विष्णु बोले—**] देवगणो! मैं उपाय बताता हूँ, आपलोग उसका प्रयत्न करें। महादेवीने पहले ऐसा कहा था कि सतीका छायाशरीर भूतलपर अनेक खण्डोंमें निश्चय ही गिरेगा और जहाँ-जहाँ इस देहके खण्ड गिरेंगे, उन-उन स्थानोंपर शक्तिपीठरूप पुण्यतीर्थका उदय होगा। उन देवीने जो कुछ भी कहा है, वह कभी असत्य नहीं होगा॥ ६८—७१ ॥ सतीका छायाशरीर भूतलपर अवश्य गिरेगा। अतः सृष्टिकी रक्षाके लिये मैं महान् साहस करके परमानन्दमग्न शिवके सिरपर स्थित सतीके छायाशरीरको समर्थ सदाशिवके अनजानेमें सुदर्शन चक्रसे टुकड़े-टुकड़े कर गिराऊँगा। मेरे द्वारा ऐसा करनेपर शिवजीके कोपसे निश्चय ही वे ब्रह्ममयी जगत्पालनकारिणी महादेवी मेरी रक्षा करेंगी॥ ७२—७४½ ॥

देव्युवाच

प्रभो विष्णो जगन्नाथ यद्येवं कर्तुमर्हसि ॥ ७५ ॥
तदैव जगतां रक्षा न चेत्प्रलयमेष्यति ।

श्रीमहादेव उवाच

ततो विष्णुर्महाबाहुर्जगतः परिपालकः ॥ ७६ ॥
छायासत्याः शरीरं स पातयामास खण्डशः ।
सुदर्शनेन चक्रेण महाभीत इवेश्वरात् ॥ ७७ ॥
आनन्दमग्नचित्तस्य शिरसः परमेशितुः ।
नृत्यमानो यदा शम्भुः क्षिपते चरणौ भुवि ॥ ७८ ॥
तदैव प्राक्षिपच्चक्रं छायादेहं चकर्त सः ।
विष्णुचक्रेण संछिन्नास्तद्देहावयवाः पृथक् ॥ ७९ ॥
निपेतुः पृथिवीपृष्ठे स्थाने स्थाने महामुने ।
महातीर्थानि तान्येव मुक्तिक्षेत्राणि भूतले ॥ ८० ॥
सिद्धपीठा हि ते देशा देवानामपि दुर्लभाः ।
तेषु देवीं समुद्दिश्य होमपूजादिकं तु यत् ॥ ८१ ॥
कुरुते कोटिगुणितं फलं तस्य महामुने ।
तत्र जप्त्वा महादेवीं साक्षात्पश्यति मानवः ॥ ८२ ॥
पातकी मुच्यते पापाद् ब्रह्महत्यादिकादपि ।
भूमौ निपतितास्ते तु छायाङ्गावयवाः क्षणात् ॥ ८३ ॥
जग्मुः पाषाणतां सर्वलोकानां हितहेतवे ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च तथेन्द्राद्याः सुरा मुने ॥ ८४ ॥
आगत्याहुर्वचस्तेषु सेवार्थे परमेश्वरीम् ।
एवं छायासतीदेहे निकृत्ते चक्रपाणिना ॥ ८५ ॥
निर्भारं स्वशिरो ज्ञात्वा शिवो धैर्यमुपेत्य च ।
ददर्श व्याकुलं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ८६ ॥
एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्नारदं ब्रह्मणः सुतम् ।
शान्त्यर्थं देवदेवस्य प्रेषयामास सन्निधिम् ॥ ८७ ॥
गच्छ नारद भद्रं ते शिवं सान्त्वय मत्कृते ।
त्वमेवात्र समर्थोऽसि ब्रह्मपुत्रो महामतिः ॥ ८८ ॥
शिवः सतीवियोगेन दुःखार्तः परमेश्वरः ।
कस्य किं प्रकरोत्येष लयं वा जगतां विभुः ॥ ८९ ॥
यथा शान्तमना भूत्वा तिष्ठत्यद्य महेश्वरः ।
तथा कुरु महाबुद्धे सान्त्वयस्व सदाशिवम् ॥ ९० ॥

देवीजी बोलीं—प्रभु विष्णु! जगन्नाथ! आप ऐसा यदि करें, तभी जगत्की रक्षा होगी नहीं तो प्रलय हो जायगा ॥ ७५ १/२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब भगवान् शंकरसे डरे हुए-से, जगत्का पालन करनेवाले पराक्रमी भगवान् विष्णुने सुदर्शन चक्रसे सतीके छायाशरीरके टुकड़े-टुकड़े करके गिरा दिये ॥ ७६-७७ ॥ नाचते हुए शिव आनन्दमग्नचित्त होकर जब धरतीपर चरण पटकते थे, उसी समय विष्णु चक्र चलाकर उनके सिरपर रखा सतीका छायाशरीर काट देते थे। इस प्रकार विष्णुके चक्रसे उस शरीरके सारे अङ्ग कटकर अलग हो गये और वे धरातलपर अनेक स्थानोंपर गिरे। महामुने! पृथ्वीपर वे ही स्थान महातीर्थ और मुक्तिक्षेत्रके रूपमें विख्यात हुए। वे स्थान सिद्धपीठ हैं और देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ हैं। महामुने! वहाँ भगवतीके निमित्त जो हवन-अर्चन आदि करता है, उसका कोटिगुना फल उसे प्राप्त होता है। वहाँ जप करनेवाले मनुष्यको महादेवी साक्षात् दर्शन देती हैं तथा ब्रह्महत्यादि महापापोंसे भी प्राणी मुक्त हो जाते हैं ॥ ७८—८२ १/२ ॥ भूमितलपर सतीके छायाशरीरसे जो अवयव गिरे, वे तत्क्षण सभी प्राणियोंके कल्याणके निमित्त पाषाणरूप बन गये। मुने! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्रादि देवगण आकर परमेश्वरीसे उन शक्तिपीठोंपर विराजमान रहनेकी प्रार्थना करने लगे ॥ ८३-८४ १/२ ॥

विष्णुके द्वारा इस प्रकार सतीके छायाशरीरके टुकड़े करनेपर तथा अपने सिरको भाररहित हुआ अनुभव कर शिवजीने धैर्य धारण किया। उन्होंने समस्त स्थावर-जङ्गम सृष्टिको व्याकुल हुआ देखा ॥ ८५-८६ ॥ तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने ब्रह्मापुत्र नारदको भगवान् महादेवको शान्त करनेके लिये उनके निकट भेजा ॥ ८७ ॥ भगवान् विष्णुने नारदसे कहा—नारद! तुम्हारा कल्याण हो, तुम मेरे प्रति शिवजीको शान्त करो, तुम्हीं इस कार्यमें समर्थ हो। तुम ब्रह्माके महाबुद्धिमान् पुत्र हो। महामति! परमेश्वर शिवजी सतीके वियोगसे दुःखार्त होकर किसका क्या कर देंगे अथवा इस संसारका ही प्रलय कर सकते हैं, वे महेश्वर जिस प्रकार शान्तचित्त होकर रहें, वैसा प्रयत्न करके सदाशिवको सान्त्वना प्रदान करो ॥ ८८—९० ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदः प्रययौ ततः।
सम्मुखे देवदेवस्य कृताञ्जलिरुपस्थितः॥ ९१॥
नृत्यन् स नारदं दृष्ट्वा कृताञ्जलिपुटं स्थितम्।
प्राह मे क्व गता साध्वी सती प्राणैकवल्लभा॥ ९२॥

नारद उवाच

भव शान्तमनाः शम्भो सतीं लप्स्यसि सर्वथा।
अस्त्येव ते सती नित्या गच्छन्तीं च विहायसा॥ ९३॥
दृष्ट्वापि प्रत्ययो नैव जातः किं परमेश्वर।
अकाले प्रलयं नैव कुरु शम्भो स्थिरो भव॥ ९४॥

शिव उवाच

युष्माकं किं करोम्येव कथं वदसि नारद।
अकाले प्रलयं वापि करोमि कुत्र चाप्यहम्॥ ९५॥
सतीविरहदुःखार्तश्छायासत्यास्तु विग्रहम्।
प्राप्य विस्मृतदुःखोऽहमभवं तच्च केन वा॥ ९६॥
शिरसः सोऽप्यपहृतो देहो दुष्टविचेतसा।

नारद उवाच

भव शान्तमना देव सर्वं ते कथयाम्यहम्॥ ९७॥
प्रसीदास्मान्महादेव त्यज नृत्यं लयप्रदम्।
त्वन्नृत्येन विपन्नेयं वसुधापि निमज्जति॥ ९८॥
पर्वताश्चलिताः सर्वे देवाः स्वर्गं तथात्यजन्।
नाशमेति जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ९९॥
त्वया तु स्वकृतश्चासौ प्रलयो नैव दृश्यते।
कथं नृत्यच्छलेनेदं विश्वं नाशयसि प्रभो॥ १००॥
किमीदृशं कर्मसु यत्स्वकीयार्थं विनाशयेत्।
त्रैलोक्यरक्षको विष्णुर्दृष्ट्वा विपदमद्भुताम्॥ १०१॥
त्वां सान्त्वयितुकामोऽसौ धृत्वा चक्रं सुदर्शनम्।
प्रक्षिप्य शनकैश्छायासतीदेहं समाच्छिनत्॥ १०२॥
स देहः खण्डशो भूमौ यत्र यत्र समापतत्।
महापीठास्तत्र जाताः कामरूपादयः प्रभो॥ १०३॥

उनका ऐसा वचन सुनकर नारदजी चल पड़े और महादेवजीके सामने हाथ जोड़कर उपस्थित हुए॥ ९१॥ नृत्यरत शिवजीने हाथ जोड़कर खड़े नारदको देखकर कहा कि मेरी एकमात्र प्राणप्रिया, साध्वी सती कहाँ चली गयी?॥ ९२॥

नारदजी बोले—शम्भो! आप शान्तचित्त हों, सतीको आप पुनः अवश्य प्राप्त करेंगे। सती तो आपकी नित्य सहचरी हैं। परमेश्वर! उनको आकाशमें जाते देखकर भी क्या आपको विश्वास नहीं हुआ? शम्भो! आप अकाल प्रलय न करें, आप स्थिरचित्त हो जायँ॥ ९३-९४॥

शिवजी बोले—नारद! ऐसा क्यों कहते हो, मैंने तुमलोगोंका क्या बिगाड़ा है? अथवा मैं कहाँ अकाल प्रलय कर रहा हूँ? मैं तो सतीके विरहसे दुःखार्त हुआ उसके छायाशरीरको ही पाकर किसी प्रकार दुःखको भुला रहा था, किसी निर्दयीने मेरे सिरसे उस देहका भी अपहरण कर लिया है॥ ९५-९६ $\frac{1}{2}$॥

नारदजी बोले—देव! आप शान्तचित्त हों, मैं आपको सब बताता हूँ। महादेव! आप हमपर प्रसन्न हों और अपना यह प्रलयंकारी नृत्य बंद करें। आपके इस नृत्यसे पीड़ित हुई पृथ्वी भी डूब रही है, सभी पर्वत चलायमान हो गये हैं और देवगण स्वर्ग छोड़कर चले गये हैं। देव-असुर तथा मानवोंकी यह सारी सृष्टि नष्ट हो रही है॥ ९७—९९॥

आपको अपने द्वारा उपस्थित यह प्रलय दिखायी नहीं दे रहा है? प्रभो! इस ताण्डवनृत्यके बहाने आप सृष्टिका नाश करनेको क्यों उद्यत हैं? जो अपने लक्ष्यका ही विनाश कर दे, ऐसे कर्मका क्या प्रयोजन? त्रैलोक्यके पालनकर्ता भगवान् विष्णुने इस अद्भुत विपत्तिको देखकर आपको सान्त्वना देनेके लिये ही सुदर्शन चक्र धारण करके उससे सतीके छायाशरीरको धीरे-धीरे काटा॥ १००—१०२॥ प्रभो! उस देहके खण्ड पृथ्वीतलपर जहाँ-जहाँ गिरे, उन-उन स्थानोंपर कामरूपादि महाशक्तिपीठ अवतरित हो गये हैं॥ १०३॥

उक्तं तया जगद्धात्र्या समाराधितया त्वया।
पूर्वमेव हि देहोऽयं पतिष्यति धरातले॥ १०४॥
खण्डशो बहुधा भूत्वा महापीठप्रसिद्धये।
तस्माद्विष्णुस्तथा चक्रे भव शान्तः सदाशिव॥ १०५॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्तस्तु मुनिना त्यक्तनृत्यः सदाशिवः।
विनिःश्वसन्मुहुर्विष्णुं शशाप कमलापतिम्॥ १०६॥
विष्णुर्मानुषरूपेण जनिष्यति महीतले।
त्रेतायां सूर्यवंशेऽसौ मम शापेन निश्चितम्॥ १०७॥
तत्रातिरम्या तत्पत्नी सतीव प्राणवल्लभा।
छायां संस्थाप्य संत्यक्त्वा माययान्तर्हिता स्वयम्॥ १०८॥
भविष्यति ततश्चासौ मायया विप्रमोहितः।
आनन्दमग्नचित्तश्च भूत्वा यास्यति दूरतः॥ १०९॥
ततो यथा मां चक्रेऽसौ छायापत्नीवियोगिनम्।
क्रूरराक्षसवद्विष्णुस्तथा राक्षसपुङ्गवः॥ ११०॥
एनं करिष्यति क्रूरश्छायापत्नीवियोगिनम्।
हृत्वा छायामयीं पत्नीं सत्यं सत्यं महामुने॥ १११॥
शोकसंतप्तहृदयः स यथाहं भविष्यति।

श्रीमहादेव उवाच

एवं शप्त्वा शिवो विष्णुं स्वस्थचित्तोऽभवत्ततः।
प्रसार्य त्रीणि नेत्राणि ददर्श च जगत्त्रयम्॥ ११२॥
दृष्ट्वा योनिं कामरूपे रोमाञ्चितकलेवरः।
कामव्याकुलितोत्कण्ठो बभूव गिरिशः स्वयम्॥ ११३॥
दृष्टमात्रे तु सा योनिः काममुग्धेन शम्भुना।
पृथ्वीं विभिद्य पातालं गच्छन्तीव बभूव ह॥ ११४॥
दृष्ट्वैवं शंकरः सत्या भूत्वांशेन गिरिः स्वयम्।
दधार योनिं हृष्टात्मा वर्णयन् भाग्यमात्मनः॥ ११५॥
सर्वेषु तेषु पीठेषु कामरूपादिषु स्वयम्।
पाषाणलिङ्गरूपेण ह्यधिष्ठाय व्यसेवत॥ ११६॥

आपने जब जगज्जननीकी आराधना की थी, तब उन्होंने पहले ही यह बात कही थी कि मेरा यह शरीर पृथ्वीतलपर अनेक खण्डोंमें गिरेगा, जहाँ मेरे प्रसिद्ध महापीठ उदित होंगे। इसीलिये भगवान् विष्णुने ऐसा किया। सदाशिव! आप शान्त हों॥ १०४-१०५॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारदके ऐसा कहनेपर भगवान् सदाशिवने नृत्यको त्यागकर बार-बार निःश्वास छोड़ते हुए कमलापति विष्णुको शाप दे दिया॥ १०६॥ मेरे शापके कारण निश्चय ही विष्णुको धरतीपर मनुष्यका रूप धारण करके त्रेतायुगमें सूर्यवंशमें जन्म लेना पड़ेगा। वहाँ उनकी मनोहारिणी प्राणप्रिया पत्नी सतीके समान अपनी छायाको छोड़कर मायासे स्वयं अन्तर्धान हो जायँगी॥ १०७-१०८॥ तब मायासे मोहित हुए वे आनन्दमग्न होकर दूर चले जायँगे। जिस तरह क्रूर राक्षसकी भाँति विष्णुने मुझे छायापत्नीका वियोगी बना दिया है, वैसे ही राक्षसराज कठोरतापूर्वक विष्णुकी छायापत्नीका हरण करके उन्हें वियोगी बनायेगा। महामुने! यह मेरा सत्य वचन है। विष्णु मेरी ही भाँति अवश्य ही शोकसे व्याकुलचित्त होंगे*॥ १०९—१११$\frac{१}{२}$॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार विष्णुको शाप देकर शिवजी स्वस्थचित्त हो गये और अपने तीनों नेत्रोंको फैलाकर उन्होंने त्रिलोकीको देखा॥ ११२॥

कामरूपदेशमें सतीके छायाशरीरका योनिभाग गिरा देखकर शिवजी कामसे व्याकुल एवं उत्कण्ठित हो गये और उन्हें रोमाञ्च हो आया। कामभावसे शिवजीके द्वारा देखे जानेपर शरीरका योनिभाग पृथ्वीतलको भेदता हुआ पातालकी ओर चल पड़ा। ऐसा देखकर शंकरजीने अपने अंशसे पर्वतका रूप धारण करके अपने भाग्यको सराहते हुए प्रसन्नतापूर्वक सतीकी उस योनिको धारण कर लिया॥ ११३—११५॥ कामरूपादि सभी शक्तिपीठोंमें भगवान् सदाशिव पाषाणलिङ्गके रूपमें स्वयं उपस्थित होकर उससे सम्बद्ध हो गये॥ ११६॥

* यहाँ पत्नीके वियोगमें भगवान् शिवका शोकसंतप्त होना तथा भगवान् विष्णुको शोकसंतप्त होनेका शाप देना—यह लोकशिक्षणके लिये लीलामात्र है। तत्त्वतः शिव और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों ही काम, क्रोध, शोक, मोहादि प्रवृत्तियोंसे नितान्त परे हैं।

सस्मार पूर्वं तद्वृत्तं यदुक्तं हि तया मुने।
योनिपीठे तपस्तप्त्वा पुनर्लब्ध्वा महेश्वरीम्॥ ११७॥
ततः शान्तमना भूत्वा योगचिन्तापरोऽभवत्।
विहायसा मुनिश्चापि ययौ स्वस्थानमुत्तमम्॥ ११८॥

मुने! जगदम्बाके बताये हुए उस पूर्व वृत्तान्तको उन्होंने याद किया और उस गुह्यपीठ कामरूपमें तपस्या करके महेश्वरीको पुनः प्राप्त किया। तत्पश्चात् शान्तचित्त होकर वे योगारूढ हो गये। नारद मुनि भी आकाशमार्गसे अपने लोकको चले गये॥ ११७-११८॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे छायासतीवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'छायासतीवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

शंकरजीका योनिपीठ कामरूप (कामाख्या)-में जाकर तपस्या करना, जगदम्बाद्वारा प्रकट होकर शीघ्र ही गङ्गा तथा हिमालयपुत्री पार्वतीके रूपमें आविर्भूत होनेका उन्हें वर प्रदान करना, भगवान् शंकरद्वारा इक्यावन शक्तिपीठोंमें प्रधान कामरूपपीठके माहात्म्यका प्रतिपादन

श्रीमहादेव उवाच

गत्वा तु नारदः श्रीमान् विष्णोः सन्निकटं ततः।
अथाब्रवीद्यथावृत्तं देवदेवस्य चेष्टितम्॥ १॥

अभिशापादिकं श्रुत्वा शिवस्याकुलितं तथा।
ब्रह्मणा सहितो विष्णुः कामरूपं समभ्यगात्॥ २॥

द्रष्टुं देवं महेशानं शोकव्याकुलमानसम्।
अश्रुधाराभिसंसिक्तगात्रं सान्त्वयितुं तथा॥ ३॥

तौ दृष्ट्वा भगवान् शम्भुर्मुक्तकण्ठो रुरोद ह।
पत्नीमाक्षिप्य बहुधा सतीं प्राकृतलोकवत्॥ ४॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

किमेवं देवदेवेश मृषा रोदिषि शङ्कर।
विद्यमानामपि सतीं दृष्ट्वा ज्ञात्वापि मूढवत्॥ ५॥

शिव उवाच

सत्यं वदसि जानामि सतीं प्रकृतिरूपिणीम्।
नित्यां ब्रह्ममयीं शुद्धां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ६॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब नारदजीने विष्णुभगवान्‌के पास जाकर घटित घटनाओं और देवाधिदेवके सारे व्यवहारका यथावत् वर्णन किया॥ १॥ शिवजीके व्याकुलचित्त होकर शापित करनेकी बात सुनकर ब्रह्मासहित भगवान् विष्णु कामरूपप्रदेशमें गये॥ २॥ वे वहाँ शोकसे व्याकुलचित्त हुए भगवान् महेशको, जिनका सारा शरीर आँसुओंसे भीग-सा गया था, देखने और सान्त्वना देने गये थे। उन दोनोंको आया देखकर भगवान् शिव अपनी पत्नी सतीको अनेक प्रकारसे याद करते हुए सामान्य जनकी तरह मुक्तकण्ठसे रुदन करने लगे॥ ३-४॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले—देवदेवेश शङ्कर! आप इस प्रकार व्यर्थ ही क्यों रो रहे हैं? आप जानते हैं कि सती विद्यमान हैं, अतः सारी बात जाननेवाले आपका मूढवत् शोक करना उचित नहीं है॥ ५॥

शिवजी बोले—आपलोग ठीक कहते हैं। मैं जानता हूँ कि सती प्रकृतिरूपा हैं, वे शुद्धा, नित्या, ब्रह्ममयी और सृष्टि, स्थिति तथा संहार करनेवाली हैं॥ ६॥

दृष्ट्वा स्वचक्षुषा दक्षयज्ञभङ्गोत्तरं मया।
तथैव तां न दृष्ट्वैव पत्नीभावेन पूर्ववत्॥ ७ ॥
स्वगृहे मे मनोऽतीव व्याकुलं जायतेऽधुना।
कथं पुनर्लभिष्यामि पूर्ववत्तां महेश्वरीम्॥ ८ ॥
उपायं ब्रूहि मे ब्रह्मन् विष्णो त्वं चापि साम्प्रतम्।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

भूत्वा शान्तमना देव कामरूपेऽत्र संस्थितः॥ ९ ॥
तामेव मनसि ध्यात्वा तपश्चर समाहितः।
महापीठोऽयमत्रैव साक्षात्सा परमेश्वरी॥ १० ॥
प्रत्यक्षफलदा देवी साधकानां न संशयः।
माहात्म्यमस्य पीठस्य वक्तुं वा केन शक्यते॥ ११ ॥
त्वमेव सर्वं जानासि सर्वज्ञः परमेश्वरः।
किमावां कथयिष्यावो भव शान्तमनाः शिव॥ १२ ॥

शिव उवाच

अत्रैवाहं तपश्चोग्रं चरिष्ये सुसमाहितः।
तथापि कथितोऽप्येवं युवाभ्यामपि चाधुना॥ १३ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा स शिवः शान्तस्तपस्तेपे समाहितः।
कामरूपे महापीठे ध्यायंस्तां परमेश्वरीम्॥ १४ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च तत्रैव महापीठे ततः स्थितः।
समाहितमनास्तीव्रं चचार परमं तपः॥ १५ ॥
बहुकाले गते देवी प्रसन्ना जगदम्बिका।
प्रत्यक्षाभूज्जगन्माता तेषां त्रैलोक्यमोहिनी॥ १६ ॥
प्रोवाच च महादेवी किं तेऽभिलषितं वद।

शिव उवाच

यथा हि कृपया पूर्वं स्थिता मद्गेहिनी स्वयम्॥ १७ ॥
तथैव हि पुनश्चापि भव त्वं कृपयेश्वरि।

श्रीदेव्युवाच

अतस्त्वहमचिरेणैव हिमालयसुता स्वयम्॥ १८ ॥
द्विधा भूत्वा भविष्यामि सत्यमेव महेश्वर।
यतस्तां शिरसा हर्षात्कृत्वा मन्नृत्यतत्परः॥ १९ ॥
अहं तेनांशतो भूत्वा गङ्गा जलमयी स्वयम्।
त्वामेव पतिमापन्ना भविष्ये तव मूर्धनि॥ २० ॥
अपरा पार्वती भूत्वा पत्नीभावेन शंकर।
स्थास्यामि तव गेहेऽहं पूर्णैव हि महामते॥ २१ ॥

दक्षयज्ञके नष्ट होनेके बाद मैंने उन्हें अपनी आँखोंसे उसी रूपमें देखा भी है, लेकिन पहलेकी तरह पत्नीभावसे अपने घरमें उन महेश्वरीको न पाकर इस समय मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। इसलिये ब्रह्मन् विष्णो! मैं पूर्ववत् उन्हें कैसे प्राप्त करूँगा? आप मुझे अब इसका उपाय बतायें॥ ७-८½ ॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले—देव! आप शान्तचित्त होकर इस कामरूपपीठमें रहकर मनमें महादेवीका ध्यान करते हुए समाहितचित्तसे तपस्या करें। यह महापीठ है, यहाँ ही परमेश्वरी साक्षात् विराजमान होकर अपने साधकोंको प्रत्यक्ष फल प्रदान करती हैं। इसमें संशय नहीं है। इस सिद्धपीठका माहात्म्य कौन बता सकता है! आप तो परमेश्वर हैं, सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं, हमलोग आपको क्या बतायें? शिव! अब आप शान्तचित्त हो जायँ॥ ९—१२ ॥

शिवजी बोले—मैं अब यहीं रहकर स्थिरचित्त हो उग्र तपस्या करूँगा, जैसा कि आप दोनोंने अभी कहा है॥ १३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इतना कहकर शिवजीने कामरूप सिद्धपीठपर उन परमेश्वरी जगदम्बाका ध्यान करते हुए शान्त एवं समाहितचित्त होकर तप किया। ब्रह्मा और विष्णु भी उसी महापीठपर रहते हुए समाहितचित्त होकर कठोर और परम तप करने लगे॥ १४-१५ ॥ बहुत समय बीतनेपर जगदम्बा प्रसन्न हुईं और उन जगन्माताने त्रैलोक्यमोहिनीरूपमें उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। महादेवीने पूछा कि आपकी क्या अभिलाषा है, बतायें॥ १६½ ॥

शिवजी बोले—परमेश्वरी! जिस प्रकार आप पहले मेरी गृहिणी बनकर रहती थीं, वैसे ही कृपापूर्वक पुनः रहें॥ १७½ ॥

देवीजी बोलीं—महेश्वर! शीघ्र ही मैं हिमालयकी पुत्री बनकर स्वयं अवतार लूँगी और निश्चय ही मैं दो रूपोंमें सामने आऊँगी। चूँकि आपने सतीके शरीरको सिरपर उठाकर हर्षपूर्वक नृत्य किया था, अतः मैं उनके अंशसे जलमयी गङ्गाका रूप धारण करके आपको ही पतिरूपमें प्राप्त कर आपके सिरपर विराजमान रहूँगी। दूसरे रूपसे मैं पार्वती होकर आपके घरमें पत्नीभावसे रहूँगी। शंकर! महामति! मेरा यह रूप पूर्णावतार होगा॥ १८—२१ ॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो भगवती देवी यत्राभिलषितं वरम्।
ब्रह्मणे विष्णवे दत्त्वा स्वयमन्तर्हिताभवत्॥ २२॥
ततः सापि महादेवी द्विधा भूत्वा हिमालयम्।
प्रययौ मेनकागर्भे स्वयं दुर्गाभवत्ततः॥ २३॥
ज्येष्ठा गङ्गाभवद्देवी कनिष्ठा पार्वती शुभा।
शिवस्तु हृष्टचित्तः सन् कामरूपे महामतिः॥ २४॥
कामाख्यानिकटे भूयश्चचार परमं तपः।
महापीठस्य माहात्म्याद्देवी भगवती स्वयम्॥ २५॥
महेशाय प्रसन्नाभूदभीष्टं च ददौ तथा।
एवमन्यो यदा कश्चित्तस्मिन् पीठे महेश्वरीम्॥ २६॥
समाराधयते तस्य मनोऽभीष्टं प्रयच्छति।

श्रीनारद उवाच

कामरूपस्य माहात्म्यं कथयस्व महेश्वर॥ २७॥
यत्र साक्षाद्भगवती प्रत्यक्षफलदायिनी।
आनुपूर्व्येषु पीठेषु श्रेष्ठं यत्परमेश्वर॥ २८॥
यतस्त्वयापि तत्रैव तपसाराधितेश्वरी।

श्रीमहादेव उवाच

पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव॥ २९॥
अङ्गप्रत्यङ्गपातेन छायासत्या महीतले।
तेषु श्रेष्ठतमः पीठः कामरूपो महामते॥ ३०॥
यत्र साक्षाद्भगवती स्वयमेव व्यवस्थिता।
तत्र गत्वा महापीठे स्नात्वा लोहित्यवारिणि॥ ३१॥
ब्रह्महापि नरः सद्यो मुच्यते भवबन्धनात्।
ब्रह्मपुत्रः स्वयं साक्षाद्द्रवरूपी जनार्दनः॥ ३२॥
तस्मिन्नेव कृतस्नानो मुच्यते सर्वपातकात्।
तत्र स्नात्वा विधानेन पितॄन् संतर्प्य भक्तितः॥ ३३॥
कामेश्वरीं नमस्कुर्यान्मन्त्रेणानेन साधकः।
कामेश्वरीं च कामाख्यां कामरूपनिवासिनीम्॥ ३४॥
तप्तकाञ्चनसङ्काशां तां नमामि सुरेश्वरीम्।
ततो मानसकुण्डादितीर्थं गत्वा विधानतः॥ ३५॥
कृत्वा स्नानादिकं क्षेत्रं प्रविश्य च यथाविधि।
दृष्ट्वा पीठं नरः सद्यो मुक्तो भवति नान्यथा॥ ३६॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब ब्रह्मा और विष्णुको भी उनका अभिलषित वर प्रदान करके भगवती जगदम्बा स्वयं अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥ इसके अनन्तर महादेवी दुर्गाने हिमालयके यहाँ मेनकाके गर्भमें दो रूपोंमें अवतार लिया। भगवतीने ज्येष्ठा-रूपसे गङ्गा और कनिष्ठा-रूपसे शुभ लक्षणोंवाली पार्वती बनकर जन्म लिया। महामति शिव भी प्रसन्नचित्त होकर कामरूप पर्वतपर कामाख्यापीठके निकट पुनः कठोर तपस्या करने लगे। उस महापीठके माहात्म्यसे भगवतीने स्वयं प्रसन्न होकर शिवको अभीष्ट वर प्रदान किया। इसी प्रकार जब भी अन्य कोई उस सिद्धपीठमें भगवतीकी आराधना करता है तो उसे वे देवी मनोवाञ्छित फल प्रदान करती हैं॥ २३—२६½॥

श्रीनारदजी बोले—महेश्वर! मुझे कामरूपका माहात्म्य बतायें, जहाँ साक्षात् प्रकट होकर भगवती प्रत्यक्ष फल देती हैं। परमेश्वर! चूँकि सभी पीठोंकी क्रमिक गणनामें वह श्रेष्ठ पीठ है इसीलिये आपने भी वहीं तपस्या करके जगदम्बाकी आराधना की थी॥ २७-२८½॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! धरातलपर छाया सतीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग गिरनेसे इक्यावन शक्तिपीठ बन गये। महामते! उनमें कामरूप श्रेष्ठतम शक्तिपीठ है॥ २९-३०॥ जहाँ भगवती साक्षात् निवास करती हैं, उस सिद्धपीठमें जाकर ब्रह्मपुत्र नदके लालिमा लिये जलमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे भी सद्यः संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्मपुत्र नद भगवान् विष्णुका साक्षात् जलरूप है, उसमें स्नान करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३२½॥

वहाँ विधिपूर्वक स्नान एवं पितरोंका तर्पण करके साधकको भक्तिपूर्वक भगवती कामेश्वरीको इस मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिये—'मैं कामरूपमें निवास करनेवाली उन भगवती कामाख्या कामेश्वरीको नमस्कार करता हूँ, जिन सुरेश्वरीका स्वरूप तपे हुए स्वर्णकी कान्तिके समान सुशोभित है।' तत्पश्चात् मानस-कुण्डादि तीर्थोंमें जाकर विधिपूर्वक स्नान करके यथाविधि कामरूपक्षेत्रमें प्रवेश करना चाहिये। सिद्धपीठ कामाख्याके दर्शन करके मनुष्य सद्यः मुक्तिको प्राप्त कर लेता है, अन्य कोई उपाय नहीं है॥ ३३—३६॥

तत्र तन्त्रोक्तविधिना सम्पूज्य परमेश्वरीम्।
जपहोमादिकं कृत्वा यादृशं फलमश्नुते॥ ३७॥
तद्वक्तुं नैव शक्नोमि कोटिभिर्वक्त्रकैरपि।
यस्य सञ्जायते मृत्युस्तस्मिन् क्षेत्रे महामुने॥ ३८॥
स मुक्तिमेति सद्यो वै सत्यं सत्यं न संशयः।
किमत्र बहुनोक्तेन यत्र क्षेत्रे महामुने॥ ३९॥
देवा मरणमिच्छन्ति किं पुनर्मानवादयः।
इति ते कथितं वत्स संक्षेपेण महामुने॥ ४०॥
कामरूपस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
तस्मिन् क्षेत्रे शिवः स्तुत्वा महेशीं तपसि स्थितः॥ ४१॥
सती हिमवतो गेहं द्विधा भूत्वा समभ्यगात्।
एवं दक्षगृहे जाता स्वयं प्रकृतिरुत्तमा॥ ४२॥
संस्थाप्य परमां कीर्तिं लोकानां त्राणहेतवे।
जगाम मेनकागर्भं पुनर्लब्धुं महेश्वरम्॥ ४३॥
य इदं चरितं देव्या महापातकनाशनम्।
शृणोति परया भक्त्या स शिवत्वमवाप्नुयात्॥ ४४॥
देवा मनुष्या गन्धर्वा यक्षराक्षसचारणाः।
तस्याज्ञावशगाः सर्वे भवन्तीह न संशयः॥ ४५॥
अव्याहताज्ञः सर्वत्र भवेत्संश्रवणान्नरः।
भवत्यवश्यं दुर्गं च सुदुष्करमपि क्षणात्॥ ४६॥
श्रवणान्नाशमायाति पापं जन्मान्तरार्जितम्।
रिपवः संक्षयं यान्ति वंशवृद्धिः प्रजायते॥ ४७॥
संसारे जन्म चासाद्य नैतदाकलितं हि यैः।
तेषां जन्म वृथा मर्त्ये सत्यमेव महामते॥ ४८॥
श्रुत्वेदं चरितं देव्याः संसारव्याधिभेषजम्।
जीवन्मुक्तो भवेत्सद्यो यदि स्यादतिपातकी॥ ४९॥

वहाँ तन्त्रोक्त विधिसे परमेश्वरीका पूजन करके जप-होमादि करनेसे जैसा फल प्राप्त होता है, करोड़ों मुखोंसे भी मैं उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ ३७½ ॥ महामुने! उस पवित्र क्षेत्रमें जिसकी मृत्यु हो जाती है, उसे सद्यः मुक्ति निश्चित ही प्राप्त हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है। महामुने! अधिक क्या कहूँ, मनुष्योंकी तो बात छोड़िये, देवता भी उस पुण्यक्षेत्रमें मृत्युकी कामना करते हैं। वत्स! मैंने आपको संक्षेपमें कामरूपक्षेत्रका माहात्म्य बताया, जो सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ३८—४०½ ॥ उस पवित्र क्षेत्रमें महादेवीकी स्तुति करके भगवान् शिव तपस्या करने लगे। सतीने हिमवान्‌के घरमें दो रूपोंमें जन्म लिया। इस प्रकार जिन परा प्रकृति भगवतीने दक्षके घरमें जन्म लिया था, उन्होंने परमकीर्ति स्थापित करके लोकरक्षणके लिये भगवान् महेश्वरको पुनः प्राप्त करनेहेतु मेनकाके गर्भमें प्रवेश किया॥ ४१—४३॥ महापातकोंका नाश करनेवाले जगदम्बाके इस चरित्रका जो परम भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह शिवत्वको प्राप्त करता है॥ ४४॥ सभी देवता, मनुष्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और चारणादि उस पुण्यात्मा मनुष्यके इसी जन्ममें आज्ञाके वशवर्ती हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। इस पुण्य-चरित्रका श्रवण करनेवाले मनुष्यकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें कहीं कोई समर्थ नहीं होता। उसके दुर्गम और अति दुष्कर कार्य भी क्षणमात्रमें ही अवश्य सिद्ध हो जाते हैं॥ ४५-४६॥

इस पुण्य चरित्रके श्रवणसे जन्म-जन्मार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं, शत्रुओंका नाश होता है और वंशकी वृद्धि होती है॥ ४७॥ महामते! सत्य तो यह है कि जिन्होंने संसारमें जन्म लेकर इस पुण्यचरित्रका श्रवण नहीं किया, उनका इस मृत्युलोकमें जन्म लेना ही व्यर्थ है। संसाररूपी रोगके परमौषधरूप देवीके इस पवित्र आख्यानको सुनकर महान् पातकी मनुष्य भी सद्यः जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ४८-४९॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कामरूपादिमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'कामरूपादिमाहात्म्यवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

मेनकाके गर्भके अर्धांशसे गङ्गाके प्राकट्यका आख्यान, देवर्षि नारदद्वारा हिमालयको गङ्गाका माहात्म्य सुनाना, ब्रह्मादि देवताओंद्वारा हिमालयसे भगवती गङ्गाको ब्रह्मलोक ले जानेकी याचना करना

श्रीमहादेव उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि द्विधा भूत्वा स्वयं सती।
यथाऽभवन्मेनकाया गर्भे हिमवतः सुता॥ १॥
तत्रादौ समभूद्गङ्गा निजांशेन सितप्रभा।
स्थातुं शिरसि शम्भोः सा भूत्वा द्रवमयी मुने॥ २॥
तत्पश्चात्समभूद्गौरी पूर्णा शंकरगेहिनी।
सा हि यत्प्रेमभावेन शरीरार्धं महेशितुः॥ ३॥
तत्राभूत्सा यथा गङ्गा तच्छृणुष्व महामते।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महापि नरः क्षणात्॥ ४॥
सुमेरुतनया मेना गिरिराजस्य गेहिनी।
तां जन्मनि सुता प्राप निजांशेन महेश्वरी॥ ५॥
गङ्गा समभवद्गर्भे सती गिरिवराङ्गना।
सुषुवे च सुतां चारुसर्वाङ्गीं रुचिराननाम्॥ ६॥
वैशाखे मासि शुक्लायां तृतीयायां दिनार्धके।
गङ्गा समभवच्छुक्ला सुचारुमुखपङ्कजा॥ ७॥
त्रिनेत्रा असितापाङ्गी चतुर्बाहुविशोभिता।
अथाद्रिराजः श्रुत्वा तु पुत्रीं जातां समुत्सुकः॥ ८॥
मङ्गलं चाकरोद्दानं विप्रेभ्यः प्रददौ बहु।
ववृधे सा पितुर्गेहे कलेव शशिनः सिते॥ ९॥
वर्षासु च यथा नित्यं नदी तोयेन वर्धते।
अथैकदा गिरीन्द्रस्तां क्रोडे कृत्वा पुरान्तरे॥ १०॥
उपविष्टस्तदायातो नारदो ब्रह्मणः सुतः।
गङ्गां द्रष्टुं भगवतीं ज्ञात्वा जातां निजांशतः॥ ११॥
प्रकृतिं यां समाराध्य कामरूपे स्थितो हरः।

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! मैं वह कथा सुना रहा हूँ, जिस प्रकार सतीने दो रूप धारण कर मेनकाके गर्भसे हिमवान्‌के घर पुत्रीरूपमें जन्म लिया॥ १॥ मुने! पहले वे अपने अंशसे धवल कान्तियुक्त गङ्गाके रूपमें प्रकट हुईं। भगवान् शंकरके सिरपर स्थान पानेके लिये उन्होंने जलरूप धारण किया। उसके बाद गौरीके रूपमें वे शंकरप्रिया पूर्णावतार धारणकर अतिशय प्रेमके कारण शिवके शरीरार्धमें स्थित होकर उनकी अर्धाङ्गिनी बनीं॥ २-३॥ महामते! वे गङ्गारूपमें कैसे प्रकट हुईं, उस प्रकरणको सुनो, जिसका श्रवण करनेसे ब्रह्म-हत्याके पापसे लिप्त मनुष्य भी तत्क्षण मुक्त हो जाता है॥ ४॥ सुमेरुकी पुत्री मेना गिरिराज हिमवान्‌की पत्नी थीं। जगदम्बाने अपने अंशरूपसे उनके यहाँ पुत्रीरूपमें जन्म लिया॥ ५॥ सती गङ्गारूपसे मेनाके गर्भमें आयीं और गिरिश्रेष्ठ हिमवान्‌की पत्नीने एक सुमुखी सर्वाङ्गसुन्दरी कन्याको जन्म दिया॥ ६॥ वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीया (अक्षयतृतीया)-के दिन मध्याह्नमें गौरवर्णा सुन्दर मुखकमलवाली गङ्गा प्रकट हुईं॥ ७॥

वे कृष्णकटाक्षयुक्त, तीन नेत्रों और चार भुजाओंसे सुशोभित थीं। कन्याजन्मकी बात सुनकर पर्वतराज बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उन्हें प्रचुर दान-दक्षिणा दी। शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कला तथा वर्षाकालमें नदीके जलके समान वह कन्या पिताके घरमें बड़ी होने लगी॥ ८-९½॥ एक दिन पर्वतराज हिमालय जब उस कन्याको गोदमें लेकर अन्तःपुरमें बैठे थे, उसी समय साक्षात् भगवतीके अंशसे गङ्गाको उत्पन्न हुआ जानकर ब्रह्मापुत्र देवर्षि नारद उनके दर्शनहेतु वहाँ पधारे, जिन परा प्रकृतिकी आराधना करके भगवान् शंकर कामरूपक्षेत्रमें स्थित रहते हैं॥ १०-११½॥

गिरिराजस्तमालोक्य प्रणम्य चरणद्वयम्॥ १२॥
प्रक्षाल्याचमनं दत्त्वा प्रोवाच विनयान्वितः।

हिमालय उवाच

मुने भाग्यवशादेव लभ्यते तव दर्शनम्॥ १३॥
दृष्टोऽसि साम्प्रतं ब्रह्मन्कथं तेऽत्र समागमः।

नारद उवाच

श्रुतमेतन्मया लोकात्कन्या सर्वाङ्गसुन्दरी॥ १४॥
काचित्तव गृहे जाता तां द्रष्टुमहमागतः।

हिमालय उवाच

अहो बहुतरं भाग्यमेतस्माच्च नमामि च॥ १५॥
यदेनां द्रष्टुकामस्त्वमागतो देवदुर्लभः।

नारद उवाच

त्वं धन्यः कृतकृत्यश्च सर्वसौभाग्यसंयुतः॥ १६॥
यतस्तवैषा तनया देवानामपि दुर्लभा।

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा गिरिराजं च मुनिः परमकौतुकात्॥ १७॥
तस्याङ्कात्तां निजाङ्केऽसावानयत्परमादृतः।
मुनिर्विधाय तां क्रोडे गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्॥ १८॥
धन्योऽस्मीत्यब्रवीद्वाक्यं रोमाञ्चितवपुस्ततः।
ततः प्राह गिरिं हृष्टो मुनीन्द्रो नारदः स्मयन्॥ १९॥
पुत्रीं यथार्थतः किं त्वं ज्ञातवानसि वा न वा।

हिमालय उवाच

ज्ञायते मम कन्येयं चार्वङ्गी शुभलक्षणा॥ २०॥
नान्यस्तु ज्ञायते कश्चिद्विशेषो मुनिपुङ्गव।

नारद उवाच

या मूलप्रकृतिः सूक्ष्मा दक्षकन्याभवत्पुरा॥ २१॥
नाम्ना सती सैव देवी निजांशेन महामते।
कन्या तवेयं सम्भूता प्रतिलब्धुं हरं पतिम्॥ २२॥
गङ्गेति क्रियते नाम सर्वपातकनाशनम्।
लोकानां त्राणकर्त्रीयं महापातकनाशिनी॥ २३॥

गिरिराजने नारदजीको आया जानकर उनके चरणोंमें वन्दना की तथा पाद्य, आचमन आदिसे उनका सत्कार कर वे विनयपूर्वक बोले—॥ १२½ ॥

हिमालय बोले—मुने! बड़े भाग्यसे आपके दर्शन प्राप्त होते हैं। इस समय मुझे आपका दर्शन हुआ, ब्रह्मन्! कृपया बतायें कि आप किस कारणसे यहाँ पधारे हैं?॥ १३½ ॥

नारदजी बोले—मैंने लोगोंसे सुना है कि आपके घर एक परम सुन्दरी कन्याका जन्म हुआ है। मैं उसीको देखने आया हूँ॥ १४½ ॥

हिमालय बोले—अहो! मेरा परम सौभाग्य है कि देवदुर्लभ आप मेरी इस कन्याको देखने पधारे हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है॥ १५½ ॥

नारदजी बोले—आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और परम सौभाग्यशाली हैं, जो ऐसी देवदुर्लभ कन्या आपको प्राप्त हुई है॥ १६½ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—गिरिराज हिमालयसे ऐसा कहकर मुनिवर नारदजीने उत्सुकतापूर्वक उस कन्याको उनकी गोदसे आदरपूर्वक अपनी गोदमें ले लिया। मुनिवरने त्रैलोक्यपावनी उन गङ्गाको गोदमें लेकर रोमाञ्चित होकर 'मैं धन्य हुआ'—ऐसा कहा। तब हर्षपूर्वक उन्होंने हिमराजसे मुसकराते हुए पूछा कि आप अपनी पुत्रीको यथार्थरूपसे जानते हैं अथवा नहीं?॥ १७—१९½ ॥

हिमालय बोले—मुनिश्रेष्ठ! मैं तो यही जानता हूँ कि यह शुभ लक्षणोंवाली सुन्दर बालिका मेरी बेटी है। इसके अतिरिक्त कोई विशेष बात मुझे ज्ञात नहीं है॥ २०½ ॥

नारदजी बोले—महामते! जो सूक्ष्मा मूल प्रकृति भगवती हैं, उन्होंने पहले दक्षप्रजापतिकी कन्याके रूपमें अवतार लिया था। वे ही भगवती सती अपने अंशरूपसे भगवान् शिवको पतिरूपसे पुनः प्राप्त करने-हेतु आपकी कन्या बनकर आयी हैं। इनका नाम गङ्गा रखा जाता है, जो सभी पापोंका नाश करनेवाला है। ये सभी प्राणियोंका परित्राण करनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं॥ २१—२३॥

विवाहोऽस्याः स्वर्गपुरे भविष्यति महागिरे।
शिव एव हि भर्तास्याः पूर्वमेव सुनिश्चितः॥ २४॥
एनां स्वर्गपुरं नेतुं ब्रह्मा लोकपितामहः।
भवन्तं स्वयमागत्य प्रार्थयिष्यति यत्नतः॥ २५॥
तदा त्वया समर्प्यैषा ब्रह्मणे चारुरूपिणी।
स तु नीत्वा स्वर्गपुरे शिवमाहूय सादरम्॥ २६॥
सम्प्रदास्यति तस्मै ते पुत्रीमेनां शुभाननाम्।

हिमालय उवाच

त्वं ज्ञाता विषयाणां हि भूतभव्यभविष्यताम्॥ २७॥
विज्ञानचक्षुषा सर्वं प्रत्यक्षमिव पश्यसि।
विधात्रा विहितं यत्तु तद्भविष्यति नान्यथा॥ २८॥
तदहं किं करिष्यामि नेश्वरेच्छा वृथा भवेत्।

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो गिरिराजेन स मुनिः प्रययौ द्रुतम्॥ २९॥
यत्रास्ति भगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
तं प्रणम्याह स मुनिः प्रहृष्टात्मा महामतिः॥ ३०॥
प्रभो सती समुत्पन्ना हिमालयगृहे पुनः।
निजांशेनाभवदियं गङ्गा परमसुन्दरी॥ ३१॥
पूर्णापि देवी तत्रैव सम्भविष्यत्युमापि च।

ब्रह्मोवाच

सत्यं जानामि जाता सा हिमालयगृहेऽधुना॥ ३२॥
निजांशेन महादेवी गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
महेशपूर्वपत्नी सा महेशमभियास्यति॥ ३३॥
शिवोऽपि तामनुप्राप्य निर्वृतिं लप्स्यते पराम्।
किंतु छायासती देहं धृत्वा मूर्ध्नि यदा हरः॥ ३४॥
आनन्दमग्नचित्तः सन्ननर्त धरणीतले।
तदा तस्य शिरःसंस्थं छायादेहं हरिः स्वयम्॥ ३५॥
चकर्तास्या मतेनैव जगद्रक्षणहेतवे।
तेनापराधेनाद्यापि रुष्टोऽस्मान्प्रति शंकरः॥ ३६॥
तस्य किं वा करिष्यामि कथं तुष्टो भवेच्छिवः।

गिरिराज! इनका विवाह स्वर्गमें होगा। भगवान् शिव ही इनके पति बनेंगे—यह पहलेसे ही सुनिश्चित है। इन्हें स्वर्ग ले जानेके लिये लोकपितामह ब्रह्माजी स्वयं आपके पास आकर यत्नपूर्वक प्रार्थना करेंगे॥ २४-२५॥ तब आपको उन्हें यह सुन्दर रूपवती कन्या प्रदान कर देनी चाहिये, जिसे लेकर वे स्वर्गमें चले जायँगे। वहाँ भगवान् शिवको सादर आमन्त्रित करके वे तुम्हारी इस सुन्दर मुखवाली कन्याको उन्हें प्रदान करेंगे॥ २६$\frac{1}{2}$॥

हिमालय बोले—मुनिश्रेष्ठ! आप तो भूत, भविष्य और वर्तमानकी सभी बातोंके ज्ञाता हैं। ज्ञानदृष्टिसे आप प्रत्यक्षके समान सब देख लेते हैं। इसके लिये विधाताने जो विधान बनाया है, वह तो होकर ही रहेगा, अन्यथा नहीं होगा, मैं इसमें क्या कर सकता हूँ? ईश्वरकी इच्छा वृथा नहीं हो सकती॥ २७-२८$\frac{1}{2}$॥

श्रीमहादेवजी बोले—गिरिराजके ऐसा कहनेके पश्चात् नारद मुनि शीघ्र ही वहाँसे ब्रह्मलोकको चले गये, जहाँ लोकपितामह ब्रह्माजी विराजमान थे। उन्हें प्रणाम करके महामति नारदजी प्रसन्नतापूर्वक बोले—॥ २९-३०॥ प्रभो! सतीने हिमालयके घरमें पुनः अपने अंशरूपसे परमसुन्दरी गङ्गाके रूपमें जन्म ले लिया है। अपने पूर्णरूपसे भी वे जगदम्बा उमा नामसे वहीं जन्म लेंगी॥ ३१$\frac{1}{2}$॥

ब्रह्माजी बोले—यह सत्य है। मुझे भी ज्ञात है कि हिमालयके घरमें त्रैलोक्यपावनी गङ्गारूपसे अपने अंशावतारमें भगवती प्रकट हुई हैं। वे भगवान् शंकरकी पूर्वपत्नी सती ही हैं और वे महेशको ही पुनः प्राप्त करेंगी॥ ३२-३३॥ भगवान् शिव भी उन्हें पुनः पाकर परम आनन्दित होंगे, किंतु इसमें एक संदेह है। सतीके छायाशरीरको सिरपर लेकर जब शिवजी आनन्दमग्न चित्तवाले होकर पृथ्वीपर ताण्डव कर रहे थे, तब उनके सिरपर स्थित उस छायाशरीरके मेरी सम्मतिसे जगत्‌की रक्षा करनेहेतु स्वयं भगवान् विष्णुने टुकड़े कर दिये थे। उस अपराधके कारण शिवजी अभीतक हमलोगोंसे रुष्ट हैं। इस विषयमें अब हमें क्या करना चाहिये, जिससे कि भगवान् शिव प्रसन्न हो जायँ?॥ ३४—३६$\frac{1}{2}$॥

नारद उवाच

श्रृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि यद्विद्वेषो महेशितुः ॥ ३७ ॥
प्रसन्नता भवेदस्मान्प्रति येनात्र वै प्रभो।
गिरीणामधिपः श्रीमान् दाता परमधर्मवित्॥ ३८ ॥
तत्सन्निधिं समागच्छ सार्धमिन्द्रादिदैवतैः।
भिक्षयाऽर्थय तां गङ्गां तदा नूनं स दास्यति॥ ३९ ॥
ततश्च तां समानीय स्वर्गपुर्यां महोत्सवम्।
कृत्वा शम्भुं समाहूय गङ्गां देहि प्रयत्नतः॥ ४० ॥
यथा छायासती तस्य स्थिता मूर्ध्नि तथैव हि।
इयं द्रवमयी भूत्वा संस्थास्यति सुनिश्चितम्॥ ४१ ॥
तदेव तुष्टो भगवान्भविष्यति महेश्वरः।

नारदजी बोले—प्रभो! ब्रह्मन्! सुनिये, मैं वह उपाय बताता हूँ, जिससे भगवान् शिवका रोष हमलोगोंके प्रति प्रसन्नतामें बदल जायगा। ऐश्वर्यशाली गिरिराज हिमालय धर्मज्ञ हैं और उदार भी हैं। इन्द्रादि देवताओंको साथ लेकर आप उनके पास जाकर गङ्गाको माँग लें। आपके अनुरोधसे वे अवश्य भगवती गङ्गाको आपको प्रदान कर देंगे॥ ३७—३९॥ तब उन्हें स्वर्गमें लाकर एक बड़े उत्सवका आयोजन करके भगवान् शिवको उसमें आमन्त्रित कर आग्रहपूर्वक गङ्गाको उन्हें प्रदान कर दीजिये॥ ४०॥ जैसे छायासती उनके सिरपर स्थित रहीं वैसे ही ये जलरूपमें उनके सिरपर निश्चित ही सुशोभित रहेंगी। इससे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जायँगे॥ ४१$\frac{1}{2}$॥

ब्रह्मोवाच

पुत्र त्वं तु चिरंजीव यदेवमुक्तवानसि॥ ४२ ॥
यद्येवं स्यात्तदा शम्भुः प्रीतियुक्तो भविष्यति।
गच्छ पुत्र द्रुतं तत्र देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ४३ ॥
कथयस्व यथावृत्तमायान्तु मम सन्निधिम्।

ब्रह्माजी बोले—पुत्र! तुम चिरञ्जीवी होओ। जैसा तुमने कहा वैसा करनेसे भगवान् शंकर अवश्य प्रसन्न हो जायँगे। अतः पुत्र! तुम शीघ्रतापूर्वक इन्द्रादि देवोंके पास जाकर उन्हें सारी बात बताकर मेरे पास आनेका संदेश दे दो॥ ४२—४३$\frac{1}{2}$॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणा प्रीतः प्रययौ नारदो मुनिः॥ ४४ ॥
यत्र देवा महात्मानः सन्तीन्द्राद्या महामते।

श्रीमहादेवजी बोले—महामते! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर नारद मुनि प्रसन्न होकर वहाँ गये, जहाँ महामना इन्द्रादि देवगण विराजमान थे॥ ४४$\frac{1}{2}$॥

नारद उवाच

देवराज समायातो ब्रह्मलोकादहं प्रभो॥ ४५ ॥
युष्माकं सन्निधिं पित्रा समादिष्टो महात्मना।
मर्त्ये हिमवतो गेहे पुत्री जाता स्वयं सती॥ ४६ ॥
भागार्धेन महादेवी गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
तामानेतुं स्वर्गपुरं ब्रह्मा यास्यति भूतलम्॥ ४७ ॥
यूयमागच्छत क्षिप्रं मर्त्ये गन्तुं सुरोत्तमाः।

नारदजी बोले—प्रभो देवराज! मैं ब्रह्मलोकसे महात्मा पिताजीकी आज्ञासे आपके पास आया हूँ। मर्त्यलोकमें हिमवान्‌के गृहमें साक्षात् देवी सतीने पुत्रीरूपसे जन्म लिया है। अपने अर्धांशसे महादेवी त्रैलोक्यपावनी गङ्गाके रूपमें आयी हैं। उन्हें स्वर्गमें लानेके लिये ब्रह्माजी पृथ्वीतलपर जायँगे। देवश्रेष्ठो! आपलोग शीघ्र ही मर्त्यलोक चलनेके लिये ब्रह्मलोक आयें॥ ४५—४७$\frac{1}{2}$॥

देवा ऊचुः

किं ब्रवीषि मुनिश्रेष्ठ मर्त्ये जाता स्वयं सती॥ ४८ ॥
वृत्तमेतन्महेशाय कथितं किं न वा मुने।

देवगण बोले—मुनिवर! आप क्या कह रहे हैं? क्या स्वयं सतीने मृत्युलोकमें जन्म लिया है? मुने! क्या भगवान् शंकरको यह बात बता दी गयी है?॥ ४८$\frac{1}{2}$॥

नारद उवाच

आनीय तां देवपुरे ततो यास्यामि शंकरम्॥ ४९ ॥
द्रुतमागच्छत सुरा ब्रह्मणो निकटं ततः।

नारदजी बोले—उन गङ्गाको स्वर्गलोकमें लानेके बाद मैं शिवजीके पास जाऊँगा, देवगणो! आपलोग शीघ्र ब्रह्माजीके निकट पहुँचें॥ ४९$\frac{1}{2}$॥

श्रीमहादेव उवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा जग्मुर्ब्रह्मपुरं तदा॥ ५०॥
इन्द्राद्यास्ते मुनिश्रेष्ठ हर्षोत्फुल्लमुखाम्बुजाः।
प्रणेमुश्च महात्मानं ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ ५१॥
ऊचुः कृताञ्जलिपुटाः किमाज्ञापयसि प्रभो।

ब्रह्मोवाच

सती हिमवतो गेहे जाता गङ्गा महेश्वरी॥ ५२॥
भागार्धेन तथैवोमा तत्रैव हि भविष्यति।
साम्प्रतं तां स्वर्गपुरं यास्यामो नेतुमुत्तमाम्॥ ५३॥
भवन्तः स्वनिकेताच्च समागच्छन्तु माचिरात्।
इन्द्रः कुबेरो वरुणः सोमसूर्याग्निमारुताः॥ ५४॥
समायान्तु मया साकं बुद्धिमांश्चैव नारदः।

श्रीमहादेव उवाच

तथेत्युक्त्वा ययुर्देवा इन्द्राद्या मुनिपुङ्गव॥ ५५॥
ब्रह्मा महर्षिणा तेन नारदेन ययौ द्रुतम्।
हिमाद्रिसन्निधिं गङ्गायाचने कृतमानसः॥ ५६॥
तदहः पूर्वरात्रे तु गङ्गा गिरिवरं स्वयम्।
स्वप्ने प्राह महादेवी ज्ञात्वा देवविचेष्टितम्॥ ५७॥
स्वप्नं संदर्शयामास रजन्याः शेष एव हि।
शुक्ला त्रिनयना काचिद्देवी मकरवाहना॥ ५८॥
उवाच प्रमुखे स्थित्वा पितुस्ते तनया ह्यहम्।
आद्या प्रकृतिरेकैव साहं दक्षप्रजापतेः॥ ५९॥
पुत्री सती पितुर्यज्ञे शिवं त्यक्तवती पतिम्।
शिवस्तु मद्वियोगार्तः कामरूपे व्यवस्थितः॥ ६०॥
तपश्चरति मां लब्धुं पत्नीभावेन वै पुनः।
त्वयाप्याराधिता चाहं पुत्रीभावेन भक्तितः॥ ६१॥
तेनाहं त्वद्गृहे जाता भागार्धेन तु साम्प्रतम्।
भागार्धेनापरेणापि भविष्यामि तवात्मजा॥ ६२॥
मां नेतुमागमिष्यन्ति ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
त्वां सम्प्रार्थ्य स्वर्गपुरं यास्यामि सह तैः सुरैः॥ ६३॥
लप्स्यामि च पतिं शम्भुं देवैर्दत्तं महात्मभिः।
मदर्थं मा शुच पितः कदाचिदपि मोहितः॥ ६४॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब देवगण 'तथास्तु' कहकर ब्रह्मलोक पहुँचे। हर्षसे विकसित मुखकमलवाले उन इन्द्रादि देवगणोंने जगत्पति महात्मा ब्रह्माजीको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर पूछा—प्रभो! हमारे लिये क्या आज्ञा है?॥ ५०-५१½ ॥

ब्रह्माजी बोले—महादेवी सती हिमवान्‌के घरमें अपने अर्धांशसे गङ्गारूपसे जन्मी हैं। इसी प्रकार उमा भी वहाँ अवतार लेंगी। उन ज्येष्ठपुत्री गङ्गाको स्वर्गमें लानेके लिये हमलोग वहाँ चलेंगे॥ ५२-५३॥ इन्द्र, कुबेर, वरुण, चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु और बुद्धिमान् नारद—आप सब लोग अपने-अपने स्थानोंसे मेरे साथ चलनेको शीघ्र तैयार हो जायँ॥ ५४½ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिपुङ्गव! इन्द्रादि देवगण 'ऐसा ही हो' कहकर गङ्गाको माँगनेका विचार कर महर्षि नारद तथा ब्रह्माजीके साथ हिमालयके पास शीघ्र पहुँच गये॥ ५५-५६॥ देवताओंकी चेष्टा जानकर महादेवी गङ्गाने उससे पिछली रात्रिको ही गिरिराजको स्वप्नमें सारी बात स्वयं बता दी॥ ५७॥ रात्रिके अन्तिम प्रहरमें गिरिराजको स्वप्नमें श्वेतवर्णा, त्रिनयना, मकरवाहना एक देवी दिखायी दीं। वे सामने आकर बोलीं—पिताजी! मैं आपकी पुत्री हूँ। एकमात्र मैं ही आद्या प्रकृति हूँ, और मैं वही हूँ जिसका दक्षप्रजापतिकी पुत्री सतीरूपसे पिताके यज्ञमें शरीर त्यागकर अपने पति शिवसे वियोग हो गया था। शिवजी भी मेरे वियोगमें व्यथित होकर कामरूपक्षेत्रमें रहने लगे। वे मुझे पत्नीरूपसे पुनः प्राप्त करनेके लिये तप कर रहे हैं। आपने भी पुत्रीरूपसे मुझे पानेके लिये भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है। इसलिये मैं अपने अर्धांशसे इस समय आपके घरमें आयी हूँ। अपने दूसरे अर्धांशसे भी मैं आपकी ही पुत्री बनूँगी॥ ५८—६२॥ मुझे ले जानेके लिये ब्रह्मादि देवगण आपके पास प्रार्थना करने आयेंगे। मैं उन देवताओंके साथ स्वर्ग चली जाऊँगी और उन महान् देवताओंके द्वारा भगवान् शंकरको दी जानेपर मैं पुनः उन्हें पतिरूपसे प्राप्त कर लूँगी। पिताजी! मेरे लिये आप मोहासक्त होकर कभी भी शोक न करें॥ ६३-६४॥

पूर्वमुक्तमतस्तात नानुशोचितुमर्हसि।
इत्येवमुक्त्वा सा स्वप्ने गङ्गा शैलाधिपं मुने॥ ६५॥

अन्तर्हिताऽभवत्तत्र गिरिराट् प्रबुबोध च।
विचारयामास सर्वं यदुक्तं गङ्गया ततः॥ ६६॥

मोह आसीत्पुरा यो वै तं तत्याज महागिरिः।
अथायाताः सुरास्ते तु ब्रह्माद्या मुनिपुङ्गव॥ ६७॥

हिमालयगृहे गङ्गां नेतुकामा महौजसः।
स प्रणम्य गिरिश्रेष्ठस्तानुवाच महामतिः॥ ६८॥

कथमत्रागता देवाः कथयध्वं यथार्हतः।

देवा ऊचुः

दाता त्वं सर्वलोकेषु गीयसे भूधराधिप॥ ६९॥

भिक्षार्थमागताः स्मोऽद्य तवान्तिकमतो गिरे।
इति तेषां वचः श्रुत्वा स्मृत्वा स्वप्नकथां गिरिः॥ ७०॥

भाषितं नारदेनापि नोवाच वचनं तदा।
ततः संचिन्त्य मनसा देवानाह महागिरिः॥ ७१॥

त्रैलोक्यस्याधिपा यूयं कथं भिक्षार्थिनः सुराः।
किं प्रदास्यामि युष्मभ्यं तन्मे वदत साम्प्रतम्॥ ७२॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि यदर्थं समुपागताः।
इमे देवास्तव पुरं सर्वरत्नसुशोभिता॥ ७३॥

प्रकृतिः परमा जाता दक्षपुत्री स्वयं सती।
शिवं वृतवती साध्वी पतिं त्रिभुवनेश्वरम्॥ ७४॥

दक्षस्तु शिवनिन्दासु रतः कुमतिरीश्वरम्।
शिवं द्विषन्महायज्ञमारभद्गिरिपुङ्गव॥ ७५॥

सर्वानेवाह्वयत्तत्र देवानिन्द्रपुरोगमान्।
विष्णुं मां च महामोहाद्वर्जयित्वा सतीशिवौ॥ ७६॥

तेन क्रुद्धा महादेवी गन्तुं दक्षपुरं स्वयम्।
समुद्यता महेशेन निषिद्धा बहुधा गिरे॥ ७७॥

पिताजी! आपको ये बातें पहले ही इसलिये बता दी हैं, जिससे आप ऐसा होनेपर दुःखी न हों। मुने! गिरिराजसे स्वप्नमें ऐसा कह करके वे गङ्गाजी अन्तर्धान हो गयीं और तब हिमवान् जग गये। उन्होंने गङ्गाजीकी कही हुई सारी बातोंपर विचार किया॥ ६५-६६॥ गिरिराजको इस विषयमें पहले जो मोह था, वह दूर हो गया। मुनिश्रेष्ठ! तब महान् तेजस्वी ब्रह्मादि देवगण हिमालयके यहाँ गङ्गाको ले जानेकी इच्छासे आये। उन बुद्धिमान् गिरिराजने उन्हें प्रणाम करके कहा—देवगणो! आप यहाँ कैसे आये? जो उचित हो, वैसा आप मुझे कहिये॥ ६७-६८½॥

देवगण बोले—पर्वतराज! सभी लोकोंमें दानीके रूपमें आपकी कीर्ति गायी जाती है। गिरे! आज हम सभी आपके पास भिक्षा माँगने आये हैं॥ ६९½॥ उनका ऐसा वचन सुनकर गिरिराजको स्वप्नमें देखा सारा वृत्तान्त याद आ गया कि नारदजीने भी पूर्वमें ऐसा ही कहा था, तब हिमालयने कोई उत्तर नहीं दिया था। तदनन्तर मनमें विचारकर गिरिराजने देवताओंसे यह कहा—॥ ७०-७१॥ देवगणो! आपलोग तो त्रिलोकके स्वामी हैं। आप देवोंको भिक्षा माँगनेकी क्या आवश्यकता हो गयी? आप बतायें कि मैं आपको क्या प्रदान करूँ?॥ ७२॥

ब्रह्माजी बोले—वत्स! सुनो, मैं बताता हूँ जिस कारण सभी प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित ये देवगण तुम्हारे पास आये हैं॥ ७३॥ परा प्रकृति ही स्वयं दक्षप्रजापतिकी कन्या सती बनकर जन्मी थीं। उन साध्वीने त्रिभुवनपति भगवान् शंकरका वरण किया था। गिरिश्रेष्ठ! दक्षप्रजापतिने कुबुद्धिके कारण भगवान् शंकरकी निन्दामें लीन रहते हुए द्वेष-बुद्धिसे एक महायज्ञका आयोजन किया। उसने इन्द्र प्रभृति सभी देवताओंको आमन्त्रित किया। मुझे और विष्णुको भी बुलाया, किंतु महान् मूर्खतावश सती और शिवको नहीं बुलाया॥ ७४—७६॥ गिरे! इस कारण महादेवी सती कुपित होकर स्वयं दक्षके नगरको जानेके लिये उद्यत हुईं, यद्यपि शिवजीने उन्हें अनेक प्रकारसे रोकना चाहा॥ ७७॥

प्रभुत्वाभिमतेनेति शम्भुर्जातोऽपराधकृत्।
तेन क्रुद्धा शिवं त्यक्त्वा दक्षगेहं गता सती॥ ७८॥
दक्षोऽपि मायया मुग्धः शिवमेव व्यनिन्दयत्।
तेन तं च परित्यज्य शिवं चाप्यपराधिनम्॥ ७९॥
विमोह्य मायया देवी छायया मृतरूपया।
नित्या ब्रह्ममयी पूर्णा स्वयमन्तर्हिताभवत्॥ ८०॥
तेन शोकेन दुःखार्तः शिवस्त्रिभुवनेश्वरः।
तां छायां शिरसा धृत्वा ननर्त धरणीतले॥ ८१॥
तेन नृत्येन भुवनं रसातलगमोद्यतम्।
दृष्ट्वा विष्णुं देवगणा ऊचू रक्ष जगत्त्रयम्॥ ८२॥
ततश्चक्रेण भगवान् विष्णुः परमपूरुषः।
छायासत्यास्तु तं देहं प्रचिच्छेद शनैः शनैः॥ ८३॥
स तद्देहवियोगेन दुःखितः परमेश्वरः।
अद्यापि रुष्ट आस्तेऽस्मान्प्रति भूधरपुङ्गव॥ ८४॥
सैव दाक्षायणी देवी साम्प्रतं तव वेश्मनि।
अंशेन तनया जाता गङ्गा त्रिभुवनेश्वरी॥ ८५॥
शिवस्य पूर्वपत्नीयं शिवमेव हि लप्स्यति।
केवलं रुष्टचित्तोऽस्मान्प्रति स्थास्यति शंकरः॥ ८६॥
अतस्त्वं यदि चास्मभ्यं कन्यामेनां प्रयच्छसि।
तदा स्वर्गपुरं नीत्वा महोत्सवपुरःसरम्॥ ८७॥
महेशाय समर्प्यैव प्राप्स्यामो निर्वृतिं पराम्।
या देवी पूर्णभावेन भविष्यत्यपरा सुता॥ ८८॥
तां त्वमेव महेशाय सम्प्रदास्यसि सादरम्।
एनां देहि त्विमां नीत्वा ददामः शम्भवे गिरे॥ ८९॥

हिमालय उवाच

कन्याया न पितुर्गेहे स्थितिर्भवति शाश्वती।
परार्थाय भवेत्कन्या न स्वकीया कदाचन॥ ९०॥
जानाम्येवं बहुविधं तथापि मम चेतसि।
गङ्गाविरहजं दुःखं दुःसहं सम्भविष्यति॥ ९१॥

अपने प्रभुत्वके अभिमानसे शिवजीने ऐसा किया है—यह सोचकर सतीने भगवान् शिवको अपराधी समझा और क्रुद्ध होकर वे उन्हें छोड़कर दक्षके घरको चली गयीं॥ ७८॥ दक्षप्रजापतिने भी मायाके वशीभूत होकर शिवकी ही निन्दा की। इसलिये सतीने अपराधी दक्ष और शिव दोनोंको विमोहित कर और छोड़कर अपनी मायासे मृत छायाशरीर धारण कर लिया। स्वयं वे पूर्णा नित्या ब्रह्मस्वरूपा अन्तर्धान हो गयीं॥ ७९-८०॥ त्रिभुवनपति भगवान् शिव दुःखसे व्याकुल होकर उस छायासतीको सिरपर लिये धरातलपर नृत्य करने लगे। उस ताण्डवसे त्रिभुवन रसातलको जाने लगा। ऐसा देखकर देवताओंने विष्णुसे त्रिभुवनकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की॥ ८१-८२॥ पर्वतराज! परमपुरुष भगवान् विष्णुने चक्रसे छायासतीके उस शरीरको धीरे-धीरे काट दिया। परमेश्वर शिव उस देहके वियोगसे दुःखी होकर आज भी हमसे रुष्ट हैं॥ ८३-८४॥ वे ही भगवती दाक्षायणी सती अब तुम्हारे घरमें अपने अंशभागसे त्रिलोकेश्वरी गङ्गाके रूपमें आयी हैं। ये भगवान् शिवकी पूर्वपत्नी हैं और उन्हें ही पुनः प्राप्त करेंगी, परंतु भगवान् शंकर हमलोगोंसे रुष्ट ही रह जायँगे। अतः यदि आप इस कन्याको हमें दे दें और हम इसे स्वर्गलोकमें ले जाकर एक महोत्सवका आयोजन कर भगवान् शंकरको समर्पित कर दें तो इससे हमें परम आनन्द प्राप्त होगा॥ ८५—८७½॥

जो जगदम्बा अपने पूर्णांशसे आपकी दूसरी पुत्रीके रूपमें जन्मेंगी उन्हें आप स्वयं ही परमेश्वर सदाशिवको सादर समर्पित करेंगे। गिरे! इस कन्याको हमें दे दीजिये। हम इसे ले जाकर भगवान् शम्भुको समर्पित कर देंगे॥ ८८-८९॥

हिमालय बोले—कन्या अपने पिताके घरमें हमेशाके लिये तो रहती नहीं। वह तो दूसरेको देनेके लिये ही होती है, अपनी नहीं होती। इस बातको मैं अच्छी तरह समझता हूँ, फिर भी गङ्गाके जानेका मेरे मनमें असहनीय दुःख होगा॥ ९०-९१॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्त्वा गिरिश्रेष्ठः साश्रुपूर्णविलोचनः।
रुरोद बहुधा गङ्गां क्रोडे कृत्वा महामतिः॥ ९२॥

गङ्गा प्राह पितस्त्वं तु त्यज शोकं कृते मम।
प्रयच्छ ब्रह्मणे चास्मै यास्ये स्वर्गं तु साम्प्रतम्॥ ९३॥

नाहं तव विदूरस्था न मे दूरस्थितो भवान्।
त्वं भक्तो भक्तिगम्याहं सदैव निकटे स्थिता॥ ९४॥

एवमुक्त्वा तु पितरं प्रणम्य गिरिनन्दिनी।
ब्रह्मणो निकटं प्रायाद्गन्तुं भूतपतिं पतिम्॥ ९५॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर महामति गिरिराज हिमालय गङ्गाको गोदमें बिठाकर अश्रुभरे नेत्रोंसे बहुविध रुदन करने लगे। तब गङ्गाजी बोलीं—पिताजी! आप मेरे लिये दुःखी न हों। मुझे ब्रह्माजीको दे दें। अब मैं स्वर्ग जाऊँगी॥ ९२-९३॥ मैं आपसे दूर नहीं हूँ और न आप ही मुझसे दूर हैं। आप भक्त हैं और मैं भक्तिसे प्राप्य हूँ। अतः आप मुझे सदा अपने निकट ही पायेंगे॥ ९४॥ पितासे ऐसा कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके गिरिसुता गङ्गा भूतपति सदाशिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये ब्रह्माजीके पास चली गयीं॥ ९५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे गङ्गागमनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'गङ्गागमन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका गङ्गाजीको कमण्डलुमें लेकर स्वर्गमें आना, मातासे मिले बिना गङ्गाके स्वर्गलोक चले जानेपर क्रुद्ध मेनाद्वारा उन्हें जलरूप होकर पुनः पृथ्वीलोक आनेका शाप देना, स्वर्गलोकमें देवी गङ्गासे भगवान् शंकरका विवाह

श्रीमहादेव उवाच

ततो ब्रह्मा गिरीन्द्रानुमतौ गङ्गां महामुने।
कमण्डलौ समादाय प्रायात्स्वर्गपुरं द्रुतम्॥ १॥

अथ मेना समागत्य गिरीन्द्रस्यान्तिकं तदा।
अदृष्ट्वा तनयां वाचमुवाच गिरिपुङ्गवम्॥ २॥

मेनकोवाच

क्व गता मे सुता राजन् गङ्गा प्राणसमा प्रभो।
संस्थिता तु तवाङ्के सा केन नीता वद प्रभो॥ ३॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः साश्रुपरीताक्षः प्राह तस्यै हिमालयः।
गङ्गाया गमनं स्वर्गे याच्ञया ब्रह्मणोऽपि च॥ ४॥

तच्छ्रुत्वा तु मुनिश्रेष्ठ गङ्गाविच्छेददुःखिता।
रुरोद गिरिराजस्य पत्नी मेनातिविस्तरम्॥ ५॥

ततस्तां सान्त्वयामास गिरीन्द्रो ज्ञानिनां वरः।
श्रावयन् भाषितं सर्वं गङ्गायाः स्वयमेव हि॥ ६॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! तब ब्रह्माजी गिरिराजकी अनुमतिसे गङ्गाजीको अपने कमण्डलुमें लेकर शीघ्र ही स्वर्गलोक आ गये॥ १॥ इधर मेना जब गिरिराजके पास आयीं, तब बेटीको वहाँ न देखकर गिरिश्रेष्ठ हिमालयसे कहने लगीं॥ २॥

मेनका बोलीं—राजन्! प्रभो! मेरी प्राणप्यारी पुत्री गङ्गा कहाँ गयी? वह तो आपकी गोदमें बैठी थी, उसे कौन ले गया? प्रभो! मुझे बताइये॥ ३॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब गिरिराज हिमालयने आँसूभरी आँखोंसे मेनाको देखकर ब्रह्माकी याचना तथा गङ्गाके स्वर्ग जानेकी बात बता दी॥ ४॥ मुनिश्रेष्ठ! ऐसा सुनकर गङ्गाके विरहसे दुःखी गिरिराजपत्नी मेना अनेक प्रकारसे रुदन करने लगीं। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गिरिराजने मेनाको सान्त्वना दी और उन्हें वह सारी बात भी बतायी, जो गङ्गाने स्वयं उनसे कही थी॥ ५-६॥

ततः स्वतनयां रोषाच्छशाप गिरिगेहिनी।
असम्भाष्य गतां स्वर्गं गङ्गां प्राणसमामपि॥ ७ ॥

मातरं मामसम्भाष्य गता यस्मात्त्रिविष्टपम्।
ततो द्रवमयी भूत्वा पुनरेहि धरातलम्॥ ८ ॥

एवं कृत्वाभिशापं तु मेना हिमवतोऽङ्गना।
प्रविवेश गृहं देवी गिरिराजोऽपि नारद॥ ९ ॥

अथ स्वर्गपुरे देवा गङ्गां नीत्वा समुत्सुकाः।
अकार्षुर्मङ्गलं तस्या विवाहार्थं महामते॥ १० ॥

नारदं प्रेषयामास ब्रह्मा हृष्टमनास्तदा।
कामरूपं महापीठं शम्भुमानेतुमादरात्॥ ११ ॥

ततः स नारदो गत्वा कामरूपे महेश्वरम्।
ददर्श ध्यानसन्निष्ठं योगचिन्तापरायणम्॥ १२ ॥

निवृत्तेन्द्रियकार्यं हि महायोगविचिन्तकम्।
मध्याह्नार्कसहस्राभं स्फुरदिन्दुविलोचनम्॥ १३ ॥

एवं विलोक्य देवेशं नारदस्तत्र संस्थितः।
चिन्तयामास भीतात्मा ध्यानभङ्गे महेशितुः॥ १४ ॥

यद्येनं कथये देव्याः सत्या हिमवतो गृहे।
जन्माभूदिति तत्तस्य ध्यानभङ्गो भविष्यति॥ १५ ॥

न चेद्वदामि तद्भ्रष्टप्रतिज्ञोऽहं भवामि च।
किंवा श्रुत्वा सतीदेव्याः पुनर्जन्म महेश्वरः॥ १६ ॥

तुष्ट्या परमया युक्तो मयि प्रीतो भविष्यति।
इति संचिन्त्य शनकैः शम्भोरन्तिकमाययौ॥ १७ ॥

उवाच नारदो देवं योगैकासक्तमानसम्।

नारद उवाच

देवदेव नमस्ये त्वां प्रसन्नो मे जगद्गुरो॥ १८ ॥

यस्ते सतीं समानेतुं प्रत्युद्यातस्त्वदन्तिकात्।
जाता तव सती भूयस्त्वामिच्छन्ती पतिं प्रभो॥ १९ ॥

तां ग्रहीतुं समागच्छ त्यज योगविचिन्तनम्।

अपनी माँसे बिना कोई बात किये ही स्वर्ग चले जानेके कारण गिरिराजपत्नी मेनाने अपनी प्राणप्रिया पुत्री गङ्गाको कुपित होकर (इस प्रकारका) शाप दे दिया॥ ७॥ 'मुझ मातासे बिना बात किये तुम स्वर्ग चली गयी, इसलिये तुम्हें जलरूपमें पुनः पृथ्वीलोकमें आना होगा'॥ ८॥ नारद! इस प्रकार हिमवान्‌की पत्नी मेना शाप देकर भवनमें चली गयीं और गिरिराज हिमवान् भी उनके साथ चले गये॥ ९॥ महामते! इधर स्वर्गलोकमें गङ्गाको लाकर देवगण अत्यन्त उल्लासपूर्वक उनकी विवाहसम्बन्धी माङ्गलिक क्रियाएँ करने लगे॥ १०॥ तदनन्तर प्रसन्नमन ब्रह्माजीने शिवजीको आदरपूर्वक बुलानेहेतु नारदजीको कामरूप महापीठ भेजा॥ ११॥ नारदजीने कामरूपमें जाकर भगवान् शिवको योगाभ्यासमें संलग्न एवं ध्यानमग्न देखा॥ १२॥ इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको समेटकर योगकी गहन साधनामें लीन, मध्याह्नकालके सहस्रों सूर्योंके समान तेजस्वी और चन्द्रमाके समान प्रकाशित नेत्रवाले भगवान् शिवको देखकर नारदजी वहीं खड़े रहे और सदाशिवके ध्यानको भंग करनेके भयसे विचार करने लगे कि यदि देवी सतीके हिमालयके घरमें जन्मकी बात इनसे कहूँ तो इनका ध्यान भंग हो जायगा॥ १३—१५॥ यदि कुछ न कहूँ तो मुझे प्रतिज्ञाभंगका पाप लगेगा। यह भी हो सकता है कि देवी सतीके पुनर्जन्मकी बात सुनकर भगवान् शिव परम सन्तुष्ट होकर मुझपर प्रसन्न हो जायँ। यह सब सोचकर धीरे-धीरे नारदजी भगवान् शंकरके समीप पहुँचे और योगमें लीन सदाशिवसे बोले—॥ १६-१७½ ॥

नारदजी बोले—जगद्गुरु महादेव! आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं आपके पाससे आपके लिये सतीको लानेहेतु गया था। प्रभो! आपकी प्रिया सती पुनः आपको पतिरूपमें पानेकी इच्छासे जन्म ले चुकी हैं। उन्हें प्राप्त करनेहेतु मेरे साथ चलिये। अब योगचिन्तन छोड़िये॥ १८-१९½ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति श्रुत्वा महादेवो ध्यानं त्यक्त्वा तदैव हि॥ २०॥

क्वास्ति मे सा सतीत्येवमुक्त्वा तस्थौ महीतले।
ततस्तं प्राह देवर्षिर्जाता हिमवतः सुता॥ २१॥

अंशेन सा सती देवी गङ्गा नाम्ना सुलोचना।
तां ब्रह्मा तु समानीय स्वर्गे सर्वसुरैः सह॥ २२॥

तुभ्यं दत्तमना भूत्वा प्रेषयामास मां प्रभो।
त्वमेहि परिगृह्णीष्व पत्नी ते चारुरूपिणी।
ततः कमण्डलौ ब्रह्मापश्यत्तां चारुरूपिणीम्॥ २३॥

स्थितामंशेन त्रैलोक्यपावनीं शिवगेहिनीम्।
महेशस्तां प्रगृह्यैव ततः प्रायान्महामते॥ २४॥

कैलासं सुप्रसन्नात्मा समस्तैः प्रमथैर्वृतः।
स्थिता कमण्डलौ या तु सैव मायापुरं हरम्॥ २५॥

प्राप्य द्रवमयी भूत्वा वसुधामपि सागमत्।
स्वर्गाद्ब्रह्मनदीरूपा समुपागत्य भूतलम्॥ २६॥

उद्धृत्य सागरं वंशं प्राप्य सागरमम्बुधिम्।
पातालं प्राप्य लोकानां परित्राणाय नारद॥ २७॥

एवं हिमगिरेः पुत्री भूत्वांशेन सती मुने।
पतिमाप महादेवं प्रसन्ना जगदम्बिका॥ २८॥

अपरापि मुनिश्रेष्ठ ततस्तु सा सती स्वयम्।
सम्भूयापि च पूर्णैव पतिमाप च शंकरम्॥ २९॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारदजीकी बातें सुनकर भगवान् शंकर उसी समय ध्यान छोड़कर 'वह मेरी सती कहाँ है' ऐसा कहते हुए स्थित हो गये। तब नारदजीने उन्हें बताया—प्रभो! भगवती सती अपने अंशरूपसे हिमालयकी सुन्दर नेत्रोंवाली बेटीके रूपमें गङ्गाके नामसे जन्मी हैं। उन्हें सभी देवताओंके साथ ब्रह्माजी स्वर्ग ले आये हैं और आपको प्रदान करना चाहते हैं। इसी निमित्त मुझे भेजा गया है। अतः आप मेरे साथ चलें और अपनी रमणीया पत्नीको प्राप्त करें। तबतक ब्रह्माजी अपने कमण्डलुमें स्थित परा प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न, तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली, सुन्दर स्वरूपवाली उन शिवप्रियाकी देखभाल करते रहे। महामते! तब शिवजी उन्हें लेकर प्रसन्नचित्तसे अपने प्रमथगणोंके साथ कैलासपर्वतपर चले गये॥ २०—२४½॥ जो जगदम्बा ब्रह्माके कमण्डलुमें रही थीं, वे ही भगवान् शिवको प्राप्त करनेके बाद जलरूपमें अवतीर्ण होकर पृथ्वीलोकमें मायापुर आयीं। नारद! स्वर्गसे ब्रह्मनदीने पृथ्वीलोकमें आकर सगरपुत्रोंका उद्धार किया और जलनिधि सागरमें मिलकर वे पाताललोकतक प्राणियोंका कल्याण करती रहती हैं॥ २५—२७॥ मुने! इस प्रकार सतीने अंशरूपसे हिमालयकी पुत्री होकर भगवान् शंकरको पतिरूपमें पुनः प्राप्त किया। मुनिवर! भगवती सतीने ही अपने दूसरे रूप पूर्णावतारमें पार्वतीरूपसे जन्म लेकर भगवान् शंकरको पतिरूपसे प्राप्त किया॥ २८-२९॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे गङ्गाविवाहवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'गङ्गाविवाहवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

हिमालय और मेनाकी तपस्यासे प्रसन्न हो आद्यशक्तिका 'पार्वती' नामसे हिमालयके यहाँ प्रकट होना और उन्हें दिव्य विज्ञानयोगका उपदेश प्रदान करना (भगवतीगीताका प्रारम्भ)

नारद उवाच

ब्रूहि देव महेशान यथा सा परमेश्वरी।
बभूव मेनकागर्भे पूर्णभावेन पार्वती॥ १ ॥

श्रुतं बहुपुराणेषु ज्ञायतेऽपि च यद्यपि।
जन्मकर्मादिकं तस्यास्तथापि परमेश्वर॥ २ ॥

श्रोतुं समिष्यते त्वत्तो यतस्त्वं वेत्सि तत्त्वतः।
तद्वदस्व महादेव विस्तरेण महामते॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच

त्रैलोक्यजननी दुर्गा ब्रह्मरूपा सनातनी।
प्रार्थिता गिरिराजेन तत्पत्न्या मेनयापि च॥ ४ ॥

महोग्रतपसा पुत्रीभावेन मुनिपुङ्गव।
प्रार्थिता च महेशेन सतीविरहदुःखिना॥ ५ ॥

प्रययौ मेनकागर्भे पूर्णब्रह्ममयी स्वयम्।
ततः शुभदिने मेना राजीवसदृशाननाम्॥ ६ ॥

सुषुवे तनयां देवीं सुप्रभां जगदम्बिकाम्।
ततोऽभवत्पुष्पवृष्टिः सर्वतो मुनिसत्तम॥ ७ ॥

पुण्यगन्धो ववौ वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश।
तथाद्रिराजः श्रुत्वा तु पुत्रीं जातां शुभाननाम्॥ ८ ॥

तरुणादित्यकोट्याभां त्रिनेत्रां दिव्यरूपिणीम्।
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रार्धकृतशेखराम्॥ ९ ॥

मेने तां प्रकृतिं सूक्ष्मामाद्यां जातां स्वलीलया।
तदा हृष्टमना भूत्वा विप्रेभ्यो प्रददौ बहु॥ १० ॥

धनं वासांसि च मुने दोग्ध्रीर्गाश्च सहस्रशः।
द्रष्टुं प्रतिययौ चाशु बन्धुभिः परिवारितः॥ ११ ॥

नारदजी बोले—महादेव! परमेश्वरी सती जिस प्रकार अपने पूर्णावतारमें पार्वतीरूपसे मेनकाके गर्भमें आयीं, उस कथाको कृपापूर्वक बतायें॥ १ ॥ परमेश्वर! यद्यपि उन जगदम्बाके जन्म, कर्मादिकी कथा अनेक पुराणोंमें सुनी गयी है तथा ज्ञात भी है तथापि उसे मैं आपसे अच्छी तरह सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप इस वृत्तान्तको ठीक-ठीक जानते हैं। महामते! महादेव! इसलिये कृपाकर विस्तारपूर्वक वह कथा कहें॥ २-३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! गिरिराज और उनकी पत्नी मेनाने त्रैलोक्यमाता, सनातनी और ब्रह्मरूपा दुर्गादेवीकी महान् उग्र तपस्या करके उन्हें पुत्रीरूपसे पानेकी प्रार्थना की थी। भगवान् शिवने भी सतीके विरहसे दुःखी होकर उन्हें प्राप्त करनेका अनुरोध किया था। अतः ब्रह्मरूपा जगदम्बिका स्वयं मेनाके गर्भमें आयीं। तदनन्तर देवी मेनाने शुभ दिनमें कमलके समान मुखवाली, सुन्दर प्रभावाली, जगन्माता भगवतीको पुत्रीरूपसे जन्म दिया। मुनिवर! उस समय सर्वत्र पुष्पवृष्टि होने लगी॥ ४—७ ॥ दसों दिशाओंमें प्रकाश फैल गया और सुगन्धित वायु बहने लगी। जब पर्वतराजने सुना कि उनके यहाँ सुन्दर कन्याने जन्म लिया है, जो करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्विनी, तीन नेत्रोंवाली, दिव्यस्वरूपा, बड़ी-बड़ी आँखोंवाली, आठ भुजाओंसे युक्त और मस्तकपर अर्धचन्द्रको धारण किये है तो उन्होंने जान लिया कि सूक्ष्मा परा-प्रकृतिने ही अपनी लीलासे उनके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। मुने! उन्होंने हर्षित होकर ब्राह्मणोंको प्रचुर धन, वस्त्र और हजारों दुधार गौएँ प्रदान कीं। तत्पश्चात् वे बन्धु-बान्धवोंसहित शीघ्र ही कन्याको देखने पहुँचे॥ ८—११ ॥

ततस्तमागतं ज्ञात्वा गिरीन्द्रं मेनका तदा।
प्रोवाच तनयां पश्य राजन् राजीवलोचनाम्॥ १२॥

आवयोस्तपसा जाता सर्वभूतहिताय च।
ततः सोऽपि निरीक्ष्यैनां ज्ञात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ १३॥

प्रणम्य शिरसा भूमौ कृताञ्जलिपुटः स्थितः।
प्रोवाच वचनं देवीं भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १४॥

हिमालय उवाच

का त्वं मातर्विशालाक्षि चित्ररूपा सुलक्षणा।
न जाने त्वामहं वत्से यथावत्कथयस्व माम्॥ १५॥

श्रीदेव्युवाच

जानीहि मां परां शक्तिं महेश्वरकृताश्रयाम्।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिं सर्वप्रवर्तिकाम्॥ १६॥

ब्रह्मविष्णुमहेशादिजननीं सर्वमुक्तिदाम्।
सृष्टिस्थितिविनाशानां विधात्रीं जगदम्बिकाम्॥ १७॥

अहं सर्वान्तरस्था च संसारार्णवतारिणी।
नित्यानन्दमयी नित्या ब्रह्मरूपेश्वरीति च॥ १८॥

युवयोस्तपसा तुष्टा पुत्रीभावेन लीलया।
जाता तव गृहे तात बहुभाग्यवशात्तव॥ १९॥

हिमालय उवाच

मातस्त्वं कृपया गृहे मम सुता जातासि नित्यापि यद्-
भाग्यं मे बहुजन्मजन्मजनितं मन्ये महत्पुण्यदम्।
दृष्टं रूपमिदं परात्परतरां मूर्तिं भवान्या अपि
माहेशीं प्रति दर्शयाशु कृपया विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ २०॥

श्रीदेव्युवाच

ददामि चक्षुस्ते दिव्यं पश्य मे रूपमैश्वरम्।
छिन्धि हृत्संशयं विद्धि सर्वदेवमयीं पितः॥ २१॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा तं गिरिश्रेष्ठं दत्त्वा विज्ञानमुत्तमम्।
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं माहेश्वरं तदा॥ २२॥

गिरिराजको आया जानकर मेनाने उनसे कहा—राजन्! अपनी कमलनयनी पुत्रीको देखिये, ये हम दोनोंकी तपस्याका फल हैं और सभी प्राणियोंके कल्याणहेतु प्रकट हुई हैं। तब गिरिराजने भी कन्याको देखकर उसे जगदम्बिकाके रूपमें जाना। भूमिपर सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीसे वे देवीसे कहने लगे॥ १२—१४॥

हिमालय बोले—माता! विशालाक्षी! इस विलक्षण विचित्र रूपमें आप कौन हैं? पुत्री! मैं आपको नहीं जान पा रहा हूँ। मुझे यथावत् अपना वृत्तान्त बताइये॥ १५॥

श्रीदेवी बोलीं—परमेश्वर शिवकी आश्रिता मुझे पराशक्ति समझो। मैं सारी सृष्टिका संचालन करती हूँ तथा शाश्वत ज्ञान और ऐश्वर्यकी मूर्ति हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदिकी जन्मदात्री हूँ और सृष्टि, स्थिति, विनाशका विधान करनेवाली मुक्तिदायिनी जगदम्बिका हूँ। मैं सबकी अन्तरात्माके रूपमें स्थित हूँ और संसारसमुद्रसे उद्धार करनेवाली हूँ। मुझे नित्यानन्दमयी ब्रह्मरूपा नित्या महेश्वरी समझो। तात! तुम दोनोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर मैंने अपनी लीलासे तुम्हारी पुत्री बनकर तुम्हारे घरमें जन्म लिया है। तुम बहुत भाग्यशाली हो॥ १६—१९॥

हिमालय बोले—माता! आपने नित्या होकर भी कृपापूर्वक मेरे घरमें पुत्रीरूपसे जन्म लिया है, यह मेरे अनेक जन्मोंमें किये पुण्योंका ही फल है तथा इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। मैंने आपका यह रूप देख लिया। अब आप परात्पर भगवतीका दिव्य शिवप्रियारूप मुझे कृपापूर्वक शीघ्र ही दिखायें। विश्वेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ २०॥

श्रीदेवी बोलीं—पिताजी! मैं आपको दिव्य चक्षु प्रदान करती हूँ, जिनसे मेरे ऐश्वर्यशाली रूपके दर्शन कर आप अपने हृदयका संशय मिटा लीजिये और मुझे ही सर्वदेवमयी समझिये॥ २१॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर गिरिराज हिमवान्‌को दिव्य दृष्टि प्रदान कर जगदम्बाने अपने अलौकिक माहेश्वरस्वरूपके दर्शन कराये॥ २२॥

शशिकोटिप्रभं चारुचन्द्रार्धकृतशेखरम्।
त्रिशूलवरहस्तं च जटामण्डितमस्तकम्॥ २३॥
भयानकं घोररूपं कालानलसहस्रभम्।
पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं च नागयज्ञोपवीतिनम्॥ २४॥
द्वीपिचर्माम्बरधरं नागेन्द्रकृतभूषणम्।
एवं विलोक्य तद्रूपं विस्मितो हिमवान् पुनः॥ २५॥
प्रोवाच वचनं माता रूपमन्यत्प्रदर्शय।
ततः संहृत्य तद्रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥ २६॥
रूपमन्यन्मुनिश्रेष्ठ विश्वरूपा सनातनी।
शरच्चन्द्रनिभं चारुमुकुटोज्ज्वलमस्तकम्॥ २७॥
शङ्खचक्रगदापद्महस्तं नेत्रत्रयोज्ज्वलम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥ २८॥
योगीन्द्रवृन्दसंवन्द्यं सुचारुचरणाम्बुजम्।
सर्वतः पाणिपादं च सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्॥ २९॥
दृष्ट्वा तदेतत्परमं रूपं स हिमवान् पुनः।
प्रणम्य तनयां प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ३०॥

हिमालय उवाच

मातस्तवेदं परमं रूपमैश्वरमुत्तमम्।
विस्मितोऽस्मि समालोक्य रूपमन्यत्प्रदर्शय॥ ३१॥
त्वं यस्य सो ह्यशोच्यो हि धन्यश्च परमेश्वरि।
अनुगृह्णीष्व मातर्मां कृपया त्वां नमो नमः॥ ३२॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्ता सा तदा पित्रा शैलराजेन पार्वती।
तद्रूपमपि संहृत्य दिव्यं रूपं समादधे॥ ३३॥
नीलोत्पलदलश्यामं वनमालाविभूषितम्।
शङ्खचक्रगदापद्ममभिव्यक्तं चतुर्भुजम्॥ ३४॥

उनका वह ज्योतिर्मय रूप करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभासे युक्त था, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रकी सुन्दर लेखा विराजमान थी। उनके हाथमें श्रेष्ठ त्रिशूल और मस्तकपर जटाएँ सुशोभित हो रही थीं। हजारों कालाग्निकी आभाके समान उनका रूप भयानक और उग्र था। उनके पाँच मुख और तीन नेत्र थे तथा उन्होंने सर्पका यज्ञोपवीत धारण कर रखा था। इस प्रकार व्याघ्रचर्मको धारण किये हुए तथा श्रेष्ठ सर्पोंके आभूषणसे सुशोभित उनके उस रूपको देखकर हिमवान् बड़े चकित हुए॥ २३—२५॥ तब उनकी माँ मेनाने कहा कि मुझे अपना दूसरा रूप दिखाइये, तब जगदम्बाने अपने उस माहेश्वररूपको तिरोहित करके तत्क्षण ही दूसरा रूप प्रकट किया। मुनिश्रेष्ठ! उन सनातनी विश्वरूपा जगदम्बाकी आभा शरत्कालके चन्द्रमाके समान थी, सुन्दर मुकुटसे उनका मस्तक प्रकाशमान था। वे हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए थीं। उनके तीन सुन्दर नेत्र थे। उन्होंने दिव्य वस्त्र, माला और गन्धानुलेप धारण कर रखा था। वे योगीन्द्रवृन्दसे वन्दनीय थीं, उनके चरणकमल अति सुन्दर थे तथा अपने हाथ, पैर, आँख, मुख, सिर आदि दिव्य विग्रहसे वे सभी दिशाओंको व्याप्त किये हुए थीं। इस प्रकारके परम अद्भुत उस रूपको देखकर हिमवान्ने अपनी कन्याको पुनः प्रणाम किया और विस्मयपूर्ण विकसित नेत्रोंसे उन्हें देखते हुए वे बोले—॥ २६—३०॥

हिमालय बोले—माता! आपका यह श्रेष्ठ रूप भी परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न है, जिसे देखकर मैं चकित हूँ। मुझे तो कोई अन्य ही रूप दिखाइये। परमेश्वरी! आप जिसकी आश्रय हैं, वह व्यक्ति निश्चय ही अशोच्य और धन्य है। माँ! कृपापूर्वक मुझपर अनुग्रह करें, आपको बारम्बार नमस्कार है॥ ३१-३२॥

श्रीमहादेवजी बोले—अपने पिता पर्वतराजके द्वारा ऐसा कहनेपर जगदम्बा पार्वतीने अपने उस रूपको भी समेटकर एक दिव्य रूप धारण किया। नीलकमलके समान सुन्दर श्यामवर्ण एवं वनमालासे विभूषित उस रूपकी चारों भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे॥ ३३-३४॥

एवं विलोक्य तद्रूपं शैलानामधिपस्ततः।
कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा हर्षेण महता युतः॥ ३५॥

स्तोत्रेणानेन तां देवीं तुष्टाव परमेश्वरीम्।
सर्वदेवमयीमाद्यां ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्॥ ३६॥

हिमालय उवाच

मातः सर्वमयि प्रसीद परमेविश्वेशिविश्वाश्रये
त्वं सर्वं नहि किंचिदस्ति भुवने तत्त्वं त्वदन्यच्छिवे।
त्वं विष्णुर्गिरिशस्त्वमेव नितरां धातासि शक्तिः परा
किं वर्ण्यं चरितं त्वचिन्त्यचरिते ब्रह्माद्यगम्यं मया॥ ३७॥

त्वं स्वाहाखिलदेवतृप्तिजननी विश्वेशि त्वं वै स्वधा
पितॄणामपि तृप्तिकारणमसि त्वं देवदेवात्मिका।
हव्यं कव्यमपि त्वमेव नियमो यज्ञस्तपो दक्षिणा
त्वं स्वर्गादिफलं समस्तफलदे देवेशि तुभ्यं नमः॥ ३८॥

रूपं सूक्ष्मतमं परात्परतरं यद्योगिनो विद्यया
शुद्धं ब्रह्ममयं वदन्ति परमं मातः सुदृप्तं तव।
वाचा दुर्विषयं मनोऽतिगमपि त्रैलोक्यबीजं शिवे
भक्त्याहं प्रणमामि देवि वरदे विश्वेश्वरि त्राहि माम्॥ ३९॥

उद्यत्सूर्यसहस्त्रभां मम गृहे जातां स्वयं लीलया
देवीमष्टभुजां विशालनयनां बालेन्दुमौलिं शिवाम्।
उद्यत्कोटिशशाङ्ककान्तिनयनां बालां त्रिनेत्रां परां
भक्त्या त्वां प्रणमामि विश्वजननीं देवि प्रसीदाम्बिके॥ ४०॥

रूपं ते रजताद्रिकान्तिविमलं नागेन्द्रभूषोज्ज्वलं
घोरं पञ्चमुखाम्बुजत्रिनयनैर्भीमैः समुद्भासितम्।
चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकं धृतजटाजूटं शरण्ये शिवे
भक्त्याहं प्रणमामि विश्वजननि त्वां त्वं प्रसीदाम्बिके॥ ४१॥

उनके उस रूपको देखकर शैलराज हाथ जोड़कर अत्यन्त हर्षपूर्वक ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवस्वरूपा सर्वदेवमयी उन आदिशक्ति जगदम्बाका इस स्तोत्रसे स्तवन करने लगे— ॥ ३५-३६ ॥

हिमालय बोले—माता! आप प्रसन्न हों, आप परम शक्ति हैं, आपमें सब कुछ सन्निहित है, आप ही इस चराचर जगत्‌की अधिष्ठात्री और परम आश्रय हैं। शिवे! आप ही सब कुछ हैं, इस त्रिभुवनमें आपके अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्व विद्यमान नहीं है। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं तथा आप ही पराशक्ति हैं। आपकी अचिन्त्य लीलाका वर्णन मैं कैसे करूँ? जिसका ब्रह्मादि भी पार नहीं पा सकते॥ ३७॥ विश्वेश्वरी! आप ही स्वाहारूपसे सभी देवताओंकी तृप्तिकारिका, स्वधारूपसे पितरोंकी तृप्तिका कारण और महादेवप्रिया हैं। आप ही हव्य और कव्य हैं। आप ही नियम, यज्ञ, तप और दक्षिणा हैं। आप ही स्वर्गादि लोकोंको प्रदान करनेवाली हैं तथा समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेमें आप ही समर्थ हैं। महादेवी! आपको प्रणाम है॥ ३८॥ माता! जिस आपके परसे भी परतर सूक्ष्मतम रूपका योगिजन शुद्ध ब्रह्मके रूपमें वर्णन करते हैं, शिवे! वह आपका मोहक रूप मन और वाणीके लिये अगम्य तथा त्रैलोक्यका मूल कारण है। वरदायिनी भगवती! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ। विश्वेश्वरी! मेरी रक्षा करें॥ ३९॥ जगदम्बे! आप सहस्त्रों उदीयमान सूर्योंके समान आभावाली, आठ भुजाओंसे युक्त, विशाल नेत्रोंवाली एवं मस्तकपर चन्द्ररेखासे सुशोभित हैं तथा आप कल्याणकारिणीने लीलापूर्वक स्वयं ही मेरे घरमें जन्म लिया है। उदीयमान करोड़ों चन्द्रमाओंकी शीतल कान्तिसे युक्त नयनोंवाली, त्रिनेत्रा, बालस्वरूपा आप भगवती जगन्माताको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ, आप प्रसन्न हों॥ ४०॥ शिवे! आपका रूप चाँदीके पर्वतकी कान्तिके समान उज्ज्वल है, आपने सर्पराजका सुन्दर आभूषण धारण किया है। दुर्जनोंके लिये भय उत्पन्न करनेवाले पाँच मुखकमलों और भयानक तीन नयनोंसे आप सुशोभित हैं। अर्धचन्द्रसहित जटाजूटको आपने मस्तकपर धारण कर रखा है। शरणदात्री विश्वजननी! आपको भक्तिपूर्वक मैं प्रणाम करता हूँ। अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ४१॥

रूपं शारदचन्द्रकोटिसदृशं दिव्याम्बरं शोभनं
दिव्यैराभरणैर्विराजितमलं कान्त्या जगन्मोहनम्।
दिव्यैर्बाहुचतुष्टयैर्युतमहं वन्दे शिवे भक्तितः
पादाब्जं जननि प्रसीद निखिलब्रह्मादिदेवस्तुते॥ ४२॥

रूपं ते नवनीरदद्युतिरुचिफुल्लाब्जनेत्रोज्ज्वलं
कान्त्या विश्वविमोहनं स्मितमुखं रत्नाङ्गदैर्भूषितम्।
विभ्राजद्वनमालयाविलसितोरस्कं जगत्तारिणि
भक्त्याहं प्रणतोऽस्मि देवि कृपया दुर्गे प्रसीदाम्बिके॥ ४३॥

मातः कः परिवर्णितुं तव गुणं रूपं च विश्वात्मकं
शक्तो देवि जगत्त्रये बहुगुणैर्देवोऽथवा मानुषः।
तत् किं स्वल्पमतिर्ब्रवीमि करुणां कृत्वा स्वकीयैर्गुणै-
र्नो मां मोहय मायया परमया विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ ४४॥

अद्य मे सफलं जन्म तपश्च सफलं मम।
यत्त्वं त्रिजगतां माता मत्पुत्रीत्वमुपागता॥ ४५॥

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं मातस्त्वं निजलीलया।
नित्यापि मद्गृहे जाता पुत्रीभावेन वै यतः॥ ४६॥

किं ब्रुवे मेनकायाश्च भाग्यं जन्मशतार्जितम्।
यतस्त्रिजगतां मातुरपि माता भवेत्तव॥ ४७॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं गिरीन्द्रतनया गिरिराजेन संस्तुता।
बभूव सहसा चारुरूपिणी पूर्ववन्मुने॥ ४८॥

मेनकापि विलोक्यैवं विस्मिता भक्तिसंयुता।
ज्ञात्वा ब्रह्ममयीं पुत्रीं प्राह गद्गदया गिरा॥ ४९॥

भवानी! कोटिशरच्चन्द्रके समान उज्ज्वल रूप और दिव्य वस्त्राभरणोंसे आप सुशोभित हैं। आपका जगन्मोहनरूप चार दिव्य भुजाओंसे युक्त है, ब्रह्मादि समस्त देवगण आपकी स्तुति करते हैं। माता! आपके चरणकमलोंमें मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ, आप प्रसन्न हों॥ ४२॥

दुर्गे! जलधरकी आभायुक्त नवीन और खिले हुए कमलके समान उज्ज्वल नेत्रवाला आपका रूप अपनी कान्तिसे विश्वको विमोहित करनेवाला है। आपके मुखपर मुसकान सुशोभित है, आपके गलेमें वनमाला और अङ्गोंपर रत्नजटित अङ्गद आदि आभूषण सुशोभित हो रहे हैं। जगत‍्का उद्धार करनेवाली देवी! मैं आपको भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ, अम्बिके! कृपा करके आप प्रसन्न हों॥ ४३॥ जगदम्बे! आपके विश्वात्मक रूप और गुणको सर्वात्मना वर्णन करनेमें तीनों लोकोंमें देवता अथवा मनुष्य कोई भी सक्षम नहीं है। फिर मैं अल्पमति उसका कैसे वर्णन करूँ? आप अपने स्वाभाविक गुणोंसे मुझपर दया करते हुए अपनी परम मायासे मुझे मोहित न करें। विश्वेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ ४४॥ आज मेरा जन्म और तप सफल हुआ, जो त्रिलोकजननी आप मेरी पुत्रीके रूपमें आयीं। माँ! मैं धन्य और कृतार्थ हुआ, जो कि आपने नित्या प्रकृति होकर भी अपनी लीलासे पुत्रीभावसे मेरे घरमें जन्म लिया। मैं मेनाके भी भाग्यकी क्या सराहना करूँ, जिन्हें अपने सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पुण्यके प्रभावसे त्रिलोकजननीकी भी जननी होनेका सौभाग्य मिला है॥ ४५—४७॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! इस प्रकार गिरिराज हिमालयके द्वारा प्रार्थना करनेपर पर्वतराजपुत्री सहसा पूर्वके समान सुन्दर रूपमें हो गयीं। मेना भी यह देखकर चकित हुईं और अपनी पुत्रीको ब्रह्मस्वरूपिणी जानकर गद्गद वाणीसे भक्तिपूर्वक ऐसा कहने लगीं—॥ ४८-४९॥

मेनकोवाच

मातः स्तुतिं न जानामि भक्तिं वा जगदम्बिके।
तथाप्यहमनुग्राह्या त्वया निजगुणेन हि॥ ५०॥

त्वया जगदिदं सृष्टं त्वमेवैतत्फलप्रदा।
सर्वाधारस्वरूपा च सर्वव्याप्याधितिष्ठसि॥ ५१॥

श्रीदेव्युवाच

त्वया मातस्तथा पित्राप्यनेनाराधिता ह्यहम्।
महोग्रतपसा पुत्रीं लब्धुं मां परमेश्वरीम्॥ ५२॥

युवयोस्तपसस्तस्य फलदानाय लीलया।
नित्या लब्धवती जन्म गर्भे तव हिमालयात्॥ ५३॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो गिरीन्द्रस्तां देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
पप्रच्छ ब्रह्मविज्ञानं प्राञ्जलिर्मुनिसत्तम॥ ५४॥

हिमालय उवाच

मातस्त्वं बहुभाग्येन मम जातासि कन्यका।
ब्रह्माद्यैर्दुर्लभा योगिदुर्गम्या निजलीलया॥ ५५॥

अहं तव पदाम्भोजं प्रपन्नोऽस्मि महेश्वरि।
यथाञ्जसा तरिष्यामि संसारापारवारिधिम्॥ ५६॥

यस्मात्कालस्य कालस्त्वं महाकालीति गीयसे।
तस्मात्त्वं शाधि मातर्मां ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्॥ ५७॥

श्रीपार्वत्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि योगसारं महामते।
यस्य विज्ञानमात्रेण देही ब्रह्ममयो भवेत्॥ ५८॥

गृहीत्वा मम मन्त्रान्वै सद्गुरोः सुसमाहितः।
कायेन मनसा वाचा मामेव हि समाश्रयेत्॥ ५९॥

मच्चित्तो मद्गतप्राणो मन्नामजपतत्परः।
मत्प्रसङ्गी मदालापो मद्गुणश्रवणे रतः॥ ६०॥

भवेन्मुमुक्षू राजेन्द्र मयि भक्तिपरायणः।
मदर्चाप्रीतिसंसक्तमानसः साधकोत्तमः॥ ६१॥

मेनका बोलीं—माता जगदम्बिका! मैं न तो आपकी स्तुति ही जानती हूँ एवं न भक्ति ही; फिर भी आप अपने करुणामय स्वभावके कारण मुझपर कृपा करती रहें। आप ही इस संसारकी सृष्टि करती हैं। आप ही सभी कर्मोंका फल प्रदान करती हैं। आप ही सभीका आधार हैं और आप ही सभीको व्याप्त करके स्थित रहती हैं॥ ५०-५१॥

श्रीदेवीजी बोलीं—माता! आपने और पिताजीने उग्र तपस्यासे मुझ परमेश्वरीको पुत्रीरूपमें पानेके लिये आराधना की थी। आप दोनोंके उस तपका फल देनेके लिये ही लीलापूर्वक मैंने नित्या प्रकृति होकर भी हिमालयके द्वारा आपके गर्भसे जन्म लिया है॥ ५२-५३॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! तब गिरिराज हिमालयने उन देवीको बारम्बार प्रणाम करके हाथ जोड़कर ब्रह्मविज्ञान (ब्रह्मविषयक अपरोक्षानुभूति-सम्बन्धी ज्ञान)-की जिज्ञासा की॥ ५४॥

हिमालय बोले—माँ! आप बड़े भाग्यसे मेरी पुत्रीके रूपमें आयी हैं, यह आपकी लीला ही है; क्योंकि आप ब्रह्मादि देवगण और योगियोंके लिये भी अगम्य और दुर्लभ हैं। महेश्वरी! मैं आपके चरणकमलोंकी शरणमें हूँ। माँ! चूँकि आप कालकी भी काल हैं, इसलिये आपको लोग महाकाली कहते हैं। आप मुझे कृपापूर्वक उस उत्तम ब्रह्मविद्याकी शिक्षा दें, जिससे मैं इस अपार संसारसागरको सरलतापूर्वक पार कर जाऊँ॥ ५५—५७॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—पिताजी! महामते! सुनिये, मैं उस योगका सार बताती हूँ, जिसके जाननेमात्रसे प्राणी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥ ५८॥ सद्गुरुसे मेरे मन्त्रको ग्रहण करके स्थिरचित्त हो साधकको शरीर, मन और वाणीसे मेरा ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ ५९॥ मुमुक्षु उत्तम साधकको चाहिये कि वह मेरेमें ही चित्त और प्राणको लगाये रखे, तत्परतापूर्वक मेरे नामका जप करता रहे, मेरे गुण और लीला-कथाओंके श्रवणमें लगा रहे, वह मुझसे वार्तालाप करनेवाला हो और मुझसे शाश्वत सम्बन्ध बनाये रखे तथा राजेन्द्र! वह उत्तम साधक मेरी भक्तिमें परायण होकर अपना चित्त मेरी पूजाके प्रति अनुरक्त रखे॥ ६०-६१॥

पूजायज्ञादिकं कुर्याद्यथाविधिविधानतः।
श्रुतिस्मृत्युदितैः सम्यक्स्ववर्णाश्रमवर्णितैः॥ ६२॥
सर्वयज्ञतपोदानैर्मामेव हि समर्चयेत्।
ज्ञानात्संजायते मुक्तिर्भक्तिर्ज्ञानस्य कारणम्॥ ६३॥
धर्मात्संजायते भक्तिर्धर्मो यज्ञादिको मतः।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं ममेदं रूपमाश्रयेत्॥ ६४॥
सर्वाकाराहमेवैका सच्चिदानन्दविग्रहा।
मदंशेन परिच्छिन्ना देहाः स्वर्गौकसां पितः॥ ६५॥
तस्मान्मामेव विध्युक्तैः सकलैरेव कर्मभिः।
विभाव्य प्रयजेद्भक्त्या नान्यथा भावयेत्सुधीः॥ ६६॥
एवं वियुक्तकर्माणि कृत्वा निर्मलमानसः।
आत्मज्ञानसमुद्युक्तो मुमुक्षुः सततं भवेत्॥ ६७॥
घृणां वितत्य सर्वत्र पुत्रमित्रादिकेष्वपि।
वेदान्तादिषु शास्त्रेषु संनिविष्टमना भवेत्॥ ६८॥
कामादिकं त्यजेत्सर्वं हिंसां चापि विवर्जयेत्।
एवं कृत्वा परां विद्यां जानीते नात्र संशयः॥ ६९॥
यदैवात्मा महाराज प्रत्यक्षमनुभूयते।
तदैव जायते मुक्तिः सत्यं सत्यं ब्रवीमि ते॥ ७०॥
किंत्वेतद्दुर्लभं तात मद्भक्तिविमुखात्मनाम्।
तस्माद्भक्तिः परा कार्या मयि यत्नान्मुमुक्षुभिः॥ ७१॥
त्वमप्येवं महाराज मयोक्तं कुरु सर्वदा।
संसारदुःखैरखिलैर्बाध्यसे न कदाचन॥ ७२॥

उसे श्रुति तथा स्मृतिमें बताये गये अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार विधि-विधानसे मेरी पूजा और यज्ञ आदि सम्पन्न करने चाहिये। सभी यज्ञ, तप और दानसे मेरी ही अर्चना करनी चाहिये। ज्ञानसे मुक्ति होती है और भक्तिसे ज्ञान होता है। धर्मसे भक्तिका उदय होता है और यज्ञ-यागादि धर्मके ही रूप हैं, इसलिये मोक्षार्थीको धर्मरूपी यज्ञार्चन आदिके लिये मेरे इस रूपका आश्रय लेना चाहिये॥ ६२—६४॥ पिताजी! सभी आकारोंमें एकमात्र मैं ही विद्यमान हूँ और स्वर्गके देवता मुझ सच्चिदानन्दरूपाके अंशसे ही उत्पन्न हैं। इसलिये वेदोक्त सभी कर्मोंसे भक्तिपूर्वक मेरा ही अर्चन करना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्तिको अन्य कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ ६५-६६॥

इस प्रकार अनासक्तभावसे कर्मोंको सम्पन्न करके विशुद्ध अन्तःकरणवाले मोक्षार्थी साधकको आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें निरन्तर प्रयत्नशील होना चाहिये॥ ६७॥ पुत्र-मित्रादिसे सम्बन्धोंमें अनासक्त होकर वेदान्तादि शास्त्रोंके अभ्यासमें दत्तचित्त रहना चाहिये। ऐसे साधकको काम-क्रोधादि विकारोंका तथा सभी प्रकारकी हिंसाका पूर्णरूपसे त्याग करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे निःसंदेह पराविद्याका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। महाराज! जब इस आत्माकी प्रत्यक्षानुभूति होती है, उसी क्षण मुक्ति हो जाती है। यह निश्चित सत्य बात आपके लिये मैं बता रही हूँ॥ ६८—७०॥ किंतु पिताजी! मेरी भक्तिसे विमुख प्राणियोंके लिये यह प्रत्यक्षानुभूति अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये मोक्षसाधकोंको यत्नपूर्वक मेरी भक्तिमें ही संलग्न रहना चाहिये॥ ७१॥ महाराज! आप भी मेरे बताये अनुसार करेंगे तो संसारके समस्त दुःखोंसे कभी बाधित नहीं होंगे॥ ७२॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीपार्वतीहिमालयसंवादे विज्ञानयोगोपदेशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीभगवतीगीतोपनिषद्में ब्रह्मविद्या-योगशास्त्रके अन्तर्गत श्रीपार्वती-हिमालय-संवादमें 'विज्ञानयोगोपदेशवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

भगवतीगीताके वर्णनमें ब्रह्मविद्याका उपदेश, आत्माका स्वरूप, अनात्मपदार्थोंमें आत्मबुद्धिका परित्याग, शरीरकी नश्वरताका प्रतिपादन तथा अनासक्तयोगका वर्णन

हिमालय उवाच

विद्या वा कीदृशी मातर्यतो मुक्तिः प्रजायते।
आत्मा वा किं स्वरूपश्च तन्मे ब्रूहि महेश्वरि॥ १॥

श्रीपार्वत्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि या संसारनिवर्तिका।
विद्या तस्याः स्वरूपं हि संक्षेपेण महामते॥ २॥

बुद्धिप्राणमनोदेहाहंकृतीन्द्रियतः पृथक्।
अद्वितीयश्चिदात्माहं शुद्ध एवेति निश्चितम्॥ ३॥

संवेत्ति येन ज्ञानेन विद्या तद्ध्यानमुच्यते।
आत्मा निरामयः शुद्धो जन्मनाशादिवर्जितः॥ ४॥

बुद्ध्याद्युपाधिरहितश्चिदानन्दात्मको मतः।
आनन्दः सुप्रभः पूर्णः सत्यज्ञानादिलक्षणः॥ ५॥

एक एवाद्वितीयश्च सर्वदेहगतः परः।
स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन् सुसमास्थितः॥ ६॥

इत्यात्मनः स्वरूपं ते गिरिराज मयोदितम्।
एवं विचिन्तयेन्नित्यमात्मानं सुसमाहितः॥ ७॥

अनात्मनि शरीरादावात्मबुद्धिं विवर्जयेत्।
रागद्वेषादिदोषाणां हेतुभूता हि सा यतः॥ ८॥

रागद्वेषादिदोषेभ्यः सदोषं कर्म सम्भवेत्।
ततः पुनः संसृतिश्च तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ ९॥

हिमालय बोले—माता! वह कैसी विद्या है, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है? महेश्वरी! आत्मा क्या है तथा उसका स्वरूप क्या है? यह मुझे बताइये॥ १॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—तात! महामते! सुनिये, संसारसे मुक्ति दिलानेवाली जो विद्या है, उसके स्वरूपका मैं संक्षेपमें वर्णन कर रही हूँ॥ २॥ बुद्धि, प्राण, मन, देह, अहंकार और इन्द्रियोंसे अलग शुद्ध और अद्वितीय चित्स्वरूप आत्मा मैं ही हूँ, ऐसा पूर्णतः निश्चित है। जिस ज्ञानके द्वारा आत्मस्वरूपका सम्यक् अवबोध होता है, वही विद्या है और उसी विद्याको ध्यान भी कहा जाता है। आत्मा निर्विकार, विशुद्ध तथा जन्म-मरण आदिसे रहित है॥ ३-४॥

वह आत्मा बुद्धि आदि उपाधियोंसे रहित, चिदानन्दस्वरूप, आनन्दमय, परम प्रभायुक्त, पूर्ण तथा सत्य-ज्ञान आदि लक्षणोंवाला है। वही एकमात्र अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ आत्मा अपने प्रकाशसे सभी प्राणियोंके सूक्ष्म देहादिको प्रकाशित करते हुए सम्यक् रूपसे सबके भीतर विराजमान है॥ ५-६॥ गिरिराज! इस प्रकार मैंने आपसे आत्माके स्वरूपका वर्णन कर दिया। मनुष्यको एकाग्रचित्त होकर इस प्रकारके लक्षणवाले आत्माका नित्य चिन्तन करना चाहिये॥ ७॥ देह आदि अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धिका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि वैसी बुद्धि राग-द्वेष आदि दोषोंका मूल कारण है। राग-द्वेष आदि दोषोंसे दोषयुक्त कर्म ही सम्भव हैं। उनसे प्राणी जन्म-मरणकी प्रक्रियासे निरन्तर बँधा रहता है, अतः शरीरादि अनात्म पदार्थोंमें उस आत्मबुद्धिका परित्याग कर देना चाहिये॥ ८-९॥

हिमालय उवाच

अशुभादृष्टजनका रागद्वेषादयः शिवे।
कथं जनैः परित्याज्यास्तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि॥ १०॥

कुर्वन्ति येऽपकाराणि कथं तान् सहते जनः।
तेषु रागश्च विद्वेषः कथं वा न भवेत्तयोः॥ ११॥

श्रीपार्वत्युवाच

अपकारः कृतः कस्य तदेवाशु विचारयेत्।
विचार्यमाणे तस्मिंश्च द्वेष एव न जायते॥ १२॥

पञ्चभूतात्मको देहो मुक्तो जीवो यतः स्वयम्।
वह्निना दह्यते वापि शिवाद्यैर्भक्षितोऽपि वा॥ १३॥

तथापि यो विजानाति कोऽपकारोऽस्ति तस्य वै।
आत्मा शुद्धः स्वयम्पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः॥ १४॥

न जायते न म्रियते निर्लेपो न च दुःखभाक्।
विच्छिद्यमाने देहेऽपि नापकारोऽस्य जायते॥ १५॥

यथा गेहान्तरस्थस्य नभसः क्वापि लक्ष्यते।
गृहेषु दह्यमानेषु गिरिराज तथैव हि॥ १६॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतः।
तावुभौ भ्रान्तहृदयौ नायं हन्ति न हन्यते॥ १७॥

स्वस्वरूपं विदित्वैवं द्वेषं त्यक्त्वा सुखी भवेत्।
द्वेषमूलो मनस्तापो द्वेषः संसारखण्डनम्॥ १८॥

मोक्षविघ्नकरो द्वेषस्तं यत्नात्परिवर्जयेत्।

हिमालय बोले—शिवे! राग-द्वेष आदिसे पापात्मक अशुभ अदृष्ट पैदा होता है उसका परित्याग लोग किस प्रकार करें; इसे आप कृपा करके मुझे बताइये। जो लोग दूसरे मनुष्यका अपकार करते हैं, उनके प्रति वह व्यक्ति सहिष्णुताका भाव किस प्रकार रखे और उनके प्रति उस व्यक्तिमें किस प्रकारसे इष्टानिष्टविषयक राग तथा द्वेष न हों॥ १०-११॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—'अपकार किसका किया गया'—इसपर शीघ्र विचार करना चाहिये। उसपर विचार करनेसे द्वेष उत्पन्न ही नहीं होगा। पाँच महाभूतोंसे मिलकर यह देह बना हुआ है, जिससे यह जीव स्वयं भिन्न है। यह शरीर या तो अग्निके द्वारा जला दिया जाता है या शिवा (सियार) आदिके द्वारा भक्षित कर लिया जाता है; किंतु आत्मा नहीं। जो इस प्रकारका ज्ञान रखता है, उसका भला कौन-सा अपकार हो सकता है?॥ १२-१३$\frac{१}{२}$॥ अपने-आपमें पूर्ण तथा सच्चिदानन्द स्वरूपवाला यह विशुद्ध आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है, न सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें लिप्त होता है और न तो कष्ट ही भोगता है। अतः शरीरके काटे जानेपर भी इस आत्माका कोई अपकार नहीं होता॥ १४-१५॥

गिरिराज! जैसे घरके अंदर अवस्थित आकाशपर घरके जलनेका कोई प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार शरीरके अंदर अवस्थित आत्मापर शरीरके छेदन आदिका कोई प्रभाव नहीं होता। जो मारनेमें इस आत्माको मारनेवाला समझता है और जो शरीरके मारे जानेपर आत्माको मारा गया समझता है—ऐसा सोचनेवाले वे दोनों ही लोग भ्रमितचित्तवाले हैं; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न मारा ही जाता है॥ १६-१७॥ अपने स्वरूपको इस प्रकार जानकर और द्वेष छोड़कर मनुष्य सुखी हो जाय। द्वेष मनके सन्तापका मूल है, द्वेष सांसारिक सम्बन्धोंको भंग करनेवाला है और द्वेष मोक्षप्राप्तिमें विघ्न उत्पन्न करनेवाला है; अतः प्रयत्नपूर्वक उसका परित्याग कर देना चाहिये॥ १८$\frac{१}{२}$॥

हिमालय उवाच

देहस्यापि न चेद्देवि न जीवस्य परात्मनः ॥ १९ ॥

नापकारोऽत्र विद्येत नैतौ दुःखस्य भागिनौ।
तत्कस्य जायते दुःखं यत्साक्षादनुभूयते ॥ २० ॥

अन्यो वा कोऽस्मि देहेऽस्मिन् दुःखभोक्ता महेश्वरि।
एतन्मे ब्रूहि तत्त्वेन मयि ते यद्यनुग्रहः ॥ २१ ॥

श्रीपार्वत्युवाच

नैव दुःखं हि देहस्य नात्मनोऽपि परात्मनः।
तथापि जीवो निर्लेपो मोहितो मम मायया ॥ २२ ॥

सुख्यहं दुःख्यहं चैव स्वयमेवाभिमन्यते।
अनाद्यविद्या सा माया जगन्मोहनकारिणी ॥ २३ ॥

जातमात्रं हि सम्बद्धस्तया संजायते पितः।
संसारी जायते तेन रागद्वेषादिसंकुलः ॥ २४ ॥

आत्मा स्वलिङ्गं तु मनः परिगृह्य महामते।
निलीना वासना यत्र संसारे वर्ततेऽवशः ॥ २५ ॥

विशुद्धः स्फटिको यद्वद्रक्तपुष्पसमीपतः।
तत्तद्वर्णयुतो भाति वस्तुतो नास्ति रञ्जनम् ॥ २६ ॥

बुद्धीन्द्रियादिसामीप्यादात्मनोऽपि तथा गतिः।
मनोबुद्धिरहंकारो जीवस्य सहकारिणः ॥ २७ ॥

स्वकर्मवशतस्तात फलभोक्तार एव ते।
सर्वं वैषयिकं तात सुखं वा दुःखमेव वा ॥ २८ ॥

त एव भुञ्जते नात्मा निर्लेपः प्रभुरव्ययः।
सृष्टिकाले पुनः पूर्ववासनावासितैः सह ॥ २९ ॥

जायते जीव एवं हि वसत्याभूतसम्प्लवम्।
ततो ज्ञानविचारेण त्यक्त्वा मोहं विचक्षणः ॥ ३० ॥

हिमालय बोले—देवि! यदि देह तथा परमात्मस्वरूप जीवका इस लोकमें अपकार नहीं होता और ये दोनों दुःखके भागी नहीं होते तो फिर जिस दुःखका साक्षात् अनुभव होता है, वह किसे होता है? महेश्वरि! इस शरीरमें दुःख भोगनेवाला दूसरा कौन है? यदि मुझपर आपकी कृपा है तो आप मुझे इस विषयको यथार्थ रूपसे बताइये ॥ १९—२१ ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—न तो इस देहको और न तो इस परमात्मस्वरूप आत्माको ही दुःख होता है; फिर भी यह निर्लेप (विशुद्ध) आत्मा मेरी मायासे मोहित होकर स्वयं मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ—ऐसा मान लेता है। वह माया अनादि, अविद्यास्वरूपिणी तथा जगत्को मोहित करनेवाली है। पिताजी! वह आत्मतत्त्व उत्पन्न होते ही उस मायासे आबद्ध हो जाता है और उसीसे वह राग-द्वेष आदि विकारोंसे व्याप्त होकर संसारी हो जाता है ॥ २२—२४ ॥ महामते! यह आत्मा अपने लिङ्गरूप मन, जिसमें वासना निहित रहती है-को धारण करके लाचार-सा बना हुआ इस संसारमें व्यवहार करता है ॥ २५ ॥ रक्तवर्णके पुष्पके समीप स्थित शुद्ध स्फटिक उसके सांनिध्यके कारण उसीके रंगसे युक्त लाल प्रतीत होता है; जबकि वास्तवमें उसमें रंग विद्यमान नहीं रहता है। बुद्धि, इन्द्रिय आदिके सांनिध्यके कारण आत्माकी भी वही गति होती है। मन, बुद्धि तथा अहंकार जीवके सहयोगी हैं। तात! अपने-अपने कर्मोंके अधीन होकर वे ही कर्म-फलका भोग करते हैं। वे सभी समस्त विषयात्मक सुखों तथा दुःखोंका भोग करते हैं; आत्मा भोग नहीं करता; क्योंकि यह आत्मा प्रभुतासम्पन्न, विकाररहित तथा निर्लिप्त है ॥ २६—२८$\frac{1}{2}$ ॥

सृष्टिके समय यह जीव पूर्वजन्मकी वासनाओंसे युक्त अन्तःकरणके साथ उत्पन्न होता है और इस प्रकार यह जीव प्रलयपर्यन्त सृष्टिमें निवास करता है। इसलिये महाराज! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ज्ञान-विचारके द्वारा इच्छित तथा अनिच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिमें मोहका परित्याग कर सुखी हो जाय ॥ २९-३० ॥

सुखी भवेन्महाराज इष्टानिष्टोपपत्तिषु।
देहमूलो मनस्तापो देहः संसारकारणम्॥ ३१॥

देहः कर्मसमुत्पन्नः कर्म च द्विविधं मतम्।
पापं पुण्यं च राजेन्द्र तयोरंशानुसारतः॥ ३२॥

देहिनः सुखदुःखं स्यादलङ्घ्यं दिनरात्रिवत्।
स्वर्गादिकामः कृत्वापि पुण्यं कर्मविधानतः।
प्राप्य स्वर्गं पतत्याशु भूयः कर्म प्रचोदितम्॥ ३३॥

तस्मात्सत्संगमं कृत्वा विद्याभ्यासपरायणः।
विमुक्तसङ्गः परमं सुखमिच्छेद्विचक्षणः॥ ३४॥

देह मनके संतापका मूल है और यह देह संसारका कारण भी है। यह देह कर्मसे उत्पन्न होता है और वह कर्म पाप तथा पुण्यभेदसे दो प्रकारका होता है। राजेन्द्र! उन्हीं पाप-पुण्यके अंशके अनुसार जीवको सुख तथा दुःख प्राप्त होते हैं। दिन एवं रातकी भाँति इन सुख और दुःखका उल्लंघन नहीं किया जा सकता॥ ३१-३२॥

स्वर्ग आदिकी प्राप्तिकी कामना करनेवाला विधानपूर्वक पुण्य कर्म करके स्वर्ग प्राप्त करनेके बाद भी शीघ्र ही कर्मसे प्रेरित होकर पुनः मृत्युलोकमें गिरता है। अतएव विद्वान्‌को आसक्तिका त्याग करते हुए विद्याभ्यासमें तत्पर रहकर तथा सत्संग करके परम सुखकी अभिलाषा रखनी चाहिये॥ ३३-३४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीपार्वतीहिमालयसंवादे ब्रह्मविद्योपदेशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीभगवतीगीतोपनिषद्‌में ब्रह्मविद्या-योगशास्त्रके अन्तर्गत श्रीपार्वती-हिमालय-संवादमें 'ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवतीगीताके वर्णनमें ब्रह्मयोगका उपदेश, पाञ्चभौतिक देह, गर्भस्थ जीवका स्वरूप तथा गर्भमें की गयी जीवकी प्रतिज्ञा, मायासे आबद्ध जीवका गर्भसे बाहर आनेपर अपने वास्तविक स्वरूपको भूल जाना, विषयभोगोंकी दुःखमूलता तथा देवीभक्तिकी महिमा

हिमालय उवाच

दुःखस्य कारणं देहः पञ्चभूतात्मकः शिवे।
यतस्तद्विरहाद्देही न दुःखैः परिभूयते॥ १॥

सोऽयं संजायते मातः कथं देहो महेश्वरि।
यं प्राप्य सुकृतान् कामान् कृत्वा स्वर्गमवाप्स्यति॥ २॥

क्षीणपुण्यः कथं जीवो जायते च पुनर्भुवि।
तद्ब्रूहि विस्तरेणाशु यदि ते मय्यनुग्रहः॥ ३॥

हिमालय बोले—शिवे! यह पञ्चभूतात्मक देह ही दुःखका कारण है; क्योंकि उससे विलग जीव दुःखोंसे प्रभावित नहीं होता है। माता! महेश्वरी! जिस देहको प्राप्तकर यह जीव पुण्यकार्य करके स्वर्ग प्राप्त करता है, वह यह देह किस प्रकार उत्पन्न होता है? और यह जीव पुण्यके क्षीण होनेपर पुनः पृथ्वीपर किस प्रकार उत्पन्न होता है। यदि आप मुझपर कृपा रखती हैं तो उन बातोंको शीघ्र ही विस्तारपूर्वक मुझसे बताइये॥ १—३॥

श्रीपार्वत्युवाच

क्षितिर्जलं तथा तेजो वायुराकाश एव च।
एतैः पञ्चभिराबद्धो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः॥ ४॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन्हीं पञ्चमहाभूतोंसे यह देह निर्मित है, इसीलिये यह पाञ्चभौतिक कहा गया

प्रधानं पृथिवी तत्र शेषाणां सहकारिता।
उक्तश्चतुर्विधः सोऽयं गिरिराज निबोध मे॥ ५ ॥

अण्डजाः स्वेदजाश्चैवोद्भिज्जाश्चैव जरायुजाः।
अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः स्वेदजा मशकादयः॥ ६ ॥

वृक्षगुल्मप्रभृतयश्चोद्भिज्जा हि विचेतनाः।
जरायुजा महाराज मानुषाः पशवस्तथा॥ ७ ॥

शुक्रशोणितसम्भूतो देहो ज्ञेयो जरायुजः।
भूयः स त्रिविधो ज्ञेयः पुंस्त्रीक्लीबविभेदतः॥ ८ ॥

शुक्राधिक्येन पुरुषो भवेत्पृथ्वीधराधिप।
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी तयोः साम्ये नपुंसकम्॥ ९ ॥

स्वकर्मवशतो जीवो नीहारकलया युतः।
पतित्वा धरणीपृष्ठे व्रीहिमध्यगतो भवेत्॥ १० ॥

स्थित्वा तत्र चिरं भुक्त्वा भुज्यते पुरुषैस्ततः।
ततः प्रविष्टं तद्गुह्यं पुंसो देहे प्रजायते॥ ११ ॥
रेतस्तेन स जीवोऽपि भवेद्रेतोगतस्तदा।
ततस्त्रियाऽभियोगेन ऋतुकाले महामते॥ १२ ॥

रेतसा सहितः सोऽपि मातृगर्भं प्रयाति हि।
ऋतुस्नाता भवेन्नारी चतुर्थेऽहनि तद्दिनात्॥ १३ ॥

आषोडशदिनाद्राजन् ऋतुकाल उदाहृतः।
अयुग्मदिवसे नारी जायते पर्वतर्षभ॥ १४ ॥

जायते च पुमांस्तत्र युग्मके दिवसे पितः।
ऋतुस्नाता तु कामार्ता मुखं यस्य समीक्षते॥ १५ ॥

तदाकृतिः संततिः स्यात्तत्पश्येद्भर्तुराननम्।

है॥ ४॥ उन पाँचोंमें पृथ्वीतत्त्व तो प्रधान है और शेष चारकी उसके साथ सहभागितामात्र है। गिरिराज! वह यह पाञ्चभौतिक देह भी चार प्रकारका कहा गया है; जिसे मुझसे समझ लीजिये। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज—ये उसके भेद हैं। महाराज! उनमें पक्षी, सर्प आदि अण्डज हैं; मशक (मच्छर) आदि स्वेदज हैं; वृक्ष, झाड़ी आदि सुषुप्त चैतन्यवाले उद्भिज्ज हैं और मनुष्य, पशु आदि जरायुज हैं॥ ५—७॥ शुक्र, रज आदिसे निर्मित देहको जरायुज समझना चाहिये। पुनः उस जरायुजको भी पुरुष, स्त्री तथा नपुंसक भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। पर्वतराज! शुक्रकी अधिकतासे पुरुष, रजकी अधिकतासे स्त्री तथा उन दोनोंकी समानतासे नपुंसक होते हैं॥ ८-९॥ अपने कर्मोंके वशीभूत जीव ओसकणोंसे संयुक्त होकर पृथ्वीतलपर गिरनेपर धान्य (वनस्पति)-के बीच पहुँचता है। वहाँ रहकर चिरकालतक कर्मभोग करता है। पुनः जीवोंके द्वारा उसका भोग किया जाता है। तदनन्तर पुरुषके देहमें गुह्येन्द्रियोंमें प्रविष्ट होकर वह वीर्यरूप हो जाता है। उसी कारणसे वह जीव भी वीर्यमें संनिविष्ट हो जाता है*॥ १०-११½॥ महामते! तत्पश्चात् ऋतुकालमें स्त्रीके साथ पुरुषका संयोग होनेपर वीर्यके साथ-साथ वह जीव भी माताके गर्भमें पहुँच जाता है॥ १२½ ॥ राजन्! रजोधर्मके चौथे दिन स्त्री ऋतुस्नान करके शुद्ध होती है; उस दिनसे लेकर सोलहवें दिनतक ऋतुकाल कहा गया है॥ १३½ ॥ पर्वतश्रेष्ठ! विषम दिनमें समागम करनेसे स्त्री और सम दिनमें समागम करनेसे पुरुषकी उत्पत्ति होती है। पिताजी! ऋतुस्नान की हुई कामार्त स्त्री जिसके मुखका दर्शन करती है, उसीकी मुखाकृतिकी संतान जन्म लेती है। अतः स्त्रीको उस समय अपने पतिका मुख देखना चाहिये॥ १४-१५½॥

* यहाँपर सृष्टि-परम्पराकी निरन्तरताकी ओर संकेत है। संक्षेपमें कर्मफल-भोगके अनन्तर शेष कर्मोंसे आविष्ट जीव आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा ओषधि, पुष्प, फल, अन्न आदिके रूपमें देहान्तरकी प्राप्ति करता हुआ स्त्री-पुरुषके द्वारा अन्नादिका भोग करनेपर वीर्य तथा रजस्के रूपमें उसका पुनः विपरिणाम होता है और पुनः वीर्य तथा रजस्के संयोगसे सृष्टि-प्रक्रिया चलती रहती है। इस प्रकार अवान्तरभूत अविदित सृष्टि-प्रक्रियाके प्रति जागरूक करनेके लिये भगवतीका उपदेश है।

तद्रेतो योनिरक्तेन युक्तं भूत्वा महामते॥ १६॥
दिनेनैकेन कललं जरायुपरिवेष्टितम्।
भूत्वा पञ्चदिनैरेव बुद्बुदाकारतामियात्॥ १७॥

या तु चर्माकृतिः सूक्ष्मा जरायुः सा निगद्यते।
शुक्रशोणितयोर्योगस्तस्मिन् संजायते यतः॥ १८॥

तत्र गर्भो भवेद्यस्मात्तेन प्रोक्तो जरायुजः।
ततस्तत्सप्तरात्रेण मांसपेशीत्वमाप्नुयात्॥ १९॥

पक्षमात्रेण सा पेशी तच्छोणितपरिप्लुता।
ततश्चाङ्कुर उत्पन्नः पञ्चविंशतिरात्रिषु॥ २०॥

स्कन्धो ग्रीवा शिरःपृष्ठोदराणि च महामते।
पञ्चधाङ्गानि जायन्ते एवं मासेन च क्रमात्॥ २१॥

द्वितीये मासि जायन्ते पाणिपादादयस्तथा।
अङ्गानां संधयः सर्वे तृतीये सम्भवन्ति हि॥ २२॥

अङ्गुल्यश्चापि जायन्ते चतुर्थे मासि सर्वतः।
अभिव्यक्तिश्च जीवस्य तस्मिन्नेव हि जायते॥ २३॥
ततश्चलति गर्भोऽपि जनन्या जठरे स्थितः।
श्रोत्रे नेत्रे तथा नासा जायन्ते मासि पञ्चमे॥ २४॥

तथैव च मुखं श्रोणिर्गुह्यं तस्मिन् प्रजायते।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च कर्णछिद्रद्वयं तथा॥ २५॥

तथैव मासि षष्ठे तु नाभिश्चापि भवेन्नृणाम्।
सप्तमे केशरोमाद्या जायन्ते च तथाष्टमे॥ २६॥

विभक्तावयवत्वं च जायते गर्भमध्यतः।
विहाय श्मश्रुदन्तादीन् जन्मान्तरसमुद्भवात्॥ २७॥

समस्तावयवा एवं जायन्ते क्रमतः पितः।

महामते! वह वीर्य स्त्रीके योनिस्थित रजसे मिलकर एक दिनमें कलल (अवस्थाविशेष) बन जाता है। वही कलल अत्यन्त सूक्ष्म झिल्लीसे पूर्णतया आवृत होकर पाँच दिनोंमें बुलबुलेके आकारका हो जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म आकारकी जो चमड़ेकी झिल्ली होती है, उसे जरायु कहा जाता है। चूँकि उसमें वीर्य तथा रजका योग होता है और उसीसे गर्भ उत्पन्न होता है, इसलिये उसे 'जरायुज' कहा गया है॥ १६—१८½॥ तत्पश्चात् सात रातोंमें वह मांसपेशियोंसे युक्त हो जाता है और फिर एक पक्षमें वह जो पेशी होती है, उसमें रक्तप्रवाह होने लगता है। तत्पश्चात् पचीस रातोंमें देहके अवयव अङ्कुरित होने लगते हैं। महामते! एक महीनेमें क्रमसे स्कन्ध (कन्धा), गर्दन, सिर, पीठ और पेट—ये पाँच प्रकारके अङ्ग निर्मित हो जाते हैं॥ १९—२१॥ दूसरे महीनेमें हाथ और पैर हो जाते हैं तथा तीसरे महीनेमें अङ्गोंकी सभी सन्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पुनः चौथे महीनेमें सभी अङ्गुलियाँ बन जाती हैं और उसी महीनेमें उसके भीतर जीवकी अभिव्यक्ति हो जाती है। तब माताके उदरमें स्थित गर्भ चलने भी लग जाता है॥ २२-२३½॥

पाँचवें महीनेमें नेत्र, कान और नाकका निर्माण होता है एवं उसी महीनेमें मुख, कमर, गुदा-शिश्न-लिङ्ग आदि गुह्य अङ्ग और कानोंमें दोनों छिद्र भी बन जाते हैं। उसी तरह छठे महीनेमें मनुष्योंकी नाभि बन जाती है और सातवें महीनेमें केश, रोम आदि उग आते हैं। आठवें महीनेमें गर्भमें सभी अवयव स्पष्टरूपसे अलग-अलग बन जाते हैं। इस प्रकार पिताजी! जन्मके पश्चात् उगनेवाले दाढ़ी, मूँछ और दाँत आदिको छोड़कर सभी अङ्ग क्रमसे निर्मित हो जाते हैं॥ २४—२७½॥

नवमे मासि जीवस्तु चैतन्यं सर्वशो लभेत्॥ २८॥

मातृभुक्तानुसारेण वर्धते जठरे स्थितः।
प्राप्य वै यातनां घोरां खिद्यते च स्वकर्मतः॥ २९॥

स्मृत्वा प्राक्तनदेहोत्थकर्माणि बहुदुःखितः।
मनसा वचनं ब्रूते विचार्य स्वयमेव हि॥ ३०॥

एवं दुःखमनुप्राप्य भूयो जन्म लभेत्क्षितौ।
अन्यायेनार्जितं वित्तं कुटुम्बभरणं कृतम्॥ ३१॥

नाराधिता भगवती दुर्गा दुर्गतिहारिणी।
यद्यस्मान्निष्कृतिर्मे स्याद्गर्भदुःखात्तदा पुनः॥ ३२॥

विषयान्नानुसेविष्ये विना दुर्गां महेश्वरीम्।
नित्यं तामेव भक्त्याहं पूजये यतमानसः॥ ३३॥

वृथा पुत्रकलत्रादिवासनावशतोऽसकृत्।
निविष्टसंसारमनाः कृतवानात्मनोऽहितम्॥ ३४॥

तस्येदानीं फलं भुञ्जे गर्भदुःखं दुरासदम्।
तन्न भूयः करिष्यामि वृथा संसारसेवनम्॥ ३५॥

इत्येवं बहुधा दुःखमनुभूय स्वकर्मतः।
अस्थियन्त्रविनिष्पिष्टो निर्याति योनिवर्त्मना॥ ३६॥

सूतिवातवशाद्घोरनरकादिव पातकी।
मेदोऽसृक्प्लुतसर्वाङ्गो जरायुपरिवेष्टितः॥ ३७॥

ततो मन्मायया मुग्धस्तानि दुःखानि विस्मृतः।
अकिंचित्करतां प्राप्य मांसपिण्ड इव स्थितः॥ ३८॥

सुषुम्णा पिहिता नाडी श्लेष्मणा यावदेव हि।
तावद्वक्तुं न शक्नोति सुव्यक्तवचनं त्वसौ॥ ३९॥

न गन्तुमपि शक्नोति बन्धुभिः परिरक्ष्यते।
श्वमार्जारादिदंष्ट्रिभ्यो दूनः कालवशात्ततः॥ ४०॥

यथेष्टं भाषते वाक्यं गच्छत्यपि सुदूरतः।
ततश्च यौवनोद्रिक्तः कामक्रोधादिसंयुतः॥ ४१॥

कुरुते विविधं कर्म पापपुण्यात्मकं पितः।

नौवें महीनेमें जीवमें पूर्णरूपसे चेतनाशक्ति आ जाती है। वह उदरमें स्थित रहकर माताके द्वारा ग्रहण किये गये भोजनके अनुसार वृद्धिको प्राप्त होता रहता है। वहाँपर अपने जन्मान्तरके कर्मोंके अनुसार घोर यातना प्राप्त करके वह जीव खिन्न हो उठता है और पूर्वजन्ममें अपने शरीरसे किये गये कर्मोंको यादकर अत्यन्त दुःखी हो जाता है। माताके गर्भमें इस प्रकारका कष्ट प्राप्त करके भी जीव बार-बार पृथ्वीपर जन्म लेता रहता है। गर्भावस्थामें वह जीव मनमें यह सब सोचकर स्वयंसे यह बात कहता है—'मैंने अन्यायपूर्वक धन कमाया और उससे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण किया, किंतु दुर्गतिका नाश करनेवाली भगवती दुर्गाकी आराधना नहीं की। अब यदि गर्भके दुःखसे मुझे छुटकारा मिल जाय तो मैं पुनः महेश्वरी दुर्गाको छोड़कर विषयोंका सेवन नहीं करूँगा और सर्वदा समाहितचित्त होकर भक्तिपूर्वक उन्हींकी पूजा करूँगा। पुत्र, स्त्री आदिके मोहके वशीभूत होकर तथा सांसारिकतामें अपने मनको आसक्त करके मैंने व्यर्थमें ही अनेक बार अपना अहित कर डाला। इस समय उसीके परिणामस्वरूप मैं यह असहनीय गर्भ-दुःख भोग रहा हूँ। अब मैं पुनः सांसारिक विषयोंका सेवन नहीं करूँगा'॥ २८—३५॥

इस प्रकार अपने कर्मानुसार अनेक प्रकारसे दुःखोंका अनुभव करके वह जीव अपने अङ्गोंमें मेदा तथा रक्त लपेटे हुए और झिल्लीसे आवृत होकर प्रसववायुके वशीभूत योनिके अस्थि-यन्त्रसे पिसा जाता हुआ-सा उसी प्रकार योनिमार्गसे बाहर निकलता है, जैसे पातकी जीव नरकसे निकलता है॥ ३६-३७॥ तदनन्तर वह जीव मेरी मायासे मोहित होकर उन दुःखोंको भूल जाता है और कुछ भी न कर सकनेकी स्थितिको प्राप्त होकर मांस-पिण्डकी भाँति स्थित रहता है। जबतक कफ आदिसे उसकी सुषुम्णा नाडी अवरुद्ध रहती है, तबतक वह स्पष्ट वाणी बोलनेमें तथा चल-फिर सकनेमें समर्थ नहीं होता है और दैवयोगसे जब वह कुत्ते, बिल्ली आदि दाढ़युक्त जन्तुओंसे पीड़ित होता है तब स्वजनोंद्वारा उसकी सम्यक् रक्षा की जाती है। बादमें वह स्वेच्छया कुछ बोलने लगता है और दूर-दूरतक चलने भी लगता है। पिताजी! इसके बाद कुछ काल बीतनेपर यौवनके उन्मादमें आकर वह काम, क्रोध आदिसे युक्त होकर पाप तथा पुण्यकर्म करने लगता है॥ ३८—४१½॥

कुरुते कर्मतन्त्राणि देहभोगार्थमेव हि॥ ४२॥
स देहः पुरुषाद्भिन्नः पुरुषः किं समश्नुते।
प्रतिक्षणं क्षरत्यायुश्चलत्पर्णस्थतोयवत्॥ ४३॥
स्वप्नोपमं महाराज सर्वं वैषयिकं सुखम्।
तथापि न भवेद्धानिरभिमानस्य देहिनाम्॥ ४४॥
न चैतद्वीक्षते देही मोहितो मम मायया।
वीक्षते केवलान्भोगांस्तत्र शाश्वतिकानिव॥ ४५॥
अकस्माद्ग्रसते कालः पूर्णे चायुषि भूधर।
यथा व्यालोऽन्तिके प्राप्तं मण्डूकं ग्रसते क्षणात्॥ ४६॥
हा हन्त जन्मैतदपि विफलं यातमेव हि।
एवं जन्मान्तरमपि विफलं जायते तथा॥ ४७॥
निष्कृतिर्विद्यते नैव विषयाननुसेविनाम्।
तस्मादात्मविचारेण त्यक्त्वा वैषयिकं सुखम्॥ ४८॥
शाश्वतैश्वर्यमन्विच्छन्मदर्चनपरो भवेत्।
तदैव जायते भक्तिरियं ब्रह्मणि निश्चला॥ ४९॥
देहादिभ्यः पृथक्त्वेन निश्चित्यात्मानमात्मना।
देहादिममतां मिथ्याज्ञानजां परिसंत्यजेत्॥ ५०॥
पितस्त्वं यदि संसारदुःखान्निर्वृत्तिमिच्छसि।
तदाराधय मां भक्त्या ब्रह्मरूपां समाहितः॥ ५१॥

जिस देहके भोगके लिये जीव सारे कर्म करता है, वह देह पुरुष (जीवात्मा)-से भिन्न है; क्योंकि जीवात्माका भोगोंसे क्या सम्बन्ध? प्रतिक्षण आयुका क्षरण हो रहा है और वह हिलते हुए पत्तेपर स्थित जलकणकी भाँति क्षणभङ्गुर है॥ ४२-४३॥ महाराज! विषय-वासनासम्बन्धी सभी सुख स्वप्नके समान (प्रतीतिमात्र) हैं, फिर भी जीवके अभिमानमें कोई कमी नहीं होती है, मेरी मायासे मोहित हुआ जीव यह सब नहीं देखता। वह भोगोंको शाश्वत समझकर केवल उन्हें ही देखता है और भूधर! आयुके पूरा हो जानेपर काल जीवको अकस्मात् उसी भाँति ग्रस लेता है, जैसे सर्प अपने पास आये हुए मेढकको क्षणभरमें ग्रस लेता है॥ ४४—४६॥

महान् कष्टकी बात है कि यह भी जन्म व्यर्थ बीत गया और इसी प्रकार दूसरा जन्म भी व्यर्थ ही चला जाता है। विषय-भोगोंका सेवन करनेवालोंका उद्धार होता ही नहीं। अतः आत्मतत्त्वका विचार करके वासनात्मक सुखका परित्याग कर शाश्वत ऐश्वर्य*की प्राप्तिकी कामना करते हुए मेरी उपासनामें तत्पर रहना चाहिये, तभी ब्रह्मसे स्थिर सम्बन्ध बनता है॥ ४७—४९॥ अपनी आत्माको देह आदिसे पृथक् निश्चित करके मिथ्याज्ञानजनित देह आदिकी ममताका त्याग कर देना चाहिये। पिताजी! यदि आप सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा चाहते हैं तो एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मुझ ब्रह्मरूपिणी भगवतीकी आराधना कीजिये॥ ५०-५१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीपार्वतीहिमालयसंवादे ब्रह्मयोगोपदेशवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीभगवतीगीतोपनिषद्में ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रके अन्तर्गत पार्वती-हिमालय-संवादमें 'ब्रह्मयोगोपदेशवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

---

* शाश्वत ऐश्वर्यका तात्पर्य भौतिक ऐश्वर्यसे नहीं है, कारण वे शाश्वत होते ही नहीं। षडैश्वर्यसम्पन्न परमात्मप्रभुकी प्राप्ति ही शाश्वत ऐश्वर्यकी प्राप्ति है।

अठारहवाँ अध्याय

भगवतीगीताके वर्णनमें मोक्षयोगका उपदेश, देवीके स्थूल स्वरूपोंमें दस महाविद्याओंका वर्णन, इन स्वरूपोंकी आराधनासे मोक्षकी प्राप्ति, अनन्य शरणागतिकी महिमा

हिमालय उवाच

अनाश्रितानां त्वां देवि मुक्तिश्चैनैव विद्यते।
कथं समाश्रयेत्त्वां तत्कृपया ब्रूहि मे तदा॥ १॥

संध्येयं कीदृशं रूपं मातस्तव मुमुक्षुभिः।
त्वयि भक्तिः परा कार्या देहबन्धविमुक्तये॥ २॥

श्रीपार्वत्युवाच

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
तेषामपि सहस्रेषु कोऽपि मां वेत्ति तत्त्वतः॥ ३॥

रूपं मे निष्कलं सूक्ष्मं वाचातीतं सुनिर्मलम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिः सर्वव्याप्येककारणम्॥ ४॥

निर्विकल्पं निरालम्बं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
ध्येयं मुमुक्षुभिस्तात देहबन्धविमुक्तये॥ ५॥

अहं मतिमतां तात सुमतिः पर्वताधिप।
पृथिव्यां पुण्यगन्धोऽहं रसोऽप्सु शशिनः प्रभा॥ ६॥

तपस्विनां तपश्चास्मि तेजश्चास्मि विभावसोः।
कामरागादिरहितं बलिनां बलमप्यहम्॥ ७॥

सर्वकर्मसु राजेन्द्र कर्म पुण्यात्मकं तथा।
छन्दसामस्मि गायत्री बीजानां प्रणवोऽस्म्यहम्॥ ८॥

धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि सर्वभूतेषु भूधर।
एवमन्येऽपि ये भावाः सात्त्विका राजसास्तथा॥ ९॥

तामसा मत्त उत्पन्ना मदधीनाश्च ते मयि।
नाहं तेषामधीनास्मि कदाचित्पर्वतर्षभ॥ १०॥

हिमालय बोले—देवि! यदि आपका आश्रय ग्रहण न करनेवालोंकी मुक्ति है ही नहीं तो कृपा करके मुझे यह बताइये कि मनुष्य किस प्रकार आपकी शरण प्राप्त करे॥ १॥ माता! देहबन्धनसे छुटकारेके लिये मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको आपके किस रूपका ध्यान करना चाहिये और आपकी कैसी परम भक्ति करनी चाहिये?॥ २॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—हजारों मनुष्योंमें कोई-कोई सिद्धिके लिये प्रयास करता है और सिद्धिके लिये तत्पर उन हजार लोगोंमें भी कोई-कोई ही मुझे वस्तुतः जान पाता है॥ ३॥ तात! मुमुक्षुओंको देहबन्धसे मुक्तिके लिये मेरे निष्कल, सूक्ष्म, वाणीसे परे, अत्यन्त निर्मल, निर्गुण, परम ज्योतिस्वरूप, सर्वव्यापक, एकमात्र कारणरूप, विकल्परहित, आश्रयहीन और सच्चिदानन्दविग्रहवाले स्वरूपका ध्यान करना चाहिये॥ ४-५॥

तात! मैं बुद्धिमानोंकी सद्बुद्धि हूँ। पर्वतराज! मैं ही पृथ्वीमें पवित्र गन्धके रूपमें विद्यमान हूँ, मैं ही जलमें रसके रूपमें व्याप्त हूँ, चन्द्रमाकी प्रभा मैं ही हूँ, मैं ही तपस्वियोंकी तपस्या हूँ, सूर्यका तेज मैं ही हूँ और बलवान् प्राणियोंका काम-राग आदिसे रहित बल भी मैं ही हूँ॥ ६-७॥ राजेन्द्र! मैं समस्त कर्मोंमें पुण्यात्मक कर्म हूँ, छन्दोंमें गायत्री नामक छन्द हूँ, बीजमन्त्रोंमें प्रणव (ओंकार) हूँ और सभी प्राणियोंमें धर्मानुकूल काम हूँ। भूधर! इसी प्रकार और भी जो सात्त्विक, राजस तथा तामस भाव हैं वे मुझसे ही उत्पन्न हुए हैं, मेरे अधीन हैं और मुझमें विद्यमान हैं। पर्वतश्रेष्ठ! मैं उनके अधीन कदापि नहीं हूँ॥ ८—१०॥

एवं सर्वगतं रूपमद्वैतं परमव्ययम्।
न जानन्ति महाराज मोहिता मम मायया॥ ११॥

ये भजन्ति च मां भक्त्या मायामेतां तरन्ति ते।
ममैश्वर्यं न जानन्ति ऋगाद्याः श्रुतयः परम्॥ १२॥

सृष्ट्यर्थमात्मनो रूपं मयैव स्वेच्छया पितः।
कृतं द्विधा नगश्रेष्ठ स्त्री पुमानिति भेदतः॥ १३॥

शिवः प्रधानः पुरुषः शक्तिश्च परमा शिवा।
शिवशक्त्यात्मकं ब्रह्म योगिनस्तत्त्वदर्शिनः॥ १४॥

वदन्ति मां महाराज तत्त्वमेवं परात्परम्।
सृजामि ब्रह्मरूपेण जगदेतच्चराचरम्॥ १५॥

संहरामि महारुद्ररूपेणान्ते निजेच्छया।
दुर्वृत्तशमनार्थाय विष्णुः परमपूरुषः॥ १६॥

भूत्वा जगदिदं कृत्स्नं पालयामि महामते।
अवतीर्य क्षितौ भूयो भूयो रामादिरूपतः॥ १७॥

निहत्य दानवान्पृथ्वीं पालयामि पुनः पुनः।
रूपं शक्त्यात्मकं तात प्रधानं यच्च मे स्मृतम्॥ १८॥

यतस्तया विना पुंसः कार्यं नेहात्मना स्थितम्।
रूपाण्येतानि राजेन्द्र तथा काल्यादिकानि च॥ १९॥

स्थूलानि विद्धि सूक्ष्मं च पूर्वमुक्तं तवानघ।
अनभिज्ञाय रूपं तु स्थूलं पर्वतपुङ्गव॥ २०॥

अगम्यं सूक्ष्मरूपं मे यद्दृष्ट्वा मोक्षभाग्भवेत्।
तस्मात्स्थूलं हि मे रूपं मुमुक्षुः पूर्वमाश्रयेत्॥ २१॥

क्रियायोगेन तान्येव समभ्यर्च्य विधानतः।
शनैरालोचयेत्सूक्ष्मं रूपं मे परमव्ययम्॥ २२॥

हिमालय उवाच

मातर्बहुविधं रूपं स्थूलं तव महेश्वरि।
तेषु किं रूपमाश्रित्य सहसा मोक्षभाग्भवेत्॥ २३॥

तन्मे ब्रूहि महादेवि यदि ते मय्यनुग्रहः।
संसारान्मोचय त्वं मां दासोऽस्मि भक्तवत्सले॥ २४॥

महाराज! मायासे मोहित हुए लोग मेरे इस सर्वव्यापी, अद्वैत, परम तथा निर्विकार रूपको नहीं जान पाते हैं; किंतु जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं, वे इस मायाको पार कर जाते हैं। ऋक् आदि श्रुतियाँ भी मेरे परम ऐश्वर्यको नहीं जानती हैं॥ ११-१२॥ पिताजी! नगश्रेष्ठ! सृष्टिके लिये मैंने ही अपने रूपको स्त्री तथा पुरुष-भेदसे दो भागोंमें विभक्त किया। शिव ही प्रधान पुरुष हैं और शिवा ही परम शक्ति हैं। महाराज! तत्त्वदर्शी योगिजन मुझे ही शिव-शक्तिसे युक्त ब्रह्म एवं परात्पर तत्त्व कहते हैं॥ १३-१४½॥ मैं ब्रह्मरूपसे इस चराचर जगत्की सृष्टि करती हूँ, परम पुरुष विष्णु होकर इस सम्पूर्ण विश्वका पालन करती हूँ और अन्तमें अपनी इच्छासे दुराचारियोंके शमनके उद्देश्यसे महारुद्ररूपसे संहार करती हूँ। इसी तरह महामते! मैं राम आदि रूपोंसे पृथ्वीपर बार-बार अवतार लेकर दानवोंका वध करके पुनः-पुनः जगत्का पालन करती हूँ। तात! मेरा शक्त्यात्मक रूप ही प्रधान है; क्योंकि अपने स्वरूपमें स्थित रहता हुआ पुरुष उसके बिना कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है॥ १५—१८½॥ राजेन्द्र! मेरे इन काली आदि रूपोंको स्थूलरूप जानो। निष्पाप! अपने सूक्ष्मरूपके विषयमें मैं आपसे पहले ही बता चुकी हूँ। पर्वतश्रेष्ठ! मेरे स्थूल रूपका ज्ञान किये बिना उस सूक्ष्मरूपका बोध नहीं किया जा सकता है, जिसका दर्शन करके प्राणी मोक्षका भागी हो जाता है। अतः मोक्षकी कामना करनेवाले प्राणीको पहले मेरे स्थूल रूपका आश्रय लेना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह क्रियायोगके द्वारा विधानपूर्वक मेरे उन स्थूल रूपोंकी उपासना करके ही धीरे-धीरे मेरे शाश्वत परम सूक्ष्म रूपका दर्शन करे॥ १९—२२॥

हिमालय बोले—माता! आपके स्थूल रूप अनेक प्रकारके हैं। महेश्वरि! उनमें किस रूपका आश्रय लेकर मनुष्य शीघ्र मोक्षका भागी बन सकता है? महादेवि! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो मुझे उसे बताइये। भक्तवत्सले! मैं आपका दास हूँ, अतः इस संसारसे मुझे मुक्त कीजिये॥ २३-२४॥

श्रीपार्वत्युवाच

मया व्याप्तमिदं विश्वं स्थूलरूपेण भूधर।
तत्राराध्यतमा देवीमूर्तिः शीघ्रं विमुक्तिदा॥ २५॥

सापि नानाविधा तत्र महाविद्या महामते।
विमुक्तिदा महाराज तासां नामानि मे शृणु॥ २६॥

महाकाली तथा तारा षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी बगला छिन्ना महात्रिपुरसुन्दरी॥ २७॥

धूमावती च मातङ्गी नृणां मोक्षफलप्रदा।
आसु कुर्वन् परां भक्तिं मोक्षं प्राप्नोत्यसंशयम्॥ २८॥

आसामन्यतमां तात क्रियायोगेन चाश्रय।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यसि निश्चितम्॥ २९॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
न लभन्ते महात्मानः कदाचिदपि भूधर॥ ३०॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं मुक्तिदा राजन् भक्तियुक्तस्य योगिनः॥ ३१॥

यस्तु संस्मृत्य मामन्ते प्राणं त्यजति भक्तितः।
सोऽपि संसारदुःखौघैर्बाध्यते न कदाचन॥ ३२॥

अनन्यचेतसो ये मां भजन्ते भक्तिसंयुताः।
तेषां मुक्तिप्रदा नित्यमहमस्मि महामते॥ ३३॥

शक्त्यात्मकं हि मे रूपमनायासेन मुक्तिदम्।
समाश्रय महाराज ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥ ३४॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव राजेन्द्र यजन्ते नात्र संशयः॥ ३५॥

अहं सर्वमयी यस्मात्सर्वयज्ञफलप्रदा।
किंतु तेष्वेव ये भक्तास्तेषां मुक्तिः सुदुर्लभा॥ ३६॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—भूधर! मेरे स्थूल रूपोंसे यह सम्पूर्ण जगत् ही व्याप्त है, फिर भी शीघ्र मुक्ति प्रदान करनेवाली मेरी देवी-मूर्ति सर्वाधिक आराधनीया है। महामते! वे देवी भी मुक्तिदायिनी '(दस) महाविद्या' नामसे अनेक स्वरूपोंवाली हैं। महाराज! मुझसे उनके नाम सुन लीजिये—महाकाली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला (बगलामुखी), छिन्ना (छिन्नमस्ता), महात्रिपुरसुन्दरी, धूमावती और मातङ्गी नामोंवाली—ये मनुष्योंको मोक्षफल प्रदान करनेवाली हैं। इनकी परम भक्ति करनेवाला निःसंदेह मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २५—२८॥ तात! आप मन और बुद्धिसे मेरे प्रति समर्पित होकर इनमेंसे किसी एकका क्रियायोगके द्वारा आश्रय ग्रहण कीजिये। इससे आप निश्चितरूपसे मुझे प्राप्त कर लेंगे। भूधर! मुझको प्राप्त होकर महात्मालोग अनित्य तथा दुःखत्रयसे परिपूर्ण पुनर्जन्मको कभी नहीं पाते॥ २९-३०॥ राजन्! निरन्तर एकनिष्ठ चित्तवाला होकर जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस भक्तिपरायण योगीको मैं मुक्ति प्रदान करती हूँ। भक्तिपूर्वक मेरा स्मरण करते हुए जो अन्तमें प्राणत्याग करता है, वह कभी भी (पुनर्जन्मादि) सांसारिक दुःखसमूहोंसे पीड़ित नहीं होता। महामते! मेरे प्रति अनन्य चित्तसे जो लोग भक्तिपूर्ण होकर नित्य मुझको भजते हैं, उन्हें मैं मोक्ष प्रदान करती हूँ॥ ३१—३३॥

महाराज! मेरा वह शक्त्यात्मक रूप बिना किसी श्रमके ही मुक्ति देनेवाला है, इसलिये आप उस रूपका आश्रय लीजिये। इससे आप अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे॥ ३४॥ राजेन्द्र! जो लोग श्रद्धासे युक्त होकर भक्तिपूर्वक अन्य देवताओंकी भी उपासना करते हैं, वे भी प्रकारान्तरसे मेरी ही उपासना करते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है। समस्त यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली मैं यद्यपि सर्वव्यापिनी हूँ, फिर भी जो लोग एकमात्र उन्हीं अन्य देवताओंकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं उनकी मुक्ति अत्यन्त दुर्लभ है॥ ३५-३६॥

ततो मामेव शरणं देहबन्धविमुक्तये।
याहि संयतचेतास्त्वं मामेष्यसि न संशयः॥ ३७॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
सर्वं मदर्पणं कृत्वा मोक्ष्यसे कर्मबन्धनात्॥ ३८॥

ये मां भजन्ति सद्भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।
न च मेऽस्ति प्रियः कश्चिदप्रियोऽपि महामते॥ ३९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मुच्यते भवबन्धनात्॥ ४०॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शनैस्तरति सोऽपि च।
मयि भक्तिमतां मुक्तिः सुलभा पर्वताधिप॥ ४१॥

ततस्त्वं परया भक्त्या मां भजस्व महामते।
अहं त्वां जन्मजलधेस्तारयामि सुनिश्चितम्॥ ४२॥

मन्मना भव मद्याजी मां नमस्कुरु मत्परः।
मामेवैष्यसि संसारदुःखैर्नैव हि बाध्यसे॥ ४३॥

अतः देह-बन्धनसे मुक्तिके लिये आप अपने मनको नियन्त्रित करके मेरी ही शरणमें जाइये। ऐसा करनेसे आप मुझे प्राप्त कर लेंगे, इसमें संशय नहीं है। आप जो कुछ करते हैं, खाते हैं, हवन करते हैं और दान करते हैं, वह सब मुझे अर्पण करके आप कर्मबन्धनसे छूट जायँगे॥ ३७-३८॥ जो लोग सच्ची भक्तिसे मेरी आराधना करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें स्थित हूँ। महामते! मेरे लिये कोई भी प्रिय और अप्रिय नहीं है। अत्यन्त दुराचारी रहा हुआ मनुष्य भी यदि अनन्यभावसे मेरी उपासना करने लगता है तो वह भी पापरहित होकर भवबन्धनसे छूट जाता है*। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और धीरे-धीरे संसार-सागरको पार भी कर जाता है। पर्वतराज! मुझमें भक्ति रखनेवाले प्राणियोंके लिये मुक्ति सुलभ हो जाती है॥ ३९—४१॥ अतः महामते! आप पराभक्तिसे युक्त होकर मेरी आराधना कीजिये। मैं आपको जन्म-मरणरूपी समुद्रसे निश्चितरूपसे पार कर दूँगी। आप मुझमें अनुरक्त मनवाले होइये, मेरे उपासक बनिये, मुझे नमस्कार कीजिये और मेरे परायण होइये। ऐसा करनेसे आप मुझे ही प्राप्त होंगे और सांसारिक कष्ट आपको कभी पीड़ित नहीं कर सकेंगे॥ ४२-४३॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीपार्वतीहिमालयसंवादे मोक्षयोगोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीभगवतीगीतोपनिषद्में ब्रह्मविद्या-योगशास्त्रके अन्तर्गत श्रीपार्वती-हिमालय-संवादमें 'मोक्षयोगोपदेशवर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

---

* पूर्वकालमें दुराचारपरायण रहनेपर भी यदि सत्सङ्गादिके प्रभावसे उसके चित्तमें पश्चात्तापका उदय हो जाता है और दुराचरणसे निवृत्त होकर उसका जगदम्बाके प्रति अनन्यचित्तताका सम्बन्ध बन जाता है तो उस व्यक्तिके सारे पापोंका प्रक्षालन होकर उसकी मुक्ति असंदिग्धरूपसे हो जाती है।

उन्नीसवाँ अध्याय

हिमालयको तत्त्वज्ञानका उपदेश प्रदान कर देवीका सामान्य बालिकाकी भाँति क्रीडा करना, गिरिराजद्वारा जन्म-महोत्सव, षष्ठी-महोत्सव तथा नामकरण आदि उत्सवोंको सम्पादित करना, भगवतीगीता (पार्वतीगीता)-के पाठकी महिमा

श्रीमहादेव उवाच

एवं श्रीपार्वतीवक्त्राद्योगसारं परं मुने।
निशम्य पर्वतश्रेष्ठो जीवन्मुक्तो बभूव ह॥ १ ॥

सापीयं शैलराजाय योगमुक्त्वा महेश्वरी।
मातृस्तन्यं पपौ बाला प्राकृतेव हि लीलया॥ २ ॥

गिरीन्द्रस्तु महाहर्षादकरोत्सुमहोत्सवम्।
यथा न दृष्टं केनापि श्रुतं वा केनचित्क्वचित्॥ ३ ॥

षष्ठेऽह्नि षष्ठीं सम्पूज्य सम्प्राप्ते दशमेऽहनि।
पार्वतीत्यकरोन्नाम सान्वयं पर्वताधिपः॥ ४ ॥

एवं त्रिजगतां माता नित्या प्रकृतिरुत्तमा।
सम्भूय मेनकागर्भाद्धिमालयगृहे स्थिता॥ ५ ॥

हिमालयाय पार्वत्या कथितं योगमुत्तमम्।
यः पठेत्सुलभा मुक्तिस्तस्य नारद जायते॥ ६ ॥

तुष्टा भवति शर्वाणी नित्यं मङ्गलदायिनी।
जायते च दृढा भक्तिः पार्वत्यां मुनिपुङ्गव॥ ७ ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः।
पठन् श्रीपार्वतीगीतां जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ ८ ॥

शरत्काले महाष्टम्यां यः पठेत्समुपोषितः।
रात्रौ जागरितो भूत्वा तस्य पुण्यं ब्रवीमि किम्॥ ९ ॥

स सर्वदेवपूज्यश्च दुर्गाभक्तिपरायणः।
इन्द्रादयो लोकपालास्तदाज्ञावशवर्तिनः॥ १०॥

स्वयं दैवीकलामेति साक्षाद्देव्याः प्रसादतः।
नश्यन्ति तस्य पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि॥ ११॥

पुत्रं सर्वगुणोपेतं लभते चिरजीविनम्।
नश्यन्ति रिपवस्तस्य नित्यं प्राप्नोति मङ्गलम्॥ १२॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! इस प्रकार श्रीपार्वतीजीके मुखसे श्रेष्ठ योगसारको सुनकर पर्वतश्रेष्ठ हिमालय जीवन्मुक्त हो गये। वे महेश्वरी भी गिरिराजसे योगका वर्णन करके लीलापूर्वक प्राकृत (सामान्य) बच्चीकी भाँति माताका दूध पीने लगीं॥ १-२॥ गिरिराज हिमालयने भी अत्यन्त हर्षोल्लासके साथ बड़ा भारी उत्सव किया, जैसा किसीने कहीं भी न तो देखा था और न सुना था। छठें दिन षष्ठीदेवीकी पूजा कर दसवाँ दिन आनेपर पर्वतराज हिमालयने उनका 'पार्वती'—ऐसा सार्थक नाम रखा॥ ३-४॥ इस प्रकार तीनों लोकोंकी जननी नित्यस्वरूपिणी श्रेष्ठ प्रकृति मेनकाके गर्भसे उत्पन्न होकर हिमालयके घरमें रहने लगीं॥ ५॥ नारद! जो मनुष्य पार्वतीके द्वारा हिमालयसे कहे गये उत्तम योगका पाठ करता है, उसके लिये मुक्ति सुलभ हो जाती है। मुनिवर! भगवती शर्वाणी उस मनुष्यपर सदा प्रसन्न रहती हैं और देवी पार्वतीके प्रति उसके मनमें दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ ६-७॥ अष्टमी, नवमी और चतुर्दशी तिथिको भक्तिपरायण होकर श्रीपार्वतीगीताका पाठ करनेवाला मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। शरत्कालमें महाष्टमी तिथिको उपवास करके तथा रातभर जागरण करके जो मनुष्य इसका पाठ करता है, उसके पुण्यका वर्णन मैं क्या करूँ? दुर्गा-भक्तिपरायण वह मनुष्य सभी देवताओंका पूज्य हो जाता है और इन्द्र आदि लोकपाल उसकी आज्ञाके अधीन हो जाते हैं। वह साक्षात् भगवतीकी कृपासे दैवीकलाको स्वयं प्राप्त हो जाता है और उसके ब्रह्महत्या आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वह सर्वगुणसम्पन्न तथा दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त करता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं और वह नित्य कल्याणकी प्राप्ति करता है॥ ८—१२॥

अमावास्यां तिथिं प्राप्य यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स दुर्गातुल्यतामियात्॥ १३॥
निशीथे पठते यस्तु बिल्ववृक्षस्य सन्निधौ।
तस्य संवत्सराद्दुर्गा स्वयं प्रत्यक्षमेति वै॥ १४॥
किमत्र बहुनोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
अस्याः पाठसमं पुण्यं नास्त्येव पृथिवीतले॥ १५॥
तपसां यज्ञदानादिकर्मणामिह विद्यते।
फलस्य संख्या नैतस्य विद्यते मुनिपुङ्गव॥ १६॥
इत्युक्तं ते यथा जाता नित्यापि परमेश्वरी।
लीलया मेनकागर्भे भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥ १७॥

अमावास्या तिथिके आनेपर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस श्रीपार्वतीगीताका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर दुर्गातुल्य हो जाता है। जो बेलके वृक्षकी संनिधिमें बैठकर अर्धरात्रिमें इसका पाठ करता है; उसे एक वर्षमें ही दुर्गा साक्षात् दर्शन देती हैं॥ १३-१४॥ नारद! इसके विषयमें अधिक क्या कहा जाय? तत्त्वकी बात यह है कि पृथ्वीतलपर इस (श्रीपार्वतीगीता)-के पाठके समान कोई भी पुण्य नहीं है॥ १५॥ मुनिश्रेष्ठ! इस लोकमें तप, यज्ञ-दान आदि कर्मोंके फल तो परिमित हैं, किंतु इसके पाठके फलकी कोई सीमा नहीं है। इस प्रकार शाश्वत होते हुए भी परमेश्वरी जिस तरहसे लीलापूर्वक मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुईं—वह वृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १६-१७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीभगवतीगीतामाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीभगवतीगीतामाहात्म्यवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

भगवतीका विविध बालोचित लीलाओंद्वारा हिमालय तथा मेनाको आनन्दित करना, देवर्षि नारदद्वारा देवीके माहात्म्यका वर्णन

नारद उवाच

स्थिता हिमवतो गेहे लीलया परमेश्वरी।
कथमाप पतिं शम्भुं योगचिन्तापरायणम्॥ १॥
कथं देवो मनश्चक्रे दारग्रहणकर्मणि।
त्यक्त्वा योगं महायोगी संसारविमुखः प्रभुम्॥ २॥
कथमर्धशरीरं साऽहरत्स्मररिपोः प्रभो।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महेश्वर॥ ३॥

श्रीमहादेव उवाच

ययेदं मोह्यते विश्वं परया मायया मुने।
को बोद्धुमपि शक्नोति तस्या मायां महामते॥ ४॥
या सर्वजगतां माया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सातिबाल्यं समास्थाय स्थिता हिमवतो गृहे॥ ५॥

नारदजी बोले—हिमवान्‌के घरमें रहती हुई भगवती परमेश्वरीने लीलापूर्वक योग-ध्यानमें तत्पर रहनेवाले भगवान् शिवको पतिरूपमें किस प्रकार प्राप्त किया? प्रभो! संसारसे विरक्त महायोगी भगवान् शिवने परम योगका त्याग करके विवाह करनेमें अपना मन क्यों प्रवृत्त किया और उन पार्वतीने कामदेवके शत्रु महादेवके अर्धाङ्गको किस प्रकार प्राप्त किया? महेश्वर! आप यह सब मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥ १—३॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! महामते! जो दुर्गा इस जगत्‌को परा मायासे मोहमें डाल देती हैं, उनकी मायाको भला कौन जान सकता है? समस्त लोकोंका सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली जो मायास्वरूपिणी दुर्गा हैं, वे शिशुरूप धारण कर हिमालयके घरमें रहने लगीं॥ ४-५॥

ततः सा ववृधे नित्यं वर्षासु स्वर्णदी यथा।
चारुतामपि संदधे यथा शरदि चन्द्रिका॥ ६ ॥

सखीभिः सहिता नित्यं चिक्रीड निजलीलया।
स्वगुणैः पितरौ नित्यं तर्पयामास पार्वती॥ ७ ॥

गिरिराजस्तथा मेना दृष्ट्वा दृष्ट्वा च तन्मुखम्।
दृष्टिं व्यापारयामास नान्यत्र क्षणमण्वपि॥ ८ ॥

विद्यते मुनिशार्दूल नासाध्यं हि तपस्यतः।
तपसा यन्न चाप्नोति विद्यते नैव तत्फलम्॥ ९ ॥

अपि ब्रह्मादिदेवानां यस्या दुर्लभमीक्षणम्।
तां कृत्वाङ्के दिवारात्रं हिमवान्मेनकापि च॥ १० ॥

निरीक्षेते कौतुकेन पुत्रीभावेन तारिणीम्।
एवं भजन्ति ये भक्त्या तेषामिष्टवरप्रदा॥ ११ ॥

दुर्गम्यापि सुरश्रेष्ठ सुलभा जगदम्बिका।
एवं स्थिता भगवती गिरिराजगृहे स्वयम्॥ १२ ॥

मातुस्तृप्तिकरी नित्यं पितृप्रीणनतत्परा।
अथैकदा गिरीन्द्रस्तां कृत्वाङ्के परमेश्वरीम्॥ १३ ॥

तनयां च सुसंगम्य स्थितः परमकौतुकात्।
एतस्मिन्नेव काले तु नारदो मुनिपुङ्गवः॥ १४॥

नभसा च समायातो द्रष्टुं देवीं महेश्वरीम्।
स ददर्श तदा गौरीं गिरीन्द्रनिकटस्थिताम्॥ १५ ॥

शरन्निशि निशानाथज्योत्स्नामिव सुनिर्मलाम्।
गिरीन्द्रस्त्वथ संवीक्ष्य मुनिं स्वगृहमागतम्॥ १६ ॥

सम्पूज्य प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणनाम महामतिः।

तदनन्तर वर्षा-ऋतुमें बढ़ती हुई गङ्गानदीकी भाँति वे निरन्तर बढ़ने लगीं और शरत्कालीन ज्योत्स्नाकी भाँति दिन-प्रतिदिन सौन्दर्यसम्पन्न होती गयीं। वे पार्वती सखियोंके साथ नित्य क्रीडा करती थीं और अपनी लीला तथा गुणोंके द्वारा अपने माता-पिताको सदा संतृप्त रखती थीं। गिरिराज हिमालय तथा मेना उनके मुखको बार-बार देखनेमें अपनी दृष्टि लगाये रहते थे और अणुमात्र समयके लिये भी अन्यत्र नहीं ले जाते थे॥ ६—८॥ मुनिश्रेष्ठ! तप करनेवालेके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है और तप करनेसे जो प्राप्त नहीं हो सकता, उस फलका कोई अस्तित्व ही नहीं है॥ ९॥

ब्रह्मा आदि देवताओंको भी जिन भगवतीका दर्शन दुर्लभ है, प्राणियोंको तारनेवाली उन जगदम्बाको दिन-रात अपनी गोदमें लेकर हिमवान् तथा मेनका पुत्रीभावसे कुतूहलपूर्वक उन्हें देखते रहते थे॥ १०½॥ सुरश्रेष्ठ! इस प्रकार जो लोग भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करते हैं, वे जगदम्बा भगवती उन्हें वाञ्छित वर प्रदान करती हैं और कठिनाईसे प्राप्त होनेयोग्य होते हुए भी उन्हें सरलतासे प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार हिमालयके घरमें रहती हुई वे साक्षात् भगवती अपने माता-पिताको सर्वदा सन्तुष्ट एवं तृप्त किये रहती थीं॥ ११-१२½॥ एक समय गिरिराज हिमालय अपनी पुत्री परमेश्वरी भगवतीको गोदमें लेकर उन्हें अपने हृदयसे लगाकर आनन्दपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय मुनिश्रेष्ठ नारद भगवती महेश्वरीका दर्शन करनेके लिये आकाशमार्गसे वहाँ आ पहुँचे। उस समय उन्होंने शरद्रात्रिकी चन्द्र-ज्योत्स्नाके समान निर्मल कान्तिवाली गौरीको हिमालयके संनिकट बैठी हुई देखा॥ १३—१५½॥ इसके बाद प्रखरबुद्धिवाले गिरिराज हिमालयने अपने घर आये हुए उन देवर्षि नारदको देखकर उनकी विधिवत् पूजा करके दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया॥ १६½॥

उपविश्य मुनिः प्राह शैलराजं प्रहर्षयन्॥ १७॥

गिरिराज मया पूर्वं यदुक्तं ज्ञातवानसि।
स्वयं प्रकृतिराद्येति तनया सम्भविष्यति॥ १८॥

तेन ते तनया जाता स्वयं प्रकृतिरुत्तमा।
शम्भोर्भवित्री दयिता प्रेम्णा देहार्धहारिणी॥ १९॥

स चाप्येनां विना जायां नान्यामुद्वाहयिष्यति।
अनयैव गिरिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो हरः॥ २०॥

भविष्यति महेशाय देयेयं तनया त्वया।
तस्यैव पूर्वपत्नीयं जाता दक्षगृहे तु या॥ २१॥

अनयोर्यादृशं प्रेम भविष्यति महामते।
कयोर्न तादृशं भूतं विद्यते वा भविष्यति॥ २२॥

अनया देवकर्माणि करिष्यति बहूनि च।
पुत्रोऽपि भविता चास्या महाबलपराक्रमः॥ २३॥

येन तुल्यबलो योद्धा न भूतो न भविष्यति।
नान्यस्मै त्वमिमां दातुं मनः कर्तुमिहार्हसि॥ २४॥

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा गिरिराज उवाच तम्।
श्रूयते त्यक्तसङ्गः स महायोगी महेश्वरः॥ २५॥

तपश्चचारात्युग्रं च देवानामप्यगोचरः।
केवलं परमं ब्रह्म सोऽन्तः पश्यति निश्चलः॥ २६॥

न बाह्यमीक्षते शुद्धब्रह्मण्यर्पितमानसः।
तस्यैवं निश्चलं चेतः कश्चालयितुमुत्सहेत्॥ २७॥

कथं वा तनयामेनां भार्यार्थे संग्रहीष्यति।

नारद उवाच

तदर्थं नैव चिन्तां त्वं कुरु पर्वतपुङ्गव॥ २८॥

भविष्यति च भङ्गो वै यथा तस्य निशामय।

तत्पश्चात् आसनपर विराजमान होकर नारद मुनिने पर्वतराज हिमालयको हर्षित करते हुए उनसे कहा—गिरिराज! मैंने पहले आपसे जो कहा था कि साक्षात् आदिस्वरूपिणी प्रकृति आपकी पुत्रीरूपमें उत्पन्न होंगी, अब तो आप उन्हें जान गये होंगे। उसी कारणसे कल्याणमयी भगवती प्रकृतिने आपकी पुत्रीरूपमें स्वयं जन्म लिया है। ये प्रेमवश शम्भुके अर्धाङ्गको ग्रहण करके उनकी भार्याके रूपमें प्रतिष्ठित होंगी॥ १७—१९॥ वे शम्भु भी इन्हें छोड़कर किसी दूसरी स्त्रीके साथ विवाह नहीं करेंगे। गिरिश्रेष्ठ! भगवान् शिव इन्हींके द्वारा अर्धनारीश्वर कहे जायँगे। अतः अब आपको यह कन्या महेश्वरको अर्पण कर देनी चाहिये; क्योंकि देवीस्वरूपिणी आपकी यह कन्या उन्हीं शम्भुकी पूर्वपत्नी हैं, जो इससे पहले दक्षप्रजापतिके घरमें जन्मी थीं॥ २०-२१॥ महामते! इन दोनोंमें परस्पर जैसा प्रेम होगा, वैसा प्रेम किन्हीं भी [पति-पत्नी]-में न तो हुआ, न है और न तो होगा। भगवान् शिव इन्हींकी शक्तिसे देवताओंके अनेक कार्य सम्पन्न करेंगे। इन भगवतीका पुत्र भी महान् बलशाली तथा पराक्रमी होगा, जिसके समान बलवान् योद्धा न तो हुआ है और न होगा। अतः आप किसी अन्यको यह कन्या देनेके लिये मन मत बनाइये॥ २२—२४॥ नारद मुनिका यह वचन सुनकर गिरिराज हिमालयने उनसे कहा—'सुना जाता है कि देवताओंके लिये भी अगोचर वे महेश्वर अनासक्त तथा महान् योगी हैं और उन्होंने कठोर तपस्या भी की है। निर्विकार ब्रह्ममें सर्वदा अपना चित्त लगाये रखनेवाले वे निश्चल शिव अपने अन्तःकरणमें केवल परम ब्रह्मको देखते रहते हैं, बाहरकी ओर अपनी दृष्टि भी नहीं डालते। उन महेश्वरके ऐसे स्थिर चित्तको विचलित करनेमें भला कौन समर्थ हो सकता है? फिर वे मेरी इस कन्याको पत्नीरूपमें भला कैसे स्वीकार करेंगे?॥ २५—२७½॥

नारदजी बोले—पर्वतश्रेष्ठ! आप उस विषयमें कुछ भी चिन्ता न कीजिये। जिस तरहसे उनका ध्यान-भंग होगा, उसे सुनिये॥ २८½॥

तारकेणासुरेन्द्रेण जित्वा देवान् सबान्धवान्॥ २९॥
त्रैलोक्याधिपते राज्यं हृतं मदबलाश्रयात्।
तथान्येषां सुराणां स आधिपत्यं बलाद्धरन्॥ ३०॥
एक आस्ते त्रिलोकेशो ब्रह्मदत्तवरेण हि।
ब्रह्मणा कल्पितो मृत्युस्तस्य नूनं दुरात्मनः॥ ३१॥
शिवस्यौरसजातेन पुत्रेणामिततेजसा।
तेन देवाः सुसंयत्ता इन्द्राद्या ब्रह्मशासनात्॥ ३२॥
सर्वे च व्याकरिष्यन्ति महादेवविमोहने।
निमित्तमात्रमेतद्धि लौकिकं पर्वतर्षभ॥ ३३॥
वस्तुतस्तु सुतैवैषा हरं सम्मोहयिष्यति।
इयं जाता महामाया जगन्मोहनकारिणी॥ ३४॥
विष्णुसम्मोहिनी लक्ष्मीः शिवसम्मोहिनी शिवा।
सोऽपि नित्यं महाकालो निजान्तर्यामिनीमिमाम्॥ ३५॥
महाकालीं महायोगी समाधिस्थो निरीक्षते।
तपश्चरति चैतस्या आत्मनिश्चलमानसः॥ ३६॥
एनां प्राप्य पुनः पत्नीं त्यक्तयोगो भविष्यति।
अचिरेणैव भावेन ध्यानयोगेन शंकरः॥ ३७॥
ज्ञात्वैनां त्वद्गृहे जातां ब्रह्मरूपां सनातनीम्।
तव प्रस्थे तपस्तप्तुं समायास्यति निश्चितम्॥ ३८॥

श्रीमहादेव उवाच

उक्त्वैवं गिरिराजाय स मुनिः प्रययौ द्रुतम्।
विहायसा स्वयं स्थानं मध्याह्नार्कसमप्रभम्॥ ३९॥

असुरराज तारकासुरने मदान्ध होकर सभी देवताओंको बन्धु-बान्धवों-सहित जीतकर इन्द्रका राज्य छीन लिया है। उसी प्रकार वह तारकासुर अन्य देवताओंके भी अधिकार बलपूर्वक छीनकर ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये वरके अनुसार तीनों लोकोंका एकमात्र अधिपति बन बैठा है॥ २९-३०½॥ ब्रह्माजीने भगवान् शिवके अमित तेजस्वी औरस पुत्रके द्वारा उस दुरात्माकी मृत्यु होना सुनिश्चित किया है। इसलिये ब्रह्माजीके आदेशानुसार इन्द्र आदि सभी देवता अत्यन्त सावधानीपूर्वक महादेवजीको विमोहित करनेके लिये प्रयत्नशील होंगे॥ ३१-३२½॥ पर्वतश्रेष्ठ! यह सब कार्य केवल निमित्तभर एवं लौकिक ही होगा, वास्तविकता तो यह है कि आपकी यह पुत्री ही महादेवजीको सम्मोहित करेगी। आपकी यह कन्या जगत्को मोहित करनेवाली महामाया है, विष्णुको सम्मोहित करनेवाली लक्ष्मी है और शिवको सम्मोहित करनेवाली शिवा है॥ ३३-३४½॥

महान् योगी वे महाकालेश्वर स्थिरचित्तसे समाधिमें स्थित होकर अपनी अन्तर्यामिनी प्रिया महाकालीका दर्शन करते हैं और इन्हींके लिये वे आत्मस्वरूपमें मनको स्थिर करके निरन्तर तपस्या कर रहे हैं। इन्हें पुनः पत्नीरूपमें प्राप्त करके वे योगमुक्त हो जायँगे। पुनः वे शंकर ध्यानयोगके बलसे शीघ्र ही यह जानकर कि ये ब्रह्मस्वरूपिणी सनातनी भगवती आपके घरमें उत्पन्न हुई हैं, आपके शिखरपर तप करनेके लिये निश्चितरूपसे आयेंगे॥ ३५—३८॥

श्रीमहादेवजी बोले—गिरिराज हिमालयसे ऐसा कहकर वे नारद मुनि तत्काल आकाशमार्गसे होते हुए मध्याह्नकालीन सूर्यके समान प्रभावाले अपने स्थानके लिये प्रस्थित हो गये॥ ३९॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे महादेवनारदसंवादे विंशतितमोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत महादेव-नारद-संवादमें बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शंकरजीका सतीको पुनः पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके लिये हिमालयपर तपस्यामें स्थित होना, दोनों सखियोंके साथ देवी पार्वतीको लेकर हिमालयका वहाँ जाना

श्रीमहादेव उवाच

गते तस्मिन्मुनिश्रेष्ठे गिरीन्द्रः सह मेनया।
पुनश्च निश्चितं मेने पार्वतीं भवगेहिनीम्॥ १ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुस्त्यक्त्वा पूर्वाश्रमं मुने।
हिमाद्रेः प्रययौ प्रस्थं तपस्तप्तुं सुदुश्चरम्॥ २ ॥

यत्र गङ्गा निपतिता ब्रह्मलोकात्स्वयं पुरा।
तत्र विश्वेश्वरः पूर्णब्रह्मध्यानपरायणः॥ ३ ॥

संस्थितः परमो योगी ध्यानानन्दसमुत्सुकः।
एवं ध्यानपरे तस्मिन्हरे प्रमथपुङ्गवाः॥ ४ ॥

केचिद्ध्यानपरास्तत्र केचित्सेवापरायणाः।
अन्ये सहचरास्तस्य किंचिद्दूरे व्यवस्थिताः॥ ५ ॥

फलपुष्पाणि चिन्वन्तो गीतनृत्यपरायणाः।
क्रीडन्ते गैरिकैर्नित्यं विभज्य च समुत्सुकाः॥ ६ ॥

दृष्ट्वा शिवं समायातं गन्धर्वाः किन्नरास्तथा।
एकदा कथयामासुर्गिरीन्द्राय महात्मने॥ ७ ॥

प्रभो गिरीन्द्र भगवांस्तव प्रस्थे महेश्वरः।
समायातस्तपस्तप्तुं समस्तैः प्रमथैः सह॥ ८ ॥

उषसि प्रस्थनगरमदूरे स स्वयं स्थितः।
महात्मा जटिलो योगी चन्द्रार्धाङ्कितमस्तकः॥ ९ ॥

प्रमथाश्चापि बहवो निकटे तस्य संस्थिताः।
ध्याननिष्ठास्तथा चान्ये शुश्रूषणपरायणाः॥ १० ॥

अन्ये च कोटिशस्तस्य कियद्दूरे व्यवस्थिताः।
नृत्यन्ति चैव क्रीडन्ति गायन्ति च हसन्ति च॥ ११ ॥

केचिद्दिगम्बरास्तेषां केचिद्व्याघ्राजिनाम्बराः।
विभूतिधवलाः सर्वे जटामुकुटमस्तकाः॥ १२ ॥

ऐश्वर्यं भूतनाथस्य विचित्रं पर्वतर्षभ।
गत्वैकदा महाराज स्वयं पश्य यथेप्सितम्॥ १३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—उन मुनिश्रेष्ठके चले जानेपर मेनाके साथ गिरिराज हिमालयने निश्चितरूपसे समझ लिया कि पार्वती पुनः भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी होंगी॥ १॥ मुने! इसी बीच भगवान् शंकर अपने पुराने स्थानको छोड़कर दुष्कर तपस्या करनेके लिये हिमालय पर्वतके शिखरपर चले गये॥ २॥ प्राचीन कालमें ब्रह्मलोकसे आकर जहाँ गङ्गा स्वयं अवतरित हुई थीं, वहाँ परम योगी भगवान् विश्वेश्वर पूर्णब्रह्मके ध्यानपरायण होकर समाधिके आनन्दमें लीन हो गये॥ ३ $\frac{1}{2}$ ॥ उन भगवान् शंकरके इस प्रकार ध्यानमग्न हो जानेपर कुछ श्रेष्ठ प्रमथगण वहाँ ध्यान करने लगे, कुछ उनकी सेवामें लग गये और अन्य गण उनसे कुछ दूरीपर स्थित हो गये॥ ४-५॥ प्रमथगण फल-पुष्प चुनते हुए और नाचते-गाते हुए आपसमें उत्सुकतापूर्वक गेरू आदिको बाँटकर प्रतिदिन खेलते थे॥ ६॥ एक बार सभी गन्धर्व और किन्नर भगवान् शंकरको आया हुआ देखकर महात्मा गिरिराजसे कहने लगे—प्रभो! गिरीन्द्र! आपके शिखरपर समस्त प्रमथगणोंके साथ भगवान् महेश्वर तपस्या करनेके लिये आये हैं॥ ७-८॥ चन्द्रलेखाको मस्तकपर धारण करनेवाले, योगी, जटाधारी तथा महात्मा वे भगवान् शिव उषःकालमें प्रस्थनगरके समीप ठहरे हैं। ध्याननिष्ठ और सेवापरायण बहुत-से प्रमथगण भी उनके निकट स्थित हैं। उनके अन्य करोड़ों सेवकगण कुछ दूरीपर नाचते-गाते, खेलते और हँसते रहते हैं। उनमेंसे कुछ दिगम्बर हैं तो कुछ व्याघ्रचर्म पहने हुए हैं। सभी उज्ज्वल भस्म तथा मस्तकपर जटा-मुकुट धारण किये हुए हैं॥ ९—१२॥ पर्वतराज! भूतनाथ भगवान् शंकरका ऐश्वर्य अद्भुत है। महाराज! एक बार आप स्वयं चलकर उन्हें मन भरकर देख लीजिये॥ १३॥

इति श्रुत्वा वचस्तेषां हिमवान्पर्वताधिपः।
प्रययौ यत्र विश्वेशस्तपश्चरति दुश्चरम्॥ १४॥



ततः स पूजयामास विश्वेशं भक्तिसंयुतः।
सोऽपि तस्यार्चनं शम्भुः प्रतिजग्राह सादरम्॥ १५॥

ततः सम्पूजितो देवो गिरीन्द्रं प्राह हर्षयन्।
महाराज तव प्रस्थे निर्जनेऽहं समागतः॥ १६॥

तपः कर्तुं महापुण्ये समस्तैः प्रमथैः सह।
त्वमत्र राज्ये पुण्यात्मन् गिरिराज तथा कुरु॥ १७॥

यथा मन्निकटे कोऽपि नैवायाति जनः कदा।
तपोहानिर्भवेत्सङ्गात्तेन सङ्गो भवेन्नहि॥ १८॥

निर्जने क्रियते वासो योगिभिः किल भूधर।
त्वमाश्रयो मुनीन्द्राणां यक्षाणां किन्नरस्य च॥ १९॥

देवानां राक्षसानां च द्विजातीनां च भूधर।
सर्वेषां व्यवहारान्वै ज्ञातवानसि धर्मवित्॥ २०॥

किं तुभ्यमधिकं वच्मि धर्मज्ञोऽसि महामते।
इत्युक्तो गिरिराजं स तूष्णीं भूय महेश्वरः॥ २१॥

स्थितस्तं प्रणयेनाह गिरीन्द्रो विनयान्वितः।
देवदेव जगन्नाथ मद्भाग्यात्समुपस्थितः॥ २२॥

मम प्रस्थे तपः कर्तुं ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभः।
तपस्तमुं निर्जनेऽस्मिन्यथेष्टं जगदीश्वर॥ २३॥

पर्वतोंके अधिपति हिमवान् उन लोगोंकी इस बातको सुनकर वहाँ गये, जहाँ भगवान् विश्वेश्वर कठिन तपस्या कर रहे थे॥ १४॥

उसके बाद हिमवान्ने भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी पूजा की, भगवान् शंकरने भी उनकी पूजा आदरके साथ ग्रहण की॥ १५॥ तदनन्तर विधिपूर्वक पूजित भगवान् शंकरने पर्वतराजको प्रसन्न करते हुए कहा—महाराज! आपके पुण्यमय निर्जन शिखरपर समस्त प्रमथगणोंके साथ मैं तपस्या करने आया हूँ। पुण्यात्मा गिरिराज! आप अपने राज्यमें वैसी व्यवस्था करें जिससे कोई भी व्यक्ति मेरे निकट कभी भी न आ सके। संसर्गसे तपस्याकी हानि होती है, इसलिये भूधर! निश्चय ही योगिजन एकान्तस्थानपर निवास करते हैं, जिससे संग न हो सके॥ १६—१८½॥

भूधर! आप मुनियों, यक्षों, किन्नरों, देवताओं, राक्षसों और द्विजातियोंके आश्रय हैं। धर्मवित्! आप सभीके व्यवहारको जानते हैं। महामते! आप धर्मज्ञ हैं। मैं आपसे अधिक क्या कहूँ? वे महेश्वर गिरिराजसे इतना कहकर चुप हो गये॥ १९—२१॥ उनके स्थिर हो जानेपर गिरिराजने नम्रता और प्रीतिपूर्वक भगवान् शिवसे कहा—देवाधिदेव जगन्नाथ! आप मेरे सौभाग्यसे ही यहाँ आये हैं॥ २२॥ ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा भी मेरे शिखरपर तप करना दुर्लभ है। जगदीश्वर! इस निर्जन स्थानपर आप यथेष्ट तप करनेमें समर्थ हैं॥ २३॥

न मयास्ति समः कश्चिदपि साक्षात्पुरन्दरः।
यथा त्वं मामनुप्राप्तः सगणः काममोहितः॥ २४॥
धन्योऽहं कृतकृत्यश्च न मत्तोऽस्तीह पुण्यवान्॥ २५॥
भगवन्मम प्रस्थेऽस्मिंस्तपसे यदुपस्थितः।
नात्र यास्यति वै कश्चिज्जनस्त्वन्निकटे प्रभो॥ २६॥
तपस्व त्वं महादेव रहस्यत्र यथेप्सितम्।
इत्येवमुक्त्वा गिरिराट् प्रययौ निजमालयम्॥ २७॥
आज्ञापयामास तदा सर्वाञ्जनपदान् गिरिः।
स्वकीयानपि चाहूय सन्नियम्य मुहुर्मुहुः॥ २८॥
गङ्गावतरणप्रस्थं तत्र माहेश्वरं स्थलम्।
न ममाज्ञां विना केन गन्तव्यं महतापि च॥ २९॥
यदि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य कश्चिद्गच्छति तत्स्थलम्।
स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च भविष्यति न संशयः॥ ३०॥
इति तस्याज्ञया भीता देवगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचा राक्षसा वापि मानवाः पशवस्तथा॥ ३१॥
नो यान्ति हिमवत्प्रस्थं यत्रास्ते चन्द्रशेखरः।
निर्जने स महायोगी चचारोग्रं महत्तपः॥ ३२॥
पार्वत्यपि पितुर्गेहे वर्धमाना दिने दिने।
पाणिग्रहणयोग्याभूच्चार्वङ्गी रुचिरानना॥ ३३॥
गिरीन्द्रो नारदोक्तं तद्वाक्यं सञ्चिन्त्य कुत्रचित्।
न चेष्टयति पार्वत्या विवाहार्थं महामतिः॥ ३४॥
तथैकदा जगद्धात्री पार्वती स्वयमेव हि।
पितरौ प्राह यास्यामि तपः कर्तुं शिवान्तिकम्॥ ३५॥

साक्षात् इन्द्र भी मेरे समान नहीं हैं; क्योंकि आप अपने गणोंके साथ अपनी (तपस्याकी) अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये यहाँ पधारे हैं। मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। इस संसारमें मुझसे अधिक कोई पुण्यवान् नहीं है; क्योंकि भगवन्! मेरे इस शिखरपर आप तपस्या करने आये हैं। प्रभो! आपके निकट यहाँ कोई भी व्यक्ति नहीं आयेगा। महादेव! आप यहाँ एकान्तमें इच्छानुसार तप करें॥ २४—२६½॥

गिरिराज इस प्रकार कहकर अपने भवनमें चले गये। हिमालयने अपने अधीनस्थ जनों तथा जनपदमें रहनेवाले अन्य निवासियोंको बुलाकर बार-बार अनुशासित करते हुए आज्ञा दी कि जिस शिखरपर गङ्गाका अवतरण हुआ है, वह स्थान भगवान् महेश्वरका है। मेरी आज्ञाके बिना किसी विशिष्ट व्यक्तिको भी वहाँ नहीं जाना चाहिये। यदि मेरी आज्ञाका उल्लंघन करके कोई व्यक्ति वहाँ जायगा तो वह निश्चय ही दण्डका भागी होगा और वधके योग्य होगा॥ २७—३०॥ उनकी इस आज्ञासे भयभीत देवता, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, राक्षस, मनुष्य तथा पशु हिमालयके उस भूभागपर नहीं जाते थे, जहाँपर भगवान् चन्द्रशेखर विराजमान थे। वे महान् तपस्वी, महायोगी उस निर्जन स्थानपर उग्र तपस्या करने लगे॥ ३१-३२॥ मनोहर अङ्गोंसे युक्त सुमुखी पार्वती भी अपने पिताके घरमें दिन-प्रतिदिन बढ़ते हुए विवाहके योग्य हो गयीं॥ ३३॥ नारदजीके वाक्यका स्मरण करके महामति पर्वतराज हिमवान्ने निश्चिन्त रहते हुए पार्वतीके विवाहके प्रति कोई चेष्टा नहीं की। तब एक दिन जगन्माता पार्वतीने स्वयं ही अपने माता-पितासे कहा—मैं तपस्या करनेके लिये भगवान् शंकरके समीप जाऊँगी।

यदा ब्रह्मा स्वतनयां संध्यां कामविमोहितः।
संधर्षितुं समुद्यातो गगनस्थो हरस्तदा॥ ३६॥
निनिन्द तं मुहुर्देवं ब्रह्माणं जगतः पतिम्।
तदा स लज्जयोपेतो विवर्णवदनो विधिः॥ ३७॥
तपसाराधयामास मां जगन्मोहिनीं शिवाम्।
ततो मयि प्रसन्नायां स वव्रे वाञ्छितं वरम्॥ ३८॥
तत्रैवोवाच मां मातस्त्वं भूत्वा चारुरूपिणी।
मोहयस्व महादेवं संसारविमुखं प्रभुम्॥ ३९॥
त्वामृते तस्य नो काचिद्भविष्यति मनोरमा।
तस्मात्त्वं जन्म सम्प्राप्य भवस्व हरमोहिनी॥ ४०॥

जब काममोहित ब्रह्मा अपनी पुत्री संध्याको धर्षित करनेके लिये उद्यत हुए, उसी समय आकाशमें स्थित भगवान् शंकर संसारके स्वामी उन पितामह ब्रह्माको बार-बार धिक्कारने लगे। तब लज्जित होकर ब्रह्मा म्लानमुख हो गये। वे संसारको मोहित करनेवाली मुझ शिवाकी तपपूर्वक आराधना करने लगे। तदनन्तर मेरे प्रसन्न होनेपर उन्होंने मनोभिलषित वर माँगा। पितामह ब्रह्मा वहीं मुझसे बोले कि माता! आप मनोहर रूप धारण करके संसारसे विमुख हुए प्रभु महादेवको मोहित करें। आपको छोड़कर उनके मनको आकर्षित करनेवाला कोई अन्य नहीं हो सकता; इसलिये आप अवतार लेकर भगवान् शंकरको मोहित करनेवाली होवें॥ ३४—४०॥

कान्ताभिलाषमात्रं मे दृष्ट्वाऽनिन्दन्महेश्वरः।
तेन सम्प्राप्तलज्जोऽहं दुःखी त्वां समुपाश्रितः॥ ४१॥
अनुगृह्णीष्व तन्मे त्वं मोहयस्व महेश्वरम्।
यदा स वै त्यक्तसङ्गो हरः स्थास्यति निर्जने॥ ४२॥
तदैव कामरूपेण मोहयिष्यसि तं शिवम्।
इत्येवं भाषितं तेन याचितं परमेष्ठिना॥ ४३॥
मयाप्यङ्गीकृतं पूर्वं तुष्टया तपसा विधेः।
तेन दक्षगृहे जाता मोहयेऽहं सकृच्च तम्॥ ४४॥
प्राकृतं पुरुषं यादृक् प्राकृता हि वराङ्गना।
दक्षस्य सुकृते क्षीणे युवाभ्यां समुपासिता॥ ४५॥
तद्गृहाद्युवयोर्गेहे जातास्मि हरमोहिनी।
सोऽपि मामेव संलब्धुं तपश्चरति शंकरः॥ ४६॥
सतीविरहदुःखार्तः सुचिरं परमेश्वरः।
तस्मै प्रतिश्रुतमतः पुनः प्राप्स्यामि तं पतिम्॥ ४७॥
तेनाहमनुयास्यामि यत्रास्ते चन्द्रशेखरः।
समस्तैः प्रमथैः सार्धं तपोनिष्ठः सुनिर्जने॥ ४८॥
तत्र स्थित्वा महादेवं मोहयिष्याम्यहं तथा।
यथा योगं परित्यज्य भार्यार्थे मां ग्रहीष्यति॥ ४९॥

स्त्रीप्राप्तिकी मेरी इच्छामात्रको देखकर भगवान् शंकरने मेरी निन्दा की। उससे मैं लज्जित और दुःखी होकर आपके आश्रयमें आया हूँ। इसलिये आप मुझे अनुगृहीत करें और भगवान् शंकरको मोहित करें॥ ४१½॥ जब वे भगवान् शंकर सभी प्रकारके संगका परित्याग कर एकान्तमें निवास करेंगे, उसी समय आप इच्छानुकूल रूप धारणकर उन भगवान् शंकरको मोहित करेंगी॥ ४२½॥

इस प्रकार ब्रह्माका सम्भाषण और याचना सुनकर उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर मैंने उनकी बात पूर्वमें ही मान ली थी। इसलिये दक्षके घरमें सतीके रूपमें जन्म लेकर मैंने एक बार उन्हें उसी प्रकार मोहित किया था, जिस प्रकार सामान्य पुरुषको कोई सुन्दरी स्त्री मोहित करती है॥ ४३-४४½॥ प्रजापति दक्षके पुण्य नष्ट हो जानेपर आप दोनोंने मेरी उपासना की थी, तब दक्षके घरसे मुझ शिवप्रियाने आपके घरमें जन्म लिया है। वे परमेश्वर भगवान् शंकर भी सतीविरहसे पीड़ित होकर मुझे ही प्राप्त करनेके लिये दीर्घकालसे तप कर रहे हैं। मैं उनको वचन दे चुकी हूँ; अतः पुनः उनको ही पतिके रूपमें प्राप्त करूँगी। इसलिये मैं वहीं जाऊँगी; जहाँ भगवान् चन्द्रशेखर सम्पूर्ण प्रमथ गणोंके साथ निर्जन स्थानपर तपस्यामें संलग्न हैं। वहाँ स्थित होकर मैं भगवान् शंकरको उसी प्रकार मोहित करूँगी कि वे तपस्याका परित्याग कर मुझे पत्नीके रूपमें अङ्गीकार करें॥ ४५—४९॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा नारदभाषितम्।
गिरीन्द्रस्तनयां नेतुं प्रार्थितः शिवसन्निधिम्॥ ५० ॥

मनश्चक्रे मुनिश्रेष्ठ सहसैव महामतिः।
मेनाशु पार्वतीं कृत्वा स्वाङ्के साश्रुविलोचना॥ ५१ ॥

रुरोद मुक्तकण्ठी सा सुतामाह मुनीश्वर।
हा मातः प्राणतुल्यासि कमनीयकलेवरा॥ ५२ ॥

मां विहाय कथं तीव्रं काननं गन्तुमर्हसि।
ततस्तां पार्वती प्राह सान्त्वयित्वा मुहुर्मुहुः॥ ५३ ॥

विमृज्य नयने तस्याश्चारुहस्ताम्बुजेन वै।
मातस्त्वं सुमतिर्मेऽर्थे नानुशोचितुमर्हसि॥ ५४ ॥

अशोच्याहं तव सुता ज्ञात्वा किमिति मुह्यसि।
अहं प्रकृतिराद्यास्मि नित्यानन्दमयी स्वयम्॥ ५५ ॥

न मेऽस्ति दुःखं कुत्रापि काननेऽपि गृहेऽपि वा।
अहं श्मशानसंवासा महाकाली शवासना॥ ५६ ॥

न मेऽस्ति निर्जने भीतिर्मातस्त्वं सुस्थिरा भव।
विमोह्य तं महादेवं पुनरायामि निश्चितम्॥ ५७ ॥

अहं प्राप्य पतिं शम्भुं यास्यामि शिवसन्निधिम्।
श्रुत्वैतद्वचनं मेना पार्वत्या भयदं महत्॥ ५८ ॥

उमेति विस्मिता प्राह तेनोमाख्यां जगाम सा।
ततः प्राह गिरिं मेना कन्या मे हरसन्निधिम्॥ ५९ ॥

यदि यास्यति तर्ह्येते सख्यौ यातां तया सह।
साहाय्यं कुरुतामस्याः फलपुष्पादिभिः सदा॥ ६० ॥

श्रुत्वैतद्वचनं गिरिन्द्रदुहितुस्ताभ्यां समं तां सुता-
मात्मीयां गिरिपुङ्गवः समनयच्छ्रीविश्वनाथान्तिकम्।
सर्वे देवगणाः समीक्ष्य चरितं हर्षेण युक्तास्तदा
वृष्टिं पुष्पमयीं महेशविपिने चक्रुः समस्ता मुने॥ ६१ ॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उनकी प्रार्थनापूर्ण वाणीको सुनकर और देवर्षि नारदद्वारा कही गयी बातको स्मरणकर महामति गिरिराज हिमालयने अपनी पुत्रीको भगवान् शंकरके समीप ले जानेके लिये सहसा मन बना लिया॥ ५०½ ॥ मुनीश्वर! मेना आँखमें आँसू भरकर शीघ्र ही पार्वतीको अपनी गोदमें लेकर जोर-जोरसे रोने लगीं और अपनी पुत्रीसे कहने लगीं—हा माता! आप मेरे प्राणके समान प्रिय और कोमलाङ्गी हैं, मुझे छोड़कर आप घोर वनमें क्यों जाना चाहती हैं॥ ५१-५२½ ॥ तदनन्तर पार्वती उनको बार-बार सान्त्वना देकर अपने सुन्दर करकमलसे उनके आँसू पोंछकर कहने लगीं— ॥ ५३½ ॥

माता! आप सुन्दर बुद्धिवाली हैं। आप मेरे लिये चिन्ता न करें। मुझ पुत्रीको अशोचनीय जानकर भी आप क्यों इस प्रकार मोहित हो रही हैं। मैं नित्य आनन्दस्वरूपिणी साक्षात् आद्या प्रकृति हूँ। मुझे घरमें अथवा वनमें कहीं भी दुःख नहीं है। मैं श्मशानमें निवास करनेवाली, महाकाली, शवरूपी आसनपर रहनेवाली हूँ। माता! मुझे किसी भी निर्जन स्थानमें भय नहीं है; आप निश्चिन्त रहें। मैं निश्चित ही उन महादेवको मोहित करके पुनः घर आती हूँ और उन शम्भुको पतिके रूपमें प्राप्त कर भगवान् शंकरके पास चली जाऊँगी॥ ५४—५७½ ॥ मेना पार्वतीका महान् भय देनेवाला यह वचन सुनकर आश्चर्यचकित होकर '**उ-मा**' इस प्रकार बोलीं; इसीसे उनका नाम 'उमा' प्रसिद्ध हो गया॥ ५८½ ॥ तदनन्तर मेना गिरिराज हिमालयसे बोलीं कि यदि मेरी पुत्री भगवान् शंकरके समीप जायगी तो उसके साथ ये दोनों सखियाँ भी जायँ और दोनों फल-पुष्पादिसे सदा इनकी सहायता करें॥ ५९-६० ॥ गिरिराज हिमालय सुमेरुपुत्री मेनाके इस वचनको सुनकर उन दोनों सखियोंके साथ अपनी पुत्री उमाको श्रीविश्वनाथके समीप ले गये। मुने! सभी देवगण गिरिराजके इस कार्यको देखकर हर्षसे युक्त हो गये और वे सभी भगवान् शंकरके काननमें पुष्पवृष्टि करने लगे॥ ६१ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शिवतपोवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'शिवतपवर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका तारकासुरसे पीड़ित देवताओंको भगवान् शंकरके पुत्रद्वारा उसके वधकी बात बतलाना, इन्द्रद्वारा भगवान् शंकरकी तपस्याको भंग करनेके लिये कामदेवको हिमालयपर भेजना, भगवान् शंकरकी नेत्राग्निसे उसका भस्म होना

श्रीमहादेव उवाच

ततो गिरीन्द्रः प्रोवाच महादेवं महामतिः।
प्रणिपत्याग्रतः स्थित्वा विनयेन महामुने॥ १॥

हिमालय उवाच

भगवन्मम पुत्रीयं स्थित्वा त्वत्सन्निधौ शिव।
करिष्यति यथाभीष्टं शुश्रूषणपरायणा॥ २॥

सखीभ्यां सहिता नित्यं फलपुष्पजलादिभिः॥ ३॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः शम्भुर्महायोगी तां ज्ञात्वा ज्ञानचक्षुषा।
भद्रमाह गिरिश्रेष्ठं प्रहृष्टात्मा महामतिः॥ ४॥

ततो गिरीन्द्रः प्रययौ पुनः स्वस्थानमुत्तमम्।
संस्थाप्यैवं महायोगी महेशनिकटे मुने॥ ५॥

इत्येवं प्रार्थिता देवी हरेण तपसा स्वयम्।
संस्थिता विपिने तत्र भक्तानुग्रहतत्परा॥ ६॥

शिवस्तु स्वान्तरस्थां तां ध्यायमानः समुत्सुकः।
जग्राह सहसा नैव भार्यार्थेन महेश्वरीम्॥ ७॥

आत्मेच्छाभून्महादेव्या महादेवविमोहने।
अतो देवाश्च यच्चक्रुस्तच्छृणुष्व महामुने॥ ८॥

तारकेणार्दिता देवाः प्रययुर्ब्रह्मसन्निधिम्।
प्रणिपत्याथ तं प्राहुर्ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ ९॥

शृणु ब्रह्मन् त्रिलोकेश तारकोऽसुरपुङ्गवः।
निर्जित्यास्मान्रणे सर्वान्स्वयमिन्द्रो बभूव ह॥ १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! तदनन्तर अति बुद्धिमान् गिरिराजने भगवान् शंकरके समक्ष दण्डवत् प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा—॥ १॥

हिमालय बोले—भगवन्! शिव! सेवा-शुश्रूषा करनेवाली मेरी यह पुत्री आपके समीपमें रहकर अपनी सखियोंके साथ नित्य फल, पुष्प, जल आदिसे आपके इच्छानुसार सेवा करेगी॥ २-३॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर बुद्धिमान् महायोगी प्रसन्नचित्त भगवान् शम्भुने अपने ज्ञानचक्षुसे उनको तत्त्वतः जानकर गिरिराजसे स्वीकृतिसूचक कल्याण वचन कहा॥ ४॥ मुने! इस प्रकार अपनी पुत्रीको महायोगी भगवान् शंकरके समीप छोड़कर गिरिराज पुनः अपने उत्तम स्थानको चले गये॥ ५॥ इस प्रकार भगवान् शंकरके द्वारा तपस्यापूर्वक जिन देवीकी स्वयं प्रार्थना की गयी थी, भक्तोंपर कृपा करनेवाली वे देवी उस वनमें स्थित हो गयीं॥ ६॥ भगवान् शंकरने ध्यान करते हुए अपने हृदयमें स्थित उन महेश्वरीको उत्सुकतापूर्वक सहसा भार्याके रूपमें मनसे स्वीकार नहीं किया॥ ७॥ महामुने! महादेवी भगवतीके मनमें भगवान् शंकरको मोहित करनेकी इच्छा हुई। इसके निमित्त देवताओंके द्वारा जो उपाय किया गया, उसे सुनिये॥ ८॥ तारकासुरसे पीड़ित होकर सभी देवता ब्रह्माजीके पास गये और प्रणिपातपूर्वक प्रणाम करके जगत्के स्वामी उन ब्रह्माजीसे बोले—॥ ९॥ त्रिलोकेश ब्रह्मन्! सुनिये, असुरोंमें श्रेष्ठ तारकासुर नामक राक्षस युद्धमें हम सभी देवताओंको परास्त करके स्वयं इन्द्र बन गया है। आपका

त्वद्दत्तवरदर्पिष्ठः सर्वानेव दिवौकसः।
भ्रष्टराज्यान्भ्रष्टदारान् स चक्रे तारकोऽसुरः॥ ११॥

इन्द्रश्चन्द्रश्च वरुणो यमोऽग्निर्निर्ऋतिस्तथा।
वायुः कुबेर एतस्य सदाज्ञापरिपालकाः॥ १२॥

यत्र यत्र वयं यामस्तत्र तत्र महासुरः।
पातालमपि सङ्गम्य प्रजाः सम्बाधतेऽनिशम्॥ १३॥

एवं तेन हृतं सर्वं त्रैलोक्यं बलशालिना।
उपायं नहि पश्यामस्त्वामृते त्रिजगत्पते॥ १४॥

वधो वा चिन्त्यतां तस्य स्थानं वा कल्प्यतां च नः।
विधीयतां विधेयं यत्त्वं कर्ता त्रिजगत्पते॥ १५॥

दिया हुआ वरदान पाकर गर्वित उस राक्षस तारकासुरने सभी देवोंको राज्यविहीन एवं भार्याविहीन कर दिया है। इन्द्र, चन्द्रमा, वरुण, यम, अग्नि, निर्ऋति, वायुदेव और कुबेर—ये सभी उसके आज्ञाकारी बने हुए हैं। हमलोग जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ वह पहुँच जाता है। यहाँतक कि पाताललोकमें भी जाकर वह प्रजाओंको निरन्तर पीड़ित करता रहता है। इस प्रकार उस बलवान्‌के द्वारा तीनों लोकोंमें सब कुछ हरण कर लिया गया है। आपके बिना हमलोग इसका कोई उपाय नहीं देख रहे हैं। त्रिजगत्पते! आप उसके वधका उपाय सोचिये अथवा हमलोगोंके रहनेके लिये कोई स्थान बनाइये। त्रिजगत्पते! आप ही सृष्टिके कर्ता हैं; जो उचित लगे वही कीजिये॥ १०—१५॥

ब्रह्मोवाच

ममैव वरदानेन वर्धितस्तारकासुरः।
न तस्य मरणे चेष्टा युज्यते समरे मम॥ १६॥

प्रतीकारस्तु युष्माकं कर्तव्यः सर्वथा मया।
किंतु सम्यक् न शक्नोमि तपसा तोषितो यतः॥ १७॥

उपदेशं ब्रवीम्येकं शृणुध्वं सुरसत्तमाः।
न हरिर्न हरो नाहं न यूयं तस्य घातकाः॥ १८॥

ऋते महेशतनयं न हन्ता तस्य विद्यते।
ततो यथा महादेवः शीघ्रं दारपरिग्रहम्॥ १९॥

करोति संत्यजन्योगं चिन्तां तत्कुरुत द्रुतम्।
हिमालयगृहे जाता लीलया प्रकृतिः स्वयम्॥ २०॥

सापि तिष्ठति देवस्य महेशस्याग्रतो वने।
तां ग्रहीष्यति सोऽवश्यं भार्यात्वेन महेश्वरः॥ २१॥

ततोऽचिरान्महेशस्य ध्यानभङ्गो यथा भवेत्।
तथा यतध्वं त्रिदशा महादेवविमोहने॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—मेरे ही वरदानसे तारकासुर बलवान् हुआ है। इसलिये युद्धमें उसको मारनेका मेरा प्रयत्न उचित नहीं है। आपलोगोंका संरक्षण भी मेरा कर्तव्य ही है, किंतु मैं समुचितरूपसे उसे करनेमें समर्थ नहीं हूँ; क्योंकि उसने मुझे अपनी तपस्याद्वारा प्रसन्न कर रखा है। देवश्रेष्ठो! मैं एक उपाय बतलाता हूँ; आपलोग ध्यानसे सुनें। उस तारकासुरको न भगवान् विष्णु मार सकते हैं, न भगवान् शंकर, न मैं और न ही आपलोग। भगवान् शंकरके पुत्रको छोड़कर उसे मारनेवाला अन्य कोई नहीं है। आपलोग शीघ्र वैसा उपाय सोचिये जिससे कि भगवान् शंकर तपस्याको छोड़कर शीघ्र विवाह कर लें॥ १६—१९½॥
प्रकृति स्वयं अपनी लीलासे गिरिराजके घरमें उत्पन्न हुई हैं। वे भी वनमें भगवान् शंकरके सामने विद्यमान हैं। वे भगवान् शंकर उनको पत्नीके रूपमें अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे। इसलिये देवगणो! जिस प्रकार शीघ्र ही भगवान् शंकरका ध्यान भंग हो जाय; आप सभी भगवान् शंकरको मोहित करनेके लिये उस प्रकारका ही प्रयत्न करें॥ २०—२२॥

श्रीमहादेव उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
प्रययुस्त्रिदशाः सर्वे स्वस्वस्थानं महामुने॥ २३॥

ब्रह्मापि त्रिदशानेवमुक्त्वैव सहसाभ्ययात्।
तारकस्यालयं तं च वचनं सोऽब्रवीदिदम्॥ २४॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! उस परमात्मा ब्रह्माकी इस प्रकारकी बातको सुनकर सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। पितामह ब्रह्मा भी सभी देवताओंसे इस प्रकारकी बात कहकर अचानक उस तारकासुरके घर पहुँचे और उससे इस प्रकार बोले—॥ २३-२४॥

ब्रह्मोवाच

भोस्तारक समस्तानि जगन्ति परिशाधि च।
तदर्थं हि तपस्तप्तं मया चोक्तं तथैव हि॥ २५॥

स्वर्लोके चाधिवसतिः प्रार्थिता नापि वै त्वया।
न मयापि च ते स्वर्गो वासमुक्तश्चिरं क्वचित्॥ २६॥

तस्मात्स्वर्गं परित्यज्य स्थित्वा मर्त्ये महासुर।
प्रशाधि सकलं राज्यं ममाज्ञां मा मृषां कुरु॥ २७॥

महादेव उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि महाबलपराक्रमः।
स्वर्गं त्यक्त्वा क्षितौ प्रायात्तारको देवकण्टकः॥ २८॥

तत्रैवेन्द्रमुखा देवाः समागत्य महामुने।
ददत्युपायनं द्रव्यं प्रत्यहं तु तदार्दिताः॥ २९॥

एवं क्षितौ स्थितो दैत्यः समस्तांस्त्रिदिवौकसः।
तापयामास दुर्धर्षमहाबलपराक्रमः॥ ३०॥

ततस्ते त्रिदशाः सर्वे सहिता निर्जने स्थले।
महादेवविमोहार्थं मन्त्राय समुपाविशन्॥ ३१॥

इन्द्रः सुरगुरुं प्राज्ञं सम्बोध्य विनयान्वितः।
प्रोवाच वचनं देवसभायां क्षेमकारणम्॥ ३२॥

इन्द्र उवाच

भगवन् दानवेन्द्रस्य तारकस्य दुरात्मनः।
विधिना कल्पितो मृत्युर्महादेवात्मजाद्गुरो॥ ३३॥

स तु विश्वेश्वरो योगी संसारविमुखः स्वयम्।
कस्तस्याग्रे वदेद्भार्यां गृहाण परमेश्वर॥ ३४॥

ब्रह्मणा कथितं यत्नं कर्तुं तस्य विमोहने।
तत्रोपायं न पश्यामि कस्तं सम्मोहयिष्यति॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—तारक! तुम समस्त लोकोंका शासन करो। उसके लिये तुमने तपस्या की थी और मैंने भी वही वरदान दिया था। तुमने स्वर्गमें निवास करनेके लिये प्रार्थना नहीं की थी और मैंने भी नहीं कहा था कि तुम अधिक दिनोंतक स्वर्गमें निवास करो। इसलिये महासुर! तुम स्वर्ग छोड़कर मृत्युलोकमें रहकर समस्त लोकोंपर शासन करो। मेरी आज्ञाका उल्लंघन मत करो॥ २५—२७॥

महादेवजी बोले—पितामह ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार कहनेपर महान् बल एवं पराक्रमशाली वह देवशत्रु तारकासुर स्वर्गलोक छोड़कर मृत्युलोकमें पहुँच गया। महामुने! तब उससे पीड़ित इन्द्रादि प्रमुख देवता वहीं आकर प्रतिदिन उसको उपहारद्रव्य देते रहे। इस प्रकार पृथ्वीपर रहते हुए अत्याचारी, महान् बल एवं पराक्रमशाली वह दुर्धर्ष दैत्य सभी देवताओंको संत्रस्त करने लगा॥ २८—३०॥ तदनन्तर वे सभी देवता भगवान् शंकरको मोहित करनेके लिये एकान्त स्थानपर विचार करनेहेतु बैठे। इन्द्रने विनयपूर्वक बुद्धिमान् देवगुरु बृहस्पतिको सम्बोधित करते हुए देवताओंकी सभामें उनसे सभीके कल्याणका उपाय पूछा॥ ३१-३२॥

इन्द्र बोले—भगवन् गुरुदेव! दानवोंमें श्रेष्ठ दुरात्मा तारकासुरकी मृत्यु ब्रह्माजीने भगवान् शंकरके पुत्रद्वारा निर्धारित की है। वे भगवान् विश्वेश्वर स्वयं संसारसे विमुख होकर योगमें रत हैं, फिर कौन उनके सामने जाकर बोलेगा कि परमेश्वर! भार्या ग्रहण कीजिये। पितामह ब्रह्माजीने उनको मोहित करनेके लिये यत्न करनेको कहा है। मुझे उसका कोई उपाय नहीं दीखता फिर कौन उन्हें सम्मोहित करेगा?॥ ३३—३५॥



बृहस्पतिरुवाच

उपायोऽस्ति महाराज महादेवविमोहने।
भविष्यत्यचिरेणैव ध्यानभङ्गो महेशितुः॥ ३६॥

या दक्षतनया देवी महेशगृहिणी स्वयम्।
सा जाता मेनकागर्भे हिमालयसुताधुना॥ ३७॥

तामेव पत्नीं संलब्धुं विश्वेशस्तपसि स्थितः।
संध्याय परमं रूपं तस्या एव महामते॥ ३८॥

अन्यथा देवदेवस्य सर्वथा विजितात्मनः।
किं कार्यं तपसोग्रेण योगिध्येयस्य विद्यते॥ ३९॥

सापि तुष्टा महेशस्य निकटं समुपागता।
स्थिता चाऽविरतं शम्भोरन्तिके भक्तवत्सला॥ ४०॥

कामादयो महेशस्य चिरं योगविचिन्तनात्।
विनष्टास्तेन शम्भुस्तां न गृह्णाति कदाचन॥ ४१॥

तस्मात्कुसुमधन्वानं सर्वलोकविमोहनम्।
समाहूय महेशस्य ध्यानभङ्गे नियोजय॥ ४२॥

तस्येषुणा हि विद्धस्तु योगचिन्तापराङ्मुखः।
ग्रहीष्यति पुनः पत्नीं पार्वतीमचिरेण वै॥ ४३॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो गुरुणा तेन देवराजो महामतिः।
आहूय पुष्पधन्वानं वचनं चेदमब्रवीत्॥ ४४॥

इन्द्र उवाच

काम त्वं देवगन्धर्वनरकिन्नररक्षसाम्।
तथान्येषां च जन्तूनां सदा प्रीतिविवर्धकः॥ ४५॥

त्वमेकं मे महाकार्यं त्रैलोक्यप्रीतिवर्धनम्।
कृत्वा जगदिदं सर्वं परिरक्ष ममाज्ञया॥ ४६॥

बृहस्पतिजी बोले—महाराज! महादेवजीको मोहित करनेके लिये एक उपाय है; जिससे भगवान् शंकरका ध्यान शीघ्र ही भंग हो जायगा। प्रजापति दक्षकी पुत्री जो स्वयं भगवान् शंकरकी गृहिणी रह चुकी हैं, वे ही इस समय मेनकाके गर्भसे गिरिराजकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुई हैं। महामते! उनके ही परम रूपका ध्यान करके उनको पत्नीके रूपमें प्राप्त करनेके लिये भगवान् विश्वनाथ तपस्या कर रहे हैं। नहीं तो योगियोंके द्वारा ध्यानगम्य उन सर्वथा विजितात्मा देवाधिदेवके लिये इस उग्र तपस्याका और क्या प्रयोजन है?॥ ३६—३९॥ भक्तोंका कल्याण करनेवाली वे देवी भी प्रसन्न होकर भगवान् विश्वनाथके निकट चली आयी हैं और निरन्तर वहीं रह रही हैं। चिरकालतक योगचिन्तन करनेसे भगवान् विश्वनाथके काम आदि भाव नष्ट हो गये हैं। इसी कारण वे शम्भु उन पार्वतीको कभी भी ग्रहण नहीं करते हैं। इसलिये सभी लोकोंको मोहित करनेवाले पुष्पधन्वा कामदेवको बुलाकर भगवान् विश्वनाथका ध्यान भंग करनेके लिये नियुक्त कीजिये। उसके बाणसे बिद्ध होकर भगवान् शंकर तपस्यासे विमुख होकर पुनः पार्वतीको शीघ्र ही पत्नीरूपमें स्वीकार कर लेंगे॥ ४०—४३॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवगुरु बृहस्पतिके ऐसा कहनेपर अति बुद्धिमान् देवराज इन्द्रने पुष्पधन्वा कामदेवको बुलाकर यह वचन कहा—॥ ४४॥

इन्द्र बोले—कामदेव! आप देवता, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर, राक्षस तथा अन्य सभी जन्तुओंके हृदयमें प्रेमात्मक वृत्तिको बढ़ानेवाले हैं। आप मेरी आज्ञासे तीनों लोकोंमें प्रीतिविवर्धक मेरा एक महान् कार्य करके इस सम्पूर्ण संसारकी रक्षा कीजिये॥ ४५-४६॥

कामदेव उवाच

त्वदाज्ञापालकाः सर्वे वयं देवगणाधिप।
किं कार्यं भवतो भीमं करिष्येऽपि सुदारुणम्॥ ४७॥

यस्य वक्षसि ते वज्रं विष्णुचक्रं च शीर्यते।
तं भिन्दन्ति शराः पञ्च मम पुष्पमयाः क्षणात्॥ ४८॥

इमे च तादृशाः पञ्च बाणा मेऽव्यर्थसंज्ञकाः।
तथा पुष्पमयं चापं ब्रह्माण्डक्षोभकारकम्॥ ४९॥

मन्त्री वसन्तः पवनो यन्ता मलयसम्भवः।
मित्रं शशाङ्कः पत्नी मे रतिस्त्रैलोक्यमोहिनी॥ ५०॥

एतान्सहायान्सम्प्राप्य कस्य किं कर्तुमक्षमः।
अपि विश्वेश्वरं देवं योगचिन्तापरायणम्॥ ५१॥

जितेन्द्रियं मोहयेयं क्षणार्धे यदि मन्यसे॥ ५२॥

इन्द्र उवाच

यदर्थं त्वं समानीतस्तत्त्वं हि स्वयमुक्तवान्।
प्राज्ञेषु वचनापेक्षा प्रायशो नैव विद्यते॥ ५३॥

तारकः सकलान्देवान्बाधतेऽहर्निशं बलात्।
ज्ञायते तत्त्वया चापि तत्किं ते प्रवदाम्यहम्॥ ५४॥

ब्रह्मणा कल्पितो मृत्युस्तस्य नूनं महात्मनः।
महेशतनयस्यैव हस्तान्नान्यस्य कस्यचित्॥ ५५॥



कामदेव बोले—देवराज! हम सभी आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। कहिये, आपका कौन-सा कार्य है? भयानक तथा अत्यन्त कठिन होनेपर भी मैं उसे करूँगा। आपका वज्र तथा भगवान् विष्णुका सुदर्शन चक्र भी जिस वक्ष:स्थलको वेध नहीं पाता, उसको मेरे पाँच पुष्पबाण पलभरमें छिन्न-भिन्न कर देते हैं। इस प्रकारके मेरे ये पाँच बाण सार्थक नामवाले हैं तथा मेरा पुष्पमय धनुष भी समस्त ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेमें समर्थ है। वसन्त-ऋतु मेरा मन्त्री, मलय पर्वतसे चलनेवाला पवन मेरा सारथि, चन्द्रमा मित्र और तीनों लोकोंको मोहित करनेवाली रति मेरी पत्नी है। इन सहायकोंको पाकर मैं किसका क्या नहीं कर सकता? यहाँतक कि यदि आप चाहें तो तपस्यामें लगे हुए जितेन्द्रिय भगवान् विश्वनाथको भी आधे क्षणमें मोहित कर दूँ॥ ४७—५२॥

इन्द्र बोले—जिस उद्देश्यसे आपको बुलाया गया है, उसे आपने स्वयं ही कह दिया। प्रायः बुद्धिमान् व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके कहनेकी अपेक्षा नहीं रखते। तारकासुर अपने पराक्रमसे सम्पूर्ण देवताओंको दिन-रात पीड़ित कर रहा है। ये बात आप भी जानते हैं, फिर आपसे मैं क्या कहूँ? उसकी मृत्यु ब्रह्माजीने भगवान् शिवके महापराक्रमी पुत्रके हाथसे ही सुनिश्चित की है; अन्य किसीके हाथसे नहीं॥ ५३—५५॥

श्रूयते हिमवत्प्रस्थे तपश्चरति शंकरः।
जितेन्द्रियो महायोगी संसारविमुखः सदा॥ ५६॥

आद्या सनातनी शक्तिः पूर्वं या दक्षकन्यका।
महेशवनिता सैव जाता हिमवतः सुता॥ ५७॥

सापि तस्यान्तिके तस्मिन्प्रस्थे तिष्ठति साम्प्रतम्।
आरूढयौवना देवी स्त्रीरत्नमतिसुन्दरी॥ ५८॥

तां नेहते महादेवो मनसापि कदाचन।
योगचिन्तापरं तत्त्वं मोहयाशु ममाज्ञया॥ ५९॥

यथा सत्यां सानुरागो रेमे स वृषभध्वजः।
तथा गिरिजया सार्धं रमेत योगमुत्सृजन्॥ ६०॥

तथा विधत्स्व लोकानां हिताय कुसुमायुध।
त्वत्प्रसादादिमे देवा भवन्तु विगतज्वराः॥ ६१॥

सुस्थानि सन्तु लोकानि स्थावराणि चराणि च॥ ६२॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य वचः कामो देवराजस्य विस्मृतम्।
सस्मार ब्रह्मणा दत्तमपि शापं सुदारुणम्॥ ६३॥

यदा शस्त्रपरीक्षार्थं संध्यां प्रति विधावतः।
अताडयं पुष्पबाणैस्तदा मामशपद्विधिः॥ ६४॥

हरनेत्राग्निनिर्दग्धो भविष्यसि मनोभव।
क्षिप्त्वा तदङ्गे बाणांस्तु देवकार्यानुरोधतः॥ ६५॥

सोऽयं मे समयः प्राप्तः शापकालोऽनिवारितः।
दैवं न पुरुषः कोऽपि शक्तो लङ्घयितुं क्वचित्॥ ६६॥

इति स्मृत्वा विधेः शापं विषण्णोऽपि मनोभवः।
अङ्गीकारवशात्तत्र नान्यथा व्याहरन्मुने॥ ६७॥

उवाच देवराजाहं करिष्ये यत्त्वयोदितम्।
मोहयिष्ये यतात्मानं शिवं परमयोगिनम्॥ ६८॥

किंतु क्रुद्धो महादेवो यदि मां नाशयेत्प्रभो।
तदा देवगणैः सार्धं मदर्थे संयतिष्यसि॥ ६९॥

सुना जाता है कि हमेशा संसारसे विमुख रहनेवाले महायोगी, जितेन्द्रिय भगवान् शंकर हिमालयके शिखरपर तपस्या कर रहे हैं। सनातनी आदिशक्ति जो पहले प्रजापति दक्षकी पुत्री तथा भगवान् शंकरकी पत्नी थीं वे ही हिमालयकी पुत्रीके रूपमें अवतरित हुई हैं। स्त्रीरत्नस्वरूपा अति सुन्दरी, नवयौवना वे देवी भी हिमालयके उसी शिखरपर भगवान् शंकरके समीप ही आजकल स्थित हैं। भगवान् विश्वनाथ उनको कभी मनसे भी नहीं चाहते। इसलिये आप तपोनिष्ठ भगवान् शंकरको मेरी आज्ञासे शीघ्र ही मोहित करें॥ ५६—५९॥ जिस प्रकार वे भगवान् वृषभध्वज सतीके साथ प्रीतिपूर्वक रमण करते थे, उसी प्रकार तपस्याको छोड़कर हिमालयपुत्री गिरिजाके साथ रमण करें। कुसुमायुध! आप संसारकी भलाईके लिये वही उपाय करें ताकि आपकी कृपासे ये सभी देव पीड़ामुक्त हो जायँ और संसारके चर-अचर प्राणी शान्तिपूर्वक रह सकें॥ ६०—६२॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवराज इन्द्रकी इस प्रकारकी बात सुनकर कामदेवने पितामह ब्रह्माद्वारा दिया हुआ घोर शाप जिसे वह भूल गया था, उसका पुनः स्मरण किया। जब ब्रह्माजी अपनी पुत्री संध्याका अनुगमन कर रहे थे उसी समय मैंने अपनी शस्त्रपरीक्षाके लिये अपने पुष्पबाणोंसे उनपर प्रहार किया था, तब उन्होंने मुझे यह शाप दिया था—मनोभव! जब आप देवताओंके कार्यके लिये उन लोगोंके अनुरोधपर बाणोंसे भगवान् शंकरके शरीरपर प्रहार करेंगे, तब उनके नेत्रसे निकली अग्नि आपको जला डालेगी। मेरे शापका वही समय आ गया है, जिसका निवारण करना कठिन है। कोई भी व्यक्ति प्रारब्धका उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं है॥ ६३—६६॥ मुने! ब्रह्माजीके इस शापको यादकर दुःखी होते हुए भी कामदेव इन्द्रकी बातको पूर्वमें अङ्गीकार कर लेनेके कारण अन्यथा कुछ नहीं कह सके। उन्होंने कहा—देवराज! जो आपने कहा है, उसे मैं करूँगा और यतात्मा परम योगी भगवान् शंकरको मोहित करूँगा। किंतु प्रभो! क्रुद्ध होकर यदि भगवान् महादेव मुझे नष्ट कर दें, तब सम्पूर्ण देवताओंके साथ मेरे लिये प्रयत्न कीजियेगा॥ ६७—६९॥

इन्द्रोऽपि तमुवाचाथ समाश्वस्य पुनः पुनः।
त्वदर्थेऽहं यतिष्यामि सर्वैः सुरगणैः सह॥ ७०॥
ततः कामो ययौ शीघ्रं महेशस्य तपोवनम्।
सरतिर्मधुना सार्धं महेन्द्राज्ञाप्रमाणतः॥ ७१॥
तत्र आज्ञापयामास सर्वानेव दिवौकसः।
त्रिदशाधिपतिर्यूयं गच्छताशु ममाज्ञया॥ ७२॥
कामोऽयं देवकार्यार्थं करिष्यति सुदारुणम्।
हरसम्मोहनं कार्यं मम वाक्यप्रचोदितः॥ ७३॥
यूयं कुरुध्वं साहाय्यं यत्र यत्र व्रजेत्स्मरः।
अनुगम्य च तत्रैनं प्रबोधयत मां तदा॥ ७४॥
यदा तु पुष्पधन्वैनं महारुद्रं महौजसम्।
सम्मोहनेन बाणेन सम्मोहयितुमारभेत्॥ ७५॥
आगमिष्याम्यहं तत्र रक्षार्थं पुष्पधन्वनः।
इत्युक्ता देवराजेन त्रिदशाः सर्व एव ते॥ ७६॥
अनुजग्मुः कामदेवरक्षार्थं सुसमाहिताः।
कामः प्रविश्य सहसा महादेवाश्रमं मुने॥ ७७॥
संस्थितो मधुना सार्धं कियत्कालं सह स्त्रिया।
न ददर्श महेशस्य छिद्रं किमपि येन सः॥ ७८॥
प्रविश्यति शरीरेऽस्य कामः सर्वविमोहकः॥ ७९॥
वसन्तागमनात्सर्वे किंशुकाः केसरादयः।
पुष्पिता बहवश्चान्ये तरवो मुनिसत्तम॥ ८०॥
मल्लिका मालती जाती पुष्पिता मालतीलता।
सरांसि च सपद्मानि बभूवुस्तु समागमात्॥ ८१॥
गुञ्जायमानाः कामेन प्रमत्ता मधुरस्वनाः।
द्विरेफमालाः पुष्पेषु विहरन्त्यः परस्परम्॥ ८२॥
ववौ वायुर्मलयजः शैत्यसौगन्ध्यमान्द्यवान्।
सुप्रभोऽभून्निशानाथो देहिनः स्युः समुत्सुकाः॥ ८३॥
तपश्चरन्तः सिद्धाश्च कामेन परिमोहिताः।
शृङ्गारभावमापन्नाः किन्नराद्यास्तथाभवन्॥ ८४॥

देवराज इन्द्रने भी उनको बार-बार आश्वासन देते हुए कहा कि मैं सभी देवताओंके साथ आपके लिये प्रयत्न करूँगा॥ ७०॥ तदनन्तर देवराजकी आज्ञासे रति और वसन्तके साथ कामदेव शीघ्र ही भगवान् शंकरके तपोवनमें पहुँच गये॥ ७१॥ इन्द्रने सभी देवताओंको भी आदेश दिया कि मेरी आज्ञासे आपलोग भी शीघ्र ही वहाँ चले जायँ॥ ७२॥ मेरी बात मानकर ये कामदेव देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेहेतु भगवान् शिवको मोहित करनेका कठिन कार्य करेंगे॥ ७३॥ ये (कामदेव) जिस-जिस स्थानपर जायँगे, आपलोग इनकी सहायता करें और वहाँ-वहाँ इनका अनुगमन करते हुए मुझे उस समय सावधान कर दें जिससे कि जब ये कामदेव अतितेजस्वी भगवान् महारुद्रको अपने सम्मोहन नामक बाणसे मोहित करना आरम्भ करें, तब मैं इनकी रक्षा करनेके लिये वहाँ आ जाऊँगा॥ ७४-७५ $\frac{1}{2}$॥ देवराज इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर वे सभी देवता कामदेवकी रक्षा करनेके लिये एक साथ उनके पीछे-पीछे चल दिये॥ ७६ $\frac{1}{2}$॥ मुने! कामदेव वसन्त-ऋतु और अपनी पत्नी रतिके साथ महादेव भगवान् शिवके आश्रममें प्रवेश कर कुछ समयके लिये स्थित हो गये, किंतु सबको मोहित करनेवाले कामदेवने ऐसा कोई अवसर नहीं पाया, जिससे कि वे उनके शरीरमें प्रवेश कर सकें॥ ७७—७९॥

मुनिश्रेष्ठ! वसन्त-ऋतुके आगमनसे पलाश, केसर आदि तथा अन्य भी बहुत-से वृक्ष पुष्पित हो उठे। इस ऋतुके आनेसे मल्लिका, मालती, जाती (जूही) और मालती-लताओंमें फूल खिल उठे और सरोवरोंमें कमल खिलने लगे। पुष्पोंपर मँडराते हुए भौंरोंके झुण्ड मधुर स्वरसे गुञ्जार करते हुए कामके प्रभावसे परस्पर विहार करते हुए मत्त हो उठे। मलय पर्वतसे उत्पन्न शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा बहने लगी तथा चन्द्रमा कान्तियुक्त हो गया और सभी प्राणी प्रफुल्लित हो उठे। तपस्यामें संलग्न सिद्धगण कामसे मोहित हो गये तथा किन्नर आदि भी उसी प्रकार शृङ्गाररसमें डूब गये। मुनिश्रेष्ठ! इस

ये चान्ये तद्वनस्थाश्च जन्तवो मुनिसत्तम।
ते सर्वे विकला आसन् कामेन परिमोहिताः॥ ८५॥

सविकारा गणाश्चासन्महेशस्य महात्मनः।
नासीत्तथापि रुद्रस्य ध्यानभङ्गो मनागपि॥ ८६॥

निश्चलं शंकरं वीक्ष्य विषण्णश्चापमुद्वहन्।
अग्रेसरोऽभवत्कामस्तदा रत्या निवारितः॥ ८७॥

ज्वलत्कालाग्निसंकाशं कोटिसूर्यसमप्रभम्।
योगचिन्तापरं देवं कः समासादितुं क्षमः॥ ८८॥

एवमिन्द्रवचः श्रुत्वा स्वयमङ्गीकृतं स्मरन्।
सम्मोहनं महेशस्य बाणं धनुषि सन्दधे॥ ८९॥

तदैव वीक्ष्य तं रुद्रं पुनः पश्चाज्जगाम ह॥ ९०॥

एवं निरीक्ष्य तं कामं शिवमोहपराङ्मुखम्।
स्मित्वा महेशमोहार्थं समुत्तस्थौ महेश्वरी॥ ९१॥

महामाया ययेदं हि मोह्यते सकलं जगत्।
सा सखीभ्यां समुत्थाय सम्मुखे संस्थिता यदा॥ ९२॥

तदा ध्यानं परित्यज्य महादेवस्त्रिलोचनः।
उन्मील्य चारुनेत्राणि पार्वतीं स व्यलोकयत्॥ ९३॥

निरीक्ष्य तन्मुखाम्भोजं सुचारुनयनोज्ज्वलम्।
निश्चलाक्षः स्थितः शम्भुः प्रहृष्टात्मा महामनाः॥ ९४॥

एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वैवं चन्द्रशेखरम्।
पुष्पधन्वा पुष्पबाणं समुद्यम्य हरं ययौ॥ ९५॥

इन्द्रोऽपि समयं श्रुत्वा देववक्त्रात्समागतः।
समस्तैस्त्रिदशैः सार्धं गगने संस्थितो रथे॥ ९६॥

प्रथमं प्राहिणोद्बाणं हर्षणं शंकरोरसि।
ततः प्रहृष्टचेताः स पार्वतीं समलोकयत्॥ ९७॥

एतस्मिन्नेव काले तु कामसाहाय्यकारणात्।
मनोज्ञः प्रववौ वायुः शृङ्गारः प्राविशद्धरम्॥ ९८॥

वनमें निवास करनेवाले जो अन्य प्राणी थे, वे सभी काम-वासनासे मोहित होकर बेचैन हो गये। महेश्वर भगवान् शंकरके गण भी विकारयुक्त हो गये, लेकिन भगवान् शंकरका ध्यान किंचित् भी भंग नहीं हुआ॥ ८०—८६॥ निश्चल भगवान् शंकरको देखकर खिन्नचित्त कामदेव धनुष उठाये हुए जैसे ही आगे बढ़े कि रतिने उन्हें रोक लिया और कहा कि जलते हुए कालाग्निके समान, करोड़ों सूर्यकी तरह कान्तिमान् योगनिष्ठ भगवान् विश्वेश्वरके सम्मुख जानेमें कौन समर्थ है!॥ ८७-८८॥ कामदेवने ऐसा सुनकर इन्द्रकी कही बातको स्वयं स्वीकार करनेका स्मरण करके भगवान् शिवको सम्मोहित करनेहेतु बाणको धनुषपर चढ़ाया। उसी समय उन रुद्रावतार भगवान् शंकरको देखकर वह पुनः पीछे हट गया॥ ८९-९०॥ इस प्रकार भगवान् शंकरको सम्मोहित करनेमें विफल उस कामदेवको देखकर जगन्माता महेश्वरी मुसकराकर भगवान् शिवको मोहित करनेके लिये उपस्थित हुईं॥ ९१॥ जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् मोहित किया जाता है, वे महामाया अपनी सखियोंके साथ उठकर भगवान् रुद्रके सामने जाकर जब स्थित हो गयीं, तब भगवान् त्रिलोचन महादेवने ध्यान छोड़कर अपने सुन्दर नेत्रोंको खोलकर उन पार्वतीको देखा॥ ९२-९३॥ प्रसन्नात्मा, महामना भगवान् शंकर सुन्दर नयनोंसे सुशोभित उनके मुखकमलको निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए स्थित हो गये॥ ९४॥

उसी समय निश्चल नयनोंवाले भगवान् चन्द्रशेखरको देखकर पुष्पधन्वा कामदेव पुष्पबाणका संधान करते हुए भगवान् शंकरके समीप पहुँच गये॥ ९५॥ इन्द्र भी देवताओंके मुखसे उचित अवसर उपस्थित होनेकी बात सुनकर वहाँ आ गये और सभी देवताओंके साथ अपने रथपर गगनमण्डलमें स्थित हो गये॥ ९६॥ कामदेवने अपने हर्षण नामक प्रथम बाणसे भगवान् शंकरके वक्षःस्थलपर प्रहार किया, तब प्रफुल्लचित्त होकर उन्होंने जगन्माता पार्वतीको देखा। उसी समय कामदेवकी सहायता करनेके लिये मनमोहक हवा बहने लगी और भगवान् शंकरके हृदयमें शृङ्गाररसका प्रादुर्भाव हुआ॥ ९७-९८॥

ततः पुनः समादाय पुष्पमालाविभूषणम्।
बाणं सम्मोहनं नाम पौष्पे धनुषि सन्दधे॥ ९९ ॥
तदाभूद्दक्षिणे तस्य रतिः परमसुन्दरी।
वामे प्रीतिरभूत्पृष्ठे वसन्तः परमः सुखम्॥ १०० ॥
कामस्तु प्राहिणोद्बाणं जगन्मोहनकारणम्।
महेशहृदये हृष्टः सर्वदेवस्य पश्यतः॥ १०१ ॥



मोहितस्तेन बाणेन जगन्मोहनकारिणा।
जितेन्द्रियोऽविकारः सन्नुत्सुकः सङ्गमेऽभवत्॥ १०२ ॥
प्रशशंसुस्ततो देवाः कामदेवं मुहुर्मुहुः।
असाध्यं विद्यते नास्य कामस्यात्र जगत्त्रये॥ १०३ ॥
ततः संस्मृत्य विश्वेशस्त्विन्द्रियाणां विनिग्रहम्।
विधाय चिन्तयामास विकारस्यास्य कारणम्॥ १०४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य मनोभवम्।
पौष्पं बाणं धनुः शक्तिं प्राणमाकृष्य तत्क्षणात्॥ १०५ ॥
समुत्सार्य वसन्तं च पुनः स्वस्थानमाययौ।
हरः सञ्चिन्त्य मनसा कामो मामतिवर्तते॥ १०६ ॥
प्रजज्वाल स च क्रोधात्कालानलनिभेक्षणः।
रुषा प्रज्वलितस्यास्य तृतीयनयनात्ततः॥ १०७ ॥
निःससार महानग्निर्दिधक्षुर्जगतीमिव।
तमग्निं वीक्ष्य सम्भूतं भीताः सर्वे दिवौकसः॥ १०८ ॥
उच्चैरूचुर्महादेवं कामरक्षणकारणात्।
प्रभो शिव जगन्नाथ रक्ष रक्ष मनोभवम्॥ १०९ ॥
त्वया यथा नियुक्तोऽयं तथैवासौ समाचरत्।
प्रसीदात्मन्महादेव रक्षास्माकं हितैषिणम्॥ ११० ॥

तब पुनः कामदेवने फूलमालासे सुसज्जित सम्मोहन नामक बाणको पुष्पधनुषपर चढ़ाकर संधान किया। उस समय उनकी परमसुन्दरी पत्नी रति उनके दाहिने भागमें, प्रीति नामक पत्नी वामभागमें तथा सुखदायक ऋतुराज वसन्त पृष्ठभागमें स्थित हो गया॥ ९९-१००॥ सभी देवताओंके देखते-देखते हर्षित कामदेवने जगत्को मोहित करनेवाले बाणसे भगवान् महेश्वरके हृदयमें प्रहार किया। सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाले उस बाणसे आविद्ध जितेन्द्रिय अविकारी भगवान् शंकर भी समागम करनेके लिये उत्सुक हो गये॥ १०१-१०२॥ तब सभी देवताओंने कामदेवकी बार-बार प्रशंसा की कि तीनों लोकोंमें इन कामदेवके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है॥ १०३॥ तब विश्वेश्वर भगवान् शंकर स्मरणपूर्वक इन्द्रियनिग्रह करके सोचने लगे कि इस विकारका कारण क्या है?॥ १०४॥ इस बीच पितामह ब्रह्माने वहाँ आकर कामदेव, उनके पुष्पमय धनुष-बाण, उनकी चेतनशक्ति और ऋतुराज वसन्तको हटा दिया तथा वे पुनः अपने स्थानपर लौट आये॥ १०५½॥ कामदेवने ही मेरा अतिक्रमण किया है—ऐसा मनमें विचार करके कालानलके समान नेत्रोंवाले भगवान् रुद्र क्रोधसे जल उठे। तदनन्तर क्रोधसे दहकते हुए इनके तीसरे नेत्रसे भीषण अग्नि प्रकट हुई, मानो वह सम्पूर्ण संसारको जला डालेगी॥ १०६-१०७½॥

उस अग्निको प्रकट हुआ देखकर डरे हुए सभी देवता कामदेवकी रक्षाके लिये महादेवके प्रति जोर-जोरसे चिल्लाने लगे—प्रभो! शिव! जगन्नाथ! इस कामदेवकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। जिस प्रकार आपने इनको नियुक्त किया है, इन्होंने वैसा ही किया है। महादेव! आप प्रसन्न हों और हमारे हितैषी कामदेवकी रक्षा करें॥ १०८—११०॥

इत्येवं वदतां तेषां हरनेत्रोद्भवोऽनलः।
चकार भस्मसात्कामं सहसा मुनिसत्तम॥ १११॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उन देवताओंके कहते रहनेपर भी भगवान् शंकरके तृतीय नेत्रसे निकली अग्निने सहसा ही कामदेवको भस्मसात् कर दिया॥ १११॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे शिवनारदसंवादे कामदेवभस्मीभवनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत शिव-नारद-संवादमें 'कामदेवभस्मीभवन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

भगवतीका कालीरूपमें भगवान् शंकरको दर्शन देना, भगवान् शंकरद्वारा कालीके चरणकमलोंको हृदयमें धारणकर उनका ध्यान करना तथा सहस्रनाम (ललितासहस्रनामस्तोत्र)-द्वारा देवीकी स्तुति

श्रीमहादेव उवाच

हरनेत्रसमुद्भूतः स वह्निर्न महेश्वरम्।
पुनर्गन्तुं शशाकाथ कदाचिदपि नारद॥ १॥
बभूव वडवारूपस्तापयामास मेदिनीम्।
ततो ब्रह्मा समागत्य वडवारूपिणं च तम्॥ २॥
नीत्वा समुद्रं सम्प्रार्थ्य तत्तोये स्थापयन्मुने।
ययुर्देवा निजं स्थानं कामशोकेन मोहिताः॥ ३॥
समाश्वस्य रतिं स्वामी पुनस्ते जीवितो भवेत्॥ ४॥
अथ प्राह महादेवं पार्वती रुचिरानना।
जगज्जननी स्मित्वा निर्जने तत्र कानने॥ ५॥

श्रीदेव्युवाच

मामाद्यां प्रकृतिं देव लब्धुं पत्नीं महत्तपः।
चिरं करोषि तत्कस्मात्कामोऽयं नाशितस्त्वया॥ ६॥
कामे विनष्टे पत्न्याः किं विद्यते ते प्रयोजनम्।
योगिनामेष धर्मो वै यत्कामस्य विनाशनम्॥ ७॥

श्रीमहादेव उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः शंकरश्चकितस्तदा।
संध्यायन् ज्ञातवानाद्यां प्रकृतिं पर्वतात्मजाम्॥ ८॥
ततो निमील्य नेत्राणि प्रहर्षपुलकान्वितः।
निरीक्ष्य पार्वतीं प्राह सर्वलोकैकसुन्दरीम्॥ ९॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारद! भगवान् शंकरके तृतीय नेत्रसे निकली हुई वह अग्नि पुनः कभी भी उनके पास जा नहीं सकी॥ १॥ मुने! वह अग्नि बडवाके रूपमें होकर सम्पूर्ण पृथ्वीको जलाने लगी। तब ब्रह्माजीने आकर उस बडवारूपिणी अग्निको लेकर समुद्रसे प्रार्थना कर उसके जलमें स्थापित कर दिया। कामदेवके शोकसे मोहित होकर सभी देवता भी अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २-३॥ उस निर्जन काननमें जगन्माता सुमुखी पार्वतीने कामदेवकी पत्नी 'रति' को आश्वासन दिया कि तुम्हारे स्वामी पुनः जीवित हो जायँगे। तदनन्तर उन्होंने भगवान् महादेवसे कहा—॥ ४-५॥

श्रीदेवीजी बोलीं—देव! मुझ आदिशक्ति प्रकृतिको पत्नीके रूपमें पानेके लिये आपने बहुत दिनोंतक कठिन तपस्या की, फिर आपने कामदेवको क्यों नष्ट कर दिया? कामके नष्ट हो जानेपर आपको पत्नीसे क्या प्रयोजन है? कामका नाश करना तो योगियोंका धर्म है॥ ६-७॥

श्रीमहादेवजी बोले—पार्वतीकी इस प्रकारकी वाणीको सुनकर भगवान् शंकर उस समय चकित हो गये और उन्होंने ध्यान करके हिमालयपुत्रीको आद्या प्रकृतिके रूपमें जाना। तब हर्षसे प्रफुल्लित होते हुए उन्होंने आँखें बंद कर लीं और फिर सर्वलोकसुन्दरी पार्वतीको देखकर बोले—॥ ८-९॥

जाने त्वां प्रकृतिं पूर्णामाविर्भूतां स्वलीलया।
त्वामेव लब्धुं ध्यानस्थश्चिरं तिष्ठामि कानने॥ १०॥

अद्याहं कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वां साक्षात्परात्पराम्।
पुरः पश्यामि चार्वङ्गीं सतीमिव मम प्रियाम्॥ ११॥

श्रीदेव्युवाच

तव भावेन तुष्टाहं सम्भूय हिमवद्गृहे।
त्वामेव च पतिं लब्धुं समायाता तवान्तिकम्॥ १२॥

यो मां यादृशभावेन सम्प्रार्थयति भक्तितः।
तस्य तेनैव भावेन पूरयामि मनोरथान्॥ १३॥

अहं सैव सती शम्भो दक्षस्य च महाध्वरे।
विहाय त्वां गता काली भीमा त्रैलोक्यमोहिनी॥ १४॥

शिव उवाच

यदि मे प्राणतुल्यासि सती त्वं चारुलोचना।
तदा यथा महामेघप्रभा सा भीमरूपिणी॥ १५॥

बभूव दक्षयज्ञस्य विनाशाय दिगम्बरी।
काली तथा स्वरूपेण चात्मानं दर्शयस्व माम्॥ १६॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्ता सा हिमसुता शम्भुना मुनिसत्तम।
बभूव पूर्ववत्काली स्निग्धाञ्जनचयप्रभा॥ १७॥

दिगम्बरी क्षरद्रक्ता भीमायतविलोचना।
पीनोन्नतकुचद्वन्द्वचारुशोभितवक्षसा॥ १८॥

गलदापादसंलम्बिकेशपुञ्जभयानका।
ललज्जिह्वाज्वलद्दन्तनखैरुपशोभिता॥ १९॥

उद्यच्छशाङ्कनिचयैर्मेघपङ्क्तिरिवाम्बरे।
आजानुलम्बिमुण्डालिमालयातिविशालया॥ २०॥

राजमाना महामेघपङ्क्तिश्चञ्चलया यथा।
भुजैश्चतुर्भिर्भूयोच्चैः शोभमाना महाप्रभा॥ २१॥

विचित्ररत्नविभ्राजन्मुकुटोज्ज्वलमस्तका।

अपनी लीलासे अवतीर्ण आपको मैं पूर्णा प्रकृतिके रूपमें जानता हूँ। आपको ही प्राप्त करनेके लिये इस निर्जन काननमें बहुत दिनोंसे मैं तपस्यारत हूँ। आज मैं कृतकृत्य हूँ, जो आप साक्षात् परात्पराको सुन्दर अङ्गोंवाली अपनी प्रिया सतीके समान अपने सामने देख रहा हूँ॥ १०-११॥

श्रीदेवीजी बोलीं—आपके सुन्दर प्रेमभावसे सन्तुष्ट हुई मैं गिरिराज हिमवान्के घरमें जन्म लेकर पुनः आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये आपके समीप आयी हूँ। जो जिस भावसे भक्तिपूर्वक मेरी प्रार्थना करता है, मैं उसी भावसे उसके मनोरथ पूर्ण करती हूँ। शम्भो! मैं वही सती हूँ, जो दक्षके महायज्ञमें आपको छोड़कर चली गयी थी। मैं ही काली, भीमा और त्रैलोक्यमोहिनी हूँ॥ १२—१४॥

शिवजी बोले—यदि आप ही मेरी प्राणप्रिया सुलोचना सती हैं तो जिस प्रकार प्रजापति दक्षके महायज्ञके नाशके लिये महामेघके समान कान्तिमती, भयंकररूपिणी, दिगम्बरा कालीके रूपमें प्रकट हुई थीं, अपने उसी स्वरूपको हमें दिखाइये॥ १५-१६॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! भगवान् शम्भुके ऐसा कहनेपर वे गिरिराजपुत्री पूर्वकी भाँति चिकने काजलके समान कान्तिवाली साक्षात् कालीरूपसे प्रकट हो गयीं॥ १७॥ वे दिगम्बरा थीं, उनके शरीरसे रक्त टपक रहा था और उनकी भयानक आँखें फैली हुई थीं, उनके वक्षःस्थलपर पुष्ट, उन्नत उरोज शोभा पा रहे थे, पैरोंतक लटके हुए लम्बे केशपाशसे उनका स्वरूप भयानक प्रतीत होता था, लपलपाती हुई जीभ और चमकते दाँत तथा नखोंसे वे उसी प्रकार सुशोभित थीं, जैसे आकाशमण्डलमें अनेक चन्द्रमाओंके उदय होनेसे मेघमाला सुशोभित हो। घुटनोंतक लटकती हुई अत्यन्त विशाल चञ्चल मुण्डमालासे वे उसी प्रकार सुशोभित हो रही थीं, मानो महामेघोंकी घनघोर घटा छायी हुई हो। चार लम्बी भुजाओंसे वे ज्योतिर्मयी सुशोभित हो रही थीं और नानावर्णोंके रत्नोंसे जटित मुकुटको धारण करनेसे उनका मस्तक शोभायमान था॥ १८—२१½॥

तां विलोक्य महादेवः प्राह गद्गदया गिरा ॥ २२ ॥
रोमाञ्चिततनुर्भक्त्या प्रहृष्टात्मा महामुने।
चिरं त्वद्विरहेणेदं निर्दग्धं हृदयं मम ॥ २३ ॥
त्वमन्तर्यामिनी शक्तिर्हृदयस्था महेश्वरी।
आराध्य त्वत्पदाम्भोजं धृत्वा हृदयपङ्कजे ॥ २४ ॥
त्वद्विच्छेदसमुत्तप्तं हृत्करोमि सुशीतलम् ॥ २५ ॥
इत्युक्त्वा स महादेवो योगं परममास्थितः।
शयितस्तत्पदाम्भोजं दधार हृदये तदा ॥ २६ ॥
ध्यानानन्देन निष्पन्दशवरूपहरः स्थितः।
व्याघूर्णमाननेत्रस्तां ददर्श परमादरः ॥ २७ ॥
अंशतः पुरतः स्थित्वा पञ्चवक्त्रः कृताञ्जलिः।
सहस्रनामभिः कालीं तुष्टाव परमेश्वरीम् ॥ २८ ॥

शिव उवाच

अनाद्या परमा विद्या प्रधाना प्रकृतिः परा।
प्रधानपुरुषाराध्या प्रधानपुरुषेश्वरी ॥ २९ ॥
प्राणात्मिका प्राणशक्तिः सर्वप्राणहितैषिणी।
उमा चोत्तमकेशिन्युत्तमा चोन्मत्तभैरवी ॥ ३० ॥
उर्वशी चोन्नता चोग्रा महोग्रा चोन्नतस्तनी।
उग्रचण्डोग्रनयनामहोग्रदैत्यनाशिनी ॥ ३१ ॥
उग्रप्रभावती चोग्रवेगानुग्रप्रमर्दिनी।
उग्रतारोग्रनयना चोर्ध्वस्थाननिवासिनी ॥ ३२ ॥
उन्मत्तनयनात्युग्रदन्तोत्तुङ्गस्थलालया।
उल्लासिन्युल्लासचित्ता चोत्फुल्लनयनोज्ज्वला ॥ ३३ ॥
उत्फुल्लकमलारूढा कमला कामिनी कला।
काली करालवदना कामिनी मुखकामिनी ॥ ३४ ॥
कोमलाङ्गी कृशाङ्गी च कैटभासुरमर्दिनी।
कालिन्दी कमलस्था च कान्ता काननवासिनी ॥ ३५ ॥
कुलीना निष्कला कृष्णा कालरात्रिस्वरूपिणी।
कुमारी कामरूपा च कामिनी कृष्णपिङ्गला ॥ ३६ ॥
कपिला शान्तिदा शुद्धा शंकरार्धशरीरिणी।
कौमारी कार्तिकी दुर्गा कौशिकी कुण्डलोज्ज्वला ॥ ३७ ॥
कुलेश्वरी कुलश्रेष्ठा कुन्तलोज्ज्वलमस्तका।
भवानी भाविनी वाणी शिवा च शिवमोहिनी ॥ ३८ ॥
शिवप्रिया शिवाराध्या शिवप्राणैकवल्लभा।
शिवपत्नी शिवस्तुत्या शिवानन्दप्रदायिनी ॥ ३९ ॥
नित्यानन्दमयी नित्या सच्चिदानन्दविग्रहा।
त्रैलोक्यजननी शम्भुहृदयस्था सनातनी ॥ ४० ॥

महामुने! रोमाञ्चित शरीरवाले प्रसन्नात्मा भगवान् शंकरने उन्हें देखकर भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें ऐसा कहा— ॥ २२½ ॥ बहुत दिनोंतक आपसे अलग रहनेके कारण यह मेरा हृदय विरहसे दग्ध हो गया है। आप महेश्वरी मेरे हृदयमें रहनेवाली अन्तर्यामिनी शक्ति हैं। आपके चरणकमलोंको मैं अपने हृदयकमलमें धारणकर तथा उनकी आराधना करके आपके विरहसे संतप्त हृदयको पुनः शीतल करूँगा ॥ २३—२५ ॥

परम योगमें स्थित हुए भगवान् शिव ऐसा कहकर भूमिपर लेट गये और उनके चरणकमलको हृदयपर धारण कर लिया। ध्यानके आनन्दमें मग्न शिव चेष्टाशून्य होकर शवरूपमें स्थित हो गये और परम आदरपूर्वक घूर्णित नेत्रोंसे उन्हें देखने लगे। पुनः भगवान् शंकर अपने एक अंशसे पञ्चवक्त्ररूपमें सामने स्थित होकर हाथ जोड़कर सहस्रनामद्वारा परमेश्वरी कालीकी स्तुति करने लगे ॥ २६—२८ ॥

शिवजी बोले—अनाद्या, परमा, विद्या, प्रधाना, प्रकृति, परा, प्रधानपुरुषाराध्या, प्रधानपुरुषेश्वरी, प्राणात्मिका, प्राणशक्ति, सर्वप्राणहितैषिणी, उमा, उत्तमकेशिनी, उत्तमा, उन्मत्तभैरवी, उर्वशी, उन्नता, उग्रा, महोग्रा, उन्नतस्तनी, उग्रचण्डा, उग्रनयना, महोग्रदैत्यनाशिनी, उग्रप्रभावती, उग्रवेगा, अनुग्रप्रमर्दिनी, उग्रतारा, उग्रनयना, ऊर्ध्वस्थाननिवासिनी, उन्मत्तनयना, अत्युग्रदन्ता, उत्तुङ्गस्थलालया, उल्लासिनी, उल्लासचित्ता, उत्फुल्लनयनोज्ज्वला ॥ २९—३३ ॥ उत्फुल्लकमलारूढा, कमला, कामिनी, कला, काली, करालवदना, कामिनी, मुखकामिनी कोमलाङ्गी, कृशाङ्गी, कैटभासुरमर्दिनी, कालिन्दी, कमलस्था, कान्ता, काननवासिनी, कुलीना, निष्कला, कृष्णा, कालरात्रिस्वरूपिणी, कुमारी, कामरूपा, कामिनी, कृष्णपिङ्गला, कपिला, शान्तिदा, शुद्धा, शंकरार्धशरीरिणी, कौमारी, कार्तिकी, दुर्गा, कौशिकी, कुण्डलोज्ज्वला, कुलेश्वरी, कुलश्रेष्ठा, कुन्तलोज्ज्वलमस्तका, भवानी, भाविनी, वाणी, शिवा, शिवमोहिनी, शिवप्रिया, शिवाराध्या, शिवप्राणैकवल्लभा, शिवपत्नी, शिवस्तुत्या, शिवानन्दप्रदायिनी, नित्यानन्दमयी, नित्या, सच्चिदानन्दविग्रहा, त्रैलोक्यजननी, शम्भुहृदयस्था, सनातनी ॥ ३४—४० ॥

सदया निर्दया माया शिवा त्रैलोक्यमोहिनी।
ब्रह्मादित्रिदशाराध्या सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥ ४१ ॥
ब्रह्माणी ब्रह्मगायत्री सावित्री ब्रह्मसंस्तुता।
ब्रह्मोपास्या ब्रह्मशक्तिर्ब्रह्मसृष्टिविधायिनी ॥ ४२ ॥
कमण्डलुकरा सृष्टिकर्त्री ब्रह्मस्वरूपिणी।
चतुर्भुजात्मिका यज्ञसूत्ररूपा दृढव्रता ॥ ४३ ॥
हंसारूढा चतुर्वक्त्रा चतुर्वेदाभिसंस्तुता।
वैष्णवी पालनकरी महालक्ष्मीर्हरिप्रिया ॥ ४४ ॥
शङ्खचक्रधरा विष्णुशक्तिर्विष्णुस्वरूपिणी।
विष्णुप्रिया विष्णुमाया विष्णुप्राणैकवल्लभा ॥ ४५ ॥
योगनिद्राक्षरा विष्णुमोहिनी विष्णुसंस्तुता।
विष्णुसम्मोहनकरी त्रैलोक्यपरिपालिनी ॥ ४६ ॥
शङ्खिनी चक्रिणी पद्मा पद्मिनी मुशलायुधा।
पद्मालया पद्महस्ता पद्ममालाविभूषिता ॥ ४७ ॥
गरुडस्था चारुरूपा सम्पद्रूपा सरस्वती।
विष्णुपार्श्वस्थिता विष्णुपरमाह्लाददायिनी ॥ ४८ ॥
सम्पत्तिः सम्पदाधारा सर्वसम्पत्प्रदायिनी।
श्रीविद्या सुखदा सौख्यदायिनी दुःखनाशिनी ॥ ४९ ॥
दुःखहन्त्री सुखकरी सुखासीना सुखप्रदा।
सुखप्रसन्नवदना नारायणमनोरमा ॥ ५० ॥
नारायणी जगद्धात्री नारायणविमोहिनी।
नारायणशरीरस्था वनमालाविभूषिता ॥ ५१ ॥
दैत्यघ्नी पीतवसना सर्वदैत्यप्रमर्दिनी।
वाराही नारसिंही च रामचन्द्रस्वरूपिणी ॥ ५२ ॥
रक्षोघ्नी काननावासा चाहल्याशापमोचिनी।
सेतुबन्धकरी सर्वरक्षःकुलविनाशिनी ॥ ५३ ॥
सीता पतिव्रता साध्वी रामप्राणैकवल्लभा।
अशोककाननावासा लङ्केश्वरविनाशिनी ॥ ५४ ॥
नीतिः सुनीतिः सुकृतिः कीर्तिर्मेधा वसुन्धरा।
दिव्यमाल्यधरा दिव्या दिव्यगन्धानुलेपना ॥ ५५ ॥

सदया, निर्दया, माया, शिवा, त्रैलोक्यमोहिनी, ब्रह्मादि-त्रिदशाराध्या, सर्वाभीष्टप्रदायिनी, ब्रह्माणी, ब्रह्मगायत्री, सावित्री, ब्रह्मसंस्तुता, ब्रह्मोपास्या, ब्रह्मशक्ति, ब्रह्मसृष्टिविधायिनी, कमण्डलुकरा, सृष्टिकर्त्री, ब्रह्मस्वरूपिणी, चतुर्भुजात्मिका, यज्ञसूत्ररूपा, दृढव्रता, हंसारूढा, चतुर्वक्त्रा, चतुर्वेदाभिसंस्तुता, वैष्णवी, पालनकरी, महालक्ष्मी, हरिप्रिया, शङ्खचक्रधरा, विष्णुशक्ति, विष्णुस्वरूपिणी, विष्णुप्रिया, विष्णुमाया, विष्णुप्राणैकवल्लभा ॥ ४१—४५ ॥ योगनिद्रा, अक्षरा, विष्णुमोहिनी, विष्णुसंस्तुता, विष्णुसम्मोहनकरी, त्रैलोक्यपरिपालिनी, शङ्खिनी, चक्रिणी, पद्मा, पद्मिनी, मुशलायुधा, पद्मालया, पद्महस्ता, पद्ममालाविभूषिता, गरुडस्था, चारुरूपा, सम्पद्रूपा, सरस्वती, विष्णुपार्श्वस्थिता, विष्णुपरमाह्लाददायिनी, सम्पत्ति, सम्पदाधारा, सर्वसम्पत्प्रदायिनी, श्रीविद्या, सुखदा, सौख्यदायिनी, दुःखनाशिनी, दुःखहन्त्री, सुखकरी, सुखासीना, सुखप्रदा, सुखप्रसन्नवदना, नारायणमनोरमा ॥ ४६—५० ॥ नारायणी, जगद्धात्री, नारायणविमोहिनी, नारायणशरीरस्था, वनमालाविभूषिता, दैत्यघ्नी, पीतवसना, सर्वदैत्यप्रमर्दिनी, वाराही, नारसिंही, रामचन्द्रस्वरूपिणी, रक्षोघ्नी, काननावासा, अहल्याशापमोचिनी, सेतुबन्धकरी, सर्वरक्षःकुलविनाशिनी, सीता, पतिव्रता, साध्वी, रामप्राणैकवल्लभा, अशोककाननावासा, लङ्केश्वर-विनाशिनी, नीति, सुनीति, सुकृति, कीर्ति, मेधा, वसुन्धरा, दिव्यमाल्यधरा, दिव्या, दिव्यगन्धानुलेपना ॥ ५१—५५ ॥

दिव्यवस्त्रपरीधाना दिव्यस्थाननिवासिनी।
माहेश्वरी प्रेतसंस्था प्रेतभूमिनिवासिनी॥ ५६॥
निर्जनस्था श्मशानस्था भैरवी भीमलोचना।
सुघोरनयना घोरा घोररूपा घनप्रभा॥ ५७॥
घनस्तनी वरा श्यामा प्रेतभूमिकृतालया।
खट्वाङ्गधारिणी द्वीपिचर्माम्बरसुशोभना॥ ५८॥
महाकाली चण्डवक्त्रा चण्डमुण्डविनाशिनी।
उद्यानकाननावासा पुष्पोद्यानवनप्रिया॥ ५९॥
बलिप्रिया मांसभक्ष्या रुधिरासवभक्षिणी।
भीमरावा साट्टहासा रणनृत्यपरायणा॥ ६०॥
असुरासृक्प्रिया तुष्टा दैत्यदानवमर्दिनी।
दैत्यविद्राविणी दैत्यमथनी दैत्यसूदनी॥ ६१॥
दैत्यघ्नी दैत्यहन्त्री च महिषासुरमर्दिनी।
रक्तबीजनिहन्त्री च शुम्भासुरविनाशिनी॥ ६२॥
निशुम्भहन्त्री धूम्राक्षमर्दिनी दुर्गहारिणी।
दुर्गासुरनिहन्त्री च शिवदूती महाबला॥ ६३॥
महाबलवती चित्रवस्त्रा रक्ताम्बरामला।
विमला ललिता चारुहासा चारुत्रिलोचना॥ ६४॥
अजेया जयदा ज्येष्ठा जयशीलापराजिता।
विजया जाह्नवी दुष्टजृम्भिणी जयदायिनी॥ ६५॥
जगद्रक्षाकरी सर्वजगच्चैतन्यकारिणी।
जया जयन्ती जननी जनभक्षणतत्परा॥ ६६॥
जलरूपा जलस्था च जप्यजापकवत्सला।
जाज्वल्यमाना यज्ञाशा जन्मनाशविवर्जिता॥ ६७॥
जरातीता जगन्माता जगद्रूपा जगन्मयी।
जङ्गमा ज्वालिनी जृम्भास्तम्भिनी दुष्टतापिनी॥ ६८॥
त्रिपुरघ्नी त्रिनयना महात्रिपुरतापिनी।
तृष्णाजातिः पिपासा च बुभुक्षा त्रिपुरप्रभा॥ ६९॥
त्वरिता त्रिपुटा त्र्यक्षा तन्वी तापविवर्जिता।
त्रिलोकेशी तीव्रवेगा तीव्रा तीव्रबलालया॥ ७०॥

दिव्यवस्त्रपरीधाना, दिव्यस्थाननिवासिनी, माहेश्वरी, प्रेतसंस्था, प्रेतभूमिनिवासिनी, निर्जनस्था, श्मशानस्था, भैरवी, भीमलोचना, सुघोरनयना, घोरा, घोररूपा, घनप्रभा, घनस्तनी, वरा, श्यामा, प्रेतभूमिकृतालया, खट्वाङ्गधारिणी, द्वीपिचर्माम्बरसुशोभना, महाकाली, चण्डवक्त्रा, चण्डमुण्डविनाशिनी, उद्यानकाननावासा, पुष्पोद्यानवनप्रिया, बलिप्रिया, मांसभक्ष्या, रुधिरासवभक्षिणी, भीमरावा, साट्टहासा, रणनृत्यपरायणा॥ ५६—६०॥ असुरासृक्प्रिया, तुष्टा, दैत्यदानवमर्दिनी, दैत्यविद्राविणी, दैत्यमथनी, दैत्यसूदनी, दैत्यघ्नी, दैत्यहन्त्री, महिषासुरमर्दिनी, रक्तबीजनिहन्त्री, शुम्भासुरविनाशिनी, निशुम्भहन्त्री, धूम्राक्षमर्दिनी, दुर्गहारिणी, दुर्गासुरनिहन्त्री, शिवदूती, महाबला, महाबलवती, चित्रवस्त्रा, रक्ताम्बरा, अमला, विमला, ललिता, चारुहासा, चारुत्रिलोचना, अजेया, जयदा, ज्येष्ठा, जयशीला, अपराजिता, विजया, जाह्नवी, दुष्टजृम्भिणी, जयदायिनी॥ ६१—६५॥ जगद्रक्षाकरी, सर्वजगच्चैतन्यकारिणी, जया, जयन्ती, जननी, जनभक्षणतत्परा, जलरूपा, जलस्था, जप्यजापकवत्सला, जाज्वल्यमाना, यज्ञाशा, जन्मनाशविवर्जिता, जरातीता, जगन्माता, जगद्रूपा, जगन्मयी, जङ्गमा, ज्वालिनी, जृम्भास्तम्भिनी, दुष्टतापिनी, त्रिपुरघ्नी, त्रिनयना, महात्रिपुरतापिनी, तृष्णाजाति, पिपासा, बुभुक्षा, त्रिपुरप्रभा, त्वरिता, त्रिपुटा, त्र्यक्षा, तन्वी, तापविवर्जिता, त्रिलोकेशी, तीव्रवेगा, तीव्रा, तीव्रबलालया॥ ६६—७०॥

निःशङ्का निर्मलाभा च निरातङ्काऽमलप्रभा।
विनीता विनयाभिज्ञा विशेषज्ञा विलक्षणा॥ ७१॥
वरदा वल्लभा विद्युत्प्रभा विनयशालिनी।
बिम्बोष्ठी विधुवक्त्रा च विवस्त्रा विनयप्रभा॥ ७२॥
विश्वेशपत्नी विश्वात्मा विश्वरूपा बलोत्कटा।
विश्वेशी विश्ववनिता विश्वमाता विचक्षणा॥ ७३॥
विदुषी विश्वविदिता विश्वमोहनकारिणी।
विश्वमूर्तिर्विश्वधरा विश्वेशपरिपालिनी॥ ७४॥
विश्वकर्त्री विश्वहर्त्री विश्वपालनतत्परा।
विश्वेशहृदयावासा विश्वेश्वरमनोरमा॥ ७५॥
विश्वहा विश्वनिलया विश्वमाया विभूतिदा।
विश्वा विश्वोपकारा च विश्वप्राणात्मिकापि च॥ ७६॥
विश्वप्रिया विश्वमयी विश्वदुष्टविनाशिनी।
दाक्षायणी दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी॥ ७७॥
विश्वम्भरी वसुमती वसुधा विश्वपावनी।
सर्वातिशायिनी सर्वदुःखदारिद्र्यहारिणी॥ ७८॥
महाविभूतिरव्यक्ता शाश्वती सर्वसिद्धिदा।
अचिन्त्याऽचिन्त्यरूपा च केवला परमात्मिका॥ ७९॥
सर्वज्ञा सर्वविषया सर्वोपरिपरायणा।
सर्वस्यार्तिहरा सर्वमङ्गला मङ्गलप्रदा॥ ८०॥
मङ्गलार्हा महादेवी सर्वमङ्गलदायिका।
सर्वान्तरस्था सर्वार्थरूपिणी च निरञ्जना॥ ८१॥
चिच्छक्तिश्चिन्मयी सर्वविद्या सर्वविधायिनी।
शान्तिः शान्तिकरी सौम्या सर्वसर्वप्रदायिनी॥ ८२॥
शान्तिः क्षमा क्षेमकरी क्षेत्रज्ञा क्षेत्रवासिनी।
क्षणात्मिका क्षीणतनुः क्षीणाङ्गी क्षीणमध्यमा॥ ८३॥
क्षिप्रगा क्षेमदा क्षिप्ता क्षणदा क्षणवासिनी।
वृत्तिर्निवृत्तिर्भूतानां प्रवृत्तिर्वृत्तलोचना॥ ८४॥
व्योममूर्तिर्व्योमसंस्था व्योमालयकृताश्रया।
चन्द्रानना चन्द्रकान्तिश्चन्द्रार्धाङ्कितमस्तका॥ ८५॥

निःशङ्का, निर्मलाभा, निरातङ्का, अमलप्रभा, विनीता, विनया, अभिज्ञा, विशेषज्ञा, विलक्षणा, वरदा, वल्लभा, विद्युत्प्रभा, विनयशालिनी, बिम्बोष्ठी, विधुवक्त्रा, विवस्त्रा, विनयप्रभा, विश्वेशपत्नी, विश्वात्मा, विश्वरूपा, बलोत्कटा, विश्वेशी, विश्ववनिता, विश्वमाता, विचक्षणा, विदुषी, विश्वविदिता, विश्वमोहनकारिणी, विश्वमूर्ति, विश्वधरा, विश्वेशपरिपालिनी, विश्वकर्त्री, विश्वहर्त्री, विश्वपालनतत्परा, विश्वेशहृदयावासा, विश्वेश्वरमनोरमा॥ ७१—७५॥

विश्वहा, विश्वनिलया, विश्वमाया, विभूतिदा, विश्वा, विश्वोपकारा, विश्वप्राणात्मिका, विश्वप्रिया, विश्वमयी, विश्वदुष्टविनाशिनी, दाक्षायणी, दक्षकन्या, दक्षयज्ञविनाशिनी, विश्वम्भरी, वसुमती, वसुधा, विश्वपावनी, सर्वातिशायिनी, सर्वदुःखदारिद्र्यहारिणी, महाविभूति, अव्यक्ता, शाश्वती, सर्वसिद्धिदा, अचिन्त्या, अचिन्त्यरूपा, केवला, परमात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वविषया, सर्वोपरिपरायणा, सर्वस्यार्तिहरा, सर्वमङ्गला, मङ्गलप्रदा॥ ७६—८०॥ मङ्गलार्हा, महादेवी, सर्वमङ्गलदायिका, सर्वान्तरस्था, सर्वार्थरूपिणी, निरञ्जना, चिच्छक्ति, चिन्मयी, सर्वविद्या, सर्वविधायिनी, शान्ति, शान्तिकरी, सौम्या, सर्वसर्वप्रदायिनी, शान्ति, क्षमा, क्षेमकरी, क्षेत्रज्ञा, क्षेत्रवासिनी, क्षणात्मिका, क्षीणतनु, क्षीणाङ्गी, क्षीणमध्यमा, क्षिप्रगा, क्षेमदा, क्षिप्ता, क्षणदा, क्षणवासिनी, भूतानां वृत्ति, भूतानां निवृत्ति, भूतानां प्रवृत्ति, वृत्तलोचना, व्योममूर्ति, व्योमसंस्था, व्योमालयकृताश्रया, चन्द्रानना, चन्द्रकान्ति, चन्द्रार्धाङ्कितमस्तका॥ ८१—८५॥

चन्द्रप्रभा चन्द्रकला शरच्चन्द्रनिभानना।
चन्द्रात्मिका चन्द्रमुखी चन्द्रशेखरवल्लभा॥ ८६॥
चन्द्रशेखरवक्षःस्था चन्द्रलोकनिवासिनी।
चन्द्रशेखरशैलस्था चञ्चला चञ्चलेक्षणा॥ ८७॥
छिन्नमस्ता छागमांसप्रिया छागबलिप्रिया।
ज्योत्स्ना ज्योतिर्मयी सर्वज्यायसी जीवनात्मिका॥ ८८॥
सर्वकार्यनियन्त्री च सर्वभूतहितैषिणी।
गुणातीता गुणमयी त्रिगुणा गुणशालिनी॥ ८९॥
गुणैकनिलया गौरी गुह्यगोपकुलोद्भवा।
गरीयसी गुरुरता गुह्यस्थाननिवासिनी॥ ९०॥
गुणज्ञा निर्गुणा सर्वगुणार्हा गुह्यकाम्बिका।
गलज्जटा गलत्केशा गलद्रुधिरचर्चिता॥ ९१॥
गजेन्द्रगमना गन्त्री गीतनृत्यपरायणा।
गमनस्था गयाध्यक्षा गणेशजननी तथा॥ ९२॥
गानप्रिया गानरता गृहस्था गृहिणी परा।
गजसंस्था गजारूढा ग्रसन्ती गरुडासना॥ ९३॥
योगस्था योगिनीगम्या योगचिन्तापरायणा।
योगिध्येया योगिवन्द्या योगलभ्या युगात्मिका॥ ९४॥
योगिज्ञेया योगयुक्ता महायोगेश्वरेश्वरी।
योगानुरक्ता युगदा युगान्तजलदप्रभा॥ ९५॥
युगानुकारिणी यज्ञरूपा सूर्यसमप्रभा।
युगान्तानिलवेगा च सर्वयज्ञफलप्रदा॥ ९६॥
संसारयोनिः संसारव्यापिनी सकलास्पदा।
संसारतरुनिःसेव्या संसारार्णवतारिणी॥ ९७॥
सर्वार्थसाधिका सर्वा संसारव्यापिनी तथा।
संसारबन्धकर्त्री च संसारपरिवर्जिता॥ ९८॥
दुर्निरीक्ष्या सुदुष्प्राप्या भूतिर्भूतिमतीत्यपि।
अत्यन्तविभवारूपा महाविभवरूपिणी॥ ९९॥
शब्दब्रह्मस्वरूपा च शब्दयोनिः परात्परा।
भूतिदा भूतिमाता च भूतिस्तन्द्री विभूतिदा॥ १००॥

चन्द्रप्रभा, चन्द्रकला, शरच्चन्द्रनिभानना, चन्द्रात्मिका, चन्द्रमुखी, चन्द्रशेखरवल्लभा, चन्द्रशेखरवक्षःस्था, चन्द्रलोकनिवासिनी, चन्द्रशेखरशैलस्था, चञ्चला, चञ्चलेक्षणा, छिन्नमस्ता, छागमांसप्रिया, छागबलिप्रिया, ज्योत्स्ना, ज्योतिर्मयी, सर्वज्यायसी, जीवनात्मिका, सर्वकार्यनियन्त्री, सर्वभूतहितैषिणी, गुणातीता, गुणमयी, त्रिगुणा, गुणशालिनी, गुणैकनिलया, गौरी, गुह्यगोपकुलोद्भवा, गरीयसी, गुरुरता, गुह्यस्थाननिवासिनी॥ ८६—९०॥ गुणज्ञा, निर्गुणा, सर्वगुणार्हा, गुह्यकाम्बिका, गलज्जटा, गलत्केशा, गलद्रुधिरचर्चिता, गजेन्द्रगमना, गन्त्री, गीतनृत्यपरायणा, गमनस्था, गयाध्यक्षा, गणेशजननी, गानप्रिया, गानरता, गृहस्था, गृहिणी, परा, गजसंस्था, गजारूढा, ग्रसन्ती, गरुडासना, योगस्था, योगिनीगम्या, योगचिन्तापरायणा, योगिध्येया, योगिवन्द्या, योगलभ्या, युगात्मिका, योगिज्ञेया, योगयुक्ता, महायोगेश्वरेश्वरी, योगानुरक्ता, युगदा, युगान्तजलदप्रभा॥ ९१—९५॥

युगानुकारिणी, यज्ञरूपा, सूर्यसमप्रभा, युगान्तानिलवेगा, सर्वयज्ञफलप्रदा, संसारयोनि, संसारव्यापिनी, सकलास्पदा, संसारतरुनिःसेव्या, संसारार्णवतारिणी, सर्वार्थसाधिका, सर्वा, संसारव्यापिनी, संसारबन्धकर्त्री, संसारपरिवर्जिता, दुर्निरीक्ष्या, सुदुष्प्राप्या, भूति, भूतिमती, अत्यन्तविभवारूपा, महाविभवरूपिणी, शब्दब्रह्मस्वरूपा, शब्दयोनि, परात्परा, भूतिदा, भूतिमाता, भूति, तन्द्री, विभूतिदा॥ ९६—१००॥

भूतान्तरस्था कूटस्था भूतनाथप्रियाङ्गना।
भूतमाता भूतनाथा भूतालयनिवासिनी॥ १०१॥
भूतनृत्यप्रिया भूतसङ्गिनी भूतलाश्रया।
जन्ममृत्युजरातीता महापुरुषसङ्गता॥ १०२॥
भुजगा तामसी व्यक्ता तमोगुणवती तथा।
त्रितत्त्वतत्त्वरूपा च तत्त्वज्ञा तत्त्वकप्रिया॥ १०३॥
त्र्यम्बका त्र्यम्बकरता शुक्ला त्र्यम्बकरूपिणी।
त्रिकालज्ञा जन्महीना रक्ताङ्गी ज्ञानरूपिणी॥ १०४॥
अकार्या कार्यजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंस्थिता।
वैराग्ययुक्ता विज्ञानगम्या धर्मस्वरूपिणी॥ १०५॥
सर्वधर्मविधानज्ञा धर्मिष्ठा धर्मतत्परा।
धर्मिष्ठपालनकरी धर्मशास्त्रपरायणा॥ १०६॥
धर्माधर्मविहीना च धर्मजन्यफलप्रदा।
धर्मिणी धर्मनिरता धर्मिणामिष्टदायिनी॥ १०७॥
धन्या धीर्धारणा धीरा धन्वनी धनदायिनी।
धनुष्मती धरासंस्था धरणिस्थितिकारिणी॥ १०८॥
सर्वयोनिर्विश्वयोनिरपांयोनिरयोनिजा।
रुद्राणी रुद्रवनिता रुद्रैकादशरूपिणी॥ १०९॥
रुद्राक्षमालिनी रौद्री भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
ब्रह्मोपेन्द्रप्रवन्द्या च नित्यं मुदितमानसा॥ ११०॥
इन्द्राणी वासवी चैन्द्री विचित्रैरावतस्थिता।
सहस्रनेत्रा दिव्याङ्गा दिव्यकेशविलासिनी॥ १११॥
दिव्याङ्गना दिव्यनेत्रा दिव्यचन्दनचर्चिता।
दिव्यालङ्करणा दिव्यश्वेतचामरवीजिता॥ ११२॥
दिव्यहारा दिव्यपदा दिव्यनूपुरशोभिता।
केयूरशोभिता हृष्टा हृष्टचित्तप्रहर्षिणी॥ ११३॥
सम्प्रहृष्टमना हर्षप्रसन्नवदना तथा।
देवेन्द्रवन्द्यपादाब्जा देवेन्द्रपरिपूजिता॥ ११४॥
रजसा रक्तनयना रक्तपुष्पप्रिया सदा।
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्तोत्पलविलोचना॥ ११५॥

भूतान्तरस्था, कूटस्था, भूतनाथप्रियाङ्गना, भूतमाता, भूतनाथा, भूतालयनिवासिनी, भूतनृत्यप्रिया, भूतसङ्गिनी, भूतलाश्रया, जन्ममृत्युजरातीता, महापुरुषसङ्गता, भुजगा, तामसी, व्यक्ता, तमोगुणवती, त्रितत्त्वतत्त्वरूपा, तत्त्वज्ञा, तत्त्वकप्रिया, त्र्यम्बका, त्र्यम्बकरता, शुक्ला, त्र्यम्बकरूपिणी, त्रिकालज्ञा, जन्महीना, रक्ताङ्गी, ज्ञानरूपिणी, अकार्या, कार्यजननी, ब्रह्माख्या, ब्रह्मसंस्थिता, वैराग्ययुक्ता, विज्ञानगम्या, धर्मस्वरूपिणी॥ १०१—१०५॥ सर्वधर्मविधानज्ञा, धर्मिष्ठा, धर्मतत्परा, धर्मिष्ठपालनकरी, धर्मशास्त्रपरायणा, धर्मा, अधर्मविहीना, धर्मजन्यफलप्रदा, धर्मिणी, धर्मनिरता, धर्मिणामिष्टदायिनी, धन्या, धी, धारणा, धीरा, धन्वनी, धनदायिनी, धनुष्मती, धरासंस्था, धरणिस्थितिकारिणी, सर्वयोनि, विश्वयोनि, अपांयोनि, अयोनिजा, रुद्राणी, रुद्रवनिता, रुद्रैकादशरूपिणी, रुद्राक्षमालिनी, रौद्री, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, ब्रह्मोपेन्द्रप्रवन्द्या, नित्यं मुदितमानसा॥ १०६—११०॥ इन्द्राणी, वासवी, ऐन्द्री, विचित्रा, ऐरावतस्थिता, सहस्रनेत्रा, दिव्याङ्गा, दिव्यकेशविलासिनी, दिव्याङ्गना, दिव्यनेत्रा, दिव्यचन्दनचर्चिता, दिव्यालङ्करणा, दिव्यश्वेतचामरवीजिता, दिव्यहारा, दिव्यपदा, दिव्यनूपुरशोभिता, केयूरशोभिता, हृष्टा, हृष्टचित्तप्रहर्षिणी, सम्प्रहृष्टमना, हर्षप्रसन्नवदना, देवेन्द्रवन्द्यपादाब्जा, देवेन्द्रपरिपूजिता, रजसा, रक्तनयना, रक्तपुष्पप्रिया, रक्ताङ्गी, रक्तनेत्रा, रक्तोत्पलविलोचना॥ १११—११५॥

रक्ताभा रक्तवस्त्रा च रक्तचन्दनचर्चिता।
रक्तेक्षणा रक्तभक्ष्या रक्तमत्तोरगाश्रया॥ ११६॥
रक्तदन्ता रक्तजिह्वा रक्तभक्षणतत्परा।
रक्तप्रिया रक्ततुष्टा रक्तपानसुतत्परा॥ ११७॥
बन्धूककुसुमाभा च रक्तमाल्यानुलेपना।
स्फुरद्रक्ताञ्चिततनुः स्फुरत्सूर्यशतप्रभा॥ ११८॥
स्फुरन्नेत्रा पिङ्गजटा पिङ्गला पिङ्गलेक्षणा।
बगला पीतवस्त्रा च पीतपुष्पप्रिया सदा॥ ११९॥
पीताम्बरा पिबद्रक्ता पीतपुष्पोपशोभिता।
शत्रुघ्नी शत्रुसम्मोहजननी शत्रुतापिनी॥ १२०॥

रक्ताभा, रक्तवस्त्रा, रक्तचन्दनचर्चिता, रक्तेक्षणा, रक्तभक्ष्या, रक्तमत्ता, उरगाश्रया, रक्तदन्ता, रक्तजिह्वा, रक्तभक्षणतत्परा, रक्तप्रिया, रक्ततुष्टा, रक्तपानसुतत्परा, बन्धूककुसुमाभा, रक्तमाल्या, रक्तानुलेपना, स्फुरद्रक्ताञ्चिततनु, स्फुरत्सूर्यशतप्रभा, स्फुरन्नेत्रा, पिङ्गजटा, पिङ्गला, पिङ्गलेक्षणा, बगला, पीतवस्त्रा, पीतपुष्पप्रिया, पीताम्बरा, पिबद्रक्ता, पीतपुष्पोपशोभिता, शत्रुघ्नी, शत्रुसम्मोहजननी, शत्रुतापिनी॥ ११६—१२०॥

शत्रुप्रमर्दिनी शत्रुवाक्यस्तम्भनकारिणी।
उच्चाटनकरी सर्वदुष्टोत्सारणकारिणी॥ १२१॥
शत्रुविद्राविणी शत्रुसम्मोहनकरी तथा।
विपक्षमर्दनकरी शत्रुपक्षक्षयङ्करी॥ १२२॥
सर्वदुष्टघातिनी च सर्वदुष्टविनाशिनी।
द्विभुजा शूलहस्ता च त्रिशूलवरधारिणी॥ १२३॥
दुष्टसन्तापजननी दुष्टक्षोभप्रवर्धिनी।
दुष्टानां क्षोभसम्बद्धा भक्तक्षोभनिवारिणी॥ १२४॥
दुष्टसन्तापिनी दुष्टसन्तापपरिमर्दिनी।
सन्तापरहिता भक्तसन्तापपरिनाशिनी॥ १२५॥

शत्रुप्रमर्दिनी, शत्रुवाक्यस्तम्भनकारिणी, उच्चाटनकरी, सर्वदुष्टोत्सारणकारिणी, शत्रुविद्राविणी, शत्रुसम्मोहनकरी, विपक्षमर्दनकरी, शत्रुपक्षक्षयङ्करी, सर्वदुष्टघातिनी, सर्वदुष्टविनाशिनी, द्विभुजा, शूलहस्ता, त्रिशूलवरधारिणी, दुष्टसंतापजननी, दुष्टक्षोभप्रवर्धिनी, दुष्टानां क्षोभसम्बद्धा, भक्तक्षोभनिवारिणी, दुष्टसंतापिनी, दुष्टसंतापपरिमर्दिनी, संतापरहिता, भक्तसंतापपरिनाशिनी॥ १२१—१२५॥

अद्वैता द्वैतरहिता निष्कला ब्रह्मरूपिणी।
त्रिदशेशी त्रिलोकेशी सर्वेशी जगदीश्वरी॥ १२६॥
ब्रह्मेशसेवितपदा सर्ववन्द्यपदाम्बुजा।
अचिन्त्यरूपचरिता चाचिन्त्यबलविक्रमा॥ १२७॥
सर्वाचिन्त्यप्रभावा च स्वप्रभावप्रदर्शिनी।
अचिन्त्यमहिमाचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनी॥ १२८॥
अचिन्त्यवेशशोभा च लोकाचिन्त्यगुणान्विता।
अचिन्त्यशक्तिर्दुश्चिन्त्यप्रभावा चिन्त्यरूपिणी॥ १२९॥
योगचिन्त्या महाचिन्तानाशिनी चेतनात्मिका।
गिरिजा दक्षजा विश्वजनयित्री जगत्प्रसूः॥ १३०॥

अद्वैता, द्वैतरहिता, निष्कला, ब्रह्मरूपिणी, त्रिदशेशी, त्रिलोकेशी, सर्वेशी, जगदीश्वरी, ब्रह्मेशसेवितपदा, सर्ववन्द्यपदाम्बुजा, अचिन्त्यरूपचरिता, अचिन्त्यबलविक्रमा, सर्वाचिन्त्यप्रभावा, स्वप्रभावप्रदर्शिनी, अचिन्त्यमहिमा, अचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनी, अचिन्त्यवेशशोभा, लोकाचिन्त्यगुणान्विता, अचिन्त्यशक्ति, दुश्चिन्त्यप्रभावा, चिन्त्यरूपिणी, योगचिन्त्या, महाचिन्तानाशिनी, चेतनात्मिका, गिरिजा, दक्षजा, विश्वजनयित्री, जगत्प्रसू॥ १२६—१३०॥

संनम्या प्रणता सर्वप्रणतार्तिहरा तथा।
प्रणतैश्वर्यदा सर्वप्रणताशुभनाशिनी॥ १३१॥
प्रणतापन्नाशकरी प्रणताशुभमोचनी।
सिद्धेश्वरी सिद्धसेव्या सिद्धचारणसेविता॥ १३२॥
सिद्धिप्रदा सिद्धिकरी सर्वसिद्धगणेश्वरी।
अष्टसिद्धिप्रदा सिद्धगणसेव्यपदाम्बुजा॥ १३३॥
कात्यायनी स्वधा स्वाहा वषड्वौषट्स्वरूपिणी।
पितॄणां तृप्तिजननी कव्यरूपा सुरेश्वरी॥ १३४॥
हव्यभोक्त्री हव्यतुष्टा पितृरूपाऽसितप्रिया।
कृष्णपक्षप्रपूज्या च प्रेतपक्षसमर्पिता॥ १३५॥
अष्टहस्ता दशभुजा चाष्टादशभुजान्विता।
चतुर्दशभुजाऽसंख्यभुजवल्लीविराजिता॥ १३६॥
सिंहपृष्ठसमारूढा सहस्रभुजराजिता।
भुवनेशी चान्नपूर्णा महात्रिपुरसुन्दरी॥ १३७॥
त्रिपुरा सुन्दरी सौम्यमुखी सुन्दरलोचना।
सुन्दरास्या शुभदंष्ट्रा सुभ्रूः पर्वतनन्दिनी॥ १३८॥
नीलोत्पलदलश्यामा स्मेरोत्फुल्लमुखाम्बुजा।
सत्यसंधा पद्मवक्त्रा भ्रूकुटीकुटिलानना॥ १३९॥
विद्याधरी वरारोहा महासंध्यास्वरूपिणी।
अरुन्धती हिरण्याक्षी सुधूम्राक्षी शुभेक्षणा॥ १४०॥
श्रुतिः स्मृतिः कृतिर्योगमाया पुण्या पुरातनी।
वाग्देवता वेदविद्या ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी॥ १४१॥
वेदशक्तिर्वेदमाता वेदाद्या परमागतिः।
आन्वीक्षिकी तर्कविद्या योगशास्त्रप्रकाशिनी॥ १४२॥
धूमावती वियन्मूर्तिर्विद्युन्मालाविलासिनी।
महाव्रता सदानन्दनन्दिनी नगनन्दिनी॥ १४३॥
सुनन्दा यमुना चण्डी रुद्रचण्डी प्रभावती।
पारिजातवनावासा पारिजातवनप्रिया॥ १४४॥
सुपुष्पगन्धसंतुष्टा दिव्यपुष्पोपशोभिता।
पुष्पकाननसद्वासा पुष्पमालाविलासिनी॥ १४५॥

संनम्या, प्रणता, सर्वप्रणतार्तिहरा, प्रणतैश्वर्यदा, सर्वप्रणता-अशुभनाशिनी, प्रणतापन्नाशकरी, प्रणताशुभमोचनी, सिद्धेश्वरी, सिद्धसेव्या, सिद्धचारणसेविता, सिद्धिप्रदा, सिद्धिकरी, सर्वसिद्धगणेश्वरी, अष्टसिद्धिप्रदा, सिद्धगणसेव्यपदाम्बुजा, कात्यायनी, स्वधा, स्वाहा, वषड्वौषट्स्वरूपिणी, पितॄणां तृप्तिजननी, कव्यरूपा, सुरेश्वरी, हव्यभोक्त्री, हव्यतुष्टा, पितृरूपा, असितप्रिया, कृष्णपक्षप्रपूज्या, प्रेतपक्षसमर्पिता॥ १३१—१३५॥ अष्टहस्ता, दशभुजा, अष्टादशभुजान्विता, चतुर्दशभुजा, असंख्यभुजवल्लीविराजिता, सिंहपृष्ठसमारूढा, सहस्रभुजराजिता, भुवनेशी, अन्नपूर्णा, महात्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरा, सुन्दरी, सौम्यमुखी, सुन्दरलोचना, सुन्दरास्या, शुभदंष्ट्रा, सुभ्रू, पर्वतनन्दिनी, नीलोत्पलदलश्यामा, स्मेरोत्फुल्लमुखाम्बुजा, सत्यसंधा, पद्मवक्त्रा, भ्रूकुटीकुटिलानना, विद्याधरी, वरारोहा, महासंध्यास्वरूपिणी, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, सुधूम्राक्षी, शुभेक्षणा॥ १३६—१४०॥ श्रुति, स्मृति, कृति, योगमाया, पुण्या, पुरातनी, वाग्देवता, वेदविद्या, ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी, वेदशक्ति, वेदमाता, वेदाद्या, परमागति, आन्वीक्षिकी, तर्कविद्या, योगशास्त्र-प्रकाशिनी, धूमावती, वियन्मूर्ति, विद्युन्मालाविलासिनी, महाव्रता, सदानन्दनन्दिनी, नगनन्दिनी, सुनन्दा, यमुना, चण्डी, रुद्रचण्डी, प्रभावती, पारिजातवनावासा, पारिजातवनप्रिया, सुपुष्पगन्धसंतुष्टा, दिव्यपुष्पोपशोभिता, पुष्पकाननसद्वासा, पुष्पमालाविलासिनी॥ १४१—१४५॥

पुष्पमाल्यधरा पुष्पगुच्छालङ्कृतदेहिका।
प्रतप्तकाञ्चनाभासा शुद्धकाञ्चनमण्डिता॥ १४६॥
सुवर्णकुण्डलवती स्वर्णपुष्पप्रिया सदा।
नर्मदा सिन्धुनिलया समुद्रतनया तथा॥ १४७॥
षोडशी षोडशभुजा महाभुजगमण्डिता।
पातालवासिनी नागी नागेन्द्रकृतभूषणा॥ १४८॥
नागिनी नागकन्या च नागमाता नगालया।
दुर्गापत्तारिणी दुर्गदुष्टग्रहनिवारिणी॥ १४९॥
अभयापन्निहन्त्री च सर्वापत्परिनाशिनी।
ब्रह्मण्या श्रुतिशास्त्रज्ञा जगतां कारणात्मिका॥ १५०॥
निष्कारणा जन्महीना मृत्युञ्जयमनोरमा।
मृत्युञ्जयहृदावासा मूलाधारनिवासिनी॥ १५१॥
षट्चक्रसंस्था महती महोत्सवविलासिनी।
रोहिणी सुन्दरमुखी सर्वविद्याविशारदा॥ १५२॥
सदसद्वस्तुरूपा च निष्कामा कामपीडिता।
कामातुरा काममत्ता काममानससत्तनुः॥ १५३॥
कामरूपा च कालिन्दी कचालम्बितविग्रहा।
अतसीकुसुमाभासा सिंहपृष्ठनिषेदुषी॥ १५४॥
युवती यौवनोद्रिक्ता यौवनोद्रिक्तमानसा।
अदितिर्देवजननी त्रिदशार्तिविनाशिनी॥ १५५॥
दक्षिणाऽपूर्ववसना पूर्वकालविवर्जिता।
अशोका शोकरहिता सर्वशोकनिवारिणी॥ १५६॥
अशोककुसुमाभासा शोकदुःखक्षयङ्करी।
सर्वयोषित्स्वरूपा च सर्वप्राणिमनोरमा॥ १५७॥
महाश्चर्या मदाश्चर्या महामोहस्वरूपिणी।
महामोक्षकरी मोहकारिणी मोहदायिनी॥ १५८॥
अशोच्या पूर्णकामा च पूर्णा पूर्णमनोरथा।
पूर्णाभिलषिता पूर्णनिशानाथसमानना॥ १५९॥
द्वादशार्कस्वरूपा च सहस्रार्कसमप्रभा।
तेजस्विनी सिद्धमात्रा चन्द्रानयनरक्षणा॥ १६०॥

पुष्पमाल्यधरा, पुष्पगुच्छालंकृतदेहिका, प्रतप्तकाञ्चनाभासा, शुद्धकाञ्चनमण्डिता, सुवर्णकुण्डलवती, स्वर्णपुष्पप्रिया, नर्मदा, सिन्धुनिलया, समुद्रतनया, षोडशी, षोडशभुजा, महाभुजगमण्डिता, पातालवासिनी, नागी, नागेन्द्रकृतभूषणा, नागिनी, नागकन्या, नागमाता, नगालया, दुर्गापत्तारिणी, दुर्गदुष्टग्रहनिवारिणी, अभया, आपन्निहन्त्री, सर्वापत्परिनाशिनी, ब्रह्मण्या, श्रुतिशास्त्रज्ञा, जगतां कारणात्मिका॥ १४६—१५०॥

निष्कारणा, जन्महीना, मृत्युञ्जयमनोरमा, मृत्युञ्जयहृदावासा, मूलाधारनिवासिनी, षट्चक्रसंस्था, महती, महोत्सवविलासिनी, रोहिणी, सुन्दरमुखी, सर्वविद्याविशारदा, सदसद्वस्तुरूपा, निष्कामा, कामपीडिता, कामातुरा, काममत्ता, काममानससत्तनु, कामरूपा, कालिन्दी, कचालम्बितविग्रहा, अतसीकुसुमाभासा, सिंहपृष्ठनिषेदुषी, युवती, यौवनोद्रिक्ता, यौवनोद्रिक्तमानसा, अदिति, देवजननी, त्रिदशार्तिविनाशिनी॥ १५१—१५५॥

दक्षिणा, अपूर्ववसना, पूर्वकालविवर्जिता, अशोका, शोकरहिता, सर्वशोकनिवारिणी, अशोककुसुमाभासा, शोकदुःखक्षयङ्करी, सर्वयोषित्स्वरूपा, सर्वप्राणिमनोरमा, महाश्चर्या, मदाश्चर्या, महामोहस्वरूपिणी, महामोक्षकरी, मोहकारिणी, मोहदायिनी, अशोच्या, पूर्णकामा, पूर्णा, पूर्णमनोरथा, पूर्णाभिलषिता, पूर्णनिशानाथसमानना, द्वादशार्कस्वरूपा, सहस्रार्कसमप्रभा, तेजस्विनी, सिद्धमात्रा, चन्द्रानयनरक्षणा॥ १५६—१६०॥

अपरापारमाहात्म्या नित्यविज्ञानशालिनी।
विवस्वती हव्यवाहा जातवेदःस्वरूपिणी॥ १६१॥
स्वैरिणी स्वेच्छविहरा निर्बीजा बीजरूपिणी।
अनन्तवर्णाऽनन्ताख्याऽनन्तसंस्था महोदरी॥ १६२॥
दुष्टभूतापहन्त्री च सद्वृत्तपरिपालिका।
कपालिनी पानमत्ता मत्तवारणगामिनी॥ १६३॥
विन्ध्यस्था विन्ध्यनिलया विन्ध्यपर्वतवासिनी।
बन्धुप्रिया जगद्बन्धुः पवित्रा सपवित्रिणी॥ १६४॥
परामृताऽमृतकला चापमृत्युविनाशिनी।
महारजतसंकाशा रजताद्रिनिवासिनी॥ १६५॥

अपरा, अपारमाहात्म्या, नित्यविज्ञानशालिनी, विवस्वती, हव्यवाहा, जातवेद:स्वरूपिणी, स्वैरिणी, स्वेच्छविहरा, निर्बीजा, बीजरूपिणी, अनन्तवर्णा, अनन्ताख्या, अनन्तसंस्था, महोदरी, दुष्टभूतापहन्त्री, सद्वृत्तपरिपालिका, कपालिनी, पानमत्ता, मत्तवारणगामिनी, विन्ध्यस्था, विन्ध्यनिलया, विन्ध्यपर्वतवासिनी, बन्धुप्रिया, जगद्बन्धु, पवित्रा,, सपवित्रिणी, परा, अमृता, अमृतकला, अपमृत्युविनाशिनी, महारजतसंकाशा, रजताद्रिनिवासिनी॥ १६१—१६५॥

काशीविलासिनी काशीक्षेत्ररक्षणतत्परा।
योनिरूपा योनिपीठस्थिता योनिस्वरूपिणी॥ १६६॥
कामालसितचार्वङ्गी कटाक्षक्षेपमोहिनी।
कटाक्षक्षेपनिरता कल्पवृक्षस्वरूपिणी॥ १६७॥
पाशाङ्कुशधरा शक्तिर्धारिणी खेटकायुधा।
बाणायुधाऽमोघशस्त्रा दिव्यशस्त्रास्त्रवर्षिणी॥ १६८॥
महास्त्रजालविक्षेपविपक्षक्षयकारिणी।
घण्टिनी पाशिनी पाशहस्ता पाशाङ्कुशायुधा॥ १६९॥
चित्रसिंहासनगता महासिंहासनस्थिता।
मन्त्रात्मिका मन्त्रबीजा मन्त्राधिष्ठातृदेवता॥ १७०॥

काशीविलासिनी, काशीक्षेत्ररक्षणतत्परा, योनिरूपा, योनिपीठस्थिता, योनिस्वरूपिणी, कामालसित-चार्वङ्गी, कटाक्षक्षेपमोहिनी, कटाक्षक्षेपनिरता, कल्पवृक्षस्वरूपिणी, पाशाङ्कुशधरा, शक्ति, धारिणी, खेटकायुधा, बाणायुधा, अमोघशस्त्रा, दिव्यशस्त्रा, अस्त्रवर्षिणी, महास्त्रजालविक्षेपविपक्षक्षयकारिणी, घण्टिनी, पाशिनी, पाशहस्ता, पाशाङ्कुशायुधा, चित्रसिंहासनगता, महासिंहासनस्थिता, मन्त्रात्मिका, मन्त्रबीजा, मन्त्राधिष्ठातृदेवता॥ १६६—१७०॥

सुरूपाऽनेकरूपा च विरूपा बहुरूपिणी।
विरूपाक्षप्रियतमा विरूपाक्षमनोरमा॥ १७१॥
विरूपाक्षा कोटराक्षी कूटस्था कूटरूपिणी।
करालास्या विशालास्या धर्मशास्त्रार्थपारगा॥ १७२॥
अध्यात्मविद्या शास्त्रार्थकुशला शैलनन्दिनी।
नगाधिराजपुत्री च नगपुत्री नगोद्भवा॥ १७३॥
गिरीन्द्रबाला गिरिशप्राणतुल्या मनोरमा।
प्रसन्ना चारुवदना प्रसन्नास्या प्रसन्नदा॥ १७४॥
शिवप्राणा पतिप्राणा पतिसम्मोहकारिणी।
मृगाक्षी चञ्चलापाङ्गी सुदृष्टिर्हंसगामिनी॥ १७५॥

सुरूपा, अनेकरूपा, विरूपा, बहुरूपिणी, विरूपाक्षप्रियतमा, विरूपाक्षमनोरमा, विरूपाक्षा, कोटराक्षी, कूटस्था, कूटरूपिणी, करालास्या, विशालास्या, धर्मशास्त्रार्थपारगा, अध्यात्मविद्या, शास्त्रार्थकुशला, शैलनन्दिनी, नगाधिराजपुत्री, नगपुत्री, नगोद्भवा, गिरीन्द्रबाला, गिरिशप्राणतुल्या, मनोरमा, प्रसन्ना, चारुवदना, प्रसन्नास्या, प्रसन्नदा, शिवप्राणा, पतिप्राणा, पतिसम्मोहकारिणी, मृगाक्षी, चञ्चलापाङ्गी, सुदृष्टि, हंसगामिनी॥ १७१—१७५॥

नित्यं कुतूहलपरा नित्यानन्दाभिनन्दिता।
सत्यविज्ञानरूपा च तत्त्वज्ञानैककारिणी॥ १७६॥
त्रैलोक्यसाक्षिणी लोकधर्माधर्मप्रदर्शिनी।
धर्माधर्मविधात्री च शम्भुप्राणात्मिका परा॥ १७७॥
मेनकागर्भसम्भूता मैनाकभगिनी तथा।
श्रीकण्ठाकण्ठहारा च श्रीकण्ठहृदयस्थिता॥ १७८॥
श्रीकण्ठकण्ठजप्या च नीलकण्ठमनोरमा।
कालकूटात्मिका कालकूटभक्षणकारिणी॥ १७९॥
महाकालप्रिया कालकलनैकविधायिनी।
अक्षोभ्यपत्नी संक्षोभनाशिनी ते नमो नमः॥ १८०॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं नामसहस्रेण संस्तुता पर्वतात्मजा।
वाक्यमेतन्महेशानमुवाच मुनिसत्तम॥ १८१॥

श्रीदेव्युवाच

अहं त्वदर्थे शैलेन्द्रतनयात्वमुपागता।
त्वं मे प्राणसमो भर्ता त्वदनन्याहमङ्गना॥ १८२॥
त्वं मदर्थे तपस्तीव्रं सुचिरं कृतवानसि।
अहं च तपसाराध्या त्वां लप्स्यामि पुनः पतिम्॥ १८३॥

श्रीमहादेव उवाच

त्वमाराध्यतमा सर्वजननी प्रकृतिः परा।
तवाराध्यो जगत्यत्र विद्यते नैव कोऽपि हि॥ १८४॥
अहं त्वया निजगुणैरनुग्राह्यो महेश्वरि।
प्रार्थनीयस्त्वयि शिवे एष एव वरो मम॥ १८५॥
यत्र यत्र तवेदं हि कालीरूपं मनोहरम्।
आविर्भवति तत्रैव शिवरूपस्य मे हृदि॥ १८६॥
संस्थातव्यं त्वया लोके ख्याता च शववाहना।
भविष्यसि महाकाली प्रसीद जगदम्बिके॥ १८७॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्ता शम्भुना काली कालमेघसमप्रभा।
तथेत्युक्त्वा समभवत्पुनर्गौरी यथा पुरा॥ १८८॥

नित्यं कुतूहलपरा, नित्यानन्दा, अभिनन्दिता, सत्यविज्ञानरूपा, तत्त्वज्ञानैककारिणी, त्रैलोक्यसाक्षिणी, लोकधर्माधर्मप्रदर्शिनी, धर्माधर्मविधात्री, शम्भुप्राणात्मिका, परा, मेनकागर्भसम्भूता, मैनाकभगिनी, श्रीकण्ठाकण्ठहारा, श्रीकण्ठहृदयस्थिता, श्रीकण्ठकण्ठजप्या, नीलकण्ठमनोरमा, कालकूटात्मिका, कालकूट-भक्षणकारिणी, महाकालप्रिया, कालकलनैकविधायिनी, अक्षोभ्यपत्नी, संक्षोभनाशिनी [देवी!] आपको बार-बार नमस्कार है॥ १७६—१८०॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार सहस्रनामसे स्तुति करनेपर गिरिराजपुत्री पार्वतीजीने शंकरजीसे यह बात कही—॥ १८१॥

श्रीदेवीजी बोलीं—मैं आपके लिये ही गिरिराजके पुत्रीभावको प्राप्त हुई हूँ। आप मेरे प्राणके समान पति हैं तथा मैं आपकी अनन्य अर्धाङ्गिनी हूँ। आपने मेरे लिये दीर्घकालतक कठिन तपस्या की है और मैं तपस्याके द्वारा आराधित होकर पुनः आपको पतिके रूपमें प्राप्त करूँगी॥ १८२-१८३॥

श्रीमहादेवजी बोले—आप श्रेष्ठतम आराध्या, सभीकी माता तथा पराप्रकृति हैं। इस जगत्में आपके लिये कोई भी आराध्य नहीं है। आप अपने कृपापरवत्ता आदि गुणोंसे मेरे ऊपर अनुग्रह करें। शिवे! मैं इसी वरके लिये आपसे प्रार्थना करता हूँ॥ १८४-१८५॥ जहाँ-जहाँ आपका यह सुन्दर कालीरूप स्थापित हो, वहाँ मेरे हृदयपर भी कल्याणकारी उस रूपकी स्थापना हो और जगदम्बिके! आप इस संसारमें शववाहना महाकालीके नामसे विख्यात होंगी। आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ १८६-१८७॥

श्रीमहादेवजी बोले—भगवान् शंकरके द्वारा इस प्रकार कहनेपर प्रलयकालीन मेघके समान कान्तिमान् भगवती काली 'ऐसा ही हो'—इस प्रकार कहकर पुनः गौरीके रूपमें पूर्ववत् परिणत हो गयीं॥ १८८॥

य इदं पठते देव्या नाम्नां भक्त्या सहस्रकम्।
स्तोत्रं श्रीशम्भुना प्रोक्तं स देव्याः समतामियात्॥ १८९॥

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पैश्च धूपदीपैर्महेश्वरीम्।
यः पठेत्स्तोत्रमेतच्च स लभेत्परमं पदम्॥ १९०॥

अनन्यमनसा देवीं स्तोत्रेणानेन यो नरः।
संस्तौति प्रत्यहं तस्य सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ १९१॥

राजानो वशगास्तस्य नश्यन्ति रिपवस्तथा।
सिंहव्याघ्रमुखाः सर्वे हिंसका दस्यवस्तथा॥ १९२॥

दूरादेव पलायन्ते तस्य दर्शनमात्रतः।
अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते मङ्गलं महत्॥ १९३॥

अन्ते दुर्गास्मृतिं लब्ध्वा स्वयं देवीकलामियात्॥ १९४॥

जो व्यक्ति भगवान् श्रीशंकरके द्वारा कहे गये देवीके इस सहस्रनामस्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह देवीके सारूप्य मोक्षको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति गन्ध, पुष्प, धूप और दीपसे महेश्वरीकी आराधना कर यह स्तोत्र पढ़ता है, वह परम पदको प्राप्त करता है॥ १८९-१९०॥ जो व्यक्ति अनन्यभावसे इस स्तोत्रके द्वारा देवीकी प्रतिदिन स्तुति करता है, उसे सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। राजा उसके वशीभूत हो जाते हैं, सभी शत्रु नष्ट हो जाते हैं और सिंह, बाघ आदि सभी हिंसक प्राणी तथा चोर आदि उसको देखनेमात्रसे दूरसे ही भाग जाते हैं। वह अनुल्लंघनीय आज्ञावाला हो जाता है तथा सर्वत्र महान् कल्याणको प्राप्त करता है। अन्तमें दुर्गाजीकी स्मृतिको प्राप्तकर स्वयं देवीका अंश हो जाता है॥ १९१—१९४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शिववक्त्रविनिर्गतं ललितासहस्रनामस्तोत्रं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'शिववक्त्रविनिर्गत-ललितासहस्रनामस्तोत्र' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान् शंकरद्वारा पार्वतीके समक्ष विवाहका प्रस्ताव रखना, मरीचि आदि ऋषियोंका हिमालयके पास जाकर अपनी पुत्री भगवान् शंकरको समर्पित करनेका परामर्श देना तथा हिमालयद्वारा इसकी स्वीकृति

श्रीमहादेव उवाच

ततः शम्भुः समादाय कामदेवशरीरजम्।
भस्म सर्वेषु देहेषु भूतिलेपं विधाय च॥ १॥

पुनस्तपसि शैलेन्द्रशृङ्गे भूतगणैः सह।
पार्वत्यपि च शैलेन्द्रे तपसे समुपाविशत्॥ २॥

शम्भुः संध्याय तां देवीं देवी तमपि शङ्करम्।
संध्याय मनसा वर्षसहस्रत्रयमानयत्॥ ३॥

ततः शम्भुः सुदुःखार्तः कामेन भस्मरूपिणा।
पार्वतीनिकटं गत्वा कृताञ्जलिरिदं वचः॥ ४॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब भगवान् शंकर कामदेवके शरीरका भस्म लेकर अपने सम्पूर्ण शरीरमें उसका लेपन कर पुनः अपने भूतगणोंके साथ पर्वतराज हिमालयके शिखरपर तपस्यारत हो गये और पार्वती भी उसी हिमालय पर्वतपर तपस्यामें संलग्न हो गयीं॥ १-२॥ भगवान् शंकरने मनसे उन देवीका और देवी पार्वतीने उन महेश्वरका ध्यान करते हुए तीन हजार वर्ष व्यतीत कर दिये॥ ३॥ तब भस्मीभूत कामसे अत्यन्त दुःखित भगवान् शंकर पार्वतीके निकट जाकर हाथ जोड़कर यह वचन बोले—

प्राब्रवीत्परमेशानि तपस्त्यज सुदुश्चरम्।
ध्यानेन परिजप्येन मौनेन महता त्वया॥ ५ ॥
क्रीतस्तवैव दासोऽहं मां सेवायै नियोजय।
त्वदङ्गमार्जने हारकेयूरपरिधापने॥ ६ ॥
त्वदङ्गपरिसंस्कारेऽलक्तकादिभिरादरात्।
नियुङ्क्ष्व पर्वतसुते प्रसन्ना यदि मे शिवे॥ ७ ॥
निर्दग्धोऽस्मि भृशं भस्मरूपिणा मदनेन च।
देहस्थेन महादेवि मामुद्धर मनोभवात्॥ ८ ॥
त्वं सर्वदुर्गार्तिहरा दुर्गाऽभीष्टफलप्रदा।
त्वामाश्रयन्ति ये तेषां दुःखं सञ्जायते नहि॥ ९ ॥
अहं त्वां सर्वथा भक्तिभावेन समुपाश्रितः।
मामुद्धर महादुर्गे कामसागरमध्यतः॥ १० ॥
यथा त्वं संस्मृतिजुषां मोक्षदासि दयामयि।
तथा मां कृपया कामसागराच्च समुद्धर॥ ११ ॥
एवं सम्प्रार्थिता शम्भुं प्रोवाच हिमदेहजा।
सखीं सम्बोध्य लज्जाभिनतवक्त्रा स्मितानना॥ १२ ॥
असम्प्रदत्ता पित्राहं कथमेनमुपागता।
भविष्यामि ततः पाणिं गृह्णातु विधिवद्धरः॥ १३ ॥
पितरं मे गिरिश्रेष्ठं केनचिन्मतिशालिना।
स्वाभिप्रायं ज्ञापयतु विवाहार्थं महेश्वरः॥ १४ ॥
इत्युक्तः सोऽपि भगवान्महादेवस्त्रिलोचनः।
तथ्यं मेने गिरिसुतावचनं कामुकोऽपि सन्॥ १५ ॥
ततः सा प्रययौ शीघ्रं सखीभिः परिवारिता।
पितुर्गेहं भगवती प्रफुल्लकमलानना॥ १६ ॥
पार्वतीमागतां श्रुत्वा गिरीन्द्रः सहसोत्थितः।
आगत्याङ्के समारोप्य पुरमध्यं समानयत्॥ १७ ॥
आगत्य मेनका पुत्रीमालिङ्गय निजपाणिना।
अश्रुपूर्णेक्षणा वक्त्रं चुचुम्ब परमादरात्॥ १८ ॥
उवाच मातस्त्वं पुत्री मम प्राणसमा ह्यसि।
त्वद्विच्छेदमृतामद्य मां कुरुष्व सुजीविताम्॥ १९ ॥

परमेशानि! अत्यन्त कठिन तपस्याका त्याग कीजिये। आपके कठिन ध्यान, जप और मौनव्रतसे मैं आपका क्रीतदास हो गया हूँ। मुझे अपनी सेवामें नियुक्त कर लीजिये। पर्वतसुता शिवा! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने अङ्गमार्जनमें, हार-केयूर पहनानेमें तथा अलक्तक आदि रागद्रव्योंसे सम्मानपूर्वक अङ्गोंको अलंकृत करनेमें मुझे नियुक्त कीजिये॥ ४—७॥ मैं देहमें स्थित भस्मीभूत कामदेवसे अत्यन्त जलाया जा रहा हूँ। महादेवि! कामदेवसे मेरा उद्धार कीजिये। आप सबकी कठिन पीड़ाको हरनेवाली हैं, आप अभीष्ट वर देनेवाली दुर्गा हैं। जो आपका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें कभी दुःख होता ही नहीं। मैंने भक्तिभावसे सभी प्रकारसे आपका आश्रय ग्रहण किया है। महादुर्गे! कामरूपी सागरके मध्यसे मेरा उद्धार कीजिये। दयामयी! जिस प्रकार आप अपने स्मरण करनेवाले भक्तको मोक्ष प्रदान करती हैं, उसी प्रकार कृपा करके मेरा इस कामरूपी समुद्रसे उद्धार कीजिये॥ ८—११॥ ऐसी प्रार्थना करनेपर लज्जासे सिर झुकायी हुई, मुसकानभरे मुखवाली, शैलपुत्री पार्वती अपनी सखीको सम्बोधित करते हुए भगवान् शंकरसे इस प्रकार बोलीं—॥ १२॥

मैं पिताके द्वारा बिना दिये इन्हें कैसे प्राप्त हो सकती हूँ? पिताके द्वारा सम्प्रदान करनेपर ही भगवान् शंकर विधिपूर्वक मेरा पाणिग्रहण करें। महेश्वर किसी बुद्धिमान् व्यक्तिके द्वारा अपने विवाहके लिये अपना अभिप्राय मेरे पिता पर्वतराजको बतायें॥ १३-१४॥

ऐसा कहनेपर त्रिलोचन भगवान् महादेवने कामासक्त होते हुए भी गिरिराजपुत्रीके वचनको तथ्ययुक्त माना॥ १५॥ तदनन्तर प्रफुल्लित कमलके समान मुखवाली वे भगवती सखियोंसे घिरी हुई शीघ्र ही पिताके घर चली गयीं॥ १६॥ पार्वतीके आनेकी बात सुनकर गिरिराज अकस्मात् उठ पड़े और आकर उनको गोदमें लेकर पुरके मध्यमें ले आये। महारानी मेनकाने वहाँ आकर अपनी बाहोंसे पुत्रीका आलिङ्गन कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे परम आदरपूर्वक उनके मुखका चुम्बन किया और कहा—माता! आप मेरे प्राणके समान पुत्री हैं। आपके वियोगसे मुझ मरी हुईको इस समय जीवित कीजिये॥ १७—१९॥

मैनाकप्रमुखाः सर्वे पार्वत्या भ्रातरस्तथा।
बान्धवाश्च तथैवान्ये दृष्ट्वा हर्षं प्रपेदिरे॥ २०॥

तस्याः सखीभ्यां शैलेन्द्रश्रेष्ठायापि निवेदितम्।
यथा दृष्टं वने शम्भोः पार्वत्यामभिचेष्टितम्॥ २१॥

गिरीन्द्रस्तत्समाकर्ण्य हर्षेण महता युतः।
प्रतीक्ष्यमाणो वार्तां स गिरिशस्य तदा स्थितः॥ २२॥

विवाहेषु सुतायास्तु पार्वत्या मुनिपुङ्गव।
शम्भुश्च तत्र शैलाग्रे संस्थितः प्रमथैः सह॥ २३॥

उवास पर्वते पाणिग्रहणे कृतनिश्चयः।
ततः सस्मार गिरिशो मरीच्यादीन्महामुनीन्॥ २४॥

अभिप्रायं गिरीन्द्राय विज्ञापयितुमात्मनः।
ततस्ते समुपायाता मरीच्याद्या महर्षयः॥ २५॥

तत्क्षणाच्छिवसान्निध्यं वातोद्धूतघना इव।
ते प्रणम्य महादेवं पप्रच्छुस्त्रिदशेश्वरम्॥ २६॥

किमर्थमस्मान्भगवन् स्मृतवानसि तद्वद।
ततः प्राह महादेवो मरीच्यादीन्पृथक् पृथक्॥ २७॥

सम्बोध्य कामनिर्दग्धहृदयो मुनिपुङ्गव।
हिताय सर्वजगतां तथा संतानवृद्धये॥ २८॥

गिरिराजपुत्री पार्वतीके मैनाक आदि सभी भाई, बन्धु-बान्धव और अन्य लोग उन्हें देखकर हर्षसे भर गये॥ २०॥ उनकी सखियोंने शम्भुद्वारा पार्वतीविषयक चेष्टाओंको वनमें जैसा देखा था, वैसा पर्वतराज हिमालयको बता दिया। मुनिश्रेष्ठ! गिरिराज उन बातोंको सुनकर अपनी पुत्री पार्वतीके विवाहके लिये भगवान् शंकरके प्रस्तावकी प्रतीक्षा करते हुए महान् हर्षसे भर गये॥ २१-२२½॥

भगवान् शंकर पाणिग्रहणका निश्चय करके अपने प्रमथगणोंके साथ हिमालयके शिखरपर रहने लगे। तदनन्तर भगवान् शंकरने अपना अभिप्राय गिरिराजसे बतानेके लिये मरीचि आदि सप्तर्षियोंका स्मरण किया॥ २३-२४½॥ तब वे मरीचि आदि महर्षिगण उसी क्षण वायुसे उड़ाये गये मेघोंकी भाँति भगवान्



शंकरके समीप पहुँच गये। उन्होंने देवाधिदेव महादेवको प्रणाम कर उनसे पूछा—भगवन्! आपने हमलोगोंका किसलिये स्मरण किया? उसे बताइये॥ २५-२६½॥ मुनिपुङ्गव! तब कामसे निर्दग्ध हृदयवाले भगवान् महादेवने मरीचि आदि मुनियोंको पृथक्-पृथक् सम्बोधित करके कहा—॥ २७½॥ श्रेष्ठ मुनियो! सम्पूर्ण विश्वके कल्याणके लिये और संतानवृद्धिके लिये आज मेरी विवाह करनेकी इच्छा हो रही है।

दारग्रहे मतिर्मेऽद्य जायते मुनिसत्तमाः।
यावत्सती मां संत्यज्य गतासीन्निजमायया॥ २९॥

तावत्तामेव हृदये सन्ध्याय तपसे स्थितः।
सा तेन तपसा तुष्टा स्वयं हिमगिरेः सुता॥ ३०॥

भूत्वा मां पतिभावेन स्वीचकार निजेच्छया।
किंतु तस्याः पिता शैलराजेन्द्रो हिमवान् यदि॥ ३१॥

आहूय मां ददात्येनां पाणिग्रहणकर्मणि।
तदा सा मम पत्नी स्याच्चार्वङ्गी रुचिरानना॥ ३२॥

भस्मीभूतेन कामेन दह्येऽहं दिनरात्रकम्।
न शान्तिमभिलप्स्यामि विना तां पर्वतात्मजाम्॥ ३३॥

यदि कृत्वा तु साहाय्यं तां मत्प्राणैकवल्लभाम्।
मह्यं दापयितुं शक्तास्तदाहं स्थातुमुत्सहे॥ ३४॥

ऋषय ऊचुः

यथाभिचेष्टितं देव त्वमाज्ञापयसि प्रभो।
तथास्माभिश्चेष्टितव्यं किं नु कार्यमतः परम्॥ ३५॥

आद्या हि परमा विद्या पूर्णा प्रकृतिरुत्तमा।
जाता हिमवतः पुत्री तवैव पूर्वगेहिनी॥ ३६॥

अवश्यं हिमवांस्तुभ्यं दास्यत्येवाचिरेण वै।
निमित्तमात्रमत्रैव भविष्यामो वयं शिव॥ ३७॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा वचनं तं वै शम्भुं ते हि महर्षयः।
प्रययुर्गिरिराजस्य पुरं परमहर्षिताः॥ ३८॥

विवाहार्थं महेशस्य संयोजयितुमम्बिकाम्।
तान्दृष्ट्वा समुपायातान् गिरीन्द्रोऽपि यथाविधि॥ ३९॥

पूजयित्वा यथान्यायमासनेषूपवेशयत्।
अथ प्रोचुर्गिरिश्रेष्ठमृषयस्ते हिमालयम्॥ ४०॥

शृणु राजंस्तव हितं यच्छिवेनाभिभाषितम्।
तस्यैव वनिता दक्षतनया सा सती पुरा॥ ४१॥

सैव ते तनया जाता पार्वती साम्प्रतं शिवा।
तां त्वं प्रयच्छ देवाय शिवाय परमात्मने॥ ४२॥

जबसे दक्षतनया सती अपनी मायासे मुझे छोड़कर चली गयी हैं, उसी समयसे ही हृदयमें उनका ध्यान करके मैं तपस्यामें संलग्न हूँ। उस तपस्यासे संतुष्ट होकर उन्होंने स्वयं गिरिराजतनया होकर अपनी इच्छासे मुझे पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया है, किंतु उनके पिता गिरिराज हिमवान् यदि मुझे बुलाकर पाणिग्रहण-संस्कार करके उनको देते हैं, तभी वे मनोरम मुखवाली सुन्दरी मेरी पत्नी होंगी। भस्मीभूत कामदेवसे मैं दिन-रात जल रहा हूँ। बिना उन गिरिराजपुत्रीके मैं शान्ति नहीं प्राप्त कर सकूँगा। यदि आपलोग मेरी सहायता करके उन मेरी एकमात्र प्राणप्रियाको प्राप्त करानेमें समर्थ हो सकें तभी मैं स्थित रह सकता हूँ॥ २८—३४॥

ऋषिगण बोले—देव! प्रभो! जो करणीय हो, वैसी आप हमें आज्ञा दीजिये, उसी प्रकार हमलोग प्रयत्न करेंगे। इससे बढ़कर हमलोगोंका और कौन-सा कार्य हो सकता है। आदिशक्ति, परमा, विद्या, पूर्णस्वरूपा, परा प्रकृति जो हिमालयकी पुत्री हैं, वे ही आपकी पूर्वगृहिणी हैं। शिव! हिमवान् निश्चय ही अविलम्ब अपनी पुत्री पार्वती आपको दे देंगे। इस कार्यमें हमलोग तो केवल निमित्तमात्र होंगे॥ ३५—३७॥

श्रीमहादेवजी बोले—वे सभी महर्षिगण भगवान् शंकरसे ऐसा कहकर परम प्रसन्न हो भगवान् शंकरके विवाहके निमित्त पार्वतीको संयोजित करनेके लिये गिरिराजके नगरमें चले गये॥ ३८½॥ आये हुए उन महर्षियोंको देखकर गिरिराजने भी उन लोगोंकी यथाविधि पूजा कर न्यायपूर्वक उन्हें आसनोंपर बैठाया॥ ३९½॥ इसके बाद वे महर्षिगण पर्वतराज हिमालयसे कहने लगे—राजन्! आपकी भलाईके लिये भगवान् शंकरने जो कहा है, उसे सुनिये—प्राचीन कालमें दक्षतनया सती उन्हींकी अर्धाङ्गिनी थीं। वे ही आपकी पुत्री इस समय कल्याणकारिणी पार्वतीके रूपमें उत्पन्न हुई हैं। उन्हें आप परमात्मा भगवान् शिवको दे दीजिये।

सम्प्राप्तदारः स सुखी त्वत्प्रसादाद्भविष्यति।
प्रभावं देवदेवस्य सर्वं त्वं ज्ञातवानसि॥ ४३॥

तस्मै देया निजसुता किंवा कार्यमतः परम्।
नारदः पुनराहेदं शैलराजं हिमालयम्॥ ४४॥

स्मित्वा स्मित्वा महाबुद्धिर्भूतभव्यभविष्यवित्।
महाराज मया पूर्वमेतत्सर्वं निवेदितम्॥ ४५॥

अनादिपुरुषेशाय पूर्णाय परमात्मने।
तनयां परमामाद्यां देहि भाग्यस्य गौरवात्॥ ४६॥

ततः प्राह गिरीन्द्रस्तान्हर्षनिर्भरमानसः।
कृतकृत्योऽस्मि पूतोऽस्मि युष्माकं हि समागमात्॥ ४७॥

यच्चन्द्रशेखरं सर्वे देवदेवं वदन्ति वै।
जगतां सृष्टिसंहारकरणे पालने क्षमः॥ ४८॥

तस्मै देया सुतेत्यत्रानुपपत्तिश्च का मम।
तस्येच्छावशगोऽहं हि तत्तत्सर्वमिदं जगत्॥ ४९॥

यदेच्छा समभूत्तस्य तदैवेच्छा ममाप्यभूत्।
गच्छध्वं शम्भुनिकटं कथयध्वं वचो मम॥ ५०॥

शुभं निश्चित्य समयं मयि वार्तां ददातु सः।
दास्यामि तनयां तस्मै यथाशक्तिविभूषिताम्॥ ५१॥

आपकी कृपासे वे पत्नीको प्राप्त कर सुखी होंगे। आप देवाधिदेव भगवान् शंकरके सम्पूर्ण प्रभावको जानते हैं। इसलिये आप अपनी पुत्री उन्हींको दे दीजिये, इससे बड़ा कौन कार्य है॥ ४०—४३½॥

भूत, भविष्य तथा वर्तमानको जाननेवाले महाबुद्धिमान् नारदजी हँसते हुए पर्वतराज हिमालयसे पुनः इस प्रकार बोले—महाराज! मैंने आपसे पूर्वमें ये सभी बातें बता दी हैं। आप अपने भाग्यको गौरवान्वित करनेके लिये परम आदिशक्ति अपनी पुत्री पार्वतीको अनादि पुरुष पूर्णपरमात्मा शिवको दे दीजिये॥ ४४—४६॥ तब हर्षसे प्रफुल्लित मनवाले गिरिराज हिमालयने उनसे कहा कि आपलोगोंके आनेसे मैं कृतकृत्य और पवित्र हो गया हूँ। सभी लोग जिन चन्द्रशेखरको देवाधिदेव कहते हैं, वे संसारके सृष्टि, पालन और संहार करनेमें सक्षम हैं। उन्हें अपनी पुत्री देनेमें मुझे क्या आपत्ति है? उन्हींकी इच्छाके अधीन यह सम्पूर्ण विश्व है तथा मैं भी उन्हींकी इच्छाके अधीन हूँ। उनकी जैसी इच्छा हुई उसी समय वैसी ही मेरी भी इच्छा हुई। आपलोग भगवान् शम्भुके निकट जायँ और मेरी बात कहें कि वे शुभ मुहूर्त निश्चित करके मुझसे वार्तालाप करें। मैं यथाशक्ति अलङ्कृत करके अपनी पुत्री उन्हें दे दूँगा॥ ४७—५१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे पार्वतीविवाहोपक्रमो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार महाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'पार्वतीविवाहोपक्रम' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

मरीचि आदि महर्षियोंद्वारा भगवान् शंकरका विवाह-स्वीकृतिका शुभ समाचार सुनाना, विवाहके लिये वैशाख शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि निश्चित होना, देवर्षि नारदद्वारा ब्रह्मादि देवताओंको विवाहका निमन्त्रण देना

श्रीमहादेव उवाच

निशम्य गिरिराजस्य वचनं ते महर्षयः।
पुनर्महेशसान्निध्यं प्रययुर्हृष्टचेतसः॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—गिरिराजका वचन सुनकर वे महर्षि प्रसन्नचित्त हो पुनः भगवान् शंकरके निकट चले गये॥ १॥

तान् समीक्ष्यागताञ्छम्भुर्महात्रस्त इवाब्रवीत्।
किमाह भगवानद्रिर्युष्मान्वदत मा चिरम्॥ २॥

स्वेच्छया स्वसुता मह्यं दातव्या किं न वेति च।
कथयित्वा मनः शान्तं सुस्थिरं कुरुत द्विजाः॥ ३॥

ऋषय ऊचुः

दातव्या भक्तिभावेन गिरीन्द्रेण निजात्मजा।
मा चिन्तां कुरु देवेश साम्प्रतं सुस्थिरो भव॥ ४॥

उक्तं तेन गिरीन्द्रेण समयं वीक्ष्य शोभनम्।
तस्मै देया यदा वार्ता तदोद्वाहो भविष्यति॥ ५॥

श्रीमहादेव उवाच

अथ प्राह पुनः शम्भुस्तांस्तदा मुनिसत्तमान्।
द्रुतं निरीक्ष्य समयं शोभनं दोषवर्जितम्॥ ६॥

गिरीन्द्राय द्रुतं ब्रूत सुव्रताय महात्मने।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मरीच्याद्यास्तपोधनाः॥ ७॥

विवाहसमयं तस्य निश्चित्योचुर्महेश्वरम्।
वैशाखे मासि या शुक्लपञ्चमी सा गुरोर्दिने॥ ८॥

तस्यामुद्वाहकर्म त्वं कुरु संतानवृद्धये।
सर्वदोषविहीनं हि दिनमेतत्सुशोभनम्॥ ९॥

विज्ञापय गिरीन्द्राय महावर महात्मने।
अथ प्राह महादेवो यूयं यात नगाधिपम्॥ १०॥

कथयध्वं निजसुता तेन तस्मिञ्छुभेऽहनि।
दातव्या विधिवन्मह्यं तत्राहं च सुरोत्तमैः॥ ११॥

आगमिष्ये पुरं तस्य महोत्सवपुरःसरम्।
तच्छ्रुत्वा वचनं शम्भोः पुनस्तेऽपि महर्षयः॥ १२॥

गत्वा हिमाद्रिं व्याजह्रुर्महेशेनाभिभाषितम्।
तच्छ्रुत्वा गिरिराजोऽपि भद्रमाह मुदान्वितः॥ १३॥

विससर्ज च सम्पूज्य महर्षींस्तान्यथाविधि।
तेऽपि भूयो ययुर्यत्र संस्थितश्चन्द्रशेखरः॥ १४॥
प्रोचुश्चापि महादेवं गिरिराजेन भाषितम्।

आये हुए उन महर्षियोंको देखकर घबड़ाये-से वे भगवान् शंकर पूछने लगे कि ऐश्वर्यशाली गिरिराजने आपलोगोंसे क्या कहा, वह मुझसे शीघ्र बताइये, विलम्ब मत कीजिये। ब्राह्मणो! वे अपनी पुत्री मुझे अपनी इच्छासे देंगे अथवा नहीं, इसे बताकर मेरे मनको शान्त और सुस्थिर कीजिये॥ २-३॥

ऋषियोंने कहा—देवेश! गिरिराज भक्तिभावसे अपनी कन्या आपको प्रदान करेंगे। इसलिये अब आप चिन्ता न करें, शान्तचित्त रहें। गिरिराजने कहा है कि उत्तम मुहूर्त देखकर जब आपकी ओरसे वार्ता उन्हें भेजी जायगी तब विवाह होगा॥ ४-५॥

श्रीमहादेवजी बोले—पुनः भगवान् शंकरने उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कहा—शीघ्र दोषरहित शुभ मुहूर्त देखकर सुव्रती महात्मा गिरिराजसे शीघ्र ही कहिये॥ ६½॥ उनकी यह बात सुनकर मरीचि आदि तपोधन ऋषियोंने उनके विवाहका शुभ मुहूर्त निश्चित करके महेश्वरसे कहा—वैशाख महीनेमें शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको गुरुवारके दिन संतानवृद्धिके लिये आप विवाह करें। सभी दोषोंसे रहित यह दिन अत्यन्त शुभ है। श्रेष्ठवर! महात्मा गिरिराजसे यह बात बता दीजिये॥ ७—९½॥ इसके बाद महादेवजीने कहा कि आपलोग नगाधिराजके पास जाइये और कहिये कि वे उस शुभ दिनको विधिवत् अपनी पुत्री मुझे प्रदान करें। मैं भी देवताओंके साथ महोत्सवपूर्वक उनके पुरमें आऊँगा॥ १०-११½॥ भगवान् शंकरकी वह बात सुनकर उन महर्षियोंने भी पुनः गिरिराजके पास जाकर शंकरजीके द्वारा कही गयी बात उन्हें बतायी॥ १२½॥ गिरिराजने भी उनकी बात सुनकर प्रसन्न होकर 'मङ्गल हो'—ऐसा कहा। तत्पश्चात् यथाविधि उन महर्षियोंका पूजन कर उन्हें विदा कर दिया॥ १३½॥ वे लोग भी पुनः वहीं गये जहाँ भगवान् चन्द्रशेखर स्थित थे और गिरिराजने उन लोगोंसे जो कहा था, वह भगवान् शंकरको बता दिया॥ १४½॥

तानुवाच ततः शम्भुर्यूयं तत्र शुभेऽहनि॥ १५॥
आगत्य वै मया सार्धं गमिष्यथ गिरेः पुरम्।
नारदं प्राह तात त्वमव्याहतगतिः स्वयम्॥ १६॥
एकं कुरुष्व मत्कार्यं यत्ते वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
ब्रह्मणे विष्णवे तद्वदिन्द्रादिभ्यः पृथक् पृथक्॥ १७॥
कथयस्व ममोद्वाहवार्तां हर्षविधायिनीम्।
विज्ञापयत मद्वाक्यं तेष्विदं मुनिपुङ्गव॥ १८॥
मदुद्वाहदिने सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः।
युष्माभिः समुपागम्य कर्तव्यं शोभनं मम॥ १९॥
ततः स नारदोऽप्याह यथाज्ञापयसि प्रभो।
तथैव हि विधातव्यं मयाज्ञावशवर्तिना॥ २०॥
ततः प्रणम्य ते देवं मरीच्याद्या महर्षयः।
स्वस्थानं गन्तुमुद्युक्ताः प्रार्थयामासुरीश्वरम्॥ २१॥
आज्ञां विधेहि गच्छामो निजस्थानं तु साम्प्रतम्।
त्वदुद्वाहदिने सर्व आयास्यामः सुरैः सह॥ २२॥
ततः प्राह महादेवः साश्रुनेत्रो महामुनीन्।
पत्नीविरहदुःखार्तो भृशं कामप्रपीडितः॥ २३॥
यावद्धिमाद्रितनयां मम प्राणैकवल्लभाम्।
न पत्नीमभिलप्स्यामि तावत्कष्टेन जीवनम्॥ २४॥
धारयिष्ये भृशं कामनिर्दग्धोऽपि महर्षयः।
प्रतिज्ञाय ब्रवीम्येतद्युष्माकं सम्मुखे ध्रुवम्॥ २५॥
यदा तां समवाप्स्यामि पार्वतीं प्राणवल्लभाम्।
तदा सर्वात्मना देवीं सेविष्ये तां निरन्तरम्॥ २६॥
न विप्रियं करिष्यामि कदाचिदपि मोहितः।
यत्र यास्यति सा देवी गमिष्येऽहं च तत्र वै॥ २७॥
न त्यक्ष्यामि कदाचित्तां क्षणार्धमपि सुव्रताम्।
यूयं च साम्प्रतं यात निजस्थानं तपोधनाः॥ २८॥
तिष्ठाम्यहं काननेऽस्मिन्ध्यायंस्तां पर्वतात्मजाम्।

तब भगवान् शंकरने उनसे कहा कि शुभ मुहूर्तमें आपलोग यहाँ आकर मेरे साथ गिरिराजपुरमें चलियेगा॥ १५½॥ देवर्षि नारदसे उन्होंने कहा—तात! आप स्वयं अबाध गतिवाले हैं। आप हमारा एक काम कीजिये, जिसे मैं इस समय आपसे कहता हूँ॥ १६½॥ ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रादि सभी देवताओंसे अलग-अलग मेरी हर्षदायिनी विवाहकी बात कह दीजिये। मुनिश्रेष्ठ! मेरी यह बात उन लोगोंसे बता दीजिये कि मेरे विवाहके दिन सभी देव, गन्धर्व, किन्नर तथा आपलोग आकर मेरा कल्याण करें॥ १७—१९॥

तब उन नारदजीने कहा—प्रभो! जैसी आपकी आज्ञा हो; आपकी आज्ञाके अधीन रहनेवाला मैं वैसा ही करूँगा॥ २०॥ तब वे मरीचि आदि सभी महर्षिगण भगवान् शंकरको प्रणाम कर अपने-अपने स्थानपर जानेके लिये उनसे प्रार्थनापूर्वक कहने लगे—॥ २१॥ आप आज्ञा दीजिये, इस समय हमलोग अपने स्थानको जायँ। आपके विवाहके दिन सभी देवताओंके साथ हमलोग आयेंगे॥ २२॥ तदनन्तर पत्नीके विरहजन्य दुःखसे शोकसंतप्त, अत्यधिक कामपीड़ित तथा आँखोंमें आँसू लिये भगवान् महादेवने उन महामुनियोंसे कहा—॥ २३॥ जबतक मैं अपनी एकमात्र प्राणवल्लभा गिरिराजतनयाको पत्नीरूपमें प्राप्त नहीं कर लूँगा, तबतक कष्टपूर्वक जीवन धारण करूँगा। कामसे जलाया जाता हुआ मैं यह बात प्रतिज्ञापूर्वक निश्चय ही आपके सम्मुख कह रहा हूँ। जब उन प्राणवल्लभा पार्वतीको प्राप्त कर लूँगा, तब उन देवीकी सभी प्रकारसे निरन्तर सेवा करता रहूँगा। कभी भी भूलकर जो उनको प्रिय नहीं है वैसा काम नहीं करूँगा। वे देवी जहाँ जायँगी, मैं भी वहीं जाऊँगा। मैं उन व्रतपरायणाको कभी आधे क्षणके लिये भी नहीं छोड़ूँगा॥ २४—२७½॥ तपोधनो! अब आपलोग अपने-अपने स्थानको जाइये। मैं इसी काननमें उन गिरिराजकुमारीका ध्यान करता हुआ स्थित रहूँगा॥ २८½॥

इत्येवमुक्त्वा गिरिशो विससर्ज महामुनीन्॥ २९॥
तेऽपि नत्वा ययुः सर्वे स्वस्वस्थानं महामते।
नारदस्तु ययौ तूर्णं ब्रह्मणो निकटं तदा॥ ३०॥
शिवस्योद्वाहवार्तां च तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।
तथैव विष्णवे प्राह गत्वा वैकुण्ठमुत्तमम्॥ ३१॥
श्रुत्वा तु हर्षसम्पूर्णौ बभूवतुरतीव तौ।
तावूचतुर्मुनिश्रेष्ठं गमिष्यावो महेशितुः॥ ३२॥
विवाहदर्शनार्थाय परिवारगणैः सह।
त्वं तु स्वर्गपुरं गत्वा महेन्द्राय वद द्रुतम्॥ ३३॥
स यातु त्रिदशैः सर्वैः सिद्धचारणकिन्नरैः।
महेशस्य विवाहेऽस्मिन्कर्तुं साहाय्यमुत्तमम्॥ ३४॥
ततः स नारदो गत्वा महेन्द्राय न्यवेदयत्।
शिवस्योद्वाहसंवादं ताभ्यां यच्चाभिभाषितम्॥ ३५॥
तच्छ्रुत्वा सुरराजोऽपि हर्षनिर्भरमानसः।
मेने मृत्युं तारकस्य भविष्यति सुनिश्चितम्॥ ३६॥
उद्योगं चाकरोद्गन्तुं विवाहे स महेशितुः।
नारदोऽपि ययौ स्वीयं स्थानमिन्द्रेण पूजितः॥ ३७॥

ऐसा कहकर भगवान् शंकरने उन मुनियोंको विदा कर दिया। महामते! वे लोग भी उनको प्रणाम कर अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ २९½॥ तब देवर्षि नारद शीघ्र ही ब्रह्माजीके पास पहुँच गये और उनसे उन्होंने भगवान् शंकरके विवाहसे सम्बन्धित सम्पूर्ण बात बता दी। श्रेष्ठ वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुसे भी उसी प्रकार कहा। यह सुनकर वे दोनों अत्यन्त हर्षित हो गये और मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे बोले—हम दोनों अपने परिवार तथा गणोंके साथ भगवान् शंकरका विवाह देखने अवश्य आयेंगे॥ ३०—३२½॥ आप शीघ्र ही स्वर्गलोकमें जाकर इन्द्रसे कह दीजिये कि वे सभी देवता, सिद्ध, चारण और किन्नरोंके साथ उत्तम सहायता करनेके लिये भगवान् शंकरके इस विवाहमें जायँ। तदनन्तर उन नारदजीने भगवान् शिवके विवाह-संवाद तथा उसके सम्बन्धमें उन दोनोंके द्वारा कही गयी बात इन्द्रको बता दी। उसे सुनकर हर्षसे प्रसन्नचित्त देवराज इन्द्रने भी यह मान लिया कि अब निश्चितरूपसे तारककी मृत्यु हो जायगी। तदनन्तर वे भगवान् शंकरके विवाहमें जानेके लिये तैयारीमें लग गये तथा नारद भी इन्द्रसे पूजित होकर अपने स्थानको चले गये॥ ३३—३७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शिवविवाहे ब्रह्मादिदेवतानिमन्त्रणं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार महाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें शिव-विवाहमें 'ब्रह्मादिदेवतानिमन्त्रण' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

हिमालयके घरमें विवाहका उपक्रम प्रारम्भ, भगवान् शंकरके यहाँ सभी देवताओंके आगमनपर हर्षोल्लास

श्रीमहादेव उवाच

अथाद्रिराजनगरे पार्वत्युद्वाहमङ्गलम्।
प्रावर्तत मुनिश्रेष्ठ जगतां हर्षवर्धनम्॥ १॥
भेरीमृदङ्गपणवतूर्यगोमुखनिःस्वनैः।
पूरितं सर्वतो भूमिनभोमध्यं महामते॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! उसके बाद गिरिराज हिमालयके नगरमें संसारका आनन्दवर्धन करनेवाला पार्वती-विवाहोत्सव प्रारम्भ हो गया॥ १॥ महामते! भेरी, मृदङ्ग, ढोल, तुरही तथा गोमुख (वाद्यविशेष)-की ध्वनिसे भूमि और आकाशका अन्तराल पूर्णरूपसे गुञ्जायमान हो उठा। उस समय

गन्धर्वाः शोभनं गानं चक्रुः परमहर्षिताः।
तथैवाप्सरसां नृत्यं प्रावर्तत मनोहरम्॥ ३॥

आयाता देवकन्याश्च तथैव गिरिकन्यकाः।
पुरे नगाधिराजस्य पार्वत्युद्वाहमीक्षितुम्॥ ४॥

ताः सर्वास्तोषितास्तेन नानालङ्करणादिभिः।
वस्त्रैश्च विविधैर्गौरीविवाहे मुनिपुङ्गव॥ ५॥

एवमासीद्गिरिपुरे मङ्गलं सुमहोत्सवम्।
वायुर्ववौ पुण्यगन्धयुतस्तत्र शनैः शनैः॥ ६॥

प्रसन्नमानसाः सर्वे तत्रासन् प्राणिनस्तदा।
दिशः प्रसन्नाः सर्वाश्च सुस्थमासीत्तथा जगत्॥ ७॥

अथेन्द्रस्त्रिदशैः सर्वैस्तथा गन्धर्वकिन्नरैः।
गन्तुं महेशसान्निध्यं प्रस्थानमकरोत्तदा॥ ८॥

एतस्मिन्नन्तरे श्रीमान् नारदो मुनिसत्तमः।
रतिं प्राह महादेवपार्वत्युद्वाहमङ्गलम्॥ ९॥

तत्र यान्ति सुराः सर्वे गन्धर्वैः किन्नरोरगैः।
त्वं याहि देवराजस्य सान्निध्यं मा चिरं कुरु॥ १०॥

विवाहहर्षयुक्तस्य महेशस्यान्तिके यदि।
त्वद्भर्तुर्जीवनार्थं ते कथयन्त्यमराः सति॥ ११॥

तदावश्यं शिवः कामदेहं सम्प्रापयिष्यति।
इत्युक्त्वा स मुनिः प्रायान्महेशस्यान्तिकं द्रुतम्॥ १२॥

रतिश्चापि समुद्युक्ता समभूद्भर्तृजीवने।
आगतं नारदं वीक्ष्य महेशः प्राब्रवीद्वचः॥ १३॥

स्वागतं तात चेदानीं कर्तव्यं च विधीयताम्।
स आह त्रिदशाः सर्वे समायान्ति महेश्वर॥ १४॥

सिद्धचारणगन्धर्वाः किन्नराश्च महर्षयः।
ततो रजन्यां वृत्तायां शुभे लग्ने सुरैः सह॥ १५॥

गन्तव्यं गिरिराजस्य पुरं शम्भो त्वया प्रभो।
भविष्यति त्वदुद्वाहो महोत्सवपुरःसरम्॥ १६॥

गन्धर्वगण अत्यन्त हर्षित होकर गा रहे थे और अप्सराएँ चित्ताकर्षक नृत्य कर रही थीं॥ २-३॥ देवताओं तथा पर्वतोंकी कन्याएँ पार्वतीका विवाह देखनेके लिये पर्वताधिपति हिमालयके पुरमें आ गयीं। मुनिश्रेष्ठ! गौरीके विवाहोत्सवमें उन हिमालयने अनेक प्रकारके वस्त्रों तथा अलंकारों आदिके द्वारा उन सभी कन्याओंको सन्तुष्ट किया॥ ४-५॥ इस प्रकार हिमालयके पुरमें मङ्गल विवाहोत्सवका अत्यन्त सुन्दर स्वरूप विद्यमान था। सुन्दर गन्धसे युक्त वायु धीरे-धीरे प्रवाहित होने लगी। उस अवसरपर सभी प्राणियोंके मनमें महती प्रसन्नता छा गयी थी, सभी दिशाएँ प्रकाशसे भर गयीं और सारा संसार स्वस्थ हो गया॥ ६-७॥ उस समय महेश्वरके पास जानेके लिये इन्द्रने भी समस्त देवताओं, गन्धर्वों और किन्नरोंके साथ प्रस्थान किया॥ ८॥

ठीक इसी समय मुनिश्रेष्ठ शोभासम्पन्न नारदजीने रतिसे कहा कि महादेव और पार्वतीका शुभ विवाह सम्पन्न हो रहा है, उसमें गन्धर्वों, किन्नरों और नागोंके साथ सभी देवता जा रहे हैं। तुम इस समय देवराज इन्द्रके पास जाओ, विलम्ब मत करो। विवाहकी प्रसन्नतासे युक्त महेशके पास जाकर यदि वे देवता तुम्हारे पतिके जीवनके लिये उनसे कहेंगे तो वे शिवजी निश्चितरूपसे कामदेवको पुनः शरीरकी प्राप्ति करा देंगे॥ ९—११½॥ ऐसा कहकर वे नारद मुनि शीघ्रतापूर्वक महेश्वरके पास चले गये और इधर रति भी अपने पतिके जीवनके लिये प्रयत्नशील हो गयी॥ १२½॥ अपने यहाँ आये नारदजीको देखकर महेशने यह वचन कहा—तात! आपका स्वागत है; इस समय जो भी कार्य करनेयोग्य हो, उसे आप सम्पन्न करें॥ १३½॥ तब नारदजीने कहा—महेश्वर! सभी देवता, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, किन्नर और महर्षिगण आ रहे हैं। अतः शम्भो! प्रभो! आपको देवताओंके साथ रात्रि आनेपर शुभ लग्नमें हिमालयके पुरके लिये प्रस्थान करना चाहिये। वहाँ महान् उत्सवके साथ आपका विवाह सम्पन्न होगा॥ १४—१६॥

एतस्मिन्नन्तरे सर्वैर्देवगन्धर्वकिन्नरैः।
देवराजः समायातो महेशस्यान्तिकं तदा॥ १७॥

ते प्रणम्य महादेवं सर्वलोकस्य कारणम्।
ऊचुर्देवाः प्रभो किं त्वमाज्ञापयसि साम्प्रतम्॥ १८॥

स आह मद्विवाहेऽस्मिन्यथायोग्यं विधीयताम्।
ततः प्रावर्तयच्छम्भोर्विवाहे मङ्गलं महत्॥ १९॥

देवराजः प्रीतिमनाः शम्भोस्तत्र तपोवने।
भेर्यादिनिःस्वनैः सर्वाः पूरिताश्च दिशो दश॥ २०॥

अभवन्मुनिशार्दूल गन्धर्वा ललितं जगुः।
समभूत्पुष्पवृष्टिश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ २१॥

प्रफुल्लचारुपुष्पौघनतशाखाश्च शाखिनः।
समासन्देवदेवस्य कानने मुनिपुङ्गव॥ २२॥

कोकिला रुचिरं शब्दं भ्रमराश्च सहस्रशः।
चक्रिरे कानने तस्मिन्वायुर्मलयजो ववौ॥ २३॥

अथ तत्र समायातो ब्रह्मा लोकपितामहः।
सहैव मानसैः पुत्रैर्वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः॥ २४॥

तथा नारायणश्चापि समायातः शिवान्तिकम्।
सार्धं लक्ष्म्या सरस्वत्या द्रष्टुमुद्वाहमङ्गलम्॥ २५॥

इत्येवमागतांस्तांश्च दृष्ट्वा विश्वेश्वरस्तदा।
प्रहृष्टचेताः समभूत्सुप्रसन्नमुखाम्बुजः॥ २६॥

उसी समय सभी देवताओं, गन्धर्वों और किन्नरोंको साथ लिये देवराज इन्द्र महेशके पास आ गये। समग्र जगत्‌के कारणस्वरूप महादेवको प्रणाम करके उन देवताओंने कहा—प्रभो! इस समय हमारे लिये आपका क्या आदेश है?॥ १७-१८॥ इसपर उन्होंने कहा—मेरे इस विवाहमें जो भी आपलोगोंके करनेयोग्य हो, आपलोग उसे करें। इसके बाद शिवके विवाहमें महान् मङ्गल आरम्भ हो गया॥ १९॥ देवराज इन्द्रका मन प्रसन्नतासे प्रफुल्लित था। शम्भुके उस तपोवनमें भेरी आदि बाजोंकी ध्वनिसे सभी दसों दिशाएँ गुञ्जित हो गयीं। मुनिश्रेष्ठ! गन्धर्वलोग मनोहर गान करने लगे, पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और अप्सराएँ नाचने लगीं। मुनिवर! देवाधिदेव शिवके तपोवनमें वृक्षोंकी शाखाएँ खिले हुए सुन्दर पुष्पगुच्छोंसे झुक गयीं। उस वनमें हजारों कोयल और भौंरे मनोहर गान करने लगे और मलयानिल बहने लगा॥ २०—२३॥

तत्पश्चात् लोकपितामह ब्रह्मा महर्षि वसिष्ठ आदि अपने मानस पुत्रोंके साथ वहाँ आ गये और भगवान् विष्णु भी माङ्गलिक विवाह देखनेके लिये सरस्वती तथा लक्ष्मीके साथ भगवान् शिवके पास पहुँच गये॥ २४-२५॥ इस प्रकार आये हुए उन देवताओंको देखकर विश्वेश्वर शिवका हृदय प्रफुल्लित हो गया और उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठा॥ २६॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शिवविवाहोत्सवे देवतासमागमो नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'शिवविवाहोत्सवमें देवतासमागम' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

ब्रह्मा, विष्णु तथा रतिद्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकरका कामदेवको पुनः जीवित करना, ब्रह्माजीके निवेदनपर भगवान् शंकरका विवाहके लिये सौम्यरूप धारण करना और बड़े उल्लासके साथ शिव-बारातका प्रस्थान

श्रीमहादेव उवाच

समायाता कामपत्नी रतिः सर्वाङ्गसुन्दरी।
पतिशोकसुदुःखार्ता कृशाङ्गी साश्रुलोचना॥ १॥
पुरन्दरमिदं प्राह सम्मुखे संस्थिता सती॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर अपने पतिके वियोगके कारण उत्पन्न व्यथासे अत्यन्त व्याकुल तथा कृशकाय सर्वाङ्गसुन्दरी कामदेवपत्नी रति इन्द्रके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी और आँखोंमें आँसू भरकर उनसे यह कहने लगी—॥ १-२॥

रतिरुवाच

पूर्वं तवाज्ञया भर्ता मम प्राणैकवल्लभः।
प्रक्षिप्य शम्भवे बाणं भस्मतां प्राप तत्क्षणात्॥ ३॥

तदा रुदन्तीं दुःखेन मामवोचद्भवानिदम्।
मा शोकं कुरु ते भर्ता पुनर्देहमवाप्स्यति॥ ४॥

परिगृह्णाति दारांस्तु साम्प्रतं शंकरोऽपि च।
तेन बाणेन मुग्धः सन् यूयं पूर्णमनोरथाः॥ ५॥

पतिर्मम गतस्तस्य न चेष्टयसि जीवने॥ ६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमाभाष्य बहुधा रतिः पतिवियोगिनी।
रुरोद देवराजस्य पुरतो ब्रह्मणोऽपि च॥ ७॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा देवराजस्तु शंकरम्।
सम्प्रार्थ्योवाच वचनं विवाहोत्सुकमानसम्॥ ८॥

तावूचतुः प्रभो देव प्रणतानां कृपाकर।
देवानामुपकाराय कार्यमेकं कुरुष्व वै॥ ९॥

यदाऽस्मद्वचनात्कामस्त्वयि बाणं विमोचयन्।
विनिर्ययौ तदोवाच देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ १०॥

यदि क्रुद्धो महादेवो मां नाशयति मत्कृते।
तदा भवद्भिस्त्रिदशैर्यतितव्यं यथोचितम्॥ ११॥

तैश्च प्रतिश्रुतं तस्मै एवमेवेति शंकर।
स तद्वत्क्रोधसम्भूतवह्निना ज्वलितस्तदा॥ १२॥

भस्मतां प्राप तत्पत्नी रतिस्तस्मादुपागता।
शोकसंतप्तहृदया याचते पतिमात्मनः॥ १३॥

यदि त्वं कृपया कामदेहं प्रापयसि प्रभो।
तदा देवाः सत्यवाक्या भवन्ति त्रिदशेश्वर॥ १४॥

रतिः प्राप्नोति भर्तारं जगन्मोहनकारणम्।

रति बोली—पूर्वकालमें आपके आदेशसे मेरे एकमात्र प्राणप्रिय पति कामदेव शिवजीपर बाण चलाकर उसी समय भस्म हो गये थे। तब दुःखके कारण मुझ रुदन करती हुईसे आपने यह कहा था—'शोक मत करो; तुम्हारे पतिको पुनः देहकी प्राप्ति हो जायगी।' उस बाणसे मोहित होकर शंकरजी भी इस समय पत्नी प्राप्त कर रहे हैं और इससे आपलोगोंका भी मनोरथ पूर्ण हो गया, किंतु मेरे पति तो मर गये और आप उन्हें जीवित करनेकी चेष्टा नहीं कर रहे हैं॥ ३—६॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर पतिके वियोगसे व्यथित रतिने देवराज इन्द्र तथा ब्रह्माके सामने बहुत प्रकारसे विलाप किया॥ ७॥ उसकी बातें सुनकर भगवान् ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्र विवाहके लिये उत्सुकचित्तवाले शंकरसे प्रार्थनापूर्वक यह वचन बोले—॥ ८॥

उन दोनोंने कहा—शरणागतोंपर कृपा करनेवाले प्रभो! देव! अब आप देवताओंके उपकारके लिये एक कार्य कर दीजिये। जब हमलोगोंका वचन मानकर कामदेवने आपके ऊपर बाण छोड़नेके लिये प्रस्थान किया था, तब उसने इन्द्रके नेतृत्वमें आये हुए सभी देवताओंसे कहा था, 'मेरे इस कृत्यसे कुपित होकर यदि महादेव मुझे नष्ट कर देंगे, तब आप देवतागण मेरे जीवनके लिये यथोचित प्रयास कीजियेगा।' शंकर! 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर वे देवतागण उससे वचनबद्ध हो गये थे॥ ९—११½॥ इस प्रकार वह कामदेव आपके क्रोधसे उत्पन्न अग्निसे जलकर राख हो गया। अब शोकसे संतप्तहृदयवाली उसकी पत्नी रति यहाँ आयी हुई है और अपने पतिके लिये याचना कर रही है। प्रभो! त्रिदशेश्वर! यदि आप कृपा करके कामदेवको जीवित कर देते हैं तो इससे (रतिको दिया गया) देवताओंका वचन सत्य हो जाता है और रति भी जगत्‌को मोहित करनेवाले पतिको प्राप्त कर लेगी॥ १२—१४½॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य महादेवः प्रणतानां कृपाकरः॥ १५॥
कामस्य प्रापयामास पुनर्देहं महामुने।
सम्प्राप्य देहं कामस्तं प्रणिपत्य महेश्वरम्॥ १६॥
सर्वान् देवांश्चाभिवाद्य रत्याः पार्श्वं जगाम ह।
रतिः पतिं समासाद्य हर्षनिर्भरमानसा॥ १७॥
बभूव मुनिशार्दूल देवाश्च हर्षसंयुताः।
अथ प्रवृत्ता रजनी शशाङ्कश्च सुनिर्मलः॥ १८॥
प्रवृद्धतेजा विबभौ देवाश्चक्रुर्महोत्सवम्।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा प्राह देवं सदाशिवम्॥ १९॥
विभूतिभूषणं पिङ्गजटामौलिं चतुर्भुजम्।

ब्रह्मोवाच

शम्भो तवेदं परमं रूपं देवादिदुर्लभम्॥ २०॥
योगिनां मानसोत्साहजनकं प्रीतिवर्धनम्।
इदं संहृत्य रूपं वै धेहि सौम्यतमं प्रभो॥ २१॥
यथातिहर्षमाप्नोति श्वशुरस्ते नगाधिपः।
विलोक्य मेनका चापि श्वश्रूस्त्वामतिसुन्दरम्॥ २२॥
सर्वाङ्गसुन्दरी गौरी तुभ्यं देया महाद्रिणा।
यथा तस्य भवेत्प्रीतिस्तथा कुरु महेश्वर॥ २३॥
यथा बिभेति काचिन्न वीक्ष्य त्वां भीमरूपिणम्।
तथा चारुतरं रूपं द्विभुजैकाननं शिवम्॥ २४॥
देव देव विधेहि त्वं विवाहे स्मरसूदन।

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो ब्रह्मणा शम्भुस्तत्क्षणान्मुनिपुङ्गव॥ २५॥
बभूव द्विभुजः सौम्यरूपश्चैकाननः क्षणात्।
जटास्वर्णकिरीटत्वं प्राप त्वग्निः सुचित्रताम्॥ २६॥
भस्मासीच्चन्दनं गात्रे शेषः स्वर्णविभूषणम्।

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! ऐसा सुनकर प्रणतजनोंपर कृपा करनेवाले महादेवने फिरसे कामदेवको शरीरकी प्राप्ति करा दी। तब कामदेवने देह प्राप्त कर उन महेश्वरको प्रणाम किया और सभी देवताओंका अभिवादन करनेके बाद वह रतिके पास चला गया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार पति कामदेवको प्राप्त करके रतिका मन हर्षसे भर उठा और देवतागण प्रसन्नतासे युक्त हो गये। मनोहर रात्रिवेला उपस्थित हो गयी और चन्द्रमा अत्यन्त निर्मल हो गया। देवताओंके तेजमें वृद्धि हो गयी और वे महान् उत्सव मनाने लगे॥ १५—१८½॥ इसी समय ब्रह्माजी पीले-लाल-मिश्रित वर्णके जटासे युक्त मस्तकवाले तथा आभूषणके रूपमें विभूति धारण करनेवाले चतुर्भुज भगवान् सदाशिवसे कहने लगे—॥ १९½॥

ब्रह्माजीने कहा—शम्भो! आपका यह श्रेष्ठ रूप देवता आदिके लिये दुर्लभ, योगियोंके मनमें उत्साह पैदा करनेवाला तथा प्रेमको बढ़ानेवाला है। प्रभो! अब आप इस रूपको तिरोहित करके सौम्यतम रूप धारण कीजिये; जिससे कि आपके श्वशुर गिरिराज हिमालय तथा सास मेनका भी आपको अति सुन्दर देखकर प्रसन्नता प्राप्त करें॥ २०—२२॥

महेश्वर! हिमालय आपको अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी पुत्री गौरीका अर्पण करनेवाले हैं, अतः जिस भी तरहसे उनकी प्रसन्नता हो, आप वैसा ही कीजिये। कामदेवका नाश करनेवाले देवाधिदेव! आप विवाहमें दो भुजाओं तथा एक मुखसे युक्त उस तरहका अत्यन्त सुन्दर तथा कल्याणकारी रूप धारण कीजिये, जिससे कि आपको भयानक रूपवाला देखकर कोई भी स्त्री भयभीत न हो॥ २३-२४½॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माके ऐसा कहते ही उसी क्षण भगवान् शिव दो भुजाओं तथा एक मुखसे युक्त सौम्यरूपवाले हो गये। क्षणभरमें उनकी जटा सोनेका मुकुट हो गयी, अग्निरूप तीसरा नेत्र अत्यन्त सुन्दर हो गया, शरीरमें लगा हुआ भस्म चन्दन हो गया और शेष स्वर्णका आभूषण हो गये॥ २५-२६½॥

अथ तं त्रिदशेशानं सम्प्राप्यातिशुभे क्षणे ॥ २७ ॥
वृषपृष्ठे समारोप्य देवगन्धर्वकिन्नराः।
गिरीन्द्रस्य पुरं गन्तुं मनश्चक्रुर्महामते ॥ २८ ॥
प्रयाणकाले त्रिदशेश्वरस्य
बभूव वृष्टिः कुसुमावलीनाम्।
स्वर्वासिनां दुन्दुभिनिःस्वनौघै-
र्दिगन्तमासीत्परिपूरितं मुने ॥ २९ ॥
वायुर्ववौ शैत्यसुगन्धयुक्तः
शनैः शनैर्वै चुक्रुशुः पतत्रिणः।
सुशोभितं ते प्रमथा अपि ध्वनिं
चक्रुः सुघोरं वदनेन हर्षिताः ॥ ३० ॥
एवं प्रवृत्ते वृषभध्वजस्तदा
सार्धं समस्तैस्त्रिदशैर्मुनीश्वरैः।
प्रायाद्गिरीन्द्रस्य पुरं महामते
सकिन्नरश्चारुशशाङ्कशेखरः ॥ ३१ ॥

इसके बाद महेश्वरके पास आकर शुभ मुहूर्तमें उन देवेश्वरको बैलकी पीठपर बैठाकर देवताओं, गन्धर्वों और किन्नरोंने गिरिराज हिमालयके पुरको प्रस्थान करनेके लिये मनमें निश्चय किया ॥ २७-२८ ॥ मुने! देवेश्वर शिवके प्रस्थानके समय पुष्प-राशिकी वर्षा होने लगी और स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंकी दुन्दुभियोंकी तीव्र ध्वनियोंसे दिशाएँ परिपूर्ण हो गयीं। शीतल तथा सुगन्धित हवा मन्द-मन्द बहने लगी, पक्षी कलरव करने लगे और प्रमथगण भी अत्यन्त हर्षित होकर मुखसे सुन्दर तथा अति तीव्र ध्वनि करने लगे ॥ २९-३० ॥ महामते! इस प्रकार समस्त वैवाहिक तैयारियाँ पूर्ण हो जानेपर सुन्दर चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण करनेवाले वृषभध्वज भगवान् शिवने सभी देवताओं, मुनीश्वरों और किन्नरोंके साथ गिरिराज हिमालयके पुरके लिये प्रस्थान किया ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीशिवस्य हिमालयपुर आगमनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीशिवका हिमालयपुर-आगमन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

हिमालयद्वारा बारातका यथोचित सत्कार करना, शिव-पार्वतीके माङ्गलिक विवाहोत्सवका वर्णन, शिव-पार्वतीके विवाहोत्सवके पाठकी महिमा

श्रीमहादेव उवाच

अथाद्रिराजो ज्ञात्वा तु समायान्तं महेश्वरम्।
आगत्याभ्यर्च्य विधिवत्पुरमावेशयत्स्वयम्॥ १ ॥
ब्रह्माणं च तथा विष्णुं तथेन्द्रादिसुरोत्तमान्।
पूजयित्वा यथान्यायं पुरमावेशयद्गिरिः॥ २ ॥
मरीच्यादीन्महर्षींश्च पूजयित्वा यथोचितम्।
स्वपुरं प्रापयामास गिरीन्द्रो हृष्टमानसः॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इसके बाद महेश्वरको आया हुआ जानकर गिरिराज हिमालयने वहाँ आकर उनकी विधिवत् पूजा की और उन्हें स्वयं पुरमें प्रवेश कराया। साथ ही हिमालयने ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंकी यथोचित पूजा करके उन्हें भी अपने पुरमें प्रवेश कराया। इसी प्रकार प्रसन्नचित्त गिरिराज हिमालय मरीचि आदि महर्षियोंकी भी यथोचित पूजा करके उन्हें अपने पुर ले गये ॥ १—३ ॥

विलोक्य पार्वतीनाथं शान्तं सुरुचिराननम्।
द्विभुजं रत्नभूषाढ्यं दिव्यस्वर्णकिरीटिनम्॥ ४ ॥
शशाङ्काङ्कितमूर्धानं शतसूर्यसमप्रभम्।
मुमोद मेनका तद्वद्गिरीन्द्रोऽपि हिमालयः॥ ५ ॥
तदान्ये ये समायाता देवगन्धर्वकिन्नराः।
ते वीक्ष्य पार्वतीनाथं चक्षुरन्यत्र नाक्षिपन्॥ ६ ॥
ऊचुः परस्परं सर्वे यथा गौरी सुरूपिणी।
तथैव रूपसम्पन्नो महादेवो जगत्पतिः॥ ७ ॥
अथाद्रिनाथः सम्प्राप्ते काले चातिसुलक्षणे।
पार्वतीं देवदेवाय समभ्यर्च्य ददौ स्वयम्॥ ८ ॥
यथोक्तविधिना शम्भुस्तां जग्राह हिमात्मजाम्।
भार्यात्वेन प्रहृष्टात्मा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ९ ॥



तदा गिरीन्द्रनगरे महानासीन्महोत्सवः।
यथा न भूतः कुत्रापि भविता वा न कुत्रचित्॥ १० ॥
प्रहृष्टमानसाः सर्वे देवा आसन्महामते।
हरे गृहीतदारे तु देवाः पूर्णमनोरथाः॥ ११ ॥
प्रशशंसुर्मुहुः कामं महादेवविमोहनम्।
विलोक्य शंकरं तत्र पार्वत्या सहितं सुराः॥ १२ ॥
ऊचुः परस्परं सर्वे गन्धर्वाश्च महर्षयः।
अहो बहुतरं भाग्यं गिरिराजस्य धीमतः॥ १३ ॥
यतः स्वयं जगन्माता कन्यात्वं समुपागता।

रत्नोंके आभूषणोंसे अलङ्कृत, सोनेके दिव्य मुकुटसे सुशोभित, दो भुजाओं तथा अत्यन्त सुन्दर मुखवाले, चन्द्रमासे सुशोभित सिरवाले और सैकड़ों सूर्योंकी प्रभाके तुल्य प्रतीत होनेवाले शान्तस्वभाव पार्वतीनाथ शिवको देखकर मेनका और उसी तरह गिरिराज हिमालय भी अत्यन्त आनन्दित हुए॥ ४-५॥ उस अवसरपर जो अन्य देव, गन्धर्व तथा किन्नर आये हुए थे, वे एकटक पार्वतीनाथ शिवजीको ही देख रहे थे और अन्यत्र कहीं भी दृष्टि नहीं ले जा रहे थे। सभी लोग आपसमें यह कहते थे कि जैसे गौरी रूपवती हैं, वैसे ही जगत्पति महादेव भी रूपसम्पन्न हैं॥ ६-७॥ इसके बाद सुन्दर लक्षणोंसे युक्त मुहूर्त आनेपर गिरिराज हिमालयने पार्वतीका पूजन करके वैवाहिक विधिसे देवाधिदेव शिवको प्रदान कर दी और प्रसन्नमन शम्भुने जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करनेवाली उन हिमालयपुत्री पार्वतीका पत्नीरूपमें पाणिग्रहण किया॥ ८-९॥ उस समय गिरीन्द्र हिमालयके नगरमें ऐसा महान् उत्सव सम्पन्न हुआ, जैसा कभी हुआ नहीं था और आगे कहीं होनेवाला भी नहीं है। महामते! उस समय सभी देवताओंके मनमें प्रसन्नता छायी हुई थी॥ १०½॥

इस प्रकार पार्वतीके साथ महादेवका विवाह सम्पन्न हो जानेपर देवताओंका मनोरथ पूर्ण हो गया और वे महादेवको मुग्ध करनेवाले कामदेवकी बार-बार प्रशंसा करने लगे॥ ११½॥ वहाँपर पार्वतीसहित भगवान् शंकरको देखकर सभी देवता, गन्धर्व और ऋषिगण परस्पर कहने लगे—'अहो, बुद्धिसम्पन्न गिरिराज हिमालयका महान् सौभाग्य है कि साक्षात् जगज्जननी भगवती उन्हें कन्यारूपमें प्राप्त हुई हैं॥ १२-१३½॥

या सूते सकलं विश्वं स्वेच्छया प्रकृतिः परा॥ १४॥

सा प्राप यद्गृहे जन्म कन्यारूपेण लीलया।
तत्फलं नाल्पतपस एतस्य गिरिभूपतेः॥ १५॥

किं वाच्यमतुलं भाग्यं मेनायाः पूर्वसञ्चितम्।
एतस्यास्त्रिजगन्मातुरपि माताऽभवद्यतः॥ १६॥

प्रभावं को महेशस्य लोके वक्तुं क्षमो भवेत्।
रूपं वा विभवं वापि वाचातीतं मनोतिगम्॥ १७॥

एवमन्यद्बहुविधं प्रोचुः सर्वे परस्परम्।
विलोक्य रूपसम्पन्नौ पार्वतीपरमेश्वरौ॥ १८॥

ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् भगवन्तं महेश्वरम्।
पार्वत्या सहितं प्राह शान्तं हर्षसमाकुलम्॥ १९॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

प्रभो देव सतीयं सा पार्वती तव गेहिनी।
यस्या वियोगदुःखार्तस्तपस्तप्तुं भवान्पुरा॥ २०॥

सेयं भगवती देवी जगदाद्या सनातनी।

श्रीमहादेव उवाच

ततो हिमालयः शम्भुं तुष्टाव भक्तिसंयुतः॥ २१॥

हिमालय उवाच

देवदेव महादेव भक्तवत्सल शंकर।
नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं नमो नमः॥ २२॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
पश्यामि यज्जगन्नाथं जगन्मात्रा समं दृशा॥ २३॥

जो परा प्रकृति अपनी इच्छासे सम्पूर्ण विश्वका सृजन करती हैं, उन्होंने जो हिमालयके घरमें लीलापूर्वक कन्यारूपमें जन्म लिया है, वह इन गिरिराज हिमालयकी अल्प तपस्याका फल नहीं है। मेनाके पूर्वजन्मके संचित अतुलनीय भाग्यका क्या वर्णन किया जाय जो कि ये जगज्जननी इन पार्वतीकी भी माताके रूपमें प्रतिष्ठित हुई हैं। लोकमें ऐसा कौन है जो वाणीसे परे तथा मनके लिये अत्यन्त दुर्गम महेश्वरके प्रभाव, रूप तथा वैभवका वर्णन करनेमें समर्थ है?' इस प्रकार रूपसे सम्पन्न पार्वती तथा परमेश्वरको देखकर सभी लोग आपसमें अन्य प्रकारकी बहुत-सी बातें कर रहे थे॥ १४—१८॥ ब्रह्मा और भगवान् विष्णु पार्वतीसहित हर्षयुक्त तथा शान्त भगवान् महेश्वरसे इस प्रकार कहने लगे—॥ १९॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले—प्रभो! देव! आपकी भार्या ये पार्वती वे ही सती हैं, जिनके वियोगजनित दुःखसे व्यथित होकर आप पूर्वकालमें तपस्यामें लीन हो गये थे। ये वे ही जगत्की आदिस्वरूपिणी सनातनी भगवती देवी हैं॥ २०½॥

श्रीमहादेवजी बोले—[मुने!] तदनन्तर हिमालय भक्तिपूर्वक शम्भुकी स्तुति करने लगे॥ २१॥

हिमालय बोले—भक्तोंपर दया करनेवाले देवदेव! महादेव! शंकर! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है,* आपको बार-बार नमस्कार है। आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरा जीवन सज्जीवन बन गया जो कि मैं अपने नेत्रोंसे जगज्जननीसहित जगन्नाथ शिवको देख रहा हूँ॥ २२-२३॥

* यहाँ कायिक, वाचिक तथा मानसिक नमस्कारके तात्पर्यसे '**नमस्तुभ्यम्**' पदका तीन बार प्रयोग किया गया है।

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुवन्तं सद्भक्त्या गिरिराजं महामुने।
उवाच भगवाञ्छम्भुः प्रीणयन्वचनामृतैः॥ २४॥

गिरीन्द्र त्वं महाप्राज्ञ मम मूर्त्यन्तरं स्वयम्।
भाग्यवानसि देवानां सम्मान्यश्च विशेषतः॥ २५॥

अद्यारभ्याध्वरे भागो मया ते परिकल्पितः।
न त्वां विना करिष्यन्ति मर्त्ये यज्ञं गिरीश्वर॥ २६॥

यथा हविर्भुजः सर्वे देवा यज्ञोत्सवे गिरे।
तथा त्वमपि यज्ञानां भोक्ता मर्त्ये भविष्यसि॥ २७॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! इस प्रकार परा भक्तिसे स्तुति करते हुए गिरिराज हिमालयसे भगवान् शंकरने अपनी अमृतरूपी वाणीसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहा—गिरीन्द्र! महाप्राज्ञ! आप स्वयं मेरे ही अन्य विग्रहके रूपमें हैं, आप भाग्यशाली हैं और देवताओंके लिये विशेषरूपसे आदरणीय हैं। आजसे मैं आपके लिये यज्ञभाग सुनिश्चित कर दे रहा हूँ। गिरीश्वर! मृत्युलोकमें आपके बिना लोग यज्ञ सम्पन्न नहीं करेंगे। गिरे! जिस प्रकार सभी हविभोक्ता देवतागण यज्ञोत्सवमें अपना-अपना भाग प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार आप भी मृत्युलोकमें सम्पन्न होनेवाले यज्ञोंमें भाग प्राप्त करेंगे॥ २४—२७॥

हिमालय उवाच

प्रभो त्वद्वरदानेन कृतार्थोऽस्मि जगद्गुरो।
अन्यदस्ति वरं शम्भो प्रार्थनीयं कृपानिधे॥ २८॥

अनया सह पार्वत्या रमस्वात्र महेश्वर।
पवित्रं कुरु मां देव शरणागतवत्सल॥ २९॥

हिमालय बोले—प्रभो! जगद्गुरो! आपके वरदानसे मैं कृतार्थ हो गया हूँ। शम्भो! कृपानिधे! अब मैं एक अन्य वरदानके लिये प्रार्थना कर रहा हूँ। शरणागतोंपर वात्सल्यभाव रखनेवाले महेश्वर! देव! इस पार्वतीके साथ आप यहींपर रमण कीजिये और मुझे पवित्र कर दीजिये॥ २८-२९॥

श्रीमहादेव उवाच

करिष्ये त्वत्पुरस्याहमदूरे पर्वताधिप।
तत्रैव शिखरे देव्या पार्वत्या प्रीतमानसः॥ ३०॥

पश्यन्ति मां गिरे लोका गिरीशं तेन हेतुना॥ ३१॥

श्रीमहादेवजी बोले—पर्वतराज! मैं देवी पार्वतीसहित प्रसन्नचित्त रहते हुए आपके इस पुरके समीपमें आपके शिखरपर वास करूँगा। गिरे! इसी कारणसे लोग मुझे गिरीश नामसे जानेंगे॥ ३०-३१॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्मै वरं दत्त्वा तस्मिन्नेव नगोत्तमे।
निर्माय नगरं रम्यं तत्रोवास सहोमया॥ ३२॥

ब्रह्माद्या देवताः सर्वाः स्वस्वस्थानं तदा ययुः।
अध्यायमेनं पार्वत्या विवाहोत्सवमङ्गलम्॥ ३३॥

यः शृणोति पठेद्वापि स देव्याः पदमाप्नुयात्।
न तस्य विद्यते भीतिः शत्रुतो राजतोऽपि वा॥ ३४॥

प्राप्नोति च मनोऽभीष्टं सकृदाकर्ण्य मानवः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महादेव्याः प्रसादतः॥ ३५॥

श्रीमहादेवजी बोले—[मुने!] इस प्रकार उन हिमालयको यह वर प्रदान करके भगवान् शिव उसी उत्तम हिमालय पर्वतपर सुरम्य नगरका निर्माण कर पार्वतीके साथ वहाँ रहने लगे। इसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ३२½॥

जो प्राणी पार्वतीके शुभ विवाहोत्सवसम्बन्धी इस माङ्गलिक अध्यायका श्रवण या पाठ करता है, वह भगवतीके चरणोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेता है और उसे शत्रु या राजाका भी कोई भय नहीं रह जाता है। इसका एक बार भी श्रवण कर लेनेपर मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है और देवीकी कृपासे वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३३—३५॥

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ यथा प्राप महेश्वरः।
भूयस्तां प्रकृतिं पूर्णां या सती दक्षकन्यका॥ ३६॥

इदानीं शृणु पुत्रोऽभूद्यथा तारकसूदनः।
कार्तिकेयो महाबाहुर्देवानां परिरक्षकः॥ ३७॥

न येन सदृशः कश्चिन्महाबलपराक्रमः।
धनुर्धरस्त्रिलोकेषु विद्यते भवितापि न॥ ३८॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपको वह सब बता दिया, जिस प्रकार भगवान् महेश्वरने पूर्णप्रकृति दक्षकन्या सतीको फिरसे प्राप्त किया था॥ ३६॥ अब आप वह कथा सुनिये, जिस प्रकारसे देवताओंके रक्षक, तारकका वध करनेवाले तथा विशाल भुजाओंवाले शिवपुत्र कार्तिकेय उत्पन्न हुए; जिनके समान महान् बलशाली, पराक्रमी तथा धनुर्धर तीनों लोकोंमें भी न कोई है और न होगा ही॥ ३७-३८॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे पार्वतीविवाहमङ्गलं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'पार्वतीविवाहमङ्गल' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

शिव-पार्वतीका एकान्त-विहार, पृथ्वीदेवीका गोरूप धारण कर देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें आश्वस्त करना और कुमार कार्तिकेयके प्रादुर्भाव होनेकी बात बताना

श्रीमहादेव उवाच

अहर्निशमनुस्मृत्य पार्वतीलाभकारणम्।
तपःक्लेशं महादेवस्तस्यां प्रीतिकरोऽभवत्॥ १॥

तद्वाक्यश्रवणे कर्णौ लोचनं रूपदर्शने।
तन्मनोरञ्जने चेतः सन्नियोज्य निरन्तरम्॥ २॥

प्रीतिं सञ्जनयामास पार्वत्याः प्रीतिसंयुतः।
एकदा वन्यपुष्पाणि समानीय महेश्वरः॥ ३॥

निर्माय मालां रुचिरां कर्पूरागरुचर्चिताम्।
पार्वत्याः सम्प्रदायाङ्गे प्रेम्णालिङ्ग्य स्मरातुरः॥ ४॥

रम्यं मनो दधे पुत्रमुत्पादयितुमादृतः।

श्रीमहादेवजी बोले—[मुने!] पार्वतीको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की गयी तपस्याके क्लेशका दिन-रात स्मरण करके महादेवजी उन पार्वतीमें प्रेमासक्त हो गये॥ १॥ भगवतीके वचनको सुननेमें ही अपने कानोंको निरन्तर नियुक्त कर दिया था। आँखें उनके रूप-दर्शनमें समर्पित थीं, उनके मनको प्रसन्न करनेके लिये उनके चित्तकी सारी चेष्टाएँ निरन्तर नियोज्य थीं। इस प्रकार पार्वतीमें प्रेमासक्त भगवान्ने उनमें प्रीति उत्पन्न की॥ २१/२॥

एक समयकी बात है—महेश्वरने वनसे पुष्प लाकर एक सुन्दर माला बनायी और उसे कपूर तथा अगरुसे विलेपित करके पार्वतीके गलेमें डाल दी। पुनः प्रेमपूर्वक भगवान् महादेवने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे पार्वतीके प्रति अपने मनमें आदरपूर्वक सहधर्मिताकी भावना धारण की॥ ३-४१/२॥

नन्दिनं प्राह भगवान्न ममाज्ञां विनात्र वै॥ ५॥
समानीयो जनः कोऽपि देवो वा देववन्दितः।
तथा रक्ष पुरद्वारं समस्तैः प्रमथैर्वृतः॥ ६॥

भगवान् शिवने नन्दीसे कहा—'तुम सभी प्रमथगणोंके साथ पुरकी इस प्रकार रखवाली करो कि मेरी आज्ञाके बिना यहाँ कोई भी प्राणी न आ सके, चाहे वह कोई देवता हो अथवा देववन्द्य ही क्यों न हो'॥ ५-६॥

तच्छ्रुत्वा सोऽपि तच्चक्रे पुरद्वाराभिरक्षणम्।
सहितैः प्रमथैः सर्वैर्देवदेवस्य शासनात्॥ ७॥

यह सुनकर देवाधिदेवकी आज्ञासे वे नन्दी समस्त प्रमथगणोंके साथ उस पुरके द्वारकी रक्षामें तत्पर हो गये॥ ७॥

ततो रहसि पार्वत्या दश वर्षाणि पञ्च च।
रेमे स भगवान् शम्भुः कामेन परिमोहितः॥ ८॥
दिवा वा रजनीं वापि न प्रजज्ञे तदा हरः।
प्रेमानन्दनिमग्नः सन् कामव्यापृतमानसः॥ ९॥
एवं हि रममाणस्य महेशस्य कदाचन।
रेतः पपात नो वापि नो वा शान्तिर्बभूव ह॥ १०॥

तदनन्तर भगवान् शिव पार्वतीके साथ दीर्घकालतक विहार करते रहे। उस समय स्नेहयुक्त मनवाले शिवको प्रेमके आनन्दमें निमग्न रहनेके कारण न तो दिन अथवा रातका भान ही रहा और न शान्ति ही मिली॥ ८—१०॥

तस्य पादप्रहारेण वसुधा परिपीडिता।
सूर्यस्यान्तिकमभ्यायाद्गोरूपा मुनिपुङ्गव॥ ११॥
तस्मै सा कथयामास रुदती साश्रुलोचना।
महेशपादसङ्घातजनितोत्पातमात्मनः॥ १२॥

मुनिश्रेष्ठ! उनके पैरके प्रहारसे पीड़ित हुई पृथ्वी गायका रूप धारण करके सूर्यके पास गयी और आँखोंमें आँसू भरकर रोते हुए उसने महेशके पादप्रहारसे उत्पन्न हुए अपने प्रति किये गये उपद्रवके विषयमें सूर्यसे इस प्रकार निवेदन किया—॥ ११-१२॥

दिवाकर हिमप्रस्थे पार्वत्या भगवान्हरः।
रमते सुचिरं काममोहितात्मा जगत्प्रभुः॥ १३॥
शिवशक्त्योः स्वभारेण पीडिताहमहर्निशम्।
न स्थातुमभिशक्नोमि ममोपायं वद द्रुतम्॥ १४॥
स तु तां पार्वतीं प्राप्य कामविह्वलमानसः।
न रात्रिं प्रतिजानाति दिनं वापि जगत्पतिः॥ १५॥
न क्षणं विरतिस्तस्य जायते वा महेशितुः।
रेतः पतति नो वापि न शान्तिरपि जायते॥ १६॥

दिवाकर! जगत्के स्वामी भगवान् शिव हिमालयके शिखरपर पार्वतीके साथ दीर्घकालसे लीला-विहारमें स्थित हैं। शिव तथा शक्तिके भारसे दिन-रात व्यथित मैं अब उसे सहन करनेमें असमर्थ हूँ, अतः आप मेरे कष्टके निवारणार्थ शीघ्र ही कोई उपाय बताइये। पार्वतीको प्राप्त करके उन जगत्पति महादेवको न तो रातका ज्ञान रह गया है और न दिनका। वे महेश क्षणभरके लिये भी पार्वतीसे विरत नहीं हो रहे हैं, तथापि उन्हें शान्ति नहीं मिल रही है॥ १३—१६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं वचनमाकर्ण्य पृथिव्याः स दिवाकरः।
तया सार्धं ययौ यत्र देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ १७॥

तानुवाच यथावृत्तं पृथिव्याः परिभाषितम्।
तच्छ्रुत्वा प्रययुः सर्वे ब्रह्मणो निकटं तदा॥ १८॥

त्रिदशा धरया सार्धं सहसैव महामुने।



ते प्राहुरथ तं देवा ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ १९॥

सम्मुखे पृथिवीं कृत्वा गोरूपां मुनिसत्तम।
शृणु ब्रह्मञ्जगद्धात्र्या पार्वत्या सहितो हरः॥ २०॥

रमते हिमवत्प्रस्थे दश वर्षाणि पञ्च च।
न तस्य रेतः पतति न वा शान्तिः प्रजायते॥ २१॥

न धैर्यं वा समाधत्ते स कदाचिन्महेश्वरः।
नैवं श्रुतं न दृष्टं वा कदाचित्केनचित्क्वचित्॥ २२॥

शिवशक्त्यो रतेर्भारपीडितेयं वसुन्धरा।
रसातलं जिगमिषुरस्मदन्तिकमागता॥ २३॥

तदत्र किं विधेयं तदुच्यतां त्रिजगत्पते॥ २४॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच त्रिदशान्ब्रह्मा आश्वास्य च मुहुर्मुहुः॥ २५॥

देवकार्यस्य सिद्ध्यर्थं रमते स महेश्वरः।
एतस्मात्क्षरिताद्रेतः सङ्गादुत्पत्स्यते तु यः॥ २६॥

स हन्ता तारकस्यास्य भविष्यति न संशयः।
किंतु शम्भोः सुतो देव्यां यदि सञ्जायते तदा।
स भविष्यति देवानामसुराणां च मर्दनः॥ २७॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार पृथ्वीका वचन सुनकर भगवान् सूर्य उस पृथ्वीके साथ वहाँ गये, जहाँ इन्द्र आदि प्रधान देवता विद्यमान थे। वहाँपर उन्होंने उनसे वह सब घटना बतायी, जैसा पृथ्वीने उनसे निवेदन किया था। महामुने! उसे सुनकर सभी देवतागण पृथ्वीको साथ लेकर तत्काल ब्रह्माजीके पास पहुँचे॥ १७-१८ $\frac{1}{2}$ ॥

मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् उन देवताओंने गोरूप धारण की हुई पृथ्वीको आगे करके जगत्के पति उन ब्रह्माजीसे कहा—ब्रह्मन्! सुनिये, महादेव हिमालयके शिखरपर जगद्धात्री पार्वतीके साथ दीर्घकालसे विहार कर रहे हैं फिर भी उन्हें शान्ति नहीं मिल रही है। इस प्रकार वे महेश्वर किसी भी प्रकार धैर्य धारण नहीं कर पा रहे हैं॥ १९—२२॥ शिव तथा शक्तिके भारसे पीड़ित यह वसुन्धरा रसातल जानेकी स्थिति बननेपर हमलोगोंके पास आयी है। त्रिजगत्पते! इस स्थितिमें क्या किया जाय, वह हमें बताइये॥ २३-२४॥

उनका यह वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने देवताओंको बार-बार सान्त्वना देकर उनसे कहा—वे महेश्वर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही लीला-विहारमें संलग्न हैं। इससे स्खलित तेजके प्रभावसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तारकासुरका संहारक होगा; इसमें संशय नहीं है। किंतु यदि पार्वतीके गर्भसे शम्भुका पुत्र उत्पन्न होगा तो वह देवता तथा असुर—इन दोनोंका विनाश कर देगा।

पराक्रमं च तस्येमं जगन्नापि सहिष्यति।
तस्मादन्यत्रकुत्रापि शम्भोरेतेन रेतसा॥ २८॥

यथा भवेदेकसुतश्चेष्टयध्वं तथा सुराः।
अहं समागमिष्यामि यत्रास्तेऽसौ महेश्वरः॥ २९॥

रमते सह पार्वत्या कामविह्वलमानसः।
यूयं च तत्र सर्वेऽपि मया यास्यथ सत्वरम्॥ ३०॥

शम्भोः सङ्गनिवृत्त्यर्थं प्रार्थयन्तो महेश्वरीम्॥ ३१॥

इत्युक्त्वा त्रिदशान्ब्रह्मा सहसा तत्र नारद।
प्रययौ यत्र देवेशो रमते च सहोमया॥ ३२॥

देवाः सर्वे तु तत्पश्चाद्ययुस्तत्र महामते।
ददृशुस्तौ च रमतः पार्वतीचन्द्रशेखरौ॥ ३३॥

तेष्वागतेष्वपि शिवः कामुको मुग्धमानसः।
न विश्रान्तिं रतौ चक्रे नापि लज्जान्वितोऽभवत्॥ ३४॥

न वा सा पार्वती देवी लज्जां प्रत्युद्ययौ तथा।
न तत्याज महेशानं रममाणमहर्निशम्॥ ३५॥

उसके इस पराक्रमको संसार भी सहन नहीं कर पायेगा। अतः देवतागण! जिस किसी भी तरहसे सम्भव हो, शम्भुके इस रेतसे किसी अन्य स्थानमें एक पुत्र उत्पन्न हो—वैसी चेष्टा आपलोग करें॥ २५—२८½॥

मैं वहीं चल रहा हूँ; जहाँ वे महेश्वर विराजमान हैं और पार्वतीके साथ स्थित हैं। शम्भुके संसर्गसे विलग रहनेके लिये महेश्वरी पार्वतीसे प्रार्थना करते हुए आप सभी लोग भी मेरे साथ वहाँ तत्काल चलिये॥ २९—३१॥

नारद! देवताओंसे ऐसा कहकर ब्रह्माजी तत्काल वहाँके लिये प्रस्थित हो गये, जहाँ देवेश्वर शिव उमाके साथ विहार कर रहे थे॥ ३२॥ महामते! तत्पश्चात् सभी देवता भी वहाँ पहुँच गये और उन्होंने पार्वती तथा शिवजीको आनन्दमें निमग्न देखा॥ ३३॥

उनके आ जानेपर भी भगवान् शिव विरत नहीं हुए, पार्वतीदेवी भी संकुचित नहीं हुईं और उन्होंने भगवान् महेश्वरका परित्याग नहीं किया॥ ३४-३५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीशिवपार्वतीविहारवर्णनं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ २९॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीशिवपार्वतीविहारवर्णन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा देवी पार्वतीकी स्तुति, भगवान् शंकरके तेजसे षणमुख कार्तिकेयका प्रादुर्भाव, देवताओंका हर्षोल्लास

श्रीमहादेव उवाच

ततो देवाः परं प्राप्य विस्मयं प्रावदन्मुने।
स्तुवन्ति जगतां लज्जारूपिणीं जगदम्बिकाम्॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! तदनन्तर देवतागण अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर जगत्के प्राणियोंमें लज्जारूपसे विराजमान जगदम्बा पार्वतीका स्तवन करते हुए इस प्रकार कहने लगे—॥ १॥

ब्रह्मादय ऊचुः

त्वं माता जगतां पितापि च हरः सर्वे इमे बालका-
स्तस्मात्त्वच्छिशुभावतः सुरगणे नास्त्येव ते सम्भ्रमः।
मातस्त्वं शिवसुन्दरि त्रिजगतां लज्जास्वरूपा यत-
स्तस्मात्त्वं जय देवि रक्ष धरणीं गौरि प्रसीदस्व नः ॥ २ ॥

त्वमात्मा त्वं ब्रह्म त्रिगुणरहितं विश्वजननि
स्वयं भूत्वा योषित्पुरुषविषयाहो जगति च।
करोष्येवं क्रीडां स्वगुणवशतस्ते च जननीं
वदन्ति त्वां लोकाः स्मरहरवरस्वामिरमणीम् ॥ ३ ॥

त्वं स्वेच्छावशतः कदा प्रतिभवस्यंशेन शम्भुः पुमा-
न्स्त्रीरूपेण शिवे स्वयं विहरसि त्रैलोक्यसम्मोहिनि।
सैव त्वं निजलीलया प्रतिभवन् कृष्णः कदाचित्पुमान्
शम्भुं सम्परिकल्प्य चात्ममहिषीं राधां रमस्यम्बिके ॥ ४ ॥

प्रसीद मातर्देवेशि जगद्रक्षणकारिणि।
विरम त्वमिदानीं तु धरणीरक्षणाय वै ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुता भगवती त्रिदशैः पर्वतात्मजा।
उत्तस्थौ सम्परित्यज्य सङ्गं लज्जान्विता मुने ॥ ६ ॥

ततस्तस्याः स्ववीर्येण जात एकः परः पुमान्।
भैरवो भीमसेनश्च महाबलपराक्रमः ॥ ७ ॥

तं जातं पुरुषं प्राह देवी भगवती तदा।
वसस्व मत्पुरद्वारि रक्ष द्वारं सदा सुत ॥ ८ ॥

इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता लज्जयावनतानना।
मन्दिरं प्राविशद्रम्यं रत्नप्राकारतोरणम् ॥ ९ ॥

शम्भुश्चापि परित्यक्तुं सुरेतो मुनिसत्तम।
मनश्चक्रे सुराणां वै हिताय जगतोऽस्य च ॥ १० ॥

ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—माता शिवसुन्दरी! आप तीनों लोकोंकी माता हैं और शिवजी पिता हैं तथा ये सभी देवतागण आपके बालक हैं, अपनेको आपका शिशु माननेके कारण देवताओंको आपसे कोई भी भय नहीं है। देवि! आपकी जय हो। गौरि! आप तीनों लोकोंमें लज्जारूपसे व्याप्त हैं, अतः पृथ्वीकी रक्षा करें और हमलोगोंपर प्रसन्न हों ॥ २ ॥ विश्वजननी! आप सर्वात्मा हैं और आप तीनों गुणोंसे रहित ब्रह्म हैं। अहो, अपने गुणोंके वशीभूत होकर आप ही स्त्री तथा पुरुषका स्वरूप धारण करके संसारमें इस प्रकारकी क्रीडा करती हैं और लोग आप जगज्जननीको कामदेवके विनाशक परमेश्वर शिवकी रमणी कहते हैं ॥ ३ ॥ तीनों लोकोंको सम्मोहित करनेवाली शिवे! आप अपनी इच्छाके अनुसार अपने अंशसे कभी पुरुषरूपमें शिव बन जाती हैं और स्वयं स्त्रीरूपमें विद्यमान रहकर उनके साथ विहार करती हैं। अम्बिके! वे ही आप अपनी लीलासे कभी पुरुषरूपमें कृष्णका रूप धारण कर लेती हैं और उनमें शिवकी परिभावना कर स्वयं कृष्णकी पटरानी राधा बनकर उनके साथ रमण करती हैं ॥ ४ ॥

जगत्‌की रक्षा करनेवाली देवेश्वरी! माता! प्रसन्न होइये और पृथ्वीकी रक्षाके लिये अब इस लीलाविलाससे विरत हो जाइये ॥ ५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवती पार्वती उठ खड़ी हुईं ॥ ६ ॥ इसके बाद उनके अपने तेजसे भयंकर, महान् बल तथा पराक्रमशाली भैरवके रूपमें एक परम पुरुष उत्पन्न हुआ। तब भगवती पार्वतीने उत्पन्न हुए उस पुरुषसे कहा—पुत्र! तुम मेरे पुरके दरवाजेपर विराजमान रहो और निरन्तर द्वारकी रखवाली करो ॥ ७-८ ॥

ऐसा कहकर तीनों लोकोंकी माता पार्वतीजीने रत्नोंसे निर्मित प्राकार (परकोटे) एवं प्रवेशद्वारवाले एक सुरम्य मन्दिरमें प्रवेश किया ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ! शम्भुने भी जगत् तथा देवताओंके कल्याणके लिये अपने उत्तम तेजको छोड़नेका मन बनाया ॥ १० ॥

तं रेतस्त्यक्तुकामं च ज्ञात्वा कमलसम्भवः।
उवाच वायुं देवानां कार्यसंसिद्धये ततः॥ ११॥

ब्रह्मोवाच

वायो त्वमेकं कार्यं तु कर्तव्यं जगतां हितम्।
तारकस्य वधार्थाय शम्भोः पुत्राभिजन्मने॥ १२॥

यदा त्यक्ष्यति रेतश्च महेशः पृथिवीतले।
तदाब्जयोषितां योनिं प्रापयस्व च वेगतः॥ १३॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा वायुर्वेगवतांवरः।
प्रववावतिवेगेन तुमुलं मुनिसत्तम॥ १४॥

ततः शम्भुश्च तत्याज रेतो वह्नेः शिरस्यलम्।
रजताद्रिसमं वह्नेर्दुःसहं तदभूत्तदा॥ १५॥

ततः स परितत्याज सहसा शरकानने।
निवासे देवदेवस्य तेजोराशिं महौजसम्॥ १६॥

तस्यार्धं तु बलाद्वायुः संविभज्य पृथक् पृथक्।
कृत्तिकानां तु षण्णां वै योनिमध्ये न्यवेशयत्॥ १७॥

योनिवक्त्रेण तत्तेजः प्रविष्टं मुनिसत्तम।
अवाप शोणितं तासां ततो जठरमागमत्॥ १८॥

वह्नौ यच्चापतद्रेतस्तच्च स्वर्णं बभूव ह।
यत्स्थितं तु शरारण्ये तच्चाद्यापि च दृश्यते॥ १९॥

वायुनीतं तु तद्रेतोभागं तस्याभिधारणे।
कृत्तिकाद्या मुनिश्रेष्ठ न समर्थास्तदाभवन्॥ २०॥

तत्यजुश्च मुनिश्रेष्ठ सर्वा एव महामते।
ततस्ताः सहितं कृत्वा तद्रेतः शोणितोक्षितम्॥ २१॥

संस्थाप्य काष्ठकोशे तु चिक्षिपुर्भीममानसाः।
गङ्गायां मुनिशार्दूल तद्ददर्श प्रजापतिः॥ २२॥

ततस्तत्काष्ठकोशं च स गृहीत्वा पितामहः।
स्वस्थानमगमद्भूयः प्रहृष्टात्मा प्रसन्नधीः॥ २३॥

तब पद्मयोनि ब्रह्माजीने उन महेश्वरको अपना तेज छोड़नेकी इच्छावाला जानकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे वायुदेवसे कहा—॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—पवनदेव! तुम तारकासुरके वधके लिये शिवके पुत्रके जन्मके उद्देश्यसे एक कार्य सम्पादित करके जगत्का परम कल्याण करो। जब भगवान् शिव पृथ्वीतलपर अपने रेतका त्याग करेंगे, तब तुम उसे वेगपूर्वक कमलिनीके गर्भमें पहुँचा देना॥ १२-१३॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! उनका (ब्रह्माका) यह वचन सुनकर वेगशालियोंमें श्रेष्ठ पवनदेव तेज ध्वनिके साथ अत्यन्त वेगपूर्वक प्रवाहित होने लगे॥ १४॥

तदनन्तर भगवान् शम्भुने रजताद्रिके समान अपने रेतको अग्निके सिरपर छोड़ दिया और वह अग्निके लिये भी असह्य हो गया। तत्पश्चात् उन अग्निदेवने महान् ओजस्वी उस तेजोराशिको देवाधिदेव शिवके शरकाननमें सहसा छोड़ दिया। उसके आधे भागको वायुदेवने बलपूर्वक छः भागोंमें विभक्त करके उसे अलग-अलग छः कृत्तिकाओंमें स्थापित कर दिया॥ १५—१७॥

मुनिश्रेष्ठ! उस तेजने उन कृत्तिकाओंके शोणित-संसर्गको प्राप्त किया और उसके बाद उनके गर्भाशयमें प्रवेश किया। जो रेत अग्निमें छोड़ा गया था, वह स्वर्ण हो गया और जो शरकाननमें पड़ा था, वह आज भी दिखायी देता है। मुनिश्रेष्ठ! वायुके द्वारा ले जाकर कृत्तिकाओंमें स्थापित किये गये रेतको जब वे धारण करनेमें समर्थ न हो सकीं तब मुनिश्रेष्ठ! उन सबने उस रेतका त्याग कर दिया। तब उन भयंकर चित्तवाली कृत्तिकाओंने उस शोणित (रजस्)-मिश्रित रेतको एकत्र कर काष्ठकोशमें रख करके गङ्गाजीमें छोड़ दिया और उसे प्रजापतिने देखा॥ १८—२२॥

तदनन्तर प्रफुल्लितहृदय तथा प्रसन्नमनवाले पितामह ब्रह्माजी उस काष्ठकोशको लेकर पुनः अपने स्थानको चले गये॥ २३॥

तत्काष्ठकोशमध्ये तु व्यजायत परः पुमान्।
द्वादशैर्बाहुभिर्युक्तो द्वादशाक्षः षडाननः॥ २४॥
स्वर्णगौरतनुः श्रीमान् प्रसन्नमुखपङ्कजः।
उद्यच्छशाङ्कतुल्याभो नीलोत्पलदलेक्षणः॥ २५॥
एवं विज्ञाय तं जातं देव्याः पुत्रं महौजसम्।
मध्यतः काष्ठकोशस्य तत्कोशं स प्रजापतिः॥ २६॥
प्रबिभेद मुनिश्रेष्ठ ततस्तं ददृशे सुतम्।
आश्विन्यां पौर्णमास्यां तु एवं शिवकुमारकः॥ २७॥
जातवान्ब्रह्मलोकेऽसौ तारकारिर्महाबलः।
तस्मिञ्जाते शिवसुते ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २८॥
सम्प्राप्य परमामोदं महोत्सवमकारयत्।
शिरसस्तारकाख्यस्य किरीटं कुण्डलोज्ज्वलम्॥ २९॥
पपात धरणीपृष्ठे चकम्पे च शरीरकम्।
सञ्जाते पार्वतीपुत्रे महाबलपराक्रमे॥ ३०॥
दिशः सुनिर्मला आसन् देवाश्चोत्फुल्लमानसाः।
ज्ञात्वा तु पार्वतीपुत्रं सञ्जातं ब्रह्मणः पुरे॥ ३१॥
नारायणः समागत्य ददृशे परमादरात्।
आयातास्त्रिदशाश्चान्ये महेन्द्रप्रमुखास्तथा॥ ३२॥
महर्षयश्च सर्वेऽपि श्रुत्वा जातमुमासुतम्।
तथाकरोच्च नामानि ब्रह्मा सर्वसुरैः सह॥ ३३॥
पार्वतीबालकस्यास्य प्रसन्नात्मा महामुने॥ ३४॥

ब्रह्मोवाच

कृत्तिकागर्भजातत्वात्कार्तिकेयेति चाख्यया।
विख्यातस्त्रिषु लोकेषु भविष्यति शिवात्मजः॥ ३५॥
तथा षाण्मातुरश्चास्य नाम लोके भविष्यति।
यतस्ताः कृत्तिकाद्याश्च संख्यया परिकीर्तिताः॥ ३६॥
ताभिश्च स्कन्दिताद्रेतःसङ्घाज्जातो ह्ययं यतः।
ततः स्कन्दोऽपि नाम्नाभिख्यातो लोके भविष्यति॥ ३७॥
तारकस्य निहन्तारं समरे भविता यतः।
ततस्तारकवैरीति लोके नाम भविष्यति॥ ३८॥

उस काष्ठकोशके मध्यमें बारह भुजाओं, बारह नेत्रों और छः मुखोंसे युक्त एक परम पुरुष उत्पन्न हुआ। उस ऐश्वर्यसम्पन्न परम पुरुषका शरीर स्वर्णके समान कान्तियुक्त था, मुख विकसित कमलके समान प्रफुल्लित था, शरीरकी कान्ति उगते हुए चन्द्रमाके तुल्य थी तथा आँखें नीलकमलके समान थीं॥ २४-२५॥

मुनिश्रेष्ठ! उस काष्ठकोशके मध्यसे पार्वतीपुत्र देवीके उस महान् ओजस्वी पुत्रकी उत्पत्ति जानकर ब्रह्माजीने उसका भेदन किया और वहाँ उस पुत्रको देखा। इस प्रकार आश्विनमासकी पूर्णिमा तिथिको ब्रह्मलोकमें तारकासुरके शत्रु महाबली शिवपुत्रका जन्म हुआ। उस शिवपुत्रके उत्पन्न होनेपर लोकपितामह ब्रह्माने परम प्रसन्न होकर महान् उत्सव कराया॥ २६—२८½॥ उस समय तारक नामक असुरके मस्तकसे उसका उज्ज्वल मुकुट और कुण्डल पृथ्वीतलपर गिर पड़ा एवं उसका शरीर काँप गया। महान् बल तथा पराक्रमवाले पार्वतीपुत्रके उत्पन्न होनेपर सभी दिशाएँ प्रकाशसे भर गयीं और देवता प्रसन्नमनवाले हो गये॥ २९-३०½॥

ब्रह्मलोकमें पार्वतीके पुत्रको उत्पन्न हुआ जानकर भगवान् नारायणने वहाँ आकर आदरपूर्वक उसे देखा। इसी तरह इन्द्र आदि अन्य प्रधान देवता तथा सभी ऋषिगण भी उमापुत्रका जन्म सुनकर वहाँ आ गये। महामुने! तब प्रसन्नचित्त ब्रह्माजीने समस्त देवताओंके साथ मिलकर इस पार्वतीपुत्रके नाम रखे॥ ३१—३४॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीका यह पुत्र कृत्तिकाओंके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण तीनों लोकोंमें 'कार्तिकेय' इस नामसे विख्यात होगा। चूँकि वे कृत्तिकाएँ संख्यामें छः कही गयी हैं, अतः संसारमें इसका नाम 'षाण्मातुर' भी होगा। उन कृत्तिकाओंसे क्षरित रेतसंघसे इसकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये यह लोकमें 'स्कन्द' नामसे भी विख्यात होगा। युद्धक्षेत्रमें यह तारकासुरका संहार करेगा, इसलिये लोकमें इसका 'तारकवैरी' यह नाम प्रसिद्ध होगा॥ ३५—३८॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं नामानि कृत्वाऽसौ ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वदेवगणैः सार्धं महोत्सवमथाकरोत्॥ ३९॥

ततः प्राहुः पद्मयोनिं स्वस्वकार्यप्रसिद्धये।
तारकेणार्दिताः सर्वे त्रिदशा मुनिसत्तम॥ ४०॥

देवा ऊचुः

प्रभो त्रिजगतां नाथ यावच्छङ्करनन्दनः।
संग्रामे तारकं दैत्यं न जघानैष हि स्वयम्॥ ४१॥

तावत्परिचयं नास्य पितृभ्यां कारयिष्यसि।
यदि स्नेहाद्भगवती भगवान्वा सदाशिवः॥ ४२॥
न यच्छति रणे पुत्रं किं करिष्यामहे तदा॥ ४३॥

तस्माच्छीघ्रं हते दैत्ये समरे तारकाह्वये।
तयोः पुत्रस्य जन्मास्य वक्तव्यं वै त्वया प्रभो॥ ४४॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं देव्याः समुद्भूतः पुत्रो ज्येष्ठः षडाननः।
स्थितो ब्रह्मपुरे देवाः स्वस्थानं च समागमन्॥ ४५॥

इत्युक्तं मुनिशार्दूल कार्तिकेयो यथाभवत्।
देव्याः पुत्रो महाबाहुस्तारकासुरमर्दनः॥ ४६॥

अध्यायमेतं गिरिजासुतस्य
जन्मप्रसङ्गं परिपाठयन्ति ये।
पठन्ति शृण्वन्ति च ये च भक्त्या
तेषां न विद्येत भयं हि किल्बिषात्॥ ४७॥

न विद्यते यस्य सुतः समाहितः
श्रुत्वा स एनं गिरिजासुतोद्भवम्।
उत्पादयेत्पुत्रमशेषसद्‌गुणं
गुणान्वितं तद्गिरिजासुतोपमम्॥ ४८॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार उन लोकपितामह ब्रह्माजीने बालकके ये नाम रखकर सभी देवगणोंको साथमें लेकर महान् उत्सव किया॥ ३९॥ मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर तारकासुरके द्वारा पीड़ित सभी देवता अपने-अपने कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे पद्मयोनि ब्रह्माजीसे कहने लगे—॥ ४०॥

देवताओंने कहा—प्रभो! तीनों लोकोंके नाथ! ये शिवपुत्र कार्तिकेय जबतक स्वयं संग्राममें तारकासुरका वध नहीं कर देते तबतक आप इनके माता-पितासे इनका परिचय मत कराइये; क्योंकि यदि पुत्रस्नेहके वशीभूत होकर भगवती पार्वती अथवा भगवान् सदाशिव अपने पुत्रको रणमें भेजना नहीं चाहेंगे तब हमलोग क्या करेंगे? अतः प्रभो! संग्राममें तारक नामक दैत्यका शीघ्र संहार हो जानेके उपरान्त आप इस पुत्रके जन्मके विषयमें उन दोनोंसे बता दीजियेगा॥ ४१—४४॥

श्रीमहादेवजी बोले—[मुने!] इस प्रकार भगवती पार्वतीसे उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र षडानन ब्रह्मपुरमें रहने लगे और सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ४५॥ मुनिश्रेष्ठ! तारकासुरका वध करनेवाले महाबाहु भगवतीपुत्र कार्तिकेयका जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ—यह सब मैंने आपसे कह दिया॥ ४६॥

जो लोग गिरिजापुत्रके जन्मके प्रसंगसे युक्त इस अध्यायको भक्तिपूर्वक पढ़ाते हैं, पढ़ते हैं तथा सुनते हैं, उन्हें पापसे कोई भय नहीं रह जाता है। जिसके पास पुत्र नहीं है, वह गिरिजापुत्रकी उत्पत्तिके प्रसंगवाले इस अध्यायको समाहितचित्तसे सुनकर उसी गिरिजापुत्र कार्तिकेयके तुल्य सभी सद्‌गुणोंसे युक्त सदाचारी पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है॥ ४७-४८॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कार्तिकेयजन्मवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'कार्तिकेयजन्मवर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

कुमार कार्तिकेयका तारकासुरके विनाशके लिये ससैन्य उद्यत होना, ब्रह्माजीद्वारा उन्हें वाहनके रूपमें 'मयूर' तथा अमोघ शक्ति प्रदान करना, कार्तिकेयको देवसेनाका सेनापतित्व प्राप्त होना

नारद उवाच

कथय त्वं महादेव संग्रामे पार्वतीसुतः।
कथं सम्पातयामास तारकं देवकण्टकम्॥ १॥

कथं परिचयश्चाभूत्पितृभ्यां तस्य वा प्रभो।
सुतं प्राप्य च सा देवी किं चकार महेश्वरः॥ २॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि संग्रामे तारकासुरम्।
यथा सम्पातयामास संग्रामे पार्वतीसुतः॥ ३॥

यथाभवत्परिचयः पितृभ्यामपि तस्य च।
तच्च वक्ष्यामि ते तत्त्वं शृणुष्वावहितो मम॥ ४॥

एकदा त्रिदशाः सर्वे तारकेण समर्दिताः।
ब्रह्मणोऽन्तिकमागत्य प्रणम्योचुर्महामतिम्॥ ५॥

देवा ऊचुः

प्रभो ब्रह्मन् तारकस्तु यथास्मान्बाधते सदा।
तत्त्वं किं नाभिजानासि किं वा ब्रूमस्तवाग्रतः॥ ६॥

इदानीं तस्य नाशाय महादेवसुतं रणे।
प्रेषयाशु महादेवं कार्तिकेयं महाबलम्॥ ७॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः।
कार्तिकेयं वचः प्राह सर्वदेवस्य पश्यतः॥ ८॥

ब्रह्मोवाच

तात त्वं सर्वलोकानां रक्षकोऽसि शिवात्मज।
इदानीं त्रिदशान् रक्ष हत्वा दैत्यं तु तारकम्॥ ९॥

त्वां समाश्रित्य देवास्तु तारकासुरपीडिताः।
निस्तारं समुपायान्तु जहि तं देवकण्टकम्॥ १०॥

श्रीमहादेव उवाच

ततस्तं वेधसं प्राह कार्तिकेयो महाबलः।
स्निग्धगम्भीरया वाचा देवानामग्रतः स्थितः॥ ११॥

नारदजी बोले—महादेव! आप यह बतानेकी कृपा करें कि पार्वतीपुत्र कार्तिकेयने युद्धभूमिमें देवशत्रु तारकासुरका कैसे संहार किया? प्रभो! अपने माता-पितासे उनका परिचय कैसे हुआ और देवी पार्वती तथा महेश्वरने पुत्रप्राप्तिके बाद क्या किया?॥ १-२॥

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! युद्धभूमिमें पार्वतीपुत्रने जिस प्रकार तारकासुरका संहार किया उसे मैं कहता हूँ सुनें, साथ ही अपने माता-पितासे जिस तरह उनका परिचय हुआ, वह सम्पूर्ण वृत्तान्त भी मैं कहता हूँ, आप ध्यानसे सुनें॥ ३-४॥ एक बार तारकासुरसे सम्यक् पीड़ित होकर सारे देवता ब्रह्माजीके पास आये और उन महामतिको प्रणाम कर कहने लगे—॥ ५॥

देवताओंने कहा—प्रभो! ब्रह्मन्! जिस प्रकार यह तारकासुर हम सबको सदा पीड़ित करता रहता है, उसको क्या आप नहीं जानते, क्या हम आपके समक्ष कहें! इस समय उसके संहारके लिये आप महादेवपुत्र महाबली महान् देव कार्तिकेयको शीघ्र ही रणभूमिमें भेजिये॥ ६-७॥

श्रीमहादेवजी बोले—उनकी यह बात सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजीने सभी देवताओंके सामने कार्तिकेयसे कहा—॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—शिवात्मज! आप सभी लोकोंके रक्षक हैं। तात! इस समय तारक दैत्यको मारकर देवताओंकी रक्षा करें। तारकासुरके सताये ये देवगण आपका आश्रय लेकर उद्धार प्राप्त करें, इसलिये आप उस देवशत्रुका संहार करें॥ ९-१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब देवताओंके आगे स्थित महाबलशाली कार्तिकेयजीने स्निग्ध गम्भीर वाणीमें उन ब्रह्माजीसे कहा—॥ ११॥

कार्तिकेय उवाच

पातयिष्यामि तं दुष्टं समरे भीमविक्रमम्।
तारकं दैत्यराजं तु वाहनं परिकल्पय॥ १२॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो भगवान्ब्रह्मा तस्मै शिवसुताय वै।
मयूरवाहनं प्रादाद्वायुवेगं महामुने॥ १३॥
तारकस्य वधार्थाय शक्तिं हेमपरिष्कृताम्।
कोटिसूर्यसमाभासां ददौ तस्मै महौजसे॥ १४॥
न तादृशी महाशक्तिर्विद्यते भुवनत्रये।
तेन शक्तिधरेत्याख्यामवाप्स्यति शिवात्मजः॥ १५॥
ततस्तु सर्वसेनानां रक्षणार्थं नियोज्य तम्।
समरे प्रेषयामास ब्रह्मा लोकपितामहः॥ १६॥
सोऽपि तं प्रणिपत्यैव मयूरं प्रारुरोह च।
प्रगृह्य शक्तिं तां भीमां महाबलपराक्रमः॥ १७॥
ततस्तमग्रतः कृत्वा त्रिदशाः समुपागमन्।
युद्धार्थं दैत्यराजस्य तारकस्य पुरीं मुने॥ १८॥
तेषामापततां श्रुत्वा सुघोरं निःस्वनं ततः।
समसज्जत दैत्येन्द्रः समरायासुरैः सह॥ १९॥
अनन्तहयपादातैर्गजवाजिसहस्त्रकैः ।
वृतः समरदुर्द्धर्षः समरार्थं व्यवस्थितः॥ २०॥
आयान्तं वीक्ष्य सेनान्यं मयूरवरवाहनम्।
उद्यच्छक्तिकरं सर्वैस्त्रिदशैः परिवारितम्॥ २१॥
तारको रथमारुह्य शुद्धहेमपरिष्कृतम्।
सिंहवाहध्वजैश्चित्रैः पताकिभिरलङ्कृतम्॥ २२॥
प्रययौ नेमिशब्देन कम्पयन्धरणीतलम्।
स ददर्श निमित्तानि सुघोराणि महामते॥ २३॥
पेतुरुल्काश्च निर्भिद्य सूर्यं रथसमीपतः।
वाजिनां चक्षुषः पेतुरश्रुधारास्तथा मुने॥ २४॥
अप्रसन्नहृदश्चासन् योद्धारः सर्व एव हि।
भयानकरवं कुर्वन् पतन्ति घोरपक्षिणः॥ २५॥

कार्तिकेयजी बोले—मैं उस दुष्ट और दुर्धर्ष दैत्यराज तारकासुरका युद्धमें संहार करूँगा। मेरे लिये वाहनकी व्यवस्था की जाय॥ १२॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! ऐसा कहे जानेपर भगवान् ब्रह्माजीने शिवपुत्र कार्तिकेयके लिये वायुके समान तीव्रगामी मयूरवाहन प्रदान किया। उन महातेजस्वी कार्तिकेयको तारकासुरका वध करनेके लिये स्वर्णपरिष्कृत एक शक्ति भी प्रदान की, जिसकी आभा करोड़ों सूर्यके समान थी। उसके समान महाशक्ति तीनों भुवनोंमें नहीं है। इस कारण शिवपुत्र कार्तिकेय 'शक्तिधर' यह नाम भी प्राप्त करेगा॥ १३—१५॥ तब लोकपितामह ब्रह्माजीने सारी देवसेनाकी रक्षाके लिये कार्तिकेयको सेनापति बनाकर युद्धभूमिमें भेजा॥ १६॥ वे महाबली, पराक्रमी कार्तिकेयजी ब्रह्माजीको साष्टाङ्ग प्रणाम कर तथा उस भयावह शक्तिको लेकर मयूरवाहनपर आरूढ़ हो गये॥ १७॥ मुने! तदनन्तर कार्तिकेयजीको आगे करके सभी देवता युद्ध करनेके लिये दैत्यराज तारकासुरकी नगरीकी ओर आये॥ १८॥ तदनन्तर आते हुए उन देवताओंके घोर कोलाहलको सुनकर अपने असुरसमूहके साथ दैत्यराज युद्धके लिये तत्पर हुआ॥ १९॥ वह दुर्धर्ष दैत्यराज अगणित घुड़सवारों और पैदल सिपाहियोंके साथ हजारों हाथी-घोड़े लेकर युद्धके लिये व्यवस्थित हो गया॥ २०॥

श्रेष्ठ मयूरवाहनपर आरूढ़, हाथमें चमकती हुई शक्ति धारण किये और सभी देवताओंसे घिरे सेनानी कार्तिकेयको आता देखकर तारकासुर भी स्वर्णमण्डित रथपर आरूढ़ होकर निकल पड़ा। उसके रथपर सिंहवाहाङ्कित अनेक ध्वजाएँ तथा पताकाएँ सुशोभित हो रही थीं॥ २१-२२॥ महामते! जब वह अपने रथके धुरेके घोर शब्दसे धरतीको कँपाता हुआ आगे बढ़ा, तब अति भयंकर अपशकुन दिखायी देने लगे। मुने! सूर्यका भेदन करके उसके रथके समीप ही उल्कापात होने लगे और घोड़ोंकी आँखोंसे अश्रुधारा निकलने लगी, सभी योद्धागण दुःखीमन हो गये और गृध्रादि अशुभ पक्षीगण भयानक शब्द करते हुए गिरने लगे॥ २३—२५॥

एवंविधानि विविधानि भयानकानि
दृष्ट्वापि स त्रिदशतापददैत्यराजः।
आदाय चारुविपुलं धनुरुग्रमूर्तिः
सम्प्राप शङ्करसुतं युधि जेतुकामः॥ २६॥

माता स्वयं भगवती गिरिराजकन्या
या सर्वदैत्यवरनाशकरी रणेषु।
तातश्च यस्य गिरिशो जगदन्तकारी
कस्तं विजेतुमिह शक्तियुतो मुने स्यात्॥ २७॥

इस प्रकारके अनेक भयानक अपशकुनोंको देखकर भी देवताओंको पीड़ित करनेवाला वह दैत्यराज तारकासुर विशाल दिव्य धनुष लेकर क्रोधपूर्वक शिवपुत्र कार्तिकेयको युद्धमें जीतनेकी लालसासे आगे बढ़ा॥ २६॥ मुने! जिनकी माता स्वयं युद्धभूमिमें सभी श्रेष्ठ दैत्योंका संहार करनेवाली पर्वतराज हिमालयकी पुत्री भगवती पार्वती हैं तथा जिनके पिता प्रलयंकारी रुद्र हैं, उन शक्तिसम्पन्न कार्तिकेयको पराजित करनेमें कौन समर्थ है!॥ २७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे तारकासुरसंग्रामे कुमारागमनवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें तारकासुरसंग्राममें 'कुमारागमनवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

देवासुर-संग्राममें देवसेनापति कार्तिकेय तथा तारकासुरका भीषण युद्ध

श्रीमहादेव उवाच

ततस्तूर्यनिनादैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः।
उभयोः सेनयोश्चापि सिंहनादैः समन्ततः॥ १॥
नेमिघोषेण घोरेण पूर्ण आसीन्नभोऽन्तरम्।
चकम्पे वसुधा चापि ततो युद्धमवर्तत॥ २॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सह सर्वैर्महर्षिभिः।
अपूर्वं रथमारुह्य गगने समुपागमत्॥ ३॥
द्रष्टुं घोरतरं युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
देवानां दानवानां च विनिघ्नन्तितरेतरम्॥ ४॥
इन्द्रस्तु वज्रं निःक्षिप्य शतशोऽथ सहस्रशः।
जघान समरे दैत्यान्महाबलपराक्रमान्॥ ५॥
तथैव वरुणः क्रुद्धः पाशेनासुरपुङ्गवान्।
बद्ध्वा प्रहृत्य चास्त्रेण प्रापयद्यमसादनम्॥ ६॥
अन्येऽपि त्रिदशाः सर्वे क्षिप्त्वा बाणाननेकशः।
समरे पातयामासुर्दनुजेन्द्रस्य सैनिकान्॥ ७॥
कार्तिकेयस्तु समरे युद्ध्वा तेन दुरात्मना।
जघानान्यान्महादैत्यान्महाबलपराक्रमान्॥ ८॥

श्रीमहादेवजी बोले—तुरहीके निनाद, भेरी तथा पणव (नगाड़ों)-की ध्वनियों, दोनों ओरकी सेनाओंके चतुर्दिक् सिंहनादों और रथकी धुरीके भयंकर घोषसे पृथ्वी तथा आकाशका अन्तराल व्याप्त हो गया और पृथ्वी भी काँपने लगी। इसके बाद युद्ध आरम्भ हो गया॥ १-२॥ इसी बीच ब्रह्माजी सभी महर्षियोंके साथ एक दिव्य रथमें बैठकर देवताओं तथा दानवोंके परस्पर मारकाटवाले, घोर, कोलाहलपूर्ण तथा रोमाञ्चकारी युद्धको देखनेके लिये आकाशमें उपस्थित हुए॥ ३-४॥

इन्द्रने अपने वज्रको चलाकर उस युद्धमें महाबल एवं पराक्रमसे युक्त सैकड़ों-हजारों दैत्योंका संहार किया। उसी प्रकार वरुणने भी क्रोधपूर्वक अपने पाशसे श्रेष्ठ असुरोंको बाँधकर अपने अस्त्रसे प्रहार कर उन्हें यमपुरी भेज दिया। अन्य सभी देवताओंने भी अनेक प्रकारके बाण चलाकर युद्धभूमिमें दैत्यराज तारकासुरके अनेक सैनिकोंको मार गिराया। कार्तिकेयजीने भी युद्धभूमिमें दुष्टात्मा तारकासुरसे युद्ध करके अनेक महाबली तथा पराक्रमी दैत्योंका संहार किया॥ ५-८॥

एवं शस्त्रास्त्रपातैस्तु देवानां दानवास्तथा।
त्यक्तप्राणाः समभवंस्तारकस्य समीपतः॥ ९ ॥
तेषां रथाश्वनागैश्च प्रभग्नैश्च वसुन्धरा।
अगम्या समभूत्तत्र निहतैरसुरैरपि॥ १० ॥
हतानां दैत्यसंघानां शोणितैर्मुनिसत्तम।
प्रावर्तत नदी घोरा सेनयोरन्तरे ततः॥ ११ ॥

इस प्रकार देवताओंके शस्त्रास्त्रोंके प्रहारसे असुरगण तारकासुरके समीप प्राण छोड़ने लगे। वहाँकी युद्धभूमि मरे हुए असुरों, उनके हाथी-घोड़ों तथा टूटे हुए रथोंसे भरकर अगम्या हो गयी। मुनिवर! तदनन्तर मारे गये दैत्यसमूहोंके रक्तसे दोनों सेनाओंके बीच एक भयानक नदी बहने लगी॥ ९—११ ॥

एवं विनष्टे सैन्ये तु तारको दैत्यपुङ्गवः।
अकरोत्तुमुलं युद्धं सेनान्या सह नारद॥ १२ ॥
शस्त्राणि तेन क्षिप्तानि शतशोऽथ सहस्रशः।
चिच्छेद समरे गौरीतनयः प्रहसन्निव॥ १३ ॥
तथा सोऽपि महास्त्राणि सेनान्या प्रहितानि च।
बभञ्ज तारकः संख्ये शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४ ॥
एवं तयोः प्रहरतोः शरव्रातैः परस्परम्।
दृष्ट्वा युद्धं परं प्रापुर्विस्मयं देवकिन्नराः॥ १५ ॥

नारदजी! इस प्रकार अपनी सेनाके नष्ट होनेपर दैत्यश्रेष्ठ तारकासुरने सेनापति कार्तिकेयके साथ भयानक युद्ध किया। उसने युद्धमें सैकड़ों-हजारों शस्त्रोंसे कार्तिकेयजीपर प्रहार किया, जिन्हें गौरीपुत्रने हँसते हुए काट डाला। उसी प्रकार उस युद्धमें देवसेनापति कार्तिकेयके चलाये सैकड़ों-हजारों दिव्यास्त्रोंको तारकासुरने भी काट डाला। इस प्रकार बाणसमूहोंके द्वारा परस्पर प्रहार करते हुए उन दोनोंके युद्धको देखकर देवता और किन्नर अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए॥ १२—१५ ॥

ततः क्रुद्धो रणे दैत्यः स्वर्णपुङ्खशरान्बहून्।
यमदण्डोपमान्घोरान्सेनान्ये प्राहिणोद्रुषा॥ १६ ॥
सेनानीः प्राक्षिपद्बाणमर्धचन्द्रं सुदारुणम्।
तं प्रत्यच्छेदयत्सोऽपि निमेषार्धेन नारद॥ १७ ॥
ततस्तमाशुगैर्घोरैः सेनानीर्दैत्यपुङ्गवम्।
पुनर्विव्याध संक्रुद्धो दशभिर्नतपर्वभिः॥ १८ ॥
स दैत्यराजस्तैर्बाणैः पीडितो मुनिसत्तम।
मूर्च्छितः पतितस्तस्मिन् रथोपस्थ उपाविशत्॥ १९ ॥

तदनन्तर क्रुद्ध दैत्य तारकासुरने रोषमें आकर अनेक स्वर्ण-पुङ्ख (बाणका अग्रभाग)-वाले, यमदण्डके समान भयंकर बाणोंको सेनापति कार्तिकेयपर छोड़ा। नारदजी! कार्तिकेयजीने भी अत्यन्त भयंकर अर्धचन्द्र बाण चलाया। उसे तारकासुरने भी आधे निमेषमें ही काट डाला। तत्पश्चात् देवसेनापतिने अत्यन्त क्रोधपूर्वक तीव्र वेगवाले तथा झुके हुए पर्ववाले दस भयंकर बाणोंसे श्रेष्ठ दैत्यको पुनः वेध डाला। मुनिवर! वह दैत्यराज तारकासुर उन बाणोंसे घायल तथा मूर्च्छित होकर रथके पिछले भागमें गिर पड़ा॥ १६—१९ ॥

ततः समुत्थितो भूयः सिंहवन्निनदन्मुहुः।
अमर्षवशमापन्नः शूलं जग्राह दानवः॥ २० ॥

तब पुनः उठकर बार-बार सिंहनाद करते हुए उस दैत्यने क्रोधपूर्वक शूल उठा लिया।

तमुद्यतमहाशूलं दृष्ट्वा सोऽपि षडाननः।
चिक्षेप निजशूलं तु महौजसमरिंदमः॥ २१॥
तेन शूलेन दैत्यस्य तच्छूलं करसंस्थितम्।
तत्क्षणाद्भस्मसान्नीतं तदद्भुतमिवाभवत्॥ २२॥
ततः क्रुद्धो रणे दैत्यः सृक्किणीः परिसंलिहन्।
सेनान्यं प्रति चिक्षेप गदां शक्त्यायसीं मुने॥ २३॥
सेनानीस्तां गदां भीमां गदया सहसैव हि।
पातयामास तद्धस्ताद्भङ्क्त्वा पाणौ व्यताडयत्॥ २४॥
ततश्चान्यामपि गदां प्रगृह्य दनुजाधिपः।
अभ्यपद्यत सेनान्यं सिंहनादं नदन्मुहुः॥ २५॥
तमापतन्तं संवीक्ष्य गदापाणिं महासुरम्।
सेनानीस्ताडयामास क्षुरप्रेण भुजद्वये॥ २६॥
तेनास्त्रेण प्रविद्धस्तु समरे दैत्यपुङ्गवः।
ननाद सुमहानादं युगान्ते जलदो यथा॥ २७॥

उस महाशूलको उठाया देखकर शत्रुसूदन कार्तिकेयने भी अपना महान् ओजस्वी शूल चलाया। उस शूलसे दैत्य तारकासुरके हाथमें स्थित शूल तत्क्षण ही भस्मीभूत हो गया। यह एक आश्चर्यजनक-सी बात हुई। मुने! तब क्रोधसे जबड़ा चाटते हुए दैत्य तारकासुरने युद्धभूमिमें देवसेनापतिकी ओर शक्तिशाली लोहेकी बनी भयंकर गदा चलायी। देवसेनापतिने उस भयंकर गदाको अपनी गदासे सहसा ही तोड़कर उसके हाथसे गिरा दिया और उसके हाथोंपर प्रहार भी किया। तब दानवराज एक अन्य दूसरी गदा उठाकर बार-बार सिंहनाद करते हुए देवसेनापतिकी ओर दौड़ा। हाथमें गदा लिये उस महादैत्यको अपनी ओर आता देखकर कार्तिकेयजीने क्षुरप्र (घोड़ेकी नाल-जैसे अग्रभागवाले बाण)-से उसकी दोनों भुजाओंपर प्रहार किया। उस अस्त्रसे आहत होकर युद्धभूमिमें दैत्यराज तारकासुरने युगान्तकालिक मेघकी भाँति घोर गर्जना की॥ २०—२७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कार्तिकेयतारकासुरसंग्रामवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'कार्तिकेय-तारकासुरसंग्रामवर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

कार्तिकेयजीद्वारा तारकासुरका वध, देवसेनामें हर्षोल्लास

श्रीमहादेव उवाच

अथ तं दैत्यराजं तु नदन्तं घोरनिःस्वनैः।
अताडयच्छरैर्घोरैर्यमदण्डोपमै रणे॥ १॥
ततः शक्तिं समादाय रत्नदण्डां सुदारुणाम्।
सेनान्यं प्रति चिक्षेप तारकः क्रोधमूर्च्छितः॥ २॥
तामापतन्तीं संवीक्ष्य शक्तिं देवसुदुःसहाम्।
त्रिदशाः समकम्पन्त भयेन परिमोहिताः॥ ३॥
ब्रह्मा स्वस्त्ययनं चक्रे सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
सेनानीः प्रहसंस्तां तु शक्तिं श्रीपार्वतीसुतः॥ ४॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर युद्धभूमिमें भयानक गर्जना करते हुए कार्तिकेयजीने दैत्यराज तारकासुरपर यमदण्डके समान भयंकर बाणोंसे प्रहार किया। तत्पश्चात् क्रोधसे उन्मत्त हुए तारकासुरने अपनी रत्नजटित भयंकर शक्ति लेकर देवसेनापतिके ऊपर चलायी। देवताओंके लिये असहनीय उस शक्तिको आती देखकर देवगण भयसे मोहित होकर काँपने लगे॥ १—३॥ ब्रह्माजी दिव्य महर्षियोंके साथ स्वस्तिवाचन करने लगे। पार्वतीपुत्र देवसेनानी कार्तिकेयजीने हँसते हुए सबके देखते-देखते अपनी शक्तिसे उस शक्तिको भस्मसात् कर दिया।

स्वशक्त्या भस्मसाच्चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः।
ततो देवाः सुसंहृष्टाः पुष्पवृष्टिमवाकिरन्॥ ५ ॥

कार्तिकेयोपरि ब्रह्मा प्रशशंस च तं मुहुः।
विस्मयं सिद्धगन्धर्वा जग्मुर्दृष्ट्वा पराक्रमम्॥ ६ ॥

महादेवसुतस्यामुं कार्तिकेयस्य नारद।
ततः क्रुद्धः स दैत्येन्द्रो धनुरादाय सत्वरम्॥ ७ ॥

निःक्षिप्य शरजालानि स्कन्दं समरदुर्जयम्।
छादयामास समरे मयूरं च व्यताडयत्॥ ८ ॥

ततः स शरजालानि छित्त्वा शिवसुतोऽपि च।
विबभौ मुनिशार्दूल कोटिसूर्यसमप्रभः॥ ९ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु वृत्रहापि महासुरान्।
भित्त्वान्यान्पार्वतीपुत्रनिकटं समुपागमत्॥ १० ॥

चित्रे मरकताद्रीशसदृशे शिखिनि स्थितः।
पार्वतीतनयः संख्ये वृत्रहापि गजोपरि॥ ११ ॥

ऐरावताख्ये विबभावतीव मुनिसत्तम।
तौ युद्धसंस्थितौ दृष्ट्वा तारको भीमविक्रमः॥ १२ ॥

शरवर्षैः कुमारेन्द्रौ ताडयामास नारद।
तस्य तांस्तु शरव्रातान्छित्त्वा तस्मिन्महाहवे॥ १३ ॥

चक्राते सिंहनादांश्च कुमारेन्द्रौ महाबलौ।
शस्त्रैश्च विविधैर्घोरैस्ताडयामासतुस्तदा॥ १४ ॥

इन्द्रस्तं प्रतिचिक्षेप वज्रं वेगेन नारद।
तदाभूच्छतधा तस्य वक्षः प्राप्य क्षणार्धतः॥ १५ ॥

ततः खड्गं समुद्यम्य क्रोधसंरक्तलोचनः।
कुमारं परिसंत्यज्य देवराजमधावत॥ १६ ॥

तब देवगण अत्यन्त प्रसन्न होकर कार्तिकेयजीके ऊपर पुष्पवृष्टि करने लगे। ब्रह्माजीने बार-बार उनकी प्रशंसा की। सिद्ध, गन्धर्वगण महादेवपुत्र कार्तिकेयके पराक्रमको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए। नारदजी! तब दैत्यराज तारकासुरने अत्यन्त क्रोधपूर्वक शीघ्र ही धनुष उठाकर युद्धमें दुर्जय स्कन्दके ऊपर घनघोर शरवृष्टि करके उन्हें ढक दिया तथा उनके वाहन मयूरपर भी प्रहार किया। मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर शिवपुत्र कार्तिकेयजीने भी बाणोंके उस जालको काट दिया और वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे सुशोभित होने लगे॥ ४—९ ॥

इसी बीच वृत्रासुरका संहार करनेवाले इन्द्र भी दूसरे बड़े-बड़े राक्षसोंको मारकर पार्वतीपुत्र कार्तिकेयके निकट आये॥ १० ॥ उस युद्धभूमिमें मरकतमणिके विशाल पर्वतके समान अपने चित्र-विचित्र वर्णवाले मयूरवाहनपर स्थित पार्वतीपुत्र कार्तिकेय तथा ऐरावत नामके गजराजपर स्थित इन्द्र अत्यन्त सुशोभित हुए। मुनिवर नारद! उन दोनोंको युद्धभूमिमें सन्नद्ध देखकर भयंकर पराक्रमी तारकासुरने कुमार कार्तिकेय तथा इन्द्र—दोनोंपर बाणोंकी वर्षा करते हुए प्रहार किया॥ ११-१२½ ॥ उस घोर संग्राममें तारकासुरके उस शरजालको काटकर महाबली कुमार और इन्द्र सिंहनाद करने लगे तथा उन्होंने अनेक प्रकारके भयंकर शस्त्रोंसे तारकासुरपर प्रहार किया॥ १३-१४ ॥

नारदजी! इन्द्रने उस दैत्यकी ओर वेगपूर्वक अपना वज्र चलाया, किंतु उसके वक्षःस्थलसे टकराकर आधे क्षणमें ही उसके सैकड़ों टुकड़े हो गये। तब क्रोधसे लाल आँखें किये हुए दैत्यराजने तलवार उठाकर कार्तिकेयको छोड़कर देवराज इन्द्रकी ओर धावा किया।



ततः क्रुद्धस्तु भगवान्पार्वतीतनयः क्षणात्।
चालयन् वाहनं तस्य सखड्गं करमच्छिनत्॥ १७॥

ततः सव्येतरे पाणौ क्रोधेन दितिजाधिपः।
आदाय परिघं घोरं सेनान्यं प्रत्यधावत॥ १८॥

ततः शक्तिं समादाय ब्रह्मदत्तां सुदारुणाम्।
आयान्तं दैत्यराजं तु ताडयामास संयुगे॥ १९॥

तया विद्धः स दैत्येन्द्रो नीलाचलसमो बली।
पपात धरणीपृष्ठे धरणीमनुनादयन्॥ २०॥

हते तस्मिन्महादैत्ये देवगन्धर्वकिन्नराः।
प्रहर्षं परमं प्रापुर्दिशश्चासन् सुनिर्मलाः॥ २१॥

सुप्रभोऽभूद्दिनेशश्च सुस्थिरं जगदप्यभूत्॥ २२॥

तदनन्तर पार्वतीपुत्र भगवान् कार्तिकेयने क्रोधित होकर अपने वाहन मयूरको उस ओर मोड़ते हुए तलवार लिये उसके हाथको क्षणमात्रमें काट डाला॥ १५—१७॥

तब दैत्यराज तारकासुर दायें हाथमें भयंकर परिघ लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक देवसेनापतिकी ओर दौड़ा। ब्रह्माजीकी दी हुई अत्यन्त भयंकर उस शक्तिको लेकर रणभूमिमें कार्तिकेयजीने अपनी ओर आते हुए दैत्यराज तारकासुरपर प्रहार किया। उस शक्तिद्वारा बेधे जानेसे नीलाचलपर्वतके समान महाबली वह दैत्यराज धरणीको कोलाहलपूर्ण करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा॥ १८—२०॥ उस भयंकर दैत्यके मारे जानेसे देवता, गन्धर्व, किन्नरगणोंको महान् हर्ष प्राप्त हुआ, सभी दिशाएँ प्रकाशसे भर गयीं, सूर्य सतेज हो गये और संसार सुव्यवस्थित हो गया॥ २१-२२॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे तारकासुरवधो नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'तारकासुरवध' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा कार्तिकेयकी वन्दना, ब्रह्माजीके साथ कार्तिकेयका अपने माता-पिताके पास कैलास आना, भगवान् विष्णुद्वारा पुत्ररूपमें माँ पार्वतीका वात्सल्य प्राप्त करनेकी अभिलाषा प्रकट करना, महादेवीद्वारा 'अभिलाषा पूर्ण होगी' इस प्रकारका वर प्रदान करना

श्रीमहादेव उवाच

ततः प्रहृष्टास्त्रिदशाः प्रसाद्य गिरिजासुतम्।
गन्धपुष्पार्घ्यधूपैश्च नानास्तुतिभिरादरात्॥ १॥

ब्रह्मा विमानमारुह्य हंसवाहं प्रजेश्वरः।
ययौ कुमारमादाय कार्तिकेयं षडाननम्॥ २॥

महेशसन्निधिं नीत्वा बभाषे मुनिसत्तम।

ब्रह्मोवाच

वत्स ते जननीयं हि जगद्वन्द्या सुरेश्वरी॥ ३॥

पिता तेऽयं महादेवो जगद्वन्द्यः शुभप्रदः।
एतयोस्तनयस्त्वं तु पितरौ ते नमस्कुरु॥ ४॥
स्थित्वात्र सकलं विश्वं पालयस्व महामते॥ ५॥

श्रीमहादेव उवाच

इति ब्रह्ममुखाच्छ्रुत्वा पार्वतीपरमेश्वरौ।
विभाव्य चेतसा पुत्रं जज्ञाते मुनिसत्तम॥ ६॥

ततो नमन्तं पुत्रं तु पार्वती प्रीतिसंयुता।
कृत्वाङ्के परमानन्दयुता देवी बभूव ह॥ ७॥

महेशोऽपि सुतं प्राप्य हर्षनिर्भरमानसः।
प्रकरोत्सुमहोत्साहं सर्वानाहूय दैवतान्॥ ८॥

तत्रागतस्तु भगवान् विष्णुर्नारायणोऽव्ययः।
ददर्श कार्तिकेयं तु दिव्याङ्गं चारुविग्रहम्॥ ९॥

देव्या वीक्षितसर्वाङ्गं परमस्नेहभावतः।
देव्या अङ्कं समारुह्य मोदते बहुभाग्यतः॥ १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! तब प्रसन्न होकर देवगण आदरपूर्वक गन्ध, पुष्प, अर्घ्य, धूप और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे गिरिजातनय कार्तिकेयको पूजन-वन्दनके द्वारा प्रसन्न करके तथा प्रजापति ब्रह्माजी अपने हंसवाहन-विमानपर आरूढ़ होकर षडानन कुमार कार्तिकेयको साथ लेकर भगवान् शिवके पास आये और (कार्तिकेयसे) कहने लगे—॥ १-२½ ॥

ब्रह्माजी बोले—वत्स! ये सुरेश्वरी जगत्पूज्या तुम्हारी माता हैं और ये जगद्वन्द्य, कल्याणकारी महादेवजी तुम्हारे पिता हैं, तुम इन दोनोंके पुत्र हो, अपने माता-पिताको प्रणाम करो। महामते! तुम यहाँ रहकर समस्त विश्वका पालन-पोषण करो॥ ३—५॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिवर! ब्रह्माजीके मुखसे ऐसा सुनकर देवी पार्वती और परमेश्वर सदाशिवने मनमें विचारकर कार्तिकेयको अपना पुत्र जाना॥ ६॥ तब प्रेमभरी पार्वती प्रणाम करते हुए अपने पुत्रको देखकर गोदमें बैठाकर परम आनन्दित हो गयीं। भगवान् महेशने भी पुत्रको प्राप्तकर हर्षपूरित मनसे सभी देवताओंको आमन्त्रित कर महान् पुत्रोत्सव मनाया॥ ७-८॥ वहाँ आये हुए सनातन भगवान् नारायण विष्णुने सुन्दर रूप और दिव्य शरीरवाले कार्तिकेयको देखा। देवी परम स्नेहभावसे उनके सभी अङ्गोंको देख रही थीं। देवीकी गोदमें आरूढ़ होकर वे कार्तिकेय अपना महान् भाग्य समझकर प्रसन्न हो रहे थे॥ ९-१०॥

तथाहमपि चैतस्याः पुत्रतां प्राप्य वै ध्रुवम्।
अङ्कमारुह्य प्राश्नामि स्तन्यं परमभावतः॥ ११॥

एवं विचिन्त्य भगवान् विष्णुः परमपूरुषः।
आध्यायन् चेतसा देवीं प्रणिपत्य ययौ यदा॥ १२॥

तदा तस्याभिलाषं तु विज्ञाय परमेश्वरी।
तस्मै ददौ वरं विष्णो मत्पुत्रस्त्वं भविष्यसि॥ १३॥

ततोऽन्येऽपि ययुः सर्वे स्वं स्वं स्थानं सुरोत्तमाः।
प्रणिपत्य महादेवीं देवदेवं च नारद॥ १४॥

इत्युक्तं कार्तिकेयोऽसौ तारकं देवकण्टकम्।
यथा च पातयामास समरे भीमविक्रमम्॥ १५॥

यथा परिचयश्चाभूत्पितृभ्यां सह तस्य च॥ १६॥

इदानीं शृणु विष्णुः स यथा जातो गणेश्वरः।
भवानीतनयो देवः पूज्यः करिवराननः॥ १७॥

परमात्मा भगवान् विष्णुके मनमें ऐसा विचार आया कि मैं भी इन भगवतीका पुत्र होकर कभी इनकी गोदमें खेलूँ और वात्सल्यस्नेहभरा इनका दूध पियूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने मन-ही-मन देवीका ध्यान कर उन्हें प्रणाम किया और वे वहाँसे जब चल पड़े तब उनकी अभिलाषाको जानकर परमेश्वरी जगदम्बाने उन्हें वरदान दिया कि विष्णो! तुम मेरे पुत्र बनोगे॥ ११—१३॥

नारदजी! इसके पश्चात् दूसरे देवगण भी महादेवी पार्वती और देवाधिदेव भगवान् सदाशिवको प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये॥ १४॥ इस प्रकार भगवान् कार्तिकेयने देवपीडक, भयंकर पराक्रमी तारकासुरका युद्धमें जिस प्रकार संहार किया और जिस प्रकार अपने माता-पितासे उनका परिचय हुआ, वह सब मैंने कह दिया। अब तुम उस कथाको सुनो, जिस प्रकार भगवान् विष्णु प्रथम पूज्य गजाननके रूपमें पार्वतीपुत्र होकर गणाधिपति बने॥ १५—१७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कार्तिकेयकैलासगमनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'कार्तिकेय-कैलासगमन' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

गणेशजन्मकी कथा, पार्वतीद्वारा अपने उबटनसे विष्णुस्वरूप एक पुत्रकी उत्पत्ति कर उसे नगररक्षकके रूपमें नियुक्त करना, भगवान् शंकरद्वारा अनजानमें त्रिशूलद्वारा उस बालकका सिर काटना, पार्वतीका पुत्रवियोगसे दुःखी होना, भगवान् शंकरद्वारा एक गजराजका सिर काटकर पुत्रके धड़से जोड़ा जाना और पुत्रका जीवित होना, उसी बालक गणेशका गणपति-पदपर नियुक्त होना

श्रीमहादेव उवाच

अथैकदा विहारार्थं भवान्या सहितो भवः।
जगाम धरणीपृष्ठं पुत्रं संस्थाप्य मन्दिरे॥ १॥

ततः प्राप्य परं रम्यं काननं धरणीतले।
निर्माय नगरीं रम्यां तत्रोवास सहोमया॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—अपने पुत्रको भवनमें छोड़कर एक बार भगवान् सदाशिव भवानी पार्वतीके साथ विहारके लिये पृथ्वीतलपर गये॥ १॥ तब पृथ्वीपर एक सुन्दर वनमें पहुँचकर एक मनोहर नगरीका निर्माण करके उमासहित महेश्वर वहीं निवास करने लगे॥ २॥

तत्रैकदा महादेवो देवीं संस्थाप्य मन्दिरे।
आहर्तुं वन्यपुष्पाणि प्रययौ प्रमथैः सह॥ ३ ॥
ततः प्राप्य च पुष्पाणि सुबहूनि महेश्वरः।
चक्रे कालविलम्बं तु कानने बहुरम्यके॥ ४ ॥
एतस्मिन्नन्तरे गौरी गात्रं लिप्त्वा हरिद्रया।
स्नानप्रयाण उद्युक्ता बभूव मुनिपुङ्गव॥ ५ ॥
तदा हि साभिरक्षार्थं मन्दिरस्य महेश्वरी।
चिन्तयामास विश्वेषामपि रक्षणकारिणी॥ ६ ॥
तत्र विष्णोश्च संस्मृत्य प्रार्थितं निजगात्रतः।
हरिद्रालेपमानीय पुत्रमेकं ससर्ज च॥ ७ ॥



लम्बोदरं महाबाहुं चारुवक्त्रं मनोहरम्।
त्रिनेत्रं रक्तवर्णं च मध्याह्नार्कसमप्रभम्॥ ८ ॥
नारायणं तं च देवं पुत्रं सर्वगणेश्वरम्।
ततस्तस्मै भगवती स्तन्यं दत्त्वा शुचिस्मिता॥ ९ ॥
उवाच वचनं पुत्र रक्षस्वैनां पुरीं मम।
त्वं यावदागमिष्यामि स्नात्वा भूयः पुरीमिमाम्॥ १० ॥
इत्युक्त्वा तं सुतं देवी स्नातुमभ्याययौ द्रुतम्।
स्थितस्तु बालकस्तत्र पुरद्वारं प्रपालयन्॥ ११ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि देवदेवो वनान्तरात्।
आयातस्तत्पुरद्वारं तं च बालो ददर्श ह॥ १२ ॥
ततस्तं वारयामास देवदेवमुमासुतः।
पुरःप्रवेशकाले तु शूलमुद्यम्य वेगतः॥ १३ ॥

तब एक दिन भगवती उमाको घरमें छोड़कर भगवान् महेश्वर अपने प्रमथगणोंके साथ वनमें पुष्प लाने गये। अनेक प्रकारके पुष्पोंको प्राप्त करके भगवान् शिवने उस सुन्दर वनमें बहुत-सा समय बिता दिया॥ ३-४॥ मुनिश्रेष्ठ! इस बीच भगवती गौरी अपने शरीरमें हल्दीका उबटन लगाकर स्नानहेतु जानेको उद्यत हुईं। उस समय सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी भी रक्षा करनेवाली जगदम्बा अपने निवासस्थानकी रक्षाके लिये विचार करने लगीं॥ ५-६॥ तदनन्तर भगवान् विष्णुकी पूर्व-प्रार्थनाका स्मरण करके अपने शरीरपर लगे हरिद्रा-उबटनका कुछ अंश लेकर उन्होंने एक पुत्रका निर्माण किया। उस बालकके बड़े हाथ, लम्बा-सा पेट, सुन्दर मनोहर मुखमण्डल, तीन नेत्र, रक्तवर्ण और मध्याह्न-कालीन सूर्यके समान चमकता हुआ प्रभा-मण्डल था। जगदम्बाका वह पुत्र सभी गणोंका स्वामी और साक्षात् नारायणरूप ही था। तब प्रसन्नवदन होकर उसे अपना दूध पिलाते हुए भगवती पार्वतीने कहा—पुत्र! जबतक मैं नहाकर यहाँ लौटूँ, तबतक तुम मेरे इस नगरकी रक्षा करना॥ ७—१०॥

पुत्रसे ऐसा कहकर जगदम्बा शीघ्र ही स्नानके लिये चली गयीं और वह बालक नगरद्वारकी रखवाली करते हुए वहाँ खड़ा हो गया॥ ११॥ इसी बीच देवाधिदेव भगवान् शंकर वनसे लौटकर नगरद्वारपर आये और बालकने उन्हें देखा॥ १२॥ पार्वतीपुत्रने उन देवाधिदेवको नगरमें प्रवेश करते समय शीघ्रतापूर्वक अपना शूल उठाते हुए रोका॥ १३॥

तं दृष्ट्वा शूलिनं शूलपाणिर्नेत्रैरपश्यत।
चिक्षेप सहसा शूलमविजानन्नुमासुतम्॥ १४॥

सुघोरं तं महाशूलं निक्षिप्तं शूलपाणिना।
सहसा भस्मसाच्चक्रे शिरस्तस्य सुतस्य वै॥ १५॥

विशीर्षः पार्वतीसूनुर्न च प्राणान्मुमोच ह।
न वा शूलं महेशस्य तत्प्राणान् जगृहे तदा॥ १६॥

एतस्मिन्नेव काले तु स्नात्वा सर्वसखीवृता।
आयाता गिरिराजस्य सुतापि त्रिदशेश्वरी॥ १७॥

सा दृष्ट्वा च सुतं द्वारि विशीर्षं पतितं भुवि।
पप्रच्छ देवदेवेशं संत्रस्ता मुनिसत्तम॥ १८॥

देव्युवाच

किमेतत्त्रिदशश्रेष्ठ बालकस्य तु मे शिरः।
केन भस्मीकृतं ब्रूहि पुरद्वारस्थितस्य वै॥ १९॥

शिव उवाच

नाहं जाने तव सुतमेनं पर्वतनन्दिनि।
वर्त्मावरोधकं ज्ञात्वा भस्म्यकार्षं शिरोऽस्य वै॥ २०॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः प्राह महादेवं पार्वती क्रोधसंयुता।
शिरो मे देहि पुत्रस्य मा चिरं कुरु तत्र वै॥ २१॥

शूल लेकर अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर पार्वतीपुत्रको न जाननेके कारण शूलपाणि भगवान् शंकरने सहसा ही अपना शूल उसपर चला दिया। शूलपाणि भगवान् शिवके द्वारा चलाये हुए उस घोर शूलने उस बालकका मस्तक तुरंत ही भस्मसात् कर दिया॥ १४-१५॥ सिरविहीन होनेपर भी पार्वतीपुत्र निष्प्राण नहीं हुए और महेश्वरके शूलने भी उनके प्राणोंका हरण नहीं किया॥ १६॥ उसी समय स्नान करके सभी सखियोंके साथ गिरिराज-पुत्री सुरेश्वरी भवानी भी आ पहुँचीं। मुनिश्रेष्ठ! द्वारपर सिरविहीन भूमिपर पड़े हुए अपने पुत्रको देखकर दुःखी हुई देवीने देवाधिदेव शंकरसे पूछा— ॥ १७-१८॥



देवी बोलीं—सुरश्रेष्ठ! यह क्या हुआ? नगरद्वारपर खड़े मेरे इस बालकका सिर किसने भस्मसात् किया है, बतायें॥ १९॥

शिवजी बोले—पार्वती! मैं नहीं जानता था कि यह आपका पुत्र है, इसने मेरा मार्ग रोका इसलिये मैंने इसका सिर भस्म कर डाला॥ २०॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब पार्वतीने क्रोधपूर्वक सदाशिवसे कहा कि मेरे पुत्रका सिर तुरंत लाकर दीजिये, इसमें विलम्ब न हो॥ २१॥

तच्छ्रुत्वा भगवांस्तत्र सहसा प्रययौ मुने।
शिरोऽन्वेष्टुं महादेवो दातुं पुत्रस्य चात्मनः॥ २२॥
ततोऽरण्ये समालोक्य गजराजं महाबलम्।
उदक्शिरसमेकत्र शयानं स महेश्वरः॥ २३॥
तच्छिरश्छेदने पापरहितत्वात्तदच्छिनत्।
तत्र तच्छिर आनीय पुत्राय प्रददौ हरः॥ २४॥
गजाननो भवत्वेष देवीपुत्रो गणाधिपः।
देवदेवोऽपि तं ज्ञात्वा जातं नारायणं मुने॥ २५॥
स्नेहं प्रकटयामास क्रोडे कृत्वा गजाननम्।
तदैवं तमुवाचेदं पुत्रं नारायणं हरः॥ २६॥
प्रीणयन् प्रियवाक्येन सापराध इव प्रभुः॥ २७॥

श्रीशिव उवाच

अज्ञात्वा ते शिरश्छिन्नं शूलेनानेन यन्मया।
तेनाहं सापराधोऽस्मि सत्यं सत्यं जनार्दन॥ २८॥
द्वापरस्य तु शेषे त्वं वसुदेवगृहे यदा।
सम्भविष्यसि देवक्यां मूर्त्यन्तरमुपास्थितः॥ २९॥
तदा त्वया समं तात पुरे शोणितसंज्ञके।
संग्रामः सुमहानेव भविष्यति सुनिश्चितम्॥ ३०॥
तत्राहं सर्वलोकस्य पश्यतस्तद्रणाजिरे।
सशूलस्तम्भितोऽवश्यं भविष्यामि त्वयैव हि॥ ३१॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः स देवः पार्वत्या संस्थितस्तत्र कानने।
विहृत्य कतिचिन्मासान् भूयस्तत्पुरमभ्यगात्॥ ३२॥
यत्रासौ संस्थितो ज्येष्ठः पुत्रस्तारकसूदनः।
तत्र ताभ्यां कुमाराभ्यां नित्यं सम्प्रीतमानसः॥ ३३॥
उवास देवदेवेन सार्धं ब्रह्ममयी शिवा।
गत्वा कदाचित्कैलासं कदा वाराणसीं पुरीम्॥ ३४॥
अन्यत्र कुत्रचिद्वापि संविहृत्य यथेप्सितम्।
भूयस्तस्मिन् समागत्य वासं चक्रे यथेप्सितम्॥ ३५॥
सार्धं श्रीदेवदेवेन सुताभ्यां प्रमथैरपि।
ततस्तस्माच्च कैलासे वासं चक्रे तु सर्वदा॥ ३६॥
प्रीत्या परमया युक्ता क्वचित्तस्मिन्नगोत्तमे॥ ३७॥

मुने! यह सुनकर भगवान् शिव अपने पुत्रके लिये सिरकी खोजमें चल पड़े। उस जंगलमें एक महाबली गजराजको उत्तर दिशाकी ओर सिर किये सोया देखकर भगवान् शिवने 'उस सिरके काटनेमें पाप नहीं होगा'—ऐसा जानकर उसे काटा और लाकर अपने पुत्रके लगा दिया एवं 'देवीका यह पुत्र गणोंका अधिपति तथा गजानन हो' ऐसा कहा॥ २२—२४½॥ मुने! भगवान् शिवने भी साक्षात् नारायणको उस रूपमें जन्मा जानकर गजाननको अपनी गोदमें लेकर बहुत स्नेह किया। नारायणरूप उस पुत्रको स्नेहमयी वाणीसे प्रसन्न करते हुए शिवजीने अपराधीकी भाँति ऐसा कहा—॥ २५—२७॥

श्रीशिवजी बोले—जनार्दन! अनजानेमें इस शूलसे मैंने आपका सिर काट डाला, इसलिये मैं सचमुच ही अपराधी हूँ। द्वापरयुगके अन्तमें वसुदेवके घरमें देवकीके गर्भसे जब आप पुनः अवतार लेंगे, तब आपके साथ शोणितपुरमें मेरा संग्राम होना निश्चित है, उस रणभूमिमें सब लोगोंके सामने ही मैं आपके द्वारा शूलसहित अवश्य ही स्तम्भित कर दिया जाऊँगा॥ २८—३१॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब भगवान् शिव उस वनमें देवी पार्वतीके साथ कुछ महीनोंतक विहार करके पुनः अपने नगरमें वापस लौट आये। जहाँ उनके ज्येष्ठ पुत्र तारकासुरसंहारक कार्तिकेय भी थे। वहाँ अपने दोनों पुत्रोंके साथ प्रसन्नचित्त होकर भगवान् शिव निवास करने लगे॥ ३२-३३॥ ब्रह्मस्वरूपा भगवती पार्वती सदाशिवके साथ कभी कैलासपर्वतपर, कभी वाराणसीपुरीमें अथवा अन्य किसी रमणीय स्थलपर यथेप्सित विहार करके अपने नगरमें पुनः लौटकर यथारुचि निवास करने लगीं॥ ३४-३५॥ इस प्रकार अपने दोनों पुत्रों और प्रमथगणों तथा देवाधिदेव सदाशिवके साथ जगदम्बाने उस श्रेष्ठ कैलासपर्वतपर निरन्तर वास किया और कभी परमप्रीतिपूर्वक पर्वतश्रेष्ठ हिमालयपर्वतपर भी रहीं॥ ३६-३७॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टं मुनिसत्तम।
प्रकृतिः पूर्वभावेन यथोद्वाहादिमङ्गलम्॥ ३८॥
य इदं प्रपठेद्भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम्।
तस्य प्रसन्ना शर्वाणी ब्रह्माद्यैरपि दुर्लभा॥ ३९॥
कुरुते च मनोऽभीष्टं परिपूर्णं न संशयः।
नश्यन्ति रिपवस्तस्य अपि संख्ये सुदुर्जयाः॥ ४०॥
अकाले वार्षिकीं पूजां यां चकार रघूद्वहः।
रावणस्य वधार्थाय भक्त्या परमया युतः॥ ४१॥
तत्र कृष्णनवम्यां तु समारभ्य दिने दिने।
यावन्महानवम्येतत्पठंस्तावद्दिने दिने॥ ४२॥
असाध्यं साधयेच्चैव नरो देव्याः प्रसादतः।
यथैव निहतः शत्रुः संग्रामे देवदुर्जयः॥ ४३॥
श्रीरामेण महाबाहू रावणो राक्षसेश्वरः।
तथैव पातयेच्छत्रून् सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४४॥
अश्वमेधफलं प्राप्य मोदते च चिरं दिवि।
शृणुयाद्य इदं भक्त्या देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ४५॥
तस्य पुण्ययशोवृद्धिर्जायते मुनिसत्तम।
न च व्याघ्रादयः सर्वे हिंसका अपि जन्तवः॥ ४६॥
तं पश्यन्ति भयाच्चापि पलायन्ते सुदूरतः।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्तः सुखं भुक्त्वा चिरं भुवि॥ ४७॥
अन्ते देव्याः पदं प्राप्य रमते मुनिसत्तम।
बहुना किमिहोक्तेन सत्यं सत्यं मुनीश्वर॥ ४८॥
शृण्वतां पठतामेतत्प्रसन्ना स्यान्महेश्वरी।
तस्यां तु सुप्रसन्नायां यत्फलं जायते मुने॥ ४९॥
तद्वक्तुं न समर्थोऽस्मि कल्पकोटिशतैरपि।
न प्रकाश्यमिदं वत्स तत्त्वं देव्यास्तु यन्महत्॥ ५०॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं दातव्यं भक्तिशालिने।
त्वं देव्याः परमो भक्तः शुद्धज्ञानी दृढव्रतः॥ ५१॥
इत्यस्मात्कथितं तुभ्यं न प्रकाश्यं त्वया पुनः।
न तुभ्यं विद्यते किंचिदप्रकाश्यं कदाचन॥ ५२॥
किमिच्छस्यपरं श्रोतुं वद तच्च वदामि तत्॥ ५३॥

मुनिवर! जिस प्रकार पूर्वोक्त परा प्रकृति और सदाशिवका विवाहादि मङ्गलकार्य हुआ, वह सब वृत्तान्त जो आपने पूछा था मैंने बता दिया॥ ३८॥ जगदम्बाके इस उत्तम चरित्रको जो भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसपर ब्रह्मादि देवगणोंके लिये भी दुष्प्राप्य भगवती पार्वती प्रसन्न होती हैं। उसके मनोवाञ्छित कार्य निश्चय ही पूर्ण होते हैं और दुर्जय शत्रु भी युद्धमें नष्ट हो जाते हैं॥ ३९-४०॥ राक्षसराज रावणको मारनेके लिये रघुवर रामचन्द्रजीने असमयमें ही परम भक्तिपूर्वक जगदम्बाकी जो वार्षिकी पूजा की थी, उसी प्रकारसे आश्विन कृष्णपक्षकी नवमीसे आरम्भ करके महानवमीतक प्रतिदिन इसका पाठ करनेसे मानवके कठिन कार्य भी भगवतीकी कृपासे पूर्ण हो जाते हैं। जैसे देवताओंके लिये दुर्जय महाबाहु राक्षसराज रावणका श्रीरामचन्द्रने युद्धभूमिमें संहार किया, उसी प्रकार देवीभक्त अपने शत्रुओंका निश्चय ही नाश कर देता है, इसमें संशय नहीं है। उसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है और वह दीर्घकालतक स्वर्गमें आनन्द करता है। मुनिवर! जो भक्तिपूर्वक देवीके इस उत्तम चरित्रका श्रवण करता है, उसके पुण्य और यशकी वृद्धि होती है। व्याघ्र आदि सभी हिंसक जन्तु भी उसकी ओर देखतेतक नहीं और भयके मारे दूरसे ही भाग जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! वह इस संसारमें पुत्र-पौत्रादिसे युक्त होकर सभी सुख भोगते हुए अन्तमें देवीलोक पहुँचकर आनन्द प्राप्त करता है॥ ४१—४७½॥

मुनिश्रेष्ठ! अधिक क्या कहें, इस माहात्म्यको पढ़ने और सुननेवालेपर महेश्वरी भवानी प्रसन्न हो जाती हैं। मुने! उनके प्रसन्न होनेपर जो फल होता है, उसे असंख्य कल्पोंमें भी मैं कहनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ ४८-४९½॥ वत्स! देवीके इस तत्त्वको प्रकाशित नहीं करना चाहिये। यह जिस किसी व्यक्तिको देनेयोग्य नहीं है, इसे केवल भक्तिपूर्ण जिज्ञासुके प्रति ही कहना चाहिये। आप देवीके परम भक्त हैं, दृढ़व्रती और विशुद्ध ज्ञानी हैं, इसलिये आपके लिये मैंने इसे बताया। आप इसे पुनः प्रकाशित न करें। आपके लिये मेरे पास कुछ भी गोपनीय नहीं है, आप और क्या सुनना चाहते हैं वह कहें, मैं उसे भी सुनाऊँगा॥ ५०—५३॥

व्यास उवाच

इत्येवं त्रिदशेश्वरस्य वचनं श्रुत्वा मुनीन्द्रस्ततो
नत्वा तं त्रिदशेन्द्रवन्दितपदं पञ्चाननं भक्तितः।
भूयोऽपि त्रिदशोत्तमासुचरितं संश्रोतुकामस्तदा
पप्रच्छेदमपूर्वमुत्तममतिर्देव्या महत्पूजनं॥ ५४॥

यत्कृत्वा रघुनन्दनः समवधीद्रक्षोधिपं रावणं
देवानां च गणार्दकं सहसुतं सामात्यवर्गं रणे।
यत्कृत्वा भुवि मानवाः सुरपुरे देवा महेन्द्रादयो
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाश्च तद्धि परमं प्रापुर्मनोवाञ्छितम्॥ ५५॥

व्यासजी बोले—देवाधिदेव भगवान् शिवका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्रके द्वारा वन्दित पादारविन्दवाले पञ्चानन भगवान् शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके पुनः सुरेश्वरी भगवतीके उत्तम चरित्रको सुननेकी कामनावाले उत्तममति नारदजीने देवीकी महापूजाके विधानके सम्बन्धमें प्रश्न किया॥ ५४॥ भगवतीके जिस पूजनको करके रघुनन्दन श्रीरामभद्रने देवपीड़क राक्षसराज रावणका पुत्रों और मन्त्रियोंसहित रणभूमिमें संहार किया था और जिस पूजनको करके भूलोकमें मानव और देवलोकमें ब्रह्मा तथा इन्द्रादि देवगण अपने मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करते हैं, उस पूजाविधानके सम्बन्धमें भी नारदजीने प्रश्न किया॥ ५५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे गणपतिजन्मकथावर्णनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'गणपतिजन्मकथावर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

रामोपाख्यानका प्रारम्भ, देवी कात्यायनीकी आराधनासे रावणका त्रैलोक्यविजयी होना, ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर विष्णुका रामके रूपमें अवतरित होनेका आश्वासन देना तथा जगदम्बाद्वारा रावणके वधका उपाय बताना

नारद उवाच

शारदीया महापूजा या देव्याः प्रीतिदायिका।
वार्षिकीति त्वया प्रोक्ता यां चकार रघूत्तमः॥ १॥

रावणस्य वधार्थाय भक्त्या परमया युतः।
तां ब्रूहि मे महादेव विस्तरेण जगत्प्रभो॥ २॥

यथा स भगवान् विष्णुः सम्भूय मनुजाकृतिः।
पूजयामास विश्वेशीमकालेऽपि महामते॥ ३॥

त्वत्तः कश्चिन्न विद्येत वक्ता लोकत्रये प्रभो।
पवित्रं कुरु मां देव दासं ते शरणागतम्॥ ४॥

नारदजी बोले—महादेव! विश्वनाथ! आपने जिस वार्षिकी शारदीय महापूजाकी बात बतायी थी, जिसे रघुवर भगवान् श्रीरामने रावणके वधकी इच्छासे भक्तिपूर्वक सम्पन्न किया था और जो जगदम्बाको अत्यन्त प्रिय है, उसका मेरे लिये विस्तारसे वर्णन करें॥ १-२॥ महामते! जिस प्रकार भगवान् विष्णुने मनुष्यरूपमें अवतार लेकर असमयमें जगन्माता महेश्वरीकी पूजा की थी, वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें। प्रभो! आपसे बढ़कर इस त्रिलोकमें इसे बतानेवाला अन्य कोई नहीं है। देव! मैं आपका दास और शरणागत हूँ, मुझे इस कथासे पवित्र कीजिये॥ ३-४॥

श्रीमहादेव उवाच

देवीं त्रैलोक्यजननीं सम्प्रार्थ्य दशकन्धरः।
तस्याः प्रसादात्त्रैलोक्यविजयी समभूत्पुरा॥ ५॥

तस्य भावेन संतुष्टा शर्वाणी भक्तवत्सला।
उवास नगरे तस्य रावणस्य महात्मनः॥ ६॥

संस्थिता तपसः पुण्यं न यावत्क्षीणतामगात्।
नित्यं विजयदा भूत्वा सहिता योगिनीगणैः॥ ७॥

क्षीणे तु तपसः पुण्ये जगत्पीडनकारणात्।
त्यक्त्वा तस्य पुरीं देवी चण्डिका चण्डविक्रमा॥ ८॥

पूजिता रामचन्द्रेण तं जघान सबान्धवम्।
कैलासमगमद्देवी परिवारगणान्विता॥ ९॥

स रावणः पुरा दर्पाद्विजित्येन्द्रादिदेवताः।
विष्णुं च जगतां नाथं त्रिलोकं बाधते स वै॥ १०॥

न हविर्बुभुजुर्देवास्तद्भयान्मुनिपुङ्गव।
न यज्ञं मुनयश्चक्रुर्न तपो देवपूजनम्॥ ११॥
भयाद्राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १२॥

भयादिन्द्रः प्रतिदिनं गृहीत्वोपायनानि च।
तत्कृतानुग्रहापेक्षी संस्थितः सम्मुखं मुने॥ १३॥

तथान्ये ये च दिक्पालाश्चन्द्रसूर्यादयः सुराः।
ते सर्वे तेन दुष्टेन कृताश्चाज्ञानुसारिणः॥ १४॥

ततस्तेनार्दिता देवाः पृथिव्या सहिता मुने।
ब्रह्मणोऽन्तिकमासाद्य प्रोचुः प्राञ्जलयः सुराः॥ १५॥

प्रभो विधे जगन्नाथ पौलस्त्यतनयो महान्।
रावणो बलदर्पाच्च त्रिलोकीं बाधते स्वयम्॥ १६॥

तस्य भारासहा पृथ्वी तवान्तिकमुपागता।
वधोपायं चिन्तयस्व तस्य देव दुरात्मनः॥ १७॥

श्रीमहादेवजी बोले—प्राचीन कालमें त्रैलोक्यजननी भगवतीकी प्रार्थना करके दशकन्धर रावण उनकी कृपासे त्रैलोक्यविजयी हो गया। उसके भक्तिभावसे प्रसन्न होकर भक्तवत्सला भवानी उस महात्मा रावणके नगरमें निवास करने लगीं॥ ५-६॥

जबतक रावणकी तपस्याका पुण्य क्षीण नहीं हो गया तबतक अपनी योगिनियोंके साथ जगदम्बा उसको विजय प्रदान करते हुए वहाँ निवास करती रहीं॥ ७॥ जगत्‌को सतानेके कारण उसके पुण्य क्षीण होनेपर प्रचण्ड तेजस्विनी जगदम्बाने श्रीरामचन्द्रजीद्वारा पूजित होकर उसका बान्धवोंसहित नाश कर दिया तथा उसकी नगरीका त्याग कर अपनी योगिनियोंसमेत वे कैलासपर्वतपर चली गयीं॥ ८-९॥

पहले वह रावण इन्द्रादि देवताओंको जीतकर अपने पराक्रमके घमण्डमें जगन्नाथ भगवान् विष्णुसहित त्रिलोकको कष्ट पहुँचाने लगा। मुनिश्रेष्ठ! उस दुरात्मा राक्षसराज रावणके भयसे देवगण यज्ञहविका भोग नहीं कर पाते थे तथा मुनिगण देवपूजन, तप और यज्ञ-यागादि नहीं करते थे। मुने! उसके भयसे प्रतिदिन इन्द्र उपहार सामग्रियोंको लेकर उसके अनुग्रहकी अपेक्षा करते हुए उसके सामने खड़े रहते थे। जो चन्द्र-सूर्यादि दूसरे दिक्पाल और देवगण थे, उस दुष्टने उन सबको अपना आज्ञापालक बना लिया था॥ १०—१४॥ मुने! तब उससे दुःखी होकर देवताओंने पृथ्वीके साथ ब्रह्माजीके पास जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की। प्रभो! जगत्‌के स्वामी विधाता! पौलस्त्य (विश्रवा)-का पुत्र महान् रावण स्वयं अपने बलके घमण्डसे त्रिलोकीको पीड़ित कर रहा है। देव! यह पृथ्वी उसके पापकर्मोंके भारको सहनेमें असमर्थ होकर आपके पास आयी है। उस दुष्टके वधका कोई उपाय आप सोचें॥ १५—१७॥

इत्युक्तस्त्रिदशैर्ब्रह्मा समाश्वास्य वसुन्धराम्।
वैकुण्ठं समुपागम्य वैकुण्ठेशमुवाच ह॥ १८॥



प्रभो त्रिजगतां नाथ विश्वपालनतत्पर।
लङ्कायामतिदुर्धर्षो जायते दशकन्धरः॥ १९॥
तं हन्तुं मानुषं देहं समाश्रय जगत्पते॥ २०॥

अथ त्वं मानुषो भूत्वा रावणं देवकण्टकम्।
सपुत्रबान्धवं दुष्टं जहि त्वं विश्वपालक॥ २१॥

इत्युक्तो ब्रह्मणा विष्णुस्तमुवाच महामतिम्।
आश्वास्य त्रिदशान् सर्वान् रावणेन समर्दितान्॥ २२॥

श्रीभगवानुवाच

आश्रित्य मानुषं देहं भूत्वा दाशरथिः स्वयम्।
पातयिष्यामि तं दुष्टं सपुत्रगणबान्धवम्॥ २३॥

किंतु देवाः सहायार्थमृक्षवानररूपिणः।
भवन्तु पृथिवीपृष्ठे भूभारहरणाय तु॥ २४॥

अन्यद्वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्यदेकमतिदुष्करम्।
तत्रोपायं चिन्तयस्व वधार्थं दुष्टचेतसः॥ २५॥

पूज्यते त्रिजगन्माता देवी कात्यायनी परा।
सद्भक्त्या तेन दुष्टेन रावणेन दुरात्मना॥ २६॥

सापि कात्यायनी तुष्टा नित्यं तस्य जयप्रदा।
लङ्कायां कुरुते वासं सहिता योगिनीगणैः॥ २७॥

सा संत्यजति चेल्लङ्कां सुप्रसन्ना भवेन्मयि।
तदा शक्नोमि तं हन्तुं न चेन्नैवास्म्यहं क्षमः॥ २८॥

तदत्र यद्विधेयं तत्कुरुष्व कमलासन।
न विनानुग्रहं तस्याः शत्रुं जेतुं क्षमो भवेत्॥ २९॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजीने पृथ्वीको सान्त्वना दी और वैकुण्ठमें आकर वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—॥ १८॥ संसारके पालनमें तत्पर रहनेवाले त्रिलोकीनाथ! प्रभो! लङ्कामें दशकन्धर रावण अत्यन्त दुर्धर्ष हो गया है, उसको मारनेके लिये जगत्पते! आप मनुष्य-शरीर धारण करें। विश्वपालक! आप मनुष्यरूपमें अवतार लेकर देवताओंको पीड़ित करनेवाले उस दुष्ट रावणका पुत्रों और बान्धवोंसहित संहार करें॥ १९—२१॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् विष्णुने रावणद्वारा सताये गये सभी देवताओंको आश्वस्त किया तथा वे महामति ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहने लगे—॥ २२॥

श्रीभगवान् बोले—मैं स्वयं दशरथके पुत्ररूपसे मनुष्य-शरीर धारण करके उस दुष्टका पुत्रों और बान्धवोंसहित अवश्य ही संहार करूँगा; किंतु इस कार्यमें देवतालोग रीछ और वानरोंके रूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर भूभार-हरणमें मेरी सहायता करें॥ २३-२४॥ ब्रह्माजी! दूसरी बात आपसे बताता हूँ कि उस दुष्टके मारनेमें एक कठिनाई है, उसका आप उपाय खोजें। वह दुष्टात्मा रावण भक्तिपूर्वक त्रिलोकजननी पराम्बा कात्यायनीकी पूजा करता है। वे भगवती कात्यायनी भी प्रसन्न होकर अपनी योगिनियोंके साथ लङ्कामें वास करती हुई उसे निरन्तर विजय प्रदान करती रहती हैं। यदि वे जगदम्बा मुझपर प्रसन्न होकर लङ्काका त्याग कर दें तभी मैं रावणको मार पाऊँगा, अन्यथा मैं समर्थ नहीं हूँ। कमलासन! इसके लिये जो कुछ करना हो, आप उसे करें। उन जगदम्बाकी कृपाके बिना उस शत्रुको जीतनेमें कोई समर्थ नहीं है॥ २५—२९॥

अप्यल्पवीर्यं सुमहान्महाबलपराक्रमः।
सानुकूला जगन्माता यावत्कात्यायनी विधे॥ ३०॥

तावज्जगदिदं सर्वं नाशयेद्यदि रावणः।
तथापि तस्य किं कर्तुं क्षमोऽहं विश्वपालकः॥ ३१॥

ब्रह्मोवाच

सत्यमेव जगन्नाथ दुर्गाभक्तिपरायणः।
नावसीदति दुष्टोऽपि कदाचिदपि भूतले॥ ३२॥

तथाप्युपायो भगवन् विद्यते तस्य नाशने।
तस्या एव जगत्सर्वं चराचरमिदं प्रभो॥ ३३॥

तयैव सृष्टं काले तु तयैव परिपाल्यते।
नाकाले जायते तस्या विनाशेच्छा जगत्पते॥ ३४॥

त्वमहं वा महेशानः सृष्टिस्थितिलयेषु च।
निमित्तमात्रं सैवैका कारणं तेषु वस्तुतः॥ ३५॥

तस्या मूर्त्यन्तराः सर्वे वयं देवा जगत्पते।
अस्मान् विद्विषतो रक्षां शाश्वतीं न करोति सा॥ ३६॥

श्रीभगवानुवाच

गच्छामि च त्वया सार्धं कैलासशिखरं विधे।
प्रार्थयिष्यामि विश्वेशीं वधार्थं दुष्टचेतसः॥ ३७॥
पौलस्त्यतनयस्यास्य रावणस्य दुरात्मनः॥ ३८॥

श्रीमहादेव उवाच

ततस्तौ जग्मतुः शीघ्रं कैलासं मुनिसत्तम।
यत्रास्ते सा जगद्धात्री शङ्करेण महात्मना॥ ३९॥

तौ दृष्ट्वा तु समायातौ ब्रह्मविष्णू महेश्वरः।
अभ्यर्च्यागमने हेतुं पप्रच्छ मुनिसत्तम॥ ४०॥

ततस्तावूचतुः शीघ्रं वृत्तान्तं सकलं विभुम्।
चेष्टितं राक्षसेन्द्रस्य चात्मनश्चाभिचेष्टितम्॥ ४१॥

ततस्ते सहिता देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उपतस्थुर्महादेवीं पार्वतीं मुनिसत्तम॥ ४२॥

विधाता! जबतक जगदम्बा कात्यायनी रावणके अनुकूल हैं तबतक वह महाबली महापराक्रमी रावण अल्प-शक्तिवाले इस सारे संसारका यदि नाश भी कर दे तो भी मैं विश्वपालक उसका क्या बिगाड़ सकूँगा!॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—जगन्नाथ! यह सत्य है कि भगवती दुर्गाकी भक्तिमें लगा हुआ दुष्ट भी इस संसारमें कभी दुःखको प्राप्त नहीं होता। किंतु भगवन्! उस दुष्टके नाशका अवश्य ही उपाय है। प्रभो! यह सारा चराचर संसार उन्हीं जगन्मातासे उत्पन्न होता है और उन्हींसे पोषित होता है। जगत्पते! इस संसारको नष्ट करनेकी उनकी इच्छा अकालमें नहीं हो सकती॥ ३२—३४॥

मैं, आप और भगवान् शिव इस संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके निमित्तमात्र हैं, इसमें वस्तुतः एकमात्र कारण तो वे ही जगदम्बा हैं। जगत्पते! हम सब देवगण उन्हींके स्वरूपमें अन्तर्भूत हैं। अतः हमलोगोंके प्रति द्वेष करनेवाले उस रावणसे क्या हमारी रक्षा वे जगदम्बा नहीं करेंगी!॥ ३५-३६॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! मैं आपके साथ कैलास पर्वतपर चलूँगा और उस पौलस्त्य (विश्रवा)-के पुत्र दुष्टात्मा रावणके वधके लिये जगदीश्वरीसे प्रार्थना करूँगा॥ ३७-३८॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिवर! तब वे दोनों ब्रह्मा और विष्णु शीघ्र ही कैलासपर्वतपर गये, जहाँ जगन्माता पार्वती भगवान् शंकरके साथ विराजमान रहती हैं॥ ३९॥ मुनिवर! ब्रह्मा और विष्णुको आया देखकर भगवान् शिवने उनका अभिनन्दन करके उनके आगमनका कारण पूछा॥ ४०॥ तब उन दोनोंने राक्षसराज रावणके उपद्रव और अपने मनोवाञ्छित विचारसे युक्त सारा वृत्तान्त भगवान् शंकरको शीघ्र बताया। मुनिवर! तब वे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर एक साथ भगवती पार्वतीके समीप उपस्थित हुए॥ ४१-४२॥

दृष्ट्वा तां परमेशानीं सुप्रसन्नमुखाम्बुजाम्।
प्रणेमुस्त्रिदशश्रेष्ठा दण्डवत्पतिता भुवि॥ ४३॥

प्रणतान्वीक्ष्य सा देवी ब्रह्मादीन्कृपयाक्षणात्।
भूत्वा परा महादेवी रत्नसिंहासनस्थिता॥ ४४॥

अष्टादशभुजा चारुहारशोभिकुचस्थला।
प्रसन्नवदना चारुचन्द्रार्धकृतशेखरा॥ ४५॥

सुचारुदशना स्मेररुचिरास्या त्रिलोचना।
भूमेरुत्थाय भगवान् विष्णुस्तां जगदम्बिकाम्॥ ४६॥
प्राञ्जलिः प्राह सद्भक्त्या रोमाञ्चितकलेवरः॥ ४७॥

श्रीभगवानुवाच

मातः पौलस्त्यतनयो रावणो राक्षसाधिपः।
त्वदनुग्रहदर्पेण बाधते सकलं जगत्॥ ४८॥

तेन देवाः सगन्धर्वा ब्रह्माणं शरणं गताः।
ब्रह्मापि मां वधार्थाय तस्य देवि दुरात्मनः॥ ४९॥

अवोचन्मानुषं देहं पृथिव्यां धारय प्रभो।
मया प्रतिश्रुतं चैव तथैव जगदीश्वरि॥ ५०॥

भूत्वा दाशरथिर्भूमौ हनिष्ये तं दुरासदम्।
किंतु त्वं सेवितानेन प्रत्यहं सुमहात्मना॥ ५१॥

आराधितश्च भगवान्परमात्मा महेश्वरः।
त्वं चापि परमप्रीत्या तस्य रक्षणकारणात्॥ ५२॥

करोषि वसतिं तस्य पुरे त्रिदशवन्दिते।
समरे तु निहन्ता वा कथं त्रिदशकण्टकम्॥ ५३॥

यस्य संरक्षणकरी त्वं तथासौ महेश्वरः।
विशेषतस्त्वमेवासि स्वयं लङ्केश्वरी शिवे॥ ५४॥

अतस्त्वं रक्षणार्थाय जगतोऽस्य जगन्मयि।
यथा विधेयं तद् ब्रूहि नमस्ते जगदम्बिके॥ ५५॥

वहाँ प्रसन्नमुखकमलवाली उन महेश्वरीको देखकर श्रेष्ठ देवताओंने पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया॥ ४३॥ उन ब्रह्मादि देवताओंको प्रणाम करते देखकर तत्क्षण कृपापूर्वक महादेवी जगदम्बा अपने परा रूपमें रत्नसिंहासनपर विराजमान हो गयीं। उनके अठारह भुजाएँ थीं, सुन्दर हारसे वक्षःस्थल सुशोभित था, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रकी रेखा विराज रही थी और मुखकमल प्रसन्नतासे देदीप्यमान था। सुन्दर दन्तपङ्क्ति और मुसकानसे उनका मुखमण्डल सुशोभित था, जिसपर तीनों नेत्र प्रकाशमान थे। भगवान् विष्णुने भूमिसे उठकर जगदम्बिकासे हाथ जोड़कर रोमाञ्चित होते हुए भक्तिपूर्वक कहा—॥ ४४—४७॥

श्रीभगवान् बोले—माँ! पौलस्त्य (विश्रवा)-का पुत्र राक्षसराज रावण आपके कृपाप्रसादके अभिमानसे सम्पूर्ण जगत्को पीड़ित कर रहा है। इस कारणसे सभी देवता और गन्धर्वगण ब्रह्माजीकी शरणमें गये और ब्रह्माजीने भी उस दुष्टके वधहेतु पृथ्वीपर मनुष्यरूपमें मुझसे अवतार लेनेको कहा। जगदीश्वरी! मैंने भी उन्हें ऐसा ही करनेका वचन दिया है कि पृथ्वीलोकमें दशरथके पुत्ररूपमें अवतार लेकर मैं उस दुष्टात्माका संहार करूँगा, किंतु वह महाभाग नित्य ही आपकी और भगवान् महेश्वरकी सेवा करता है। आप भी परम प्रसन्न होकर उसकी रक्षा-हेतु उसके नगरमें ही वास करती हैं। देववन्दिते! उस देवशत्रु रावणका युद्धमें कैसे नाश होगा? जिसके संरक्षक आप और महेश्वर शिव हैं, उसे कौन मार सकता है! शिवे! आप तो स्वयं ही लङ्केश्वरी होकर विराजमान रहती हैं। जगदम्बा! इस संसारकी रक्षाके लिये आप ही कोई उपाय बतायें। आपको प्रणाम है॥ ४८—५५॥

श्रीदेव्युवाच

पूजिता रावणेनाहं सुचिरं मधुसूदन।
सत्यं वसामि लङ्कायां तस्य रक्षणकारणात्॥ ५६॥

यथा मामर्चयेद्भक्त्या रावणः स महाबलः।
महेशमपि सद्भक्त्या तथा प्राप्य च सम्पदः॥ ५७॥

न चावशिष्टं विद्येत तस्य प्राप्यं सुदुर्लभम्।
मनोरथश्च सम्पूर्णः सम्पूर्णतपसः फलम्॥ ५८॥

आत्मनः स विनाशाय साम्प्रतं बलदर्पितः।
बाधते सकलं विश्वं चराचरमिदं बलात्॥ ५९॥

अहं हि निधने तस्य साम्प्रतं चिन्तये स्वयम्।
निमित्तं यदि चाप्नोमि तदाहमपि पातये॥ ६०॥

तं दुष्टं किंतु नो साक्षात्स्वयं वा हन्तुमुत्सहे।
भद्रं तु ब्रह्मणा प्रोक्तं याहि मानुषतां स्वयम्॥ ६१॥

यतस्व तद्वधे चापि साहाय्यं ते करिष्यति।
त्वयि मानुषतां जाते कमलापि मदंशजा॥ ६२॥

मानुषं देहमाश्रित्य सम्भविष्यति भूतले।
तां दृष्ट्वा चातिलोभेन हरिष्यति सुदुर्मतिः॥ ६३॥

वीरः सुरतमोहेन मम मूर्त्यन्तरं बलात्।
तस्यां लङ्कां प्रविष्टायां शिवस्यानुमते ध्रुवम्॥ ६४॥
त्यक्ष्यामि लङ्कानगरीं विनाशाय दुरात्मनः॥ ६५॥

मम मूर्त्यन्तरं लक्ष्मीमवमंस्यति तां यदा।
तदैव मम कोपेन स नाशं समवाप्स्यति॥ ६६॥

त्यक्तायां तु मया तस्यां लङ्कायां मधुसूदन।
वधार्थं तस्य दुष्टस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ ६७॥

त्वयि मानुषतां याते सूर्यवंशे रघोः कुले।
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठस्त्वां मन्त्रं प्रग्राहयिष्यति॥ ६८॥

तन्मन्त्रं समरे तात स्मरिष्यसि सुगोपितम्।
रक्षार्थमात्मनश्चापि रावणस्य वधाय च॥ ६९॥

न तदा तेन निःक्षिप्ता अपि बाणाः सुदारुणाः।
त्वां भेत्स्यन्ति रणे घोरे कदाचिन्मधुसूदन॥ ७०॥

श्रीदेवीजी बोलीं—मधुसूदन! रावणने दीर्घकालतक मेरी पूजा की है। यह भी सत्य है कि मैं उसकी रक्षाके लिये ही लङ्कामें निवास करती हूँ। उस महाबली रावणने जिस भक्तिभावसे मेरी और महेश्वरकी आराधना की तथा उसके फलस्वरूप उसे जो सम्पदा मिली है, उससे अब उसके लिये इस संसारमें कुछ भी पाना दुर्लभ नहीं रहा। उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं और उसे तपस्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त हो चुका है॥ ५६—५८॥ अब अपने बलके घमण्डसे वह इस चराचर जगत्को अपने विनाशके लिये ही पीड़ित कर रहा है। मैं स्वयं भी अब उसके संहारके बारेमें सोचती हूँ। यदि कोई उपयुक्त निमित्त प्राप्त हो जाय तो मैं स्वयं ही उस दुष्टको मार डालूँगी, किंतु मेरा स्वयं उसे मारना उचित नहीं लगता। ब्रह्माजीने ठीक ही कहा है, आपको ही मनुष्यरूपमें अवतार लेना चाहिये॥ ५९—६१॥

उस रूपमें आप उसके वधका प्रयत्न करें। आपके मनुष्यरूप धारण करनेपर मेरी अंशभूता लक्ष्मी भी आपकी सहायता करेंगी। वे भी मनुष्यरूपमें पृथ्वीतलपर अवतरित होंगी। वह दुर्बुद्धि वीर रावण उन्हें देखकर कामासक्तिसे मोहित होकर अत्यन्त लोभपूर्वक मेरे ही दूसरे रूपमें प्रकट हुई उन देवीका बलपूर्वक अपहरण कर लेगा। उनके लङ्कामें प्रवेश करनेपर भगवान् शिवकी अनुमतिसे मैं निश्चय ही उस दुष्टात्माके विनाशके लिये लङ्कानगरीका त्याग कर दूँगी। मेरी ही दूसरी मूर्ति लक्ष्मीका जब वह अपमान करेगा तो मेरे कोपसे निश्चय ही उसका नाश हो जायगा॥ ६२—६६॥

मधुसूदन! मेरे द्वारा लङ्कानगरीका त्याग करनेपर तथा उस दुष्टात्मा रावणके वधहेतु सूर्यवंशके रघुकुलमें आपके मनुष्यरूपमें अवतार लेनेपर ब्रह्माजीके पुत्र ब्रह्मर्षि वसिष्ठ आपको मन्त्र प्रदान करेंगे। मधुसूदन! घोर संग्राममें उस परम गोपनीय मन्त्रका जब आप अपनी रक्षा तथा रावणके वधके निमित्त स्मरण करेंगे तब रावणके द्वारा चलाये हुए दारुण बाण भी आपको नहीं वेध सकेंगे॥ ६७—७०॥

तस्मिन्बाणप्रहरणे स्मर्तव्याहं महामते।
संहारकारिणी नित्यं ततस्ते विजयो भवेत्॥ ७१ ॥
मत्प्रसादात्सुदुर्लङ्घ्यं समुद्रमपि हेलया।
उत्तीर्य वानरैः सार्धं लङ्कामेष्यसि निश्चितम्॥ ७२ ॥
ब्रह्मोपदेशतस्तात शरत्काले विधानतः।
समुद्रतीरे कृत्वा तु मृण्मयीं प्रतिमां शुभाम्॥ ७३ ॥
मां प्रपूज्य विधानेन वेदोक्तेन जनार्दन।
पातयिष्यसि दुर्धर्षं रथाद्धेमपरिष्कृतात्॥ ७४ ॥
तं हत्वा समरे वीरं सपुत्रगणबान्धवम्।
लङ्काजयीति सुख्यातिं मत्प्रसादादवाप्स्यसि॥ ७५ ॥
तस्मान्मानुषतां याहि द्रुतं त्वं मधुसूदन।
वधाय राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ ७६ ॥

श्रीभगवानुवाच

त्वयि तस्य दृढा भक्तिस्त्वां च स्मरति भक्तितः।
कथं त्यक्ष्यसि तं लङ्कां मातस्त्वं करुणामयि॥ ७७ ॥
संकटेऽपि स दुर्धर्षस्त्वां स्मरिष्यति भक्तितः।
तत्कथं तं हनिष्यामि तन्मे वद सुरेश्वरि॥ ७८ ॥
ये त्वां स्मरन्ति ताञ्शम्भुस्तथाहं शमनोऽपि च।
सायुधाश्चानुसंगम्य संरक्षामो महाभये॥ ७९ ॥
तत्कथं संस्मरन्तं त्वां समरे रावणं शिवे।
स्वरक्ष्यं संहनिष्यामि त्वद्भक्तं परमेश्वरि॥ ८० ॥

श्रीपार्वत्युवाच

सत्यमेव महाबाहो समरे मां स्मरिष्यति।
तथापि स यथा मृत्युं समवाप्स्यति तच्छृणु॥ ८१ ॥
ममैवैतज्जगत्सर्वं जगद्रूपाहमेव हि।
एतस्य पीडनेनैव जायते मम पीडनम्॥ ८२ ॥

महामते! बाणोंके उस भयंकर युद्धमें आपको मुझ संहारकारिणीका निरन्तर स्मरण करना चाहिये, उससे आपकी विजय होगी। मेरी कृपासे अत्यन्त दुस्तर समुद्रको भी लीलापूर्वक वानरोंसहित पार करके आप निश्चय ही लङ्कामें प्रवेश कर सकेंगे॥ ७१-७२ ॥ तात! ब्रह्माजीके बताये विधानसे शरत्कालमें समुद्रके तटपर मेरी मिट्टीकी सुन्दर प्रतिमा बनाकर जनार्दन! वेदोक्त विधानसे मेरी पूजा करके आप उस दुर्धर्ष रावणको स्वर्णमण्डित रथसे गिरा सकेंगे। उस वीरवर रावणका पुत्रों तथा बन्धु-बान्धवोंसहित युद्धभूमिमें संहार करके मेरी कृपासे आपको लङ्काविजयीकी ख्याति प्राप्त हो जायगी। इसलिये मधुसूदन! आप दुष्टात्मा राक्षसराज रावणके वधके लिये शीघ्र ही मनुष्यरूप धारण करें॥ ७३—७६ ॥

श्रीभगवान् बोले—माता! आपमें उस रावणकी दृढ़ भक्ति है और वह निरन्तर आपका भक्तिपूर्वक स्मरण करता है। आप करुणामयी होनेके कारण उसका और उसकी लङ्काका कैसे त्याग कर पायेंगी? वह दुर्धर्ष रावण जब संकट आनेपर आपका भक्तिपूर्वक स्मरण करेगा, तब सुरेश्वरी! उस समय मैं उसे कैसे मार पाऊँगा, यह मुझे बतायें?॥ ७७-७८ ॥

शिवे! परमेश्वरी! जो आपका स्मरण करते हैं, उन्हें भय उपस्थित होनेपर मैं, भगवान् शंकर और यमराज भी वहाँ पहुँचकर अपने आयुध तथा शक्तिसे उनका संरक्षण करते हैं। तब युद्धभूमिमें आपका स्मरण करते हुए आपके भक्त उस रावणका मैं कैसे संहार कर पाऊँगा, जो कि मुझसे रक्षित होनेयोग्य है॥ ७९-८० ॥

श्रीपार्वतीजी बोलीं—महाबाहो! यह सत्य है कि युद्धभूमिमें रावण मेरा स्मरण करेगा तथापि वह जिस प्रकार मृत्युको प्राप्त होगा, उसे सुनें॥ ८१ ॥

यह सारा संसार मेरा ही है और मैं ही इस संसारके रूपमें प्रकट हूँ। जो इस संसारको पीड़ित करता है वह मुझे ही पीड़ित करता है।

एतत्प्रपीडयन्भक्त्या यो मां स्मरति संकटे।
नैहिकं हि फलं तस्य किंतु पारत्रिकं भवेत्॥ ८३॥

अविद्विषन् जगत्सर्वं यो मां स्मरति भावतः।
तस्याहं रक्षणकरी परत्रेह च सर्वदा॥ ८४॥

यूयं च तस्य रक्षायै यतिष्यथ महामते।
स तु यन्मां महाभीतः संस्मरिष्यति संकटे॥ ८५॥

तस्मै तद्विफलं विद्धि यन्मोक्षं समवाप्स्यति।
इह भुक्त्वा परं भोगं यथाभिलषितं चिरम्॥ ८६॥

परत्र मोक्षं परमं समेष्यति सुदुर्लभम्।
किमितो देहिनामस्ति फलं वा मधुसूदन॥ ८७॥

मयि लङ्कापुरे तस्य स्थितायां न दुरासदः।
समेष्यति रणे मृत्युं तेन त्यक्ष्यामि तां पुरीम्॥ ८८॥

रक्षिष्यामि न वै युद्धे जगत्पीडनकारणात्।
तस्मान्मानुषतां याहि महेशं प्रणिपत्य च॥ ८९॥

इस संसारको सताते हुए यदि कोई संकट आनेपर मेरा भक्तिपूर्वक स्मरण करता है तो उसे सांसारिक फल नहीं मिलता, अपितु पारलौकिक फल ही मिल पाता है। इस समस्त संसारके प्रति द्वेष न रखते हुए जो मेरा भक्तिभावसे स्मरण करता है उसका तो मैं इस लोक तथा परलोकमें सदा संरक्षण करती हूँ। महामते! आपलोग भी उस भक्तकी रक्षाके लिये यत्नवान् रहते ही हैं॥ ८२—८४½॥ संकटमें महान् भयभीत होकर वह रावण जब मेरा स्मरण करेगा तो उसका वह स्मरण विफल ही होगा। इस संसारमें चिरकालतक मनोवाञ्छित भोगोंको भोगकर उसे परम दुर्लभ मोक्षकी प्राप्ति होगी। मधुसूदन! शरीरधारियोंके लिये इससे अधिक और क्या प्राप्य हो सकता है!॥ ८५—८७॥

लङ्कापुरीमें मेरे रहते हुए उसकी युद्धभूमिमें मृत्यु असम्भव है, इसलिये उस पुरीका मैं त्याग कर दूँगी। युद्धभूमिमें मैं उसका संरक्षण भी नहीं करूँगी; क्योंकि वह संसारके लोगोंको सताता रहता है। इसलिये आप भगवान् सदाशिवको नमस्कार करके मनुष्यरूपमें अवतरित हो जायँ॥ ८८-८९॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीभगवतीनारायणसंवादवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीभगवती-नारायण-संवादवर्णन' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

शिवजीद्वारा हनुमान्‌रूपमें प्रकट होनेकी बात बताना, विष्णुका महाराज दशरथके घरमें राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नके रूपमें प्रकट होना, लक्ष्मीका सीताके रूपमें तथा अन्य देवगणोंका ऋक्ष, वानर आदि रूपोंमें प्रकट होना

श्रीमहादेव उवाच

इति देव्या वचः श्रुत्वा भगवान्मधुसूदनः।
प्रणिपत्य मुहुर्भक्त्या हर्षोत्फुल्लविलोचनः॥ १॥
महेशं वचनं प्राह सार्धं कमलयोनिना॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—भगवतीके ऐसे वचन सुनकर नेत्रोंमें आह्लादभरे हुए भगवान् विष्णुने उन्हें भक्तिपूर्वक पुनः प्रणाम किया तथा ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् शिवसे ऐसा कहा—॥ १-२॥

श्रीभगवानुवाच

देवदेव जगन्नाथ देवी भगवती स्वयम्।
यथा प्राह समक्षं ते तत्सर्वं श्रुतवानसि॥ ३ ॥

इदानीं यत्त्वया कार्यं साहाय्यं मम शंकर।
तद् ब्रूहि त्वं महेशान वधार्थं तस्य दुर्मतेः॥ ४ ॥

शिव उवाच

अहं वानररूपेण सम्भूय पवनात्मजः।
साहाय्यं ते करिष्यामि यथोचितमरिंदम॥ ५ ॥

उल्लङ्घ्य सागरं घोरं समन्विष्य च तेऽङ्गनाम्।
प्रीतिं ते जनयिष्यामि सर्वदा मधुसूदन॥ ६ ॥

अन्यच्चापि महत्कर्म करिष्यामि सुदारुणम्।
त्रैलोक्यदुष्करं विष्णो तव प्रीतिविवर्धनम्॥ ७ ॥

मयि लङ्कां प्रविष्टे तु सूक्ष्मवानररूपिणि।
लङ्केश्वरी स्वयं लङ्कां परित्यक्ष्यति निश्चितम्॥ ८ ॥

इति ते यन्मया कार्यं साहाय्यं तत्प्रतिश्रुतम्।
ब्रह्मणो भवतः प्रीत्यै किं करिष्यति या च तत्॥ ९ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तः शम्भुना विष्णुः स्मृत्वा कमलसम्भवम्।
अवैक्षत महाबाहुर्हर्षनिर्भरमानसः॥ १० ॥

ततो ब्रह्मापि विज्ञाय विष्णोरीप्सितमेव हि।
प्रहस्य वचनं प्राह नारायणमनामयम्॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

अहं तव सहायार्थमृक्षयोनौ निजांशतः।
सम्भूतोऽस्मि पुरा देव महाबलपराक्रमः॥ १२ ॥
दास्यामि मन्त्रणां तुभ्यं शुभां तव हिते रतः॥ १३ ॥

धर्मः स्वयं तु संजातो लङ्कायां हि विभीषणः।
भ्राता राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ १४ ॥

सोऽपि तं सम्परित्यज्य त्वत्सहायो भविष्यति।
गच्छ मानुषतां देव रक्ष विश्वं चराचरम्॥ १५ ॥

श्रीभगवान् बोले—देवाधिदेव! विश्वनाथ! भगवती जगदम्बाने आपके समक्ष जैसा कहा है आपने वह सुना ही है। शंकर! अब उस दुर्बुद्धि रावणके संहारहेतु जो आप मेरी सहायता करना चाहते हैं, महेशान! वह मुझे बताइये ॥ ३-४॥

शिवजी बोले—शत्रुसूदन! मैं वानररूपसे पवनपुत्र होकर जन्म लूँगा और आपकी यथोचित सहायता करूँगा। मधुसूदन! विशाल महासागरको लाँघकर और आपकी पत्नीकी खोज करके मैं सदाके लिये आपका प्रेमभाजन बनूँगा। विष्णु! और भी आपकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाले अत्यन्त कठिन और दारुण कार्योंको सम्पन्न करूँगा। जब मैं लङ्कामें सूक्ष्म वानररूपसे प्रवेश करूँगा तब स्वयं लङ्केश्वरीदेवी निश्चय ही लङ्काका त्याग कर देंगी। मैंने वह बता दिया जिस प्रकारकी सहायता मैं करूँगा, क्या वह ब्रह्माजी और आपकी प्रसन्नताके लिये होगी?॥ ५—९॥

श्रीमहादेवजी बोले—सदाशिवके ऐसा कहनेपर हर्षसे परिपूर्ण मनवाले महाबाहु भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीका ध्यान किया और ब्रह्माजीको देखा॥ १०॥ तब ब्रह्माजीने भी भगवान् विष्णुकी इच्छाको जानकर हँसते हुए निर्विकार भगवान् नारायणसे ऐसा कहा—॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—देव! मैं आपकी सहायताके लिये अपने अंशसे ऋक्षयोनिमें महाबल तथा पराक्रमसे युक्त होकर पहले ही जन्म ले चुका हूँ, मैं आपके हितमें निरन्तर आपको अच्छी सलाह दूँगा। धर्मराज स्वयं लङ्कामें उस दुरात्मा राक्षसराज रावणके भाई विभीषणके रूपमें जन्म ले चुके हैं। देव! वे भी अपने भाईका साथ छोड़कर आपके सहायक बनेंगे। आप शीघ्र ही मनुष्यरूपमें अवतार लें और इस चराचर जगत्‌की रक्षा करें॥ १२—१५॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स भगवान्विष्णुः सम्प्रार्थ्य परमेश्वरीम्।
पृथिव्यां जन्म सम्प्राप्तो राज्ञो गेहे महात्मनः॥ १६॥
स्वयं दशरथस्यैकश्चतुर्धा मुनिसत्तम।
रामश्च लक्ष्मणश्चैव भरतश्च महाबलः॥ १७॥
शत्रुघ्नो रूपसौन्दर्यशालिनस्ते महाबलाः।
श्रीरामभरतौ तत्र श्यामौ दूर्वादलप्रभौ॥ १८॥
लसत्कनकगौराङ्गौ द्वौ तदन्यौ महामते।
रामस्यानुगतो नित्यं लक्ष्मणो लक्षणान्वितः॥ १९॥
भरतस्य तु शत्रुघ्नो बाल्यावधि महामुने।
लक्ष्मीश्चापि समुद्भूय क्षितौ परमसुन्दरी॥ २०॥
स्थित्वा जनकराजस्य गेहे कन्यास्वरूपिणी।
तथा ब्रह्मा निजांशेन बभूव पृथिवीतले॥ २१॥
ऋक्षयोनौ महाबुद्धिर्जाम्बवानिति विश्रुतः।
महेशश्च तथांशेन भूत्वा पवननन्दनः॥ २२॥
हनुमानिति विख्यातो महाबलपराक्रमः।
किष्किन्धायां स्थितो वीरो मन्त्री वानरभूपतेः॥ २३॥
तथैवान्ये च त्रिदशा ऋक्षवानररूपतः।
संस्थिता कानने विष्णुं प्रतीक्षन्तो महामते॥ २४॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुने परमेश्वरी जगदम्बाकी प्रार्थना करके भूलोकपर महाराज दशरथके गृहमें जन्म लिया॥ १६॥ मुनिवर! वे स्वयं एक ही चार रूपोंमें महाराज दशरथके यहाँ महाबली राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके रूपमें प्रकट हुए, जो पराक्रमके साथ ही अत्यन्त रूप-सौन्दर्यकी राशि भी थे॥ १७½॥ महामते! श्रीराम और भरत दोनों दूर्वादलकी श्याम आभासे युक्त थे और दूसरे दो—लक्ष्मण और शत्रुघ्न स्वर्णके समान गौर छविवाले थे। मुनिवर! बाल्यकालसे ही शुभ लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण सदैव श्रीरामके और शत्रुघ्न श्रीभरतके अनुगामी थे॥ १८-१९½॥ भगवती लक्ष्मी भी महाराज जनकके घरमें परम सुन्दरी कन्याके रूपमें पृथ्वीतलपर अवतरित हुईं। ब्रह्मा अपने अंशसे ऋक्षयोनिमें महाबुद्धिमान् जाम्बवान्के रूपमें विख्यात हुए। इसी प्रकार भगवान् शिव अपने अंशसे अवतार लेकर महाबल और पराक्रमसे युक्त पवनपुत्र हनुमान्के रूपमें विख्यात हुए। वे किष्किन्धानगरीमें रहते हुए वानरराजके मन्त्री बने। महामति नारदजी! अन्य देवगण भी इसी प्रकार ऋक्ष और वानरके रूपमें प्रकट होकर वनप्रान्तमें रहते हुए रामरूपमें भगवान् विष्णुके अवतार ग्रहणकी प्रतीक्षा करने लगे॥ २०—२४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीरामावतारचरित्रवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीरामावतारचरित्रवर्णन' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीरामकी ऐश्वर्य-लीलाएँ, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा, जनकपुरी जाकर शिवधनुषको तोड़ना तथा विवाह, श्रीरामका वनवास, भरतद्वारा नन्दिग्राममें मुनिवृत्तिसे निवास करना, लक्ष्मणका शूर्पणखाके नाक-कान काटना, रावणद्वारा सीताका हरण

श्रीमहादेव उवाच

अथ तं रामचन्द्रं च भरतं लक्ष्मणं तथा।
शत्रुघ्नं च महाबाहुं वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ १॥
सर्वान् वै दीक्षयामास देव्या मन्त्रेण नारद।
बभूवुस्तेऽपि चत्वारः सर्वशास्त्रार्थपारगाः॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारदजी! मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने महाबाहु राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्नको देवीके मन्त्रकी दीक्षा दी। वे चारों भाई भी सभी शास्त्रोंमें प्रवीण हो गये॥ १-२॥

अथैकदा समागत्य विश्वामित्रो महामुनिः।
मखसंरक्षणार्थाय श्रीरामं सह लक्ष्मणम्॥ ३ ॥
आनयत्स तपोऽरण्ये सम्प्रार्थ्य पितरं तयोः।
तत्र गत्वा महाबाहुस्ताडकां घोरराक्षसीम्॥ ४ ॥
निहत्य च मुनेस्तुष्टादस्त्राणि समवाप ह।
ततो गत्वा महारण्ये मखविघ्नकरं मुने॥ ५ ॥
सुबाहुमदहत्क्षिप्त्वा बाणमेकं महाबलः।
अपरेणैकबाणेन मारीचं युद्धदुर्मदम्॥ ६ ॥
सागरे प्राक्षिपद्रामः स्वबाहुबलदर्पितः।
ततस्तेन मुनीन्द्रेण सार्धं स रघुनन्दनः॥ ७ ॥
मिथिलां प्रययौ क्षिप्रं विमोच्य ब्रह्मणः सुताम्।
ततो जनकराजस्य पुरीं गत्वा महाबलः॥ ८ ॥
बभञ्ज धनुरत्युग्रं महेशस्य महामुने।
ततः स राजा संतुष्टो वृद्धं दशरथं नृपम्॥ ९ ॥
सपुत्रं पुरमानीय महोत्सवपुरःसरम्।
तत्सुतेभ्यश्चतुर्भ्यश्च चतस्त्रः कन्यका ददौ॥ १० ॥
रामाय प्रददौ सीतां लक्ष्मणायोर्मिलां ददौ।
भरताय सुतां प्रादान्माण्डवीं मुनिपुङ्गव॥ ११ ॥
शत्रुघ्नाय ददौ कन्यां श्रुतकीर्तिं शुभाननाम्।
तासां सीता तु सम्प्राप्ता यज्ञभूमिविशोधने॥ १२ ॥
उर्मिलौरससम्भूता द्वे परे भ्रातृकन्यके॥ १३ ॥
अथातः परिसंगृह्य चत्वारो भ्रातरश्च ते।
पित्रा सह ययुः शीघ्रं पुरं प्रति महामते॥ १४ ॥
पथि तत्र समायातो भार्गवो बलदर्पितः।
तस्य संचूर्णयामास महादर्पं महाबलः॥ १५ ॥
ततः पुरं समागत्य रामराज्याभिषेचने।
उद्योगमकरोद्राजा सहामात्यैर्महामते॥ १६ ॥
अत्राभवन्मुनिश्रेष्ठ त्रिदशा विघ्नकारिणः।
ययाचे केकयीं तं वै राज्यं पुत्रस्य कारणात्॥ १७ ॥
रामस्य वनवासं च चतुर्दशसमा इति।
सत्यसन्धो दशरथस्तस्यै तं च वरं ददौ॥ १८ ॥

एक बार महामुनि विश्वामित्रजी आये और अपने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीराम और लक्ष्मणको उनके पितासे माँगकर तपोवनमें ले आये। वहाँ महाबाहु श्रीरामने भयंकर राक्षसी ताड़काका वध करके मुनिको संतुष्ट किया और उनसे दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। मुनिवर! फिर घने जंगलमें जाकर यज्ञमें विघ्न करनेवाले सुबाहु नामक राक्षसको उन महाबलीने एक बाणसे भस्म कर दिया। एक दूसरे बाणसे युद्धके लिये उन्मत्त मारीच नामक राक्षसको अपने बाहुबलसे उत्साहित भगवान् रामने समुद्रमें फेंक दिया, तब मुनिवर विश्वामित्रके साथ रघुनन्दन राम मिथिला नगरीको गये और मार्गमें ब्रह्माकी पुत्री अहल्याका शीघ्र ही उद्धार किया। महामुने! तब जनकपुरीमें जाकर महाबली श्रीरामने भगवान् शिवका अत्यन्त कठोर धनुष तोड़ा॥ ३—८½ ॥ तब राजा जनक संतुष्ट हुए और उन्होंने वयोवृद्ध राजा दशरथको पुत्रोंसहित अपने नगरमें सम्मानपूर्वक बुलाया तथा महान् उत्सवसहित उनके चारों पुत्रोंको अपनी चार कन्याएँ समर्पित कर दीं॥ ९-१० ॥ मुनिवर! उन्होंने श्रीरामको सीता, लक्ष्मणको उर्मिला, भरतको माण्डवी और शत्रुघ्नको श्रुतकीर्ति नामकी सुमुखी कन्याएँ प्रदान कीं। उनमें सीता यज्ञभूमिके शोधनमें प्राप्त हुई थीं, उर्मिला उनकी औरस पुत्री थीं और अन्य दो [माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति] उनके भाईकी कन्याएँ थीं॥ ११—१३ ॥

महामति नारदजी! विवाहोपरान्त अपनी पत्नियोंसहित चारों भाई अपने पिता दशरथजीके साथ शीघ्र ही अयोध्यानगरीकी ओर चले। मार्गमें उन्हें बलाभिमानी भृगुपुत्र परशुराम मिले और महाबली श्रीरामने उनका अभिमान चूर-चूर कर दिया॥ १४-१५ ॥ महामते! अयोध्या नगरीमें आकर राजा दशरथने अपने मन्त्रियोंके साथ श्रीरामके राज्याभिषेककी तैयारियाँ प्रारम्भ कीं॥ १६ ॥ मुनिश्रेष्ठ! इस अवसरपर देवताओंने विघ्न रचा, जिससे रानी कैकेयीने अपने पुत्रके लिये राजा दशरथसे राज्य माँग लिया और चौदह वर्षोंके लिये श्रीरामका वनवास भी माँगा। सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथने उसको वे वर दे दिये॥ १७-१८ ॥

तेन राज्यं परित्यज्य सीतया लक्ष्मणेन च।
प्रतस्थे दण्डकारण्यं रामः सत्यपराक्रमः॥ १९॥

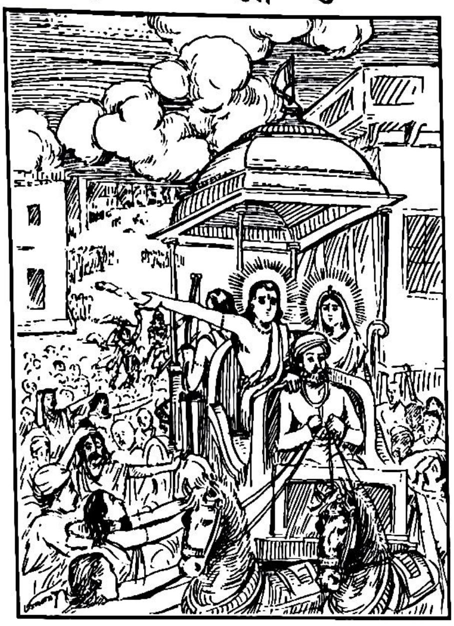
प्रणम्य पितरौ भक्त्या वसिष्ठं च गुरुं मुने।
संध्याय चेतसा देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ २०॥

रावणस्य वधार्थाय यात्रां चक्रे रघूद्वहः।
दशम्यां शुक्लपक्षस्य इषस्य मुनिसत्तम॥ २१॥

राजा पुत्रवियोगार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह।
सुमन्त्रेणान्वितो रामो रथमारुह्य नारद॥ २२॥

सानुजः सीतया सार्धं स्वपुरान्निर्जगाम सः।
पौराश्च शोकदुःखार्ता अनुजग्मुस्तमेव हि॥ २३॥

तांस्त्यक्त्वा तु समागत्य शृङ्गवेरपुरं ततः।



सुमन्त्रं सरथं रामो विससर्ज महामतिः॥ २४॥

तत्र कृत्वा जटां रामो लक्ष्मणेन समन्वितः।
सीतया नावमारुह्य गङ्गामुत्तीर्य नारद॥ २५॥

भरद्वाजाश्रमं प्रायाच्चित्रकूटं ततो ययौ।
राजा दशरथः श्रुत्वा सुमन्त्रस्य मुखान्मुने॥ २६॥

वनप्रवेशं रामस्य दुःखात्प्राणान्मुमोच ह।
भरतस्तु समागत्य मातुलस्य गृहात्ततः॥ २७॥

कृत्वोर्ध्वदैहिकं राज्ञो मातरं भर्त्सयन्मुहुः।
सामात्यः सानुजः प्रायाद्रामचन्द्रस्य सन्निधिम्॥ २८॥

अतः सत्यपराक्रमी श्रीरामने राज्यका त्याग करके सीता और लक्ष्मणसहित दण्डकारण्यकी ओर प्रस्थान किया॥ १९॥ मुनिवर! रावणके वधके निमित्त जगदम्बा भवानीका मनमें स्मरण कर उन्हें बारम्बार प्रणाम करके आश्विन शुक्ल दशमीको रघुवर श्रीरामने माता-पिता और गुरु वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करके यात्रा प्रारम्भ की॥ २०-२१॥ नारदजी! पुत्रके वियोगसे दुःखी होकर राजा दशरथ उच्च स्वरसे रोने लगे। मन्त्री सुमन्त्रके साथ रथमें बैठकर श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और सीताको साथ लेकर अयोध्यानगरीसे बाहर निकले। शोकसे व्याकुल प्रजाजन उनके पीछे-पीछे निकल पड़े॥ २२-२३॥ बुद्धिमान् राम पुरजनोंको छोड़कर शृङ्गवेरपुर आये और मन्त्री सुमन्त्रको रथके साथ वापस भेज दिया। नारदजी! वहाँ श्रीराम और लक्ष्मणने अपने सिरपर जटाएँ बनायीं और सीताजीके साथ नावमें चढ़कर गङ्गाजीको पार करके वे भरद्वाज-आश्रममें आये और वहाँसे चित्रकूट चले गये॥ २४-२५½॥ मुने! इधर राजा दशरथने सुमन्त्रके मुखसे श्रीरामका वनगमन सुनकर दुःखके आवेगमें प्राणोंका त्याग कर दिया॥ २६½॥ तत्पश्चात् अपने मामाके घरसे वापस आकर भरतने राजा दशरथके मरणोपरान्तकी समस्त क्रियाएँ सम्पन्न कीं। अपनी माताको बार-बार धिक्कारते हुए वे अपने भाई शत्रुघ्न और अमात्योंको साथ लेकर भगवान् श्रीरामके पास गये॥ २७-२८॥



स तन्निवर्तने यत्नमकरोद्भरतस्तदा।
तदनादृत्य रामोऽगाद्देवकार्यस्य सिद्धये॥ २९॥

सुघोरं दण्डकारण्यं सान्त्वयन्भरतं मुहुः।
ततस्तदाज्ञया सोऽपि भरतो विनिवर्तितः॥ ३०॥

सानुजः संस्थितो नन्दिग्रामे परिजनैर्वृतः।
भूमिशायी जटाधारी राजभोगविवर्जितः॥ ३१॥

चिन्तयन् चेतसा रामं चतुर्दशसमा मुने।
प्रतीक्ष्य रामचन्द्रस्य राज्ये प्रत्यागमं पुनः॥ ३२॥

रामस्तु दण्डकारण्ये विराधं घोररूपिणम्।
हत्वा राक्षसनाशाय कियत्कालमुवास ह॥ ३३॥
निर्माय पर्णशालां तु पञ्चवट्यां महामते॥ ३४॥

तत्र शूर्पणखानाम्नी राक्षसी कामरूपिणी।
समेत्य राघवं कर्तुं पतिमैच्छत्स्मरातुरा॥ ३५॥

तां ज्ञात्वा राक्षसीं दुष्टां लक्ष्मणो भ्रातृशासनात्।
चिच्छेद कर्णौ नासां च खड्गेन मुनिपुङ्गव॥ ३६॥

ततः सा रुदती गत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ।
उवाच वचनं क्रुद्धा राक्षसी भीमरूपिणी॥ ३७॥

शूर्पणखोवाच

अयोध्याधिपतिः श्रीमान् रामो भ्रात्रा सह स्वयम्।
आगतो दण्डकारण्ये श्यामो दूर्वादलप्रभः॥ ३८॥

तस्याङ्गनापि तेनैव सार्धं तत्र समागता।
सा यथा रूपसौन्दर्यशालिनी न तथा क्वचित्॥ ३९॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले कैश्चिद्दृष्टं न च श्रुतम्।
त्वदर्थं तामानयन्त्या भ्राता तस्यानुजो मम॥ ४०॥
चिच्छेद कर्णौ नासां च तेन याता त्वदन्तिकम्॥ ४१॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा राक्षसौ खरदूषणौ।
राक्षसानां परिवृतौ चतुर्दशसहस्रकैः॥ ४२॥

जग्मतुः कानने तत्र यत्रास्ते रघुनन्दनः।
तान् जघान शरव्रातै रामचन्द्रः समागतान्॥ ४३॥

तब भरतजीने श्रीरामको वापस लौटानेका बहुत यत्न किया, किंतु उन्होंने वह बात नहीं मानी और देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेहेतु भरतको बार-बार सान्त्वना देकर श्रीराम घोर दण्डकारण्यकी ओर चले गये। तदनन्तर उनकी आज्ञासे वे भरत भी वापस लौट आये॥ २९-३०॥ मुने! भरत अपने छोटे भाई शत्रुघ्न और परिजनोंके साथ नन्दिग्राममें रहे। वे भरत श्रीरामका मनसे स्मरण करते हुए जटा धारण कर राज्यसुखका परित्याग करके भूमिपर शयन करते हुए चौदह वर्षोंतक उनके वनसे वापस आनेकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ३१-३२॥

महामते! उधर श्रीरामने दण्डकारण्यमें विराध नामक भयंकर राक्षसका वध करके पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनाकर राक्षसोंका विनाश करनेके लिये कुछ कालतक निवास किया॥ ३३-३४॥ वहाँ शूर्पणखा नामकी स्वेच्छा रूप धारण करनेवाली राक्षसी कामके वशीभूत होकर श्रीरामको पति बनानेकी इच्छासे उनके पास आयी। मुनिश्रेष्ठ! भाईकी आज्ञासे लक्ष्मणजीने उसे दुष्टा राक्षसी जानकर उसके नाक और कान खड्गसे काट डाले। तब वह भयानक राक्षसी रोती हुई अपने भाई खर और दूषणके पास जाकर क्रोधपूर्वक कहने लगी॥ ३५—३७॥

शूर्पणखा बोली—भाई! अयोध्याके राजा श्रीराम अपने भाईके साथ दण्डकारण्यमें आये हैं, उनकी दूर्वादलके समान श्याम छवि है। उनकी पत्नी भी उनके साथ आयी है। वह जैसी रूपवती है वैसी स्वर्ग, मृत्युलोक या पातालमें कहीं देखी-सुनी नहीं जाती। मैं उसे आपके लिये ला रही थी, लेकिन श्रीरामके भाईने मेरे नाक-कान काट डाले। इसीलिये मैं आपके पास आयी हूँ॥ ३८—४१॥

श्रीमहादेवजी बोले—उसकी ये बातें सुनकर राक्षस खर और दूषण चौदह हजार राक्षसोंके साथ उस जंगलमें गये, जहाँ श्रीराम विराजमान थे। श्रीरामने अपनी बाण-वृष्टिसे उन सभी आये हुए राक्षसोंको मार डाला॥ ४२-४३॥

ततः शूर्पणखा गत्वा लङ्कायां शोकविह्वला।
वृत्तान्तं कथयामास रावणाय महामते॥ ४४॥



स तस्या वचनं श्रुत्वा सीताया रूपमुत्तमम्।
गुण्ठितः कालपाशेन तां हर्तुं मतिमादधे॥ ४५॥

ततः सहायं कृत्वा तु मारीचं ताडकासुतम्।
तां हर्तुकामः प्रययौ काननं तं स रावणः॥ ४६॥

मारीचस्तु विनिश्चित्य श्रीरामान्मृत्युमात्मनः।
मायास्वर्णमृगो भूत्वाऽनयद्रामं सुदूरतः॥ ४७॥

रामस्तं प्राहिणोद्बाणं तेन विद्धः स राक्षसः।
पपात धरणीपृष्ठे लक्ष्मणेति वदन्मुने॥ ४८॥

तन्मत्वा रामचन्द्रस्य भाषितं जनकात्मजा।
सद्यः प्रस्थापयामास रामं प्रति च लक्ष्मणम्॥ ४९॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि समागत्य दशाननः।
जहार जानकीं लक्ष्मीदेव्या मूर्त्यन्तरं बलात्॥ ५०॥

तदैव भस्मसात्कर्तुं समर्थापि सुरेश्वरी।
नाकरोत्प्रार्थिता यस्माद्देवीरूपेण सा सदा॥ ५१॥

रक्षसा नीयमानां तां जटायुः पक्षिपुङ्गवः।
त्रातुकामोऽकरोद्युद्धं रावणेन दुरात्मना॥ ५२॥

स तस्य पक्षौ छित्त्वा तां बलाद्राक्षसपुङ्गवः।
गृहीत्वा प्रययौ लङ्कां रात्रौ देवर्षिसत्तम॥ ५३॥

अशोककानने रम्ये स्थापयामास तां सतीम्।
न धर्षितुमभूच्छक्तो ज्वलदग्निसमप्रभाम्॥ ५४॥

महामति नारदजी! तब शूर्पणखाने लङ्कामें जाकर शोकातुर हो सारा वृत्तान्त रावणको कह सुनाया। उसने उसकी बातें एवं सीताके अनुपम सौन्दर्यके बारेमें सुनकर कालके वशीभूत होकर उनका हरण करनेका निश्चय किया॥ ४४-४५॥ तदनन्तर ताड़काके बेटे मारीचको सहायक बनाकर सीताके हरणकी इच्छासे वह रावण उस वनमें गया॥ ४६॥

मारीचने श्रीरामके द्वारा अपनी मृत्यु निश्चित जानकर मायासे स्वर्णमृगका रूप बनाया और वह श्रीरामको अपने आश्रमसे बहुत दूर ले गया। मुने! श्रीरामने उसपर शरसंधान किया और उससे घायल होकर वह राक्षस पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा 'हे लक्ष्मण!' ऐसा पुकारने लगा। जनकनन्दिनी सीताने उस आवाजको श्रीरामकी पुकार समझकर लक्ष्मणको तुरंत उसी ओर भेजा॥ ४७—४९॥ इसी बीच उस दशानन रावणने भी वहाँ आकर भगवती लक्ष्मीकी अवतार जानकीका बलपूर्वक हरण कर लिया॥ ५०॥ यद्यपि वे महादेवी उसे उसी समय भस्म करनेमें समर्थ थीं, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया; क्योंकि रावण उनकी देवीरूपमें सदा उपासना करता था॥ ५१॥

पक्षिश्रेष्ठ जटायुने राक्षसद्वारा हरणकर ले जायी जाती हुई उन सीताको बचानेके लिये दुष्ट रावणके साथ युद्ध किया। देवर्षिश्रेष्ठ! राक्षसश्रेष्ठ रावणने बलपूर्वक उसके दोनों पंख काट डाले और वह सीताको लेकर रात्रिमें लङ्काको चला गया। उसने भगवती सीताको सुन्दर अशोकवाटिकामें रखा। जलती हुई अग्निके समान तेजस्विनी उस सतीपर बलप्रयोग करनेमें वह समर्थ नहीं हुआ॥ ५२—५४॥

एवं भगवती देवी भवकालं शुभप्रदा।
स्वयं लङ्केश्वरी देवी ह्यन्तर्धातुं मनो दधे॥ ५५॥

इसके पश्चात् अपनी स्थितिसे रावणके लिये कल्याणकारिणी लङ्केश्वरी देवीने लङ्कासे अन्तर्धान होनेका मन बना लिया॥ ५५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीजानकीहरणं नामाष्टात्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीजानकीहरण' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

सीताजीके शोकमें श्रीरामका विलाप, सुग्रीवसे मैत्री, हनुमान्‌जीद्वारा समुद्र-लंघन तथा अशोक-वाटिकामें श्रीसीताजीका दर्शन, हनुमान्‌जीकी प्रार्थनापर लङ्कामें प्रतिष्ठित जगदम्बाद्वारा लङ्काका परित्याग करना, अशोकवाटिकाका विध्वंस, लङ्कादहन तथा हनुमान्‌जीका श्रीरामजीके पास पहुँचकर सम्पूर्ण वृत्तान्त बताना, विभीषणका भगवान् श्रीरामकी शरण ग्रहण करना

श्रीमहादेव उवाच

रामस्तु हत्वा मारीचं लक्ष्मणेन समन्वितः।
आगत्य पर्णशालायां नापश्यत्तत्र जानकीम्॥ १॥

बभ्राम कानने तत्र रुदन् सीतामनुस्मरन्।
तत्र दृष्ट्वा पतङ्गेशं जटायुं छिन्नपक्षतिम्॥ २॥

सीतापहारिणं मत्वा हन्तुकामोऽन्तिकं ययौ।
ततस्तमपि विज्ञाय सखायं पितुरात्मनः॥ ३॥

न प्राहिणोच्छरं तत्र रामः सत्यपराक्रमः।
ततः स उक्त्वा रामाय रावणेन हृतां प्रियाम्॥ ४॥

परित्यज्य दिवं प्रायात्प्राणान् रामस्य पश्यतः।
ततस्तमपि दग्ध्वा च कानने तत्र राघवः॥ ५॥

श्रीमहादेवजी बोले—मारीचको मारकर जब श्रीराम लक्ष्मणके साथ अपनी पर्णकुटीपर आये, तब उन्होंने वहाँ जानकीको नहीं देखा॥ १॥ शोकाकुल होकर वे सीताका स्मरण करते हुए वनमें भटकने लगे। वहाँ उन्होंने कटे पंखवाले पक्षिराज जटायुको देखकर यह अनुमान किया कि इसीने सीताका अपहरण किया होगा—ऐसा सोचकर उसे मारनेकी इच्छासे वे उसके पास गये। वहाँ जानेपर उन्हें पता चला कि जटायु उनके पिता दशरथजीके मित्र हैं। यह जानकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने उनपर बाण नहीं छोड़ा। जटायुने श्रीरामको रावणके द्वारा सीताहरणकी बात बताकर उनके देखते-देखते अपने प्राण त्याग दिये और स्वर्गको प्रस्थान किया। तदनन्तर श्रीरामने वनमें ही उनकी अन्त्येष्टि की॥ २—५॥

हत्वा कबन्धं प्रययावृष्यमूकं महामते।
यत्र वालीभयादास्ते सुग्रीवः सूर्यनन्दनः॥ ६॥

हनुमत्प्रमुखैर्वीरैश्चतुर्भिर्मन्त्रिसत्तमैः।
तत्र सख्यं स कृत्वा तु सुग्रीवेण महात्मना॥ ७॥

निहत्य समरे वीरं वालिनं भीमविक्रमम्।
राज्याभिषेचनं चक्रे सुग्रीवस्य महामते॥ ८॥

महामते! कबन्ध नामक राक्षसका वध करके वे दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वतकी ओर गये, जहाँ वालीके भयसे सूर्यपुत्र सुग्रीव अपने हनुमान् इत्यादि चार प्रमुख वीर मन्त्रियोंके साथ रहते थे। महामते! वहाँ महामना सुग्रीवके साथ मैत्री करके और अत्यन्त पराक्रमी वालीको युद्धमें मारकर श्रीरामने सुग्रीवका राज्याभिषेक किया॥ ६—८॥

ततो व्यतीत्य वर्षां स स्थित्वा माल्यवति प्रभुः।
आनाय्य वानरं सैन्यं विपुलं मुनिसत्तम॥ ९ ॥
सीतान्वेषणकार्यार्थं दूतान् प्रास्थापयद्‌द्रुवि।
चतुर्दिक्षु ययुस्तेऽपि सीतान्वेषणतत्पराः॥ १० ॥
तत्र याता दिशं यामीं हनूमदङ्गदादयः।
जाम्बवत्प्रमुखाश्चापि महाबलपराक्रमाः॥ ११ ॥
ते सम्पातिमुखाच्छ्रुत्वा सविशेषं महामते।
समुद्रलङ्घनायाशु मन्त्रयामासुरेव हि॥ १२ ॥
अथर्क्षाधिपतेर्वाक्याद्धनुमान्भीमविक्रमः।
उल्लङ्घ्य सागरं घोरं शतयोजनविस्तृतम्॥ १३ ॥
सायं प्रविश्य लङ्कायां रात्रौ च व्यचरत्पुरीम्।
अन्वेषयञ्जनकजां सप्तरात्राणि मारुतिः॥ १४ ॥
अशोकवनिकामध्ये तां ददर्श शुभाननाम्।
ततश्चिकीर्षुरत्यन्तं दुष्करं कर्म मारुतिः॥ १५ ॥



सस्मार पूर्ववृत्तान्तं देव्या युद्धं कृतं पुरा।
तत आरुह्य वृक्षाग्रं देव्या मन्दिरमद्भुतम्॥ १६ ॥
दिदृक्षुर्दिक्षु सर्वत्र स दृष्टिं प्राहिणोत्तदा।
तथापश्यत्स ऐशान्यां मन्दिरं सुमनोहरम्॥ १७ ॥

मुनिवर! तदनन्तर वर्षाऋतु बीतनेपर माल्यवान्पर्वतपर विराजमान श्रीरामके पास सुग्रीवने विशाल वानरसेनाको बुलाया और उन्होंने जनकनन्दिनी सीताकी खोज करनेके लिये भूमण्डलपर चारों दिशाओंमें दूतोंको भेजा। वे दूत भी सीताकी खोजमें निकल पड़े॥ ९-१०॥ दक्षिण दिशाकी ओर महाबल और पराक्रमसे युक्त हनुमान्, अङ्गद, जाम्बवान् इत्यादि मुख्य वीर चल पड़े। महामते! उन्होंने सम्पातीके मुखसे विस्तृत रूपसे सारी बात सुनकर समुद्रको शीघ्र लाँघनेके लिये विचार-विमर्श किया॥ ११-१२॥

तब ऋक्षराज जाम्बवान्की बात सुनकर प्रचण्ड पराक्रमी हनुमान्जीने सौ योजन विस्तारवाला भयंकर समुद्र पारकर सायंकालमें लङ्कामें प्रवेश किया और रात्रिमें लङ्कानगरीमें घूम-घूमकर वे जनकनन्दिनी सीताको खोजने लगे। इस प्रकार उन्होंने सात रात्रियाँ व्यतीत कीं। तब हनुमान्जीने अशोकवाटिकामें शुभदर्शना सीताको देखा और अत्यन्त दुष्कर कार्य सम्पन्न करनेका निश्चय किया॥ १३—१५॥

उन्होंने देवीके साथ हुए युद्धके पूर्व वृत्तान्तका स्मरण किया। तत्पश्चात् वे एक वृक्षकी चोटीपर चढ़कर देवीके अद्भुत मन्दिरको देखनेकी इच्छासे सभी दिशाओंमें दृष्टिपात करने लगे। तब उन्हें पूर्वोत्तर-दिशामें एक सुन्दर मन्दिर दिखायी दिया।

मणिमाणिक्यरचितं शुद्धहेमपरिष्कृतम्।
सिंहध्वजं च तस्याग्रे दृष्ट्वा पवननन्दनः॥ १८॥
चकार निश्चयं देव्या मन्दिरं चैतदेव हि।
ततस्तन्मन्दिरद्वारं गत्वाऽपश्यत्सुरेश्वरीम्॥ १९॥
नृत्यन्तीं प्रहसन्तीं च सहितां योगिनीगणैः।
तां प्रणम्य महादेवीं प्रावृत्य पवनात्मजः॥ २०॥
उवाच त्रिजगद्वन्द्यां भक्त्या परमया युतः॥ २१॥

हनुमानुवाच

देवि प्रसीद विश्वेशि रामस्यानुचरोऽस्म्यहम्।
अन्वेष्टुं जानकीं लक्ष्मीं लङ्कायां समुपागतः॥ २२॥
त्वयैव प्रेरितो विष्णुर्मनुजत्वमुपागमत्।
वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दुरात्मनः॥ २३॥
शिवोऽहमपि सम्भूय वानरोऽत्र समागतः।
कर्तुं रामस्य साहाय्यं तवाज्ञावशतः शिवे॥ २४॥
त्वयैवैतत्पुरा प्रोक्तं लङ्कायामागते त्वयि।
संत्यज्य नगरीमेनां प्रस्थास्ये स्वनिवेशनम्॥ २५॥
तस्मात्त्यज पुरीमेनां रावणं सुदुरासदम्।
पातयस्व महादेवि रक्ष विश्वं चराचरम्॥ २६॥

श्रीदेव्युवाच

सीतावमाननेनापि रुष्टाहं वानरर्षभ।
लङ्कात्यागमतिं पूर्वमकार्षं पुरुषर्षभ॥ २७॥
त्वद्वाक्यापेक्षयाद्यापि स्थिताहं रावणालये।
त्यजाम्येतां पुरीं लङ्कां त्वयोक्ता कपिपुङ्गव॥ २८॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा सा महादेवी लङ्कां त्यक्त्वा महेश्वरी।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ सहसा तस्य पश्यतः॥ २९॥
ततो बभञ्ज गहनं राक्षसेन्द्रेण पालितम्।
अशोकवृक्षसंघातं मारुतिः क्रोधमूर्च्छितः॥ ३०॥

उस स्वर्णरचित मन्दिरमें मणि-माणिक्य जड़े हुए थे और उसके ऊपर सिंहध्वज लगा हुआ था। उसे देखकर हनुमान्‌जीने निश्चय किया कि यही देवीका मन्दिर है। उस मन्दिरके द्वारपर जाकर उन्होंने सुरेश्वरी जगदम्बाके दर्शन किये। वे अपनी योगिनियोंके साथ हँसती हुई नृत्य कर रही थीं। उन महादेवीकी प्रदक्षिणा करके हनुमान्‌जीने प्रणाम किया और अत्यन्त भक्तिपूर्वक त्रिलोकवन्दनीया जगदम्बासे वे कहने लगे—॥ १८—२१॥

हनुमान्‌जी बोले—देवि! विश्वेश्वरी! आप प्रसन्न हों, मैं श्रीरामका अनुचर हूँ और जानकीरूपसे अवतरित लक्ष्मीजीको ढूँढ़ने लङ्कामें आया हूँ। शिवे! आपकी ही प्रेरणासे दुरात्मा राक्षसराज रावणका वध करनेहेतु भगवान् विष्णुने मनुष्यरूपमें अवतार लिया है। मैं भी शिव हूँ और पृथ्वीपर वानररूपमें उत्पन्न होकर आपके आज्ञानुसार श्रीरामकी सहायता करने आया हूँ। आपने ऐसा पहले कहा था कि मैं जब लङ्कामें आऊँगा, तब आप इस नगरीका त्याग करके अपने लोकको प्रस्थान कर जायँगी। इसलिये महादेवी! आप इस नगरीका त्याग कर दें, उस दुर्धर्ष रावणका विनाश करें और इस चराचर जगत्‌की रक्षा करें॥ २२—२६॥

श्रीदेवीजी बोलीं—वानरश्रेष्ठ! रावणद्वारा सीताके अपमानसे मैं रुष्ट हूँ। पुरुषश्रेष्ठ! मैंने पहले ही लङ्काको त्यागनेका विचार कर रखा है। वानरश्रेष्ठ! आपसे यह बात सुननेके लिये ही मैं अबतक रावणकी नगरीमें स्थित हूँ। अब आपके कथनानुसार मैं इस लङ्कापुरीका त्याग कर रही हूँ॥ २७-२८॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर वे महेश्वरी भवानी हनुमान्‌जीके देखते-देखते सहसा लङ्काका त्याग करके अन्तर्धान हो गयीं॥ २९॥ तब क्रोधोन्मत्त हनुमान्‌जीने राक्षसराज रावणके द्वारा पोषित अशोकवाटिकाको उजाड़ डाला॥ ३०॥

तच्छ्रुत्वा रावणः क्रोधाद्राक्षसान्सुबहूंस्तदा।
अक्षाह्वं तनयं चापि प्रेषयामास नारद॥ ३१॥

तं जघान महाबाहुर्हनुमान् सुमहाबलः।
वृक्षैराताड्य समरे स्वयमुत्पाटितैर्बलात्॥ ३२॥

ततो विरूपं तं कर्तुं रावणो राक्षसाधिपः।
लाङ्गूलं वाससा बद्ध्वा दत्त्वा वह्निं स दीपयत्॥ ३३॥

ततः स मारुतिर्वीरो वह्निना तेन नारद।
लङ्कां दग्ध्वा समुल्लङ्घ्य पुनस्तं सरितां पतिम्॥ ३४॥

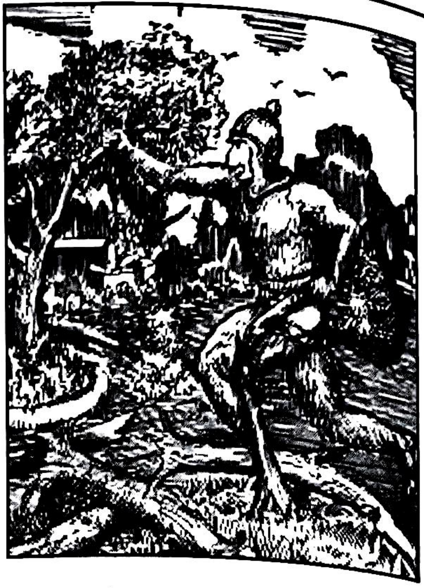
सम्प्राप तीरं यत्रैव सन्ति तेऽप्यङ्गदादयः।
ततश्च समुपागम्य जाम्बवत्प्रमुखैर्वृतः॥ ३५॥

भुक्त्वा मधुवनं राज्ञो ययौ रामस्य सन्निधिम्।
तं दृष्ट्वा रामचन्द्रस्तु दूरतो मुनिसत्तम॥ ३६॥

पप्रच्छ जानकीं चाथ हनुमांस्तुष्टमानसः।
ततः सर्वं यथावृत्तं राघवाय न्यवेदयत्॥ ३७॥

ततः स राघवश्चापि समस्तैर्वानरैर्वृतः।
दशम्यां शुक्लपक्षस्य श्रावणे मासि निर्ययौ॥ ३८॥

वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य महामते।
स्थितः परिवृतः सर्वैः ससैन्यैर्वानरर्षभैः॥ ३९॥



नारदजी! इसकी खबर मिलनेपर रावणने क्रोधपूर्वक बहुत-से राक्षसोंके साथ 'अक्ष' नामके अपने पुत्रको भेजा। महाबलशाली महाबाहु हनुमान्‌जीने बलपूर्वक पेड़ोंको उखाड़कर उन्हीं वृक्षोंसे उसे मार डाला॥ ३१-३२॥

तब राक्षसराज रावणने हनुमान्‌जीका अङ्ग-भङ्ग करनेके लिये उनकी पूँछमें कपड़े लपेटकर आग लगवा दी॥ ३३॥ नारदजी! वीरवर हनुमान् उसी आगसे लङ्कापुरीको जलाकर पुनः समुद्रको लाँघकर समुद्रके तटपर आये जहाँ वे अङ्गद, जाम्बवान् आदि प्रमुख वीर स्थित थे। उनके साथ सुग्रीवके मधुवनका उपभोग कर वे श्रीरामके निकट उपस्थित हुए॥ ३४-३५½॥ मुनिवर! श्रीरामने दूरसे ही उन्हें देखकर जनकनन्दिनीका संवाद पूछा। तब प्रसन्नचित्त होकर हनुमान्‌जीने जैसा हुआ था, सारा वृत्तान्त श्रीरामको निवेदित किया॥ ३६-३७॥

तब श्रीरामने सभी वानरोंके साथ श्रावणमासके शुक्लपक्षकी दशमीको प्रस्थान किया और महामते! राक्षसराज रावणके वधहेतु श्रेष्ठ वानरसेनासहित श्रीरामने डेरा डाल दिया॥ ३८-३९॥

एतस्मिन्नेव काले तु रावणो राक्षसाधिपः ।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान्मन्त्राय समुपाविशत् ॥ ४० ॥
तत्रोवाच महाबुद्धिः सर्वमन्त्रविदां वरः ।
विभीषणो दशास्यं तु वारयन् सर्वतो रणे ॥ ४१ ॥
सीतां त्यक्तुं मुहुः प्राह राघवस्य पराक्रमम् ।
तच्छ्रुत्वा रावणः क्रुद्धस्तं पदाऽताडयन्मुने ॥ ४२ ॥
ततः क्रुद्धः स्वयं धर्मस्वरूपोऽयं बिभीषणः ।
चतुर्भिर्मन्त्रिभिः प्रायाद्रामचन्द्रस्य सन्निधिम् ॥ ४३ ॥

इसी बीच राक्षसराज रावणने भी अपने सभी मन्त्रियोंको बुलाकर विचार-विमर्श करनेके लिये सभा आयोजित की। वहाँ नीतिकुशल महाबुद्धिमान् विभीषणने सब प्रकारसे दशानन रावणको युद्धसे रोकनेवाली बातें कहीं। उन्होंने राघवेन्द्र श्रीरामका पराक्रम बताते हुए सीताको वापस भेजनेकी पुनः सलाह भी दी। मुने! यह सुनकर रावण क्रोधित हो गया और उसने पैरसे विभीषणपर प्रहार किया। तत्पश्चात् धर्मस्वरूप वे विभीषण भी कुपित होकर अपने चार मन्त्रियोंके साथ भगवान् श्रीरामकी संनिधिमें आ गये ॥ ४०—४३ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे रावणमन्त्रणावर्णनं नामोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'रावणमन्त्रणावर्णन' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

समुद्रपर पुल बाँधना और श्रीराम-सेनाका लङ्कापुरीमें प्रवेश, रामद्वारा पितृरूपसे जयप्रदा भगवतीकी आराधना करना, श्रीराम-रावण-युद्धका प्रारम्भ, श्रीराम तथा उनकी सेनाके द्वारा अनेक राक्षसोंका संहार और घायल रावणका रणभूमिसे पलायन

श्रीमहादेव उवाच

विभीषणमशेषेण ज्ञात्वा तु शरणार्थिनम् ।
सख्यं कृत्वा महाबाहुर्लङ्काराज्येऽभ्यषेचयत् ॥ १ ॥
ततस्तितीर्षुर्जलधिं रामस्तं वानराधिपम् ।
सुग्रीवं वचनं प्राह जिज्ञासुर्बलविक्रमम् ॥ २ ॥
स आह भगवंस्त्वं तु मा चिन्तां कर्तुमर्हसि ।
समुद्रं शोषयिष्यामि सेतुं चोत्पाट्य भूधरान् ॥ ३ ॥
रचयिष्ये महासिन्धौ तेन पारं गमिष्यसि ।
तच्छ्रुत्वा सम्प्रहृष्टात्मा रामः सत्यपराक्रमः ॥ ४ ॥
चक्रे जलनिधिं घोरं स्वयं स्वीकृतबन्धनम् ।

श्रीमहादेवजी बोले—विभीषणको पूर्णरूपसे शरणागत जानकर महाबाहु श्रीरामने उसके साथ मैत्री स्थापित की और उसे लङ्काके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ॥ १ ॥ तत्पश्चात् समुद्रके पार जानेकी इच्छासे श्रीरामने वानरराज सुग्रीवसे उनकी सेनाका बलविक्रम जाननेहेतु प्रश्न किया ॥ २ ॥ सुग्रीवने उत्तर दिया कि भगवन्! आपको इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। हमलोग पर्वतोंको उखाड़कर समुद्रको सुखा डालेंगे और इस महासमुद्रपर सेतुका भी निर्माण करेंगे, जिससे आप सुविधापूर्वक पार जा सकेंगे। सत्यपराक्रमी श्रीरामने सुग्रीवकी बातें सुनकर प्रसन्नतापूर्वक ऐसी व्यवस्था की, जिससे दुस्तर समुद्रने स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लिया ॥ ३-४½ ॥

ततः सुग्रीववचनादुत्पाट्योत्पाट्य भूधरान्॥ ५ ॥

रचयामास जलधौ सेतुं मयसुतो नलः।
आरभ्य पौर्णमास्यां तु श्रावण्यां मुनिसत्तम॥ ६ ॥

यामद्वयेन वै सेतुं सागरे वानरर्षभः।
बबन्ध मुनिशार्दूल सर्वलोकसुदुष्करम्॥ ७ ॥

ततस्तु रावणः श्रुत्वा सेतुबन्धं महाम्बुधौ।
भयं मोहं च सम्प्राप्य चकम्पे च मुहुर्मुहुः॥ ८ ॥

ततः परिवृतो रामो वानरैश्च महाबलैः।
कोटिलक्षैर्महाबाहुर्लक्ष्मणेन समन्वितः॥ ९ ॥

त्रयोदश्यां तु कृष्णायां लङ्कां प्राप महामते।
वेष्टिता वानरैर्लङ्का समन्ताद्भीमविक्रमैः॥ १० ॥

जले स्थले च प्राकारे वृक्षेषु गृहमध्यतः।
चत्वरेषु गोपुरेषु वनेषूपवनेषु च॥ ११ ॥

नासीद्वानरशून्यं तु स्थलं किञ्चिन्महामते।
ततो युयुत्सुर्भगवान् चिन्तयामास चेतसा॥ १२ ॥

पूजार्थं भगवत्यास्तु लङ्काविजयहेतवे।
अकालेऽहं महादेवीं पूजयामि सुरेश्वरीम्॥ १३ ॥

निद्रिता त्रिजगन्माता साम्प्रतं दक्षिणायने।
एवं विचिन्त्य भगवान् रामो नारायणोऽव्ययः॥ १४ ॥
चकार बुद्धिं तां यष्टुं पितृरूपां सनातनीम्।

मुनिवर! तत्पश्चात् सुग्रीवकी आज्ञासे मयपुत्र नलने पर्वतोंको उखाड़-उखाड़कर समुद्रमें सेतुका निर्माण किया। मुनिशार्दूल! श्रावणकी पूर्णिमाको प्रारम्भ कर उन वानरश्रेष्ठने मात्र दो प्रहर [प्रहर=३ घण्टा]-में ही समुद्रमें सेतुका निर्माण कर दिया, जो सभी लोगोंके लिये अत्यन्त दुष्कर था॥ ५—७॥



रावणने जब महासमुद्रपर सेतुबन्धकी बात सुनी तो वह मोहित तथा भयाक्रान्त होकर बार-बार काँपने लगा॥ ८॥ महामते! इधर लाखों-करोड़ों महाबलशाली वानरोंसे घिरे हुए महाबाहु श्रीराम लक्ष्मणके साथ कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिको लङ्का गये। परम पराक्रमी वानरोंने लङ्काको चारों ओरसे घेर लिया। महामते! जलमें, स्थलपर, परकोटोंपर, वृक्षोंपर, घरोंमें, चौराहोंपर, प्रवेशद्वारपर और वन-उपवनमें कोई ऐसा स्थान नहीं बचा, जहाँ वानर न हों॥ ९—११½॥

तब युद्ध प्रारम्भ करनेकी इच्छावाले भगवान् श्रीरामने मनमें विचार किया कि लङ्कापर विजय पानेके लिये मुझे महादेवी सुरेश्वरी भगवतीका पूजन करना है, किंतु यह उसका प्रशस्त समय नहीं है। इस समय दक्षिणायन है और त्रैलोक्यजननी जगदम्बा सोयी रहती हैं, ऐसा सोचकर श्रीरामरूपमें प्रकट भगवान् अच्युत नारायणने उन सनातनी शक्तिका पितृरूपसे पूजन करनेका निश्चय किया॥ १२—१४½॥

सैव देवी महामाया पक्षेऽस्मिन् पितृरूपिणी ॥ १५ ॥
प्रवृत्तोऽपरपक्षश्च प्रतिपत्तिथिरप्यतः ।
अद्यारभ्य महादेवीं पितृरूपां जयप्रदाम् ॥ १६ ॥
पार्वणेनैव विधिना यावद्दर्शदिने दिने ।
सम्पूज्य समरे योत्स्ये शत्रूणां निधनाय वै ॥ १७ ॥
एवं निश्चित्य मनसा लङ्कायां प्राह सादरः ।
करिष्ये पार्वणश्राद्धमपराह्णेऽद्य भक्तितः ॥ १८ ॥
ततस्तु प्रतियोत्स्यामि समरे राक्षसाधिपम् ।
तच्छ्रुत्वा सर्व एवाहुर्वानरा रघुवंशजम् ॥ १९ ॥
भक्त्या पूजय सद्भावैः पितॄन् विधिविदांवर ।
जयार्थं समरे देव विधानज्ञस्त्वमेव हि ॥ २० ॥
ततः प्रवृत्ते काले तु रामः सत्यपराक्रमः ।
चकार पार्वणश्राद्धं देवीं सम्भाव्य चेतसा ॥ २१ ॥
तस्मिन्नेव दिने युद्धमारब्धं राक्षसैः सह ।
पश्चिमां दिशमाक्रम्य तमसाप्ते दिवाकरे ॥ २२ ॥
उद्योगो रामचन्द्रस्य रावणस्य च संयुगे ।
यादृशोऽभूत्तथा कश्चिन्न दृष्टो न श्रुतोऽपि वा ॥ २३ ॥
रावणः प्रेषयामास चतुरङ्गबलान्वितम् ।
अकम्पनं महावीरमक्षौहिण्या तु सेनया ॥ २४ ॥
प्रथमेऽहनि युद्धार्थं तं तस्मिन् दिवसे मुने ।
मारुतिः समरे क्रुद्धः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ २५ ॥
एवं भक्त्या राघवस्तु श्राद्धं कृत्वा दिने दिने ।
प्रीणयन्परमेशानीं पातयामास राक्षसान् ॥ २६ ॥
निहतेऽकम्पनाख्ये तु धूम्राक्षः सेनया वृतः ।
दशाननाज्ञयाऽऽगत्य प्राकरोद्युद्धमुल्बणम् ॥ २७ ॥

वे महामाया भगवती इस पक्षमें पितृरूपसे विराजमान रहती हैं, कृष्णपक्ष प्रारम्भ हो गया है और प्रतिपदा तिथि भी है। इसलिये आजसे प्रारम्भ करके मैं अमावास्यातक प्रतिदिन पार्वणविधिसे विधिपूर्वक जयप्रदा महादेवीका पितृरूपसे पूजन करके ही युद्धभूमिमें प्रवेश करूँगा, जिससे शत्रुओंका संहार हो सके। ऐसा मनमें निश्चय करके लङ्कामें श्रीरामने आदरसहित घोषणा की कि आज अपराह्णकालमें मैं भक्तिपूर्वक पार्वणश्राद्ध करूँगा। तत्पश्चात् मैं राक्षसराज रावणके साथ समरभूमिमें युद्ध करूँगा। उनकी यह बात सुनकर वानरोंने रघुके वंशमें प्रादुर्भूत श्रीरामसे कहा—नीतिज्ञ! आप युद्धमें विजयके लिये भक्तिभावसे पितरोंका पूजन करें। आप स्वयं सभी विधि-विधानके ज्ञाता हैं॥ १५—२० ॥ तब अपराह्णकालमें सत्यपराक्रमी श्रीरामने देवीका स्मरण करते हुए पार्वणश्राद्ध सम्पन्न किया॥ २१ ॥ पश्चिम दिशामें सूर्यके अस्त हो जानेपर उसी दिन उनका राक्षसोंके साथ युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस युद्धमें श्रीराम और रावणने जैसा पराक्रम दिखाया, वैसा कभी किसीने न देखा था, न सुना ही था॥ २२-२३ ॥

रावणने एक अक्षौहिणी चतुरङ्गिणी सेनाके साथ महाबलवान् राक्षस अकम्पनको युद्धभूमिमें भेजा। मुने! प्रथम दिनके युद्धमें पवनपुत्र हनुमान्‌ने क्रुद्ध होकर उसपर प्रहार किया और उसे यमलोक भेज दिया॥ २४-२५ ॥ इसी प्रकार श्रीराम भक्तिपूर्वक प्रतिदिन श्राद्ध करके देवीको प्रसन्न करते हुए राक्षसोंका संहार करते थे॥ २६ ॥ अकम्पनके मारे जानेपर रावणकी आज्ञासे सेनासहित धूम्राक्ष युद्धभूमिमें आया और उसने भयंकर युद्ध किया।

तं जघान रणे वीरं द्वितीयेऽहनि राघवः।
तथान्येषु सुघोरेषु निहतेषु महाहवे॥ २८॥
मातुलो राक्षसेन्द्रस्य प्रहस्तो युद्धमाययौ।
रात्रौ समभवद्युद्धं तेन सार्धं दुरासदम्॥ २९॥
सुरासुरनराणां च दैत्यानां भयदायकम्।
तस्य नादेन घोरेण कम्पितास्त्रिदशेश्वराः॥ ३०॥
युद्धसंदर्शनं त्यक्त्वा दिगन्तं समुपागमन्।
एवं तमपि दुर्धर्षं तस्मिन् रात्रौ महाबलम्॥ ३१॥
समरे पातयामास शेषयामे महामतिः।
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रोऽपि रुरोद बहुदुःखितः॥ ३२॥
तं सान्त्वयन्ययौ युद्धे मेघनादः प्रतापवान्।
अतर्कितः समागत्य रात्रौ गगनमास्थितः॥ ३३॥
घोरेण नागपाशेन स बबन्ध रघूत्तमौ।
समस्तैर्वानरैः सार्धं भल्लूकैश्च महामते॥ ३४॥
मोहयन्मायया वीरो राक्षसेन्द्रसमो बली।
विभीषणः समागत्य ततस्तु रघुनन्दनम्॥ ३५॥
बोधयामास रात्रौ स तस्मिन्नेव क्षणे पुनः।
ततः प्रबुद्धो भगवान्भीतः परमभक्तितः॥ ३६॥
सस्मार देवीं शर्वाणीं महाभयविनाशिनीम्।
तत आगत्य गरुडो मोचयामास बन्धनात्॥ ३७॥
भक्षन् पाशं महाघोरं राघवौ सह सैनिकैः॥ ३८॥
ततः प्रभाते तच्छ्रुत्वा रावणः स्वयमागतः।
अकरोत्तुमुलं युद्धं सर्वलोकभयावहम्॥ ३९॥
रावणं समरे वीक्ष्य कालान्तकयमोपमम्।
समकम्पन्त सर्वे तु वानरा भयमोहिताः॥ ४०॥
अभवत्सुमहद्युद्धं रामेण च महात्मना।
तस्मिन्निपातिता वीरा दशकोटिसहस्रशः॥ ४१॥

श्रीरामने दूसरे दिन युद्धमें उस वीर राक्षसका संहार किया, इसी प्रकार उस महासमरमें अन्य दुर्दान्त दैत्योंके मारे जानेपर रावणका मामा प्रहस्त युद्धहेतु आया। उसके साथ रात्रिमें दुर्धर्ष युद्ध हुआ। वह युद्ध देवताओं, दैत्यों, राक्षसों और मनुष्योंके लिये समानरूपसे भयकारी था। उस राक्षसवीरके भयंकर गर्जनसे देवगण काँपने लगे। वे देवगण युद्ध देखना छोड़कर सभी दिशाओंमें भाग चले। उस दुर्धर्ष दैत्यका भी महाबली श्रीरामने उसी रात्रिके अन्तिम प्रहरमें संहार कर दिया। राक्षसराज रावण इस वृत्तान्तको सुनकर अत्यन्त दुःखित हो रोने लगा॥ २७—३२॥

रावणको सान्त्वना देकर प्रतापी मेघनाद रात्रिमें ही युद्धके लिये आकर अदृश्यरूपसे आकाशमें स्थित हो गया। महामते! उसने भयंकर नागपाशसे सभी वानर-भालुओंके साथ श्रीराम-लक्ष्मणको बाँध लिया। राक्षसराज रावणके समान बलशाली उस वीर मेघनादने अपनी मायासे सबको मोहित कर दिया। तब विभीषणने आकर रघुनन्दन श्रीरामको रात्रिके उसी क्षणमें सचेत किया॥ ३३—३५½॥ सचेत होनेपर भगवान् श्रीरामने भयभीत होकर महान् भयका नाश करनेवाली भगवती भवानीका परम भक्तिभावसे स्मरण किया॥ ३६½॥

तब गरुडने आ करके उस भयंकर नागपाशको खाकर सैनिकोंसहित राम-लक्ष्मणको बन्धनसे मुक्त कर दिया॥ ३७-३८॥ तदनन्तर प्रातःकाल उस प्रसंगको सुनकर रावण स्वयं युद्धभूमिमें आया और सभी लोकोंको भयभीत करनेवाला तुमुल युद्ध करने लगा। रावणको प्रलयकालीन यमराजके समान युद्धभूमिमें देखकर सभी वानर भयविह्वल हो काँपने लगे। महात्मा श्रीरामके साथ रावणका अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें हजारों-करोड़ों वीरोंका संहार हुआ॥ ३९—४१॥

अथ तं समरे क्रुद्धो रामो राजीवलोचनः।
निक्षिप्य शरजालानि छादयामास वै मुने॥ ४२॥
आनीय गिरिश‍ृङ्गाणि कोटयो वानरा अपि।
चिक्षिपुः समरे तस्य रथोपरि दुरात्मनः॥ ४३॥
वृक्षैः शालप्रियालाद्यैस्तथान्यैर्वनजैरपि।
ताडितः समरे वीरो महापर्वतसंनिभः॥ ४४॥
हनूमदङ्गदाद्यैश्च महाबलवलीमुखैः।
प्रक्षिप्तैः पर्वतैश्चापि शतशोऽथ सहस्रशः॥ ४५॥
बभूव रावणो युद्धे विरथो मुनिपुङ्गव॥ ४६॥
प्रहसन्तौ रणे वीरौ चन्द्रसूर्यसमप्रभौ।
भ्रातरौ राघवौ संख्ये महाबलपराक्रमौ॥ ४७॥
धनुरुद्यम्य वेगेन यमदण्डोपमैः शरैः।
छादयामासतुर्वीरौ रावणं युद्धदुर्मदम्॥ ४८॥
कपीनां किलकिलाशब्दैर्धनुषां च विनिःस्वनैः।
रक्षसां घोरशब्दैश्च रथनेमिस्वनैरपि॥ ४९॥
गजानां बृंहितैस्तद्वद्वाजिनामपि हेषितैः।
अकालप्रलयं सर्वे मेनिरे प्राणिनो मुने॥ ५०॥
आच्छादितश्च समभूत्समरे राक्षसाधिपः।
प्रक्षिप्तैर्बाणसंघैश्च पर्वतैश्च महत्तरैः॥ ५१॥
ततः संत्यज्य समरं रावणो भयविह्वलः।
प्रविवेश पुरीं रम्यां संग्रामे क्षतविक्षतः॥ ५२॥

मुने! क्रुद्ध कमलनयन श्रीरामने युद्धमें अपनी शरवर्षासे रावणको ढक दिया। करोड़ों वानरोंने भी पर्वतशिखरोंको लाकर उस दुष्टात्माके रथपर फेंका। विशाल पर्वतके आकारवाले उस महावीरपर उन वानरवीरोंने शाल, प्रियाल आदि तथा वनमें उगे अन्य बड़े-बड़े वृक्षोंसे प्रहार किया। मुनिश्रेष्ठ! हनुमान्, अङ्गद, महाबल, बलीमुख इत्यादि वानरवीरोंके द्वारा फेंके गये सैकड़ों-हजारों पर्वतखण्डोंसे वह रावण रथविहीन हो गया॥ ४२—४६॥

सूर्य और चन्द्रके समान तेजस्वी महाबल-पराक्रमी दोनों भाइयों श्रीराम और लक्ष्मणने युद्धमें हँसते हुए अपना धनुष उठाकर तेजीसे यमदण्डके समान बाणोंको चलाकर युद्धोन्मत्त रावणको ढक दिया॥ ४७-४८॥ मुने! उस युद्धभूमिमें वानरोंकी किलकिलाहट, धनुषोंकी टंकार, राक्षसोंके भयंकर गर्जन, रथोंकी घरघराहट, हाथियोंकी चिंघाड़ और घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे सभी प्राणियोंको लगा जैसे अकाल प्रलय हो रहा हो॥ ४९-५०॥

तब चलाये गये बाणों और बड़े-बड़े पर्वतोंसे राक्षसराज रावण ढक गया। तत्पश्चात् वह युद्धभूमिमें क्षत-विक्षत होकर भयातुर हो युद्ध छोड़कर अपनी रम्य पुरी लङ्कामें चला गया॥ ५१-५२॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे रावणयुद्धभङ्गवर्णनं नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'रावण-युद्धभङ्गवर्णन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामका ब्रह्माजीसे विजयप्राप्तिका उपाय पूछना और ब्रह्माजीद्वारा उन्हें जगदम्बाकी उपासना करनेका परामर्श देना

श्रीमहादेव उवाच

एवं पराजितः संख्ये रावणो राक्षसाधिपः।
बोधयामास युद्धार्थं कुम्भकर्णं महाबलम्॥ १ ॥

कोटीनां पञ्चभिर्लक्षै राक्षसैः परिवारितः।
स कुम्भकर्णः समरे समसज्जत दुर्जयः॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे देवा भीताः सर्वे महामते।
मन्त्रणार्थं महाबुद्धिः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः॥ ३ ॥

ब्रह्माणमागतं वीक्ष्य सहितं सर्वदैवतैः।
सम्पूज्य वचनं प्राह भगवान्पुरुषोऽव्ययः॥ ४ ॥

श्रीराम उवाच

कथं जयेऽहं संग्रामे राक्षसान्युद्धदुर्मदान्।
रावणप्रमुखान्वीरान्महाबलपराक्रमान् ॥ ५ ॥

तन्मे वद सुरश्रेष्ठ भयं मे जायते महत्।
रावणस्य यथा संख्ये तं बाहुबलविक्रमम्॥ ६ ॥

अनुभूतोऽस्मि बहुधा जगत्प्लवनकारणम्।
तथा कस्यापि नो मन्ये विद्यते भुवनत्रये॥ ७ ॥

साम्प्रतं श्रूयते तस्य भ्राता राक्षसपुङ्गवः।
समायास्यति संग्रामे महाबलपराक्रमः॥ ८ ॥

कोटीनां पञ्चभिर्लक्षै राक्षसैः परिवारितः।
स योत्स्यति मया सार्धं भ्रातुः साहाय्यकारणात्॥ ९ ॥

विभीषणमुखाच्छ्रुत्वा तस्यापि च पराक्रमम्।
भीतोऽस्मि साम्प्रतं ब्रूहि यथैतान् समरे जये॥ १० ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो रामचन्द्रेण ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच सान्त्वयन् रामं सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

सर्वं जानासि राजेन्द्र तथापि कमलापते।
यत्पृच्छसि जगन्नाथ जयार्थं समरे शृणु॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार युद्धमें पराजित राक्षसोंके स्वामी रावणने युद्ध करनेके लिये महाबली कुम्भकर्णको जगाया॥ १॥ पाँच करोड़ लाख राक्षस-योद्धाओंके साथ कठिनतासे जीता जानेवाला वह कुम्भकर्ण युद्धके लिये तैयार हो गया॥ २॥ महामते! इस समय सभी देवता भयभीत हो गये। तब सभी लोकोंके स्वामी, महाबुद्धिमान्, अविनाशी, पुराणपुरुष प्रभु भगवान् श्रीरामने सभी देवताओंके साथ मन्त्रणाके लिये आये हुए ब्रह्माजीको देखकर उनकी पूजा कर इस प्रकार कहा—॥ ३-४॥

श्रीरामजी बोले—युद्धदुर्मद रावणादि प्रमुख पराक्रमी तथा महाबली वीर राक्षसोंको युद्धमें मैं कैसे जीतूँ, यह मुझे बतायें। सुरश्रेष्ठ! मुझे बड़ा भय लग रहा है। रावणके जगत्संहारक उस पराक्रमको जिस प्रकार हमने अनेक बार अनुभव किया है वैसा वीर तीनों लोकोंमें कोई नहीं है ऐसा मैं मानता हूँ। इस समय ऐसा सुना जाता है कि महाबली, पराक्रमी तथा राक्षसोंमें श्रेष्ठ उसका भाई कुम्भकर्ण युद्धमें आयेगा। वह पाँच करोड़ लाख राक्षस योद्धाओंसे युक्त होकर अपने भाईकी सहायता करनेके लिये मेरे साथ युद्ध करेगा। मैं विभीषणके मुखसे उसके पराक्रमकी बात सुनकर भयभीत हो गया हूँ। इस समय वैसा उपाय बताइये जिससे इन वीरोंको युद्धक्षेत्रमें जीत सकूँ॥ ५—१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—भगवान् श्रीरामचन्द्रके इस प्रकार कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजीने सबके सामने सान्त्वना देते हुए श्रीरामजीसे कहा—॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—राजेन्द्र! कमलापते! जगन्नाथ! आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी युद्धमें विजयी होनेके लिये आप जो पूछ रहे हैं; उसे सुनें—॥ १२॥

त्रैलोक्यजननी देवी ब्रह्मरूपा सनातनी।
कात्यायनी तवोपास्या महाभयनिवारिणी॥ १३॥
जयदा सर्वलोकानां या स्वयं चापराजिता।
तां प्रार्थय महाबाहो दुर्गां संकटतारिणीम्॥ १४॥
विना प्रसन्नतां तस्याः समरे शत्रुसूदन।
न विजेतुं समर्थोऽसि रावणादीन्महाबलान्॥ १५॥

आपको तीनों लोकोंकी माता ब्रह्मस्वरूपा सनातनी भगवती कात्यायनीकी उपासना करनी चाहिये। वे महान् भयका निवारण करनेवाली हैं तथा स्वयं अपराजित रहते हुए सभी लोगोंको विजय देनेवाली हैं। महाबाहो! संकटसे उबारनेवाली उन भगवती दुर्गाकी प्रार्थना कीजिये। शत्रुसूदन! बिना उनकी प्रसन्नताके महाबलशाली रावणादि राक्षसोंको आप युद्धमें जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकते॥ १३—१५॥

यन्नाम संस्मरन् शम्भुः पिबन् हालाहलं परम्।
विजित्य मृत्युं लोकेऽस्मिन्नाम्ना मृत्युञ्जयोऽभवत्॥ १६॥
तां प्रसाद्य रघुश्रेष्ठ जय लङ्कां महामते।
दुष्टप्रणाशिनी देव सभापि च जयप्रदा॥ १७॥
स्मर्तव्या पूजितव्या च साम्प्रतं सा त्वया ध्रुवम्।
संग्रामे जयलाभाय जगतो रक्षणाय च॥ १८॥

जिनके नामका स्मरण करते हुए भगवान् शंकर भयानक हालाहल विष पीकर भी मृत्युको जीतकर इस संसारमें मृत्युञ्जयके नामसे विख्यात हुए। रघुश्रेष्ठ! महामते! उन भगवतीको प्रसन्न कर आप लङ्काको जीतिये। देव! वे दुष्टसंहारिणी हैं और उनकी सभा भी विजय प्रदान करनेवाली है। आप इस समय संसारकी रक्षाके लिये और युद्धमें विजय पानेके लिये अवश्य ही उनका स्मरण और पूजन कीजिये॥ १६—१८॥

चण्डिकायां परा भक्तिर्विद्यते रावणस्य हि।
कस्तं विजेतुं शक्तोऽत्र देव्या दृष्टिं विना प्रभो॥ १९॥

प्रभो! राक्षसराज रावणकी भगवती चण्डिकामें परा भक्ति है। उन देवीकी कृपाके बिना उसको युद्धमें जीतनेमें कौन समर्थ हो सकता है॥ १९॥

उक्तं चापि तयैवैतत्पुरा तुभ्यं महात्मने।
समक्षं देवदेवस्य मम चापि महामते॥ २०॥
अपि जानासि तत्सर्वं स्वयं त्वं मधुसूदन।
तथापि तव वक्ष्यामि यत्पृष्टो जयकारणम्॥ २१॥

महामते! देवाधिदेव भगवान् शंकर और मेरे सामने उन्होंने भी आप महात्माके लिये ऐसा ही कहा था॥ २०॥ मधुसूदन! आप तो स्वयं सब कुछ जानते हैं; फिर भी आपने विजयहेतु जो पूछा है, उसे आपके लिये कहूँगा॥ २१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे ब्रह्मरामचन्द्रयोर्मन्त्रवर्णनं नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'ब्रह्मरामचन्द्रमन्त्रवर्णन' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका श्रीरामको कृष्णपक्षमें ही देवीकी पूजा करनेका आदेश देना तथा स्वयंके चतुर्मुख होनेका पूर्वप्रसंग सुनाना, ब्रह्मा, विष्णु और शिवद्वारा देवीकी स्तुति

श्रीमहादेव उवाच

ततः स भगवान्ब्रह्मा श्रीरामाय महात्मने।
संक्षेपात्पूर्ववृत्तान्तं कथितुं सम्प्रचक्रमे॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब भगवान् ब्रह्माजीने महात्मा श्रीरामसे संक्षेपमें पूर्ववृत्तान्तको कहना प्रारम्भ किया—॥ १॥

ब्रह्मोवाच

भगवन्नस्य दुष्टस्य वधार्थं प्रार्थितो यदा।
मया त्वं भगवन् विष्णो नृषु जन्मपरिग्रहे॥ २ ॥

तदा त्वमस्य रक्षायै देवीं ज्ञात्वा व्यवस्थिताम्।
तस्याः सम्प्रार्थनार्थाय कैलासमगमः स्वयम्॥ ३ ॥

अहं तथा महेशश्च सहितौ चागतौ ततः।
एतस्यैव वधार्थाय त्वदनुग्रहहेतवे॥ ४ ॥

ततस्त्वया महादेवी प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः।
उक्तमेतद्वचो देवि प्रसन्ना भव मे शिवे॥ ५ ॥

रावणस्य वधार्थाय मानुषत्वं व्रजाम्यहम्।
प्रार्थितस्त्रिदशैः सर्वैर्ब्रह्मणा च विशेषतः॥ ६ ॥

त्वं तस्य वरदा नित्यं भक्तिस्तस्य दृढा त्वयि।
तत्कथं पातयिष्यामि समरे तं महाबलम्॥ ७ ॥

इति वाक्यं तथान्यच्च त्वयोक्तं विस्तरं तदा।
तच्छ्रुत्वा सा यथा प्राह तच्च राम निबोध मे॥ ८ ॥

श्रीदेव्युवाच

त्वयाहं स्मरणीया तु संग्रामे सर्वदा तदा।
यदा योत्स्यसि लङ्केशं त्वं मायामनुजाकृतिः॥ ९ ॥

ततस्त्वां नैव भेत्स्यन्ति बाणा अपि सुदारुणाः।
न भीतिर्भविता वापि दृष्ट्वा तेषां पराक्रमम्॥ १० ॥

कृत्वा च विधिवत्पूजामकाले मम तत्र वै।
विजेष्यसि रणे वीरं रावणं मत्प्रसादतः॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

तस्माद्राम महाबाहो जेतुकामस्तु रावणम्।
स्मरन्युध्यस्व संग्रामे देवीं तां जयदायिनीम्॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु! इस दुष्टके वधके लिये जब मैंने आपसे प्रार्थना की थी कि प्रभो! आप मनुष्यरूपमें अवतार लें, तब आप इसकी रक्षामें भगवती जगदम्बाको स्थित जानकर उनकी प्रार्थना करनेके लिये स्वयं कैलासपर्वतपर आये थे। मैं और भगवान् शंकर भी आपके प्रति अनुग्रहके कारण इसीके वधके लिये वहाँ एक साथ आ गये॥ २—४॥ तब आपने महामाया जगदम्बिकाको बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा था—देवि! शिवे! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं सभी देवताओं तथा विशेषरूपसे ब्रह्माके द्वारा प्रार्थना करनेपर रावणके वधके लिये मनुष्यरूपमें अवतार ले रहा हूँ। आपमें उसकी दृढ़ भक्ति है; इसलिये आप उसे नित्य वरदान देती हैं तो फिर उस महाबलीको मैं युद्धमें कैसे मार पाऊँगा?॥ ५—७॥ राम! जब आपने देवीसे यह बात तथा अन्य जो बातें विस्तारपूर्वक बतायीं; उसे सुनकर जगदम्बाने जो कहा, वह मुझसे सुनिये॥ ८॥

श्रीदेवीजी बोलीं—जब आप अपनी मायासे मनुष्यरूपमें अवतार लेकर लङ्केश रावणसे युद्ध करेंगे, तब युद्धभूमिमें आप सर्वदा मेरा स्मरण करें। इससे आपको अत्यन्त भीषण बाण भी नहीं वेध पायेंगे तथा न राक्षसोंके पराक्रमको देखकर आप भयभीत ही होंगे। असमयमें भी वहाँ मेरी विधिपूर्वक पूजा करके मेरी कृपासे आप युद्धमें वीर रावणको जीत लेंगे॥ ९—११॥

ब्रह्माजी बोले—महाबाहो राम! इसलिये आप रावणको युद्धमें जीतनेकी इच्छासे उन जयप्रदा भगवतीका स्मरण करते हुए युद्ध कीजिये॥ १२॥

गुरुस्ते मम पुत्रस्तु वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
यं मन्त्रं दत्तवांस्तस्यास्तं संस्मृत्य महारणे॥ १३॥

कृत्वा युद्धं राक्षसेन्द्रं सबन्धुं जहि राघव।
पूजायै च महादेव्या यतस्व रघुनन्दन॥ १४॥

तस्या विना प्रसादेन न जेष्यसि कथञ्चन।
प्रवृत्ते शुक्लपक्षे तु रावणस्तां सुरेश्वरीम्॥ १५॥

पूजयेद्यदि नो मृत्युस्तदा तस्य भविष्यति।
तस्मादस्मिन्नकालेऽपि तस्यास्तु परिपूजने॥ १६॥
यतस्वैषां राक्षसानां नाशनाय रघूद्वह॥ १७॥

राघव! मेरे पुत्र मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ आपके गुरु हैं। देवीका जो मन्त्र उन्होंने आपको प्रदान किया है, महान् संग्राममें उस मन्त्रका स्मरण करते हुए युद्ध करके उस राक्षसराज रावणको बन्धुसहित मार डालिये। रघुनन्दन! आप उन महादेवीकी पूजाके लिये प्रयत्न कीजिये; क्योंकि उनको प्रसन्न किये बिना आप किसी प्रकार विजयी नहीं होंगे। शुक्लपक्षके प्रारम्भ हो जानेपर यदि रावण उन जगदम्बाकी पूजा करेगा तो उसकी मृत्यु नहीं हो सकेगी। इसलिये रघूद्वह! आप इस असमयमें भी इन राक्षसोंके नाशके लिये उनकी पूजा प्रारम्भ कर दीजिये॥ १३—१७॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा श्रीरामः प्रत्युवाच तम्।
विजानन्नपि तत्सर्वं लोकानामुपकारकम्॥ १८॥

श्रीमहादेवजी बोले—लोकोपकारी इस समस्त बातको जानते हुए भी उनकी बात सुनकर श्रीरामने उन्हें उत्तर दिया—॥ १८॥

श्रीराम उवाच

सत्यं जयप्रदा देवी सैव साक्षात्परात्परा।
स्मर्तव्या पूजितव्या च संग्रामे जयमिच्छता॥ १९॥

किंतु नायं स कालो हि यत्र देवार्चनाविधिः।
निद्रिता च महादेवी सम्प्राप्ता त्रिदशेश्वरी॥ २०॥

विशेषतः कृष्णपक्षो नायं शुक्लः पितामह।
कथमत्र महादेवीमप्रबुद्धां प्रपूजये॥ २१॥

श्रीरामजी बोले—वे साक्षात् परात्परा जगदम्बादेवी निश्चय ही विजय प्रदान करनेवाली हैं और युद्धमें जीतनेकी आकाङ्क्षावालेको अवश्य ही उनका स्मरण और पूजन करना चाहिये, किंतु देवताओंके पूजनके लिये यह उचित समय नहीं है। इस समय महादेवी त्रिदशेश्वरी शयनावस्थामें हैं। पितामह! यह कृष्णपक्ष है, शुक्लपक्ष नहीं है। इस समय सोयी हुई महादेवीकी मैं कैसे पूजा करूँ?॥ १९—२१॥

ब्रह्मोवाच

अहं तां बोधयिष्यामि युद्धे तव जयाय वै।
वधाय राक्षसेन्द्रस्यामङ्गलस्य दुरात्मनः॥ २२॥

अकालेऽपि महादेवीं पूजयिष्यसि राघव।
विजेष्यसि रणे शत्रून् मा चिन्तां कर्तुमर्हसि॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—अमङ्गलकारी दुरात्मा राक्षसराज रावणके वधके लिये और युद्धमें आपकी विजयके लिये मैं उन्हें जगाऊँगा। राघव! आप असमयमें भी महादेवीकी पूजा कर सकेंगे और युद्धमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करेंगे। इसके लिये आप चिन्ता न करें॥ २२-२३॥

श्रीराम उवाच

भद्रं ब्रह्मन् वसिष्ठस्ते तनयो मे गुरुः स्वयम्।
पिता तस्य भवानेव जगतां च पितामहः॥ २४॥

अतस्त्वं मे गुरुर्देव पूजयिष्यामि चण्डिकाम्।
अहं तु समराशक्तो न स्वयं जेतुमुत्सहे॥ २५॥

किंतु देव्याः प्रसादेन रावणं जेतुमुत्सहे।
सोऽपि चेत्पूजयदेवं शुक्लपक्षे सुरेश्वरीम्॥ २६॥

ददाति यदि तस्मै वा सुप्रसन्ना वरं स्वयम्।
तत्कथं पातयिष्यामि संग्रामे भीमविक्रमम्॥ २७॥

ब्रह्मोवाच

तयोक्तं पूर्वमेवैतदवश्यं तव हस्ततः।
भविष्यति रणे मृत्युस्तस्य तत्र न संशयः॥ २८॥

त्वया सम्पूजिता देवी यदि भूयोऽपि तद्वरम्।
ददाति समरे राम ततस्ते विजयो ध्रुवम्॥ २९॥

स पापात्मा यदा सीतां साक्षाल्लक्ष्मीं पतिव्रताम्।
रिरंसुरानयामास तस्या मूर्त्यन्तरं बलात्॥ ३०॥

तदा सैव विनाशाय तस्य दुष्टविचेतसः।
रुष्टा विपत्स्वरूपेण प्रविवेश पुरीं स्वयम्॥ ३१॥

यत्र धर्ममतिः शान्तिस्तत्र श्रीः कान्तिरेव च।
अधर्मो यत्र सा तत्र विपद्रूपा स्वयं शिवा॥ ३२॥

अहंकृतिवशाद्यो हि कुरुते धर्महेलनम्।
दर्पोपशमनी तस्य सैव देवी महामते॥ ३३॥

अत्रैतच्छृणु वक्ष्यामि सेतिहासं रघूद्वह।
यथा सम्भाषितं देव्या स्वयमेव ममाग्रतः॥ ३४॥

श्रीरामजी बोले—ब्रह्मन्! आपका कल्याण हो, यह बात सत्य है कि आपके पुत्र वसिष्ठजी मेरे गुरु हैं। आप ही उनके पिता हैं और इस संसारके पितामह भी आप ही हैं। इसलिये देव! आप भी मेरे गुरु हुए। मैं भगवती चण्डिकाकी पूजा करूँगा; क्योंकि मैं युद्ध करनेमें स्वयं अशक्त हूँ और मेरे लिये युद्ध जीतना सम्भव भी नहीं है। फिर भी जगदम्बाकी कृपासे मैं रावणको जीत सकता हूँ। यदि वह रावण भी शुक्लपक्षमें देवी सुरेश्वरीकी पूजा करेगा और यदि देवी जगदम्बा उसकी पूजासे प्रसन्न होकर स्वयं उसे वर दे देती हैं; तब फिर मैं युद्धमें उस भयंकर पराक्रमीको कैसे मार पाऊँगा?॥ २४—२७॥

ब्रह्माजी बोले—उन भगवतीने पूर्वमें ही बतला दिया है कि युद्धक्षेत्रमें आपके हाथसे उसकी मृत्यु अवश्य होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। राम! आपके द्वारा पूजा करनेके बाद भी यदि देवी जगदम्बा पुनः वही वर प्रदान करती हैं तो भी युद्धमें निश्चित ही आपकी विजय होगी॥ २८-२९॥ जब वह पापात्मा साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपिणी पतिव्रता सीताकी छायामूर्तिको रमणेच्छासे बलपूर्वक उठा लाया; तब वे ही उस दुष्टात्मा रावणके विनाशके लिये रुष्ट होकर विपत्तिरूपमें स्वयं उसके नगरमें प्रवेश कर गयीं॥ ३०-३१॥ जहाँ धार्मिक बुद्धि है वहीं शान्ति, समृद्धि और कान्तिका निवास है, किंतु जहाँ अधर्म है वहाँ वे शिवा स्वयं विपत्तिके रूपमें आ जाती हैं। अहंकारके वशीभूत होकर जो धर्मका उल्लंघन करता है, महामते! वे ही भगवती उसके घमण्डको चूर कर देती हैं॥ ३२-३३॥ रघूद्वह! भगवती जगदम्बाने इस विषयमें मुझे जो स्वयं बताया था, इतिहाससहित उसे मैं अब कहूँगा, आप सुनें—॥ ३४॥

यथा महेश्वरो देवः पञ्चवक्त्रो महामतिः।
तथाहमपि पञ्चास्यः पूर्वमासं रघूत्तम॥ ३५॥
तत्रैकदा त्वहंकारवशाच्छम्भुमहं पुरा।
अवोचमपि संक्रोधसम्भूतं रघुनन्दन॥ ३६॥
तच्छ्रुत्वा स महादेवः पञ्चमं मे शिरस्ततः।
प्रचिच्छेद महाक्रोधात्तत्क्षणादेव पश्यतः॥ ३७॥
ततोऽहं चतुरास्यः सन्नेकदा तां सुरोत्तमाम्।
प्रणन्तुं तां पुरं पूर्वमगमं सह विष्णुना॥ ३८॥
महारुद्रस्तु तत्रैव प्रणन्तुं तां महामते।
महादुर्गां समायातस्तस्मिन्नेव क्षणे प्रभुः॥ ३९॥
एवं तत्र त्वहं ब्रह्मा महाविष्णुर्महेश्वरः।
समवेतास्त्रयो राम महादुर्गासमीपतः॥ ४०॥
एतस्मिन्नेव कालेऽहं तां प्रणम्य महामते।
अवोचं त्रिदशेशानीं तस्य शम्भोः समीपतः॥ ४१॥
त्वदनुग्रहदर्पेण मातः शम्भुरयं मम।
चिच्छेद पञ्चमं वक्त्रं निगृह्णन् सुरसंसदि॥ ४२॥
मया किमपराद्धं वा कथं वा मच्छिरः शिवः।
प्रचिच्छेद जगन्मातस्त्रिदशेश्वरवन्दिते॥ ४३॥
इति मे वचनं श्रुत्वा ततः सा जगदम्बिका।
मामाह वचनं चेदं सुचारुमुखपङ्कजा॥ ४४॥

श्रीदेव्युवाच

वत्स जानीहि कर्माणि शुभसंसूचकानि च।
तथैवाशुभभोगानां सूचकानि च तानि वै॥ ४५॥
शुभानामशुभानां हि कर्मणां पद्मसम्भव।
फलप्रदाहमेवैका स्वतन्त्रास्मि न चापरः॥ ४६॥
यो यथा कुरुते कर्म शुभं वाप्यशुभं तथा।
तथा फलं भवेत्तस्य नान्यथा तु कदाचन॥ ४७॥
न तत्र विद्यते कश्चिदप्रियो वा प्रियोऽथ वा।
अवश्यं स्वकृतं कर्म भुङ्क्ते तत्र न संशयः॥ ४८॥

रघूत्तम! जिस प्रकार महामति भगवान् महेश्वर पञ्चानन हैं, उसी प्रकार मैं भी पूर्वमें पाँच मुखवाला था। रघुनन्दन! तब मैंने पूर्वकालमें एक बार अहंकारके वशीभूत होकर क्रोधपूर्वक भगवान् शिवसे ऐसा कहा, जिसे सुनकर उन भगवान् शंकरने भयानक क्रोध करते हुए देखते-ही-देखते उसी क्षण मेरा पाँचवाँ सिर काट डाला॥ ३५—३७॥ तदनन्तर मैं चतुर्मुख होकर एक बार भगवान् विष्णुके साथ उन सुरेश्वरी जगदम्बाको प्रणाम करनेके लिये उनके नगरमें गया। महामते! उसी समय भगवान् महारुद्र भी उन महादुर्गाको प्रणाम करनेहेतु वहीं आये। राम! इस प्रकार वहाँ मैं ब्रह्मा, महाविष्णु और भगवान् महेश्वर—तीनों देवता उन महादुर्गाके समीप एकत्र हुए॥ ३८—४०॥ महामते! उसी समय मैंने उन त्रिदशेश्वरीको प्रणाम करके भगवान् शंकरके समीपमें ऐसा कहा—माताजी! आपकी कृपासे गर्वित इन शिवने देवताओंकी सभामें मेरा पाँचवाँ सिर पकड़कर काट डाला। सुरेश्वरवन्दित जगन्माता! मेरे किस अपराधसे इन शिवने मेरा सिर काटा?॥ ४१—४३॥ मेरे इस वचनको सुनकर सुन्दर मुखकमलवाली उन जगदम्बिकाने मुझसे इस प्रकार कहा—॥ ४४॥

श्रीदेवीजी बोलीं—वत्स! इसे जान लो कि कर्म ही शुभ फलों और अशुभ भोगोंको देनेवाले हैं। पद्मसम्भव! शुभ और अशुभ कर्मोंका फल देनेवाली एकमात्र मैं ही स्वतन्त्र हूँ, अन्य कोई नहीं। जो जिस प्रकारका शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है; उसी प्रकार उसको शुभ अथवा अशुभ फल मिलता है। अन्यथा कभी नहीं होता॥ ४५—४७॥ मेरा कोई प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है। अपने किये हुए कर्मका फल मनुष्य अवश्य ही भोगता है, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ४८॥

रन्तुं संध्यां स्वतनयां दृष्ट्वा कामेन मोहितः।
अकरोद्यदभिप्रायं तस्मात्तत्फलमाप्तवान्॥ ४९॥

शम्भोः क्रोधस्तथान्यच्च निमित्तं केवलं विधे।
वस्तुतः कर्मणस्तस्य फलमेतत्सुनिश्चितम्॥ ५०॥

यस्तु स्वतनयां दृष्ट्वा क्रियते कामचिन्तनम्।
शिरश्छिन्नं भवेत्तस्य मदिच्छावशतो विधे॥ ५१॥

तस्मात्तु ते मयैवैतच्छिरश्छिन्नं महामते।
अधिष्ठात्र्या त्रिशूलात् को दोषस्तत्र शिवस्य तु॥ ५२॥

ध्रुवमेतद्विजानीहि धर्माधर्मविरोधिनाम्।
अहमेव नियन्त्री च नान्योऽस्तीह जगत्त्रये॥ ५३॥

ब्रह्मंस्ते पञ्चमं वक्त्रं कल्पितो हव्यवाहनः।
तस्मिन्हुते सुराः सर्वे तृप्तिमायान्ति शाश्वतीम्॥ ५४॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तु त्रिजगद्धात्रीं त्रय एव सुरोत्तमाः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टुवुर्भक्तिसंयुताः॥ ५५॥

ब्रह्मविष्णुशिवा ऊचुः

उत्पन्नाः पुरुषास्त्रयस्तव सुता ब्रह्मेशनारायणा
जानीमो महिमानमेव नहि ते प्राचीनमत्यद्भुतम्।
भूयोऽप्येतदचिन्त्यरूपमहिमैश्वर्यादिभिः प्रोज्झिताः
स्तोष्यामः कथमेव देवि जगतां धात्रि प्रसीदेश्वरि॥ ५६॥

शिव उवाच

संधर्तुं शिरसा सुरेशि पदयो रेणूनहं भक्तितो
गङ्गायां न्यपतन् कियन्त इति ते सालोक्यसम्पादिनीः।
यस्यास्ते पदपद्मरेणुमहिमाप्येतादृशस्तां कथं
त्वां स्तोष्ये स्वगुणैः प्रपाहि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ५७॥

अपनी पुत्री संध्याको देखकर कामके वशीभूत हुए आपने रमण करनेके लिये जो विचार किया, उसीसे आपको यह फल प्राप्त हुआ। ब्रह्मन्! भगवान् शंकरका क्रोध तथा दूसरी सभी बातें भी केवल निमित्तमात्र हैं। वस्तुतः निश्चितरूपसे यह उस कर्मका ही फल है। ब्रह्मन्! जो भी व्यक्ति अपनी पुत्रीको देखकर कामचिन्तन करता है, मेरी इच्छाके कारण ही उसका सिर विच्छिन्न हो जाता है। महामते! इसलिये मुझ अधिष्ठात्रीके द्वारा ही त्रिशूलसे आपका यह सिर काटा गया है, इसमें भगवान् शंकरका क्या दोष है? यह निश्चित जानिये कि तीनों लोकोंमें धर्माधर्मविरोधियोंकी मैं ही एकमात्र नियन्त्री हूँ, अन्य कोई नहीं है। ब्रह्मन्! आपका पाँचवाँ मुख हव्यवाहन [अग्नि]-के रूपमें बना दिया गया, जिसमें आहुति देनेपर सभी देवता शाश्वत तृप्तिको प्राप्त करते हैं॥ ४९—५४॥

ब्रह्माजी बोले—तब तीनों ही श्रेष्ठ देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और महेश)-ने त्रिलोकजननीको भूमिपर गिरकर प्रणाम किया और वे भक्तिपूर्वक उनका स्तवन करने लगे॥ ५५॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश बोले—जगन्माता! हम (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर) तीनों देवता आपके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए हैं; फिर भी आपकी सनातन और अद्भुत महिमाको हम नहीं जानते हैं। आपकी महिमा और ऐश्वर्य आदिसे अनजान हम देवगण आपके अचिन्त्यरूपकी स्तुति कैसे करें। महेश्वरी! आप प्रसन्न हों॥ ५६॥

शिवजी बोले—सुरेश्वरि! आपके चरणकमलकी रेणुको भक्तिपूर्वक सिरपर धारण करनेका मैंने प्रयत्न किया, तब उसके कितने ही कण गङ्गामें गिर गये, जिनसे वे गङ्गाजी सालोक्य मुक्तिको प्रदान करनेवाली बन गयीं। जिन आपके चरणकमलोंकी रेणुकी ऐसी महिमा है, उन आपका स्तवन मैं कैसे करूँ? जगद्धात्रि! आप अपने स्वभावगत गुणोंसे जगत्का परित्राण करें, अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ५७॥



देवि त्वत्पदपङ्कजं हृदि धृतं तेनैव दत्तेन वै
जित्वा मृत्युमशेषलोकभयदं तत्कालकूटं बलात्।
पीतं यन्नवनीतवत्स हि गले चाद्यापि संराजते
दीप्तं जम्बुनिभं सुरेशि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ५८॥

विष्णुरुवाच

यत्राब्धौ भुजगेश्वरस्य शिरसि शश्वच्छयिष्येऽम्बिके
लक्ष्मीवाण्यनुमोदितस्तनुघटस्यन्दैकबिन्दूद्भवः।
सोऽप्यन्तर्न विदंस्तवापि सुतरां त्वां वा शिवे यत्नतः
स्तोष्येऽहं स्वगुणेन पाहि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ५९॥

त्वं सूक्ष्मा प्रकृतिः परात्परतरा विश्वैकहेतुः शिवे
त्वां जानन्ति परेण कोऽपि जगतां सृष्ट्यादिशक्त्या अपि।
त्वं माता जगतां त्रयो ह्यपि सुताः कारुण्यदृष्ट्या कृपा-
मस्मांस्तु प्रविधाय पाहि जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ६०॥

ब्रह्मोवाच

स्तोत्रं ते न च वेद्मि नापि च परं रूपं न शीलं गुणान्
सम्यग्यच्च कियच्छ्रुतीरितमहं जाने तथान्येऽपि वा।
तद्वक्त्रैरपि कोटिभिर्बहुयुगं वक्तुं न शक्तः शिवे
पाहि त्वं निजसद्गुणेन जगतां धात्रि प्रसीदाम्बिके॥ ६१॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्यादिस्तुतिवाक्यैस्तां स्तुत्वा नत्वा च भक्तितः।
प्रययुस्ते निजं स्थानं ब्रह्माद्या रघुनन्दन॥ ६२॥
तयैतदुक्तं राजेन्द्र स्वयमेव ममाग्रतः।
अयं चापि सुदुष्टात्मा नैनं सा परिरक्षति॥ ६३॥

देवि! आपका चरणकमल मैंने हृदयमें धारण किया। उसीके प्रभावसे बलपूर्वक मृत्युको जीतकर मैं समस्त लोकोंको भय प्रदान करनेवाले कालकूट विषको मक्खनकी तरह पी गया। वह कालकूट आज भी मेरे गलेमें कान्तिमान् जामुनकी आभा लिये शोभायमान है। सुरेश्वरि! जगद्धात्रि! अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ५८॥

विष्णुजी बोले—माता! शिवे! आपके श्रीविग्रहसे रिसते हुए बिन्दुमात्रसे उत्पन्न हुआ तथा लक्ष्मी और सरस्वतीके अनुमोदनसे क्षीरसमुद्रमें शेषशय्यापर निरन्तर सोया रहनेवाला मैं भी आपके वास्तविक स्वरूपको न जानते हुए प्रयत्नपूर्वक आपका स्तवन करता हूँ। जगद्धात्री! आप अपने स्वाभाविक गुणोंसे जगत्का परित्राण करें, अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ५९॥ शिवे! आप परात्परतरा सूक्ष्मा प्रकृति हैं और जगत्की एकमात्र कारण हैं। आपको विज्ञजन संसारकी सृष्टि आदि शक्तियोंसे भी परे जानते हैं। आप समस्त जगत्की माता हैं और हम त्रिदेव भी आपके ही पुत्र हैं। आप हमपर करुणामयी दृष्टिसे कृपा करें। जगद्धात्रि! जगत्का परित्राण करें, अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ६०॥

ब्रह्माजी बोले—मैं न आपका स्तोत्र जानता हूँ न आपके श्रेष्ठ रूपको जानता हूँ और न ही आपके शील आदि गुणोंको सम्यक् और इदमित्थं रूपसे जानता हूँ। मैं तो आपके किंचित् गुणगण जो वेदोंद्वारा वर्णित हैं उन्हें ही जानता हूँ तथा दूसरे भी वही जानते हैं। उन आपके गुणगणोंको करोड़ों मुखोंसे दीर्घकालतक कहनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ। शिवे! आप अपने स्वाभाविक सद्गुणोंसे जगत्का परित्राण करें। जगद्धात्रि! अम्बिके! आप प्रसन्न हों॥ ६१॥

श्रीमहादेवजी बोले—रघुनन्दन! इन स्तुति-वचनोंके द्वारा भगवतीकी स्तुति तथा भक्तिपूर्वक नमस्कार करके वे ब्रह्मादि तीनों देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ ६२॥ राजेन्द्र! उन्होंने स्वयं ही मेरे सामने ऐसा कहा है कि यह रावण भी दुष्टात्मा है और वे इसकी रक्षा नहीं करेंगी॥ ६३॥

सीता मन्दोदरीगर्भे सम्भूता चारुरूपिणी।
क्षेत्रजा तनयाप्यस्य रावणस्य रघूत्तम॥ ६४॥

तां लोभादपहृत्यैव रिरंसुः काममोहितः।
यदा लङ्कां समायातस्तदा लङ्का गताभवत्॥ ६५॥

जयदा धर्मनिष्ठानां पापिनां नाशकारिणी।
एकैव सा श्रेष्ठतमा भवानी भुवनेश्वरी॥ ६६॥

तामभ्यर्चयतां नित्यं सत्यं सत्यं रघूत्तम।
न विद्यते क्वचिद्धानिः स्वर्गे मर्त्ये रसातले॥ ६७॥

तस्मात्त्यक्त्वा भयं राम विविधैरुपचारकैः।
शत्रूणां निधनाकाङ्क्षी समरे शत्रुसूदन॥ ६८॥

अकालेऽपि महादेवीं परिपूज्य विधानतः।
विजेष्यसि रणे शत्रून्मा चिन्तां कर्तुमर्हसि॥ ६९॥

धर्मो विजयदस्तत्र देवी यत्र प्रपूजिता।
अधर्मो यत्र तत्रैषा विपद्रूपा रघूत्तम॥ ७०॥

त्वं शुद्धप्रकृतिः सर्वजगतां हितकारकः।
न्यायवर्त्मप्रवृत्तश्च ततस्ते विजयो ध्रुवम्॥ ७१॥

तेन यच्च कृतं कर्म शुभं तस्य च यत्फलम्।
तद्भुक्तं नावशिष्टं तत्किञ्चित्तस्य तु वर्तते॥ ७२॥

इदानीं कृतदुष्कर्मफलं तु समुपस्थितम्।
तवैव बाणजालेन निहतः सम्पतिष्यति॥ ७३॥

तस्माद्राम स्थिरो भूत्वा देवीं सम्पूज्य भक्तितः।
घातयिष्यसि लङ्केशं मा चिन्तां कर्तुमर्हसि॥ ७४॥

रघूत्तम! मनोहररूपिणी सीता मन्दोदरीके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं, इस प्रकार वे उस रावणकी क्षेत्रजा पुत्री भी थीं; कामके वशीभूत होकर रमणकी इच्छावाला वह रावण लोभपूर्वक उन्हीं सीताका अपहरण करके जब लङ्का ले आया, तभी लङ्का नष्ट हो गयी॥ ६४-६५॥ धर्मनिष्ठजनोंको विजय दिलानेवाली तथा पापियोंका नाश करनेवाली एकमात्र वे ही अतिश्रेष्ठ भवानी भुवनेश्वरी हैं। रघूत्तम! उन भगवतीकी जो लोग नित्य अर्चना करते हैं; उनको स्वर्लोक, मृत्युलोक तथा रसातल—तीनों लोकोंमें कहीं कोई हानि नहीं होती, यह सत्य है, सत्य है॥ ६६-६७॥ इसलिये शत्रुसूदन राम! आप भय त्यागकर विविध उपचारोंके द्वारा युद्धमें शत्रुओंको मारनेकी इच्छासे विधिपूर्वक असमयमें भी महादेवी जगदम्बाकी पूजा कर युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंको जीतेंगे। अतः आप चिन्ता न करें॥ ६८-६९॥

रघूत्तम! जहाँ देवी जगदम्बाकी सम्यक् रूपसे पूजा होती है; वहाँ धर्म विकसित होकर विजय प्रदान करता है तथा जहाँ अधर्म होता है वहाँ ये देवी जगदम्बा विपत्तिके रूपमें अवस्थित रहती हैं॥ ७०॥ आप सात्त्विक प्रकृतिके हैं, सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण करनेवाले हैं तथा न्यायके पथपर चलनेवाले हैं; इसलिये आपकी विजय निश्चित है। उस रावणके द्वारा जो शुभ कर्म किया गया है, उसका फल उसने प्राप्त कर लिया है, अब उसमें कुछ शेष नहीं बचा है। इस समय उसके कुकृत्यका फल उपस्थित हो गया है। इसलिये आपकी ही बाण-वृष्टिसे आहत होकर वह गिरेगा। राम! आप स्थिर होकर देवी जगदम्बाकी भक्तिपूर्वक पूजा कर लङ्कापति रावणको मारेंगे, इसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं॥ ७१—७४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे रामब्रह्मणोर्मन्त्रणावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥ ४२॥

॥ इस प्रकार महाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीरामब्रह्मामन्त्रणावर्णन' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा श्रीरामसे देवीकी सर्वव्यापकता तथा विभिन्न दिव्य लोकोंका वर्णन करना, देवीके लोक तथा उनके स्वरूपका वर्णन, श्रीरामद्वारा जगज्जननी जगदम्बाका पूजन

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य रघुश्रेष्ठो ब्रह्मवक्त्रान्महामुने।
पुनस्तं परिपप्रच्छ प्रसन्नात्मा प्रसन्नधीः॥ १ ॥

श्रीराम उवाच

ब्रह्मन् विजयदा देवी सैव सत्यं महामते।
पूजयिष्यामि तां भक्त्या जयकामो महारणे॥ २ ॥

इदानीं तु हि सा देवी जयदुर्गा महेश्वरी।
कुत्रास्ति कीदृशं रम्यं रूपं तस्या वद प्रभो॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि स्वयं जानासि यद्यपि।
तथापि पावनं पुण्यं श्रोतॄणां भाषतां यतः॥ ४ ॥

सर्वगा सर्वसंस्था च विश्वेषां पीठवासिनी।
ब्रह्माण्डमध्यसंस्था च तद्बहिर्वासिनी तथा॥ ५ ॥

स्वर्गे मर्त्ये हिमाद्रौ च कैलासे शिवसन्निधौ।
या मूर्तिर्भगवत्यास्तु सैव पौराणिकी मता॥ ६ ॥

ब्रह्माण्डबाह्यसंस्था च या मूर्तिस्तान्त्रिकी परा।
सुगोप्या सा महादुर्गा नित्यानन्दमयी तथा॥ ७ ॥

तस्याः स्थानं तु यादृक् च केन वक्तुं प्रशक्यते।
किंचिद्वक्ष्यामि तद्राम शृणुष्वावहितो मम॥ ८ ॥

पातालभूतलस्वर्गब्रह्मलोकाश्च राघव।
ब्रह्माण्डान्तःस्थिताः सर्वे क्रमादूर्ध्वं सुदूरतः॥ ९ ॥

ब्रह्माण्डबाह्याद्रुचिराद्ब्रह्मलोकात्समुत्थितः।
लक्षयोजनमात्रं तु शिवलोको निरामयः॥ १० ॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! ब्रह्माजीके मुखसे इस प्रकारकी बात सुनकर प्रसन्नात्मा विमल बुद्धिवाले रघुश्रेष्ठ श्रीरामने पुनः उनसे पूछा—॥ १॥

श्रीरामजी बोले—महामते! ब्रह्मन्! यह सत्य है कि वे ही देवी विजय प्रदान करनेवाली हैं, इसलिये महायुद्धमें विजयी होनेकी इच्छासे मैं भक्तिपूर्वक उन्हींकी पूजा करूँगा। प्रभो! अब आप बतायें कि वे देवी जयदुर्गा महेश्वरी इस समय कहाँ हैं और उनका रम्यरूप किस प्रकारका है?॥ २-३॥

ब्रह्माजी बोले—राजन्! सुनिये, यद्यपि आप स्वयं जानते हैं; फिर भी आपसे यह प्रसंग कहूँगा; क्योंकि सुनने तथा कहनेवालोंके लिये यह चरित्र पावन और पुण्यप्रद है॥ ४॥ वे देवी सर्वत्र गमन करनेवाली, सर्वत्र निवास करनेवाली, समस्त शक्तिपीठोंमें रहनेवाली, ब्रह्माण्डके मध्यमें स्थित तथा ब्रह्माण्डसे बाहर भी रहनेवाली हैं। स्वर्ग, मृत्युलोक, हिमालय पर्वत तथा भगवान् शंकरके समीप कैलास पर्वतपर जो भगवतीकी मूर्ति विराजमान है, वही पौराणिकी मानी गयी है। जो मूर्ति ब्रह्माण्डके बाहर स्थित है; वह श्रेष्ठ तान्त्रिकी मूर्ति है; वे नित्यानन्दमयी महादुर्गा अत्यन्त गोपनीया हैं। उनका स्थान जिस प्रकारका है, उसे कहनेमें कौन समर्थ है? फिर भी राम! मैं कुछ वर्णन करूँगा; आप ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनें॥ ५—८॥

राघव! पाताल, भूतल, स्वर्ग तथा ब्रह्मलोक—ये सभी ब्रह्माण्डमें उत्तरोत्तर क्रमसे ऊपरकी ओर बहुत दूरतक स्थित हैं। ब्रह्माण्डके बाहरी भागमें स्थित दिव्य ब्रह्मलोकसे ऊपरकी ओर एक लाख योजनकी दूरीपर निर्विकार शिवलोक अवस्थित है,

यत्र प्रमोदते नित्यं प्रमथैः प्रमथेश्वरः।
आद्योऽनिर्वचनीयोऽसौ नित्योत्सवसुसंवृतः॥ ११॥

शिवभक्ताश्च ये लोकास्ते तं प्राप्य मनोहरम्।
मोदन्ते देवदेवस्य प्रसादात्करुणानिधेः॥ १२॥

लक्षयोजनमात्रं तु तदूर्ध्वं विष्णुलोककः।
सार्धं कमलया शङ्खचक्रपद्मगदाधरः॥ १३॥

सोऽप्यनिर्वचनीयो वै लोकः श्रीकमलापतेः।
शुद्धज्योतिर्मयो नानारत्नजालविचित्रितः॥ १४॥

विष्णुभक्तिरता ये च देवगन्धर्वकिन्नरैः।
सालोक्यं समनुप्राप्तास्ते तु विष्णुप्रभावतः॥ १५॥

मोदन्ते नगरे तत्र नित्यं मुदितमानसाः।
द्वारसंरक्षको यत्र गरुडः पतगाधिपः॥ १६॥

शम्भुलोकस्य वामे तु गौरीलोको मनोरमः।
विचित्रमणिमाणिक्यसमूहैरतिशोभितः॥ १७॥

तत्र या वैदिकी मूर्तिर्देव्या दशभुजापरा।
अतसीकुसुमाभासा सिंहपृष्ठनिषेदुषी॥ १८॥

समास्ते मन्दिरे रम्ये षोडशद्वारशोभिते।
विचित्ररत्नवत्स्तम्भे पताकाभिरलङ्कृते॥ १९॥

स्तुवद्भिः सर्वदा देवमुनीन्द्रैरतिशोभिते।
अनन्तचेटिकावृन्दैर्भैरवैश्चैव रक्षिते॥ २०॥

ब्रह्माण्डवासिभिः सर्वैर्ब्रह्माद्यैर्जगदम्बिका।
पूज्यते समुपागत्य शम्भुना विष्णुना तथा॥ २१॥

जहाँ अपने प्रमथगणोंके साथ आदिपुरुष अनिर्वचनीय भगवान् सदाशिव नित्य उत्सवमें संलग्न होकर सदा प्रमुदित रहते हैं। जो भगवान् शंकरके भक्त हैं, वे उस सुन्दर शिवलोकको प्राप्तकर करुणानिधि देवाधिदेव भगवान् शंकरकी कृपासे आनन्दित रहते हैं॥ ९—१२॥

शिवलोकसे एक लाख योजन ऊपर विष्णुलोक अवस्थित है, जहाँ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए भगवान् विष्णु भगवती लक्ष्मीके साथ विराजमान हैं। भगवान् कमलाधिपतिका वह लोक भी अवर्णनीय है। वह दिव्य ज्योतिसे प्रकाशमान रहता है और नाना प्रकारके रत्नराशिसे शोभायमान है। जो भगवान् विष्णुकी भक्तिमें संलग्न हैं, वे भगवान् विष्णुके प्रभावसे उनका सालोक्य प्राप्त करके देवता, गन्धर्व तथा किन्नरोंके साथ उस विष्णुलोकमें नित्य परम आनन्दित रहते हैं। वहाँ पक्षिराज गरुड भगवान् विष्णुके द्वारपाल हैं॥ १३—१६॥

शिवलोकके वामभागमें मनोरम गौरीलोक है, जो विचित्र मणिमाणिक्यके समूहोंसे अति शोभित है॥ १७॥ वहाँ जो भगवती जगदम्बाकी वैदिकी मूर्ति है, वह दस भुजाओंसे युक्त, अतसी (अलसी)-के पुष्पके समान प्रभावाली और सिंहके पीठपर आसीन है। वे देवी सोलह द्वारोंसे सुशोभित रम्य मन्दिरमें अवस्थित हैं। उस मन्दिरके स्तम्भ विभिन्न रत्नोंसे जटित तथा वह मन्दिर पताकाओंसे सुशोभित है। स्तुति करते हुए देवता और मुनीन्द्रोंसे वह सर्वदा सुशोभित रहता है तथा असंख्य सेविकावृन्द और भैरव उसकी रक्षा करते हैं। सभी ब्रह्माण्डवासी ब्रह्मादि देवता तथा भगवान् शंकर और विष्णु वहाँ आकर उन जगदम्बिकाकी पूजा करते हैं॥ १८—२१॥

सर्वैर्वैकुण्ठलोकैश्च शुद्धज्योतिर्मयप्रभे।
गोलोके राधया यत्र कृष्णो विहरते प्रभुः॥ २२॥

विचित्ररत्नसंनद्धपुरे कल्पद्रुमावृते।
ब्रह्मर्षिवेदध्वनिभिः परितः प्रतिनादिते॥ २३॥

रत्नस्तम्भसमुद्दीप्ते मन्दिरे भगवान् स्वयम्।
आत्मेच्छां रमते देव्या राधया द्विभुजो हरिः॥ २४॥

तत ऊर्ध्वं रघुश्रेष्ठ पञ्चाशत्कोटियोजनम्।
स्थानमस्ति महादेव्या यत्र देवी सुगोपिता॥ २५॥

यत्कलाकोटिकोट्यांशा राधा कृष्णस्य गेहिनी।
स्वयं विहरते ब्रह्मविष्णुरुद्रादिदुर्लभा॥ २६॥

वेदागमस्मृतिषु यत्परिपूर्णमेकं
वेदान्तकादिविविधेषु च दर्शनेषु।
ब्रह्मेतिनिश्चितमनेकविधप्रमाणैः
साक्षात्तु तद्भगवती खलु सैव नित्या॥ २७॥

नित्यातिसौख्यविरहाखिलनित्यदेहा
विश्वाश्रया रघुपते परमापि सैव।
तस्याः पदाम्बुजनखद्युतिमेव सर्वे
नानाकठोरतपसा परिलोकयन्ति॥ २८॥

ध्यायन्ति चानिशमहोऽखिलयोगवन्द्यां
तद्ब्रह्मचाकृतिविहीनमपि ब्रुवन्ति।
तस्या निजांशजनितस्य महेश्वरस्य
विष्णोश्च यत्परिहितं श्रुतिभिश्च तत्त्वम्॥ २९॥

तत्त्वांशजत्वविषया खलु तद्विराजन्
पारं परं रघुपते न पुनस्तु साक्षात्॥ ३०॥

सभी वैकुण्ठलोकोंसे विशिष्ट, दिव्य ज्योतिसे सम्पन्न प्रभावाले गोलोकमें जहाँ भगवान् कृष्ण भगवती राधाके साथ विहार करते हैं, वह गोलोक श्रेष्ठ रत्नराशिसे सुशोभित तथा कल्पवृक्षोंसे आच्छादित है और वह ब्रह्मर्षिगणोंके द्वारा चारों ओर की गयी वेदपाठकी प्रतिध्वनियोंसे निनादित है। उस लोकमें रत्नजटित स्तम्भोंसे सुशोभित मन्दिरमें द्विभुज भगवान् हरि स्वयं अपनी इच्छासे देवी राधाके साथ रमण करते हैं॥ २२—२४॥

रघुश्रेष्ठ! उससे पचास करोड़ योजन ऊपर महादेवीका दिव्य लोक है, जहाँ देवी जगदम्बा अत्यन्त गुप्तरूपसे विराजमान रहती हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी अर्धाङ्गिनी राधाजी भी जिनकी कलाके करोड़वेंके करोड़वें अंशवाली हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ देवी स्वयं वहाँ विहार करती हैं॥ २५-२६॥

वेद, आगम, स्मृतियों तथा वेदान्त आदि विविध दर्शनोंमें अनेक प्रमाणोंसे निश्चित जो एक परिपूर्ण ब्रह्मतत्त्व है, वही साक्षात् नित्या भगवती हैं॥ २७॥ रघुपते! वे नित्य अति सुखदायिनी, एकान्तवासिनी तथा सभी देहोंमें नित्य विराजमान हैं। वे ही विश्वकी आश्रयदात्री और पराशक्ति हैं। सभी जन विविध कठोर तपस्यासे उनके चरणकमलकी नखज्योतिका दर्शन करते हैं॥ २८॥ आश्चर्य है कि जिन जगदम्बाका समस्त योगसाधनाओंके द्वारा निरन्तर वन्दन और ध्यान किया जाता है, उन्हें ही योगिजन निराकार ब्रह्म भी कहते हैं। उनके निजांशसे उत्पन्न भगवान् शिव और विष्णुतत्त्वकी जो श्रुतियोंमें चर्चा है, उनका भी भगवतीके अंशसे उत्पन्न होना आश्चर्यका ही विषय है। रघुपते! यह पारम्परिक व्यवस्था है साक्षात् तत्त्व नहीं॥ २९-३०॥

यथाब्धिसंगतागङ्गा भिद्यते न समुद्रतः।
तथा ब्रह्मांशजातास्ते भिद्यन्ते ब्रह्मणोऽपि न॥ ३१ ॥

सैव संजायते विश्वं सैव सम्पालयत्यपि।
सैव संहरते प्रान्ते नान्यत्तत्र तु कारणम्॥ ३२ ॥

यथा कृत्रिमहस्त्यादिः परिस्पन्दादिहेतुना।
प्राधान्यात्कुहकस्यैव तथा तस्याश्च हेतुता॥ ३३ ॥

ये तु तामतिदुर्गम्यां सर्वेषां मूलकारणम्।
न जानन्ति महामोहात्तत्तद्ब्रह्मादिदैवताम्॥ ३४ ॥

सृष्ट्यादिहेतुं जानन्ति प्राधान्याद्रघुनन्दन।
यथा घटस्य हेतुं तं कुलालमपहाय वै॥ ३५ ॥

प्राधान्यात्कल्प्यते दोषाद्धटादिषु विमूढधीः।
तथैवान्यत्रसृष्ट्यादिहेतुतायाश्च कल्पना॥ ३६ ॥

प्राधान्येन रघुश्रेष्ठ मुग्धानामिह मायया।
जगदाधारभूता या सर्वरक्षणकारिणी॥ ३७ ॥

परमा मोक्षदा सैव मोहबन्धप्रवर्तिनी।
सैव सिन्धौ निमग्नस्य विष्णोः संरक्षणाय वै॥ ३८ ॥

वटपत्रमयी भूत्वा तं दधार महाम्भसि।
सैव चैतन्यरूपा च तया च रहितं जगत्॥ ३९ ॥

विभाति शववत्सर्वं तद्युक्तं च रघूद्वह।
चैतन्यं समवाप्नोति स्वयन्त्रं यन्त्रिणा यथा॥ ४० ॥

जिस प्रकार गङ्गाजी सागरमें मिलकर सागरसे अलग नहीं होतीं, उसी प्रकार ब्रह्मके अंशसे उत्पन्न वे ब्रह्मादि देव भी उस ब्रह्मसे अलग नहीं होते। वे ही जगदम्बा विश्वके रूपमें प्रकट होती हैं, वे ही उसका पालन करती हैं और अन्तमें वे ही संहार करती हैं, इसमें दूसरा कोई कारण नहीं है। जिस प्रकार काष्ठके बने कृत्रिम हाथी आदिमें हिलने-डुलनेकी प्रतीति ऐन्द्रजालिकके प्राधान्यसे होती है, उसी प्रकार इस जगत्‌की समस्त चेष्टाओंमें वे भगवती ही एकमात्र कारण हैं॥ ३१—३३॥

जो लोग महामोहरूपी घोर अन्धकारमें फँसकर सभीकी मूल कारणस्वरूपा ब्रह्मादि देवताओंकी भी देवता, अति दुर्गम ब्रह्मस्वरूपा देवी जगदम्बाको नहीं जानते हैं; रघुनन्दन! वे लोग केवल ब्रह्मादि देवताओंको ही सृष्टि आदिमें प्रधानरूपसे कारण मानते हैं। जिस प्रकार मूढ़ व्यक्ति दोषके कारण घटके निर्माणमें मूलभूत कारण उस कुम्हारको छोड़कर प्रधानरूपसे उसके अन्य कारक (जैसे मिट्टी, चाक)-को ढूँढ़ते रहते हैं, उसी प्रकार रघुश्रेष्ठ! इस जगत्‌में मायासे मोहित होनेके कारण विमूढ़ व्यक्ति जगत्‌के सृष्टि, पालन एवं संहारमें प्रधानतासे अन्यत्र कारणकी कल्पना करते हैं॥ ३४—३६½॥

इस संसारकी आधारस्वरूपा, सभीकी रक्षा करनेवाली जो जगदम्बा श्रेष्ठ मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं; वे ही मोहपाशमें बाँधनेवाली भी हैं। उन्हीं जगदम्बाने सागरमें निमग्न भगवान् विष्णुकी रक्षाके लिये बरगदके पत्तेके रूपमें होकर उस महासमुद्रमें उन्हें धारण किया॥ ३७-३८½॥ रघूद्वह! वे ही देवी जगदम्बा चेतनारूपा हैं। उनसे रहित सम्पूर्ण जगत् शवके समान प्रतीत होता है, उनसे युक्त होकर यह जगत् वैसे ही चेतनायुक्त प्रतीत होता है, जैसे कि यन्त्रीकी चेतनासे यन्त्र चेतनायुक्त प्रतीत होता है॥ ३९-४०॥

सैव कृतेच्छया नित्यं लीलया परमं शिवम्।
स्वमूर्त्यन्तरमेवैका स्वस्मिन् विहरते सदा॥ ४१॥
सैव दुर्गतिमापन्नान्निस्तारयति दुर्गतान्।
तस्मात्सा प्रोच्यते लोके दुर्गा दुर्गतिनाशिनी॥ ४२॥
मन्दभाग्योऽपि संस्मृत्य तस्या नामवराक्षरम्।
सौभाग्यं समवाप्नोति तस्मात्सा परमेश्वरी॥ ४३॥
मन्दभाग्यपरित्रात्री प्रोच्यते वेदवादिभिः।
सैव देवी परा विद्या लोकानां रघुनन्दन॥ ४४॥
चतुर्वर्गप्रदा सर्वविपक्षक्षयकारिणी।
शृणु संकीर्तये वत्स स्थानं तस्यास्तु यादृशम्॥ ४५॥
रत्नद्वीपं महाबाहो सुधासागरवेष्टितम्।
कल्पद्रुमसमाकीर्णललितं चारुहाटकैः॥ ४६॥
वसन्तः सर्वदा तत्र नान्यर्तुर्वर्तते सदा।
नदी त्रिपथगा तत्र सुखाम्बुरूपधारिणी॥ ४७॥
नानामणिनिभास्तत्र पक्षिणश्चारुनिःस्वनाः।
देवांशा असुरास्ते तु पुण्यात्मानो महामते॥ ४८॥
गायन्ति सर्वदा देवीगुणवेदाभिभाषितम्।
कालोचितेन रागेण मधुरध्वनिभिर्मुदा॥ ४९॥
सुगन्धः सर्वदा वाति वायुर्दक्षिणसम्भवः।
मन्दं मन्दं रघुश्रेष्ठ परमाह्लाददायकः॥ ५०॥
भवानीलोकसंस्थानमेतत्पुण्यानुसारिणः।
सालोक्यं समनुप्राप्ताः सन्ति ते तत्र देहिनः॥ ५१॥
नित्यानन्दमयास्ते तु नित्यविज्ञानशालिनः।
तेषां देवीसमा नार्यः पुमांसो भैरवोपमाः॥ ५२॥
सर्वेषां मन्दिरं चारुरत्नहेमपरिष्कृतम्।
सुरम्यरत्नजालैस्तु रचितैस्तोरणैरलम्॥ ५३॥

वे ही देवी जगदम्बा नित्य अपनी इच्छासे लीलापूर्वक देवाधिदेव भगवान् शिवके रूपमें होकर सदा अपनेमें ही विहार करती हैं। वे ही देवी जगदम्बा दुर्गतिप्राप्त लोगोंका निस्तारण करती हैं, इसीलिये संसारमें वे दुर्गा दुर्गतिनाशिनीके नामसे कही जाती हैं॥ ४१-४२॥

मन्दभाग्यवाला व्यक्ति भी उनके नामके श्रेष्ठ अक्षरोंका स्मरण कर सौभाग्य प्राप्त करता है, इसीलिये वे परमेश्वरीके नामसे जानी जाती हैं। वेदज्ञोंके द्वारा वे मन्दभाग्यवालोंका परित्राण करनेवाली कही जाती हैं। रघुनन्दन! वे ही देवी पराविद्या हैं और प्राणियोंको चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) देनेवाली तथा सभी विरोधियोंका नाश करनेवाली हैं॥ ४३-४४$\frac{1}{2}$॥

वत्स! उनका लोक जैसा है, उसका सम्यक् वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। महाबाहो! उनका लोक रत्नद्वीपमय है और अमृतसागरसे घिरा हुआ है। वह कल्पवृक्षोंसे व्याप्त तथा सुन्दर बाजारोंसे सुशोभित है। वहाँ सर्वदा वसन्त-ऋतु ही रहती है, दूसरी ऋतु वहाँ नहीं आती। सुख प्रदान करनेवाले जलका रूप धारण करके गङ्गा नदी वहाँ बहती है॥ ४५—४७॥ महामते! वहाँ मनोहर ध्वनि करनेवाले विभिन्न प्रकारकी मणियोंके समान प्रतीत होनेवाले पक्षी, देवांशसे उत्पन्न पुण्यात्माजन तथा असुरगण मधुर ध्वनियोंसे समयोचित रागमें वेदोंके अन्तर्गत वर्णित देवीके गुणोंका आनन्दित होकर सर्वदा गान करते रहते हैं॥ ४८-४९॥ रघुश्रेष्ठ! वहाँ मलय पर्वतसे उठी हुई परम सुखदायक शीतल, सुगन्धित वायु सर्वदा मन्द-मन्द बहती रहती है॥ ५०॥

अपने पुण्यके अनुसार जिन्होंने उनकी सालोक्य मुक्ति प्राप्त कर ली है, वे ही प्राणी इस देवीलोकमें निवास करते हैं, वे नित्य आनन्दस्वरूप तथा नित्य विज्ञानसे परिपूर्ण रहते हैं। उनमें स्त्रियाँ देवीके समान और पुरुष भैरवके समान हैं॥ ५१-५२॥ देवीलोकमें रहनेवाले सभीके भवन सुन्दर रत्न और सुवर्णसे अलंकृत हैं, वे भवन मनोहर रत्नोंके जालोंसे रचित, अनेक तोरणोंसे सुशोभित हैं॥ ५३॥

यैर्गीतनृत्यवाद्यैश्च तोषिता जगदम्बिका।
ते तत्स्थानमनुप्राप्य नित्यं मुदितमानसाः॥ ५४॥
गायन्ति चैव नृत्यन्ति वादयन्ति समुत्सुकाः।
एवमानन्दसंदोहमयं तद्रघुनन्दन॥ ५५॥
भगवन् भगवत्यास्तु वाचातीतं रघूद्वह।
तत्र देव्या पुरं चित्रं रत्नप्राकारतोरणम्॥ ५६॥
दीप्तं हि चन्द्रकान्त्यादिमणिभिः कौस्तुभैरलम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारं भैरवैरुपलक्षितम्॥ ५७॥
रत्नदण्डधरैः शूलधारिभिर्भीमलोचनैः।
भैरव्यः शतशस्तत्र द्वाररक्षणतत्पराः॥ ५८॥
कुर्वन्त्यो गल्लवाद्यानि धावन्त्यो दण्डपाणयः।
दोधूयमाना विविधाः पताकास्तत्र राघव॥ ५९॥
ध्वजाश्चापि मनोज्ञाश्च विराजन्ते सुनिर्मलाः।
तन्मध्ये सन्ति चित्राणि चत्वराणि बहूनि च॥ ६०॥
प्रासादैर्वेष्ठितान्येव तत्रापि द्वारपालकाः।
मध्ये त्वन्तःपुरं देव्यास्तत्र द्वारि गणाधिपः॥ ६१॥
षडाननश्च देव्यास्तौ पुत्रौ रघुकुलोद्भव।
इच्छन्तौ दर्शनं देव्यास्तत्र ध्यानपरायणौ॥ ६२॥
ब्रह्माण्डकोटिकोटिस्था ब्रह्माणः कोटिकोटयः।
कोटयो हलहस्ताश्च कोटयो हरयः शिवाः॥ ६३॥
सन्ति राम महाबाहो किमन्यच्च ब्रवीमि ते।
तस्मिन्नन्तःपुरे रम्ये विचित्रमणिमण्डपे॥ ६४॥
ज्वलद्रत्नमये स्तम्भे तोरणे मौक्तिकोज्ज्वले।
रत्नप्रदीपावलिभिः प्रसन्नेऽपि दिगन्तरे॥ ६५॥
रत्नसिंहासने रम्ये विद्युत्पुञ्जसमप्रभे।
तप्तकाञ्चनसंकाशे भ्राजत्सूर्यसमप्रभे॥ ६६॥
भास्वच्छरन्निशानाथकोटिकान्तिशुभानना।
समास्ते त्रिजगन्माता महादुर्गा रघूद्वह॥ ६७॥

जिन लोगोंने गीत, नृत्य और वाद्यसे देवी जगदम्बाको सन्तुष्ट किया है, वे उनके धामको प्राप्तकर नित्य आनन्दित होकर उत्सुकतापूर्वक नाचते-गाते तथा बजाते हैं। इस प्रकार रघूद्वह! वह लोक आनन्दराशिमय है। रत्ननिर्मित प्राकार तथा तोरणोंसे युक्त भगवतीका वह अद्भुत लोक अवर्णनीय है॥ ५४—५६॥ वह चन्द्रकान्त आदि मणियोंसे और पर्याप्त कौस्तुभमणियोंसे प्रकाशमान है, चारों दिशाओंमें चार द्वार हैं जहाँ रत्नमय दण्ड तथा शूल धारण किये हुए भयानक नेत्रोंवाले भैरवगण विद्यमान रहते हैं। देवी जगदम्बाके द्वारकी रक्षामें तत्पर सैकड़ों भैरवियाँ गाल बजाती हुई हाथमें दण्ड लेकर दौड़ती रहती हैं। राघव! वहाँ मनोहर तथा स्वच्छ विभिन्न पताकाएँ और ध्वजाएँ फहराती हुई सुशोभित हैं॥ ५७—५९ १/२॥ नगरके मध्यमें बहुत-से सुन्दर चबूतरे बने हुए हैं और वे ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंसे घिरे हुए हैं। उन अट्टालिकाओंपर भी द्वारपाल स्थित हैं। उनके मध्यमें देवीका अन्तःपुर विद्यमान है। रघुकुलोद्भव! वहाँ द्वारपर स्थित गणोंके स्वामी गणेश तथा षडानन—देवीके वे दोनों पुत्र देवीके दर्शनकी इच्छा करते हुए ध्यानमग्न रहते हैं॥ ६०—६२॥

राम! महाबाहो! उस देवीलोकमें वहाँ करोड़ों-करोड़ ब्रह्माण्डोंमें स्थित रहनेवाले करोड़ों-करोड़ ब्रह्मा, करोड़ों बलराम, करोड़ों विष्णु और करोड़ों शिव हैं। आपसे और अधिक क्या कहूँ?॥ ६३ १/२॥ रघूद्वह! उस रमणीय अन्तःपुरमें विचित्र मणियोंसे जटित मण्डप सुशोभित है, जिसके स्तम्भ रत्नोंसे प्रकाशित हैं और मोतियोंकी उज्ज्वल प्रभा जिसके तोरणोंपर बिखर रही है। रत्नदीपमालिकाओंसे जहाँ दिशाएँ उद्भासित हैं, वहाँ तप्त सुवर्ण, चमकते हुए सूर्य और विद्युत्पुञ्जके समान प्रभावाला रत्नमय रमणीय सिंहासन है जिसपर देदीप्यमान, शरत्कालीन करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिसे युक्त मुखवाली त्रिलोकजननी महादुर्गा विराजमान हैं॥ ६४—६७॥

भास्वत्स्वर्णसुसंनद्धस्यमन्तकसहस्रकैः ।
अनल्पकौस्तुभैश्चापि राजमाना किरीटिनी ॥ ६८ ॥

महामाणिक्यहारौघरुचिशोभितवक्षसी ।
सुचारुदशनस्मेररुचिरा श्यामलोचना ॥ ६९ ॥

कर्णालंकरणैश्चित्रैर्नासिकाभरणैस्तथा ।
शशाङ्ककलयातीव राजमानमुखाम्बुजा ॥ ७० ॥

शुद्धरत्नमयैर्नानाभूषणैरभिशोभिता ।
चतुर्भिर्बाहुभिर्युक्ता महासिंहोपरि स्थिता ॥ ७१ ॥

रक्तवस्त्रपरीधाना क्वणत्काञ्चीसुमध्यमा ।
ब्रह्मेशविष्णुसंवन्द्यसुचारुपदपङ्कजा ॥ ७२ ॥

पुरस्तात्स्तुतिवाक्यैस्तु महाब्रह्मा महेश्वरः ।
महाविष्णुश्च संस्तौति प्राञ्जलिस्तां महामते ॥ ७३ ॥

चामरेणाभिशुक्लेन जया च विजया सदा ।
संवीजयन्त्यौ तिष्ठन्त्यौ तत्पार्श्वे सव्यदक्षतः ॥ ७४ ॥

चित्रव्यजनहस्ता च लक्ष्मीर्दक्षिणमास्थिता ।
कुङ्कुमारुणगन्धादिसौगन्ध्यं प्रति यच्छति ॥ ७५ ॥

वीणया तु स्वयं वाणी संस्थिता वामपार्श्वतः ।
संगायति गुणं देव्या वेदागमसुसम्मतम् ॥ ७६ ॥

शुद्धरत्नमये पात्रे सुधामादाय राघव ।
अथ वाणीप्रभृतयो यच्छन्ति प्रियकाम्यया ॥ ७७ ॥

नारदाद्यैर्मुनिगणैरर्चितं वेदगोपितम् ।
गीयते पुरतो देव्या भक्त्या गद्गदया गिरा ॥ ७८ ॥

योगिन्याद्यास्तु संगृह्य महामाणिक्यनिर्मितम् ।
सताम्बूलं तदाधारं ददुर्देव्यै प्रयत्नतः ॥ ७९ ॥

भैरवप्रमुखा देवा रत्नदण्डासिपाणयः ।
सन्त्यनेकविधास्तत्र द्वारिणः कतिकोटयः ॥ ८० ॥

चमकते हुए सुवर्णसे रचित, हजारों स्यमन्तक तथा असंख्य कौस्तुभमणियोंसे खचित किरीटको धारण करनेवाली वे महादेवी सुशोभित हैं ॥ ६८ ॥ श्रेष्ठ माणिक्योंसे जड़े हारसमूहोंकी कान्तिसे उनका वक्ष:स्थल सुशोभित है तथा श्याम आभासे युक्त नेत्रप्रान्तवाली उन भगवतीका सुन्दर मुखमण्डल दन्तपङ्क्ति तथा मुसकानसे सुशोभित है। सुन्दर कर्णाभूषणों तथा नासिकाभरणोंसे युक्त उनका मुखकमल चन्द्रकलासे अतीव सुशोभित है ॥ ६९-७० ॥

महामते! वे शुद्ध रत्नोंसे निर्मित विभिन्न प्रकारके अलङ्कारोंसे सुशोभित तथा चार भुजाओंवाली हैं और विशाल सिंहपर आसीन हैं। उन्होंने लाल रंगके वस्त्र धारण कर रखे हैं और उनकी सुन्दर कमरमें करधनी झंकृत हो रही है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनके सुन्दर चरणकमलोंकी वन्दना कर रहे हैं। उनके सामने खड़े होकर हाथ जोड़े महाब्रह्मा, महाविष्णु और महेश्वर सुन्दर स्तुतिवाक्योंसे उनका स्तवन कर रहे हैं ॥ ७१—७३ ॥

उनके वामभाग तथा दक्षिणभागमें जया और विजया अत्यन्त शुभ्र चँवर डुलाती हुई खड़ी रहती हैं। उनके दक्षिणभागमें देवी लक्ष्मी सुन्दर पंखा हाथमें लिये स्थित हैं और कुमकुम आदि अरुणवर्णके सुगन्धित द्रव्य उन्हें प्रदान करती हैं। देवी जगदम्बाके वामभागमें स्थित होकर स्वयं वाग्देवी सरस्वती अपनी वीणासे वेदागमसम्मत देवीके गुणोंको गायनके रूपमें प्रस्तुत करती हैं। राघव! इस प्रकार सरस्वती आदि देवियाँ भगवतीकी प्रसन्नताप्राप्तिकी कामनासे शुद्ध रत्नमय पात्रमें अमृत भरकर देवी जगदम्बाको प्रदान करती हैं। नारदादि मुनिगण भक्तिपूर्वक गद्गद स्वरमें देवी जगदम्बाकी वेदोक्त रहस्यात्मक पूजाविधानका उनके समक्ष खड़े होकर गान करते हैं। चौंसठ योगिनियाँ महामाणिक्य मणिसे निर्मित ताम्बूलयुक्त ताम्बूलपात्र लेकर देवी जगदम्बाको यत्नपूर्वक प्रदान करती हैं। करोड़ों भैरव आदि प्रमुख अनेक देवगण रत्नखचित दण्ड और खड्ग हाथमें लेकर वहाँ द्वारपालके रूपमें खड़े रहते हैं ॥ ७४—८० ॥

एवं तदतुलं देव्या ऐश्वर्यं रघुनन्दन।
किमहं ते प्रवक्ष्यामि चतुर्भिर्वदनैः प्रभो॥ ८१॥

अलं वर्षसहस्राणां कोटिभिस्त्र्यम्बकः प्रभुः।
श्रुतयश्च प्रयच्छन्ति तस्या वाक्यमया गुणाः॥ ८२॥

सावित्री चैव गायत्री प्रत्यक्षं चांशसम्भवाः।
इन्द्रादयो लोकपाला नानाब्रह्माण्डवासिनः॥ ८३॥

इच्छन्तो दर्शनं देव्याः पुरबाह्यसमागताः।
भक्त्यार्चनरता ये तु ते त्वरान्वितदर्शनाः॥ ८४॥

अन्योन्यदुर्गमं राम दर्शनं तत्र पुण्यदम्।
नाधिपत्यविचारोऽस्ति न वा वर्णविवेचनम्॥ ८५॥

तस्यां यस्य मतिः पुण्या तस्यैव सुलभा तु सा।
इत्युक्ता सा रघुश्रेष्ठ मूर्तिस्तस्याः सुतान्त्रिकी॥ ८६॥

उक्तं च नगरं रम्यं यथा पृष्टस्त्वया प्रभो।
पौराणिकी तु या मूर्तिर्देवीदशभुजापरा॥ ८७॥

तां च मूर्तिं विनिर्माय मृण्मयीं सिंहवाहिनीम्।
पूजयिष्यामि संग्रामे जयलाभाय ते ध्रुवम्॥ ८८॥

बोधयिष्यामि चैतस्यां नवम्यां परिपूज्य च।
बिल्ववृक्षे महादेवीं महाभयनिवारिणीम्॥ ८९॥

अत्र त्वया वृतो राम भगवत्यास्तु पूजने।
अद्यारभ्य नवम्यां तु कृष्णायामार्द्रयोगतः॥ ९०॥

प्रबोध्य प्रत्यहं यावद्राक्षसेन्द्रं हनिष्यसि।
तावत्प्रपूजयिष्यामि युद्धे ते जयकाम्यया॥ ९१॥

ईप्स्व राम शुचिर्भूत्वा स्तुत्वा देवीं समाहितः।
युध्यस्व राक्षसैः सार्धं जयं प्राप्स्यसि राघव॥ ९२॥

रघुनन्दन! प्रभो! इस प्रकार देवी जगदम्बाके अतुलनीय ऐश्वर्यका वर्णन मैं चार मुखोंसे आपसे कहाँतक करूँ। जिसे कहनेमें करोड़ों हजार वर्षोंमें भी भगवान् त्र्यम्बक समर्थ नहीं हुए। श्रुतियाँ उनके गुणोंकी महिमा छन्दोबद्ध करके प्रस्तुत करती हैं॥ ८१-८२॥

उनके अंशसे उत्पन्न सावित्री तथा गायत्री और इन्द्रादि लोकपाल एवं अनेक ब्रह्माण्डोंमें निवास करनेवाले उनके दर्शनकी इच्छासे देवीलोकके बाहर एकत्रित रहते हैं। जो उनकी भक्ति और पूजामें संलग्न हैं, वे शीघ्र ही उनका दर्शन प्राप्त कर लेते हैं, किंतु राम! उनका पुण्यदायक दर्शन दूसरेके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। उनके दर्शनमें आधिपत्य अथवा वर्णाश्रमका कोई विचार नहीं है। जिनकी पुण्यमयी बुद्धि उन देवीकी भक्तिमें लगी रहती है; उनके लिये ही वे सुलभ हैं॥ ८३—८५½॥

रघुश्रेष्ठ! प्रभो! तन्त्रोंमें वर्णित उनकी दिव्य मूर्ति तथा उनके दिव्य लोकके विषयमें जिस प्रकार आपने पूछा था, उसे मैंने बता दिया॥ ८६½॥ दस भुजाओंसे युक्त तथा सिंहपर आसीन देवीकी जो पुराणोंमें वर्णित दूसरी मूर्ति है, मैं उसे मिट्टीकी प्रतिमाके रूपमें बनाकर युद्धमें आपकी विजयकी कामनासे निश्चय ही पूजा करूँगा। उस महाभयनिवारिणी देवीका इसी नवमी तिथिको बिल्ववृक्षके नीचे पूजा कर उनका प्रबोधन करूँगा॥ ८७—८९॥

राम! देवीके पूजनके लिये आपने मेरा वरण कर लिया है, आज आर्द्रा नक्षत्रके योगमें पूजन आरम्भ कर कृष्णपक्षकी नवमीको भगवतीका प्रबोधन करके जबतक आप राक्षसराज रावणका वध नहीं करेंगे, तबतक युद्धमें आपकी विजयकी कामनासे प्रतिदिन उनकी पूजा करूँगा॥ ९०-९१॥ राम! राघव! आप पवित्र होकर ध्यानपूर्वक देवीका भक्तिसे स्तवन करके राक्षसोंके साथ युद्ध करें, आपकी विजय होगी॥ ९२॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्तः स भगवान् देव्याः सम्बोधनाय वै।
समुद्रस्योत्तरे तीरे बिल्ववृक्षस्य सन्निधिम्॥ ९३॥

प्रययौ त्रिदशैः सार्धं सर्वलोकपितामहः।
रामस्तु प्राञ्जलिर्भूत्वा चोत्तराभिमुखस्ततः।
तुष्टाव जयलाभाय संग्रामे जयदायिनीम्॥ ९४॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार कहे जानेपर भगवान् श्रीराम देवीके प्रबोधनके लिये समुद्रके उत्तरी तटपर पितामह ब्रह्मा तथा अन्य सभी देवताओंके साथ बिल्ववृक्षके निकट गये। तब भगवान् श्रीरामने युद्धमें विजयी होनेके लिये उत्तराभिमुख हो हाथ जोड़कर जयदायिनी माँ जगदम्बाकी स्तुति की॥ ९३-९४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे दुर्गालोकवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'दुर्गालोकवर्णन' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

श्रीरामद्वारा भगवतीकी स्तुति, प्रसन्न होकर जगदम्बाद्वारा विजयकी आकाशवाणी करना, कुम्भकर्णका युद्धभूमिमें प्रवेश तथा श्रीरामके साथ उसका घोर युद्ध

श्रीराम उवाच

नमस्ते त्रिजगद्वन्द्ये संग्रामे जयदायिनि।
प्रसीद विजयं देहि कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥ १॥

सर्वशक्तिमये दुष्टरिपुनिग्रहकारिणि।
दुष्टजृम्भिणि संग्रामे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ २॥

त्वमेका परमा शक्तिः सर्वभूतेष्ववस्थिता।



दुष्टं संहर संग्रामे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

रणप्रिये रक्तभक्षे मांसभक्षणकारिणि।
प्रपन्नार्तिहरे युद्धे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ४॥

खट्वाङ्गासिकरे मुण्डमालाद्योतितविग्रहे।
ये त्वां स्मरन्ति दुर्गेषु तेषां दुःखहरा भव॥ ५॥

श्रीरामजी बोले—त्रिलोकवन्दनीया! युद्धमें विजय देनेवाली! कात्यायनि! आपको बार-बार नमस्कार है। मुझपर प्रसन्न हों और मुझे विजय प्रदान करें। सर्वशक्तिमयी, दुष्ट शत्रुओंका निग्रह करनेवाली, दुष्टोंका संहार करनेवाली भगवती! संग्राममें मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है। आप ही सभी प्राणियोंमें निवास करनेवाली परा शक्ति हैं, संग्राममें दुष्ट राक्षसका संहार करें और मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है। युद्धप्रिये! शरणागतकी पीड़ा हरनेवाली! [जगदम्बा!] युद्धमें मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है॥ १—४॥

हाथमें खट्वाङ्ग तथा खड्ग धारण करनेवाली एवं मुण्डमालासे सुशोभित विग्रहवाली भगवती! विषम परिस्थितियोंमें जो आपका स्मरण करते हैं, उनका दुःख हरण कीजिये। शरणागत-

त्वत्पादपङ्कजाद्दैन्यं नमस्ते शरणप्रिये।
विनाशय रणे शत्रून् जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ६ ॥

अचिन्त्यविक्रमेऽचिन्त्यरूपसौन्दर्यशालिनि ।
अचिन्त्यचरितेऽचिन्त्ये जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ७ ॥

ये त्वां स्मरन्ति दुर्गेषु देवीं दुर्गविनाशिनीम्।
नावसीदन्ति दुर्गेषु जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ८ ॥

महिषासृक्प्रिये संख्ये महिषासुरमर्दिनि।
शरण्ये गिरिकन्ये मे जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ९ ॥

प्रसन्नवदने चण्डि चण्डासुरविमर्दिनि।
संग्रामे विजयं देहि शत्रूञ्जहि नमोऽस्तु ते॥ १० ॥

रक्ताक्षि रक्तदशने रक्तचर्चितगात्रके।
रक्तबीजनिहन्त्री त्वं जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ ११ ॥

निशुम्भशुम्भसंहन्त्रि विश्वकर्त्रि सुरेश्वरि।
जहि शत्रून् रणे नित्यं जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १२ ॥

भवान्येतज्जगत्सर्वं त्वं पालयसि सर्वदा।
रक्ष विश्वमिदं मातर्हत्वैतान् दुष्टराक्षसान्॥ १३ ॥

त्वं हि सर्वगता शक्तिर्दुष्टमर्दनकारिणि।
प्रसीद जगतां मातर्जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १४ ॥

दुर्वृत्तवृन्ददमनि सद्वृत्तपरिपालिनि।
निपातय रणे शत्रूञ्जयं देहि नमोऽस्तु ते॥ १५ ॥

कात्यायनि जगन्मातः प्रपन्नार्तिहरे शिवे।
संग्रामे विजयं देहि भयेभ्यः पाहि सर्वदा॥ १६ ॥

प्रिये! आप अपने चरणकमलके अनुग्रहसे दीनताका नाश कीजिये, युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंका विनाश कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है, पुनः नमस्कार है। आपका पराक्रम, रूप, सौन्दर्य तथा चरित्र अपरिमित होनेके कारण सम्पूर्ण रूपसे चिन्तनका विषय बन नहीं सकता। आप स्वयं भी अचिन्त्य हैं। मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। जो लोग विपत्तियोंमें दुर्गतिका नाश करनेवाली आप भगवतीका स्मरण करते हैं, वे विषम परिस्थितियोंमें दुःखी नहीं होते। आप मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है॥ ५—८॥

युद्धमें महिषासुरका मर्दन करनेवाली तथा शरणग्रहण करनेयोग्य हिमालयसुता! आप मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। चण्डासुरका नाश करनेवाली प्रसन्नमुखी चण्डिके! युद्धमें शत्रुओंका संहार कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। रक्तवर्णके नेत्रवाली, रक्तरञ्जित दन्तपङ्क्तिवाली तथा रक्तसे लिप्त शरीरवाली भगवती! आप रक्तबीजका संहार करनेवाली हैं, आप मुझे विजय प्रदान करें, आपको नमस्कार है। निशुम्भ तथा शुम्भका संहार करनेवाली, जगत्‌की सृष्टि करनेवाली सुरेश्वरी! आप नित्य युद्धमें शत्रुओंका संहार कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है॥ ९—१२॥ भवानी! आप सर्वदा इस सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करती हैं। माता! आप इन दुष्ट राक्षसोंको मारकर इस विश्वकी रक्षा कीजिये। दुष्टोंका संहार करनेवाली भगवती! आप सबमें विद्यमान रहनेवाली शक्तिस्वरूपा हैं। जगन्माता! प्रसन्न होइये, मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। दुराचारियोंका दमन करनेवाली तथा सदाचारियोंका सम्यक् पालन करनेवाली भगवती! युद्धमें शत्रुओंका संहार कीजिये और मुझे विजय प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाली, कल्याण प्रदान करनेवाली जगन्माता कात्यायनी! युद्धमें मुझे विजय प्रदान कीजिये और भयसे सदा रक्षा कीजिये॥ १३—१६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं संस्तुवतस्तस्य श्रीरामस्य महात्मनः।
बभूवाकाशतो वाक्यं सहसा मुनिसत्तम॥ १७॥

मा भैस्त्वं रघुशार्दूल महाबलपराक्रमान्।
विजेष्यस्यचिरेणैव लङ्कां हत्वा निशाचरान्॥ १८॥

अहं सम्पूजिता बिल्वे ब्रह्मणा लोककर्तृणा।
दास्यामि त्वां मनोऽभीष्टं वरं शत्रुनिबर्हण॥ १९॥

इति श्रुत्वा रघुश्रेष्ठो वाक्यमाकाशसम्भवम्।
असंशयं मुनिश्रेष्ठ मेने विजयमात्मनः॥ २०॥

एवं चिन्तयतः काले समरे भीमविक्रमः।
आयातः कुम्भकर्णो वै राक्षसैः परिवेष्टितः॥ २१॥

तस्य नादेन घोरेण सशैलवनकाननम्।
चकम्पे धरणिः क्षुब्धो बभूव सरितां पतिः॥ २२॥

रथाश्वकुञ्जराणां च सुघोरैरपि बृंहितैः।
चकम्पे वसुधा वीरबलात्कारेण वायुना॥ २३॥

चुक्षुभुर्वानराः सर्वे भीता दिक्षु विदिक्षु च।
दृष्ट्वा तमतिदुर्धर्षमुद्यतास्त्रं महाबलम्॥ २४॥

अथ रामस्तमायान्तं समालोक्य भयप्रदम्।
देवीं प्रणम्य कोदण्डं वामेनादाय पाणिना॥ २५॥

सोऽपि पादावघातेन करघातेन वानरान्।
विमर्द्य भक्षयंश्चान्यानाससाद रघूत्तमम्॥ २६॥

स सम्प्रेक्ष्य रघुश्रेष्ठं श्यामं दूर्वादलप्रभम्।
उद्यतास्त्रं महाबाहुं रक्षसामन्तकारिणम्॥ २७॥

सानुजं समरेऽक्षोभं नीलोत्पलदलेक्षणम्।
ननाद बलवान् घोरो युगान्तजलदो यथा॥ २८॥

राघवोऽपि महानादं ब्रह्माण्डक्षोभकारकम्।
चक्रे मुदा मुनिश्रेष्ठ ततो युद्धमवर्तत॥ २९॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उन महात्मा श्रीरामके द्वारा भगवतीकी स्तुति किये जानेपर सहसा आकाशवाणी हुई—॥ १७॥ रघुश्रेष्ठ! आप भय मत कीजिये। शीघ्र ही आप महाबलशाली और पराक्रमी राक्षसोंको मारकर लङ्काको जीतेंगे। शत्रुसूदन! सृष्टिकर्ता ब्रह्माने बिल्ववृक्षकी छायामें मेरी पूजा की है, अतः मैं आपको अभीष्ट वर प्रदान करूँगी॥ १८-१९॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकारकी आकाशवाणी सुनकर रघुश्रेष्ठ श्रीराम अपनी विजयको सुनिश्चित समझने लगे॥ २०॥ इस प्रकार भगवान् श्रीरामके सोचते-ही-सोचते कुछ ही समयमें राक्षसोंके साथ महाबलशाली कुम्भकर्ण युद्धभूमिमें आ गया। उसकी घोर गर्जनासे वन और पर्वतसहित सम्पूर्ण पृथ्वी काँपने लगी तथा समुद्र विक्षुब्ध हो उठा। उन राक्षसोंके रथ, घोड़ों और हाथियोंकी घोर गर्जना तथा वायुवेगशाली योद्धाओंके बलप्रयोगसे उठी हुई वायुसे पृथ्वी काँप उठी। हाथमें अस्त्र लिये हुए उस महाबली दुर्धर्ष कुम्भकर्णको देखकर सभी वानर भयसे व्याकुल हो उठे और दिशा-विदिशाओंमें स्थित हो गये॥ २१—२४॥

तदनन्तर श्रीरामने भयदायक उस राक्षसको आते हुए देखकर देवीको प्रणामकर बायें हाथमें धनुष ले लिया॥ २५॥ वह राक्षस भी पैर तथा हाथके प्रहारसे वानरोंका मर्दन करके और अन्य वानरोंका भक्षण करते हुए श्रीरामके सामने आ गया। वह बलवान् राक्षस भी दूर्वादलके समान आभावाले, श्यामवर्णवाले, राक्षसोंका नाश करनेवाले, महान् भुजावाले, हाथमें अस्त्र लिये हुए तथा नीलकमलदलके समान नेत्रवाले, क्षोभरहित, अनुजसहित रघुश्रेष्ठको युद्धक्षेत्रमें देखकर युगान्तकारी बादलकी तरह गर्जना करने लगा॥ २६—२८॥ मुनिश्रेष्ठ! रघुश्रेष्ठ श्रीराम भी प्रसन्न होकर ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेवाली घोर गर्जना करने लगे, तदनन्तर युद्ध आरम्भ हो गया॥ २९॥

ब्रह्मास्त्रजालैः संक्षिप्तैः परस्परजिगीषया।
तयोरासीन्महायुद्धं सुरासुरदुरासदम्॥ ३०॥
सैन्यैश्च राक्षसश्रेष्ठैर्वानराणां महात्मनाम्।
आसीत्सुतुमुलं युद्धं संग्रामे जयमिच्छताम्॥ ३१॥

एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे छोड़े गये ब्रह्मास्त्रजालोंसे उन दोनोंमें महान् युद्ध हुआ, जो देवताओं तथा राक्षसोंके लिये अत्यन्त दुर्गम था। संग्राममें विजयकी इच्छा रखनेवाले महापराक्रमी वानरोंका बलशाली राक्षस-सैनिकोंके साथ घोर युद्ध हुआ॥ ३०-३१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीरामकुम्भकर्णयोर्युद्धवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीराम-कुम्भकर्णयुद्धवर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामकी विजयहेतु ब्रह्माजी तथा देवगणोंका देवीकी आराधना करना, देवीद्वारा राक्षसोंके वधका वरदान देना

श्रीमहादेव उवाच

ब्रह्मापि बिल्ववृक्षे तां देवीं सम्पूज्य भक्तितः।
बोधयामास रामस्य जयार्थं जगदम्बिकाम्॥ १॥
स्तोत्रेण देवीसूक्तेन प्रणिपत्य पुनः पुनः।
वेदोक्तेन सुरश्रेष्ठोऽकालेऽपि च सुरेश्वरीम्॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजी बिल्ववृक्षकी छायामें भगवती जगदम्बिकाका असमयमें भी भक्तिपूर्वक पूजन करके और बार-बार उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके वेदोक्त स्तुति तथा देवीसूक्तके द्वारा भगवान् श्रीरामकी विजयके लिये भगवती सुरेश्वरीका प्रबोधन करने लगे—॥ १-२॥

ब्रह्मोवाच

ॐ नमो विमलवदनायै भूर्भुवःस्वःपरमकमलायै केवलपरमानन्दसन्दोहरूपायै लोकत्रयतिमिरापहारक-परमज्योतीरूपायै असदभिलाषयुक्तसंदूषितदोषापसारण-परमामृतरूपायै मूर्तिमत्कोटिचन्द्रवदनायै दुर्गादेव्यै सर्व-वेदोद्भवनारायण्यै जनशरीरे परमात्मरूपायै प्रसीद ते नमो नमः॥ ३॥

ॐ करालरूपे प्रणवस्वाहास्वरूपे ह्रीँस्वरूपिणि अम्बिके भगवत्यम्ब त्रिगुणप्रसूते नमो नमः॥ ४॥

सिद्धिकरे स्फ्रें स्फ्रौं स्वाहारूपिणि स्वधारूपे विमल-मुखे चन्द्रमुखे कोलाहलमुखे शर्वे प्रसीद॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—ॐ विमल वदनवालीको नमस्कार है। भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोकमें व्याप्त परम कमलास्वरूपिणी, एकमात्र परमानन्दराशिस्वरूपा, तीनों लोकोंके अन्धकारको दूर करनेवाली, परम ज्योतिस्वरूपा, असत् अभिलाषासे युक्त संदूषित दोषोंको दूर करनेवाली, परम अमृतस्वरूपिणी, मूर्तिमान् करोड़ों चन्द्रमाके समान मुखवाली, सभी वेदोंमें वर्णित उद्भववाली नारायणी, शरीरमात्रमें परमात्मरूपसे अवस्थित दुर्गादेवी! आप प्रसन्न हों, आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३॥ ॐ विकरालरूपे! प्रणवस्वाहास्वरूपे! ह्रीँ स्वरूपिणी! अम्बिके! त्रिगुणप्रसूते! अम्ब! भगवती! आपको बार-बार नमस्कार है॥ ४॥ सिद्धिकरी, स्फ्रें-स्फ्रौंस्वरूपिणी, स्वाहारूपिणी, स्वधारूपा, निर्मलमुखी, चन्द्रमुखी, कोलाहलमुखी, शर्वा! आप प्रसन्न हों॥ ५॥

जगन्मोदकरीं मृदुदृशीं त्वां महेशीं क्रीडास्थाने स्वागतां भुवनेशीं शत्रुस्त्वं मित्ररूपा च दुर्गा दुर्गस्य त्वं योगिनामन्तरेऽपि एकाऽनेका सूक्ष्मरूपाविकारा ब्रह्माण्डानां कोटिकोटिप्रसूतम्॥ ६ ॥

एकोऽहं विष्णुः कः परो वा शिवाख्यो देवाश्चान्ये स्तोतुमीशा भवामः। त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं च वौषट् त्वं चोङ्कारस्त्वं च लज्जादिबीजं त्वं च स्त्री त्वं च पुमान् सर्वरूपा त्वां नमामि बोधये नः प्रसीद॥ ७॥



त्वं वै देवर्षिर्देवताकालरूपा त्वं वै मासस्त्वमृतुश्चायने द्वे। कव्यं भुङ्क्षे त्वं यथा स्वधा तद्वत् स्वाहा हव्यभोक्त्री स्वयं देवि॥ ८॥

त्वं वै देवाः शुक्लपक्षे प्रपूज्यास्त्वं पित्राद्याः कृष्णपक्षे प्रपूज्याः। त्वं वै सत्यं निष्कलं च स्वरूपं त्वां वै नत्वा बोधयामि प्रसीद॥ ९॥

चन्द्रार्काग्निविलोचने नीचं नीचमुच्चं नत्वा याति मुक्तिं त्वत्पादध्यानयोगात्। त्वत्पादाब्जं चार्चयित्वा तु मुक्तिं को वा न प्राप्नोत्युत्तमां देवि सूक्ष्मम्॥ १०॥

जगत्को हर्षित करनेवाली, मधुर दृष्टिवाली, क्रीडास्थानमें स्वयं आयी हुई आप महेश्वरी भुवनेशीको मैं प्रणाम करता हूँ। आप शत्रुरूपा और मित्ररूपा भी हैं, आप दुर्गकी दुर्गा हैं, आप योगियोंके अन्तःस्थलमें स्थित रहती हुई एकरूपा, अनेकरूपा, सूक्ष्मरूपा, निर्विकारा और करोड़ों-करोड़ ब्रह्माण्डोंको प्रकट करनेवाली हैं॥ ६॥

एकमात्र मैं, विष्णु अथवा शिव तथा अन्य देवता—हम सभी आपकी स्तुति करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं? आप स्वाहा, स्वधा, वौषट्, ओङ्कार और लज्जादिबीजरूपा हैं, आप ही स्त्री, पुरुष तथा सर्वरूपवाली हैं। आपको नमस्कार है, आपको हम प्रबोधित कर रहे हैं। आप हमलोगोंपर प्रसन्न होइये॥ ७॥

आप ही देवर्षि, देवता तथा कालरूपा हैं, मास, ऋतु, दो अयन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन) भी आप ही हैं। देवी! आप स्वधास्वरूपा होकर कव्यका भोग करती हैं। उसी प्रकार स्वाहास्वरूपा होकर स्वयं हव्यभोक्त्री हैं॥ ८॥

आप ही शुक्लपक्षमें देवताके रूपमें तथा कृष्णपक्षमें पित्रादिके रूपमें प्रपूजित हैं। आप ही सत्यस्वरूपा और अखण्डस्वरूपा हैं। मैं आपको नमस्कार कर आपका प्रबोधन करता हूँ। आप प्रसन्न हों॥ ९॥

चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि—इन तीन नेत्रोंवाली देवी! आप निम्न-से-निम्न व्यक्तिको उच्च बना देती हैं तथा वह आपको नमस्कार करके तथा आपके चरणकमलका ध्यान करके मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। आपके श्रेष्ठ पदकमलका पूजन करके कौन उत्तम मुक्तिको नहीं प्राप्त कर लेता है॥ १०॥

स्थूलमुच्चं नीचं नीचमुच्चं कर्तुं समर्था त्वं तु काले शक्तिरूपा भवानि त्वां नत्वाहं बोधये नः प्रसीद। त्वं वै शक्ती राघवे रावणे च रुद्रादौ वापीहास्ति या त्वं सा त्वं शुद्धं वामकेन प्रवर्ध त्वां नत्वा बोधये नः प्रसीद॥ ११॥

ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः॥

श्रीमहादेव उवाच

अनेन वेदसूक्तेन स्तोत्रेण मुनिसत्तम।
संस्तुता ब्रह्मणा देवी प्रबोधं प्राप चण्डिका॥ १२॥

प्रबुद्धायां च देव्यां स ब्रह्मा लोकपितामहः।
प्राञ्जलिर्दैवतैः सार्धं प्रार्थयामास वाञ्छितम्॥ १३॥

ब्रह्मोवाच

देवि त्वं बोधिताऽस्माभिरकालेऽपि सुरोत्तमे।
हिताय सर्वभूतानां राक्षसानां वधाय च॥ १४॥

जयाय रामचन्द्रस्य संग्रामेऽतिसुदारुणे।
यावद्दशाननो युद्धे सपुत्रगणबान्धवः॥ १५॥

पतिष्यति जगच्छत्रुस्तावत्त्वां जगदम्बिकाम्।
पूजयामो महादेवि राघवस्य जयार्थिनः॥ १६॥

त्वं प्रसन्ना यदि शिवे तदा पूजां प्रगृह्य च।
निपातय महाशत्रुकुलं देवि दिने दिने॥ १७॥

श्रीदेव्युवाच

पतिष्यत्यद्य संग्रामे कुम्भकर्णो महाबलः।
सहितः सैनिकैर्भीमैर्महाबलपराक्रमः॥ १८॥

एवमेनां समारभ्य नवमीमसितां शुभाम्।
यावच्छुक्ला तु नवमी तावदेव दिने दिने॥ १९॥

पतिष्यन्ति न सन्देहो राक्षसा रणमूर्धनि।
अमावस्यानिशायां तु मेघनादे हते सति॥ २०॥

रावणोऽपि च संतप्तहृदयो राममेष्यति।

आप उच्चको निम्न तथा निम्नको उच्च करनेमें समर्थ हैं। भवानी! आप समयपर शक्तिरूपा हैं। आपको नमस्कार करके मैं आपका प्रबोधन करता हूँ। आप हमपर प्रसन्न होइये। श्रीराम, रावण, रुद्रादि तथा इस संसारमें शक्तिरूपसे जो विराजमान हैं वे आप ही हैं, आप जो हैं सो हैं अर्थात् अगम्यस्वरूपा हैं। शुद्धाचारी श्रीरामका वाममार्गसे त्वरित अभ्युदय कीजिये। आपको नमस्कार कर मैं आपका प्रबोधन करता हूँ। आप हमपर प्रसन्न होइये॥ ११॥

ॐ तत्सत् ब्रह्मको नमस्कार है।

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस वेदसूक्त तथा स्तोत्रसे ब्रह्माजीने जब देवीकी स्तुति की तब भगवती चण्डिका प्रबुद्ध हो गयीं। देवीके प्रबुद्ध हो जानेपर वे लोकपितामह ब्रह्मा सभी देवताओंके साथ हाथ जोड़कर अपने मनोवाञ्छितकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करने लगे—॥ १२-१३॥

ब्रह्माजी बोले—देवि, सुरोत्तमे! सभी प्राणियोंके कल्याण, अत्यन्त भीषण संग्राममें श्रीरामकी विजय तथा राक्षसोंके नाशके लिये हमने असमयमें आपको प्रबोधित किया है। महादेवी! जबतक जगत्-शत्रु दशानन अपने पुत्र तथा बान्धवोंके साथ युद्धमें नहीं मारा जायगा, तबतक श्रीरामके विजयकी इच्छावाले हमलोग आपकी पूजा करते रहेंगे। शिवे! देवी! यदि आप प्रसन्न हैं तो प्रतिदिन हमलोगोंकी पूजा ग्रहण कर महाशत्रुसमूहका विनाश करती रहिये॥ १४—१७॥

श्रीदेवीजी बोलीं—महाबलशाली एवं पराक्रमी वीर कुम्भकर्ण अपने भयंकर सैनिकोंके साथ आज ही युद्धमें मारा जायगा। इस कृष्णपक्षकी शुद्ध नवमीसे आरम्भ होकर जबतक शुक्लपक्षकी नवमी आयेगी, तबतक प्रत्येक दिन युद्धक्षेत्रमें राक्षस मारे जायँगे। इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। अमावस्यातिथिकी रात्रिमें मेघनादके मारे जानेपर संतप्तहृदय रावण भी [युद्धहेतु] भगवान् श्रीरामके पास आ जायगा॥ १८—२०½॥

सन्दोहरूपायै लोकत्रयतिमिरापहारकपरमज्योती- रूपायै असदभिलाषयुक्तसंदूषितदोषापसारणपरमामृत- रूपायै मूर्तिमत्कोटिचन्द्रवदनायै दुर्गादेव्यै सर्ववेदोद्भवनारायण्यै जन्यशरीरे परमात्मरूपायै प्रसीद ते नमो नमः ॥ २१ ॥

ॐ करालरूपे प्रणवस्वाहास्वरूपे ह्रौंस्वरूपिणि अम्बिके भगवत्यम्ब त्रिगुणप्रसूते नमो नमः। सिद्धिकरे स्फ्रें। अमर्षवशमापन्नो युद्धार्थं समराजिरे ॥ २२ ॥

देवान्तकप्रभृतिभिर्महाबलपराक्रमैः ।
ततस्तेषु हतेष्वेवं वीरेषु रणमूर्धनि ॥ २३ ॥

देवान्तकादिषु तथा क्रोधसंरक्तलोचनः ।
स योत्स्यति महावीरो रावणो लोककण्टकः ॥ २४ ॥

तयोस्तु दारुणं युद्धं रामरावणयोस्तदा ।
भविष्यति यथा कैश्चिन्न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् ॥ २५ ॥

तत्रापि शुक्लसप्तम्यामारभ्य नवमीदिनम् ।
यावद्घोरतरं युद्धं भविष्यति तयोर्महत् ॥ २६ ॥

तस्यामारभ्य सप्तम्यां नवमीं यावदेव हि ।
मृण्मय्यां प्रतिमायां तु पूज्याहं विधिवत्पुरा ॥ २७ ॥

भवद्भिः समरे रामचन्द्रस्य जयकाङ्क्षिभिः ।
अनघैरुपचारैस्तु यथार्हैर्बलिभिस्तथा ॥ २८ ॥

स्तोत्रैर्वेदपुराणोक्तैः स्तोतव्या भक्तिभावतः ।
सप्तम्यां पत्रिकायां तु वेशनं मूलयोगतः ॥ २९ ॥

कर्तव्यं विधिवद्देवास्ततो रामधनुःसरम् ।

[ब्रह्माजी पुनः बोले—] (आनन्द)-राशिस्वरूपा! तीनों लोकोंके अन्धकारको दूर करनेवाली, परम ज्योतिस्वरूपा, असत् अभिलाषासे युक्त संदूषित दोषोंको दूर करनेवाली, परम अमृतस्वरूपिणी, मूर्तिमान् करोड़ों चन्द्रमाके समान मुखवाली, सभी वेदोंमें वर्णित उद्भववाली नारायणी, शरीरमात्रमें परमात्मरूपसे अवस्थित दुर्गादेवी! आप प्रसन्न हों, आपको बार-बार नमस्कार है ॥ २१ ॥ ॐ विकरालरूपे! प्रणव-स्वाहास्वरूपे! ह्रौंस्वरूपिणी! अम्बिके! त्रिगुणप्रसूते! अम्ब! भगवती! आपको बार-बार नमस्कार है। सिद्धिकरी स्फ्रेंस्वरूपिणीको नमस्कार है ॥ २२ ॥

[देवीजीने पुनः कहा—] देवान्तकप्रभृति महाबली और पराक्रमी वीर राक्षसोंको साथ लेकर क्रोधके वशीभूत हुआ रावण रणभूमिमें आयेगा। तत्पश्चात् युद्धभूमिमें देवान्तक आदि राक्षसवीरोंके मारे जानेपर वह लोकपीड़क, क्रोधसे लाल आँखोंवाला महावीर रावण स्वयं युद्ध करेगा ॥ २३-२४ ॥ तब श्रीराम और रावणका ऐसा कठिन युद्ध होगा, जैसा न किसीने देखा है और न कहीं सुना ही गया है। उसमें भी आश्विन शुक्ल सप्तमीसे आरम्भ होकर नवमीतिथितक उन दोनों योद्धाओंमें महान् भयंकर संग्राम होगा ॥ २५-२६ ॥

युद्धमें श्रीरामचन्द्रकी विजयकी आकाङ्क्षावाले आपलोगोंको उस (शुक्ल) सप्तमीसे प्रारम्भ करके नवमीतिथिपर्यन्त सर्वप्रथम मृण्मयी प्रतिमामें विशुद्ध पूजनोपचारोंसे मेरी विधिवत् पूजा करनी चाहिये तथा वेद-पुराणोक्त स्तोत्रोंसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन करना चाहिये ॥ २७-२८½ ॥ देवगण! आश्विनमासमें शुक्लपक्षमें मूल नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको पत्रिका-प्रवेशन तथा श्रीरामके धनुष-बाणका विधिवत् पूजन करना चाहिये ॥ २९½ ॥

अष्टम्यां पूजिताहं तु प्रतिमायां सुशोभने॥ ३०॥

अष्टमीनवमीसन्धौ वत्स्यामि शिरसो रणे।
रावणस्य सुदुष्टस्य भूयो भूयो दुरात्मनः॥ ३१॥

ततः सन्धौ क्षणेऽहं तु पूजितव्या विधानतः।
विपुलैरुपचारैस्तु मांसशोणितकर्दमैः॥ ३२॥

ततः शत्रुं बलिं दद्यात्कृत्वा पिष्टमयं मम।
नवम्यां पूजिताहं तु बलिभिर्विविधैरपि॥ ३३॥

अपराह्णे रणे वीरं पातयिष्यामि रावणम्।
दशम्यां मां प्रपूज्याथ प्रातरेव सुरोत्तमाः॥ ३४॥

मूर्तिर्विसर्जनीया तु स्त्रोतःसु सुमहोत्सवैः॥ ३५॥

एवं पञ्चदशाहेषु कृत्वा च सुमहोत्सवम्।
निवृत्तिं प्राप्स्यथ सुरा हते तस्मिन्दुरात्मनि॥ ३६॥

अष्टमीको प्रतिमामें पूजित होनेपर मैं अष्टमी तथा नवमीके उत्तम संधिकालमें दुरात्मा दुष्ट रावणके सिरसे रणभूमिमें आ जाऊँगी, तदनन्तर उस संधिके क्षणमें विधिविधानसे विपुल उपचारोंसे बारम्बार मेरी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् नवमीतिथिको भी विविध प्रकारके उपचारोंसे पूजित होनेपर मैं अपराह्णमें युद्धक्षेत्रमें उस वीर रावणका संहार करूँगी॥ ३०—३३१/२॥

श्रेष्ठ देवगण! दशमीतिथि (विजयादशमी)-में प्रातः ही मेरी पूजाकर महोत्सवपूर्वक नदियोंमें मेरी मृण्मयी मूर्ति विसर्जित करनी चाहिये॥ ३४-३५॥ इस प्रकार इन [आश्विन कृष्ण नवमीसे शुक्ल नवमीतक] पंद्रह दिनमें मेरी पूजाका महोत्सव करके उस दुरात्मा रावणके मारे जानेपर आपलोगोंको शान्ति मिलेगी॥ ३६॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे ब्रह्मणा देवीसूक्तस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'ब्रह्माके द्वारा देवीसूक्तस्तुतिवर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

भगवती जगदम्बिकाद्वारा शारदीय पूजाविधानका निरूपण तथा उसके माहात्म्य एवं फलका कथन

श्रीदेव्युवाच

एवं महोत्सवो देव्या अकालेऽस्मिन्समागते।
त्रैलोक्यवासिभिः कार्यो मत्तृप्त्यै प्रतिवत्सरम्॥ १॥

नवम्यामार्द्रायुक्तायां बिल्वे मां परिपूज्य च।
सम्बोध्य भक्तितः शुक्लां नवमीं यावदेव हि॥ २॥

प्रत्यहं पूजयिष्यन्ति ये तु लोकत्रये सुराः।
तेषां प्रसन्ना नित्यं तु पूरयिष्ये मनोरथान्॥ ३॥

श्रीदेवीजी बोलीं—इस प्रकार इस असमयके उपस्थित होनेपर मेरी संतुष्टिके लिये तीनों लोकोंके निवासियोंको प्रत्येक वर्ष भगवतीका महोत्सव सम्पादित करना चाहिये॥ १॥ देवगणो! तीनों लोकोंमें जो लोग आर्द्रानक्षत्रयुक्त नवमीतिथिको बिल्ववृक्षमें मेरी पूजा करके भक्तिपूर्वक मेरा प्रबोधन करते हुए शुक्लपक्षकी नवमीतक प्रतिदिन मेरा पूजन करेंगे, उनके ऊपर प्रसन्न होकर मैं उनके सभी मनोरथ पूर्ण करूँगी॥ २-३॥

न शत्रुः प्रभवेत्तस्य न वा बन्धुवियोजनम्।
न दुःखं न च दारिद्र्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति॥ ४॥

ऐहिकं यन्मनोऽभीष्टं यच्च पारत्रिकं तथा।
सम्पदं लभते सर्वां मत्प्रसादात्सुरोत्तमाः॥ ५॥

पुत्रायुर्धनधान्यादिवृद्धिस्तेषां दिने दिने।
भविष्यत्यचला लक्ष्मीर्मां भक्त्या यजतामपि॥ ६॥

न व्याधयो भविष्यन्ति न च तान् ग्रहपीडकाः।
पीडयन्ति न तेषां तु नापमृत्युर्भविष्यति॥ ७॥

न भीती राजतो वापि दस्युतो वा भविष्यति।
सिंहव्याघ्रादिजन्तुभ्यो न वा भीतिर्भविष्यति॥ ८॥

यास्यन्ति वशतां भूयो ह्रासयिष्यन्ति शत्रवः।
विजयश्च रणे नित्यं भविष्यति न संशयः॥ ९॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चित्संस्थास्यति सुरोत्तमाः।
नापदश्च तथा तेषां प्रभवन्ति कदाचन॥ १०॥

सम्प्राप्नोति नरः सौख्यं मत्प्रसादान्मदर्चकः।
अन्ते प्राप्स्यति मल्लोकं सत्यं सत्यं न संशयः॥ ११॥

अश्वमेधादियज्ञानां कोटीनामपि यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वार्चां वार्षिकीमिमाम्॥ १२॥

मोहाद्वा द्वेषतो वापि यो मामस्मिन्महोत्सवे।
न पूजयति मूढात्मा स भवेद्योगिनीपशुः॥ १३॥

पूजयिष्यन्ति ये मर्त्ये स्वर्गे वापि रसातले।
तेषां परं हि तुष्टाहं वाञ्छितानि दिने दिने॥ १४॥
संविधास्यामि सर्वाणि सत्यमेव सुरोत्तमाः।

श्रेष्ठ देवगण! मेरे अनुग्रहसे उसका कोई शत्रु नहीं होता, उसके बन्धु-बान्धवोंका उससे वियोग नहीं होता और उसे किसी प्रकारका दुःख तथा दारिद्र्य भी नहीं होता। मेरी कृपासे उसे इस लोक तथा परलोकके मनोवाञ्छित पदार्थ तथा अन्य सभी प्रकारकी सम्पदाओंकी प्राप्ति हो जाती है॥ ४-५॥ भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करनेवाले मनुष्योंके पुत्र, आयु तथा धन-धान्य आदिकी प्रतिदिन वृद्धि होगी तथा उन्हें अचल लक्ष्मीकी प्राप्ति भी होगी, व्याधियाँ नहीं होंगी, कष्टकर ग्रह उन्हें पीड़ित नहीं कर सकते और उनकी अकाल मृत्यु नहीं होगी। राजा, डाकू तथा सिंह-बाघ आदि जन्तुओंसे वे कभी भयभीत नहीं होंगे। मेरी उपासना करनेवालोंके शत्रु उनके अधीन हो जायँगे और उनके समक्ष नष्ट हो जायँगे तथा युद्धमें सदा उनकी विजय होगी; इसमें संदेह नहीं है॥ ६—९॥

श्रेष्ठ देवगण! उनके पापकर्म नहीं रह जाते और विपदाएँ भी उनके समक्ष कभी उत्पन्न नहीं होतीं। मेरी उपासना करनेवाला मनुष्य मेरी कृपासे सुख प्राप्त करता है और अन्तमें मेरे लोकको प्राप्त होता है; यह सर्वथा सत्य है और इसमें कोई संशय नहीं है। करोड़ों अश्वमेध आदि यज्ञोंका जो फल होता है, वह फल मनुष्यको मेरी इस वार्षिक पूजाके करनेसे प्राप्त हो जाता है। मोह अथवा द्वेषके कारण जो मूढात्मा इस महोत्सवमें मेरी पूजा नहीं करता है, वह मेरी योगिनियोंका भक्ष्य बनता है। श्रेष्ठ देवगण! जो लोग मृत्युलोक, स्वर्गलोक अथवा पाताललोकमें मेरा पूजन करेंगे, उनके ऊपर परम प्रसन्न होकर मैं प्रतिदिन उनके सभी मनोरथ पूर्ण करूँगी; यह पूर्णरूपसे सत्य है॥ १०—१४½॥

सात्त्विकं भावमाश्रित्य येऽर्चयिष्यन्ति मां जनाः ॥ १५ ॥

न तैर्बलिः प्रदातव्यो न देयं सामिषान्नकम्।
कर्तव्या मे महापूजा मम प्रीतिमभीप्सुभिः ॥ १६ ॥

निरामिषैस्तु नैवेद्यैः स्तोत्रैर्वेदाङ्गसम्भवैः।
विपुलैर्जपयज्ञैश्च विप्राणां भोजनैस्तथा ॥ १७ ॥

सुसमाहितचित्तैस्तु हिंसादिपरिवर्जितैः।
राजसं भावमापन्नैर्मम सम्प्रीतये तु वै ॥ १८ ॥

कर्तव्येयं महापूजा नानाबलिभिरादरात्।
छागमेषादिमहिषैः सामिषान्नैस्तथैव च ॥ १९ ॥

स्तोत्रैस्तु जपयज्ञाद्यैर्विप्राणामपि भोजनैः।
दुष्टशत्रुविनाशादिधनधान्यादिवर्धनम् ॥ २० ॥

संग्रामे विजयं पुत्रदाराद्यैहिकमुत्तमम्।
परत्र च परं सौख्यं सम्प्राप्य च परं पदम् ॥ २१ ॥

तामसी तु ममार्चा या नैतयोस्तुल्यता तु सा।
अतः सा तु न कर्तव्या शान्तैश्च ज्ञानशालिभिः ॥ २२ ॥

जो लोग सात्त्विकभावसे युक्त होकर मेरा पूजन-अर्चन करेंगे, उन्हें न तो बलि अर्पण करना चाहिये और न तो मांसयुक्त अन्न प्रदान करना चाहिये। मेरी प्रसन्नताकी अभिलाषा रखनेवाले लोगोंको समाहितचित्त होकर हिंसा आदिसे विरत रहते हुए मांसरहित नैवेद्य, वेदाङ्गादिसे उद्भूत स्तुतियों, विविध जपों, यज्ञों तथा ब्राह्मण-भोजन आदिके द्वारा मेरी महापूजा करनी चाहिये ॥ १५—१७$\frac{1}{2}$ ॥ राजसभावसे युक्त लोगोंको मेरी प्रसन्नताके लिये आदरपूर्वक बहुविधि उपचारोंके अर्पण करने, स्तोत्रोंके पाठ, जप-यज्ञ आदिके अनुष्ठान करने तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराने—आदिके द्वारा मेरी यह महापूजा सम्पन्न करनी चाहिये। यह पूजन दुष्ट शत्रुओंका विनाश करनेवाला तथा धन-धान्य आदिको बढ़ानेवाला है। मेरी पूजा करनेवाला संग्राममें विजय और पुत्र तथा स्त्रीसम्बन्धी उत्तम ऐहिक सुख एवं श्रेष्ठ पारलौकिक सुख प्राप्त करके अन्तमें परम पदका अधिकारी हो जाता है ॥ १८—२१ ॥ मेरी जो तामसी पूजा है, वह इन दोनों पूजाओं (सात्त्विकी, राजसी)-के समान नहीं है। अतः शान्त तथा ज्ञानसम्पन्न लोगोंको वह पूजा नहीं करनी चाहिये ॥ २२ ॥



यजध्वं रामचन्द्रस्य संग्रामे जयहेतवे।
रिपोर्निधनमिच्छन्तो महिषैश्छागमेषकैः ॥ २३ ॥

पूजयध्वं प्रतिदिनं शुक्ला सा नवमी सुराः।
महानवम्यां छागादिबलिभिर्विपुलैरहम् ॥ २४ ॥

युष्माभिः पूजितव्या वै शत्रुविध्वंसकारिणी।
ततस्तुष्टा महावीरं रावणं लोककण्टकम् ॥ २५ ॥

अजेयं शत्रुभिः संख्ये पातयिष्यामि निश्चितम्।
नवम्यां बलिदानेन प्रीतिर्मे महती भवेत् ॥ २६ ॥

अतो देयो बलिस्तत्र मम प्रीतिमभीप्सुभिः।
भक्त्या वाप्यथ वाभक्त्या जानता वाप्यजानता ॥ २७ ॥

कर्तव्या वार्षिकी पूजाऽवश्यं लोकत्रये मम।
बलिश्चापि प्रदातव्यः प्रत्यहं सुरसत्तमाः ॥ २८ ॥

असमर्थैरपि सदा नवम्यां देय एव हि।
यथाष्टम्यां बलिर्देवा महायज्ञफलप्रदः ॥ २९ ॥

महाष्टम्यां मम प्रीत्यै उपवासः सुरोत्तमाः।
कर्तव्यः पुत्रकामैस्तु लोकैस्त्रैलोक्यवासिभिः ॥ ३० ॥

अवश्यं भविता पुत्रस्तेषां सर्वगुणान्वितः।
पुत्रवद्भिर्न कर्तव्य उपवासस्तु तद्दिने ॥ ३१ ॥

अष्टम्यामुपवासात्तु नवम्यां बलिदानतः।
फलं महत्तरं ज्ञेयमश्वमेधादियागतः ॥ ३२ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं निशम्य वचनं जगदम्बिकाया
ब्रह्मादयः सुरगणा जगदीश्वरीं ताम्।
शत्रोर्जयाय बलिभिर्विविधैर्विधानाद्-
भक्त्यार्चयन्ननुदिनं नवमीदिनान्तम् ॥ ३३ ॥

देवगण! आपलोग संग्राममें श्रीरामकी विजयके लिये तथा उस शत्रुके नाशकी इच्छासे शुक्लपक्षकी नवमीतक प्रतिदिन मेरी पूजा करें। महानवमीको भी मुझ शत्रुनाशिनीका आपलोगोंको पूजन करना चाहिये। उस पूजासे प्रसन्न हुई मैं जगत्‌के कण्टकस्वरूप अपराजेय महाबली रावणको सभी शत्रुओंसहित संग्राममें अवश्य ही मार डालूँगी। नवमीतिथिके पूजनसे मुझे अपार प्रसन्नता होती है। तीनों लोकोंमें ज्ञानी अथवा अज्ञानी सभीको भक्तिपूर्वक या भक्तिरहित भी मेरी वार्षिकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। देवगण! जिस प्रकारसे अष्टमीतिथिके पूजनसे महान् यज्ञोंका फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार मेरी संतुष्टिके लिये तीनों लोकोंमें रहनेवाले लोगोंको महाष्टमीके दिन पुत्रकी कामनासे उपवास करना चाहिये। ऐसा करनेसे उन्हें सर्वगुणसम्पन्न पुत्रकी प्राप्ति अवश्य होगी। उस दिन पुत्रवान् लोगोंको उपवास नहीं करना चाहिये। अष्टमीतिथिको उपवास और नवमीतिथिको पूजन करनेसे प्राप्त होनेवाले फलको अश्वमेध आदि यज्ञोंके फलसे भी बड़ा समझना चाहिये ॥ २३—३२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—जगदम्बिकाका यह वचन सुनकर ब्रह्मा आदि देवगण विधि-विधानसे बलि प्रदान करके शत्रुओंसे विजयके लिये नवमीपर्यन्त प्रतिदिन उन जगदीश्वरीकी उपासनामें भक्तिपूर्वक तत्पर रहे ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे शारदीयपूजाविधानकथनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'शारदीय पूजाविधानकथन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीरामद्वारा भगवती जगदम्बिकाका पूजन, कुम्भकर्ण, अतिकाय तथा मेघनादका वध, श्रीरामका बिल्ववृक्षमें देवेश्वरीका पूजन करना, भगवतीका श्रीरामको अमोघ अस्त्र प्रदान करना, रावणवध तथा श्रीरामकी जय-जयकार

श्रीमहादेव उवाच

इन्द्राद्यास्त्रिदशाः स्वर्गे मर्त्ये च परमेश्वरः।
पूजयित्वा महादेवीं सर्वलोकमहेश्वरीम्॥ १ ॥

संग्रामे पातयामास विशिखै रावणानुजम्।
हताश्च वानरैर्घोरा राक्षसा लक्षकोटयः॥ २ ॥

राक्षसैश्च हताः संख्ये वानरा बहुकोटयः।
प्रावर्तयन्नदीं घोरां शोणितौघतरङ्गिणीम्॥ ३ ॥

मुण्डमाला च विपुला बभासे तत्र नारद।
श्रुत्वा तु रावणो युद्धे निहतं भ्रातरं बहु॥ ४ ॥

रुरोद शोकसंतप्तहृदयोऽथ मुमोह च।
ततोऽतिकायो बलवांस्तमाश्वास्य महारणे॥ ५ ॥

चकार यात्रां कृष्णायां दशम्यां भीमविक्रमः।
रामस्तु समरे हत्वा कुम्भकर्णं महाबलम्॥ ६ ॥

प्रययौ भगवान् ब्रह्मा देवीं यत्रार्चयन्मुने।
प्रणम्य च महात्मानं ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ ७ ॥

कथयामास संग्रामे निहतं रावणानुजम्।
ब्रह्मापि कथयामास देव्या यत्कथितं पुरा॥ ८ ॥

पूजाविधानं शत्रूणां निधनं च दिने दिने।
तच्छ्रुत्वा वानरैर्नानाविधिं पूजोपहारकम्॥ ९ ॥

आनाय्य भगवान् रामो दशम्यां प्रातरेव हि।
पूजां प्रवर्तयन्भक्त्या बलिभिर्विपुलैरपि॥ १० ॥

प्रणिपत्य महादेवीं पुनर्युद्धाय निर्ययौ।

श्रीमहादेवजी बोले—इन्द्र आदि सभी देवताओंने स्वर्गमें तथा परमेश्वर श्रीरामने मृत्युलोकमें सभी लोकोंकी महेश्वरी भगवती जगदम्बाकी पूजा की। श्रीरामने युद्धस्थलमें बाणोंसे मारकर रावणके अनुज कुम्भकर्णको धराशायी कर दिया। युद्धमें [इन्द्रादि देवावतार] वानरोंने लाखों-करोड़ों भयानक राक्षसोंका वध किया और राक्षसोंने भी अनेक करोड़ वानरोंका संहार किया। नारद! इससे रक्तप्रवाहसे युक्त तरंगोंवाली घोर नदी बहने लगी तथा असंख्य मुण्डमालाएँ वहाँ बिखर गयीं॥ १—३ १/२ ॥

संग्राममें अपने भाईके वधका समाचार सुनकर शोकसे संतप्त हृदयवाले रावणने अत्यधिक विलाप किया और वह मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर प्रचण्ड पराक्रमवाले तथा बलवान् अतिकायने उस रावणको सान्त्वना प्रदान कर कृष्णदशमीको युद्धभूमिके लिये प्रस्थान किया। मुने! भगवान् श्रीराम युद्धमें कुम्भकर्णका वध करनेके उपरान्त वहाँ पहुँच गये, जहाँ ब्रह्मा देवीकी आराधना कर रहे थे॥ ४—६ १/२ ॥

जगत्‌के स्वामी महात्मा ब्रह्माजीको प्रणाम करके श्रीरामचन्द्रजीने युद्धमें रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णके वधके विषयमें उनसे कहा और देवीके द्वारा पूर्वमें जो पूजा-विधान तथा दिन-प्रतिदिन शत्रुओंके निधन-सम्बन्धी बात कही गयी थी, उसे ब्रह्माजीने भी उनसे कहा॥ ७-८ १/२ ॥

उसे सुनकर भगवान् श्रीरामने वानरोंसे अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री मँगाकर दशमीतिथिको प्रातःकाल भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा की और फिर महादेवीको प्रणाम करके वे युद्धके लिये पुनः निकल पड़े॥ ९-१० १/२ ॥

अतिकायस्तु दुर्धर्षः कम्पयन्धरणीतलम्॥ ११॥
चालयन् सकलां पृथ्वीं रथनेमिस्वनेन च।
समायातोऽपि विपुलैः सैनिकैः परिवारितः॥ १२॥
तस्मिन् समागते घोरं राक्षसानां दुरात्मनाम्।
प्रावर्तत महायुद्धं वानरैर्भयदायकम्॥ १३॥
गदाभिः परिघैर्वृक्षैः पाषाणैर्वानरर्षभाः।
राक्षसान् पातयामासुः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १४॥
शस्त्रास्त्रैर्विविधैस्तद्वद्वानरानपि राक्षसाः।
संग्रामे पातयामासुर्महाबलपराक्रमाः॥ १५॥
ततो धनुः समादाय भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
पातयामासतुः संख्ये राक्षसान्भीमविक्रमान्॥ १६॥
स चापि राक्षसश्रेष्ठो निनदन् समराजिरे।
वानरान्पातयामास शतशोऽथ सहस्रशः॥ १७॥
ततः समभवद्युद्धमतुलं लोमहर्षणम्।
रामलक्ष्मणयोस्तेन राक्षसेन दुरात्मना॥ १८॥
प्रहस्तप्रमुखाश्चान्ये ये च वीरा महाबलाः।
तैः सार्धं वानरेन्द्रेण युद्धं चासीत्सुदारुणम्॥ १९॥
यथा प्रवृत्तिं तेषां तु युद्धं घोरतरं महत्।
दिवारात्रं मुनिश्रेष्ठ पश्यतां भयदायकम्॥ २०॥
यथा नालोकितं कैश्चिद्देवैर्वा यक्षकिन्नरैः।
कदाचिदन्तरिक्षे च कदाचिद्धरणीतले॥ २१॥
महास्त्रशस्त्रविक्षेपैर्गदासिपरिघोत्तमैः।
त्रिशूलैर्पट्टिशैर्वापि बभूव तुमुलं महत्॥ २२॥
दिनेऽपि समभूद्रात्रिर्निशीथेऽप्यभवद्दिनम्।
अनभ्रेऽप्यभवद्वृष्टिर्वायुश्च तुमुलो ववौ॥ २३॥
वज्रावपातः शतशो बभूव समराङ्गणे।
एवं समभवद्युद्धं दिनत्रयमनुत्तमम्॥ २४॥

इधर दुर्धर्ष अतिकाय पृथ्वीतलको प्रकम्पित करता हुआ और अपने रथकी नेमिकी ध्वनिसे सम्पूर्ण पृथ्वीको चलायमान-सा करता हुआ बहुत अधिक सैनिकोंको साथ लेकर युद्धक्षेत्रमें आ गया॥ ११-१२॥ उसके आ जानेपर दुष्टात्मा राक्षसों और वानरोंके मध्य अत्यन्त भीषण तथा भय उत्पन्न करनेवाला युद्ध छिड़ गया। उस युद्धमें बलवान् वानरोंने गदाओं, परिघों, वृक्षों और पाषाणोंसे प्रहार करके सैकड़ों-हजारों राक्षसोंको मार गिराया और उसी प्रकार महान् बल तथा पराक्रमवाले राक्षसोंने युद्धमें अनेक प्रकारके अस्त्रों और शस्त्रोंसे प्रहार कर वानरोंको भी धराशायी कर दिया॥ १३—१५॥

तब राम और लक्ष्मण—दोनों भाइयोंने धनुष लेकर युद्धस्थलमें स्थित प्रचण्ड पराक्रमवाले राक्षसोंका संहार किया॥ १६॥

इसपर उस महान् राक्षस अतिकायने भी युद्धक्षेत्रमें घोर गर्जना करते हुए सैकड़ों-हजारों वानरोंको मार गिराया। तदनन्तर उस दुरात्मा राक्षसके साथ श्रीराम और लक्ष्मणका अत्यन्त रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। जो प्रहस्त आदि प्रधान योद्धा तथा अन्य दूसरे महाबली वीर थे, उनके साथ वानरेन्द्र (सुग्रीव)-का अत्यन्त भीषण युद्ध होने लगा॥ १७—१९॥

मुनिश्रेष्ठ! उन राक्षसोंकी प्रवृत्तिके अनुकूल वह अत्यन्त भीषण युद्ध दिन-रात चलता रहा। देखनेवालोंके लिये वह युद्ध बड़ा ही भयदायक था। किसी भी देवता, यक्ष अथवा किन्नरने इस प्रकारका युद्ध अन्तरिक्षमें या पृथ्वीतलपर कभी कहीं नहीं देखा था। महान् अस्त्रों, फेंककर मार करनेवाले शस्त्रों तथा श्रेष्ठ कोटिके गदा, तलवार, परिघ, त्रिशूल, पट्टिश आदिके द्वारा वह महान् युद्ध हो रहा था। दिनमें ही रात हो जाती थी और आधी रातकी वेलामें भी दिन उपस्थित हो जाता था। आकाशमें बादल न रहनेपर भी वृष्टि होने लगती और भयंकर ध्वनिके साथ हवा बहने लगती थी। युद्धस्थलमें सैकड़ों बार वज्रपात हुआ। इस प्रकार तीन दिनोंतक घोर युद्ध चलता रहा॥ २०—२४॥

ततो रात्रौ त्रयोदश्यां चतुर्थेऽहनि लक्ष्मणः।
जघान तं महावीरमतिकायं महेषुभिः॥ २५॥

अन्ये च राक्षसश्रेष्ठा राघवेण महात्मना।
निहताः समरे केचिद्वानरैरपि चापरे॥ २६॥

हनुमदङ्गदाद्यैश्च निहता बहवो रणे।
दुद्रुवुश्च भयात्केचिद्रामो हृष्टमना बभौ॥ २७॥

वानराः स्युर्महाहर्षाश्चक्रुर्जयजयध्वनिम्।
बभूव नभसः पुष्पवृष्टिश्च महती ततः॥ २८॥

तदनन्तर चौथे दिन त्रयोदशीतिथिकी रातमें श्रीलक्ष्मणने उस महापराक्रमी अतिकायको अपने तीव्र बाणोंसे मार डाला। महात्मा राघवेन्द्रने समरमें अन्य बड़े-बड़े राक्षसोंका संहार कर दिया। कुछ राक्षस वानरोंके द्वारा मार डाले गये और अन्य बहुत सारे राक्षसोंको उस युद्धक्षेत्रमें हनुमान्, अङ्गद आदिने मार डाला। कुछ राक्षस भयभीत होकर भाग खड़े हुए। इससे श्रीराम प्रसन्नचित्त हो गये और वानरगण अत्यन्त हर्षित होकर जय-जयकी ध्वनि करने लगे। उस समय आकाशसे फूलोंकी भारी वर्षा होने लगी॥ २५—२८॥

रामोऽपि भ्रातरं दोर्भ्यामालिङ्ग्य परमादृतः।
मूर्ध्न्यवघ्राय हृष्टात्मा ब्रह्मणोऽन्तिकमन्वगात्॥ २९॥

प्रातः सम्पूजयामास देवीं बिल्वे सुरेश्वरीम्।
ततः प्रणम्य भूयोऽगाद्युद्धाय रणमूर्धनि॥ ३०॥

श्रीरामने भी अत्यन्त आदरपूर्वक दोनों भुजाओंसे भाई लक्ष्मणका आलिङ्गन करके उनके सिरको सूँघा। पुनः वे प्रसन्नमनसे ब्रह्माजीके पास गये। उन्होंने प्रातःकाल बिल्ववृक्षमें सुरेश्वरी भगवतीकी पूजा की, इसके बाद उन्हें पुनः प्रणाम कर वे युद्धके लिये रणक्षेत्रमें सम्मुख आ डटे॥ २९-३०॥

रावणोऽथ समाकर्ण्य निहतं तं महाबलम्।
रक्षायै विनियोज्यैव पुरस्य तनयं मुने॥ ३१॥

मेघनादं महावीरं स्वयं युद्धाय निर्ययौ।
तदाऽऽसीत्सुमहद्युद्धं भयदं ह्यतुलं मुने॥ ३२॥

रक्षसां वानराणां च यमराष्ट्रविवर्धनम्।

मुने! उस महाबली (अतिकाय)-के वधका समाचार सुनकर रावण अपने पुरकी रक्षाके लिये महान् पराक्रमवाले अपने पुत्र मेघनादको नियुक्त करके स्वयं युद्धके लिये निकल पड़ा। मुने! तदनन्तर वानरों और राक्षसोंमें अत्यन्त महान् युद्ध छिड़ गया, जो भयदायक, अतुलनीय तथा यमलोकका विस्तार करनेवाला था॥ ३१-३२½॥

रामेण लक्ष्मणेनापि युद्धं तस्याभवन्महत्॥ ३३॥

तत्र वीक्ष्य समीपे तु विभीषणममर्षतः॥ ३४॥

मयदत्तां महाशक्तिं जग्राह स निशाचरः।
जाज्वल्यमानां तां शक्तिं विभीषणवधोद्यताम्॥ ३५॥

लक्ष्मणस्त्रातुकामस्तं सम्मुखे तस्य संस्थितः।

श्रीराम और लक्ष्मणके साथ भी उस (रावण)-का महान् युद्ध होने लगा। वहाँपर उनके पासमें विभीषणको देखकर उस राक्षसने क्रोधित होकर मयदानवके द्वारा प्रदत्त, विभीषणके वधके लिये उद्यत उस प्रज्वलित महाशक्तिको उठा लिया। उनकी रक्षा करनेके लिये लक्ष्मण उनके सामने खड़े हो गये॥ ३३—३५½॥

सा शक्तिस्तेन निःक्षिप्ता प्रबिभेद रसातलम्॥ ३६ ॥
लक्ष्मणो मूर्च्छितश्चापि पपात धरणीतले।
तं समादातुकामः स लक्ष्मणं राक्षसेश्वरः॥ ३७ ॥
पस्पर्श बाहुभिः क्षिप्रं क्रुद्धस्तं पवनात्मजः।
मुष्टिना ताडयामास सुदृढं विपुलोरसि॥ ३८ ॥
स तेन ताडितो वीरः पपात रुधिरं वमन्।
मूर्च्छितो घूर्णनयनो निश्चेताः स्वरथोपरि॥ ३९ ॥
ततः संज्ञामनुप्राप्य धनुरुद्यम्य वेगतः।
मारुतिं हन्तुकामोऽसावभ्यधावत रावणः॥ ४० ॥
ततः संवीक्ष्य दुर्धर्षं मारुतेरन्तकोपमम्।
श्रीरामो धनुरुद्यम्य रावणं चेदमब्रवीत्॥ ४१ ॥
अद्य राक्षसराज त्वां निशितैः सायकोत्तमैः।
पातयिष्यामि दुष्टात्मन्यदि नोत्सृजसे रणम्॥ ४२ ॥
इत्युक्त्वा स महाबाहुर्बाणं धनुषि सन्दधे।
ततो भयाद्रणं त्यक्त्वा रावणः पुरमाययौ॥ ४३ ॥
तमाश्वास्य रणे प्रायादिन्द्रजिद्भीमविक्रमः।
तेनाभवन्महद्युद्धं लक्ष्मणस्य महात्मनः॥ ४४ ॥
सुघोरं भयदं सर्वलोकसम्मोहकारकम्।
ततो रात्रावमोघास्त्रैर्लक्ष्मणस्तं दुरासदम्॥ ४५ ॥
पातयामास संग्रामे त्वमायां मुनिपुङ्गव।
ततो विलप्य बहुधा देवान्तकमुखैर्वृतः॥ ४६ ॥
स्वयं पुनः समायातः संग्रामे राक्षसेश्वरः।
प्रतिपत्तिथिमारभ्य यावच्च नवमीतिथिम्॥ ४७ ॥
बभूव तुमुलं युद्धं रामरावणयोर्महत्।
अतुल्यं वचनातीतं सर्वलोकभयङ्करम्॥ ४८ ॥
तत्र षष्ठीतिथिर्यावत्तावत्सैन्यं दिने दिने।
विनष्टं राक्षसेन्द्रस्य विपुलं संख्ययोज्झितम्॥ ४९ ॥

उसके द्वारा छोड़ी गयी वह शक्ति [लक्ष्मणपर आघात करके] रसातलमें चली गयी और लक्ष्मण भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़े। इसके बाद उस राक्षसराज रावणने उन लक्ष्मणको उठाकर ले जानेकी इच्छासे अपनी भुजाओंसे ज्यों-ही उन्हें स्पर्श किया; पवनपुत्र हनुमान्‌ने क्रोधित होकर तत्काल उसकी विशाल छातीपर बड़ी तेजीसे मुष्टिकाप्रहार किया। हनुमान्‌जीके प्रहारसे आहत होकर वह वीर रक्त वमन करता हुआ विघूर्णित नेत्रवाला एवं मूर्च्छित और निश्चेष्ट होकर अपने रथपर गिर पड़ा। इसके बाद चेतना आ जानेपर वह धनुष लेकर हनुमान्‌जीको मारनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा॥ ३६—४० ॥

तत्पश्चात् हनुमान्‌जीको मारनेके लिये तत्पर उस यमराजतुल्य दुर्धर्ष रावणको देखकर श्रीरामने धनुष लेकर उससे यह कहा—राक्षसराज! दुष्टात्मन्! यदि तुम युद्धसे भाग नहीं जाते तो मैं तुम्हें अपने तीव्र तथा श्रेष्ठ बाणोंसे आज मारकर धराशायी कर दूँगा। ऐसा कहकर विशाल भुजाओंवाले उन श्रीरामने बाणको धनुषपर चढ़ाया; उससे वह रावण भयके मारे रण छोड़कर अपने नगरमें आ गया॥ ४१—४३ ॥

तदनन्तर उस रावणको सान्त्वना प्रदान कर प्रचण्ड पराक्रमवाले इन्द्रजित् मेघनादने युद्धक्षेत्रके लिये प्रस्थान किया। उसके साथ महाप्राण लक्ष्मणका अत्यन्त घोर युद्ध हुआ। वह युद्ध बड़ा भयदायक तथा सभी लोगोंको विमोहित कर देनेवाला था। मुनिश्रेष्ठ! इसके बाद लक्ष्मणने अमावास्याकी रात्रिमें अपने अमोघ अस्त्रोंसे उस दुर्धर्ष इन्द्रजित्‌को संग्राममें मारकर गिरा दिया॥ ४४-४५½ ॥

तदनन्तर बहुत प्रकारसे विलाप करके वह राक्षसराज रावण देवान्तक आदि प्रधान योद्धाओंको साथमें लेकर संग्राममें पुनः स्वयं उपस्थित हुआ। प्रतिपदातिथिसे प्रारम्भ करके नवमीतिथिपर्यन्त श्रीराम तथा रावणके मध्य अतुलनीय, वर्णनसे परे और सभी प्राणियोंके लिये भयदायक अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ। जबतक षष्ठीतिथि आयी तबतक प्रतिदिन उस युद्धमें राक्षसेन्द्र रावणके बहुत-से असंख्य सैनिक नष्ट हो चुके थे॥ ४६—४९ ॥

तस्यां षष्ठ्यां विनिर्माय मृण्मयीं प्रतिमां शुभाम्।
सायं कृत्वाधिवासं तु ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ५० ॥
पत्रीं प्रवेष्टां सप्तम्यां देवीं तां समपूजयत्।
पत्रीप्रवेशमात्रेण सर्वसंहारकारिणी ॥ ५१ ॥
रावणस्य वधार्थाय श्रीरामधनुराविशत्।
महाष्टम्यां ततो देवीं प्रातरेव जगत्पिता ॥ ५२ ॥
भक्त्या सम्पूजयामास विपुलैरुपहारकैः।
ततः प्रसन्ना तस्मिन् स दिनसंधौ महेश्वरी ॥ ५३ ॥
प्रविष्टा रामचन्द्रेषुं रावणस्य शिरांसि च।
प्रचिच्छेद मुनिश्रेष्ठ शतधा स रणाजिरे ॥ ५४ ॥
सोऽपि भीतो भगवतीं सस्मार दशकन्धरः।
यदा तत्याज बाणान्स राघवो निधनेच्छया ॥ ५५ ॥
तस्माद्भूयो बभूवुश्च देहमात्राच्छिरांसि च।
न जहौ समरे प्राणान् छेदितोऽपि महेषुभिः ॥ ५६ ॥
चकार तुमुलं युद्धं पूर्वाह्णे नवमीदिने।
अतीव भयदं सर्वदेवानां दिवि पश्यताम् ॥ ५७ ॥
महानवम्यां तस्यां तु ब्रह्मा लोकपितामहः।
देवीं सम्पूजयामास नानाबलिभिरादरात् ॥ ५८ ॥
सुरम्यैर्धूपदीपाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि।
ततो देवी भगवती या विद्या मुक्तिदा स्वयम् ॥ ५९ ॥
सैवाविद्यास्वरूपेण रावणं समुपागमत्।
ततो न देवीं सस्मार न वा भक्तिश्च तत्र वै ॥ ६० ॥
तस्यासीन्मुनिशार्दूल मोहितस्य च मायया।
अमर्षवशमापन्नो युयुधे राघवेण वै ॥ ६१ ॥
ब्रह्मास्त्रजालसंघैः स दर्शयन् शक्तिमात्मनः।
तथैव राघवश्चापि ब्रह्मास्त्रनिवहैर्मुने ॥ ६२ ॥
ताडयामास दुर्धर्षं रक्षसामधिपं रणे।
एवं प्रहरतोः क्रोधात्परस्परजयैषिणोः ॥ ६३ ॥
व्यतीतमभवन्मध्यन्दिनं श्रीरामरक्षसोः।

उस षष्ठी तिथिको जगदम्बाकी शुभ मृण्मयी मूर्ति बनाकर सायंकाल उनका [प्राणप्रतिष्ठाका अङ्गभूत] अधिवास-कर्म करके लोकपितामह ब्रह्माने सप्तमी तिथिको पत्रीप्रविष्ट देवीका पूजन किया। पत्रीप्रवेशमात्रसे ही सर्वसंहारकारिणी जगदम्बा रावणके वधके लिये श्रीरामके धनुषमें प्रवेश कर गयीं। तत्पश्चात् जगत्पिता श्रीब्रह्माजीने महाष्टमी तिथिको प्रातः विपुल पूजनोपचारोंसे भक्तिपूर्वक भगवतीकी विधिवत् पूजा की ॥ ५०—५२½ ॥

उस पूजनसे प्रसन्न होकर भगवती महेश्वरीने मध्याह्नकालमें श्रीरामचन्द्रजीके बाणमें प्रवेश किया। तब मुनिश्रेष्ठ! उन श्रीरामने युद्धक्षेत्रमें रावणके सिरोंको सैकड़ों भागोंमें काट डाला ॥ ५३-५४ ॥ इसके बाद पुनः जब उन श्रीरामने उसका प्राणान्त कर देनेकी इच्छासे बाण छोड़े, तब रावणने भी भयभीत होकर भगवतीका स्मरण किया। उससे उसके सिररहित धड़से पुनः सिर निकल पड़े और श्रीरामके महान् बाणोंसे बेधे जानेपर भी उसने संग्राममें प्राण नहीं छोड़ा। उस रावणने नवमी तिथिको पूर्वाह्णमें आकाशमें खड़े हुए देवताओंके देखते हुए अत्यन्त भीषण तथा भयदायक युद्ध किया ॥ ५५—५७ ॥ उस महानवमी तिथिको लोकपितामह ब्रह्माने अनेक प्रकारके सुरम्य धूप-दीप और विविध प्रकारके नैवेद्य अर्पण करके आदरपूर्वक विधि-विधानसे भगवतीका पूजन किया। तदनन्तर जो साक्षात् मुक्तिदायिनी भगवती विद्यास्वरूपा हैं, वे ही स्वयं अविद्यास्वरूपसे रावणके पास गयीं। मुनिश्रेष्ठ! उस समय उसने देवीका स्मरणतक नहीं किया और मायासे विमोहित उस रावणके हृदयमें देवीके प्रति भक्ति भी नहीं रही ॥ ५८—६०½ ॥

क्रोधके वशीभूत होकर वह रावण अपनी शक्तिका प्रदर्शन करता हुआ ब्रह्मास्त्रके जालसमूहोंसे राघवेन्द्रके साथ युद्ध करता रहा। मुने! उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र भी संग्राममें राक्षसोंके राजा दुर्जेय रावणपर ब्रह्मास्त्र-समुदायोंसे प्रहार करते रहे। इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छावाले श्रीराम तथा रावणको क्रोधपूर्वक परस्पर प्रहार करते हुए दिनका मध्यभाग व्यतीत हो गया ॥ ६१—६३½ ॥

ततोऽपराह्णे रामस्तु संध्याय परमेश्वरीम्॥ ६४॥
प्रणम्य प्रार्थयामास वधार्थं तस्य रक्षसः।
ब्रह्मापि प्रणिपत्येनां देवीं भक्त्या पुनः पुनः॥ ६५॥
प्रार्थयामास नाशाय रावणस्य दुरात्मनः।
ततो देवी स्वयं प्रादादमोघं शस्त्रमुत्तमम्॥ ६६॥
वधार्थं राक्षसेन्द्रस्य ज्वलत्कालाग्नितेजसम्।
ब्रह्मा तदस्त्रमानीय प्रीत्या परमया युतः॥ ६७॥
श्रीरामाय ददौ शीघ्रं रावणस्य विघातिने।
सर्वशक्तिमयं चारुवेगं कालान्तकोपमम्॥ ६८॥
ज्वलन्तं तेजसा वीक्ष्य मुमुदे रघुनन्दनः।
ततः संस्मृत्य तां देवीं तदस्त्रं राघवो मुने॥ ६९॥
सन्धायाकर्णकोदण्डं तूर्णं चिक्षेप तं प्रति।
ततस्तदस्त्रं निर्भिद्य हृदयं दुष्टचेतसः॥ ७०॥
प्राणान् जग्राह वेगेन विवेश च धरातलम्।
ततः पपात संग्रामे रथाद्धेमपरिष्कृतात्॥ ७१॥
पश्यतां सर्वदेवानां रावणो देवकण्टकः।
चालयन्वसुधां सर्वां क्षोभयन् सरितां पतिम्॥ ७२॥
त्रासयन् सर्वभूतानि राक्षसांश्च विषादयन्।



तदनन्तर अपराह्णमें श्रीरामचन्द्रजीने भगवतीका ध्यान करके उन्हें प्रणाम किया और उस राक्षसके वधके लिये उनसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीने भी बार-बार भक्तिपूर्वक देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके दुरात्मा रावणके वधके लिये उन भगवतीसे प्रार्थना की॥ ६४-६५½॥

तब भगवतीने राक्षसेन्द्र रावणके वधके लिये प्रज्वलित कालाग्निके सदृश तेजवाला श्रेष्ठ तथा अमोघ अस्त्र स्वयं प्रदान किया। ब्रह्माजीने उस अस्त्रको शीघ्र लाकर रावणका विनाश करनेवाले श्रीरामको परम प्रसन्नतासे युक्त होकर दे दिया। सर्वशक्तिसम्पन्न, तीव्रगामी, यमराजतुल्य और तेजसे प्रज्वलित उस अस्त्रको देखकर रघुनन्दन श्रीराम अत्यन्त हर्षित हुए॥ ६६—६८½॥

मुने! तदनन्तर उन भगवतीका स्मरण करके श्रीरामने उस रावणको लक्ष्यकर अस्त्रका सन्धान किया और धनुषकी प्रत्यञ्चा कानतक खींचकर उस अस्त्रको छोड़ा। तदनन्तर उस अस्त्रने दुष्टचेता रावणकी छातीको बेधकर उसके प्राण हर लिये और वह वेगपूर्वक पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हो गया। इसके बाद देवताओंके लिये कण्टकस्वरूप वह रावण संग्राममें सभी देवताओंके देखते-देखते स्वर्णनिर्मित रथसे गिर पड़ा। उसके गिरते ही पूरी पृथ्वी हिलने लगी, समुद्रमें विक्षोभ उत्पन्न होने लगा, सभी प्राणी भयभीत हो उठे और राक्षसगण विषादग्रस्त हो गये॥ ६९—७२½॥

वानरा हर्षसम्पन्नाश्चक्रुर्जयजयध्वनिम्॥ ७३॥

त्रैलोक्यवासिनश्चान्ये हते तस्मिन् दुरात्मनि।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च रामोपरि सुगन्धिदा॥ ७४॥

रामाज्ञया तु देवेन्द्रो ववर्षाप्यमृतं यदा।
तदा सञ्जीविता भूयो वानरा ये हता रणे॥ ७५॥

उस दुरात्मा रावणके मारे जानेपर सभी वानरगण तथा तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले अन्य सभी लोग हर्षित हो उठे और जय-जयकार करने लगे, साथ ही श्रीरामके ऊपर सुगन्ध देनेवाले पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। उस समय श्रीरामकी आज्ञासे जब देवराज इन्द्रने अमृतकी वर्षा की, तब जो वानरगण युद्धमें मारे गये थे, वे पुनः जीवित हो गये॥ ७३—७५॥

विभीषणस्तु बहुधा भ्रातृशोकेन दुःखितः।
रुरोद सान्त्वयामास तं रामो भगवान् स्वयम्॥ ७६॥

रावणस्य च संस्कारं कृतवान् स विभीषणः।
ततः सीतां समानीय लक्ष्मणेन समन्वितः॥ ७७॥

श्रीरामो हर्षमापन्नो वानरैश्च समन्वितः।
प्रायात्सम्पूजिता यत्र ब्रह्मणा जगदीश्वरी॥ ७८॥

भाईके शोकसे दुःखित विभीषणने बहुत प्रकारसे विलाप किया। इसपर भगवान् श्रीरामने स्वयं उसे सान्त्वना दी। इसके बाद उस विभीषणने रावणका अन्तिम संस्कार किया। तत्पश्चात् सीताको वहाँसे बुलवाकर परम हर्षको प्राप्त श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण तथा वानरोंको साथ लेकर जहाँ ब्रह्माजी जगदीश्वरीकी आराधना कर रहे थे, वहाँ गये॥ ७६—७८॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीरामरावणयोः संग्रामे रावणवधो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीराम-रावण-संग्राममें 'रावणवध' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

श्रीराम और देवगणोंद्वारा देवीका स्तवन, ब्रह्माजीद्वारा भगवतीका पूजन, देवीके शारदीय पूजा-अनुष्ठानकी अनिवार्यता

श्रीमहादेव उवाच

श्रीरामस्तु ततो देवीं भक्त्या परमया युतः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव प्रीतमानसः॥ १॥

अन्ये च त्रिदशश्रेष्ठास्तत्रागत्य महामुने।
तुष्टुवुश्च महादेवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ २॥

तैः संस्तुता महादेवी पूजिता भक्तिभावतः।
विपुलैर्बलिभिः प्रीता बभूव जगदम्बिका॥ ३॥

श्रीमहादेवजी बोले—तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी दण्डवत् प्रणाम करके परम भक्तिसे युक्त होकर प्रसन्नमनसे भगवतीकी स्तुति करने लगे। महामुने! अन्य श्रेष्ठ देवगण भी वहाँ आकर सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली महादेवीका स्तवन करने लगे। उन सभीके द्वारा भक्तिभावसे स्तुति, पूजन करनेपर जगज्जननी महादेवी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ १—३॥

प्रहर्षश्च महानासीन्मुने त्रैलोक्यवासिनाम्।
तत्र देव्या महोत्साहे स्वर्गे मर्त्ये रसातले॥ ४॥

मुने! उस समय देवीके अति प्रसन्न होनेसे स्वर्गलोक, मर्त्यलोक तथा रसातल—इन तीनों लोकोंके निवासियोंको महान् हर्ष हुआ।

ननृतुर्वानराः सर्वे जगुर्गीतं मनोहरम्।
श्रीरामो मुमुदे देव्याः प्रसादात्पूर्णमानसः॥ ५॥

सभी वानर नृत्य करने तथा मनोहर गीत गाने लगे। भगवतीकी प्रसन्नतासे आप्तकाम श्रीरामजी आनन्दमग्न हो गये॥ ४-५॥

एवं महामहोत्साहे गते तु नवमीतिथौ।
श्रीरामस्य तथान्येषां देवानामपि नारद॥ ६॥

दशम्यां पूजयित्वा तु प्रातरेव पितामहः।
व्यसृजज्जलधौ मूर्तिं ततः स्वगृहमाययौ॥ ७॥

नारद! इस प्रकार नवमी-तिथिको श्रीरामचन्द्रजी तथा अन्य देवताओंके इस महान् हर्षपूर्ण महोत्सवके बीतनेपर पितामह ब्रह्माजीने दशमीतिथिको प्रातःकाल भगवतीकी पूजा करके उनकी मूर्ति समुद्रमें विसर्जित कर दी और उसके बाद वे अपने लोकको लौट आये॥ ६-७॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको लङ्काका राजा बनाया। तत्पश्चात् रघुश्रेष्ठ श्रीमान् रामचन्द्रजी सीता, लक्ष्मण, वानरेन्द्र सुग्रीव,

लङ्केश्वरं ततश्चक्रे रामचन्द्रो विभीषणम्।
ततः श्रीमान् रघुश्रेष्ठः सीतया लक्ष्मणेन च॥ ८॥

पुष्पकं रथमारुह्य वानरेश्वरसंयुतः।
सहितो वानरैः सर्वै राक्षसेशसमन्वितः॥ ९॥



वेष्टितैस्त्रिदशैश्चापि भल्लूकैः कोटिकोटिशः।
पुरःप्रवेशने यात्रां चक्रे नत्वा महेश्वरीम्॥ १०॥

समस्त वानरगण तथा राक्षसेश्वर विभीषणके साथ पुष्पकविमानपर आरूढ़ हुए। उस विमानमें देवगणों तथा करोड़ों-करोड़ों भालुओंसे घिरे हुए उन श्रीरामने भगवती महेश्वरीको प्रणाम करके अपने पुर (अयोध्या)-को जानेहेतु यात्रा आरम्भ की॥ ८—१०॥

इत्येवं मुनिशार्दूल भगवान्पुरुषोऽव्ययः।
स्वयमाराधयामास शरत्काले विधानतः॥ ११॥

अन्येषां का कथा वत्स देवानां यक्षरक्षसाम्।
नराणां सिद्धगन्धर्वपन्नगानां महामते॥ १२॥

मुनिवर! इस प्रकार जब अविनाशी पुरुष भगवान् श्रीरामने शरत्कालमें विधानपूर्वक स्वयं भगवतीकी आराधना की थी तो फिर महामते! वत्स! अन्य देवताओं, यक्षों, राक्षसों, मनुष्यों, सिद्धों, गन्धर्वों तथा नागोंके बारेमें क्या कहना?॥ ११-१२॥

नास्ति देव्या समो लोके समाराध्यतमो मुने।
यस्तां मोहान्न सेवेत स पापात्मा न संशयः॥ १३॥

न तस्य विद्यते स्थानं कुत्रापि मुनिसत्तम।
यस्तत्सपर्यालोपं वै करोति च स पापकृत्॥ १४॥

तस्माच्छक्तोऽथ वा शैवः सौरो वा वैष्णवोऽथवा।
अवश्यं पूजयेद्देवीं शारदीये महोत्सवे॥ १५॥

बलिभिर्मत्स्यमांसाद्यैश्छागकासरमेषकैः।
प्रीतये जगदीश्वर्यास्तथान्यैरुपचारकैः॥ १६॥

वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कर्तव्यं सर्वथादृतैः।
अवश्यं यजनं देव्याः शारदीये महोत्सवे॥ १७॥

गृह्णाति चण्डिका यस्माद् दुष्टान् वै पशुरूपकान्।
तस्मात्पशुबलिर्देयो देवीभक्तिपरायणैः॥ १८॥

अन्यैरपि महायज्ञे देव्याः प्रीतिमभीप्सुभिः।
देव्यर्चनरता ये च प्रतिसंवत्सरं मुने॥ १९॥

तदाज्ञावशगाः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
किमन्यद्बहुनोक्तेन सत्यमेव महामुने॥ २०॥

नास्ति लोकत्रये पुण्यं देव्या अर्चनसम्भवात्।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या रामायणमनुत्तमम्॥ २१॥

देव्या विस्तृतमाहात्म्यं महापातकनाशनम्।
स देव्याः पदवीं याति ब्रह्मादीनां सुदुर्लभाम्॥ २२॥

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ यथा स भगवान् हरिः।
सम्भूय मानुषं देहं समाश्रित्य धरातले॥ २३॥

शत्रोर्निधनमन्विच्छन्नकालेऽपि विधानतः।
देवीं सम्पूजयामास भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥ २४॥

मुने! भगवतीके समान परमाराध्य इस लोकमें कोई नहीं है। जो प्राणी अविवेकके कारण उनकी उपासना नहीं करता, वह निःसंदेह पापात्मा है। मुनिश्रेष्ठ! जो उनकी पूजाका लोप करता है वह पापी है और उसके लिये कहीं भी स्थान नहीं है। अतः चाहे कोई शाक्त हो, शैव हो, सूर्योपासक हो अथवा वैष्णव हो, उसे शारदीय महोत्सवमें जगदीश्वरीकी प्रसन्नताके लिये अनेकविध पूजनोपचारोंसे भगवतीकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। शारदीय महोत्सवमें सभी लोगोंको सावधान होकर आदरपूर्वक देवीकी पूजा सर्वतोभावसे अवश्य ही करनी चाहिये। इसमें वित्तशाठ्य (धनकी कृपणता) नहीं करना चाहिये। मुने! जो लोग प्रत्येक वर्ष देवीका अर्चन-पूजन करते हैं, इन्द्र आदि सभी प्रधान देवता उनकी आज्ञाके वशीभूत हो जाते हैं। महामुने! अधिक कहनेसे क्या लाभ? मैंने जो भी कहा है, वह सत्य ही है। भगवतीकी आराधनासे मिलनेवाले पुण्यसे बढ़कर तीनों लोकोंमें कोई भी पुण्य नहीं है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उत्कृष्ट रामायण तथा महापातकोंका नाश करनेवाले भगवतीके विस्तृत माहात्म्यका श्रवण करता है, वह ब्रह्मा आदिके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ देवीलोक प्राप्त कर लेता है॥ १३—२२॥

मुनिश्रेष्ठ! जिस प्रकारसे उन भगवान् श्रीहरिने मानवदेह धारण कर इस पृथ्वीलोकमें जन्म लिया और शत्रुके निधनकी इच्छा करते हुए असमयमें भी विधानपूर्वक भगवतीका पूजन किया—वह सब कुछ मैंने आपसे कह दिया। अब आप आगे क्या सुनना चाहते हैं?॥ २३-२४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे देव्याः शारदीयपूजानुष्ठाने श्रीमद्रामायणवर्णनं नाम अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत देवीके शारदीय पूजानुष्ठानमें 'श्रीमद्रामायणवर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

भगवान् शिवका भगवतीसे पुरुषरूपमें अवतार लेनेकी प्रार्थना करना तथा स्वयं राधा और आठ पटरानियोंके रूपमें अवतरित होनेका आश्वासन देना, भगवतीका स्वयं कृष्णरूपसे तथा भगवान् विष्णुका अर्जुनरूपसे अवतार लेने और महाभारतयुद्धमें दुष्ट राजाओंका वध करनेकी बात बताना

श्रीनारद उवाच

वदन्त्यनेकतत्त्वज्ञाः काली विद्या परात्परा।
या सैव कृष्णरूपेण क्षिताववातरत्स्वयम्॥ १॥

वसुदेवगृहे देव्यां देवक्यां निजलीलया।
कंसादिदुष्टभूभारनिवृत्त्यै जगदीश्वरः॥ २॥

अभवच्छ्रोतुमिच्छामि कस्माद्देवी महेश्वरी।
पुंरूपेणावतीर्णाभूत्क्षितौ तन्मे वद प्रभो॥ ३॥

श्रीनारदजी बोले—अनेक तत्त्वज्ञानी लोग कहते हैं कि जो परात्पर विद्यास्वरूपिणी काली हैं, उन्होंने ही स्वयं पृथ्वीपर श्रीकृष्णरूपमें अवतार ग्रहण किया। कंस आदि दुष्टोंका संहार करके पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये उन्होंने ही अपनी लीलासे वसुदेवके घरमें देवी देवकीके गर्भसे जगदीश्वरके रूपमें जन्म लिया। प्रभो! भगवती महेश्वरी पृथ्वीलोकमें पुरुषरूपमें ही क्यों अवतीर्ण हुईं, वह प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ, आप मुझे बताइये॥ १—३॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु गुह्यतमं वत्स सत्यं ते कथयामि तत्।
अवतीर्णाभवत्पृथ्व्यां देवक्यां वसुदेवतः॥ ४॥

शम्भोरिच्छानुसारेण मायापुरुषरूपधृक्।
दुष्टभूभारसंहृत्यै द्वापरान्ते महीतले॥ ५॥

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! सुनिये, अब मैं आपसे परम गोपनीय तथा सत्यप्रसंगका वर्णन कर रहा हूँ। उन भगवतीने दुष्टोंसे पृथ्वीका भार समाप्त करनेके लिये द्वापरके अन्तमें शम्भुकी इच्छाके अनुसार मायापुरुषका रूप धारण कर वसुदेवसे देवकीके गर्भसे पृथ्वीलोकमें अवतार लिया था॥ ४-५॥

श्रीनारद उवाच

यथेच्छा सममूच्छम्भोर्यथा चावातरत्क्षितौ।
काली श्रीकृष्णरूपेण वसुदेवगृहे स्वयम्॥ ६॥

देवक्यां परमेशान तदेतद्विस्तरेण मे।
त्वं मे शंस जगन्नाथ सर्वज्ञोऽसि दयापरः॥ ७॥

श्रीनारदजी बोले—महेशान! जिस प्रकारसे शम्भुकी इच्छा हुई और जिस प्रकारसे स्वयं उन भगवती कालीने वसुदेवके घरमें देवकीके गर्भसे श्रीकृष्णरूपसे पृथ्वीपर अवतार लिया, यह सब आप मुझे विस्तारपूर्वक बताइये। जगन्नाथ! आप दयालु तथा सर्वज्ञ हैं॥ ६-७॥



श्रीमहादेव उवाच

वत्स वक्ष्याम्यशेषेण तवाहं मुनिसत्तम।
यथेच्छाभून्महेशस्य यथा जाता च सा क्षितौ॥ ८ ॥

काली श्रीकृष्णरूपेण द्वापरान्ते महीतले।
शृणु सावहितो भूत्वा भक्तिमानसि नारद॥ ९ ॥

एकदा मन्दिरे रम्ये कैलासे च सुनिर्जने।
पार्वत्या विहरञ्छम्भुः स्थितः परमकौतुकी॥ १० ॥

तत्र शम्भुर्निरीक्ष्यैव पार्वत्या रूपमुत्तमम्।
चेतसा चिन्तयामास नारीजन्मातिशोभनम्॥ ११ ॥

ततः प्राह महादेवो देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्।
प्रीणयन् प्रियवाक्येन विमृजन् पाणिना मुखम्॥ १२ ॥

श्रीशिव उवाच

कृपया परमेशानि सर्व एव मनोरथाः।
परिपूर्णीकृताः किञ्चिदवशिष्टं न विद्यते॥ १३ ॥

अन्यत्किमपि शर्वाणि विद्यते वाञ्छितं मम।
तत्सम्पूर्णं कुरु शिवे यदि ते मय्यनुग्रहः॥ १४ ॥

श्रीदेव्युवाच

किमन्यद्विद्यते शम्भो वाञ्छितं तद्वद प्रभो।
करिष्ये तच्च सम्पूर्णं भवतः प्रियकाम्यया॥ १५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! मुनिश्रेष्ठ! जिस तरहसे महेश्वरकी इच्छा हुई और जिस तरहसे उन भगवती कालीने द्वापरके अन्तमें पृथ्वीलोकमें जन्म ग्रहण किया, नारद! आप परम भक्तिमान् हैं। अतः वह सब प्रसंग मैं आपको सम्पूर्णरूपसे बतला रहा हूँ; आप सावधान होकर सुनिये॥ ८-९॥

एक समयकी बात है, परम कौतुकी भगवान् शिव कैलासशिखरपर सुरम्य मन्दिरमें एकान्तमें पार्वतीके साथ विहार कर रहे थे। वहाँपर पार्वतीजीके सुन्दर रूपको देखकर भगवान् शम्भु मन-ही-मन सोचने लगे कि नारी-जन्म तो अत्यन्त शोभन है। उसी समय अपने हाथसे पार्वतीके मुखकमलका स्पर्श करते हुए तथा उन सर्वाङ्गसुन्दरी भगवतीको अपने मधुर वचनोंसे प्रसन्नता प्रदान करते हुए शिवजी उनसे कहने लगे—॥ १०—१२॥

श्रीशिवजी बोले—परमेशानि! आपकी कृपासे मेरे सभी मनोरथ परिपूर्ण हो चुके हैं और कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह गया है। तथापि शर्वाणि! मेरी एक दूसरी इच्छा हुई है। शिवे! यदि मुझपर आपका अनुग्रह हो तो उसे पूर्ण कर दीजिये॥ १३-१४॥

श्रीदेवीजी बोलीं—शम्भो! आपकी दूसरी कौन-सी अभिलाषा है; उसे बताइये। प्रभो! आपकी प्रसन्नताके लिये मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी॥ १५॥

श्रीशिव उवाच

यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम्॥ १६॥

यथाहं ते प्रियो भर्ता त्वं वै प्राणसमाङ्गना।
एतदेव मनोऽभीष्टं विद्यते प्रार्थ्यमुत्तमम्॥ १७॥

कुरुष्व परिपूर्णं मे भक्ताभीष्टफलप्रदे।

श्रीदेव्युवाच

भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले॥ १८॥

पुंरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो।
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन॥ १९॥

श्रीशिव उवाच

पुंरूपेण जगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णतां त्वयि।
वृषभानोः सुता राधास्वरूपाहं स्वयं शिवे॥ २०॥

तव प्राणसमा भूत्वा विहरिष्ये त्वया सह।
मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये भविष्यन्त्युत योषितः॥ २१॥
रुक्मिणीसत्यभामाद्या महिष्यश्चारुलोचनाः।

श्रीदेव्युवाच

तव मूर्तिभिरेताभिर्विहरिष्ये यथोचितम्॥ २२॥

यथा नापि कृतं कैश्चिन्न श्रुतं वापि कुत्रचित्।
अपूर्वं तदुपाख्यानं लोकानां पापनाशनम्॥ २३॥

भविष्यति महादेव महापुण्यकरं तथा।
विजया च जया चैव प्रियसख्यौ मम प्रभो॥ २४॥

श्रीदामवसुदामाख्यौ पुरुषौ सम्भविष्यतः।
विष्णुना समयः पूर्वमासीन्मम महेश्वर॥ २५॥

स मेऽग्रजः प्रियो भ्राता भविष्यति हलायुधः।
मम प्रीतिकरो नित्यं रामाख्यः सुमहाबलः॥ २६॥

देवकार्यं करिष्यामि सम्भविष्यामि च क्षितौ।
संस्थाप्य महतीं कीर्तिं पुनरेष्यामि भूतलात्॥ २७॥

श्रीशिवजी बोले—यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो पृथ्वीतलपर कहीं भी पुरुषरूपसे अवतीर्ण होइये और मैं स्त्रीरूपसे अवतीर्ण होऊँगा। इस समय जिस प्रकार मैं आपका प्रिय पति हूँ तथा आप मेरी प्राणप्रिया पत्नी हैं, उसी प्रकारका दाम्पत्य-प्रेम उस समय भी हो। भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली [देवि!] यही मेरे मनकी अभिलाषा है; मेरी इस उत्तम याचनाको आप परिपूर्ण कर दीजिये॥ १६-१७½॥

श्रीदेवीजी बोलीं—महादेव! प्रभो! आपकी प्रसन्नताके लिये मैं पृथ्वीतलपर वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें श्रीकृष्ण होकर अवश्य ही जन्म लूँगी और त्रिलोचन! मेरी प्रसन्नताके लिये आप भी स्त्रीरूपमें जन्म लीजिये॥ १८-१९॥

श्रीशिवजी बोले—जगत्का पालन करनेवाली शिवे! आपके पुरुषरूपसे श्रीकृष्णके रूपमें प्राप्त होनेपर स्वयं मैं आपकी प्राणसदृश वृषभानुपुत्री राधारूपमें होकर आपके साथ विहार करूँगा। साथ ही मेरी आठ मूर्तियाँ भी सुन्दर नेत्रोंवाली रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियोंके रूपमें मृत्युलोकमें अवतरित होंगी॥ २०-२१½॥

श्रीदेवीजी बोलीं—आपकी इन मूर्तियोंके साथ मैं ऐसा यथोचित विहार करूँगी, जैसा न तो किसीने किया है और न तो कहीं सुना ही गया है। महादेव! वह अद्भुत उपाख्यान प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् पुण्य प्रदान करनेवाला होगा। प्रभो! विजया और जया नामक मेरी दोनों सखियाँ उस समय श्रीदाम और वसुदाम नामसे पुरुषरूपमें प्रतिष्ठित होंगी। महेश्वर! पूर्वकालमें विष्णुजीके साथ मेरी प्रतिज्ञा हुई है, उसके अनुसार वे उस समय (जब मैं श्रीकृष्ण होऊँगी) मेरे बड़े भाई होंगे। सर्वदा मेरा प्रिय करनेवाले, महान् बलशाली तथा आयुधके रूपमें हल धारण करनेवाले वे 'बलराम' नामसे प्रसिद्ध होंगे। इस प्रकार मैं पृथ्वीपर प्रादुर्भूत होऊँगी और देवताओंके कार्य सम्पन्न करूँगी तथा अन्तमें महान् कीर्ति स्थापित करके भूतलसे वापस चली जाऊँगी॥ २२—२७॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं प्रतिश्रुतं देव्या शम्भवे प्रेमभावतः।
तस्माद्बभूव सा कृष्णः श्यामो नवघनद्युतिः॥ २८॥

एतदेव मुनिश्रेष्ठ कारणं मूलमीरितम्।
कृष्णावतारे शर्वाण्या अन्यच्चापि निशामय॥ २९॥

निहताः समरे दैत्याः पूर्वं देव्या च विष्णुना।
द्वापरान्ते महीपाला बभूवुर्मुनिसत्तम॥ ३०॥

कंसस्तत्रातिदुर्धर्षस्तथा दुर्योधनादयः।
अनेकदेशसम्भूतास्तथान्ये क्षत्रियर्षभाः॥ ३१॥

तेषां भारासहा पृथ्वी गोरूपा ब्रह्मणोऽन्तिकम्।
प्रययौ त्रिदशैः सर्वैः समंतात्परिवारिता॥ ३२॥

तां दृष्ट्वा धरणीं ब्रह्मा गोरूपामतिदुःखिताम्।
उवाच मातः कस्मात्त्वं मदन्तिकमुपागता॥ ३३॥

धरण्युवाच

निहताः समरे ये ये पूर्वं दानवपुङ्गवाः।
त एव साम्प्रतं ब्रह्मन् राजानो दुष्टचेतसः॥ ३४॥

तान्वोढुमसमर्थाहं तवान्तिकमुपागता।
उपायः कल्प्यतां तेषां निधने कमलासन॥ ३५॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य वचो ब्रह्मा धरण्या मुनिपुङ्गव।
आश्वास्य तां स्वयं प्रागात्कैलासं त्रिदशैर्वृतः॥ ३६॥

तत्र वीक्ष्य जगद्धात्रीं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
कृताञ्जलिपुटो ब्रह्मा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३७॥

ब्रह्मोवाच

मातस्त्वया हता ये ये दैत्यदानवराक्षसाः।
विष्णुनापि च ते सर्वे साम्प्रतं क्षत्रियर्षभाः॥ ३८॥

तैर्व्याप्ता सकला पृथ्वी राजभिर्दुष्टचेष्टितैः।
न तान् विसहते पृथ्वी मृत्युस्तेषां विचिन्त्यताम्॥ ३९॥

त्वं मातर्विग्रहं कृत्वा छलेन धरणीभुजः।
निपातय च तेषां तु मृत्युरूपा त्वमम्बिके॥ ४०॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार प्रेमभावनासे युक्त होकर भगवतीने शम्भुसे प्रतिज्ञा की थी। उसी कारण वे नवीन मेघकी आभासे युक्त श्याम-वर्णवाले श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुईं। मुनिश्रेष्ठ! शर्वाणीके श्रीकृष्णावतार धारण करनेका यही मुख्य कारण कहा गया है। अब आप अन्य प्रसंग भी सुनिये॥ २८-२९॥

मुनिश्रेष्ठ! पूर्वकालमें भगवती और विष्णुजीने युद्धमें जिन राक्षसोंका संहार किया था, द्वापरके अन्तमें वे ही बहुत-से राजाओंके रूपमें उत्पन्न हुए। उनमें कंस तथा दुर्योधन आदि बड़े ही दुर्दान्त थे। उसी प्रकार दूसरे और भी महान् क्षत्रिय नरेश अनेक देशोंमें उत्पन्न हुए। उनके भारको सहन न कर सकनेके कारण गायका रूप धारण कर पृथ्वी समस्त देवताओंके साथ ब्रह्माजीके पास गयीं। दुःखसे संतप्त उन गोरूपधारिणी पृथ्वीको देखकर ब्रह्माजीने कहा—माता! आप मेरे पास किसलिये आयी हैं?॥ ३०—३३॥

पृथ्वी बोलीं—ब्रह्मन्! पूर्वकालमें जो-जो महान् राक्षस युद्धमें मारे गये थे, वे ही इस समय दुष्टचित्तवाले राजा बने हुए हैं। उनका भार वहन करनेमें असमर्थ होकर मैं आपके पास आयी हूँ। अतः कमलासन! उनकी मृत्युका कोई उपाय कीजिये॥ ३४-३५॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! पृथ्वीका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी उन्हें आश्वासन प्रदान कर देवताओंके साथ कैलासपर्वतपर पहुँचे। वहाँपर जगत्का पालन करनेवाली भगवतीको देखकर ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़कर उन्हें बार-बार प्रणाम किया और यह वचन कहा—॥ ३६-३७॥

ब्रह्माजी बोले—माता! आपने और विष्णुजीने जिन-जिन दैत्यों, दानवों और राक्षसोंका संहार किया था, वे सब इस समय बड़े-बड़े क्षत्रिय राजा हो गये हैं। उन दुराचारी राजाओंसे पृथ्वी व्याप्त है और उनका भार सहन नहीं कर पा रही है, अतः आप उनकी मृत्युका उपाय सोचिये। माता! आप मायाविग्रह धारणकर छलके द्वारा उन राजाओंका वध कीजिये; क्योंकि अम्बिके! आप उनकी मृत्युस्वरूपिणी हैं॥ ३८—४०॥

श्रीदेव्युवाच

नाहं योत्स्यामि संग्रामे स्त्रीरूपा क्षत्रियर्षभैः।
यतस्ते स्त्रीस्वरूपेण मां भक्त्या समुपाश्रिताः॥ ४१॥

किंतु मे भद्रकाली या मूर्तिर्नवघनद्युतिः।
वसुदेवगृहे ब्रह्मन् पुंरूपेण भविष्यति॥ ४२॥

देवक्यां द्विभुजः सौम्यो वनमाला विराजितः।
श्रीवत्सलाञ्छनधरः सुचारुमुखपङ्कजः॥ ४३॥

आत्मसंगोपनार्थाय विष्णुलक्षणलक्षितः।
सर्वाङ्गसुन्दरः श्यामः शङ्खचक्रविराजितः॥ ४४॥

भविष्यति महामायो दुष्टक्षत्रियमर्दनः।
पातयिष्यति कंसादीन् विविधान् क्षत्रियर्षभान्॥ ४५॥

विष्णुश्चापि निजांशेन पाण्डवो भीमविक्रमः।
अर्जुनेति समाख्यातो भविष्यति महाबलः॥ ४६॥

तस्य भ्राता स्वयं धर्मो ज्येष्ठो नाम्ना युधिष्ठिरः।
उत्पन्नश्चापरस्तद्वद्भीमसेनो महाबलः॥ ४७॥

पवनोऽपि निजांशेन महाबलपराक्रमः।
उत्पत्स्यतस्तथा माद्रिपुत्रौ भीमपराक्रमौ॥ ४८॥

अश्विनौ सहजौ वीरौ भ्रातरावतिदुर्जयौ।
ते धर्मनिरताः सर्वे पाण्डवाः सत्यविक्रमाः॥ ४९॥

मदंशसम्भवां कृष्णामवमंस्यति दुर्मतिः।
दुर्योधनाह्वयः क्रूरः सर्वेषां कण्टकोपमः॥ ५०॥

अन्यच्चापि स पापात्मा पाण्डवानां महात्मनाम्।
संक्लेशजनकं कर्म करिष्यति दुरासदः॥ ५१॥

अज्ञातवनवासादि दुःखदं सर्वदेहिनाम्।
ततोऽहं पाण्डुपुत्राणां कृत्वा साहाय्यमुत्तमम्॥ ५२॥

उद्योगं सुमहत्कृत्वा भविष्ये समरोत्सुकः।
स चापि दुर्मतिः कर्णशकुन्योर्मतमास्थितः॥ ५३॥

करिष्यति समुद्योगं युद्धे दुर्योधनः स्वयम्।
तत्र सर्वे महीपाला नानादेशनिवासिनः॥ ५४॥

समायास्यन्ति साहाय्यं कर्तुं भरतसिंहयोः।

श्रीदेवीजी बोलीं—मैं स्त्रीस्वरूपमें रहते हुए युद्धक्षेत्रमें उन महान् क्षत्रियोंके साथ नहीं लड़ूँगी; क्योंकि उन्होंने भक्तिपूर्वक मेरे स्त्रीस्वरूपका ही आश्रय ग्रहण किया है, किंतु ब्रह्मन्! नवीन मेघकी आभावाली मेरी जो भद्रकाली मूर्ति है, वह वसुदेवके घरमें पुरुषरूपसे जन्म लेगी॥ ४१-४२॥ देवकीके गर्भसे दो भुजाओंवाला सौम्यरूप धारण करके वनमालासे सुशोभित, श्रीवत्सचिह्नको धारण किये हुए अत्यन्त सुन्दर मुखकमलवाले सर्वाङ्गसुन्दर 'श्याम' अवतार लेंगे। वे अपने स्वरूपको छिपानेके लिये भगवान् विष्णुके लक्षणोंसे युक्त होकर शङ्ख, चक्रसे सुशोभित होंगे। महती मायासे युक्त तथा दुष्ट क्षत्रियोंका नाश करनेवाले वे कंस आदि विविध पराक्रमी क्षत्रियोंका संहार करेंगे॥ ४३—४५॥ भगवान् विष्णु भी अपने अंशसे उत्पन्न होकर प्रचण्ड पराक्रमवाले महाबली पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें प्रसिद्ध होंगे। साक्षात् धर्मराज उनके बड़े भाईके रूपमें युधिष्ठिर नामसे उत्पन्न होंगे और महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न पवनदेव अपने अंशसे उनके दूसरे महाबली भाई भीमसेनके रूपमें प्रादुर्भूत होंगे। महान् वीर अश्विनीकुमारोंके अंशसे प्रचण्ड पराक्रमी तथा अपराजेय माद्रीपुत्र नकुल और सहदेव नामक उनके दो भाई उत्पन्न होंगे। सत्य पराक्रमवाले वे समस्त पाण्डव धर्मपरायण होंगे॥ ४६—४९॥ सभीके लिये कण्टकतुल्य, दुर्बुद्धि तथा क्रूर दुर्योधन नामक राजा मेरे अंशसे उत्पन्न कृष्णा (द्रौपदी)-का अपमान करेगा। साथ ही वह दुर्जय तथा पापात्मा दुर्योधन महात्मा पाण्डवोंके लिये अज्ञात-वनवास आदि कष्टकारक एवं सभी प्राणियोंके लिये दुःखदायक कर्म करेगा॥ ५०-५१½॥ तत्पश्चात् मैं पाण्डुपुत्रोंकी विशेष सहायता करके और महान् युद्धसम्बन्धी तैयारी करके युद्धके लिये उत्सुक होऊँगी तथा संग्राम करनेका इच्छुक वह दुर्मति दुर्योधन भी स्वयं कर्ण एवं शकुनिके परामर्शके वशीभूत होकर युद्धके लिये अत्यधिक प्रयत्न करेगा। भरतवंशी उन दोनों वीरों (युधिष्ठिर, दुर्योधन)-की सहायता करनेके लिये अनेक देशोंमें निवास करनेवाले सभी राजागण वहाँ युद्धक्षेत्रमें आयेंगे॥ ५२—५४½॥

वितत्य महतीं मायां तत्राहं रणमूर्धनि ॥ ५५ ॥
पातयिष्यामि तान्वीरान्परस्परजिघांसतः ।
मयैव मोहिताः सर्वे राजानो दुष्टचेतसः ॥ ५६ ॥
पातयिष्यन्ति संग्रामे शस्त्रघातैः परस्परम् ।
शून्या राजर्षिभिः पृथ्वी बालवृद्धावशेषिता ॥ ५७ ॥
भविष्यति कुरुक्षेत्रे युद्धे जाते सुदारुणे ।
स्थास्यन्ति भ्रातरः पञ्च पाण्डवा धर्मतत्पराः ॥ ५८ ॥
पुण्यात्मानो महाभागा मयि भक्तिपरायणाः ।
एवमेवंविधे दुष्टान् राजन्यान् दुष्टचेतसः ॥ ५९ ॥
प्रायशो नाशयिष्यामि कुरुपाण्डुसमागमे ।
अन्यांस्तत्र विशिष्टांश्च क्षत्रियान् भीमविक्रमान् ॥ ६० ॥
पातयिष्यामि संग्रामे छलेन कमलासन ।
तत्र स्थित्वा परां कीर्तिं संस्थाप्याहं महीतले ॥ ६१ ॥
उत्पाद्य संततीश्चापि विनिपात्य छलेन च ।
निर्भारां वसुधां कृत्वा पुनरेष्यामि चात्र तु ॥ ६२ ॥
एवं लोकहितार्थाय करिष्यामि जगत्पते ।
त्वं च गत्वा जगन्नाथं प्रार्थयस्व सुरोत्तमम् ॥ ६३ ॥
स यथा मानुषं देहमाश्रित्य धरणीतले ।
अवतीर्णो भवेच्छीघ्रं पाण्डुपत्न्यां महाबलः ॥ ६४ ॥
तथा विधेहि यत्नेन मा चिरं कमलासन ।
त्वरितं गच्छ वैकुण्ठे वार्तां कथय तं विधे ॥ ६५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं स तया प्रोक्तो ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रणिपत्य महादेवीं वैकुण्ठं प्रययौ त्वरन् ॥ ६६ ॥
तत्र सम्प्रार्थयामास विष्णुं कमलसम्भवः ।
पृथिव्यां जन्मने पाण्डोः पत्न्यां मानुषरूपतः ॥ ६७ ॥
तच्छ्रुत्वा भगवान् प्राह देहं मानुषमाश्रितः ।
सम्भविष्यामि भूपृष्ठे कुन्त्यां देवात्पुरन्दरात् ॥ ६८ ॥

मैं युद्धमें महान् माया फैलाकर समरक्षेत्रमें सम्मुख उपस्थित होकर परस्पर मारनेकी इच्छावाले उन वीरोंका संहार कर दूँगी। मेरी ही मायासे मोहित होकर दुष्टबुद्धिवाले सभी राजा युद्धमें शस्त्रास्त्रोंके प्रहारसे एक-दूसरेको मार डालेंगे। कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त भीषण संग्राम होनेके उपरान्त यह पृथ्वी बालकों तथा वृद्धोंको छोड़कर श्रेष्ठ राजाओंसे विहीन हो जायगी। उस समय मेरी भक्तिमें संलग्न रहनेवाले महान् भाग्यशाली, पुण्यात्मा तथा धर्मनिष्ठ पाण्डुपुत्र पाँचों भाई बच जायँगे ॥ ५५—५८½ ॥

कौरवों तथा पाण्डवोंके इस प्रकारके युद्धमें मैं दुष्ट विचारवाले सभी पापी राजाओंको प्रायः विनष्ट कर डालूँगी। कमलासन! प्रचण्ड तेजवाले अन्य विशिष्ट क्षत्रियोंको भी मैं उस संग्राममें मायापूर्वक मार डालूँगी। वहाँ स्थित रहकर पृथ्वीतलपर महान् कीर्ति स्थापित करूँगी। बहुसंख्य यादव-संतति उत्पन्न कर और छलपूर्वक उनका संहार करके पृथ्वीको भारमुक्त कर पुनः यहाँ लौट आऊँगी ॥ ५९—६२ ॥

जगत्पते! मैं लोककल्याणके लिये इस प्रकारका कार्य करूँगी। आप सुरश्रेष्ठ जगन्नाथ विष्णुके पास जाकर उनसे प्रार्थना कीजिये, जिससे मानवदेह धारण कर वे महाबली विष्णु पाण्डुपत्नीके गर्भसे शीघ्र पृथ्वीतलपर अवतरित होवें। कमलासन! आप वैसा ही प्रयत्न कीजिये, इसमें देर न कीजिये। ब्रह्मन्! आप शीघ्र ही वैकुण्ठलोक जाइये और उनसे ऐसा कहिये ॥ ६३—६५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार उन भगवतीके कहनेपर लोकपितामह ब्रह्माजी महादेवीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके शीघ्रतापूर्वक वैकुण्ठके लिये चल दिये। वहाँपर पद्मयोनि ब्रह्माजीने पृथ्वीपर पाण्डुपत्नीके गर्भसे मनुष्यरूपमें जन्म लेनेके लिये विष्णुभगवान्से प्रार्थना की। उसे सुनकर भगवान् विष्णुने कहा कि मैं इन्द्रदेवके द्वारा कुन्तीके गर्भसे मानवरूप धारण कर पृथ्वीतलपर अवतीर्ण होऊँगा ॥ ६६—६८ ॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहृष्टात्मा निजालयम्।
प्रययौ मुनिशार्दूल प्रणिपत्य जगत्पतिम्॥ ६९॥

मुनिश्रेष्ठ! वह वचन सुनकर भगवान् ब्रह्माके मनमें अपार हर्ष उत्पन्न हुआ और वे जगत्पति विष्णुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपने लोकको चले गये॥ ६९॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे ब्रह्मभगवत्योः कथोपकथनं नाम एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥
॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'ब्रह्मा-भगवतीका कथोपकथन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

कश्यप और अदितिका वसुदेव-देवकीके रूपमें जन्म, कंसद्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध, देवीका कृष्णरूपमें देवकीके गर्भसे जन्म लेना और सिंहवाहिनीरूपमें आकाशमें स्थित हो कंसकी मृत्युकी भविष्यवाणी कर अन्तर्धान होना

श्रीमहादेव उवाच

विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुतः स्वयम्।
निजांशेनाभवत्कृष्णो देवानां कार्यसिद्धये॥ १॥

विष्णुश्चापि द्विधा भूत्वा जन्म लेभे महीतले।
वसुदेवगृहे रामो महाबलपराक्रमः॥ २॥

तथापरः पाण्डुसुतो धन्विश्रेष्ठो धनञ्जयः।
इदानीं जन्मविस्तारं शृणु तेषां महामते॥ ३॥

तत्रादौ शृणु ते वक्ष्ये जन्म श्रीरामकृष्णयोः।
अदितिर्देवमाता च कश्यपोऽथ प्रजापतिः॥ ४॥

देवीं सम्प्रार्थयामास सद्भक्त्या सुचिरं पुरा।
निराहारो जले स्थित्वा शीते ग्रीष्मेऽग्निमध्यतः॥ ५॥

दिव्यौ वर्षसहस्रौ द्वौ तेपाते भक्तिसंयुतौ।
तयोः प्रसन्ना समभूत्प्रत्यक्षा जगदीश्वरी॥ ६॥

उवाच युवयोः किं वा वाञ्छितं वृणुतं च तत्।
ततस्तावूचतुर्देवीं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ ७॥

मातस्त्वमावयोर्गेहे जन्म प्राप्नुहि लीलया।

श्रीमहादेवजी बोले—ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर साक्षात् भगवती देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने अंशसे वसुदेवपुत्र भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुईं और विष्णुभगवान्ने भी वसुदेवके घरमें महान् बल तथा पराक्रमवाले श्रीबलराम एवं दूसरे पाण्डुपुत्र धनुर्धरोंमें श्रेष्ठ अर्जुन—इन दो रूपोंमें होकर पृथ्वीतलपर जन्म लिया॥ १-२½॥ महामते! अब उनके जन्मके सम्बन्धमें विस्तारसे सुनिये। उसमें मैं प्रारम्भमें श्रीबलराम और श्रीकृष्णके जन्मका वर्णन करूँगा, आप उसे सुनें—॥ ३½॥ प्राचीन कालमें देवताओंकी माता अदिति तथा प्रजापति कश्यपने दीर्घकालतक सच्ची भक्तिसे भगवतीकी उपासना की। उन दोनोंने निराहार रहते हुए शीतकालमें जलमें खड़े होकर तथा ग्रीष्मकालमें अग्निके मध्य स्थित रहकर दो हजार दिव्य वर्षोंतक भक्तिपूर्वक कठोर तप किया। उन दोनोंपर परम प्रसन्न होकर भगवती जगदीश्वरी साक्षात् प्रकट हो गयीं और बोलीं—आप दोनोंकी क्या अभिलाषा है? जो भी हो उसे माँग लीजिये॥ ४—६½॥ तब उन दोनोंने देवीको बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनसे कहा—माता! आप हम दोनोंके घरमें लीलापूर्वक जन्म ग्रहण कीजिये॥ ७½॥

यथा दक्षगृहे जन्माभवत्तव सुरोत्तमे॥ ८॥

प्रसूत्यामावयोर्गेहे जन्म द्वापरशेषतः।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे तथा ते सम्भवस्तु ते॥ ९॥

सुरोत्तमे! जैसे दक्षप्रजापतिके घरमें आपका जन्म हुआ था, उसी प्रकार द्वापर युगके अन्तमें पृथ्वीतलके किसी स्थानपर हमारे घरमें भी आप जन्म लें॥ ८-९॥

श्रीदेव्युवाच

शम्भोरीप्सितसिद्ध्यर्थं स्त्रीरूपस्य निजेच्छया।
पुंरूपः सम्भविष्यामि नवीनजलदद्युतिः॥ १०॥

तदेयं मुण्डमालाऽपि वनमाला भविष्यति।
सौम्यरूपं वपुर्घोरं द्विनेत्रं द्विभुजान्वितम्॥ ११॥

पीताम्बरधरं वंशीकरं गोपीमनोहरम्।
भविष्यति सुसम्पन्नं विष्णुलक्षणलक्षितम्॥ १२॥

श्रीदेवीजी बोलीं—स्त्रीरूपमें अवतीर्ण शम्भुकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये मैं अपनी इच्छासे नवीन मेघके समान कान्तिवाले पुरुषरूपमें आविर्भूत होऊँगी तथा मेरी यह मुण्डमाला भी वनमाला हो जायगी। मेरा यह भयानक विग्रह सौम्यरूप, दो नेत्रों तथा दो भुजाओंसे युक्त, पीताम्बरसे सुशोभित, हाथमें वंशी लिये हुए तथा गोपियोंके मनको आकर्षित करनेवाला, ऐश्वर्ययुक्त भगवान् विष्णुके लक्षणोंसे सम्पन्न होगा॥ १०—१२॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा सा महादेवी तयोरन्तर्हिताभवत्।
तौ जग्मतुर्निजस्थानं प्रहृष्टौ मुनिसत्तम॥ १३॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर वे महादेवी उन दोनोंके समक्ष ही अन्तर्धान हो गयीं और वे दोनों प्रसन्न होकर अपने स्थानको चले गये॥ १३॥

स कश्यपो यदुकुले जन्म प्राप्य प्रजापतिः।
वसुदेवेति विख्यातः समभूद्धरणीतले॥ १४॥

अदितिश्च द्विधा जाता देवकी रोहिणी तथा।
भगिनी दुष्टचेष्टस्य राज्ञः कंसस्य नारद॥ १५॥

तां तथा रोहिणीं चापि वसुदेवो विधानतः।
उपयेमे मुनिश्रेष्ठ शरच्चन्द्रनिभाननाम्॥ १६॥

तत्रोद्वाहे तु देवक्या राज्ञा कंसो महासुरः।
अतीव मङ्गलं चक्रे भगिनीस्नेहहेतुना॥ १७॥

ततः प्रयाणसमये देवकीवसुदेवयोः।
आरुह्य रथमभ्यायात्ताभ्यां कंसोऽतिदुष्टधीः॥ १८॥

वे प्रजापति कश्यप यदुकुलमें जन्म लेकर वसुदेव—इस नामसे भूलोकमें विख्यात हुए और नारद! उन अदितिने भी दुष्ट प्रकृतिवाले राजा कंसकी बहन देवकी तथा रोहिणी—इन दो रूपोंमें जन्म लिया। मुनिश्रेष्ठ! शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मुखवाली उन देवकी तथा रोहिणीके साथ वसुदेवने विधानपूर्वक विवाह किया। रानी देवकीके उस विवाहमें महान् असुर कंसने बहनके स्नेहके कारण बहुत बड़ा मङ्गलोत्सव किया। तत्पश्चात् देवकी तथा वसुदेवके प्रस्थानके समय अत्यन्त दुष्टबुद्धिवाला कंस भी रथपर चढ़कर उन दोनोंके साथ आया॥ १४—१८॥

एतस्मिन् समये वाणी नभसः समभून्मुने।
अशरीरसमुत्पन्ना सहसा देवभाषिता॥ १९॥

एतस्या अष्टमो गर्भो सम्भविष्यति यः पुमान्।
स हन्ता भविता राजंस्तव नूनं महीपते॥ २०॥

मुने! इसी समय अचानक देवभाषामें आकाशसे अशरीरी वाणी (आकाशवाणी) उत्पन्न हुई कि राजन्! महीपते! इसके आठवें गर्भसे जो बालक उत्पन्न होगा, वह निश्चितरूपसे तुम्हारा संहार करनेवाला होगा॥ १९-२०॥



तच्छ्रुत्वा सहसा सोऽपि खड्गमुद्यम्य वेगतः।
देवकीं छेत्तुकामस्तां प्राभ्यधावत दुर्मतिः॥ २१॥

ततस्तं प्रणिपत्यासौ वसुदेवो महामतिः।
दास्यामि संततीः सर्वा एतस्या गर्भसम्भवाः॥ २२॥

तुभ्यं यथेष्टकरणे स्वीकृत्यैवं न्यवेदयत्।
ततः सोऽपि नियोज्यैवं रक्षकान्मुनिसत्तम॥ २३॥

निवृत्तः समभूत्तस्या निधनादतिदुर्मतिः।
रक्षकानाह दुष्टात्मा यदास्यास्तनयो भवेत्॥ २४॥

तदान्तिकं ममाभ्येत्य कथयध्वं हि रक्षकाः।
संजाते त्वष्टमे गर्भे कथयिष्यथ मां ध्रुवम्॥ २५॥

तदैनां घातयिष्यामि सगर्भां भगिनीं मम।
इत्याज्ञाप्य स दुष्टात्मा देवक्याः परिरक्षकान्॥ २६॥

मन्त्रिभिः सहितो राजा निर्विण्णो गृहमाविशत्।
ततस्तस्याज्ञया तस्या गर्भे जाते तु रक्षकाः॥ २७॥

राजानं कथयामासुस्तस्या जातान्सुतानपि।
श्रुत्वा श्रुत्वा स पापात्मा जातमात्रान्प्रगृह्य च॥ २८॥

जघान सम्प्रताड्यैव शिलायां मुनिसत्तम।
एवं निहत्य देवक्याः षड् वै गर्भसमुद्भवान्॥ २९॥

सम्भाव्यमाने गर्भे तु सप्तमे सोऽतिमूढधीः।
अतिसावहितांश्चक्रे देवक्यां परिरक्षकान्॥ ३०॥

ऐसा सुनकर वह दुष्टबुद्धि कंस देवकीको काट डालनेकी इच्छासे तलवार लेकर अकस्मात् बड़े वेगसे उनकी ओर दौड़ा। तब उन महामति वसुदेवने उसके चरणोंमें गिरकर निवेदन किया कि इसके गर्भसे उत्पन्न सभी संतानें मैं आपको दे दूँगा और आप उसे लेकर जो चाहें सो कीजियेगा॥ २१-२२½॥

मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् उस दुष्टस्वभाव कंसने वहाँ रक्षक नियुक्त कर दिये और इस प्रकार उन देवकीको जानसे मारनेका विचार छोड़ दिया। उस दुष्टात्माने रक्षकोंसे कह दिया कि रक्षको! जब इसके पुत्र उत्पन्न हो तब तुम लोग मेरे पास आकर मुझसे बता देना और इसके आठवें गर्भके होनेपर तुमलोग मुझसे अवश्य कहना; तब मैं अपनी इस बहनका गर्भसहित वध कर दूँगा॥ २३—२५½॥

देवकीके लिये नियुक्त रक्षकोंको यह आदेश देकर वह दुरात्मा कंस खिन्नमनस्क होकर मन्त्रियोंके साथ अपने भवनमें प्रविष्ट हो गया॥ २६½॥

तदनन्तर उन देवकीकी संतान उत्पन्न होनेपर रक्षकगण उसकी आज्ञाके अनुसार उसे बता दिया करते थे और मुनिश्रेष्ठ! वह पापात्मा कंस देवकीसे उत्पन्न हुए पुत्रोंके विषयमें सुन-सुनकर वहाँ पहुँच जाता था तथा उन नवजात शिशुओंको हाथसे पकड़कर उन्हें पत्थरपर पटककर मार डालता था॥ २७-२८½॥

इस प्रकार देवकीके गर्भसे उत्पन्न छः संतानोंको मारकर उस मूर्खबुद्धि कंसने सातवें गर्भके लिये देवकीके रक्षकोंको अत्यधिक सावधान कर दिया॥ २९-३०॥

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कैलासं समुपागमत्।
समस्तैस्त्रिदशैः सार्धं मन्त्रणार्थं जगत्पतिः॥ ३१॥

स प्रणम्य महादेवीं देवं चापि सदाशिवम्।
देव्यग्रे प्राञ्जलिर्भूत्वा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३२॥

ब्रह्मोवाच

मातस्त्वयोक्तं देवक्यां जन्म प्राप्य महीतले।
पुंरूपं पृथिवीभारं शमयिष्यामि निश्चितम्॥ ३३॥

तस्यास्तु सन्ततीः सर्वा जातमात्राः शिलोपरि।
प्रहृत्य नाशयत्येव राजा कंसोऽतिदुष्टधीः॥ ३४॥

पूर्वं विवाहे देवक्याः कंसाय समभूद्वचः।
आकाशोद्भवमत्युच्चैर्भयदं तस्य दुर्मते॥ ३५॥

देवक्या अष्टमो गर्भो सम्भविष्यति यः पुमान्।
स ते विनाशकारीति निश्चितं विद्धि दुर्मते॥ ३६॥

तच्छ्रुत्वा स तदैवातिदुष्टस्तां देवकीं शिवे।
संछेत्तुमुद्यमं चक्रे वसुदेवस्तु तं तदा॥ ३७॥

आश्रुत्य वारयामास जातापत्यसमर्पणम्।
ततः स निश्चयं चक्रे गर्भे जातेऽष्टमे ध्रुवम्॥ ३८॥

देवकीं घातयिष्यामीत्येवं कंसोऽतिमूढधीः।
तेन संजातमात्रांस्तु देवकीगर्भसम्भवान्॥ ३९॥

षट्सुतान् संजघानोग्रप्रतापोऽपि सुदुर्जयः।
इदानीं सप्तमे गर्भे यदि नाप्नोषि जन्म वै॥ ४०॥

तत्कथं भावि ते जन्म देवक्यां परमेश्वरि।
कथं वा पृथिवीभारं नाशयिष्यसि मां वद॥ ४१॥

श्रीदेव्युवाच

न दैवं वचनं ब्रह्मन् विफलं सम्भविष्यति।
अवश्यं भावि वै जन्म तस्या गर्भेऽष्टमे मम॥ ४२॥

उपायं ते प्रवक्ष्यामि तथा त्वमपि चेष्टय।
मा चिरं कुरु गच्छाशु वैकुण्ठं कमलासन॥ ४३॥

इसी बीच जगत्पति ब्रह्माजी विचार-विमर्श करनेके लिये सभी देवताओंके साथ कैलासशिखरपर गये। उन्होंने महादेवी तथा सदाशिवको प्रणाम करके भगवतीके समक्ष दोनों हाथ जोड़कर उनसे यह वचन कहा—॥ ३१-३२॥

ब्रह्माजी बोले—माता! आपने कहा था कि पृथ्वीतलपर देवकीके गर्भसे पुरुषरूपमें जन्म लेकर मैं पृथ्वीके भारका निश्चितरूपसे शमन करूँगी। अत्यन्त नीचबुद्धि वह राजा कंस पैदा होते ही उसकी सभी संतानोंको शिलापर पटककर मार डालता है। पूर्व कालमें देवकीके विवाहमें उस दुर्मति कंसके लिये भयदायक बड़े ऊँचे स्वरमें आकाशवाणी हुई थी कि 'दुर्मते! देवकीके गर्भसे जो आठवाँ बालक उत्पन्न होगा, वह तुम्हारा विनाशकारी होगा—ऐसा तुम निश्चितरूपसे जान लो'॥ ३३—३६॥

शिवे! तब उसे सुनकर अत्यन्त नीच उस कंसने उसी क्षण देवकीको काट डालनेका प्रयास किया; तब वसुदेवने उत्पन्न होनेवाली संतानोंको उसे सौंप देनेकी प्रतिज्ञा करके देवकीको मारनेसे रोक दिया। तत्पश्चात् अत्यन्त मूर्खबुद्धि कंसने यह निश्चय किया कि इसके आठवें गर्भके होनेपर मैं देवकीको अवश्य ही मार डालूँगा। इसलिये उग्र प्रतापी तथा अपराजेय होते हुए भी उस कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न छः पुत्रोंको पैदा होते ही मार डाला। परमेश्वरि! अब यदि आप देवकीके सातवें गर्भसे जन्म नहीं लेंगी, तब फिर देवकीसे आपका जन्म कैसे होगा और आप पृथ्वीके भारका नाश किस प्रकार करेंगी; यह मुझे बताइये॥ ३७—४१॥

श्रीदेवीजी बोलीं—ब्रह्मन्! आकाशवाणी अन्यथा नहीं हो सकती। देवकीके आठवें गर्भसे मेरा जन्म अवश्य होगा। कमलासन! मैं आपको उपाय बता रही हूँ; आप उसीके अनुसार प्रयास कीजिये। अब आप विलम्ब मत कीजिये और शीघ्रतापूर्वक वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थान कीजिये॥ ४२-४३॥

अंशेन विष्णुर्भूपृष्ठे सम्भविष्यति निश्चितम्।
वसुदेवगृहे रामो भ्राता ज्येष्ठतमो मम॥ ४४॥
इत्येवं समयश्चासीत्पूर्वमेतेन विष्णुना।
तस्मात्कथय तं शीघ्रं स यातु धरणीतले॥ ४५॥
अंशेन देवकीगर्भे वसुदेवाज्जगत्पतिः।
अहं च वसुधापृष्ठे द्विधा भूत्वा निजांशतः॥ ४६॥
प्रयामि रोहिणीगर्भं यशोदागर्भमप्युत।
सम्प्राप्ते पञ्चमे मासि रोहिणीगर्भमध्यतः॥ ४७॥
यास्यामि देवकीगर्भं विष्णुस्तद्गर्भतोऽपि च।
समायास्यति रोहिण्या गर्भं कमलसम्भव॥ ४८॥
तदेवाष्टमगर्भे मे जन्म सम्पत्स्यतेऽपि च॥ ४९॥
न ज्ञास्यति स दुर्बुद्धिर्गर्भं चापि तमष्टमम्॥ ५०॥
एवं सम्प्राप्य देवक्यां जन्म श्रीकृष्णरूपधृक्।
काले सम्पातयिष्यामि तं दुष्टं सह सैनिकैः॥ ५१॥
यावच्च पुण्यकर्मास्य क्षीणतां न च यास्यति।
तावद्यथाविधेयं तु तथा मे त्वं निशामय॥ ५२॥
जातायामपि देवक्यां यशोदायां तदैकदा।
पुंरूपिण्यां तथा योषिद्रूपायां च स्वलीलया॥ ५३॥
देवकीगर्भसम्भूतां वसुदेवश्च तत्क्षणात्।
संस्थाप्य गोकुले क्रोडे यशोदायाः प्रजापते॥ ५४॥
तद्गर्भसम्भवां योषिद्रूपां मामेव बालिकाम्।
आनीय वसुदेवेन वाच्यं तस्मै दुरात्मने॥ ५५॥
सम्भूता मम कन्येति रक्षैनां पृथिवीपते।
ततः स निधने यत्नं करिष्यति यदाऽसुरः॥ ५६॥
तदैव सहसा स्वर्गं मूर्तिर्मे प्रतियास्यति।
उक्त्वा निधनकर्तारं पश्यतस्तस्य दुर्मतेः॥ ५७॥
ततः सम्पातयिष्यामि समुपागत्य गोकुलात्।
प्रारब्धकर्मणि क्षीणे तं दुष्टं कमलासन॥ ५८॥

भगवान् विष्णु अपने अंशसे वसुदेवके घरमें मेरे बड़े भाई बलरामके रूपमें पृथ्वीतलपर अवश्य उत्पन्न होंगे। पूर्वकालमें इन विष्णुके साथ मेरी इस प्रकारकी वचनबद्धता भी हो चुकी है। अतः आप उन जगत्पति विष्णुसे शीघ्र ही कहिये कि वे अपने अंशसे पृथ्वीतलपर वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भमें प्रविष्ट होवें॥ ४४-४५½ ॥

मैं भी अपने अंशसे दो रूपोंमें होकर पृथ्वीतलपर रोहिणी तथा यशोदाके गर्भमें जाऊँगी। पाँचवें माहके आनेपर मैं रोहिणीके गर्भसे देवकीके गर्भमें चली जाऊँगी और कमलयोनि! विष्णुजी उनके गर्भसे रोहिणीके गर्भमें चले आयेंगे। इस प्रकार देवकीके आठवें गर्भसे मेरा जन्म हो जायगा और वह दुर्बुद्धि कंस इस आठवें गर्भको समझ भी नहीं पायेगा॥ ४६—५०॥

इस प्रकार मैं देवकीके गर्भसे श्रीकृष्णके रूपमें जन्म लेकर सैनिकोंसहित उस दुष्ट कंसको समय आनेपर मार डालूँगी। जबतक इस कंसका पुण्य कर्म क्षीण नहीं होता, तबतक उस हेतु जो कुछ किया जाना चाहिये, उसे आप मुझसे सुनिये॥ ५१-५२॥

प्रजापते! एक ही समयमें देवकीके गर्भसे पुरुषरूपमें तथा यशोदाके गर्भसे स्त्रीरूपमें लीलापूर्वक मेरे उत्पन्न होनेके पश्चात् देवकीके गर्भसे (श्रीकृष्णरूपमें) उत्पन्न हुई मुझको तत्काल गोकुलमें यशोदाकी गोदमें रखकर और उन यशोदाके गर्भसे स्त्रीरूपमें उत्पन्न मुझ बालिकाको ले आकर वसुदेवजीको उस दुरात्मा कंससे ऐसा कहना चाहिये कि राजन्! मेरी यह कन्या उत्पन्न हुई है; इसकी रक्षा कीजिये॥ ५३—५५½ ॥

तत्पश्चात् जब वह असुर कंस उसे मारनेका प्रयास करेगा, उसी समय मेरी वह मूर्ति उसके संहारक श्रीकृष्णके विषयमें कहते हुए उस दुर्बुद्धि कंसके देखते-देखते आकाशमें चली जायगी। कमलासन! तदनन्तर उस कंसके प्रारब्धकर्मके क्षीण होनेपर मैं गोकुलसे आकर उस नीचको मार डालूँगी॥ ५६—५८॥

श्रीमहादेव उवाच

**देव्यैवमुक्तो भगवान्ब्रह्मा वैकुण्ठमन्वगात्।
न्यवेदयच्च तत्सर्वं देव्या सम्भाषितं च यत्॥ ५९ ॥**

**विष्णुश्चाथ तदाकर्ण्य निजांशेन महामते।
प्रययौ देवकीगर्भं रोहिण्यां जन्मलब्धये॥ ६० ॥**

**भगवत्यपि रोहिण्यां यशोदायामुपागमत्।
द्विधा भूत्वा जगद्धात्री भूभारस्य निवृत्तये॥ ६१ ॥**

**पञ्चमे मासि रोहिण्या गर्भतः सा समाविशत्।
जन्मने देवकीगर्भं रोहिण्यां विष्णुरन्वगात्॥ ६२ ॥**

**तदैव वसुदेवोऽपि भयात्कंसस्य दुर्मतेः।
रोहिणीं स्थापयामास गोकुले नन्दवेश्मनि॥ ६३ ॥**

**तत्र संजातवान् रामो दिव्यलक्षणलक्षितः।
सर्वाङ्गसुन्दरो गौरो रोहिण्यास्तनयो मुने॥ ६४ ॥**

**ततः समभवद्देवी देवक्याः परमः पुमान्।
अष्टम्यामर्धरात्रे तु रोहिण्यामसिते वृषे॥ ६५ ॥**

**गर्जत्सु मेघवृन्देषु परितस्तमसावृते।
निद्रितेष्वपि सर्वेषु रक्षकेष्वितरेषु च॥ ६६ ॥**

**नवीनजलदश्यामो वनमालाविराजितः।
श्रीवत्सलाञ्छनधरो नयनद्वितयोज्ज्वलः॥ ६७ ॥**

**द्विभुजो दिव्यसर्वाङ्गो दीप्यमानः स्वतेजसा।
तं दृष्ट्वा बालकं जातं देवकी रुदती भृशम्॥ ६८ ॥**

**साक्षाद्ब्रह्ममयं पूर्णं ज्ञात्वेदं वाक्यमब्रवीत्।
कस्त्वं जातोऽसि मे गर्भे दुर्भगायाः सुलोचन॥ ६९ ॥**

**जानासि किं न राजानं भ्रातरं मम वैरिणम्।
कंसं निधनकर्तारं सुतानां जातमात्रतः॥ ७० ॥**

**अद्यैव स समाकर्ण्य त्वां जातं मम बालकम्।
निहनिष्यति दुष्टात्मा कृत्वा मां शोकविह्वलाम्॥ ७१ ॥**

श्रीमहादेवजी बोले—देवीके इस प्रकार कहनेपर भगवान् ब्रह्मा वैकुण्ठ आ गये और उनके द्वारा जो कुछ कहा गया था, वह सब उन्होंने विष्णुजीसे कह दिया॥ ५९ ॥ महामते! उसे सुनकर भगवान् विष्णुने अपने अंशद्वारा रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न होनेके लिये देवकीके गर्भमें प्रवेश किया और इधर जगद्धात्री भगवती भी पृथ्वीका भार मिटानेके लिये दो रूपोंमें विभक्त होकर रोहिणी तथा यशोदाके गर्भमें प्रतिष्ठित हुईं॥ ६०-६१ ॥

इसके बाद [श्रीकृष्णरूपमें] जन्म लेनेके लिये वे भगवती पाँचवें महीनेमें रोहिणीके गर्भसे देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हुईं तथा विष्णुजी रोहिणीके गर्भमें चले गये। तब नीचबुद्धि कंसके भयसे वसुदेवने रोहिणीको गोकुलमें नन्दके घरमें रख दिया। मुने! वहींपर दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सर्वाङ्गसुन्दर गौरवर्ण श्रीबलराम रोहिणीके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ ६२—६४ ॥

तत्पश्चात् [भादों महीनेमें] कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथि, रोहिणी नक्षत्र, वृषलग्नमें अर्द्धरात्रिकी वेलामें भगवतीने देवकीके गर्भसे परमपुरुषके रूपमें जन्म लिया। उस समय मेघसमुदाय गर्जना कर रहे थे, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था, सभी रक्षक तथा अन्य लोग निद्रावस्थामें थे। उस बालकके शरीरका वर्ण नवीन मेघके सदृश श्याम था और वह वनमालासे सुशोभित था। उसके वक्ष:स्थलपर श्रीवत्सचिह्न विराजमान था, दोनों नेत्र प्रभायुक्त थे, दो भुजाएँ थीं, सभी अङ्ग दिव्य थे और वह अपने तेजसे देदीप्यमान प्रतीत हो रहा था। उस नवजात बालकको देखकर उसे साक्षात् पूर्ण ब्रह्मस्वरूप समझकर देवकीने करुण रुदन करते हुए उससे यह वचन कहा—सुलोचन! तुम कौन हो, जो मुझ अभागिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए हो। पैदा होते ही मेरे पुत्रोंका वध कर देनेवाले शत्रुरूप मेरे भाई राजा कंसको क्या तुम नहीं जानते? मेरे पुत्ररूपमें तुम्हारे जन्म लेनेका समाचार सुनकर वह दुष्टात्मा कंस मुझे शोकसंतप्त करके आज ही तुम्हारा वध कर देगा॥ ६५—७१ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या जनन्याः स तु बालकः।
उवाच तां सुदुःखार्तां प्रीणयन् वचनामृतैः ॥ ७२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—उन माता देवकीका यह वचन सुनकर वह बालक महान् दुःखसे व्याकुल उन देवकीको अपने अमृतरूपी वचनोंसे प्रसन्न करते हुए कहने लगा— ॥ ७२ ॥

बालक उवाच

मातस्त्वं कुरु मा भीतिं न मे हन्तात्र विद्यते।
लोकत्रयेऽसुरो वापि देवो वा मानुषोऽपि वा ॥ ७३ ॥

अहमाद्या परा विद्या जगत्संहारकारिणी।
देवकार्यस्य सिद्ध्यर्थं त्वत्तो जातास्मि साम्प्रतम् ॥ ७४ ॥

शम्भोरनुज्ञया मायापुरुषाकृतिरुत्तमा।
युवयोस्तपसा तुष्टा जन्मान्तरकृतेन वै ॥ ७५ ॥

बालक बोला—माता! आप भय मत कीजिये; क्योंकि इन तीनों लोकोंमें असुर, देवता अथवा मनुष्य कोई भी मुझे मारनेवाला नहीं है। मैं जगत्का संहार करनेवाली आदिशक्ति परा विद्या हूँ—पूर्वजन्ममें किये गये आप दोनोंके तपसे प्रसन्न होकर तथा भगवान् शिवकी सम्मतिसे मायामयी श्रेष्ठ पुरुषाकृतिमें मैं इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये आपके गर्भसे उत्पन्न हुई हूँ ॥ ७३—७५ ॥

देवक्युवाच

वत्स ते वचनं श्रुत्वा विस्मिताहं सुलोचन।
संदर्शयस्व रूपं ते देव्यात्मकमनुत्तमम् ॥ ७६ ॥

देवकी बोलीं—वत्स! तुम्हारा यह वचन सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। सुलोचन! अब तुम मुझे अपने उत्कृष्ट देवीरूपका दर्शन कराओ ॥ ७६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

देवक्यैवं निगदितः कृष्णः कमललोचनः।
सहसा समभूत्कृष्णा भीमास्या शववाहना ॥ ७७ ॥

चतुर्भुजा त्रिनयना जिह्वाललनभीषणा।
गलदायतकेशौघाच्छन्नपृष्ठा किरीटिनी ॥ ७८ ॥

तदाभवन्मुने सापि वनमाला मनोरमा।
मुण्डालिरचिता माला लम्बमानातिशोभना ॥ ७९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवकीके ऐसा कहते ही कमलके समान नेत्रवाले श्रीकृष्ण तत्काल शवपर आरूढ भयानक मुखवाली भगवती कालीके स्वरूपमें प्रकट हो गये। उनकी चार भुजाएँ, तीन नेत्र एवं लपलपाती हुई भीषण जिह्वा थी। उनके लहराते हुए लम्बे केशपाशसे उनकी पीठ ढकी हुई थी और उन्होंने सुन्दर किरीट धारण कर रखा था। मुने! उस समय वह चित्ताकर्षक वनमाला भी मुण्डसमूहोंसे बनी हुई अत्यन्त सुन्दर तथा लम्बी मालाके रूपमें हो गयी ॥ ७७—७९ ॥

तथा दृष्ट्वा तु तं बालं कालीरूपं भयानकम्।
देवकी चाह्वयत्तत्र वसुदेवं त्वरान्विता ॥ ८० ॥

स आगत्य निरीक्ष्यैवं श्रुत्वा जातं च बालकम्।
विस्मयं परमं प्राप्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८१ ॥

उस बालकको भयानक कालीरूपमें देखकर देवकीने शीघ्रतापूर्वक वसुदेवजीको वहाँ बुलाया। उन वसुदेवने वहाँ आकर यह सब देखा और बालकने जन्म लिया—ऐसा सुनकर वे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और फिर यह वचन बोले— ॥ ८०-८१ ॥

वसुदेव उवाच

बहुजन्मशतानेकतपसा मम भाग्यतः।
जातासि यदि मद्गेहे मायाबालकरूपधृक्॥ ८२ ॥

यथानुग्रहतो यत्तदेतत्परमदुर्लभम्।
प्रदर्श्य कालिकारूपं मज्जन्म सफलं कृतम्॥ ८३ ॥

तथान्यदपि ते चारु रूपं दशभुजान्वितम्।
उद्यत्कोटिशशाङ्काभं सौम्यं मे प्रतिदर्शय॥ ८४ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तद्रूपं परिहृत्य च।
बभूव सहसा देवी सौम्या दशभुजा ततः॥ ८५ ॥

तथा विलोक्य रूपं स विस्मयं परमं गतः।
प्राञ्जलिः परया भक्त्या तुष्टावानकदुन्दुभिः॥ ८६ ॥

वसुदेव उवाच

त्वं माता जगतामनादिपरमा विद्यातिसूक्ष्मात्मिका
त्वं तावज्जनकोऽप्यनादिपुरुषः पूर्णः स्वयं चिन्मयः।
त्वं विश्वासि तथैव विश्ववनिता विश्वाश्रया विश्वगा
त्वत्तोऽन्यन्नहि किंचिदस्ति भुवने विश्वेशि तुभ्यं नमः॥ ८७ ॥

त्वं सृष्टौ चतुरानना स्थितिविधौ विष्णुः परात्मा प्रभुः
संहृत्यामतिभीमरूपचरितो रुद्रः पिनाकास्त्रधृक्।
तेषां सृष्टिविनाशपालनविधौ त्वं कालिकैका परा
नित्या ब्रह्ममयी प्रसीद परमे कृष्णे जगद्वन्दिते॥ ८८ ॥

वसुदेवजी बोले—मेरे सैकड़ों जन्मोंकी अनेक तपस्याओं तथा भाग्यके फलस्वरूप आपने मायाबालकका रूप धारण करके यदि मेरे घरमें जन्म लिया ही है और जिस प्रकार आपने मेरे ऊपर कृपा करके अपने इस परम दुर्लभ कालिकारूपको दिखाकर मेरे जन्मको सफल किया है, उसी प्रकार उगते हुए करोड़ों चन्द्रमाओंकी आभाके समान अपने दस भुजाओंवाले सौम्य तथा सुन्दर दूसरे रूपका भी दर्शन मुझे करा दीजिये॥ ८२—८४॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब उनका यह वचन सुनते ही उस रूपका त्याग करके भगवती एकाएक सौम्य तथा दस भुजाओंसे युक्त रूपवाली हो गयीं। उस रूपको देखकर आनकदुन्दुभि वसुदेवजीको अत्यन्त विस्मय हुआ और वे हाथ जोड़कर महान् भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे—॥ ८५-८६॥

वसुदेवजी बोले—आप जगत्की माता हैं, अनादि हैं, पराविद्या हैं और अति सूक्ष्मस्वरूपिणी हैं। उसी तरह आप संसारके पिता भी हैं। आप पूर्ण चिन्मयस्वरूप साक्षात् अनादि पुरुष हैं। आप विश्वरूप हैं, समस्त स्त्रियोंके रूपमें आप ही प्रतिष्ठित हैं, आप विश्वका आश्रय हैं, आप विश्वव्यापिनी हैं और आपसे अतिरिक्त अन्य कोई भी इस त्रिभुवनमें नहीं है। विश्वेशि! आपको नमस्कार है॥ ८७॥

सृष्टिकार्यमें आप ही चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें हो जाती हैं, पालनमें आप ही परमात्मा प्रभु विष्णु हो जाती हैं और संहारकार्यमें आप ही अत्यन्त भयानक रूप तथा चरित्रवाले पिनाकास्त्रधारी रुद्रके रूपमें हो जाती हैं। उनके सृजन, पालन तथा संहारकार्यमें ब्रह्ममयी, परा तथा नित्यस्वरूपिणी एकमात्र आप कालिका ही हेतु हैं। जगद्वन्दिते! परमे! कृष्णे! आप मुझपर प्रसन्न हों॥ ८८॥

त्वं सूक्ष्मा प्रकृतिर्निराकृतिसुताख्याता जगद्व्यापिनी
स्त्रीपुंक्लीबविभेदतस्त्वयि पुनः स्त्रीत्वाद्यभावः सदा।
तत्त्वं ते न विदन्ति केचन जगत्यत्राम्बिके तत्कथं
शक्तः स्तोतुमहं भवामि परमं ब्रह्मा स्वयं मूढधीः ॥ ८९ ॥

नमोऽस्तु विश्वमोहिन्यै गौर्यै त्रिदशवन्दिते।
नमस्ते कृष्णरूपिण्यै मायापुरुषरूपिणि ॥ ९० ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं संस्तुवतस्तस्य देवी दशभुजा क्षणात्।
प्रत्यक्षं समभूद्बालः कृष्णः कमललोचनः ॥ ९१ ॥

तं वीक्ष्य बालकं कृष्णं वनमालाविराजितम्।
वसुदेवः पुनः प्राह प्राञ्जलिर्मुनिसत्तम ॥ ९२ ॥



वसुदेव उवाच

वत्स मत्तनयान् सर्वाञ्जातमात्रान्महाबलः।
कंसो निहन्ति दुर्द्धर्षः शिलाया मस्तके क्षिपन् ॥ ९३ ॥

तदिदानीं न यावत्तु तस्यानुचररक्षकाः।
चेतयन्ति विधेयं ते यत्कर्तव्यं मयाधुना ॥ ९४ ॥

तत्सर्वं त्वं च मां देव तावद्ब्रूहि जगत्पते।
भूभारहरणार्थाय प्रादुर्भूतोऽसि वै यतः ॥ ९५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा कृष्णा कृष्णस्वरूपिणी।
यशोदानन्दयोः पूर्वं तपः स्मृत्वेदमब्रवीत् ॥ ९६ ॥

आप सूक्ष्मा प्रकृति हैं, आप निराकार होते हुए भी मेरे पुत्ररूपमें प्रकट हुईं हैं, आप जगत्में व्याप्त हैं, आपमें सदा स्त्रीत्वादिका अभाव रहनेपर भी आप स्त्री-पुरुष-नपुंसकभेदसे संसारमें व्याप्त हैं। इस संसारमें कोई भी आपका वास्तविक रहस्य नहीं जान सकता तथा परमेष्ठी भगवान् ब्रह्मा भी इसमें मोहित बुद्धिवाले हो जाते हैं, फिर अम्बिके! मैं आपकी स्तुति करनेमें भला किस प्रकार समर्थ हो सकता हूँ॥ ८९॥

देवताओंके द्वारा वन्दनीय भगवती! विश्वको मोहित कर देनेवाली आप गौरीको नमस्कार है। मायापुरुषरूपिणी! कृष्णरूप धारण करनेवाली आप भगवतीको नमस्कार है॥ ९०॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार उनके स्तुति करनेपर दस भुजाओंवाली वे भगवती तत्काल कमलके समान नेत्रोंवाले बालकरूप श्रीकृष्णके रूपमें प्रत्यक्ष हो गयीं। मुनिश्रेष्ठ! वनमालासे सुशोभित उस बालकरूप श्रीकृष्णको देखकर वसुदेवजी हाथ जोड़कर पुनः कहने लगे—॥ ९१-९२॥

वसुदेवजी बोले—वत्स! महान् बलशाली तथा उग्र कंस मेरे सभी पुत्रोंको पैदा होते ही शिलाके अग्रभागपर पटककर मार डालता है। अतः अब जबतक उस कंसके सेवक तथा रक्षक जाग नहीं जाते हैं, तबतक देव! जगत्पते! आपके लिये मुझे जो इस समय करना चाहिये, वह सब आप मुझे बता दीजिये; क्योंकि पृथ्वीका भार मिटानेके लिये ही आप उत्पन्न हुए हैं॥ ९३—९५॥

श्रीमहादेवजी बोले—उनका यह वचन सुनकर श्रीकृष्णरूपमें विद्यमान भगवती कालीने यशोदा तथा नन्दकी पूर्व तपस्याका स्मरण कर उनसे यह कहा—॥ ९६॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यत्कर्तव्यं त्वयाऽधुना।
भयादतिसुदुष्टस्य मातुलस्य महामते॥ ९७॥

अद्यैव हि व्यतीतायामष्टम्यां गोकुले मम।
मूर्तिरिकाऽपरा जाता यशोदागर्भगेहतः॥ ९८॥

न तां मन्मायया मुग्धा यशोदा निद्रयाऽन्विता।
जानाति चारुसर्वाङ्गीं गौरीं कमललोचनाम्॥ ९९॥

त्वं तु मां तत्र संस्थाप्य तामानीय त्वराऽन्वितः।
प्रवादं कुरु मे जाता कन्यैकेति वराङ्गना॥ १००॥

तस्यास्तु निधनार्थाय सम्प्रहर्तुं शिलोपरि।
यदोर्ध्वं नेष्यति क्रोधात्स दुष्टो मम मातुलः॥ १०१॥

तदा यास्यति सा स्वर्गं देवकार्यस्य सिद्धये।
उक्त्वा निधनकर्तारं पश्यतस्तस्य मां पितः॥ १०२॥

अहं तु गोकुले स्थित्वा कियत्कालं ततस्त्विह।
समागत्य दुरात्मानं निहनिष्यामि मातुलम्॥ १०३॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य बालकस्य महामुने।
वसुदेवस्तमादाय गोकुलं प्रति निर्ययौ॥ १०४॥



तदा प्रबोधं नो कश्चिदवाप मुनिसत्तम।
मोहितो वासुदेवस्य माययाऽतिदुरत्यया॥ १०५॥

श्रीकृष्ण बोले—तात! महामते! अत्यन्त सतर्क दृष्टि रखनेवाले मामा कंसके भयसे बचनेके लिये इस समय आपको जो करना है, उसे बताता हूँ, सुनिये॥ ९७॥

आज ही अष्टमीतिथिके व्यतीत होनेपर गोकुलमें यशोदाके गर्भसे मेरी एक दूसरी कन्यामूर्ति प्रादुर्भूत हुई है। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण निद्रामें निमग्न यशोदाको उन कमलसदृश नेत्रोंवाली सर्वाङ्गसुन्दरी गौरीके विषयमें जानकारी नहीं है। आप शीघ्रतापूर्वक [वहाँ जाइये और] मुझे वहाँ रखकर तथा उस कन्याको यहाँ लाकर यह बात प्रचारित कर दीजिये कि मेरी एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई है॥ ९८—१००॥

तत्पश्चात् उस कन्याको मारनेके लिये जब मेरा मामा वह दुष्ट कंस कुपित होकर शिलापर पटकनेके लिये मुझे ऊपर उठायेगा, तब पिताजी! देवताओंके कार्य सिद्ध करनेके लिये उस कंसका वध करनेवाले मेरे विषयमें बताकर वह कन्या उसके देखते-देखते आकाशमें चली जायगी। तत्पश्चात् कुछ समयतक गोकुलमें रहनेके बाद यहाँ आकर मैं दुष्टात्मा मामा कंसका वध करूँगा॥ १०१—१०३॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! उस बालककी यह बात सुनकर वसुदेवजी उसे लेकर गोकुलकी ओर चल पड़े॥ १०४॥

मुनिश्रेष्ठ! उस समय वासुदेव श्रीकृष्णकी अपरम्पार मायासे मोहित हो जानेके कारण कोई भी व्यक्ति जाग नहीं सका॥ १०५॥

वसुदेवस्तु निर्गत्य स्वपुरादतिदुःखितः।
रुरोद पुत्रमुद्वीक्ष्य दीप्यमानं स्वतेजसा॥ १०६॥

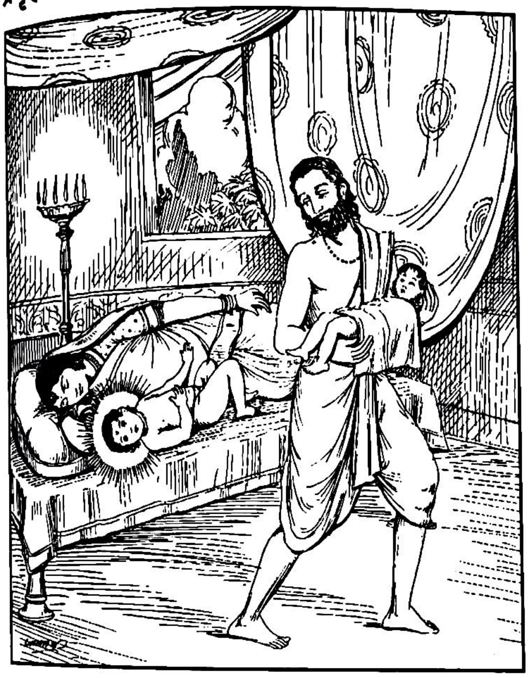
हा वत्स मद्गृहे कस्मादाविर्भूतोऽसि पापिनः।
कथं त्वां गोकुले रक्षन्न यास्येऽहं गृहं पुनः॥ १०७॥

इत्येवं बहुधाऽऽभाष्य सिञ्चन्नेत्रजलेन तम्।
उत्तीर्य यमुनां कृष्णप्रसादात् शिवया सह॥ १०८॥

प्रविश्य नन्दगोपस्य भवनं चाप्यतर्कितः।
यशोदां ददृशे तत्र प्रसूतवरकन्यकाम्॥ १०९॥

अप्रबुद्धामजानन्तीं पुत्रीं स्वोदरसम्भवाम्।
सखीभिः सहितां चापि निद्रिताभिरितस्ततः॥ ११०॥

ततः संस्थाप्य तत्रैव कृष्णमानकदुन्दुभिः।
प्रगृह्य तनयां तां च तूर्णं गेहाद्विनिर्ययौ॥ १११॥



देवी तु वसुदेवस्य क्रोडेऽतिविबभौ मुने।
भुजैर्दशभिरुद्दीप्ता तेजोभिश्च मनोरमैः॥ ११२॥

तां वीक्ष्य सर्वलोकैकजननीं ब्रह्मरूपिणीम्।
आनन्दपरिपूर्णात्मा वसुदेवः पुरं ययौ॥ ११३॥

प्रविश्य भवनं देवीं देवक्यै च समर्पयत्।
उवाच जाता कन्येति रक्षकेभ्यो महामतिः॥ ११४॥

तेऽपि प्राहुर्द्रुतं तस्मै कंसायातिदुरात्मने।
देवक्या अष्टमे गर्भे जातैका कन्यका विभो॥ ११५॥

अपने पुरसे निकलकर वसुदेवजीने अपने तेजसे देदीप्यमान पुत्रको बार-बार देखकर अत्यन्त दुःखी होकर इस प्रकार कहते हुए बहुत रुदन किया—हा वत्स! तुम मुझ पापीके घरमें किसलिये पैदा हो गये हो, अब तुम्हें गोकुलमें बिना रक्षित किये फिर घर कैसे लौटूँ॥ १०६-१०७॥

इस प्रकार अनेक तरहसे रोते-कलपते और अपने आँसुओंसे उस बालकको सींचते हुए वसुदेवजीने श्रीकृष्णकी कृपासे यमुनानदीको पारकर बालकरूप भगवतीके साथ नन्दजीके भवनमें अज्ञातरूपसे प्रवेश किया और वहाँपर सुन्दर-सी कन्याको जन्म देनेवाली यशोदाको देखा। उस समय वे यशोदाजी सोयी हुई थीं, उन्हें अपने उदरसे उत्पन्न कन्याकी जानकारी नहीं थी और उनके साथ उनकी सखियाँ भी इधर-उधर सोयी पड़ी थीं। तत्पश्चात् वसुदेवजी श्रीकृष्णको वहींपर रखकर और उस कन्याको लेकर तत्काल घरसे निकल गये॥ १०८—१११॥

मुने! उस समय दस भुजाओंसे युक्त तथा मनोरम तेजसे प्रदीप्त वे भगवती वसुदेवकी गोदमें अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं। समस्त लोकोंकी एकमात्र जननी तथा ब्रह्मस्वरूपिणी उन देवीको देखकर आनन्दसे परिपूर्ण मनवाले वसुदेवजी मथुरापुरी पहुँच गये और घरमें प्रवेश करके देवकीको वह कन्या समर्पित कर दी। इसके बाद उन महामति वसुदेवजीने रक्षकोंको बताया कि कन्याने जन्म लिया है॥ ११२—११४॥

तदनन्तर उन रक्षकोंने भी घोर दुष्टात्मा उस कंससे तत्काल जाकर कहा—राजन्! देवकीके आठवें गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई है॥ ११५॥

स पापात्मापि तच्छ्रुत्वा तानुवाच महामुने।
समानयत तां क्षिप्रं निहनिष्येऽविचारतः॥ ११६॥



तच्छ्रुत्वा तां समानीय ददुस्तस्मै दुरात्मने।
तां चातिसुदृढां दृष्ट्वा पाषाणैरिव निर्मिताम्॥ ११७॥

देवीं भगवतीं बालां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
स पापात्मा तु तां नैव ज्ञातवान्परमेश्वरीम्॥ ११८॥

जगृहे निधनार्थं च सव्येन दृढमुष्टिना।
तत्रापि सुदृढां मत्वा शिलाभिरिव निर्मिताम्॥ ११९॥

ऊर्ध्वं चिक्षेप पाषाणोपरि तां पातनेच्छया।
ततो भगवती देवी गगनेऽतीवतेजसा॥ १२०॥

ज्वलन्ती सिंहपृष्ठस्था तमूचे पापचेतसम्।

श्रीदेव्युवाच

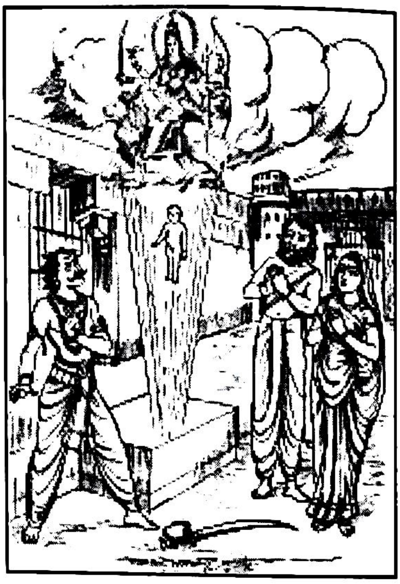
दुरात्मंस्तवनाशाय देवक्यां वसुदेवतः॥ १२१॥

अहमेव समुद्भूय मायया पुरुषाकृतिः।
तिष्ठामि गोकुले नन्दगोपगृहे निजांशतः॥ १२२॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती पश्यतस्तस्य दुर्मतेः।
स्वर्गं जगाम सिंहस्था देवकार्यस्य सिद्धये॥ १२३॥

महामुने! इसे सुनकर उस पापात्मा कंसने उन रक्षकोंसे कहा—उसे यहाँ शीघ्र लाओ; मैं बिना कुछ सोच-विचारके उसका वध कर दूँगा। उसकी बात सुनकर रक्षकोंने वह कन्या लाकर उस नीचबुद्धि कंसको दे दी। उस कन्याको अत्यन्त सुदृढ़ देखकर मानो वह पत्थरोंसे बनी हुई हो, वह पापात्मा कंस नहीं जान सका कि यह कन्या सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली परमेश्वरी भगवती देवी ही है और उसे मारनेकी इच्छासे उसने अपने बायें हाथकी मुट्ठीसे कसकर पकड़ लिया। उस समय कठोर विग्रहवाली उस कन्याको शिलासे निर्मित मानकर उसने उस कन्याको पत्थरपर पटकनेकी इच्छासे ऊपर उछाला। तत्पश्चात् आकाशमें स्थित होकर सिंहके पृष्ठपर आरूढ़ और महान् तेजसे जाज्वल्यमान भगवती देवीने उस पापबुद्धि कंससे कहा—॥ ११६—१२० 1/2 ॥



श्रीदेवीजी बोलीं—दुरात्मन्! तुम्हारे विनाशके लिये मैं ही अपने अंशसे मायाके प्रभावसे वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे पुरुषरूपमें उत्पन्न होकर गोकुलमें नन्दगोपके घरमें विराजमान हूँ॥ १२१-१२२॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर सिंहपर विराजमान वे भगवती देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये उस नीचबुद्धि कंसके देखते-देखते अन्तरिक्षमें चली गयीं॥ १२३॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीकृष्णप्रादुर्भावोपाख्याने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीकृष्णप्रादुर्भावोपाख्यान' नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

पूतनाका गोकुलमें आना और कृष्णद्वारा दूधसहित उसके प्राणोंका पान करना, तृणावर्तका कृष्णको उड़ाकर ले जाना और कालीरूपमें कृष्णद्वारा उसका वध करना, भगवान् शिवका राधा नामसे स्त्रीरूपमें प्रकट होना

श्रीमहादेव उवाच

नन्दः प्रभाते विज्ञाय चक्रे पुत्रोद्भवोत्सवम्।
विप्रेभ्यो गोसहस्राणि प्रददौ मुनिसत्तम॥ १ ॥

तथा वासांसि दिव्यानि धनानि सुबहूनि च।
दत्त्वा राज्ञे करं दातुं मथुरायां द्रुतं ययौ॥ २ ॥

एतस्मिन्नन्तरे कंसो मन्त्रयित्वा च मन्त्रिभिः।
पूतनां प्रेषयामास गोकुले बालघातिनीम्॥ ३ ॥

सा तु तस्याज्ञया चारुरूपं संबिभ्रती मुने।
गोकुले समुपागत्य नन्दवेश्म समाविशत्॥ ४ ॥

आयान्तीं तां समालोक्य सर्वा एव व्रजाङ्गनाः।
जगुः केयं समायाता चारुरूपा वराङ्गना॥ ५ ॥

शची किं देवराजस्य पत्नी किं वा स्वयं रतिः।
कामपत्नी समायाता द्रष्टुं नन्दस्य बालकम्॥ ६ ॥

कृष्णस्तु तामभिज्ञाय राक्षसीं कामरूपिणीम्।
निमील्य लोचने स्थित्वा पर्यङ्के तां ददर्श ह॥ ७ ॥

सा वीक्ष्य बालकं तं तु पर्यङ्कस्थमिवानलम्।
यशोदामाह सौम्येन वचसा क्रूरराक्षसी॥ ८ ॥

पूतनोवाच

यशोदे सखि ते भाग्यं मन्ये जन्मशतार्जितम्।
यतस्तवायं तनयो जातः सर्वाङ्गसुन्दरः॥ ९ ॥

अद्यैनं वीक्ष्य ते पुत्रं श्यामं सर्वाङ्गसुन्दरम्।
हर्षं प्राप्तास्मि बालस्ते चिरं जीवतु सुन्दरः॥ १० ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं स्नेहसम्बन्धि वाक्यमुक्त्वा तु राक्षसी।
मदङ्के बालकं देहीत्येवमूचे च तां पुनः॥ ११ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! प्रातःकाल पुत्रोत्पत्तिकी जानकारी होनेपर नन्दजीने उसका जन्मोत्सव मनाया और ब्राह्मणोंको हजारों गायें, दिव्य वस्त्र तथा बहुत सारा धन देकर राजा कंसको कर देनेके लिये शीघ्र ही मथुराके लिये प्रस्थान किया॥ १-२॥ इसी बीच मन्त्रियोंसे परामर्श करके कंसने बालकोंको मार डालनेवाली पूतना नामकी राक्षसीको गोकुलमें भेजा। मुने! वह पूतना उसकी आज्ञासे सुन्दर रूप धारण करके गोकुलमें आकर नन्दके घरमें प्रविष्ट हो गयी॥ ३-४॥ उसे आती हुई देखकर व्रजकी सभी स्त्रियाँ परस्पर बातचीत करने लगीं कि सुन्दर रूपवाली यह कौन रमणी यहाँ आ गयी? क्या देवराज इन्द्रकी पत्नी शची अथवा कामदेवकी पत्नी स्वयं रति नन्दके पुत्रको देखनेके लिये आयी हुई हैं॥ ५-६ ॥ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली उस राक्षसीको पहचानकर श्रीकृष्णने दोनों आँखें बंद कर लीं और पलंगपर स्थित होकर उन्होंने उसे पुनः देखा॥ ७॥ अग्निके समान प्रदीप्त उस बालकको पर्यङ्कपर स्थित देखकर वह क्रूर राक्षसी पूतना विनम्रतापूर्ण मधुर वाणीमें यशोदासे कहने लगी—॥ ८॥

पूतना बोली—सखी यशोदा! इसे मैं तुम्हारे सैकड़ों जन्मोंका अर्जित भाग्य मानती हूँ, जो कि तुम्हारे यहाँ यह सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ है। आज मैं तुम्हारे इस सर्वाङ्गसुन्दर श्यामवर्णवाले पुत्रको देखकर परम हर्षित हूँ। तुम्हारा यह सुन्दर पुत्र दीर्घकालतक जीवित रहे॥ ९-१०॥

श्रीमहादेवजी बोले—[नारद!] इस प्रकारकी स्नेहसम्बन्धी वाणी बोलकर उस राक्षसीने यशोदासे पुनः ऐसा कहा कि इस बालकको मेरी गोदमें दे दीजिये॥ ११॥

ततो यशोदा तच्छ्रुत्वा तदङ्के प्रददौ सुतम्।
सापि तस्य मुखे प्रादात्स्तनं विषमयं ततः ॥ १२ ॥

कृष्णस्तु तामभिज्ञाय पूतनां क्रूरराक्षसीम्।
स्तनमात्रस्य चौष्ठेन पपौ प्राणैः समं पयः ॥ १३ ॥



ततः संत्यज्य तद्रूपं सौम्यं सा भीमरूपिणी।
वदन्ती मुञ्च मुञ्चेति प्राणांस्तत्याज राक्षसी ॥ १४ ॥

ततः पपात भूपृष्ठे वसुधामनुपीड्य सा।
आच्छाद्य गोकुलं भीमा विकटास्या महाद्रिवत् ॥ १५ ॥

तस्या वक्षसि कृष्णस्तु सहसा कालिकापरा।
कृत्वा विरेजे भीमास्या मुण्डमालाविराजिता ॥ १६ ॥

क्षणार्धेन वपुस्तस्या राक्षस्याः कालिका स्वयम्।
मुक्त्वा भूयः समभवद्बालः श्यामतनुः परः ॥ १७ ॥

दृष्ट्वा तु विस्मयं जग्मुः सर्वे ते व्रजवासिनः।
मेनिरे च शिशुं कृष्णं शक्तिमाद्यां परात्पराम् ॥ १८ ॥

यशोदा च समालिङ्ग्य स्वाङ्के चोत्थाय बालकम्।
स्तनं ददौ मुखाम्भोजे सम्मार्ज्यौषधवारिणा ॥ १९ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि नन्दगोपः समागतः।
दत्त्वा राजकरं तस्मै राज्ञे कंसाय पापिने ॥ २० ॥

स श्रुत्वा चेष्टितं तस्य बालकस्य महामुने।
देवीं सम्पूजयामास नानाबलिभिरादरात् ॥ २१ ॥

तदनन्तर उसका वचन सुनकर यशोदाने उसकी गोदमें पुत्रको दे दिया और तब उसने श्रीकृष्णके मुखमें अपना विषाक्त स्तन दे दिया ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णने उसे क्रूर स्वभाववाली राक्षसी पूतना पहचानकर अपने ओष्ठके द्वारा उसके स्तनसे प्राणोंसहित दुग्धका पान किया। तत्पश्चात् उस सौम्य रूपको छोड़कर वह भयानक राक्षसीके रूपमें आ गयी और 'छोड़ दे, छोड़ दे'—ऐसा कहती हुई उसने प्राणोंका परित्याग कर दिया। तदनन्तर विकराल मुखवाली वह भयंकर पूतना पृथ्वीको पीड़ित करती हुई विशाल पर्वतकी भाँति धरातलपर गिर पड़ी, जिससे पूरा गोकुल ढक गया ॥ १३—१५ ॥

श्रीकृष्ण उसके वक्षःस्थलपर अचानक भयानक मुखवाली, मुण्डमालासे सुशोभित दूसरी कालिकादेवीके रूपमें विराजित होने लगे। भगवती कालिकाने उस राक्षसी पूतनाके शरीरसे हटकर क्षणार्धमें श्यामवर्णके बालकृष्णका रूप धारण कर लिया ॥ १६-१७ ॥

यह सब देखकर वे समस्त व्रजवासी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे और उन्होंने शिशुरूप श्रीकृष्णको परात्पर आद्या शक्तिके रूपमें माना ॥ १८ ॥ इसके बाद औषधियुक्त जलसे श्रीकृष्णका मार्जन करके यशोदाजीने उन्हें उठाकर अपनी गोदमें लिपटाकर उनके मुखारविन्दमें अपना स्तन दे दिया ॥ १९ ॥ इसी बीच उस पापी राजा कंसको राज्यकर देकर नन्दगोप भी वहाँ आ गये। महामुने! उस बालकका यह अद्भुत कृत्य सुनकर उन्होंने आदरपूर्वक अनेक उपचार अर्पण करके भगवतीकी विधिवत् पूजा की ॥ २०-२१ ॥

अथ कंसः समाकर्ण्य पूतनानिधनं तथा।
कृष्णस्य चेष्टितं चापि तं मेने मृत्युमात्मनः॥ २२॥

ततः प्रस्थापयामास तृणावर्तं महासुरम्।
अपहृत्य समानेतुं कृष्णं गोकुलसंस्थितम्॥ २३॥

स आगतस्तृणावर्तो वीक्ष्य तं निर्जनस्थितम्।
आश्लिष्य बाहुदण्डेन नीत्वा गगनमास्थितः॥ २४॥

कृष्णः स्मित्वा तु तस्याङ्के स्थित्वाऽभूद्ब्रह्मरूपिणी।
काली व्याघ्राजिनधरा महाजलदनिःस्वना॥ २५॥

तस्यास्तु तेन नादेन मोहितः स महासुरः।
पपात चालयन्पृथ्वीं सशैलवनकाननाम्॥ २६॥

ततस्तस्य शिरः काली खड्गेनाहत्य वै पुनः।
सम्भूय बालकस्तस्य स्थितो वक्षसि नारद॥ २७॥

यशोदा तु समागत्य दृष्ट्वा तं दानवं हतम्।
महाद्रिसदृशं छिन्नशीर्षं शोणितसम्प्लुतम्॥ २८॥

विस्मयं परमं प्राप्य पुत्रं तमनुसंदधे।
तत्र वीक्ष्य तृणावर्तं बलस्थं श्यामसुन्दरम्॥ २९॥

हसन्तं सुप्रसन्नास्यं विस्मयं परमं गता।
वदन्ती वत्स वत्सेति सहसा स्वाङ्कमानयत्॥ ३०॥

नन्दश्चापि समागत्य दृष्ट्वा तं घोररूपिणम्।
पतितं विगतप्राणं शोणितौघपरिप्लुतम्॥ ३१॥

श्रीकृष्णेन हतं मत्वा मुमुदे मुनिसत्तम।
एवं भगवती देवी मायापुरुषरूपिणी॥ ३२॥

तपसः फलदानाय यशोदानन्दगोपयोः।
शैशवं भावमाश्रित्य संस्थिता गोकुले स्वयम्॥ ३३॥

शम्भुस्तु जन्म सम्प्राप्य वृषभानुगृहे ततः।
स्त्रीरूपं लीलयाऽऽस्थाय राधेत्याख्यामुपागमत्॥ ३४॥

इसके बाद पूतनाके निधनका समाचार तथा कृष्णकी यह आश्चर्यजनक लीला सुनकर कंसने उन्हें अपना कालरूप समझ लिया। तत्पश्चात् कंसने गोकुलमें स्थित श्रीकृष्णको तेजीसे उड़ाकर उठा लानेके लिये महान् असुर तृणावर्तको भेजा॥ २२-२३॥

वह तृणावर्त आया और उन श्रीकृष्णको एकान्तमें बैठा हुआ देखकर उन्हें अपनी दोनों भुजाओंमें जकड़कर आकाशमें ले गया और वहीं स्थित हो गया। उसकी गोदमें विराजमान श्रीकृष्ण मुसकराकर तत्काल ब्रह्मरूपिणी कालीके रूपमें प्रकट हो गये। वे बाघम्बर धारण किये थीं और महान् मेघके समान गर्जना कर रही थीं। उन कालीके उस नादसे मूर्च्छित होकर वह महान् असुर तृणावर्त पर्वतों, वनों और वाटिकाओंके सहित पृथ्वीको चलायमान करता हुआ गिर पड़ा॥ २४—२६॥

नारद! तत्पश्चात् भगवती काली खड्गसे उसका सिर काटकर और पुनः बालकके रूपमें होकर उस राक्षसके वक्षःस्थलपर स्थित हो गयीं और यशोदाजीने वहाँ आकर एक विशाल पर्वतके समान पड़े, कटे मस्तकवाले और खूनसे लथपथ मरे हुए राक्षसको देखा। यह देखकर वे अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर अपने पुत्रको खोजने लगीं। वहाँ बलवान् तृणावर्तपर बैठे प्रसन्नवदन श्यामसुन्दरको हँसते हुए देखकर उन्हें अत्यन्त विस्मय हुआ और 'वत्स! वत्स!'—ऐसा कहती हुई उन्होंने श्रीकृष्णको झटसे उठाकर अपनी गोदमें ले लिया॥ २७—३०॥ मुनिश्रेष्ठ! नन्द भी वहाँ आकर अत्यधिक रक्तसे लथपथ तथा निष्प्राण होकर भूमिपर पड़े उस घोररूप तृणावर्तको देखकर और श्रीकृष्णके द्वारा उसे मारा गया जानकर अति आनन्दित हुए॥ ३१½॥ इस प्रकार लीलासे पुरुषका रूप धारण करनेवाली भगवती जगदम्बा यशोदा और नन्दगोपको उनकी तपस्याका फल प्रदान करनेके लिये शिशुभावका आश्रय ग्रहण करके गोकुलमें स्वयं विराजमान हुईं॥ ३२-३३॥ उसी समय भगवान् शिव वृषभानुके घरमें अपनी लीलासे स्त्रीरूपमें जन्म लेकर 'राधा' इस नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ३४॥

तां राधामुपसंयेमे कोऽपि गोपो महामुने।
क्लीबत्वं सहसा प्राप शम्भोरिच्छानुसारतः॥ ३५॥

सा राधाऽनुदिनं गत्वा कृष्णं कमललोचनम्।
प्रेम्णा स्वाङ्के समारोप्य ददृशे परमादरात्॥ ३६॥

कंसस्तु निहतं श्रुत्वा तृणावर्तं महासुरम्।
नन्दनन्दनमाहर्तुं व्यचिन्तयदहर्निशम्॥ ३७॥

रोहिणीतनयो रामः कृष्णेनामिततेजसा।
चिक्रीडे परमानन्दपूर्णात्माऽहर्निशं मुने॥ ३८॥

तथैव क्रीडितस्तेन श्रीदामवसुदामकौ।
कुमारौ रूपसम्पन्नौ सुचारुमुखपङ्कजौ॥ ३९॥

तेषां भावेन सम्प्रीतमनाः कृष्णस्तु गोकुले।
उवास राधया सार्धं रन्तुकामो महामते॥ ४०॥

महामुनि! उन राधाके पास जाकर एक गोपने सम्बन्ध बनानेकी कुचेष्टा की, किंतु भगवान् शिवके इच्छानुसार वह अचानक ही क्लीब (नपुंसक) हो गया॥ ३५॥ वे राधा कमलके समान नेत्रवाले कृष्णके पास प्रतिदिन जाकर प्रेमपूर्वक अपने अङ्कमें बिठाकर अत्यन्त आदरसे उन्हें देखा करती थीं॥ ३६॥ उधर महान् असुर तृणावर्तके निधनका समाचार सुनकर कंस नन्दपुत्र श्रीकृष्णके अपहरणका उपाय दिन-रात सोचता रहता था॥ ३७॥

मुने! परम आनन्दसे परिपूर्ण आत्मावाले रोहिणीपुत्र श्रीबलराम असीम तेजस्वी श्रीकृष्णके साथ दिन-रात क्रीडा करनेमें लीन रहते थे। उसी प्रकार कमलके समान सुन्दर मुखवाले रूपसम्पन्न श्रीदाम तथा वसुदाम नामक दोनों गोपकुमार भी उन श्रीकृष्णके साथ खेला करते थे। महामते! उन सबके प्रेमभावसे प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्ण राधाके साथ विहार करनेकी इच्छासे गोकुलमें रहने लगे॥ ३८—४०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे पूतनावधादनन्तरं तृणावर्तवधोपाख्याने एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'पूतनावधके अनन्तर तृणावर्तवधोपाख्यान' नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

प्रजापति दक्ष और प्रसूतिकी उग्र तपस्या तथा वरप्राप्ति, दक्ष और प्रसूतिका गोकुलमें नन्द और यशोदाके रूपमें जन्म लेना

श्रीनारद उवाच

सम्भूता देवकीगर्भे देवी बालकरूपिणी।
उवास गोकुले कस्मान्नन्दगोपगृहे स्वयम्॥ १॥

पुरासीदेष नन्दः को यशोदा का तदङ्गना।
किं चकार तपः पूर्वं येन प्राप महेश्वरीम्॥ २॥

कालीं बालकभावेन श्यामसुन्दररूपिणीम्।
कस्माद्वापि निजांशेन यशोदागर्भसम्भवा॥ ३॥

देवी भगवती दुर्गा जातमात्रा समभ्यगात्।
ददृशे नैव तां माता ज्ञातवान्न पितापि च॥ ४॥

यथोत्पन्ना यथा जाता किं हेतुकमिदं प्रभो।
एतन्मे पार्वतीनाथ समाचक्ष्व जगत्पते॥ ५॥

श्रीनारदजी बोले—देवकीके गर्भसे बालकरूपमें प्रादुर्भूत होकर साक्षात् भगवती गोकुलमें नन्दगोपके घरमें किस कारणसे निवास करती थीं? पूर्व जन्ममें ये नन्दजी कौन थे और उनकी पत्नी यशोदा कौन थीं? इन्होंने पूर्वकालमें ऐसा कौन-सा तप किया था, जिससे श्यामसुन्दर-रूपवाली महेश्वरी कालीको बालकरूपसे प्राप्त किया? यशोदाके गर्भसे अपने अंशसे उत्पन्न ये देवी भगवती दुर्गा पैदा होते ही क्यों चली गयीं। उन्हें न तो माता यशोदाने देखा और न तो पिता नन्दने जाना। प्रभो! वे जिस तरहसे उत्पन्न हुईं और उन्होंने जैसी लीला की; इन सबके पीछे क्या कारण है? पार्वतीनाथ! जगत्पते! यह सब मुझे बताइये॥ १—५॥

श्रीमहादेव उवाच

वत्स वक्ष्यामि ते सर्वं यत्पृच्छसि महामते।
शृणुष्वावहितो भूत्वा यथावन्मुनिपुङ्गव॥ ६ ॥
दक्षः प्रजापतिः पूर्वं सतीविरहदुःखितः।
चेतसा चिन्तयामास ज्ञात्वा तां प्रकृतिं पराम्॥ ७ ॥
सम्प्राप्य तपसोग्रेण कन्यामाद्यां परात्पराम्।
तयास्मि वञ्चितो मोहादज्ञात्वा शिवनिन्दनात्॥ ८ ॥
अहं तथा यतिष्यामि भूयोऽपि तप आचरन्।
यथा मत्तः समुत्पत्तिं भूयः सा समुपैति वै॥ ९ ॥
इति कृत्वा मतिं दक्षो हिमाद्रेः प्रस्थमुत्तमम्।
गत्वा वर्षशतं दिव्यं समाराधयदम्बिकाम्।
प्रसूतिरपि तत्पत्नी सद्भक्त्या परमेश्वरीम्॥ १०॥
तथैव प्रार्थयामास सुचिरं मुनिसत्तम।
तयोः प्रसन्ना समभूत्प्रत्यक्षं परमेश्वरी॥ ११॥
अवोचदिति यत्प्रार्थ्यं युवयोर्वृणुतं च तत्।
ततः प्रजापतिः प्राह मातस्त्वं कृपया पुनः॥ १२॥
मत्तो जन्माप्नुहि शिवे प्रार्थ्यमेतन्महेश्वरी।
प्रसूतिः प्राह मातस्त्वामपत्यस्नेहतः शिवे॥ १३॥
पालयामीति मेऽभीष्टं प्रार्थनीयं तवाग्रतः।

देव्युवाच

प्रजापते भविष्यामि द्वापरान्ते धरातले॥ १४॥
त्वत्तो जन्म समासाद्य तनया ते न संशयः।
न स्थास्यामि गृहे किंतु तव कन्यास्वरूपिणी॥ १५॥
स्मृत्वा तच्चरितं पूर्वं शिवनिन्दाकरं परम्।
द्रुतं स्वर्गपुरं यास्ये देवकार्यच्छलेन वै॥ १६॥
अजानतो जन्मवृत्तं मम तातस्य ते गृहात्।
मातः प्रसूतिस्त्वं चेदं मत्तः प्रार्थयसीति यत्॥ १७॥
सम्पत्स्यते तदा नूनं तत्सत्यं नात्र संशयः।
अदित्यै कश्यपायापि मया दत्तो वरः स्वयम्॥ १८॥
द्वापरान्ते भविष्यामि तयोर्गेहे सुतस्त्वहम्।
तदा तव गृहेऽहं तु दिनानि कतिचिद्ध्रुवम्॥ १९॥
वसिष्ये फलदानाय तपसस्तस्य लीलया।

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! महामते! आपने जो पूछा है, वह सब मैं आपको यथावत् कहूँगा, मुनिश्रेष्ठ! आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ६॥ पूर्वकालमें दक्षप्रजापतिने सतीके विरहसे दुःखी होकर उन्हें पराप्रकृति जानकर मनमें ऐसा सोचा कि मैंने उग्र तपसे जिन आद्या पराशक्तिको कन्यारूपमें प्राप्त किया था, उन्हें अपने अविवेकके कारण न जानते हुए तथा शिवनिन्दा करनेके कारण मैं उनसे वञ्चित हो गया। मैं तपस्या करके पुनः वैसा प्रयत्न करूँगा, जिससे वे भगवती पुनः मेरे यहाँ आविर्भूत हों॥ ७—९॥ मनमें ऐसा निश्चय करके दक्षप्रजापतिने हिमालयके उत्तम शिखरपर जाकर एक सौ दिव्य वर्षोंतक भगवतीकी आराधना की। मुनिश्रेष्ठ! उनकी पत्नी प्रसूतिने भी दीर्घकालतक उसी प्रकार भक्तिपूर्वक परमेश्वरीसे प्रार्थना की। उन दोनोंकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती परमेश्वरी प्रकट हो गयीं और बोलीं—'तुम दोनोंका जो अभीष्ट हो, उसे माँग लो'॥ १०-११½॥ तब प्रजापति दक्षने कहा—माता! शिवे! आप कृपापूर्वक मेरे यहाँ फिरसे जन्म लीजिये। महेश्वरी! मेरी आपसे यही प्रार्थना है। प्रसूतिने कहा—माता! शिवे! मैं वात्सल्यस्नेहसे युक्त होकर आपका पालन करूँ। इसी अभीष्टके लिये यही मेरी आपसे प्रार्थना है॥ १२-१३½॥

देवीजी बोलीं—प्रजापते! मैं द्वापरके अन्तमें पृथ्वी-तलपर आपसे जन्म लेकर आपकी कन्या होऊँगी; इसमें संदेह नहीं है, किंतु भगवान् शिवके प्रति पूर्वमें आपके द्वारा किये गये अत्यन्त निन्दापरक कृत्यका स्मरण कर कन्यास्वरूपिणी मैं आपके घरमें नहीं रहूँगी। मेरे जन्मकी घटनाको न जाननेवाले मेरे पितारूप आपके घरसे मैं देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके बहाने शीघ्र ही स्वर्ग चली जाऊँगी। माता प्रसूति! आपने मुझसे यह जो प्रार्थना की है, वह भी निश्चितरूपसे पूर्ण होगी; इसमें संशय नहीं है। मैंने प्रजापति कश्यप और अदितिको भी वर प्रदान किया था कि मैं द्वापरके अन्तमें आप दोनोंके घरमें स्वयं पुत्ररूपमें जन्म लूँगी। उस समय मैं आपके उस तपस्याका फल प्रदान करनेके लिये कुछ दिन लीलापूर्वक आपके घरमें निवास करूँगी॥ १४—१९½॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥ २० ॥
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ सहसा पश्यतोस्तयोः ।
स दक्ष एव नन्दस्तु यशोदापि तदङ्गना ॥ २१ ॥
कारणादपि चैतस्माद्यशोदागर्भसम्भवा ।
देवी भगवती स्वर्गे जातमात्रा समभ्यगात् ॥ २२ ॥
देवकीगर्भजातापि श्यामसुन्दररूपिणी ।
उवास गोकुले रम्ये कियत्कालं महामुने ॥ २३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली वे भगवती उन दोनोंके देखते-देखते अचानक अन्तर्धान हो गयीं। वे ही दक्ष नन्द हुए और उनकी पत्नी भी यशोदा हुईं। इसी कारणसे यशोदाके गर्भसे उत्पन्न वे देवी भगवती जन्म लेते ही अन्तरिक्षमें चली गयीं। महामुने! साथ ही देवकीके गर्भसे उत्पन्न होकर भी श्यामसुन्दर-रूपवाली उन भगवतीने कुछ समयतक सुरम्य गोकुलमें निवास किया था ॥ २०—२३ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे दक्षप्रसूतिनन्दयशोदाजन्मवर्णने द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'दक्षप्रसूतिनन्दयशोदाजन्मवर्णन' नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५२ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीला—धेनुकासुरवध, कालियमर्दन, रासलीला तथा वृषभासुरवध

श्रीनारद उवाच

संक्षेपेण समाशंस पार्वतीप्राणवल्लभ ।
देव्याः श्रीकृष्णरूपायाश्चरितं मे महेश्वर ॥ १ ॥
यथा विहरणं चक्रे गोकुले सह राधया ।
निपातयच्चापि तथा भूभारान्सुबहून्रणे ॥ २ ॥
अन्यत्रापि कुरुक्षेत्रे साक्षाद्वापि कुलेन वा ।
यथैवासीत्क्षितौ सर्वैर्ऋषिभिर्यदुवंशजैः ॥ ३ ॥
आरुरोह पुनः स्वर्गं यथा तदभिशंस मे ।

श्रीमहादेव उवाच

विहरन् गोकुले कृष्णः समस्तैर्गोपबालकैः ॥ ४ ॥
बाल्ये वयसि हत्वा तान्धेनुकादीन्महासुरान् ।
कालीयदमनं कृत्वा प्रभावमनुदर्शयन् ॥ ५ ॥
रेमे वृन्दावने रम्ये राधया मुनिसत्तम ।
अन्यैश्च गोपिकावृन्दैर्भैरवांशसमुद्भवैः ॥ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले—पार्वतीप्राणवल्लभ महेश्वर! श्रीकृष्ण-रूपवाली भगवतीके चरित्रका संक्षेपमें मुझसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ जिस प्रकार उन्होंने गोकुलमें राधाके साथ विहार किया और पृथ्वीके भारस्वरूप बहुत-से वीरोंका रणमें तथा अन्यत्र कुरुक्षेत्र आदिमें भी संहार किया, स्वयं अपने बन्धु-बान्धवों, यदुवंशियों तथा समस्त ऋषियोंके साथ जिस प्रकार वे पृथ्वीपर विराजमान रहे और अन्तमें जिस प्रकार श्रीकृष्णने स्वर्गारोहण किया; वह सब आप मुझे बताइये ॥ २-३½ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! सभी ग्वाल-बालोंके साथ गोकुलमें विहार करते हुए श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें ही उन धेनुकासुर आदि महान् दैत्योंको मारकर तथा कालियदमन करके अपने अद्भुत प्रभावका प्रदर्शन करते हुए रमणीक वृन्दावनमें राधाके साथ विहार किया। भगवती कालीके ही पुरुषरूप भगवान् श्रीकृष्णने भैरवके अंशसे उत्पन्न

लावण्यं वर्धयन्नेमे कृष्णः काल्यात्मकः पुमान्।
गोरक्षणकुलाद्गत्वा दिवा वृन्दावने शुभे॥ ७॥

वेणुनिःस्वनसंवादैः सर्वाश्चानीय गोपिकाः।
प्रधानमहिषीं कृत्वा राधां रेमे स्वलीलया॥ ८॥

विविधैर्वन्यपुष्पैश्च मालां निर्माय गोपिकाः।
कृष्णाङ्गे सम्प्रदायातिहृष्टा कृष्णं व्यलोकयन्॥ ९॥

कृष्णोऽपि रुचिरां मालां दत्त्वा ताभ्यः स्मिताननः।
व्यलोकयन्मुखाम्भोजं सुप्रसन्नं निरन्तरम्॥ १०॥

कदाचिदुपविष्टस्तु दिव्यसिंहासनोपरि।
वामाङ्गे समुपाधाय राधां परमसुन्दरीम्॥ ११॥

विमृज्य शशिकोट्याभं वाससा तन्मुखाम्बुजम्।
प्रेम्णा चुचुम्ब श्यामस्तां कामव्याकुलमानसः॥ १२॥

कदाचिद्यमुनातीरे कदाचिज्जलमध्यतः।
सहितो गोपिकावृन्दैश्चिक्रीडे यदुनन्दनः॥ १३॥

रात्रौ संहृत्य चेतांसि गोपीनां वेणुनिःस्वनैः।
आनीय कानने तत्र रेमे कृष्णः सकौतुकम्॥ १४॥

कदाचिद्राधिका शम्भुश्चारुपञ्चमुखाम्बुजः।
कृष्णो भूत्वा स्वयं गौरी चक्रे विहरणं मुने॥ १५॥

एवं संरममाणस्तु राधया गोकुले स्वयम्।
कृष्ण आनन्दपूर्णात्मा समावात्सीन्महामुने॥ १६॥

एकदा सम्प्रवृत्ते तु शरत्काले महानिशि।
विहर्तुं मनः कृत्वा वृन्दावनमुपागमत्॥ १७॥

पुष्पितं मल्लिकाकुन्दजातीचम्पकरङ्गनैः।
ललितं मन्दमन्दायमानैर्मधुरवायुभिः॥ १८॥

मधुपैर्मधुमत्तैश्च गुञ्जितैर्मधुरस्वनैः।
कूजितं कोकिलैः क्रौञ्चैः कामविह्वलमानसैः॥ १९॥

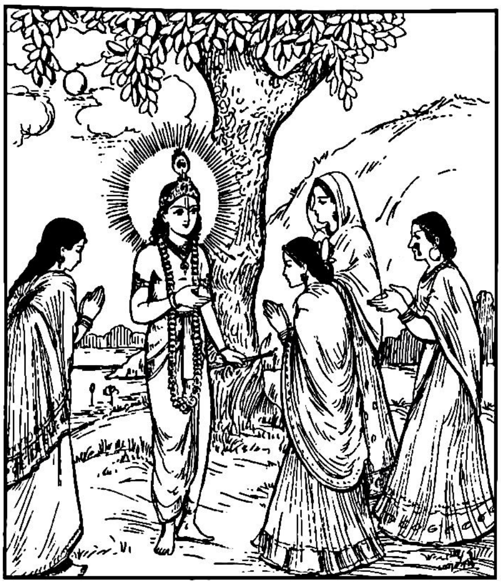
अन्य गोपियोंके साथ उनके सौन्दर्यकी वृद्धि करते हुए विहार किया। दिनमें गोकुलसे मङ्गलमय वृन्दावनमें जाकर उन्होंने अपनी बाँसुरीकी मधुर ध्वनिसे सभी गोपियोंको बुलाकर और राधाको प्रधान महिषी बनाकर वहाँ अपनी लीलासे 'रास' रचाया॥ ४—८॥ अनेक प्रकारके वन्य-पुष्पोंसे माला बनाकर गोपियाँ श्रीकृष्णके गलेमें डाल देती थीं और अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें देखने लगती थीं। अपने मुखपर मुसकान लिये श्रीकृष्ण भी उन गोपियोंको सुन्दर माला पहनाकर उनके हर्षित मुखकमलको निरन्तर देखते रहते थे॥ ९-१०॥ कभी दिव्य सिंहासनपर बैठे हुए श्रीकृष्ण परम सुन्दरी राधाको अपने बायें भागमें बिठाकर करोड़ों चन्द्रोंकी कान्तिके सदृश उनके मुख-कमलका स्नेहपूर्वक स्पर्श करते थे। वे यदुनन्दन श्रीकृष्ण गोपिका-समूहोंके साथ कभी यमुनाके तटपर और कभी जलमें क्रीडा किया करते थे। वे श्रीकृष्ण रात्रिकालमें अपनी बाँसुरीकी ध्वनिसे गोपियोंका चित्त आकृष्ट करके और उन्हें वनमें बुलाकर उनके साथ आनन्दपूर्वक विहार करते थे। मुने! कभी राधिकाजी कमलसदृश पाँचमुखवाले भगवान् शिवका सुन्दर रूप धारण कर लेती थीं और स्वयं श्रीकृष्ण गौरीके रूपमें होकर उनके साथ विहार करने लगते थे॥ ११—१५॥ महामुने! इस प्रकार राधाके साथ रमण करते हुए परिपूर्ण आनन्दस्वरूप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलमें रहते थे॥ १६॥ एक समय शरत्पूर्णिमाकी महानिशामें विहार करनेका मनमें निश्चय करके श्रीकृष्ण वृन्दावन आये। वह वृन्दावन मल्लिका, कुन्द, चमेली, चम्पा और रङ्गन आदि खिले हुए पुष्पोंसे परिपूर्ण था; मन्द-मन्द सुगन्धित वायुसे अत्यन्त रमणीय था; मधुर ध्वनिके द्वारा गुञ्जार करनेवाले मधुमत्त भौंरोंसे सुशोभित था और कामसे व्याकुलचित्तवाले कोकिल तथा क्रौंच पक्षियोंसे निनादित था॥ १७—१९॥

सरांसि चातिरम्याणि कानने तत्र नारद।
सुपुष्पितानि कह्लारकुमुदैः पङ्कजैरपि॥ २०॥

अथोदयमनुप्राप शशाङ्कोऽतिसुनिर्मलः।
हर्षयन्नपि विश्वानि द्रावयन्कामिनीमनः॥ २१॥

एवं वनं प्रियं वीक्ष्य शशाङ्कं चातिनिर्मलम्।
प्रहृष्टात्मा स्वयं कृष्णो वेणुमावादयन्मुने॥ २२॥

तच्छ्रुत्वा समुपायाताः सर्वा गोपवराङ्गनाः।
सन्त्यज्य गृहकर्माणि कृष्णाकर्षितमानसाः॥ २३॥



राधा जगाम चार्वङ्गी तासामग्रे व्यवस्थिता।
साक्षाच्छम्भुः पुमान्पूर्णो राधास्त्रीरूपमाश्रितः॥ २४॥

ताः सर्वा आगता वीक्ष्य कृष्णः कमललोचनः।
महाविहार उद्योगं चक्रे स मुनिसत्तम॥ २५॥

आकृष्य बाहुभिः सर्वा गोपीः कृष्णः पृथक् पृथक्।
रेमे रतिपतिं जित्वा नानाकौतुकमङ्गलैः॥ २६॥

अथाष्टधाऽभवत्कृष्णो नवीनजलदप्रभः।
स्मितास्यः परमानन्दः पूर्णात्मा कामविह्वलः॥ २७॥

तद्वीक्ष्य रेजे राधापि भूत्वाष्टौ मूर्तयः क्षणात्।
सहसेन्दुप्रभास्मेररुचिराः कामविह्वलाः॥ २८॥

नारद! उस वनमें खिले हुए श्वेत कमल, कुमुद, पंकज आदि पुष्पोंसे युक्त अत्यन्त मनोहर सरोवर विद्यमान थे। उस समय सभी प्राणियोंको हर्षित करनेवाला तथा स्त्रियोंके मनको द्रवीभूत करता हुआ अत्यन्त निर्मल चन्द्रमा आकाशमें उदित हुआ। मुने! इस प्रकारके प्रिय वन तथा अत्यन्त स्वच्छ चन्द्रमाको देखकर प्रसन्न मनवाले स्वयं श्रीकृष्णने वंशीकी मधुर ध्वनि की। उसे सुनकर श्रीकृष्णकी ओर आकृष्ट मनवाली सभी सुन्दर गोपाङ्गनाएँ अपने-अपने घरके काम-काज छोड़कर उनके पास आ गयीं॥ २०—२३॥

सुन्दर अङ्गोंवाली राधा, जो स्त्रीरूपमें साक्षात् पूर्णब्रह्म शिवजी थे, उनके आगे-आगे वहाँ पहुँच गयीं। मुनिश्रेष्ठ! उन सभी गोपिकाओंको आया हुआ देखकर वे कमलनयन श्रीकृष्ण उनके साथ महारास करनेका उद्योग करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने कामदेवको जीतकर अनेकविध शुभ क्रीडाएँ करते हुए उनके साथ लीला-विहार किया। उस समय नवीन मेघके समान प्रभावाले परमानन्दस्वरूप पूर्णात्मा श्रीकृष्ण अपने मुखपर मुसकानके साथ आठ विग्रहोंमें विभक्त हो गये थे। यह देखकर क्षणभरमें राधा भी चन्द्रमाके समान कान्तिवाले तथा मन्द-मन्द हासयुक्त सुन्दर मुखवाले प्रेमोन्मत्त आठ विग्रहोंमें होकर सुशोभित होने लगीं॥ २४—२८॥

ताभिर्मूर्तिभिरष्टाभिर्विहर्तुं हि महामुने।
अष्टमूर्तिः प्रसन्नात्मा कृष्णः सोऽन्तर्दधे क्षणात्॥ २९॥

गतोऽन्तरिक्षे चक्रे स रासक्रीडां महामुने।
अन्याः शूलेन सन्त्यज्य सर्वगोपवराङ्गनाः॥ ३०॥

बाहुभ्यां बाहुमाकृष्य राधायाः कमलेक्षणः।
वक्त्रेण घट्टयन्वक्त्रं मर्दयंश्च स्तनौ करैः॥ ३१॥

क्वचिद्वस्त्रं तथाहृत्य प्रहसन्कौतुकान्वितः।
रेमे चिरं परानन्दः पूर्णात्मा निजलीलया॥ ३२॥

तत्रासीत्पुष्पवृष्टिश्च महती मुनिसत्तम।
भेरीमृदङ्गतूर्यादिनिःस्वनैस्तुमुलैः सह॥ ३३॥

तथा विहरमाणौ तु राधाकृष्णौ नभोऽन्तरे।
नालोक्य रुरुदुस्त्वन्या गोपिका रम्यकानने॥ ३४॥

तासां विलापमाकर्ण्य पुनः कृष्णस्तु राधया।
प्रत्यक्षं समभूत्तत्र कानने मुनिपुङ्गव॥ ३५॥

मनोऽभिलषितं तासां कृष्णः कर्तुमनेकधा।
सम्भूय निजमाहात्म्याद्रेमे तस्मिन्महावने॥ ३६॥

दृष्ट्वा तु देवगन्धर्वाः कृष्णक्रीडां महामुने।
सम्प्रापुः परमामोदं चक्रुः पुष्पातिवर्षणम्॥ ३७॥

एवं बहुदिनं रात्रौ गोपीभिः सह कानने।
चकार रासक्रीडां वै पूर्णामारभ्य कार्तिकीम्॥ ३८॥

अन्या अपि महाक्रीडाश्चकार परमेश्वरी।
वस्त्रापहरणाद्यास्तु योषिद्रूपेण शम्भुना॥ ३९॥

नन्दाद्या गोपवृन्दास्तु ज्ञात्वा ब्रह्मेति चेष्टितैः।
स्नेहेन पालयामासुः कृष्णं देव्यात्मकं मुने॥ ४०॥

महामुने! राधाकी उन आठ मूर्तियोंके साथ विहार करनेके लिये आठ विग्रहवाले प्रसन्नात्मा वे श्रीकृष्ण क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये और महामुने! अन्य सभी सुन्दर गोपिकाओंको वहींपर विरह-व्यथित छोड़कर वे अन्तरिक्षमें चले गये तथा राधाके साथ वहाँ रासलीला करने लगे। परमानन्दस्वरूप पूर्णात्मा कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण कौतूहलयुक्त



होकर लीलासे उनके साथ आनन्द-विहार करते थे। मुनिश्रेष्ठ! भेरी, मृदङ्ग, तुरही आदिकी तीव्र ध्वनिके साथ उनके ऊपर आकाशसे भारी पुष्पवृष्टि होने लगी और आकाशके मध्य इस प्रकार विहार कर रहे राधा तथा कृष्णको न देखकर उस सुरम्य वनमें स्थित अन्य गोपिकाएँ रोने लगीं। मुनिवर! उन गोपिकाओंका विलाप सुनकर श्रीकृष्ण राधाके साथ उस काननमें पुनः प्रकट हो गये और उनकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये श्रीकृष्णने अपनी महिमासे अनेक रूपोंमें होकर उस महावनमें उनके साथ लीला की॥ २९—३६॥ महामुने! श्रीकृष्णकी रासक्रीडा देखकर देवता तथा गन्धर्व परम आनन्दित हुए और भारी पुष्पवर्षा करने लगे॥ ३७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णने कार्तिककी पूर्णिमा-तिथिसे आरम्भ करके बहुत दिनोंतक रात्रिवेलामें उस वनमें गोपिकाओंके साथ रासलीला की॥ ३८॥ इसी प्रकार श्रीकृष्णरूप परमेश्वरीने स्त्रीरूप शम्भुके साथ चीरहरण आदि अन्य महाक्रीडाएँ भी कीं॥ ३९॥ मुने! नन्द आदि गोपवृन्द उनकी लोकोत्तर लीलाओंसे देवीरूप श्रीकृष्णको ब्रह्म—ऐसा समझकर स्नेहपूर्वक उनका पालन करने लगे॥ ४०॥

राधापि परिसन्त्यज्य लज्जां तेन निरन्तरम्।
लावण्यं वर्धयन्तीव रेमे कृष्णेन नारद॥ ४१॥

नारद! राधा भी सौन्दर्यवर्धन करती हुई-सी उन श्रीकृष्णके साथ रमण करती थीं॥ ४१॥

अथ कंसेरितो दैत्यो वृषभाख्यो महाबलः।
एकदा गोकुलं प्रायाद्रामकृष्णौ विहंसितुम्॥ ४२॥

तमायान्तं दृशा वीक्ष्य रजताद्रिसमं मुने।
दुद्रुवुः परितः सर्वे पशवो गोकुले स्थिताः॥ ४३॥

दुद्रुवुश्चापरे लोकाः सिंहं दृष्ट्वा गजा इव।
दिशश्च विदिशश्चैव भयात्तस्य दुरात्मनः॥ ४४॥

एवं निरीक्ष्य सन्धावमाना गोकुलवासिनः।
कृष्णस्तमाससादाथ वृषभाख्यं महासुरम्॥ ४५॥

स चापि वृषभो वीक्ष्य कृष्णं सम्मुखमागतम्।
खुरैः प्रचालयन्पृथ्वीं ननर्द मुनिसत्तम॥ ४६॥

अथ कृष्णस्तमाकृष्य शृङ्गयोर्धरणीतले।
प्रक्षिप्य पातयामास पृथ्व्यां प्राणानमोचयत्॥ ४७॥

एक बार कंसके द्वारा भेजा गया वृषभासुर नामक बलशाली दैत्य बलराम और श्रीकृष्णको मारनेके लिये गोकुल आया। मुने! चाँदीके पर्वतके समान प्रतीत होनेवाले उस दैत्यको समक्ष आता हुआ देखकर गोकुलमें रहनेवाले सभी पशु चारों ओर भागने लगे। अन्य लोग भी उस दुष्टात्मा राक्षसके भयसे दिशाओं तथा विदिशाओंमें उसी प्रकार भागने लगे जैसे सिंहको देखकर हाथी भाग जाते हैं॥ ४२—४४॥ इस प्रकार गोकुलवासियोंको भागते हुए देखकर श्रीकृष्ण वृषभासुर नामक उस महान् दैत्यके पास पहुँचे। मुनिश्रेष्ठ! वह वृषभासुर भी श्रीकृष्णको सामने आया देखकर अपने खुरोंसे पृथ्वीको कम्पित करता हुआ जोर-जोरसे हुंकार मारने लगा। श्रीकृष्णने उसके दोनों सींगोंको पकड़कर अपनी ओर खींचा और धरतीपर फेंककर पटक दिया तथा पृथ्वीपर उसने प्राण त्याग दिये॥ ४५—४७॥

ततो गोपाः परं प्राप्य विस्मयं हृष्टमानसाः।
अपूजयंस्ते कृष्णं तं नानास्तुतिभिरादरात्॥ ४८॥

तत्पश्चात् अत्यन्त विस्मयको प्राप्त उन गोपगणोंने प्रसन्नचित्त होकर अनेक स्तुतियोंके द्वारा आदरपूर्वक उन श्रीकृष्णका पूजन किया॥ ४८॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे राधया सह रासक्रीडावर्णने कंसप्रेरितवृषभासुरवधो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत राधाके साथ रासक्रीडावर्णनमें 'कंसप्रेरितवृषभासुरवध' नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय

नारदजीका कंसको श्रीकृष्णके देवकीपुत्र होनेकी बात बताना, अक्रूरका गोकुलसे श्रीकृष्ण और बलरामको ले आना, कुवलयापीड, चाणूर और मुष्टिकका वध, श्रीकृष्णद्वारा कालिकारूपसे कंसका संहार करना तथा उग्रसेनका राज्याभिषेक कर माता-पिताको बन्धनमुक्त करना

श्रीमहादेव उवाच

अथैकदा मुनिः प्रायान्नारदो मथुरापुरम्।
नभसा वादयन्वीणां गायन्हरिकथामृतम्॥ १॥

स प्राह कंसराजाय निर्जने मुनिसत्तम।
वेदयन्सकलं वृत्तं सुगुप्तं दुष्टचेतसे॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—एक समयकी बात है—नारदमुनि वीणा बजाते हुए और भगवान् विष्णुकी अमृतमयी कथाका गान करते हुए आकाशमार्गसे मथुरा नगर आये। मुनिश्रेष्ठ! दुष्टहृदयवाले राजा कंसको एकान्तमें समस्त गुप्त समाचार बताते हुए वे कहने लगे॥ १-२॥

नारद उवाच

शृणु गुह्यतमं राजन्वक्ष्ये तव हितं वचः।
योऽसौ नन्दसुतः कृष्णो गोकुलेऽस्ति महाबलः॥ ३॥
नवीननीरदश्यामो वनमालाविराजितः।
स एव देवकीगर्भे सम्भूतश्चाष्टमे ध्रुवम्॥ ४॥
रोहिणीगर्भसम्भूतो रामो भीमपराक्रमः।
तौ न्यस्तौ वसुदेवेन विवृद्धौ नन्दवेश्मनि॥ ५॥
ताभ्यां ते निहताः शूरास्तृणावर्तादयो बलात्।
कन्या या गगनं प्रायात्सा तु नन्दतनूद्भवा॥ ६॥
आनीता वसुदेवेन त्वां प्रतारयितुं ध्रुवम्।

श्रीमहादेव उवाच

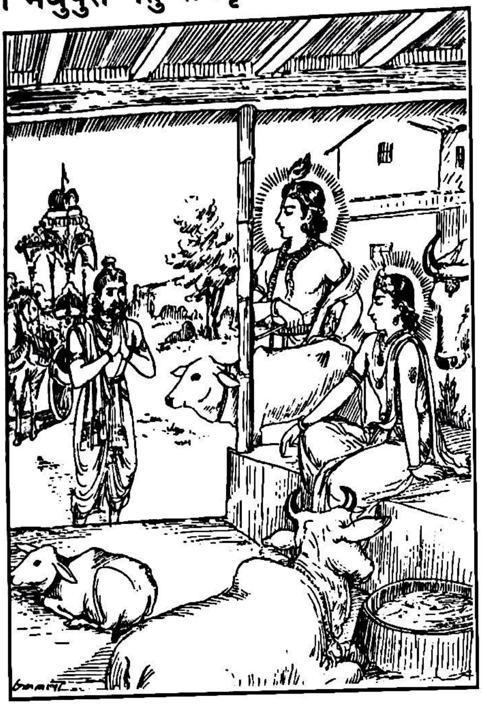
तेनैवमुक्तो दुर्धर्षः क्रोधात्खड्गमुपाददे॥ ७॥
संछेत्तुकामो देवक्या सहितं वृष्णिनन्दनम्।
ततस्तं वारयामास स एव मुनिसत्तमः॥ ८॥
उक्त्वा बहुविधं तस्मै राज्ञे कंसाय कोपिने।
ततः स्वाश्रममभ्यागात्स मुनिर्देवदर्शनः॥ ९॥
कंसः प्रस्थापयामासाक्रूरं निश्चित्य मन्त्रिभिः।
अक्रूरमाह गत्वा त्वं गोकुले नन्दवेश्मनि॥ १०॥
वसुदेवसुतौ रामकृष्णौ तत्र स्थितौ छलात्।
समानय पुरीमेनां मथुरां मम शासनात्॥ ११॥
तत्र मुष्टिकचाणूरप्रमुखैर्मल्लयोधिभिः।
मल्लयुद्धेन तौ वीरौ पातयिष्ये महाबलौ॥ १२॥
इत्याज्ञप्तो मुने तेन कंसेनातिदुरात्मना।
अक्रूरो रथमारुह्य शीघ्रं गोकुलमाययौ॥ १३॥
ततो नन्दाश्रमं गत्वा रथात् क्षितिमुपेत्य च।
प्रविश्य ददृशे वीरौ वासुदेवौ सुदुर्जयौ॥ १४॥
अक्रूरस्तौ प्रणम्याथ दण्डवत्पतितो भुवि।
उवाचागमने हेतुं यत्कंसेनाभिभाषितम्॥ १५॥

नारदजी बोले—राजन्! सुनिये, मैं आपके लिये हितकर तथा अत्यन्त गोपनीय बात बता रहा हूँ। नवीन मेघके समान श्यामवर्णवाले तथा वनमालासे सुशोभित जो वे महान् बलशाली नन्दपुत्र श्रीकृष्ण गोकुलमें रहते हैं, वे ही देवकीके आठवें गर्भसे निश्चितरूपसे उत्पन्न हुए हैं और प्रचण्ड पराक्रमवाले श्रीबलराम रोहिणीके गर्भसे आविर्भूत हुए हैं। वसुदेवने उन दोनोंको नन्दके घरमें धरोहरके रूपमें रखा और वे दोनों वहीं बढ़े। उन दोनोंने आपके तृणावर्त आदि वीरोंको अपने बलसे मार डाला और जो कन्या आकाशमें चली गयी थी, वह नन्दकी पुत्री थी। वह निश्चितरूपसे आपको ठगनेके लिये वसुदेवके द्वारा लायी गयी थी॥ ३—६½॥

श्रीमहादेवजी बोले—उन नारदके ऐसा कहनेपर उस क्रूर कंसने देवकीसहित वसुदेवको काट डालनेकी इच्छासे कुपित होकर तलवार उठा ली। इसपर उन मुनिश्रेष्ठ नारदने उस कोपाविष्ट राजा कंसको अनेक तरहसे समझाकर ऐसा करनेसे रोका। इसके बाद देवताओंको दर्शन प्रदान करनेवाले देवर्षि नारदमुनि अपने आश्रमको लौट गये॥ ७—९॥ इसके बाद कंसने मन्त्रियोंसे परामर्श करके अक्रूरको [गोकुलमें] भेजा और उनसे कहा कि तुम मेरे आदेशसे गोकुलमें जाकर नन्दके घरमें स्थित बलराम और कृष्ण—इन दोनों वसुदेवपुत्रोंको इस मथुरानगरीमें छलपूर्वक ले आओ। वहाँपर मुष्टिक और चाणूर आदि प्रधान मल्लयोद्धाओंसे मल्लयुद्ध करवाकर मैं उन दोनों महाबली वीरोंको मरवा डालूँगा॥ १०—१२॥ मुने! इस प्रकार उस अत्यन्त दुरात्मा कंससे आज्ञा पाकर अक्रूर रथपर सवार होकर शीघ्रतापूर्वक गोकुल आ गये। तत्पश्चात् नन्दके घर पहुँचकर वे अपने रथसे भूमिपर उतरे और उन्होंने घरमें प्रविष्ट होकर वसुदेवके दोनों दुर्जेय वीर पुत्रोंको देखा। अक्रूरने उन दोनोंको दण्डवत् प्रणाम किया और कंसने जैसा कहा था, वैसा अपने आनेका प्रयोजन बताया॥ १३—१५॥

अक्रूर उवाच

प्रेषितः कंसराजेन दुष्टेनाहं समागतः।
युवां मधुपुरीं नेतुं रामकृष्णौ महाबलौ॥ १६॥



स तु सन्मन्त्रयामास मन्त्रिभिर्दुष्टचेष्टिभिः।
युवां मल्लेन युद्धेन मल्लैः सम्पातयिष्यति॥ १७॥

अहं तु प्रतिजानामि श्रुत्वा योगिमुखाम्बुजात्।
न युवां प्राकृतौ नूनं मनुजौ भीमविक्रमौ॥ १८॥

कंसादिदुष्टभूभारनिवृत्त्यै निजलीलया।
जातौ मायामयौ पृथ्व्यां पुंप्रकृत्यात्मकौ परौ॥ १९॥

नन्दस्य च यशोदायास्तत्र भाग्यातिरेकतः।
संस्थितौ छलमाश्रित्य भयं कंसाद्दुरात्मनः॥ २०॥

तदेतयोः समभवज्जन्मान्तरकृतस्य च।
सम्पूर्णं फलमेवेह तपसः पूर्वमुत्तमम्॥ २१॥

इदानीं समुपागत्य मथुरां यदुशासनात्।
कंसादिदुष्टभूभारान्यापयैतान्महाबलान्॥ २२॥

महादेव उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य रामकृष्णौ महाबलौ।
गन्तुमिच्छू मधुपुरीं सर्वान्गोपान्समूचतुः॥ २३॥

यूयं विविधगव्यानि मधुराणि महात्मने।
दातुं राज्ञे श्वः प्रभाते गृहीत्वा सम्प्रयास्यथ॥ २४॥

आवां तत्र गमिष्यावो द्रष्टुं क्षितिपतिं ध्रुवम्।

अक्रूरजी बोले—महान् बलशाली आप दोनों—श्रीबलराम और श्रीकृष्णको मधुपुरी (मथुरा) ले जानेके लिये दुष्टस्वभाव राजा कंसके भेजनेपर मैं यहाँ आया हुआ हूँ। उस कंसने दुष्ट चेष्टाओंवाले मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की है और वह पहलवानोंसे मल्लयुद्धके द्वारा आप दोनोंको मरवा डालेगा॥ १६-१७॥

मैं तो योगिराजके मुखारविन्दसे सुनकर दृढ़ रूपसे जान गया हूँ कि प्रचण्ड पराक्रमवाले आप दोनों निश्चितरूपसे साधारण मनुष्य नहीं हैं। अपनी लीलासे कंस आदि दुष्टोंके भारसे पृथ्वीको मुक्त करनेके लिये आप दोनों परा प्रकृति और पुरुष अपनी मायाका आश्रय लेकर पृथ्वीपर आविर्भूत हुए हैं। नन्द और यशोदाके अतिशय भाग्यके कारण छलका आश्रय लेकर दुरात्मा कंससे भयकी लीला करते हुए आप दोनों यहाँ रह रहे हैं॥ १८—२०॥ जन्मान्तरमें इन दोनोंके द्वारा की गयी तपस्याका प्रधान तथा उत्तम फल इस लोकमें इन्हें सम्पूर्णरूपसे प्राप्त हो गया॥ २१॥ अब आप यदुराजके आदेशसे मथुरा पहुँचकर पृथ्वीके भारस्वरूप इन महाबली कंस आदि दुष्टोंको नष्ट कीजिये॥ २२॥

महादेवजी बोले—अक्रूरकी बात सुनकर मधुपुरी जानेकी इच्छावाले महान् बलशाली श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णने सभी गोपोंसे कहा—महाप्रतापी राजा कंसको विविध प्रकारके मधुर गव्य (दूध, दही, घृत आदि) प्रदान करनेके लिये उन्हें लेकर आप सभी लोग कल प्रातःकाल प्रस्थान कीजियेगा। हम दोनों पृथ्वीपति कंससे मिलनेके लिये निश्चितरूपसे वहाँ जायँगे॥ २३-२४½॥

तयोरिति वचः श्रुत्वा गोपाश्चकितमानसाः ॥ २५ ॥
तथा चक्रुर्मुनिश्रेष्ठ सर्व एव महामते।
ततः प्रभाते आरुह्य रथं तं चित्रमुत्तमम्॥ २६ ॥



अक्रूरेण सहोद्योगं चक्रतुर्मथुरागमे।
ततस्तु रुरुदुः सर्वाः कृष्णं वीक्ष्य व्रजाङ्गनाः ॥ २७ ॥

ताः समाश्वास्य तूर्णं स चालयन् रथमभ्यगात्।
अनुजग्मुर्मुनिश्रेष्ठ नन्दाद्या गोपवृन्दकाः ॥ २८ ॥

प्रगृह्य दधिदुग्धादिगव्यानि यदुनन्दनौ।
अक्रूरस्तु समादाय रामकृष्णौ महाबलौ ॥ २९ ॥

जगाम मधुपुर्यां वै नन्दगोपमुखैर्वृतः।
आयातौ रामकृष्णौ स श्रुत्वा कंसोऽतिमूढधीः ॥ ३० ॥

हस्तिनं स्थापयामास द्वारि भीमपराक्रमम्।
रामकृष्णवधार्थाय दुष्टं कुवलयं मुने॥ ३१ ॥

तं करे समुपादाय कृष्णः सम्पात्य भूतले।
द्विधा चक्रे शिरस्तस्य करघातेन लीलया॥ ३२ ॥

ततः पुरं विविशतू रामकृष्णौ महाबलौ।
अक्रूरसहितौ वीरौ नदन्तौ सिंहवन्मुहुः ॥ ३३ ॥

मुनिश्रेष्ठ! महामते! उन दोनोंकी यह बात सुनकर आश्चर्यचकित मनवाले सभी गोपगणोंने वैसा ही किया॥ २५½ ॥ तब उस उत्तम और विचित्र रथपर चढ़कर प्रातःकाल अक्रूरके साथ वे दोनों मथुरा जानेको तत्पर हुए। उस समय श्रीकृष्णको देखकर व्रजकी सभी गोपाङ्गनाएँ रोने लगीं। तब उन्हें आश्वासन देकर वे श्रीकृष्ण शीघ्रतापूर्वक रथ चलाते हुए प्रस्थित हुए॥ २६-२७½ ॥

मुनिश्रेष्ठ! नन्द आदि गोपवृन्द भी दधि, दुग्ध आदि गव्य पदार्थ लेकर यदुनन्दन श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चल दिये। महाबली श्रीबलराम और श्रीकृष्णको साथमें लेकर नन्द आदि प्रमुख गोपोंसे घिरे हुए अक्रूर मधुपुरी पहुँचे॥ २८-२९½ ॥

मुने! श्रीबलराम और श्रीकृष्णको आया हुआ सुनकर अत्यन्त मूर्खबुद्धि उस कंसने श्रीबलराम और श्रीकृष्णके वधके लिये दरवाजेपर कुवलयापीड नामक भीषण पराक्रमवाले एक दुष्ट हाथीको नियुक्त कर दिया। श्रीकृष्णने अनायास ही उस हाथीकी सूँड़को पकड़कर उसे पृथ्वीतलपर गिरा दिया और फिर हाथके प्रहारसे उसके मस्तकके दो टुकड़े कर दिये॥ ३०—३२॥ तदनन्तर महाबली तथा पराक्रमी श्रीबलराम और श्रीकृष्ण अक्रूरके साथ सिंहकी भाँति दहाड़ते हुए पुरमें प्रविष्ट हुए॥ ३३ ॥

अनुजग्मुर्भयत्रस्ता नन्दाद्या व्रजवासिनः।
उपायनानि गव्यानि गृहीत्वा मुनिसत्तम॥ ३४॥

ते तु गत्वा द्रुतं यत्र कंस आस्ते नराधिपः।
उपायनानि प्रददुस्तस्मै नत्वा दुरात्मने॥ ३५॥

मल्लक्षेत्रे स्थितौ रामकृष्णौ भीमपराक्रमौ।
मल्लाः सम्बोधयामासुर्मुष्टिकाद्या महाबलाः॥ ३६॥

तत्र सम्पातयामास मुष्टिघातेन मुष्टिकम्।
रोहिणीतनयो रामो महाबलपराक्रमः॥ ३७॥

कृष्णोऽप्यपातयद्वीरं चाणूरं पृथिवीतले।
उत्क्षिप्य गगने भूयो निपात्य मुनिसत्तम॥ ३८॥

अन्यांश्च शतशो मल्लान् रामकृष्णौ क्षणार्धतः।
पातयामासतुः संख्ये दर्शयन्तौ पराक्रमम्॥ ३९॥

ततः श्रुत्वा निपतितान्मल्लान्भीमपराक्रमान्।
आरुरोह महद्युद्धं मञ्चं कंसो दिदृक्षया॥ ४०॥

ततस्तु वीक्ष्य दुष्टात्मा रामकृष्णौ महाबलौ।
दूतानाह भयत्रस्त एतौ दूरय दूरय॥ ४१॥

व्रजस्थान्दण्डयिष्यामि गोपान्सर्वान्दुरात्मनः।
नन्दं तु घातयिष्यामि सभार्यं दुष्टचेतसम्॥ ४२॥

इत्येवं भाष्यमाणं तं वीक्ष्य कृष्णः क्षणार्धतः।
दधार निजमूर्तिं तां ब्रह्माण्डक्षोभकारिणीम्॥ ४३॥

ततः सा कालिका देवी वामेनाकृष्य पाणिना।
कैश्ये धृत्वा दुरात्मानं खड्गेन शिर आच्छिनत्॥ ४४॥

सा तु छित्त्वैव तद्द्रष्टुं भूयः सम्भूय पूर्ववत्।
ननर्त धरणीपृष्ठे रामेण मुनिसत्तम॥ ४५॥

नन्दाद्या गोपवृद्धाश्च हर्षनिर्भरमानसाः।
ननृतुर्वेणुवीणादीन्वादयन्तो रणाङ्गणे॥ ४६॥

बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो देवनिर्मिता।
दिशः समभवन्सर्वा निर्मला विगतस्वनाः॥ ४७॥

मुनिश्रेष्ठ! भयसे त्रस्त नन्द आदि व्रजवासी भी दधि, दुग्ध आदि उपहारस्वरूप गव्यसामग्री लिये हुए उनके पीछे-पीछे चले। जहाँपर राजा कंस विराजमान था, वहाँपर शीघ्र जाकर उन व्रजवासियोंने उस दुरात्मा कंसको नमस्कार करके भेंट-सामग्री प्रदान की॥ ३४-३५॥ इसके बाद मुष्टिक आदि महान् बलशाली पहलवानोंने अखाड़ेमें खड़े प्रचण्ड पराक्रमवाले श्रीबलराम और श्रीकृष्णको ललकारा॥ ३६॥ महान् बल तथा पराक्रमवाले रोहिणीपुत्र श्रीबलरामने अपनी मुष्टिकाके प्रहारसे मुष्टिकको धराशायी कर दिया। मुनिश्रेष्ठ! श्रीकृष्णने भी चाणूरको आकाशमें ऊपर उठाकर और फिर पृथ्वी-तलपर पटककर मार डाला। इसी प्रकार युद्धमें अपने पराक्रमका प्रदर्शन करते हुए श्रीबलराम और श्रीकृष्णने और भी अन्य सैकड़ों पहलवानोंको आधे क्षणमें ही धराशायी कर दिया॥ ३७—३९॥ तदनन्तर भीषण पराक्रमवाले अपने पहलवानोंके धराशायी होनेका समाचार सुनकर महान् युद्ध देखनेकी इच्छासे वह कंस मंचके ऊपर चढ़ गया॥ ४०॥ महाबली श्रीबलराम और श्रीकृष्णको देखकर भयाकुल दुष्टात्मा कंसने दूतोंसे कहा कि इन दोनोंको यहाँसे शीघ्र दूर हटाओ, दूर हटाओ। मैं व्रजमें रहनेवाले सभी दुरात्मा ग्वालोंको दण्डित करूँगा और दुष्ट चेष्टावाले नन्दको तो उसकी पत्नीसहित मरवा डालूँगा॥ ४१-४२॥

उस कंसको ऐसा बोलते हुए देखकर श्रीकृष्णने आधे क्षणमें ब्रह्माण्डको विक्षुब्ध करनेवाला अपना वह कालिका-विग्रह धारण कर लिया॥ ४३॥ तत्पश्चात् कालिकारूप श्रीकृष्णने उस दुष्टात्मा कंसके बालोंको अपने बायें हाथसे पकड़कर और फिर उसे अपनी ओर खींचकर तलवारसे उसका सिर काट डाला॥ ४४॥ मुनिश्रेष्ठ! उसका सिर काटनेके बाद उन कालिकाने उसे देखनेके लिये पुनः पूर्वकी भाँति कृष्णस्वरूप धारण कर वे श्रीबलरामके साथ पृथ्वीतलपर नाचने लगीं॥ ४५॥ नन्द आदि श्रेष्ठ गोपगणोंका हृदय हर्षसे परिपूर्ण हो गया और वे भी बाँसुरी, वीणा आदि बजाते हुए उस रणक्षेत्रमें नाचने लगे। देवता आकाशसे पुष्प बरसाने लगे। सभी दिशाएँ प्रकाशमान तथा कोलाहलसे रहित हो गयीं॥ ४६-४७॥

देवकीवसुदेवौ तु सम्बद्धौ निगडे स्थितौ।
गत्वा प्रणम्य कृष्णोऽसौ मोचयामास बन्धनात्॥ ४८॥



तौ दृष्ट्वा समुपायान्तौ पुत्रौ चारुमुखाम्बुजौ।
हर्षाश्रुपूर्णनेत्रान्तौ निन्यतुश्चाङ्कमात्मनः॥ ४९॥

रुरुदुस्तन्महिष्यस्तु भर्तृशोकेन मोहिताः।
करेणाताड्य वक्षांसि शिरांसि च महामुने॥ ५०॥

ताः सर्वास्तु समाश्वास्य कृष्णः कमललोचनः।
उग्रसेनं महाराजं तस्मिन्राज्येऽभ्यषेचयत्॥ ५१॥

अथ नन्दं परिष्वज्य वसुदेवः समब्रवीत्।
प्रीणयन्प्रियवाक्येन बाष्पाकुलितलोचनम्॥ ५२॥

वसुदेव उवाच

सखे तवालये त्वेतौ पुत्रौ मे संस्थितौ चिरम्।
पितेव त्वं च धर्मज्ञ कृतवान्परिपालनम्॥ ५३॥

यशोदाऽपि भवत्पत्नी मत्पुत्रौ सुतवत्सदा।
पालयामास धर्मज्ञा तद्युवां सुतयोर्मम॥ ५४॥

पितरौ मम बन्धुश्च भवानपि दयापरः।
इमाविदानीं संस्थाप्य मद्वेश्मनि कुमारकौ॥ ५५॥

व्रजं व्रज व्रजपते सहितो व्रजवासिभिः।
नात्र त्वया शोचनीयं ममैव प्रियकारणात्।
वक्तव्यं च यशोदायै ममेदं वचनं सखे॥ ५६॥

इसके बाद श्रीकृष्णने बेड़ीमें जकड़कर बँधे हुए वसुदेव तथा देवकीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके बन्धनसे मुक्त किया। कमलसदृश सुन्दर मुखवाले अपने उन दोनों पुत्रोंको पासमें आते हुए देखकर हर्षके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले वसुदेव तथा देवकीने उन्हें अपनी गोदमें ले लिया॥ ४८-४९॥

महामुने! उस समय पतिके शोकसे व्याकुल होकर उस कंसकी सभी रानियाँ हाथोंसे अपने वक्षःस्थल तथा सिर पीट-पीटकर विलाप करने लगीं। उन सभी रानियोंको सान्त्वना देकर कमललोचन श्रीकृष्णने उस राज्यपर महाराज उग्रसेनको अभिषिक्त कर दिया॥ ५०-५१॥ इसके बाद आँसुओंसे भरे हुए नेत्रोंवाले नन्दका आलिङ्गन कर वसुदेवजी अपने प्रिय वचनोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे॥ ५२॥

वसुदेवजी बोले—मित्र! मेरे ये दोनों पुत्र आपके घरमें बहुत दिनोंतक रहे और धर्मके ज्ञाता आपने पिताकी भाँति इन दोनोंका पालन-पोषण किया। धर्मको जाननेवाली आपकी भार्या यशोदाने भी सदा अपने पुत्रकी भाँति ही मेरे इन पुत्रोंका पालन किया है। इस प्रकार आप दोनों मेरे पुत्रोंके माता-पिता हैं। आप परम दयालु हैं और मेरे बन्धु हैं। व्रजपते! अब आप इन दोनों कुमारोंको मेरे घरमें छोड़कर सभी व्रजवासियोंके साथ व्रज चले जाइये। मेरी प्रसन्नताके लिये अब आप इस विषयमें कोई सोच-विचार न करें और सखे! यशोदासे भी मेरी यह बात बता दीजियेगा॥ ५३—५६॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो वसुदेवेन नन्दः साश्रुविलोचनः ॥ ५७ ॥

निःश्वसन्ददृशे रामकृष्णौ निश्चलितेक्षणः ।
ततश्चाश्रुपरीताक्षौ रामकृष्णौ महामते ॥ ५८ ॥

नन्दं समूचतुर्वाक्यं बाष्पगद्गदया गिरा ।
तत्र सन्तोष्य पितरौ बहूनन्यांश्च दुःखितान् ॥ ५९ ॥

त्वामप्यभ्येत्य पितरं द्रक्ष्यावो मातरं तथा ।
इति ताभ्यां निगदितं श्रुत्वा नन्दोऽतिदुःखितः ॥ ६० ॥

रुदन्स्वपुरमभ्यायात्सहितो व्रजवासिभिः ।
तस्मिन्समागते सर्वा रुरुदुर्गोपयोषितः ॥ ६१ ॥

अदृष्ट्वा रामकृष्णौ तौ सुचारुमुखपङ्कजौ ।
तासां शोकापनोदाय कृष्णस्तु मुनिसत्तम ॥ ६२ ॥

गोकुलं प्रेषयामासोद्धवं भक्तिपरायणम् ।
स गत्वा सान्त्वयामास समस्तान्व्रजवासिनः ॥ ६३ ॥

कृष्णशोकसुदुःखार्तानुक्त्वा कृष्णाभिभाषितम् ।
ततस्तयोः समकरोद्विधिना द्विजसंस्कृतिम् ॥ ६४ ॥

वसुदेवः समानीय गर्गाचार्यं महामुनिम् ।
स एव सर्वशास्त्राणि धनुर्वेदादिकानि च ॥ ६५ ॥

अशिक्षयन्महात्मानौ रामकृष्णौ महाबलौ ।
स्थितौ मधुपुरे रम्ये प्रीणयन्तौ स्वबान्धवान् ॥ ६६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—[मुने!] वसुदेवके ऐसा कहनेपर अश्रुपूरित नेत्रोंवाले नन्द लम्बी श्वास लेते हुए श्रीबलराम तथा श्रीकृष्णको एकटक देखने लगे ॥ ५७½ ॥ महामते! तदनन्तर आँसुओंसे डबडबायी आँखोंवाले श्रीबलराम और श्रीकृष्ण भावविह्वल गद्‌गद वाणीमें नन्दसे बोले कि यहाँ माता-पिता (देवकी तथा वसुदेव) एवं अन्य बहुत-से दुःखित लोगोंको संतोष प्रदान करके आपके पास आकर आप दोनों पिता तथा माताका दर्शन करेंगे ॥ ५८-५९½ ॥

उन दोनोंके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर नन्द अत्यन्त दुःखित हुए और विलाप करते हुए व्रजवासियोंसहित अपने नगर व्रजमें लौट आये ॥ ६०½ ॥ उनके आनेपर कमलके समान अति सुन्दर मुखवाले श्रीबलराम और श्रीकृष्णको न देखकर सभी गोपाङ्गनाएँ रोने लगीं। मुनिश्रेष्ठ! उन गोपियोंका शोक दूर करनेके लिये श्रीकृष्णने भक्तिपरायण उद्धवको गोकुल भेजा। वहाँ पहुँचकर उद्धवने श्रीकृष्णका संदेश देकर श्रीकृष्णके वियोगजन्य दुःखसे अत्यन्त व्याकुल सभी व्रजवासियोंको सान्त्वना प्रदान की ॥ ६१—६३½ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने महामुनि गर्गाचार्यको बुलाकर उन दोनोंका विधिपूर्वक द्विज-संस्कार सम्पन्न कराया। महान् बलवाले महात्मा श्रीबलराम और श्रीकृष्णको उन्होंने ही सभी शास्त्रों तथा धनुर्वेद आदिकी शिक्षा दिलवायी। अपने बन्धुओंको प्रसन्न करते हुए वे दोनों रमणीय मथुरामें रहने लगे ॥ ६४—६६ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे अक्रूरेण सह मधुपुर्यागमनानन्तरं कंसप्रयाणपूर्वकवसुदेवदेवकीदर्शनप्राप्तिर्नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'अक्रूरके साथ मधुपुरी आगमनके अनन्तर कंसप्रयाणपूर्वक वसुदेव-देवकी दर्शनप्राप्ति' नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५४ ॥

पचपनवाँ अध्याय

स्वयंवरमें न बुलाये जानेपर श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीका हरण, राजसूययज्ञके लिये पाण्डवोंकी विजययात्रा तथा जरासन्धवध, राजसूययज्ञमें कृष्णकी प्रथम पूजाका शिशुपालद्वारा विरोध तथा उसका वध, द्यूतक्रीड़ामें हारकर पाण्डवोंका वनवास

श्रीमहादेव उवाच

एवं भगवती देवी श्यामसुन्दररूपिणी।
छलेन विनिपात्यैतान्भूभारान् दुष्टचेतसः॥ १ ॥

तथान्येषां च दुष्टानां प्रतीक्षन् वधकारणम्।
रम्ये मधुपुरेऽवात्सीद्रामेण मुनिसत्तम॥ २ ॥

शम्भुश्च धरणीपृष्ठे स्त्रीरूपेणाष्टधाभवत्।
स्थितः पितृगृहे देवीं प्रतीक्षन्कृष्णरूपिणीम्॥ ३ ॥

तथा विष्णुश्च सम्भूय कुन्त्यां देवात्पुरन्दरात्।
भ्रातृभिः सहितोऽवात्सीन्नगरे हस्तिनापुरे॥ ४ ॥

अर्जुनेतिसमाख्यातो महाबलपराक्रमः।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धनुर्विद्याविशारदः॥ ५ ॥

तथा तद्भ्रातरश्चान्ये चत्वारो भीमविक्रमाः।
धर्मपुत्रादयो वीरा महाबलपराक्रमाः॥ ६ ॥

ते धर्मनिरताः पञ्च पाण्डवाः सत्यशालिनः।
सम्प्राप्तयौवना राज्यमकार्षुर्मुनिसत्तम॥ ७ ॥

अभ्यद्विषंस्तान् दुर्धर्षा धार्तराष्ट्रा महाबलाः।
धार्तराष्ट्रश्च दुर्बुद्धिः कर्णश्च शकुनिस्तथा॥ ८ ॥

दुर्योधनश्च सततं चिन्तयामास दुःसहः।
उपायं पाण्डवानां च निधने मुनिसत्तम॥ ९ ॥

विषदानादिकर्माणि कृत्वा तेषां वधेच्छया।
व्यर्थचेष्टोऽपि नो शान्तिमवाप क्रूरमानसः॥ १०॥

तस्य तां बुद्धिमाज्ञाय क्षत्रियाणां क्षयङ्करीम्।
अक्रूरं प्रेषयामास हस्तिनायां स वृष्णिराट्॥ ११ ॥

स गत्वा धार्तराष्ट्राणां सर्वं विज्ञाय चेष्टितम्।
वैचित्र्यवीर्यराजानं रहस्येदं वचोऽब्रवीत्॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार श्यामसुन्दर श्रीकृष्णरूपसे देवी भगवतीने पृथ्वीके भारस्वरूप दुष्ट-चित्तवाले राक्षसोंको लीलापूर्वक मार डाला तथा मुनिश्रेष्ठ! अन्य दुष्टोंके वधके कारणकी प्रतीक्षा करते हुए रम्य मधुपुरमें श्रीबलरामके साथ रहने लगीं॥ १-२॥

भगवान् शिव भी स्त्रीरूपसे आठ विग्रहोंमें होकर श्रीकृष्णस्वरूपिणी भगवतीकी प्रतीक्षा करते हुए पृथ्वीतलपर अपने पिताके घरमें स्थित थे। इसी प्रकार विष्णुभगवान् देवराज इन्द्रद्वारा कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न होकर अपने भाइयोंके साथ हस्तिनापुर नगरमें रहते थे। महान् बल और पराक्रमसे युक्त, अर्जुन नामसे प्रसिद्ध वे सभी शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वके ज्ञाता एवं धनुर्विद्याके पूर्ण पण्डित थे॥ ३—५॥ उसी तरहसे धर्मपुत्र युधिष्ठिर आदि उनके जो अन्य चारों भाई थे, वे सभी महाबली, पराक्रमी, परमवीर तथा महान् शौर्यसे सम्पन्न थे। मुनिश्रेष्ठ! युवावस्था आनेपर सत्यनिष्ठ और धर्मात्मा वे पाँचों पाण्डव राज्य करने लगे॥ ६-७॥ धृतराष्ट्रपुत्र मूढबुद्धि दुर्योधन तथा कर्ण, शकुनि एवं धृतराष्ट्रके महाबली और दुर्धर्ष पुत्र उन पाण्डवोंसे बहुत द्वेष रखते थे॥ ८॥

मुनिश्रेष्ठ! कठोरहृदय दुर्योधन पाण्डवोंकी मृत्युका उपाय निरन्तर सोचा करता था। उन पाण्डवोंके वधकी इच्छासे विषदान आदि दुष्कर्म करके भी विफल प्रयासोंवाला, क्रूरहृदय दुर्योधन शान्त नहीं हुआ॥ ९-१०॥ क्षत्रियोंका नाश करनेवाली उसकी उस दुर्बुद्धिको जानकर वृष्णिराजने अक्रूरको हस्तिनापुर भेजा। वहाँ पहुँचकर धृतराष्ट्रके पुत्रोंके सभी क्रिया-कलाप जानकर उन अक्रूरने एकान्तमें विचित्रवीर्यके पुत्र महाराज धृतराष्ट्रसे यह गुप्त बात कही॥ ११-१२॥

अक्रूर उवाच

विचित्रवीर्यदायाद महाराज सुतांस्तव।
निवार्य पाण्डवेयेषु स्नेहं प्रकटय प्रभो॥ १३॥

बाल्ये मृतः पिता तेषां त्वामृते नहि विद्यते।
यस्तेषु कुरुते स्नेहमनाथेषु महामते॥ १४॥

तस्माद्विधाय समतां पाण्डवेषु सुतेषु च।
भुङ्क्ष्व राज्यं महाराज प्रीत्या परमयाऽन्वितः॥ १५॥

धृतराष्ट्र उवाच

विद्वेषः पाण्डवेयेषु यद्यप्यस्ति क्षयङ्करः।
तथापि पुत्रवात्सल्यान्न त्यक्तुं रोचते मनः॥ १६॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तन्मतमाज्ञाय सोऽक्रूरः समुपेक्ष्य च।
श्रीकृष्णाय यथावृत्तं कथयामास नारद॥ १७॥

तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास कृष्णः कमललोचनः।
राजन्यानां कुरुक्षेत्रे निधनं सम्भविष्यति॥ १८॥

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेः शकुनेः सौबलस्य च।
अवश्यमेव चैतस्माद्विद्वेषादिति नारद॥ १९॥

अथ कृष्णः पुरीं दिव्यां ब्रह्मणा परिकल्पिताम्।
द्वारकां यदुभिः सार्धं संवासाय विवेश ह॥ २०॥

ततः शिवांशजाताया रुक्मिण्यास्तु स्वयंवरे।
विदर्भराजेनाहूताः सर्व एव महीभुजः॥ २१॥

आजग्मुर्नगरं तस्य नानादेशनिवासिनः।
रुक्मिर्नाम सुतस्तस्य भीष्मकस्य च दुर्मतिः॥ २२॥

चैद्याय शिशुपालाय भगिनीं दातुमुत्सुकः।
कृष्णं विद्विष्य पितरावनादृत्य न चाह्वयत्॥ २३॥

स चेदिराजो बलवान् रुक्मेर्विज्ञाय तन्मतम्।
महता रथवंशेन सुचारुवररूपधृक्॥ २४॥

आजगाम मुनिश्रेष्ठ विदर्भाधिपतेः पुरम्।
ततो नारदवक्त्रेण रुक्मिण्युद्वाहमङ्गलम्॥ २५॥

विदर्भराजनगरे नानोत्सवसमाकुले।
भेरीमृदङ्गपणवानकदुन्दुभिनिःस्वनैः॥ २६॥

श्रुत्वा स्यन्दनमारुह्य कृष्णोऽपि प्रस्थितोऽभवत्।

अक्रूरजी बोले—विचित्रवीर्यपुत्र! महाराज! प्रभो! अपने पुत्रोंको रोककर आप पाण्डवोंपर स्नेह प्रकट कीजिये। महामते! बाल्यकालमें ही उनके पिता मर गये। अतः अब आपको छोड़कर उनका कोई नहीं रहा, जो उन अनाथ पाण्डवोंसे स्नेह करे। अतः महाराज! पाण्डवों तथा अपने पुत्रोंमें समानताका भाव रखते हुए परम प्रीतिसे युक्त होकर आप राज्यका भोग कीजिये॥ १३—१५॥

धृतराष्ट्र बोले—यद्यपि पाण्डवोंके साथ विद्वेष-भाव रखना विनाशकारी है, फिर भी पुत्रस्नेहके कारण उस विषमताका त्याग करना मेरे मनको अच्छा नहीं लगता॥ १६॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारद! इस प्रकार धृतराष्ट्रके विचारोंसे अवगत होकर तथा उसकी उपेक्षा करके अक्रूरजीने जो कुछ बातें हुई थीं, उन्हें श्रीकृष्णसे कह दिया॥ १७॥ नारद! उसे सुनकर कमलनयन श्रीकृष्ण सोचने लगे कि धृतराष्ट्रके नीचबुद्धि पुत्र दुर्योधन तथा सुबलपुत्र शकुनिके इस विद्वेषके कारण निश्चितरूपसे कुरुक्षेत्रमें बहुत-से क्षत्रियोंका संहार होगा॥ १८-१९॥ इसके बाद श्रीकृष्णने ब्रह्माजीके द्वारा बनायी गयी दिव्य द्वारकापुरीमें निवासहेतु सभी यादवोंके साथ प्रवेश किया॥ २०॥ तत्पश्चात् भगवान् शिवके अंशसे उत्पन्न रुक्मिणीके स्वयंवरमें विदर्भराज (भीष्मक)-के द्वारा आमन्त्रित किये गये अनेक देशोंके निवासी सभी राजा उनके नगरमें आये। उस भीष्मकका रुक्मि नामक दुर्बुद्धि पुत्र अपनी बहनको चेदिराज शिशुपालको सौंपनेके लिये उत्सुक था। अतः कृष्णके प्रति विद्वेषभावनाके कारण अपने माता-पिताकी अवहेलना करके उसने कृष्णको स्वयंवरमें नहीं बुलाया॥ २१—२३॥

मुनिश्रेष्ठ! वह बलवान् चेदिराज शिशुपाल रुक्मिका वैसा विचार जानकर उत्तम तथा आकर्षक सुन्दर वरका रूप धारण करके महान् रथ-समुदायके साथ विदर्भ देशके अधिपति भीष्मकके पुरमें आ गया॥ २४½॥ तदनन्तर भेरी, मृदङ्गों, नगाड़ों तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे व्याप्त एवं नानाविध उत्सवोंसे सुशोभित विदर्भराजनगरमें रुक्मिणीका शुभ-विवाह नारदके मुखसे सुनकर कृष्ण भी रथपर सवार होकर वहाँके लिये चल पड़े॥ २५-२६½॥

ततस्तत्र समागत्य नभसि स्यन्दनोपरि॥ २७॥
जहास कृष्णस्तान्दृष्ट्वा वरवेशधरान्नृपान्।
ततः कमलपत्राक्षीं क्वणच्चलितनूपुराम्॥ २८॥
दुर्गामर्चयितुं नीयमानां नारीभिरादरात्।
ध्यायन्तीं कृष्णमेकान्ते हंसीगतिविनिन्दिताम्॥ २९॥



काङ्क्षन्तीं वासुदेवस्यागमनं रुक्मिणीं तदा।
जहार कृष्णो हाहेति पौराः सर्वे विचुक्रुशुः॥ ३०॥
अभ्यधावंस्तु संक्रुद्धा राजानो व्यथितान्तराः॥ ३१॥
कृष्णः समुद्यतवरायुधधारिणस्ता-
न्विच्छिन्नसर्ववरकार्मुकवाहनांश्च।
लज्जाभरान्नतमुखाञ्शिशुपालमुख्या-
न्कृत्वा जगाम भवनं त्रिदिवेन तुल्यम्॥ ३२॥
तथांशसम्भवाः शम्भोः सप्तकन्याश्च नारद।
जाम्बवत्यादिकाः कृष्णो भार्यात्वेन समाग्रहीत्॥ ३३॥
उवास कृष्णस्तस्यां स द्वारवत्यां यदूद्वहः।
अन्याश्च विविधाः पाणिगृहीत्यश्च महामुने॥ ३४॥
कृत्वा बहुतरं युद्धं जित्वा वीरांश्च संयुगे।
आगत्य द्वारकां रेमे ताभिः सह यथेप्सितम्॥ ३५॥
राजेन्द्रत्वेन संसिक्तः पुत्रपौत्रादिसंयुतः।
उवास वृष्णिभिस्तस्यां द्वारवत्यां यदूद्वहः॥ ३६॥

तत्पश्चात् वहाँ आकर आकाशमें स्थित रथसे वरका वेश धारण किये हुए उन राजाओंको देखकर श्रीकृष्णने अट्टहास किया॥ २७½॥ तदनन्तर कमलके समान नेत्रोंवाली, हिलते हुए ध्वनित नूपुरोंसे सुशोभित, हंसिनीकी चालको लज्जित कर देनेवाली, दुर्गापूजनके लिये सखियोंके द्वारा आदरपूर्वक लायी जाती हुई, एकान्तमें श्रीकृष्णका ध्यान करती हुई तथा श्रीकृष्णके आगमनकी आकाङ्क्षा करती हुई रुक्मिणीका कृष्णने हरण कर लिया। इसपर उस पुरके सभी निवासी हाहाकार कर चिल्लाने लगे और व्यथितहृदयवाले सभी राजागण अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनपर आक्रमण करनेके लिये पीछे-पीछे दौड़े॥ २८—३१॥

भगवान् श्रीकृष्ण युद्धके लिये तत्पर होकर उत्तम आयुध धारण करनेवाले उन शिशुपाल आदि प्रमुख वीरोंके समस्त श्रेष्ठ धनुष तथा वाहनोंको विच्छिन्न कर उन्हें लज्जावनतमुख करके स्वर्गसदृश अपने भवनमें चले गये॥ ३२॥ नारद! उसी प्रकार शिवके अंशसे उत्पन्न जाम्बवती आदि अन्य सात कन्याओंको भी श्रीकृष्णने पत्नीरूपमें ग्रहण किया। महामुने! यदुकुलकी वृद्धि करनेवाले वे श्रीकृष्ण और भी अन्य पत्नियोंके साथ उस द्वारकापुरीमें रहने लगे॥ ३३-३४॥ बहुत-से युद्ध करके उन्होंने रणमें वीरोंको जीता और फिर द्वारका आकर उन भार्याओंके साथ यथेष्ट विहार किया॥ ३५॥

राजाके रूपमें अभिषिक्त होकर यदुकुलका विस्तार करनेवाले वे श्रीकृष्ण पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त होकर वृष्णिवंशियोंके साथ उस द्वारकापुरीमें रहने लगे॥ ३६॥

अन्याश्च विविधा भार्याः परिगृह्य महामुने।
तासु चोत्पादयामास पुत्रान्कृष्णः सहस्रशः ॥ ३७ ॥
तथा हत्वा महाराजं भौमं समरदुर्जयम्।
सहस्रशः समानीय स्त्रियश्चारुविलोचनाः ॥ ३८ ॥
एतस्मिन्नन्तरे तेऽपि पाण्डवा मुनिसत्तम।
कृत्वोद्वाहादिकं शास्त्रविद्यामभ्यस्य दुर्जयाम् ॥ ३९ ॥
युयुत्सवः समाहूतवन्तः कृष्णं महामतिम्।
स तत्र गत्वा राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ४० ॥
राजसूयमहायज्ञं कर्तुमादिष्टवान्मुने।
क्षयाय राजवंशानां कुरूणां द्वेषवृद्धये ॥ ४१ ॥
स्वयमध्यक्षतामेत्य यज्ञमावर्तयत्तदा।
दिक्षु प्रस्थापयामास भीमादीन्सह सैनिकैः ॥ ४२ ॥
विजित्य नृपतीन्सर्वानानीतुं मुनिसत्तम।
तेऽपि जित्वा नृपान्सर्वान्नानादेशनिवासिनः ॥ ४३ ॥
आनीय नगरं प्रापुर्मागधस्य महौजसः।
स जित्वा तान्नृपान्सर्वान्नीतवान्भीमविक्रमः ॥ ४४ ॥
ततस्तं पातयामास शूलेन यदुनन्दनः।
भीमसेनं पुरस्कृत्य संग्रामे मुनिसत्तम ॥ ४५ ॥
ततः सर्वान् समानीय राजन्यान् धर्मनन्दनः।
अकरोद्राजसूयाख्यं यज्ञं सर्वक्रतूत्तमम् ॥ ४६ ॥
तत्र धर्मसुतभ्राता सहदेवो महामतिः।
सदस्यार्चनकार्येषु नियुक्तो धर्मसूनुना ॥ ४७ ॥
मुनीन्द्रैः समनुज्ञातः सर्वादौ यदुनन्दनम्।
अभ्यर्चयन्मुनिश्रेष्ठ पश्यतां सर्वभूभुजाम् ॥ ४८ ॥

महामुने! श्रीकृष्णने और भी कई भार्याओंके साथ विवाह करके उनसे हजारों पुत्र प्राप्त किये और युद्धमें कठिनाईसे जीते जानेवाले महाराज भौमासुरको मारकर वे सुन्दर नेत्रोंवाली हजारों स्त्रियोंको ले आये ॥ ३७-३८ ॥

मुनिश्रेष्ठ! इसी समय अपने विवाह आदि करके तथा दुरूह शास्त्रविद्याका अध्ययन कर युद्धकी इच्छावाले उन पाण्डवोंने महामति कृष्णको बुलाया। मुने! वहाँ जाकर उन श्रीकृष्णने धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको राजसूय महायज्ञ करनेका आदेश दिया, जो विविध राजवंशोंके क्षय तथा कुरुओंकी द्वेषवृद्धिमें हेतु बना ॥ ३९—४१ ॥

मुनिश्रेष्ठ! श्रीकृष्णने अपने तत्त्वावधानमें यज्ञका आरम्भ कराया और सभी राजाओंको जीतकर ले आनेके लिये भीम आदिको सैनिकोंके साथ सभी दिशाओंमें भेजा। उन लोगोंने भी अनेक देशोंके निवासी समस्त राजाओंपर विजय प्राप्त की और उन्हें लाकर पुनः वे सभी महान् ओजस्वी मगध-नरेश जरासन्धके नगरमें आये। प्रचण्ड पराक्रमवाले उस जरासन्धने सभी राजाओंको जीतकर उन्हें अपने यहाँ ले आकर कैद कर रखा था। मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् यदुनन्दन श्रीकृष्णने संग्राममें भीमसेनको आगे करके उस जरासन्धको शूलसे मार गिराया ॥ ४२—४५ ॥

तदनन्तर सभी राजाओंको ले आकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने समस्त यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय नामक यज्ञ आरम्भ किया ॥ ४६ ॥ धर्मावतार युधिष्ठिरने उस यज्ञमें सभासदोंके पूजन-कार्योंमें अपने भाई महामति सहदेवको नियुक्त किया। मुनिश्रेष्ठ! मुनीश्वरोंसे आदेश पाकर उन सहदेवने सभी राजाओंके समक्ष सर्वप्रथम यदुनन्दन श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ४७-४८ ॥



तद्दृष्ट्वा शिशुपालस्तु धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
कृष्णं यज्ञं च दुष्टात्मा व्यनिन्दत रुषा ज्वलन्॥ ४९॥

ततस्तं पृथिवीभारं तस्मिन्राजन्यसंसदि।
पातयामास कृष्णस्तु छित्त्वा तस्य शिरो मुने॥ ५०॥

उसे देखकर क्रोधसे जलता हुआ दुष्टात्मा शिशुपाल धर्मपुत्र युधिष्ठिर, कृष्ण तथा उस यज्ञकी निन्दा करने लगा। मुने! तत्पश्चात् श्रीकृष्णने राजाओंकी उस सभामें पृथ्वीके भारस्वरूप उस शिशुपालका सिर काटकर उसे मार डाला॥ ४९-५०॥



तद्यज्ञविभवं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽतिदुर्मतिः।
अतपत्क्रूरचेताश्च कर्णश्चापि सुदुर्मतिः॥ ५१॥

ततः स मन्त्रयित्वा तु मातुलेन दुरात्मना।
द्यूतं चक्रे प्रतिज्ञाय पार्थेनामिततेजसा॥ ५२॥

तस्मिन्द्यूते छलाद्राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
जितो राज्ञाऽतिदुष्टेन धार्तराष्ट्रेन नारद॥ ५३॥

प्रतिज्ञावशतो राजा राज्यं सर्वं क्रमेण तु।
परितत्त्याज दुष्टात्मा तथाऽपि धृतराष्ट्रजः॥ ५४॥

भूयो द्यूते महाराजं धर्मपुत्रं समाह्वयत्।

उस यज्ञका ऐश्वर्य देखकर अत्यन्त नीचबुद्धि दुर्योधन तथा क्रूरहृदय दुर्बुद्धि कर्णको भी घोर सन्ताप हुआ। तदनन्तर उस दुर्योधनने दुष्टहृदयवाले अपने मामा शकुनिसे मन्त्रणा करके अतुलित तेजवाले युधिष्ठिरको वचनबद्ध कराकर उनके साथ द्यूतक्रीड़ा की। नारद! अत्यन्त नीच राजा दुर्योधनने छल करके उस जुएमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको जीत लिया॥ ५१—५३॥ द्यूतक्रीड़ाकी प्रतिज्ञाके अनुसार राजा युधिष्ठिरने क्रमसे सारा राज्य छोड़ दिया। इसपर भी धृतराष्ट्रपुत्र दुष्टात्मा दुर्योधनने धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिरको जुएमें फिर आमन्त्रित किया॥ ५४½॥

स तु धर्मपरो राजा धर्मोल्लङ्घनजाद्भयात्॥ ५५॥

पुनर्द्यूते प्रवृत्तोऽभूद्धार्तराष्ट्रेन पापिना।
प्रतिज्ञां चाकरोद्घोरां तस्मिन्द्यूते पराजये॥ ५६॥

द्वादशाब्दं वने वासमज्ञातवसतिं तथा।
एकाब्दं तत्र च द्यूते धर्मराजः पराजितः॥ ५७॥

ततो द्यूते भगवतीं द्रौपदीं परिजित्य च।
दुर्योधनः सभामध्ये तस्याश्चक्रेऽवमाननाम्॥ ५८॥

धर्मपरायण वे राजा युधिष्ठिर धर्मोल्लंघनजनित भयके कारण पापी दुर्योधनके साथ द्यूतक्रीड़ाके लिये पुनः तैयार हो गये और उन्होंने यह घोर प्रतिज्ञा की कि जुएमें मेरी पराजय होनेपर मैं बारह वर्षका वनवास तथा एक वर्षका अज्ञातवास स्वीकार करता हूँ। इस प्रतिज्ञाके बाद जुएमें धर्मराज युधिष्ठिर पराजित हो गये। तदनन्तर जुएमें भगवती द्रौपदीको जीतकर दुर्योधनने सभाके बीचमें उनका अपमान किया॥ ५५—५८॥

तस्य तद्दारुणं कर्म दृष्ट्वा भीष्मादयो मुने।
मेनिरे क्षत्रियाणां तं कण्टकं क्षयकारकम्॥ ५९॥

निवार्य द्रौपदीं देवीं पाण्डवेभ्यः समर्प्य च।
धार्तराष्ट्रं दुरात्मानं जगर्हुस्ते यतव्रताः॥ ६०॥

ततस्तु पाण्डवाः सर्वे राज्यभ्रष्टा महामुने।
सामात्यैः स्वजनैरन्यैः समस्तैः परिवारिताः॥ ६१॥

प्रजग्मुर्वनवासाय प्रतिज्ञां निस्तितीर्षवः।
कृष्णस्तु पृथिवीभारनिवृत्त्यै कारणं महत्॥ ६२॥

एतदेवेति निश्चित्य द्वारवत्यामुपागमत्॥ ६३॥

मुने! उसके उस क्रूर कृत्यको देखकर भीष्म आदि (धर्मात्माओं)-ने उस दुर्योधनको क्षत्रियोंके लिये विनाशकारी कण्टक मान लिया। उन व्रतपरायण भीष्मपितामह आदि श्रेष्ठ जनोंने उसे ऐसा करनेसे रोककर देवी द्रौपदीको पाण्डवोंको सौंप दिया और दुष्टहृदयवाले उस दुर्योधनकी बहुत निन्दा की। महामुने! तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञानिस्तारण करनेकी इच्छावाले वे सभी राज्यच्युत पाण्डव अपने मन्त्रियों तथा अन्य सभी स्वजनोंको साथमें लेकर वनवासके लिये चल पड़े। पृथ्वीके भारसे मुक्तिका यही प्रधान हेतु है—ऐसा निश्चय करके श्रीकृष्ण द्वारकापुरी आ गये॥ ५९—६३॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे राजसूयादनन्तरं शिशुपालहननपूर्वकद्यूते पाण्डवानां पराजयप्राप्तिर्वनवासगमनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत राजसूययज्ञके अनन्तर शिशुपालहननपूर्वक द्यूतक्रीड़ामें 'पाण्डवोंकी पराजयप्राप्ति तथा वनवासगमन' नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

पाण्डवोंद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवतीद्वारा प्रसन्न होकर विजयका आशीर्वाद देना, पाण्डवोंका अज्ञातवासके लिये राजा विराटके नगरमें जाना, भीमद्वारा कीचक और उपकीचकोंका वध, अभिमन्यु-विवाह

श्रीमहादेव उवाच

भ्रमन्तस्ते महात्मानः पाण्डवा मुनिसत्तम।
व्यतीत्य सुचिरं कालं कामाख्यां द्रष्टुमाययुः॥ १॥

योनिपीठे भगवतीं प्रत्यक्षफलदायिनीम्।
यत्राकार्षीत्तपः पूर्वं शम्भुर्देवाधिदैवतैः॥ २॥

तत्र ते तु भगवतीं सम्पूज्याथ विधानतः।
राज्यं सम्प्रार्थयामासुः पाण्डवा धर्मतत्पराः॥ ३॥

शत्रूणां निधनं चापि संग्रामेऽतिसुदारुणे।
सामात्यानां सुदुष्टानां कुरूणां पापचेतसाम्॥ ४॥

तथा प्रार्थयतां तेषां पाण्डवानां महात्मनाम्।
प्रत्यक्षं सा भगवती समभ्येत्येदमब्रवीत्॥ ५॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! बहुत कालतक भ्रमण करनेके बाद वे महात्मा पाण्डव प्रत्यक्ष फल देनेवाली भगवती कामाख्याके दर्शनके लिये योनिपीठमें आये, जहाँ पूर्वकालमें देवाधिदेव भगवान् शंकरने तप किया था॥ १-२॥

वहाँ उन धर्मपरायण पाण्डवोंने विधानपूर्वक देवी भगवतीका पूजन करके राज्य प्राप्त करने तथा अत्यन्त घोर युद्धमें पापबुद्धि दुष्ट कौरव शत्रुओंका उनके मन्त्रियोंसहित संहार करनेकी उनसे प्रार्थना की। उन महात्मा पाण्डवोंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवती उनके समक्ष प्रकट होकर इस प्रकार बोलीं—॥ ३—५॥

देव्युवाच

धर्मपुत्र महाभाग कुरूणां कीर्तिवर्धन।
प्रतिज्ञां त्वं समुत्तीर्य हत्वा सर्वदुरात्मनः॥ ६॥

धार्तराष्ट्रान्सुदुर्धर्षान्राज्यं प्राप्स्यसि निश्चितम्।
तवैते भ्रातरो वीराश्चत्वारो भुवि दुर्जयाः॥ ७॥

पातयिष्यन्ति संग्रामे ससैन्यान्धृतराष्ट्रजान्।
अहं तव सहायार्थं पुंरूपेणाभवं स्वयम्॥ ८॥

वसुदेवगृहे देव्यां देवक्यां निजलीलया।
छलेन पृथिवीभारनिवृत्त्यै प्रार्थिता सुरैः॥ ९॥

विष्णुश्चार्जुन इत्याख्यस्तव भ्राता महाबलः।
बभूव पृथिवीभारहरणाय ममाज्ञया॥ १०॥

तदहं कृष्णरूपा ते कृत्वा साहाय्यमुत्तमम्।
अर्जुनं पुरतः कृत्वा पातयिष्ये महारथीन्॥ ११॥

भीष्मद्रोणादिकान्वीरानन्यांश्च क्षत्रियर्षभान्।
अनेकदेशदेशीयान्समेतान् कुरुजाङ्गलान्॥ १२॥

वायुपुत्रस्तु भीमोऽसौ तव भ्राता महाबलः।
धृतराष्ट्रसुतान्सर्वान्संग्रामे निहनिष्यति॥ १३॥

अन्यांस्तु पृथिवीभारान्प्राज्ञः शतसहस्रशः।
अपरे निहनिष्यन्ति त्वदीयाः क्षत्रियर्षभाः॥ १४॥

एवं हि भारते युद्धे क्षत्रियेषु हतेषु वै।
भूयः प्राप्स्यसि राज्यं च मत्प्रसादादसंशयम्॥ १५॥



देवी बोलीं—कुरुवंशके यशको बढ़ानेवाले महान् भाग्यशाली धर्मपुत्र [युधिष्ठिर]! तुम वनवाससम्बन्धी प्रतिज्ञाको पार करके तथा धृतराष्ट्रके सभी दुरात्मा एवं दुर्धर्ष पुत्रोंको मारकर राज्य अवश्य ही प्राप्त करोगे। तुम्हारे ये अजेय तथा पराक्रमी चारों भाई युद्धमें धृतराष्ट्र-पुत्रोंको सेनासहित मार गिरायेंगे। मैं तुम्हारी सहायताके लिये देवताओंके द्वारा पृथ्वीके भारका हरण करनेके लिये प्रार्थना करनेपर पुरुषरूपमें वसुदेवके घरमें देवकीद्वारा अपनी मायामयी लीलासे प्रकट हुई हूँ॥ ६—९॥

मेरी आज्ञासे विष्णु भी पृथ्वीके भारका हरण करनेके लिये तुम्हारे महाबली भाई अर्जुनके नामसे उत्पन्न हुए हैं। मैं कृष्णके रूपमें तुम्हारी उत्तम प्रकारसे सहायता करके अर्जुनको आगे करके भीष्म, द्रोण तथा कुरुजाङ्गल आदि अनेक देश-देशान्तरोंसे आये हुए श्रेष्ठ क्षत्रिय महारथियोंको मार गिराऊँगी॥ १०—१२॥ तुम्हारा महाबली भाई वायुपुत्र भीम युद्धमें समस्त धृतराष्ट्र-पुत्रोंको मार डालेगा। पृथ्वीके लिये भारस्वरूप अन्य सैकड़ों-हजारों राजाओंको तुम्हारे पक्षके दूसरे श्रेष्ठ क्षत्रियगण मार डालेंगे। इस प्रकार महाभारतके युद्धमें क्षत्रियोंके मारे जानेपर मेरी कृपासे तुम पुनः राज्य प्राप्त करोगे, इसमें संदेह नहीं है॥ १३—१५॥

श्रीमहादेव उवाच

इति देव्या वरं प्राप्य धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
प्रसन्नात्मा महादेवीं तुष्टाव परमेश्वरीम्॥ १६॥

युधिष्ठिर उवाच

नमस्ते परमेशानि ब्रह्मरूपे सनातनि।
सुरासुरजगद्वन्द्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १७॥

न ते प्रभावं जानन्ति ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
प्रसीद जगतामाद्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १८॥

अनादिपरमा विद्या देहिनां देहधारिणी।
त्वमेवासि जगद्वन्द्ये कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ १९॥

त्वं बीजं सर्वभूतानां त्वं बुद्धिश्चेतना धृतिः।
त्वं प्रबोधश्च निद्रा च कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २०॥

त्वामाराध्य महेशोऽपि कृतकृत्यं हि मन्यते।
आत्मानं परमात्माऽपि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २१॥

दुर्वृत्तवृत्तसंहर्त्रि पापपुण्यफलप्रदे।
लोकानां तापसंहर्त्रि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २२॥

त्वमेका सर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
करालवदने कालि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २३॥

प्रपन्नार्तिहरे मातः सुप्रसन्नमुखाम्बुजे।
प्रसीद परमे पूर्णे कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २४॥

त्वामाश्रयन्ति ये भक्त्या यान्ति चाश्रयतां तु ते।
जगतां त्रिजगद्धात्रि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २५॥

शुद्धज्ञानमये पूर्णे प्रकृतिः सृष्टिभाविनी।
त्वमेव मातर्विश्वेशि कामेश्वरि नमोऽस्तु ते॥ २६॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुता भगवती धर्मपुत्रेण धर्मिणा।
प्रत्यक्षं प्राह राजंस्त्वं वरं वृणु यथेप्सितम्॥ २७॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार देवीसे वरदान प्राप्तकर प्रसन्नमनवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिरने महादेवी परमेश्वरीकी स्तुति की—॥ १६॥

युधिष्ठिर बोले—ब्रह्मरूपा सनातनी परमेश्वरी! आपको नमस्कार है। देवताओं, असुरों और सम्पूर्ण विश्वद्वारा वन्दित कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। जगत्‌की आदिकारणभूता कामेश्वरी! आपके प्रभावको ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी नहीं जानते हैं; आप प्रसन्न हों, आपको नमस्कार है। जगद्वन्द्य! आप अनादि, परमा, विद्या और देहधारियोंकी देहको धारण करनेवाली हैं, कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। आप सभी प्राणियोंकी बीजस्वरूपा हैं, आप ही बुद्धि, चेतना और धृति हैं, आप ही जागृति और निद्रा हैं। कामेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ १७—२०॥

आपकी आराधना करके परमात्मा शिव भी अपने-आपको कृतकृत्य मानते हैं, कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। दुराचारियोंके दुराचरणका संहार करनेवाली, पाप-पुण्यके फलको देनेवाली तथा सम्पूर्ण लोकोंके तापका नाश करनेवाली कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। आप ही एकमात्र समस्त लोकोंकी सृष्टि, स्थिति और विनाश करनेवाली हैं। विकराल मुखवाली काली कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाली, कमलके समान सुन्दर और प्रसन्न मुखवाली माता! आप प्रसन्न हों। परमे! पूर्णे! कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। जो भक्तिपूर्वक आपके शरणागत हैं, वे संसारको शरण देनेयोग्य हो जाते हैं। तीनों लोकोंका पालन करनेवाली देवी कामेश्वरी! आपको नमस्कार है। आप शुद्धज्ञानमयी, सृष्टिको उत्पन्न करनेवाली पूर्ण प्रकृति हैं। आप ही विश्वकी माता हैं, कामेश्वरी! आपको नमस्कार है॥ २१—२६॥

श्रीमहादेवजी बोले—धर्मात्मा धर्मपुत्र [युधिष्ठिर]-द्वारा इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवतीने प्रकट होकर कहा कि राजन्! अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो॥ २७॥

राजोवाच

व्यतीतस्त्वत्प्रसादान्मे वने द्वादशवार्षिकः।
वासः परमदुःखौघः प्रतिज्ञातं यथा पुरा॥ २८॥

वर्षे त्रयोदशे त्वस्मिन्परैरविदितैर्वयम्।
स्थास्याम इति निष्कर्षः पुरा द्यूते मया कृतः॥ २९॥

सोऽयं कृच्छ्रेऽनुसम्प्राप्तो दुष्करः संकटोदयः।
यथैनं सन्तरिष्यामस्तथा सम्पादयिष्यसि॥ ३०॥

देव्युवाच

नगरे मत्स्यराजस्य पाञ्चाल्या भ्रातृभिः सह।
स्थित्वा प्रतिज्ञां निस्तीर्य भूयो राज्यमवाप्स्यसि॥ ३१॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्त्वा भगवती क्षणेनान्तरधीयत।
पश्यतो धर्मपुत्रस्य दिवि सौदामिनी यथा॥ ३२॥

ततः सर्वान्समाहूय भ्रातॄन् धर्मभृतां वरः।
मन्त्रयामास वासाय मुने सर्वार्थवित्तमः॥ ३३॥

ततस्ते निश्चयं कृत्वा विसृज्यान्यान्महामते।
विराटराजनगरे प्रययुर्गुप्तरूपिणः॥ ३४॥

नगरान्तिकमभ्येत्य विसृज्य ज्यां धनूंषि च।
शस्त्रास्त्राणि शमीवृक्षे प्रान्तरे ते न्यवर्तयन्॥ ३५॥

ततः स राजा प्रणिपत्य देवी-
मक्षान्समादाय सुवर्णचित्रान्।
क्षिप्रं ययौ मत्स्यपतेः पुरस्ताद्
द्विजातिरूपेण महानुभावः॥ ३६॥

तं वीक्ष्य राजेन्द्रमहानुभावं
पप्रच्छ मत्स्याधिपतिः सभागतम्।
कस्त्वं किमत्रागतवान्कुतो वा
मन्ये ध्रुवं सर्वमहीश्वरोऽसि॥ ३७॥

राजा [युधिष्ठिर]-ने कहा—आपकी कृपासे पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार मेरा बारह वर्षका परम दुःखमय वनवास बीत गया। तेरहवें वर्षमें भी हमलोगोंको अज्ञातवास करना है, जैसा कि मेरे द्वारा पहले द्यूतक्रीड़ाके समय निर्णय लिया गया था। [इसलिये हमलोगोंको दूसरोंके द्वारा अविदितरूपसे रहना चाहिये।] इस प्रकार वह अत्यन्त कष्टदायक कठिन संकटकाल आ गया है, जिस प्रकार हम इसे पार कर सकें, वैसा आप करें॥ २८—३०॥

देवी बोलीं—मत्स्य देशके राजा [विराट]-के नगरमें द्रौपदी और भाइयोंके साथ रहकर प्रतिज्ञाका पालन करके [तुम] पुनः राज्य प्राप्त करोगे॥ ३१॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर धर्मपुत्रके देखते-देखते आकाशमें विद्युत्‌की भाँति भगवती क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं॥ ३२॥ मुने! उसके बाद समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा सर्वतत्त्वज्ञ [युधिष्ठिर]-ने अपने सभी भाइयोंको बुलाकर निवास-सम्बन्धी मन्त्रणा की। महामते! इस प्रकार निश्चय करके उन्होंने अपने अन्य सहवासियोंको छोड़कर विराट-राजके नगरके लिये गुप्तरूपसे प्रस्थान किया॥ ३३-३४॥ नगरके समीप पहुँचनेपर धनुष, प्रत्यञ्चा तथा अस्त्र-शस्त्रोंको उन्होंने शमीवृक्षके कोटरमें रख दिया॥ ३५॥ उसके बाद महानुभाव राजा युधिष्ठिर देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम करके सुवर्णरचित पाशोंको लेकर शीघ्रतापूर्वक मत्स्यराज विराटके सम्मुख ब्राह्मणवेशमें गये॥ ३६॥

उन महानुभाव राजेन्द्र [युधिष्ठिर]-को सभामें आया देखकर मत्स्यराजने पूछा कि आप कौन हैं? यहाँ क्यों और कहाँसे आये हैं? मुझे प्रतीत होता है कि आप निश्चित ही चक्रवर्ती सम्राट् हैं॥ ३७॥

स प्राह राजन् शरणार्थिनं मां
विनष्टसर्वस्वमुपस्थितं प्रभो।
द्यूतप्रवीणं द्विजमेव विद्धि
कङ्काह्वयं धर्मसुतेन पालितम्॥ ३८॥

तच्छ्रुत्वा तं समादृत्य मत्स्यानामधिपः स्वयम्।
अरक्षत्स्वसभायां तु धर्मात्मानं महामतिम्॥ ३९॥

न चैनं ज्ञातवान्कश्चिदपि राज्ञः सभागतम्।
वर्षे त्रयोदशे तस्मिन् भगवत्याः प्रसादतः॥ ४०॥

एवं स भीमसेनोऽपि राजानं तमुपेत्य च।
नियुक्तः पाकशालायां स्थितवान्राजसम्मतः॥ ४१॥

अर्जुनो नृत्यशालायां कन्यानां नर्तको भवेत्।
स्त्रीवेषधारी स्थितवान्मत्स्यराजमतेन च॥ ४२॥

द्रौपद्यपि च सैरन्ध्री भूत्वा तस्य महीपतेः।
पत्नीं सुदेष्णामासाद्य स्थिता सर्वाङ्गसुन्दरी॥ ४३॥

माद्रीसुतौ च विक्रान्तौ राजानं तमुपेत्य च।
नियुक्तावश्वशालायां गोशालायां च संस्थितौ॥ ४४॥

न चैतान् ज्ञातवान्कश्चिदपि सर्वान्महीश्वरान्।
महादेव्याः प्रसादेन तावद्वर्षे त्रयोदशे॥ ४५॥

प्राप्ते चैकादशे मासि सुदेष्णाया निकेतने।
तस्या भ्राता ददर्शैनां सैरन्ध्रीं कीचको बली॥ ४६॥

वृद्धस्य मत्स्यराजस्य स एव राज्यरक्षकः।
स तस्य मतमुल्लङ्घ्य न किञ्चित्कर्तुमुत्सहेत्॥ ४७॥



उन्होंने [युधिष्ठिरने] कहा—राजन्! मैं सब कुछ नष्ट हो जानेपर उपस्थित हुआ शरणार्थी हूँ। मुझे धर्मपुत्र [राजा युधिष्ठिर]- द्वारा संरक्षित, द्यूतक्रीड़ामें कुशल 'कङ्क' नामक ब्राह्मण समझिये॥ ३८॥

ऐसा सुनकर मत्स्यराजने उन महाबुद्धिमान् धर्मात्माको स्वयं आदरपूर्वक सभामें संरक्षण दिया। भगवतीकी कृपासे उस तेरहवें वर्षमें राजाकी सभामें आये हुए उन्हें कोई जान नहीं सका॥ ३९-४०॥ इसी प्रकार भीमसेन भी उन राजा [विराट]-के पास आये और राजाकी सम्मतिसे पाकशालामें नियुक्त हो गये। स्त्रीवेशधारी अर्जुन मत्स्यराजकी अनुमतिसे उनकी नृत्यशालामें कन्याओंके नृत्यशिक्षक हुए। सर्वाङ्गसुन्दरी द्रौपदी भी राजाकी पत्नी सुदेष्णाकी सैरन्ध्री नामवाली प्रसाधन-सेविका होकर राजाके अन्तःपुरमें रहने लगी। माद्रीके दोनों पराक्रमी पुत्र भी उन राजा [विराट]-के पास आये और अश्वशाला तथा गोशालामें नियुक्त होकर रहने लगे॥ ४१—४४॥ महादेवीकी कृपासे उस तेरहवें वर्षमें इन सभी राजपुत्रोंको किसीने भी नहीं पहचाना॥ ४५॥ [उस वर्षके] ग्यारहवें माहमें सुदेष्णाके महलमें उसके बलवान् भाई कीचकने सैरन्ध्रीको देखा॥ ४६॥ वही वृद्ध मत्स्यराजके राज्यका संरक्षक था। अतः उसके प्रस्तावका उल्लंघन करनेका उसमें साहस नहीं था॥ ४७॥

स तां विलोक्य सैरन्ध्रीं चार्वङ्गीं दिव्यलक्षणाम्।
पप्रच्छ भगिनीं केयं चारुसर्वाङ्गसुन्दरी॥ ४८॥

शचीयं किं महेन्द्रस्य किं विष्णोः कमला स्वयम्।
नैतादृशी मया दृष्टा कापि सर्वाङ्गशोभना॥ ४९॥

सुदेष्णोवाच

सैरन्ध्रीयं शृणु भ्रातरकस्मात्समुपागता।
निवेशाद्धर्मपुत्रस्य सर्वराजेश्वरस्य च॥ ५०॥

कीचक उवाच

यथैषा ह्यचिरेणैव भजते मां तथा कुरु।
नो चेत्प्राणान्परित्यज्य यास्यामि यममन्दिरम्॥ ५१॥

सुदेष्णोवाच

किञ्चिद्वक्ष्यामि ते भ्रातस्तत्त्वमव्यक्तमद्भुतम्।
तच्छ्रुत्वा ब्रूहि निश्चित्य तत्करिष्ये प्रियं तव॥ ५२॥

इयं यदा समायाता सैरन्ध्री चारुरूपिणी।
निवासमत्र काङ्क्षन्ती तदा त्वेतन्मयोदितम्॥ ५३॥

सैरन्ध्री चारुरूपासि मत्तः शतगुणैरपि।
न त्वं मत्सेवने योग्या मम चैतन्न युज्यते॥ ५४॥

यदि त्वां द्रक्ष्यते राजा राजीवसदृशाननाम्।
तदा त्वामेव चार्वङ्गि सर्वतः समुपेष्यति॥ ५५॥

त्वदाज्ञावशगो राजा रूपसौन्दर्यमोहितः।
न मामेष्यति दौर्भाग्यं किं मे सैरन्ध्र्यतः परम्॥ ५६॥

तदत्र वासस्ते नास्ति गच्छ स्थानं यथेप्सितम्।

सुन्दर अङ्गों और दिव्य लक्षणोंवाली उस सैरन्ध्रीको देखकर उस [कीचक]-ने अपनी बहनसे पूछा कि यह सर्वाङ्गसुन्दरी कौन है? क्या ये देवराज इन्द्रकी पत्नी शची हैं या भगवान् विष्णुकी पत्नी स्वयं लक्ष्मी हैं? मैंने ऐसी सर्वाङ्गसुन्दरी कोई नहीं देखी॥ ४८-४९॥

सुदेष्णा बोली—भाई! सुनो, यह सैरन्ध्री है, जो महाराजाधिराज धर्मपुत्र [युधिष्ठिर]-के महलसे अचानक ही आ गयी है॥ ५०॥



कीचक बोला—यह जैसे भी मुझे शीघ्र स्वीकार करे वैसा करो, नहीं तो मैं अपना प्राण त्यागकर यमलोक चला जाऊँगा॥ ५१॥

सुदेष्णा बोली—भाई! मैं तुमसे कुछ अद्भुत और रहस्यमय बात बताती हूँ, उसे सुनकर विचार करके बोलो तो मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगी। यह रूपवती सैरन्ध्री जब यहाँ रहनेकी इच्छासे आयी तब मैंने इससे कहा था—सैरन्ध्री! तुम मुझसे सौगुना सौन्दर्यशालिनी हो। तुम मेरी सेवाके योग्य नहीं हो, मेरे लिये भी यह उचित नहीं है। कमलके समान नेत्रों तथा सुन्दर अङ्गोंवाली तुम्हें यदि राजा देख लेंगे तो सब प्रकारसे तुम्हारे हो जायँगे। तुम्हारे रूप-सौन्दर्यपर मोहित राजा तुम्हारी आज्ञाके वशमें हो जायँगे। सैरन्ध्री! वे मेरे पास नहीं आयेंगे, इससे बढ़कर मेरा दुर्भाग्य क्या होगा? इसलिये यहाँ तुम नहीं रह सकती, जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ॥ ५२—५६½॥

तच्छ्रुत्वा प्राह सैरन्ध्री कल्याणी तव मन्दिरे ॥ ५७ ॥

यावत्स्थास्याम्यहं तावन्न गच्छेत्पुरुषः क्वचित्।
सन्ति मे पञ्च गन्धर्वाः पतयश्चारुविक्रमाः ॥ ५८ ॥

त एव प्रतिरक्षन्ति मामहर्निशमेव हि।
नहि मां धर्षितुं शक्तः पुमानन्यो महीतले ॥ ५९ ॥

तन्नास्ति ते भयं राज्ञि वासं रोचय मेऽन्तिके।
तच्छ्रुत्वाऽहं च सैरन्ध्रीमरक्षं स्वनिवेशने ॥ ६० ॥

न चेत्स्वसुखसंछेदमूलां किं स्थापये गृहे।
तत्त्वं यदि च सैरन्ध्रीमनुगच्छसि सुन्दरीम् ॥ ६१ ॥

तदा त्वां पञ्च गन्धर्वा निहनिष्यन्ति निश्चितम्।

कीचक उवाच

नाहं बिभेमि गन्धर्वात्सत्यमेव ब्रवीमि ते ॥ ६२ ॥

स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य हनिष्ये तान्समागतान्।
सैरन्ध्रीं मृदुवाक्येन नन्दयित्वा द्रुतं मम ॥ ६३ ॥

शय्यां वेशय चार्वङ्गीं गन्धर्वान्मा भयं कुरु।

श्रीमहादेव उवाच

ततः सुदेष्णा सैरन्ध्रीं समाहूय स्मितानना ॥ ६४ ॥

प्रोवाच गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम्।
स त्वामिच्छति कल्याणि भज तं चारुरूपिणम् ॥ ६५ ॥



उसे सुनकर सैरन्ध्रीने कहा कि कल्याणी! जबतक मैं आपके भवनमें रहूँ तबतक कोई पुरुष वहाँ न जाय। पाँच महापराक्रमी गन्धर्व मेरे पति हैं, वे ही रात-दिन मेरी रक्षा करते रहते हैं। इस पृथ्वीपर कोई भी अन्य पुरुष मुझपर बलप्रयोग करनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये रानी! मुझे अपने समीप रखनेमें आपको भय नहीं है। ऐसा सुनकर मैंने अपने महलमें सैरन्ध्रीको रख लिया। यदि ऐसा नहीं होता तो मेरे सुखका नाश करनेवाली इसे अपने घरमें क्यों रखती? अतः तुम यदि इस सुन्दरी सैरन्ध्रीके पीछे पड़ रहे हो तो वे पाँचों गन्धर्व तुम्हें निश्चित ही मार डालेंगे ॥ ५७—६१ $\frac{1}{2}$ ॥

कीचक बोला—मैं सत्य कहता हूँ कि मुझे गन्धर्वोंसे भय नहीं है, अपने बाहुबलका आश्रय लेकर मैं उन आये गन्धर्वोंको मार डालूँगा। तुम गन्धर्वोंसे भय न करो और अपनी मधुर वाणीसे सुन्दर अङ्गोंवाली सैरन्ध्रीको प्रसन्न कर मेरी शय्यापर भेजो ॥ ६२-६३ $\frac{1}{2}$ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब सुदेष्णाने सैरन्ध्रीको बुलाकर मुसकराते हुए कहा—सैरन्ध्री! कीचकके महलमें जाओ। कल्याणी! वह तुम्हें चाहता है, तुम उस सुन्दर रूपवाले कीचकको अङ्गीकार करो ॥ ६४-६५ ॥

सैरन्ध्र्युवाच

नाहं भजेऽन्यपुरुषं विना पञ्चपतीन्मम।
न मां सन्धर्षितुं शक्तः सोऽतिपापोऽतिमन्दधीः ॥ ६६ ॥

यदि मां वीक्ष्य दुष्टात्मा कामोपहतचेतनः।
समुपैति ध्रुवं मृत्युस्तेभ्यस्तस्य भविष्यति ॥ ६७ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा सुदेष्णा भ्रातरं तदा।
उवाच स्वेच्छया नैव सैरन्ध्री त्वामुपैष्यति ॥ ६८ ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा कीचकः पापचेतनः।
बलात्सन्धर्षणे चेष्टां वितताम स दुर्मतिः ॥ ६९ ॥

तस्य तच्चेष्टितं ज्ञात्वा द्रुपदस्य सुता तदा।
भीता देवीं जगद्धात्रीं जगाम शरणं शिवाम् ॥ ७० ॥

द्रौपद्युवाच

देवि दुर्गे जगन्मातः सर्वरक्षणकारिणि।
प्रसीद त्वत्प्रपन्नानां दुःखदारिद्र्यनाशिनी ॥ ७१ ॥

दुष्टस्तम्भिनि विश्वेशि कात्यायनि महेश्वरि।
विश्वमोहिनि विश्वेशे चितिरूपे नमोऽस्तु ते ॥ ७२ ॥

महामोहस्वरूपा त्वं शुद्धज्ञानस्वरूपिणी।
ये त्वां स्मरन्ति संसारे ते दुर्गान्निस्तरन्ति हि ॥ ७३ ॥

पातिव्रत्यस्वरूपा त्वं साध्वीनां जगदम्बिके।
निस्तारय भयाद्घोराच्छङ्करप्राणवल्लभे ॥ ७४ ॥

त्वमेव देवि दीनानां सदासि परमा गतिः।
त्वामहं शरणं प्राप्ता त्राहि मां घोरसङ्कटात् ॥ ७५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

पाञ्चाल्यैवं स्तुता देवी दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
अन्तरिक्षे गतोवाच मा सैरन्ध्रि भयं कुरु ॥ ७६ ॥

यस्त्वामन्यः पुमाँल्लोभादभिकाङ्क्षति कामुकः।
स मृत्युवशगो नूनं भविष्यति न संशयः ॥ ७७ ॥

इति देव्या वरं प्राप्य सैरन्ध्री मुदितानना।
निर्भया मत्स्यराजस्य भवने विचचार ह ॥ ७८ ॥

सैरन्ध्री बोली—अपने पाँच पतियोंके अतिरिक्त मैं किसी दूसरे पुरुषको अङ्गीकार नहीं करती। वह अत्यन्त पापी और अत्यन्त मन्द बुद्धिवाला मुझपर बलप्रयोग करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। यदि वह दुष्टात्मा मुझे देखकर कामान्ध होकर मेरे पास आयेगा तो उन गन्धर्वोंके द्वारा निश्चितरूपसे उसकी मृत्यु हो जायगी ॥ ६६-६७ ॥

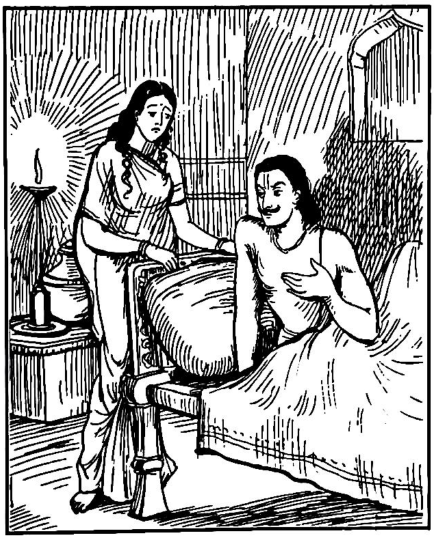
उसकी ऐसी बात सुनकर सुदेष्णाने भाईसे कहा कि सैरन्ध्री अपनी इच्छासे तुम्हारे पास नहीं आयेगी ॥ ६८ ॥ उसकी उस बातको सुनकर पापी दुष्टबुद्धि कीचकने बलपूर्वक शीलहरणकी चेष्टा की। उसकी उस कुचेष्टाको जानकर द्रौपदी भयभीत होकर जगत्‌का पालन करनेवाली देवी शिवाकी शरणमें गयी ॥ ६९-७० ॥

द्रौपदी बोली—शरणागतोंके दुःख-दारिद्र्यका नाश करनेवाली, सबकी रक्षा करनेवाली जगज्जननी देवी दुर्गा! आप प्रसन्न हों। दुष्टोंको स्तम्भित करनेवाली, विश्वको मोहित करनेवाली, चैतन्यरूपिणी, विश्वकी अधिष्ठात्री विश्वेश्वरी! कात्यायनी! महेश्वरी! आपको नमस्कार है ॥ ७१-७२ ॥

दुर्गा! आप मोहस्वरूपा और शुद्धज्ञानस्वरूपा हैं, इस संसारमें जो आपका स्मरण करते हैं वे संकटोंसे पार जाते हैं। जगदम्बिका! आप सती स्त्रियोंकी पातिव्रत्यस्वरूपा हैं, भगवान् शंकरकी प्राणप्रिया! दारुण भयसे मेरा उद्धार कीजिये। देवी! आप दीनजनोंकी सदैव परमगति हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ, भयानक संकटसे मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७३—७५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—पाञ्चालीद्वारा इस प्रकार स्तुति करनेपर दुःसह दुःखोंका नाश करनेवाली देवी दुर्गाने अन्तरिक्षमें स्थित होकर कहा—'सैरन्ध्री! भय मत करो। जो कोई अन्य पुरुष कामलोलुप होकर तुम्हें चाहेगा, वह शीघ्र ही मृत्युके वशवर्ती होगा; इसमें संशय नहीं है' ॥ ७६-७७ ॥ इस प्रकार देवीसे वरदान प्राप्त कर प्रसन्न मुखवाली सैरन्ध्री निर्भय होकर मत्स्यराजके भवनमें विचरण करने लगी ॥ ७८ ॥

सैकदा रुचिरापाङ्गी निशायां कार्यगौरवात्।
प्रायाद्गृहं सुदुष्टस्य कीचकस्य महामुने॥ ७९॥
तदा स पापः प्रतिवीक्ष्य सुन्दरीं
समीपगां तां द्रुपदस्य पुत्रीम्।
उत्थाय जग्राह कराम्बुजे क्षणा-
त्सा तं विनिःक्षिप्य गृहाद्विनिर्ययौ॥ ८०॥
क्रुद्धः स पापोऽतिविघूर्णलोचनः
प्रायात्सुताया द्रुपदस्य पश्चात्।
सा तद्भयेनातिविषण्णमानसा
जगाम मत्स्याधिपतेः सभायाम्॥ ८१॥
यत्रास्ति धर्मस्य सुतश्च भीमो
वृद्धेन राज्ञा किल देवने रतः।
तत्रागतां तां प्रतिगृह्य केशतः
सूतात्मजोऽसौ सहसा पदावधीत्॥ ८२॥
ततो विलप्य द्रुपदस्य पुत्री
मत्स्याधिराजं प्रतिनिन्द्य कोपिता।
रक्तेक्षणेन प्रतिवीक्ष्य भीमं
धर्मात्मजं चापि सुदीनचेतसम्॥ ८३॥
विमृज्य नेत्रे सहसा गृहं ययौ
प्रतीक्ष्य कालं किल मत्स्यभूपतेः।
भीमोऽपि संवीक्ष्य च कीचकस्य
विनाशनार्थं मनसा व्यचिन्तयत्॥ ८४॥
ततः स एकदा प्राह सैरन्ध्रीं पाण्डवो बली।
आमन्त्र्य नृपशालायां रात्रावानय कीचकम्॥ ८५॥



महामुने! वह सुन्दर अपाङ्गवाली एक बार किसी महत्त्वपूर्ण कार्यसे रात्रिमें उस दुष्ट कीचकके घर गयी। तब उस पापीने पासमें आयी हुई उस रूपवती द्रौपदीको देखकर तत्क्षण उठकर उसका कमलसदृश हाथ पकड़ लिया, परंतु वह उसे ढकेलकर घरसे बाहर भाग आयी॥ ७९-८०॥

वह पापी क्रोधपूर्वक आँखें नचाते हुए द्रौपदीके पीछे दौड़ा। उसके भयसे अत्यन्त विक्षुब्ध मनवाली वह [द्रौपदी] मत्स्यराजकी सभामें चली गयी, जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर और भीमसेन वृद्ध राजा [विराट]-के साथ द्यूतक्रीड़ामें संलग्न थे। उस सूतपुत्र कीचकने वहाँ आयी हुई द्रौपदीके बाल पकड़कर सहसा पैरसे प्रहार किया। तब रुदन करती हुई द्रौपदीने क्रोधपूर्वक मत्स्यराजकी निन्दा की और दीन हृदयवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिर तथा भीमसेनकी ओर लाल नेत्रोंसे देखकर आँखें मीचकर उचित समयकी प्रतीक्षा करती हुई वह अचानक मत्स्यराजके भवनमें चली गयी। यह देखकर भीमने कीचकके विनाशका मन-ही-मन विचार किया॥ ८१—८४॥

उसके बाद एक बार उन बलवान् पाण्डुपुत्र भीमने सैरन्ध्री [द्रौपदी]-से कहा कि कीचकको आमन्त्रण देकर रात्रिमें राजभवनमें ले आओ।

तत्राहं तं हनिष्यामि तवैव प्रियकाम्यया।
गन्धर्वैर्निहतः पाप इत्येवं त्वं वदिष्यसि॥ ८६॥

तस्य तन्मतमाज्ञाय तथा चक्रे दृढव्रता।
निशार्धे भीमसेनेन स पापः कीचको हतः॥ ८७॥

पौरानुवाच सैरन्ध्री गन्धर्वैः कीचको हतः॥ ८८॥

तच्छुत्वान्ये समाजग्मुर्द्रष्टुं तमुपकीचकाः।
ते तस्य दाह उद्युक्तास्तमादाय गृहान्तरात्॥ ८९॥

रात्रौ विनिर्ययुः सर्वे रुदित्वा सुचिरं बहु।
एतस्मिन्नन्तरे तेऽपि विनिश्चित्य परस्परम्॥ ९०॥

कीचकेन समं दाहं सैरन्ध्र्याश्च व्यरोचयन्।
ततो बलात्तामादाय प्रजग्मुरुपकीचकाः॥ ९१॥

उच्चै रुरोद सैरन्ध्री भीमस्तज्ज्ञातवांस्तदा।
ततः प्राचीरमुल्लङ्घ्य विनिर्गत्य महाबलः॥ ९२॥

सैरन्ध्रीं मोचयामास विनिपात्योपकीचकान्।
गन्धर्वेण हता एते इत्येवं चुक्रुशुर्जनाः॥ ९३॥

राजा भीतस्तदा प्राह सैरन्ध्रीं विनयान्वितः।
त्वदर्थे निहता एते मम राज्यस्य रक्षकाः॥ ९४॥

मत्पुरीं त्वं परित्यज्य वासमन्यत्र रोचय।

वहाँ मैं तुम्हारा प्रिय करनेके लिये उसे मार डालूँगा और तुम कहना कि यह पापी गन्धर्वोंके द्वारा मार डाला गया॥ ८५-८६॥ भीमसेनकी इस बातको मानकर उस पतिव्रताने वैसा ही किया और भीमसेनने अर्धरात्रिमें उस पापी कीचकको मार डाला। सैरन्ध्रीने नगरवासियोंसे कह दिया कि कीचक गन्धर्वोंद्वारा मार डाला गया॥ ८७-८८॥



ऐसा सुनकर और दूसरे भी उपकीचक उसे देखनेके लिये एकत्र हो गये। वे उसका दाह करनेके लिये भवनसे ले आये। रात्रिका बहुत समय उन सबके रोनेमें ही बीता और इसके बाद उन्होंने सैरन्ध्रीका भी कीचकके साथ ही दाह करनेका आपसमें निर्णय किया॥ ८९-९०½॥ तदनन्तर वे उपकीचक जाकर उसे बलपूर्वक पकड़ लाये। तब सैरन्ध्रीने उच्च स्वरमें विलाप किया, जिसे भीम जान गये। उसके बाद दीवाल लाँघकर वे महाबली भीम बाहर निकल गये और उन्होंने उपकीचकोंका वध कर सैरन्ध्रीको छुड़ा लिया। लोगोंमें चर्चा रही कि इन सबको गन्धर्वने मार डाला॥ ९१—९३॥ तब भयभीत होकर राजा [विराट]-ने विनयपूर्वक सैरन्ध्रीसे कहा कि तुम्हारे कारण ही मेरे राज्यके इतने रक्षक मारे गये। तुम मेरे नगरको छोड़कर अपनी रुचिके अनुसार अन्यत्र निवास करो॥ ९४½॥

सैरन्ध्री तमनुप्राह किञ्चित्कालं क्षमस्व मे॥ ९५॥



अचिरेणैव यास्यामि त्यक्त्वा राजंस्तवालयम्।
ततो व्यतीतः समभूत्तेषां वर्षस्त्रयोदशः॥ ९६॥

न चारैः प्रतिसन्धाय जज्ञे राजा सुयोधनः।
भीष्मद्रोणमुखैः सर्वैर्मन्त्रयित्वा चिरं नृपः॥ ९७॥

कीचकानां वधं श्रुत्वा तत्र निश्चित्य पाण्डवान्।
ससैन्यो मत्स्यराजस्य स देशं समुपागमत्॥ ९८॥

तत्रासीद्गोग्रहे युद्धं पार्थेन सह धन्विना।
भीष्मद्रोणादयः सर्वे तेन तत्र पराजिताः॥ ९९॥

ततो जज्ञे विराटोऽपि पाण्डवान्समवस्थितान्।
विधिवत्पूजयामास विनयावनतो नृपः॥ १००॥

तत्रार्जुनसुतस्याभूद्विवाहमङ्गलोत्सवः।
विराटात्मजया सार्धं सर्वेषां हर्षवर्धनः॥ १०१॥

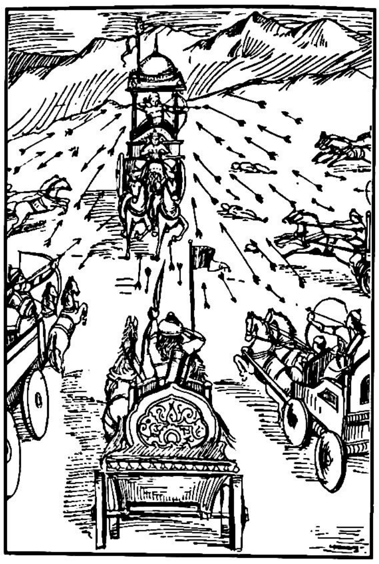
ततो युद्धसमुद्योगः प्रावर्तत महामते।
तत्रायाताश्च पाञ्चालाः सर्वसैन्यसमावृताः॥ १०२॥

काशिराजमुखाश्चान्ये नृपाः साहाय्यहेतवे।
तैर्वृताः पाण्डवाः सर्वे मत्स्यैश्च परिवारिताः॥ १०३॥

इच्छन्तस्तुमुलं युद्धं कुरुक्षेत्रमुपागमन्॥ १०४॥

सैरन्ध्रीने उनसे कहा कि राजन्! मुझे कुछ समयके लिये क्षमा कीजिये, मैं शीघ्र ही आपके राजप्रासादको छोड़कर चली जाऊँगी। तत्पश्चात् उन सबका तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो गया और राजा दुर्योधन गुप्तचरोंके द्वारा खोजवाकर तथा भीष्म, द्रोण आदि प्रमुखोंसे देरतक मन्त्रणा करके भी उनका पता नहीं पा सका॥ ९५—९७॥

कीचकोंका वध सुनकर 'वहाँ पाण्डव होंगे'—ऐसा निश्चित कर राजा दुर्योधन सेनासहित मत्स्यराजके देशमें आ गया। वहाँ गौओंके ले जानेके सम्बन्धमें धनुर्धर अर्जुनके साथ उसका युद्ध हुआ, जिसमें भीष्म, द्रोण आदि सभी उनसे पराजित हुए॥ ९८-९९॥



तत्पश्चात् अपने यहाँ रहनेवाले पाण्डवोंको राजा विराटने भी जान लिया और विनयावनत होकर राजाने उनकी विधिवत् पूजा की॥ १००॥ वहाँ अर्जुनपुत्र [अभिमन्यु]-का विराटपुत्री [उत्तरा]-के साथ विवाहका सभीके आनन्दको बढ़ानेवाला मङ्गलमय उत्सव हुआ॥ १०१॥

महामते! तत्पश्चात् [महाभारत] युद्धकी तैयारी प्रारम्भ हुई। पाञ्चालदेशके राजा अपनी समस्त सेनाके साथ वहाँ आये। काशिराज तथा अन्य प्रमुख राजागण भी उनकी सहायताके लिये आये। उनके और मत्स्यदेशके अन्य राजाओंके साथ पाण्डव भीषण संग्रामकी इच्छासे कुरुक्षेत्रमें आ गये॥ १०२-१०४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे कीचकवधोपाख्याने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'कीचकवधोपाख्यान' नामक छप्पनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय
महाभारतयुद्धका वर्णन

श्रीमहादेव उवाच

तदा भूभारहाराय कृष्णा या कृष्णरूपिणी।
धार्तराष्ट्रसहायार्थं स्वसेनां सन्नियम्य च॥ १ ॥
सात्यकेन समं पूर्णं स्वयं पाण्डूनुपागमत्।
आगताः पृथिवीपाला नानादेशनिवासिनः।
पाण्डवानां कुरूणां च साहाय्यार्थं महामते॥ २ ॥
न तादृशः समुद्देशः क्षत्रियाणां महामुने।
कदाचित्कुत्रचिद्भूतो भविता वा कदाचन॥ ३ ॥
हस्त्यश्वरथपादातैर्नानादेशनिवासिनाम् ।
व्याप्तमासीत्कुरुक्षेत्रं धर्मक्षेत्रमयं तदा॥ ४ ॥
दृष्ट्वैवं तु समुद्योगं लोकक्षयकरं परम्।
भीष्माद्याः सुमहात्मानः सुयोधनमवारयन्॥ ५ ॥
आगत्य भगवान्व्यासः स्वयं सर्वार्थवित्तमः।
सपुत्रं धृतराष्ट्रं च निषिषेध मुहुर्मुहुः॥ ६ ॥
न तद्गृहीतवान्राजा कालपाशेन गुण्ठितः।
कर्णस्य मतमास्थाय युद्धमेव व्यरोचयत्॥ ७ ॥
ततः शङ्खनिनादैश्च भेरीदुन्दुभिनिःस्वनैः।
रथनेमिस्वनेनापि कम्पयन्तो धरातलम्।
धार्तराष्ट्राः सहामात्यैः संग्रामाय विनिर्ययुः॥ ८ ॥
तान्दृष्ट्वा समुपायातान्पाण्डवानां महारथाः।
सिंहनादान्मुहुश्चक्रुः शङ्खस्वनविमिश्रितान्॥ ९ ॥
स घोषो धरणीं चैव नभश्चाप्यनुनादयन्।
चकर्ष धार्तराष्ट्राणां मनस्तेजांसि सर्वतः॥ १० ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब पृथ्वीके भारका हरण करनेके लिये महाकाली कृष्णरूपसे अपनी सेनाको धृतराष्ट्रपुत्रोंकी सहायतामें नियोजित कर स्वयं पूर्णरूपसे सात्यकिसहित पाण्डवोंके पास चली आयी। महामते! अनेक देशोंके निवासी राजागण पाण्डवों और कौरवोंकी सहायताके लिये आये। महामुने! क्षत्रियोंका वैसा एकत्री-करण न कभी कहीं हुआ था, न होगा॥ १—३॥ उस समय वह धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र अनेक देशोंके गज, अश्व, रथ और पैदल सैनिकोंसे व्याप्त हो गया था॥ ४॥ संसारका सर्वथा विनाश कर देनेवाली उस युद्ध-सम्बन्धी तैयारीको देखकर भीष्म आदि महात्माओंने दुर्योधनको रोका॥ ५॥ श्रेष्ठ, तत्त्वज्ञ भगवान् वेदव्यासने स्वयं आकर पुत्रसहित धृतराष्ट्रको बार-बार रोका,लेकिन कालपाशसे जकड़े हुए राजा



धृतराष्ट्रने व्यासजीकी बात नहीं मानी और कर्णके परामर्शानुसार युद्धके लिये निश्चय किया॥ ६-७॥ इसके पश्चात् धृतराष्ट्रके पुत्र अपने मन्त्रियोंके साथ युद्धके लिये शङ्खों, नगाड़ों और दुन्दुभियोंकी ध्वनि तथा रथोंके धुरोंकी घरघराहटसे पृथ्वीतलको कँपाते हुए निकल पड़े॥ ८॥ उन्हें आया देखकर पाण्डवपक्षके महारथियोंने बार-बार शङ्खध्वनिके साथ सिंहनाद किया। उस ध्वनिने पृथ्वी और आकाशको गुञ्जायमान करते हुए धृतराष्ट्रपुत्रोंके मन तथा तेजको सब प्रकारसे खींच लिया॥ ९-१०॥

ततो धर्मसुतो राजा गुरून्युद्धे व्यवस्थितान्।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्प्रणिपत्य पृथक् पृथक्।
युद्धाय तैरनुज्ञातः स्वरथं पुनरागमत्॥ ११॥

ततस्ते पाण्डवाः सर्वे अवप्लुत्य रथोत्तमात्।
संग्रामे जयलाभाय तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्॥ १२॥

पाण्डवा ऊचुः

कात्यायनि त्रिदशवन्दितपादपद्मे
विश्वोद्भवस्थितिलयैकनिदानरूपे।
देवि प्रचण्डदलिनि त्रिपुरारिपत्नि
दुर्गे प्रसीद जगतां परमार्तिहन्त्रि॥ १३॥

त्वं दुष्टदैत्यविनिपातकरी सदैव
दुष्टप्रमोहनकरी किल दुःखहन्त्री।
त्वां यो भजेदिह जगन्मयि तं कदापि
नो बाधते भवसु दुःखमचिन्त्यरूपे॥ १४॥

त्वामेव विश्वजननीं प्रणिपत्य विश्वं
ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरहोत्ति शम्भुः।
काले च तान्सृजसि पासि विहंसि मात-
स्त्वल्लीलयैव नहि तेऽस्ति जनैर्विनाशः॥ १५॥

त्वं यैः स्मृता समरमूर्धनि दुःखहन्त्रि
तेषां तनून्नहि विशन्ति विपक्षबाणाः।
तेषां शरास्तु परगात्रनिमग्नपुङ्खाः
प्राणान्ग्रसन्ति दनुजेन्द्रनिपातकर्त्रि॥ १६॥

यस्त्वन्मनुं जपति घोररणे सुदुर्गे
पश्यन्ति कालसदृशं किल तं विपक्षाः।
त्वं यस्य वै जयकरी खलु तस्य वक्त्राद्
ब्रह्माक्षरात्मकमनुस्तव निःसरेच्च॥ १७॥

त्वामाश्रयन्ति परमेश्वरि ये भयेषु
तेषां भयं नहि भवेदिह वा परत्र।
तेभ्यो भयादिह सुदूरत एव दुष्टा-
स्त्रस्ताः पलायनपराश्च दिशो द्रवन्ति॥ १८॥

तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर युद्धमें मोर्चा बाँधकर डटे हुए भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख गुरुजनोंको पृथक्-पृथक् प्रणाम कर और उनसे युद्धके लिये आज्ञा लेकर पुनः अपने रथपर आ गये। उसके बाद उन सभी पाण्डवोंने उत्तम रथोंसे नीचे कूदकर युद्धमें विजयप्राप्तिके लिये भगवती जगदम्बिकाकी स्तुति की॥ ११-१२॥

पाण्डव बोले—देवताओंके द्वारा पूजित चरणकमलोंवाली तथा जगत्‌के उद्भव-पालन-संहारकी कारणस्वरूपिणी कात्यायनी! भीषण दुष्टोंका नाश करनेवाली देवी! त्रिपुरारिपत्नी! संसारके महान् कष्टोंको दूर करनेवाली दुर्गा! हमपर प्रसन्न होइये॥ १३॥ आप सर्वदा दुष्ट दैत्योंका संहार करती हैं, दुष्टोंको विमोहित करती हैं और भक्तोंके दुःखका हरण करती हैं। जगद्व्यापिनी! अचिन्त्यरूपा! जो प्राणी त्रिलोकीमें आपकी आराधना करता है उसे कोई कष्ट कभी भी पीड़ित नहीं करता॥ १४॥

जगज्जननी आप भगवतीको प्रणाम करके ही ब्रह्मा जगत्‌का सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शम्भु संहार करते हैं। माता! आप समय-समयपर अपनी लीलासे उनका (त्रिदेवोंका) भी सृजन, पालन तथा विनाश करती हैं, किंतु आपका नाश किसीसे कभी नहीं होता॥ १५॥ दुःखोंका हरण करनेवाली भगवती! जो लोग युद्धक्षेत्रमें आपका स्मरण करते हैं, उनके शरीरमें शत्रुओंके बाण प्रवेश नहीं कर पाते। अपितु श्रेष्ठ राक्षसोंका संहार करनेवाली देवि! शत्रुओंके शरीरमें पूँछतक प्रविष्ट होनेवाले उनके बाण उन शत्रुओंके प्राण हर लेते हैं॥ १६॥ जो मनुष्य अत्यन्त दुर्गम तथा भीषण संग्राममें आपके मन्त्रका जप करता है, शत्रुगणोंको वह साक्षात् कालके समान दिखायी देता है। जिसके मुखसे आपका ब्रह्माक्षरस्वरूप मन्त्र उच्चरित होता है, आप निश्चितरूपसे उसे विजय प्रदान करती हैं॥ १७॥

परमेश्वरी! जो लोग भयकी स्थितियोंमें आपका आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें इस लोकमें तथा परलोकमें कहीं भी भय नहीं होता और दूसरे ही उनसे भयभीत होकर दुष्टजन त्रस्त होते हुए सभी दिशाओंमें भाग खड़े होते हैं॥ १८॥

पूर्वं सुरासुररणे सुरनायकस्त्वां
सम्प्रार्थयन्नसुरवृन्दमुपाजघान ।
रामोऽपि राक्षसकुलं निजघान तद्व-
त्त्वत्सेवनादृत इहास्ति जयो न चैव ॥ १९ ॥

तत्त्वां भजामि जयदां जगदेकवन्द्यां
विश्वाश्रयां हरिविरञ्चिसुसेव्यपादाम्।
त्वं नो विधेहि विजयं त्वदनुग्रहेण
शत्रून्निपात्य समरे विजयं लभामः ॥ २० ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं संस्तुता देवी पाण्डवेयैर्महात्मभिः ।
सुप्रसन्ना वरं प्रादादन्तरिक्षे गता स्वयम् ॥ २१ ॥

देव्युवाच

मत्प्रसादाद्रणे शत्रून्निपात्य रणमूर्धनि ।
निष्कण्टकमिदं राज्यं भूयो भूयस्त्ववाप्स्यथ ॥ २२ ॥

पृथ्वीभारापहाराय युष्माकं विजयाय च ।
वासुदेवस्वरूपेण जाताहं निजलीलया ॥ २३ ॥

फाल्गुनस्य रथे स्थित्वा विपुले वानरध्वजे ।
वासुदेवस्वरूपाहं युष्मान्रक्ष्यामि निश्चितम् ॥ २४ ॥

स्तोत्रेणानेन मां भक्त्या ये स्तोष्यन्ति नरा भुवि ।
तेषां च जयदा नित्यं भविष्यामि न संशयः ॥ २५ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं तु वरं लब्ध्वा पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
मेनिरे विजयं युद्धे सुप्रसन्नमुखाम्बुजाः ॥ २६ ॥

ततः पुनः समारुह्य रथान्हेमपरिप्लुतान् ।
विगृह्य कवचं भूयः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥

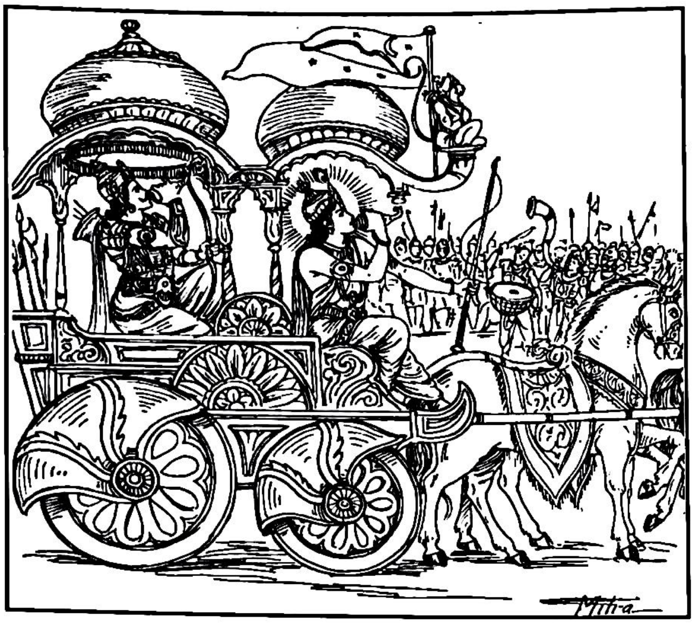
वासुदेवश्च बलवानर्जुनस्य रथे स्थितः ।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खं दध्मौ घोरतरं मुहुः ॥ २८ ॥

पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें देवराज इन्द्रने आपकी आराधना करके ही राक्षससमुदायका संहार किया था और उसी तरह श्रीरामचन्द्रने भी आपकी उपासना करके राक्षसकुलका वध किया था। देवी! आपकी आराधनाके बिना यहाँ विजय सम्भव नहीं है ॥ १९ ॥ अतः हम विजय प्रदान करनेवाली, जगत्के प्राणियोंद्वारा एकमात्र वन्दनीया, विश्वकी आश्रयस्वरूपिणी तथा ब्रह्मा, विष्णुके द्वारा भलीभाँति पूजित चरणोंवाली आप भगवतीकी आराधना करते हैं। आप हमलोगोंको विजय प्रदान करें; आपकी कृपासे ही हमलोग संग्राममें शत्रुओंका संहार करके विजय प्राप्त करें ॥ २० ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार महात्मा पाण्डवोंके स्तुति करनेसे भगवती अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और अन्तरिक्षमें साक्षात् विराजमान होकर उन्होंने वर प्रदान किया ॥ २१ ॥

देवी बोलीं—आपलोग मेरी कृपासे रणक्षेत्रमें शत्रुओंको बार-बार मारकर इस राज्यको निष्कण्टक-रूपमें प्राप्त करेंगे। पृथ्वीका भार मिटाने और आपलोगोंकी विजयके लिये मैं अपनी लीलासे वासुदेव श्रीकृष्णके रूपमें उत्पन्न हुई हूँ। अर्जुनके विशाल कपिध्वज रथमें वासुदेवस्वरूपसे सदा स्थित रहकर मैं निश्चितरूपसे आपलोगोंकी रक्षा करूँगी। संसारमें जो लोग इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन करेंगे, उन्हें मैं सदा विजय प्रदान करूँगी; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२—२५ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार यह वर प्राप्त कर महारथी पाण्डुपुत्रोंका मुखकमल प्रसन्नतासे खिल उठा और उन्होंने युद्धमें अपनी विजयका निश्चय कर लिया ॥ २६ ॥ तत्पश्चात् उन पाण्डवोंने कवच धारण करके स्वर्णमण्डित रथोंपर आरूढ़ होकर अलग-अलग शङ्खध्वनि की ॥ २७ ॥ अर्जुनके रथपर विराजमान बलवान् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्ख बार-बार तीव्र ध्वनिके साथ बजाया ॥ २८ ॥



चकम्पे वसुधा तेन क्षुब्धमासीदिदं जगत्।
विषण्णमानसा आसन्धार्तराष्ट्राः ससैनिकाः ॥ २९ ॥
सेनाध्यक्षस्त्वभूत्तेषां भीष्मो लोकमहारथः।
कर्णश्च भीष्मविद्वेषान्न्यस्तशस्त्रो व्यतिष्ठत ॥ ३० ॥
अग्रतः पाण्डुसैन्यानां तथैवासीद्वृकोदरः।
नागायुतबलो वीरो साक्षात्काल इवापरः ॥ ३१ ॥
भीष्मेन समभूद्युद्धं दशरात्रं महामुने।
अर्बुदं स जघानैकः पाण्डुसैन्येषु नारद ॥ ३२ ॥
तथान्ये बहवो नष्टा धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
पाण्डवेयैश्च निहता धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः।
तेभ्योऽधिकतरा संख्या महाबलपराक्रमैः ॥ ३३ ॥
दशमेऽहनि संग्रामे किञ्चिच्छेषे दिवाकरे।
धनञ्जयमहास्त्रेण हतो भीष्मः शिखण्डिना ॥ ३४ ॥
उत्तरायणमन्विच्छन्स धर्मात्मा महारथः।
स्थितवाञ्शरशय्यायां ख्यापयन्हि पितुर्वरम् ॥ ३५ ॥
ततः कर्णमुखा योधा द्रोणं कृत्वा महारथम्।
चक्रुः सुतुमुलं युद्धं भूयः पञ्च दिनानि च ॥ ३६ ॥
निहतस्तत्र संग्रामे सौभद्रेयो महारथः।
अन्याय्ययुद्धमाश्रित्य धार्तराष्ट्रस्य सैनिकैः ॥ ३७ ॥
ततोऽर्जुनः प्रतिज्ञाय सायाह्ने तं जयद्रथम्।
शरौघैः पातयामास महाबलपराक्रमः ॥ ३८ ॥

उस शङ्खध्वनिसे पृथ्वी काँप गयी और यह जगत् विक्षुब्ध हो उठा। सैनिकोंसहित धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंके मनमें विषाद व्याप्त हो गया। लोकमें महारथीके रूपमें प्रसिद्ध भीष्म कौरवोंके सेनाध्यक्ष बने। भीष्मके विद्वेषके कारण कर्ण शस्त्रका त्याग करके युद्धसे विरत रहा॥ २९-३० ॥ उसी तरह दस हजार हाथियोंके बलवाले वीर भीम पाण्डवोंके सेनापति बने। वे साक्षात् दूसरे कालकी भाँति प्रतीत हो रहे थे॥ ३१ ॥ महामुने! भीष्मके साथ दस रातोंतक युद्ध होता रहा। नारद! भीष्मने अकेले ही पाण्डवसेनाके दस करोड़ सैनिकोंका संहार किया॥ ३२॥ उसी प्रकार दुर्योधनके भी बहुत-से सैनिक मारे गये। महान् बल तथा पराक्रमवाले पाण्डवोंने उससे भी अधिक संख्यामें दुर्योधनके सैनिकोंका संहार किया॥ ३३॥ संग्रामके दसवें दिन जब सूर्यास्त होनेमें कुछ समय शेष था, तब अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके महास्त्रसे भीष्मको मार गिराया॥ ३४ ॥ सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा करते हुए तथा अपने पिताके वरको सत्य प्रदर्शित करते हुए वे धर्मात्मा महारथी भीष्म शरशय्यापर स्थित रहे॥ ३५ ॥



तदनन्तर द्रोणाचार्यको सेनापति बनाकर कर्ण आदि प्रमुख योद्धाओंने पाँच दिनतक पुनः भीषण संग्राम किया॥ ३६ ॥ दुर्योधनके सैनिकोंने अन्यायपूर्ण युद्धका आश्रय लेकर सुभद्रापुत्र महारथी अभिमन्युको उस संग्राममें मार डाला। तब महान् बल तथा पराक्रमवाले अर्जुनने जयद्रथको सूर्यास्ततक मार डालनेकी प्रतिज्ञा करके अपनी बाण-वर्षासे उसे मार डाला॥ ३७-३८ ॥

एवमन्ये च निहताः सेनयोरुभयोरपि।
पञ्चमेऽह्नि तथा भग्नो द्रोणः पाञ्चालसूनुना॥ ३९॥

इसी प्रकार दोनों ओरकी सेनाओंके अन्य लोग भी मारे गये। पाँचवें दिन द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नके द्वारा द्रोणाचार्य मारे गये॥ ३९॥

ततः कर्णेन समभूद्युद्धं तेषां दिनद्वयम्।
कर्णेन निहतो वीरो राक्षसेन्द्रो घटोत्कचः॥ ४०॥
तं चाप्यपातयत्संख्ये पाण्डवो वानरध्वजः॥ ४१॥

तत्पश्चात् कर्णके साथ दो दिनोंतक उन लोगोंका युद्ध हुआ। उसमें कर्णने राक्षसेन्द्र वीर घटोत्कचका वध कर दिया और उस कर्णको भी पाण्डुपुत्र कपिध्वज अर्जुनने युद्धमें मार गिराया॥ ४०-४१॥

अन्ये च पृथिवीपालाः सेनयोरुभयोरपि।
परस्परं समासाद्य प्रययुर्यमसादनम्॥ ४२॥

दोनों सेनाओंके और भी दूसरे राजागण परस्पर युद्ध करके यमपुरी चले गये॥ ४२॥

ततः शल्यं रणे राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
न्यपातयद्रणे क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः॥ ४३॥

तदनन्तर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरने क्रोधित होकर झुके हुए पर्वोंवाले बाणोंके द्वारा रणमें शल्यको मार गिराया॥ ४३॥

ततः समभवद्युद्धं राज्ञा दुर्योधनेन हि।
भीमसेनस्य गदया परस्परजयैषिणोः॥ ४४॥
भीमेन गदया चापि हतो दुर्योधनस्ततः।
अन्ये च निहताः सर्वे पूर्वमेव महात्मना।
दुःशासनमुखा योधा धार्तराष्ट्रा रणाजिरे॥ ४५॥

तत्पश्चात् परस्पर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले राजा दुर्योधन और भीमसेनका गदायुद्ध होने लगा। भीमने अपनी गदासे दुर्योधनका संहार कर दिया और उन महात्माद्वारा धृतराष्ट्रपुत्र दुःशासन आदि प्रधान योद्धा रणक्षेत्रमें पहले ही मार डाले गये थे॥ ४४-४५॥

ततो रात्रौ भरद्वाजसुतेन सौप्तिका हताः।
धृष्टद्युम्नः सुदुर्धर्षो द्रौपद्याः पञ्च सूनवः॥ ४६॥

तत्पश्चात् अश्वत्थामाने रातमें सोते समय द्रौपदीके पाँच पुत्रों तथा अत्यन्त पराक्रमी धृष्टद्युम्नका संहार कर दिया॥ ४६॥

ततोऽर्जुनेन संग्रामादमरौ विनिवर्तितौ।
अश्वत्थामकृपाचार्यौ शरैः सन्नतपर्वभिः॥ ४७॥

अर्जुनने झुके हुए पर्वोंवाले बाणोंका प्रयोग करके चिरंजीवी अश्वत्थामा तथा कृपाचार्यका वध न करके उन्हें संग्रामसे पराङ्मुख कर दिया॥ ४७॥

एवमष्टादशाहे तु अक्षौहिण्यो निपातिताः।
अष्टादश मुनिश्रेष्ठ सेनयोरुभयोरपि॥ ४८॥
वासुदेवेन सहिताः पाण्डवेया महारथाः।
सर्वेषां क्ष्माभुजां चक्रुः क्रियामप्यौर्ध्वदैहिकीम्॥ ४९॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अठारहवें दिन दोनों ही पक्षोंकी अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ युद्धमें मारी गयीं। तदनन्तर महारथी पाण्डवोंने वासुदेव श्रीकृष्णको साथमें लेकर युद्धमें मारे गये सभी राजाओंकी और्ध्वदैहिक क्रिया भी सम्पन्न की॥ ४८-४९॥

माघे मासि सिताष्टम्यां भीष्मः प्राणान्समत्यजत्।
राज्यं बुभुजिरे पार्था महादेव्याः प्रसादतः॥ ५०॥

भीष्म पितामहने माघ महीनेमें शुक्लपक्षकी अष्टमीतिथिको प्राण-त्याग किया और महादेवीकी कृपासे पाण्डव राज्यका भोग करने लगे॥ ५०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे महाभारतयुद्धवर्णने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'महाभारतयुद्धवर्णन' नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण, बलराम, पाण्डवों तथा अन्य वृष्णिवंशियोंका स्वर्गगमन

श्रीमहादेव उवाच

एवं निपात्य भूभारं छलेन मुनिसत्तम।
स्वस्थानं पुनरागन्तुं मतिं चक्रे महीतलात्॥ १ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा समागत्य धरातलम्।
द्वारकापुरमाविश्य कृष्णं वचनमब्रवीत्॥ २ ॥

ब्रह्मोवाच

पृथिवीभारसंहृत्यै प्रार्थितास्माभिरीश्वरी।
देहं मानुषमाश्रित्य शम्भोरनुमतेन वै॥ ३ ॥
मायापुरुषरूपेण जातासि धरणीतले।
तच्च जातु कृतं सर्वं पृथिवीभारपातनम्॥ ४ ॥
परिपूर्णीकृतं चापि शम्भोर्यन्मनसेप्सितम्।
इदानीं पुनरागत्य स्वस्थानं पृथिवीतलात्॥ ५ ॥
स्वरूपं पुनराश्रित्य पालयास्मान्दिवौकसान्॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ब्रह्मन्ममापि तत्रेच्छा विद्यते यत्त्वयोच्यते।
अचिरेण समायास्ये भूयः स्वस्थानमुत्तमम्॥ ७ ॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमाश्वास्य धातारं विसृज्य जगदीश्वरी।
श्यामसुन्दररूपा सा द्वारकात्यागपूर्वकम्।
स्वर्गारोहणमिच्छन्ती प्रत्युवाचाथ मन्त्रिणः॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

यदुवंशसमुत्पन्ना मृताः सर्वे दिवं गताः।
प्रायशस्तु मुनेः शापादष्टावक्रस्य मन्त्रिणः॥ ९ ॥
स्वल्पास्तिष्ठन्ति वंशेऽस्मिञ्शूरा वृद्धावशेषिताः।
तेभ्यो न रोचते राज्यं न स्थितिश्च धरातले॥ १० ॥
तद्यास्यामि द्रुतं स्वर्गं निश्चितं मन्त्रिसत्तमाः।
दूतान्प्रेषयत क्षिप्रं हस्तिनायां युधिष्ठिरम्॥ ११ ॥
ब्रुवन्तु मे सखायं च किरीटिनमरिन्दमम्।
नकुलं सहदेवं च भीमसेनं महाबलम्।
स्वर्गारोहण उद्योगं मम ब्रह्मानुशासनात्॥ १२ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार छल-पूर्वक पृथ्वीका भार मिटाकर श्रीकृष्णने पृथ्वीतलसे पुनः अपने धाम आनेका मनमें निश्चय किया॥ १॥ इसी बीच पृथ्वीतलपर आकर ब्रह्माजीने द्वारकापुरीमें प्रवेश करके श्रीकृष्णसे यह बात कही—॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—मनुष्य-शरीर धारण कर पृथ्वीका भार नष्ट करनेके लिये हमलोगोंने भगवतीसे प्रार्थना की थी कि भगवान् शम्भुकी सहमतिसे आप मायापुरुषके रूपमें पृथ्वीतलपर आविर्भूत हुई हैं तथा आपने पृथ्वीका भार मिटानेका सब काम कर दिया और शम्भुने अपने मनमें जो अभिलाषा की थी, उसे आपने पूर्ण भी कर दिया। अब आप धरातलसे पुनः अपने धाम पहुँचकर और फिरसे अपना वास्तविक रूप धारणकर हम देवताओंका पालन कीजिये॥ ३—६॥

श्रीकृष्णजी बोले—ब्रह्मन्! मेरी भी वही इच्छा है, जिसे आप कह रहे हैं। मैं अपने उत्तम लोकको शीघ्र ही लौटूँगा॥ ७॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार ब्रह्माजीको आश्वासन देकर तथा उन्हें विदा करके श्यामसुन्दररूपिणी उन जगदीश्वरीने द्वारकाका त्याग करके स्वर्गारोहणकी कामना करते हुए अपने मन्त्रियोंसे कहा—॥ ८॥

श्रीकृष्णजी बोले—मन्त्रियो! यदुवंशमें उत्पन्न हुए प्रायः सभी लोग मुनि अष्टावक्रके शापके कारण मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्ग चले गये। अब इस वंशमें कुछ-कुछ वृद्ध वीर पुरुष अवशिष्ट रह गये हैं। उन्हें न तो राज्य अच्छा लग रहा है और न पृथ्वीतलपर रहना ही॥ ९-१०॥ अतः श्रेष्ठ मन्त्रिगण! अब मैं निश्चितरूपसे शीघ्र ही स्वर्गके लिये प्रस्थान करूँगा। आपलोग तत्काल हस्तिनापुरमें दूत भेज दीजिये और वे वहाँ जाकर युधिष्ठिर, शत्रुओंका दमन करनेवाले मेरे सखा अर्जुन, महाबली भीमसेन और नकुल एवं सहदेवसे ब्रह्माजीके परामर्शके अनुसार मेरे स्वर्गारोहणके निश्चयकी बात बता दें॥ ११-१२॥

श्रीमहादेव उवाच

इति कृष्णाज्ञया सर्वे मन्त्रिणो दीनमानसाः।
दूतान्प्रस्थापयामासुर्हस्तिनायां त्वरान्विताः॥ १३॥
ते गत्वाऽऽहुर्महाराजं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
तथान्यान्पाण्डवांश्चापि कृष्णं स्वर्गमनोद्यतम्॥ १४॥
तच्छ्रुत्वा दुःखितास्तेऽपि पाण्डवाः समुपागताः।
कृष्णानुगमने कृत्वा मतिं स्थिरतरां मुने॥ १५॥
द्रौपद्याद्याः स्त्रियश्चापि कृष्णानुगमने मतिम्।
निश्चित्य प्रययुः सर्वा द्वारकायां त्वरान्विताः॥ १६॥
अन्ये च बहवः श्रुत्वा कृष्णस्वर्गावरोहणम्।
कृष्णान्तिकमुपाजग्मुस्तस्यानुगमनेच्छया॥ १७॥
तानभ्यर्च्य यथान्यायं कृष्णः कमललोचनः।
उवाच सोऽश्रुपूर्णाक्षः स्निग्धगम्भीरया गिरा॥ १८॥

श्रीकृष्ण उवाच

युधिष्ठिर महाराज मित्रार्जुन वृकोदर।
युष्माभिः प्रतिपाल्या मे पौरजानपदाः सदा।
अहं स्वर्गं गमिष्यामि साम्प्रतं पृथिवीतलात्॥ १९॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा पाण्डवास्तेऽतिदुःखिताः।
प्राहुः कृष्णं महात्मानं साश्रुनेत्राः पृथक् पृथक्॥ २०॥

युधिष्ठिर उवाच

मां विद्धि निश्चितात्मानं तवानुगमने प्रभो।
न स्थास्यामि क्षणं कृष्ण त्वां विना पृथिवीतले॥ २१॥

भीम उवाच

अहं चानुगमिष्यामि त्वामेव यदुनन्दन।
न स्थास्यामि क्षितौ कृष्ण त्वां विनाहं कथञ्चन॥ २२॥

अर्जुन उवाच

त्वं मे प्राणस्त्वमात्मा च त्वं गतिस्त्वं मतिर्मम।
न त्वामृते क्षणं भूमौ स्थास्यामि यदुनन्दन॥ २३॥

नकुल उवाच

अहमप्यनुयास्यामि त्वामेव जगदीश्वर।
न त्वामृते क्षणं स्थातुं शक्नोमि पृथिवीतले॥ २४॥

श्रीमहादेवजी बोले— श्रीकृष्णकी इस आज्ञासे दुःखी मनवाले सभी मन्त्रियोंने शीघ्र ही दूतोंको हस्तिनापुर भेजा॥ १३॥ उन दूतोंने वहाँ जाकर धर्मपुत्र महाराज युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवोंसे 'श्रीकृष्ण स्वर्गारोहणके लिये उद्यत हैं'—ऐसा कहा॥ १४॥ मुने! वह बात सुनकर वे पाण्डव अत्यन्त दुःखी हुए और उनके अनुगमनका निश्चय करके वे भी उनके यहाँ आ गये॥ १५॥ द्रौपदी आदि सभी स्त्रियाँ भी कृष्णका अनुगमन करनेके लिये मनमें निश्चय करके शीघ्रतापूर्वक द्वारका पहुँच गयीं। कृष्णके स्वर्गारोहणकी बात सुनकर अन्य बहुत-से लोग भी कृष्णका अनुगमन करनेकी इच्छासे उनके पास आ गये॥ १६-१७॥ उनकी यथोचित पूजा करके कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्ण आँखोंमें आँसू भरकर मधुर तथा गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगे— ॥ १८॥

श्रीकृष्णजी बोले—महाराज युधिष्ठिर! मित्र अर्जुन! वृकोदर भीम! मेरे पुर तथा जनपदके निवासियोंका आप-लोग सर्वदा पालन कीजियेगा; क्योंकि अब मैं पृथ्वीलोकसे स्वर्ग चला जाऊँगा॥ १९॥

श्रीमहादेवजी बोले—उनका यह वचन सुनकर वे पाण्डव अत्यन्त दुःखित हुए और अश्रुपूरित नेत्रोंवाले पाण्डव महात्मा श्रीकृष्णसे अलग-अलग कहने लगे— ॥ २०॥

युधिष्ठिर बोले—प्रभो! मैंने तो आपका अनुगमन करनेके लिये मनमें निश्चय कर लिया है—आप ऐसा जान लें। श्रीकृष्ण! मैं इस पृथ्वीतलपर आपके बिना एक क्षण भी नहीं रहूँगा॥ २१॥

भीम बोले—यदुनन्दन! मैं भी आपका अनुगमन करूँगा। कृष्ण! मैं आपके बिना पृथ्वीपर किसी भी प्रकार नहीं रह सकता॥ २२॥

अर्जुन बोले—यदुनन्दन! आप मेरे प्राण हैं, आप मेरी आत्मा हैं, आप मेरी गति हैं तथा आप ही मेरी मति हैं। मैं आपके बिना इस भूमिपर क्षणभर भी नहीं रह सकता॥ २३॥

नकुल बोले—जगदीश्वर! मैं भी आपका अनुगमन करूँगा। मैं आपके बिना पृथ्वीतलपर एक क्षण भी नहीं रह सकता॥ २४॥

सहदेव उवाच

तवानुगमने स्वामिन्न स्थास्यामि भुवि क्वचित्।
त्वं मे प्राणो गतिः शक्ती रक्षकोऽपि जगत्त्रये॥ २५॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं निश्चयं ज्ञात्वा पाण्डवानां महात्मनाम्।
स्वांशजां द्रौपदीं कृष्णः स्मित्वा वचनमब्रवीत्॥ २६॥

श्रीकृष्ण उवाच

कृष्णे स्थास्यसि किं पृथ्व्यां किं वा स्वर्गं प्रयास्यसि।
यथा रुचिस्तथा ब्रूहि मा चिरं द्रुपदात्मजे॥ २७॥

द्रौपद्युवाच

अहं तवांशसम्भूता त्वमाद्या कालिका परा।
अहं त्वामनुयास्यामि जले जलमिव क्षणात्॥ २८॥

श्रीमहादेव उवाच

अथ रामः समागत्य स्वर्गारोहे समुद्यतम्।
कृष्णं त्रिजगतां नाथं रुदन्वचनमब्रवीत्॥ २९॥

श्रीराम उवाच

यदि पृथ्वीं परित्यज्य स्वर्गमेवाधियास्यसि।
अनुवृष्णिकुलोत्पन्नान्नीत्वा त्वं याहि मा चिरम्॥ ३०॥

एते वृष्णिकुलोत्पन्नाः सर्व एव महीभुजः।
न त्वामृते क्षितौ राजन्संस्थास्यन्ति कदाचन॥ ३१॥

श्रीमहादेव उवाच

ततः कौशेयवासास्तु कृष्णः कमललोचनः।
दत्त्वा धनानि विप्रेभ्यः स्वपुरान्निर्ययौ द्रुतम्॥ ३२॥

तत्पश्चान्निर्ययौ रामः सहितः सर्ववृष्णिभिः।
पाण्डवाश्चापि निर्याताः सामात्या वनितागणैः॥ ३३॥

सर्वे प्रापुः समुद्रस्य तीरे तेषां च पृष्ठतः।
अनेकदेशदेशीया जाता जानपदा मुने॥ ३४॥

एतस्मिन्नन्तरे नन्दी रथं रत्नपरिष्कृतम्।
सिंहवाहं समानीय तत्रायातोऽन्तरिक्षतः॥ ३५॥

ब्रह्मा च बहु साहस्रं रथानां मुनिसत्तम।
समानीयान्तरिक्षे तु संस्थितो दैवतैः सह॥ ३६॥

सहदेव बोले—स्वामिन्! आपका अनुगमन करनेका [मेरा निश्चय है] मैं इस पृथ्वीपर कहीं नहीं रहूँगा। आप मेरे प्राण, गति तथा शक्ति हैं और तीनों लोकोंमें मेरे रक्षक भी आप ही हैं॥ २५॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार महात्मा पाण्डवोंका यह निश्चय जानकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने अंशसे उत्पन्न द्रौपदीसे मुस्कराकर यह वचन कहने लगे—॥ २६॥

श्रीकृष्णजी बोले—कृष्णे! क्या तुम भूलोकमें रहोगी अथवा स्वर्ग चलोगी? द्रुपदात्मजे! जो तुम्हारी इच्छा हो, उसे मुझे शीघ्र बता दो॥ २७॥

द्रौपदीने कहा—मैं आपके अंशसे आविर्भूत हूँ और आप आद्या पराशक्ति कालिका हैं। जिस प्रकार जल क्षणभरमें जलमें मिल जाता है उसी भाँति मैं आपका अनुसरण करूँगी॥ २८॥

श्रीमहादेवजी बोले—इसके बाद श्रीबलरामने वहाँ आकर स्वर्गारोहणके लिये उद्यत त्रिलोकपति श्रीकृष्णसे रोते हुए कहा—॥ २९॥

श्रीबलरामजी बोले—यदि पृथ्वीलोक छोड़कर आप स्वर्ग जाना ही चाहते हैं तो वृष्णिवंशमें उत्पन्न सभी लोगोंको साथ लेकर अविलम्ब चल दीजिये। राजन्! वृष्णिवंशमें उत्पन्न ये सभी राजागण आपके बिना इस पृथ्वीपर कभी नहीं रहेंगे॥ ३०-३१॥

श्रीमहादेवजी बोले—तत्पश्चात् रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण विप्रोंको धन देकर शीघ्रतापूर्वक अपने पुरसे निकल पड़े। उनके पीछे-पीछे समस्त वृष्णियोंके साथ श्रीबलरामजी और अपने मन्त्रियों तथा स्त्रीसमुदायके साथ पाण्डव भी चल पड़े॥ ३२-३३॥ मुने! वे सभी समुद्रके किनारे पहुँचें और उनके पीछे-पीछे अनेक देशोंके जनपदोंके निवासी भी वहाँ पहुँच गये॥ ३४॥

इसी समय नन्दी सिंहके द्वारा खींचा जानेवाला रत्नजटित रथ लेकर अन्तरिक्षसे वहाँपर आ गये। मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजी भी कई हजार रथ लेकर देवताओंके साथ अन्तरिक्षमें विराजमान हो गये॥ ३५-३६॥

आयातं जलधेस्तीरं वीक्ष्य कृष्णं सुरोत्तमाः।
पुष्पवृष्टिं सुमहतीं प्रचक्रुर्हृष्टमानसाः॥ ३७॥
अवादयन्त विविधान्मृदङ्गपटहादिकान्।
घण्टाश्च शतशो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ३८॥

समुद्रके तटपर आये हुए कृष्णको देखकर श्रेष्ठ देवताओंने प्रसन्नचित्त होकर महान् पुष्प-वर्षा की। वे अनेक प्रकारके मृदङ्ग-नगाड़े और सैकड़ों घण्टे बजाने लगे एवं अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ३७-३८॥

एवं कृते महोत्साहे कृष्णः कमललोचनः।
सम्भूय सहसा काली सिंहवाहं महारथम्॥ ३९॥
आरुह्य त्रिदशश्रेष्ठैर्मुनीन्द्रैश्चातिसंस्तुता।
कैलासमगमच्छीघ्रं ब्रह्मादीनां च पश्यताम्॥ ४०॥

इस प्रकार महान् मङ्गलोत्सव किये जानेपर कमलसदृश नेत्रोंवाले कृष्णने अचानक कालीका रूप धारण कर सिंहके द्वारा खींचे जानेवाले महान् रथपर आरूढ़ होकर और श्रेष्ठ देवताओं तथा मुनीश्वरोंसे स्तुत होकर ब्रह्मा आदिके देखते-देखते शीघ्र ही कैलासके लिये प्रस्थान किया॥ ३९-४०॥

द्रौपदी तु विलीनाऽभूत्तस्यामेव महामते।
स्पृष्ट्वा जलं समुद्रस्य सर्वलोकस्य पश्यतः॥ ४१॥

महामते! समुद्रके जलका स्पर्श करके द्रौपदी सभी लोगोंके देखते-देखते उन्हीं कालीके विग्रहमें समाविष्ट हो गयीं॥ ४१॥

ततो युधिष्ठिरो राजा साक्षाद्धर्ममयः प्रभुः।
विचित्रं रथमारुह्य प्राप स्वर्गं द्रुतं शुभम्॥ ४२॥

तदनन्तर साक्षात् धर्मावतार तथा ऐश्वर्यसम्पन्न राजा युधिष्ठिर अद्भुत रथपर आरूढ़ होकर शीघ्रतापूर्वक दिव्य स्वर्गलोक चले गये॥ ४२॥

रामार्जुनौ च संस्पृश्य जलधिं मुनिसत्तम।
त्यक्त्वा देहं समाश्रित्य रूपं नवघनप्रभम्॥ ४३॥
चतुर्भुजं लसत्पद्मशङ्खचक्रगदाधरम्।
आरुह्य गरुडं तूर्णं वैकुण्ठं प्रापतुः स्वयम्॥ ४४॥

मुनिश्रेष्ठ! श्रीबलराम तथा अर्जुनने समुद्रका स्पर्श करके अपनी देहका त्याग कर दिया और नवीन मेघके समान तथा शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्मसे सुशोभित चतुर्भुजरूप धारण करके वे गरुडपर सवार होकर शीघ्र ही साक्षात् वैकुण्ठको प्राप्त हुए॥ ४३-४४॥

भीमाद्याश्चापि सन्त्यज्य देहं तस्मिन्महाम्बुधौ।
प्रापुः स्वर्गे पुरं तत्तु वृष्णयश्च तथापरे॥ ४५॥

भीमसेन आदि पाण्डव तथा अन्य वृष्णिवंशी लोगोंने भी उस महासागरमें अपना शरीर त्यागकर स्वर्गमें स्थान प्राप्त किया॥ ४५॥

एवं गतेषु सर्वेषु रुक्मिण्याद्याश्च योषितः।
शाम्भवं देहमाश्रित्य ययुः स्वस्थानमुत्तमम्॥ ४६॥

इस प्रकार सबके स्वर्ग चले जानेपर रुक्मिणी आदि आठ पटरानियाँ शिव-विग्रह धारण कर अपने उत्तम लोकको चली गयीं॥ ४६॥

अपरा योषितश्चापि श्रीकृष्णस्य महामुने।
देहांस्त्यक्त्वा बभूवुश्च पूर्ववद्भैरवाः क्षणात्॥ ४७॥

महामुने! श्रीकृष्णकी अन्य भार्याएँ भी अपने शरीरोंका त्याग करके क्षणभरमें पूर्वकी भाँति भैरवरूप हो गयीं॥ ४७॥

श्रुत्वा कृष्णागमं तत्र श्रीदामः सत्यमन्वयः।
जयाभूद्वसुदामस्तु विजया समभूत्तथा॥ ४८॥

कृष्णके कालीरूपकी प्राप्ति सुनकर सत्यका अनुसरण करते हुए श्रीदाम जयारूपमें तथा वसुदाम विजयारूपमें हो गये॥ ४८॥

एवं समभवद्देवी श्यामसुन्दररूपिणी।
पृथ्वीभारापहाराय शम्भोरिच्छावशेन तु॥ ४९॥
पुंरूपेण जगन्माता लीलया धरणीतले।
हत्वा च पृथिवीभाराञ्छलेनैव महामते॥ ५०॥
भूयः स्वरूपमाश्रित्य स्वस्थानं समुपागमत्।

इस प्रकार श्यामसुन्दररूपवाली जगन्माता भगवती पृथ्वीका भार मिटानेके लिये भगवान् शम्भुकी इच्छाके वशीभूत होकर पृथ्वीतलपर लीलापूर्वक पुरुषरूपमें आविर्भूत हुईं और महामते! अपनी मायासे पृथ्वीका भार हरण करके पुनः अपना वास्तविक रूप धारण कर अपने लोकको चली गयीं॥ ४९-५०½॥

कल्पान्तरे तु भूपृष्ठे द्वापरान्ते महामुने॥ ५१॥
विष्णुः श्रीकृष्णरूपेण पूर्णांशेन जगत्प्रभुः।
शम्भोर्वरप्रदानेन सम्भविष्यति लीलया।
निहनिष्यति भूभारमेवमेव महामते॥ ५२॥
कृष्णावतारचरितं जगदम्बिकायाः
शृण्वन्ति ये भुवि पठन्ति च भक्तियुक्ताः।
ते प्राप्य सौख्यमतुलं परतश्च देव्याः
सम्प्राप्नुवन्ति पदवीममरैरलभ्याम्॥ ५३॥

महामुने! जगत्प्रभु श्रीविष्णु कल्पान्तरमें द्वापरयुगके अन्तमें पृथ्वीतलपर अपने पूर्ण अंशसे श्रीकृष्णके रूपमें भगवान् शिवके वरप्रदानसे अवतीर्ण होंगे और महामते! वे अपनी लीलासे इसी प्रकार पृथ्वीके भारका हरण करेंगे॥ ५१-५२॥ पृथ्वीलोकमें जो लोग जगदम्बिकाके कृष्णावतारका चरित्र सुनते हैं और पढ़ते हैं, वे इस लोकमें अतुलनीय सुख प्राप्त करके अन्तमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ देवीपद प्राप्त करते हैं॥ ५३॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे स्वर्गयात्रागमने अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'स्वर्गयात्रागमन' नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

महाकालीके दिव्य लोकका वर्णन

श्रीनारद उवाच

देवदेव जगन्नाथ कृपामय जगत्प्रभो।
भूयस्ते श्रोतुमिच्छामि देव्याख्यानमनुत्तमम्॥ १॥
मूर्तिर्या भगवत्यास्तु कैलासेऽपि शिवान्तिके।
तयोस्तु खलु दुर्गायाः सूक्ष्मं रूपं तथाऽऽलयम्॥ २॥
शारदीया महापूजा प्रसादात्त्वन्मुखाम्बुजात्।
इदानीं ब्रूहि काल्याश्च सूक्ष्मरूपं तथाऽऽलयम्॥ ३॥

श्रीमहादेव उवाच

दुर्गायाः परमं स्थानं यन्मया ते समीरितम्।
दुर्गम्यं देवगन्धर्वयक्षकिन्नररक्षसाम्॥ ४॥
तत्पार्श्वे तु सुदुर्गम्यं ब्रह्माद्यैस्त्रिदशेश्वरैः।
सुगुप्तं परमं रम्यं स्थानमस्ति सुशोभनम्॥ ५॥
वेष्टितं परितश्चारु सुधामयमहाब्धिना।
अनर्घ्यरत्नसम्भारघटितं ज्वलनप्रभम्॥ ६॥
तन्मध्येऽस्ति पुरं रम्यं रत्नप्राकारतोरणम्।
चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु मुक्ताजालातिभूषितम्।
चित्रध्वजपताकाभिरतीवसमलंकृतम्॥ ७॥
विचित्रखट्वाङ्गकरा रक्तनेत्राः सहस्रशः।
रक्षन्ति भैरवाः सर्वे तानि द्वाराणि सर्वदा॥ ८॥

श्रीनारदजी बोले—देवदेव! जगन्नाथ! कृपामय! जगत्प्रभो! मैं पुनः आपसे भगवतीका उत्कृष्ट आख्यान सुनना चाहता हूँ॥ १॥ कैलासपर्वतपर शिवसांनिध्यमें भगवतीकी जो मूर्तियाँ हैं, उनमें भगवती दुर्गाका सूक्ष्मस्वरूप, दिव्यलोक और शारदीय पूजाका विधान आपकी कृपासे आपके मुखारविन्दसे [मैंने सुना], अब कृपापूर्वक भगवती कालीके सूक्ष्मरूप तथा उनके दिव्यलोकके विषयमें मुझे बताइये॥ २-३॥

श्रीमहादेवजी बोले—[मुने!] मैंने आपसे दुर्गाके जिस परम लोकका वर्णन किया था, वह देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा राक्षसोंके लिये भी दुर्गम है। उसके पास अत्यन्त गुप्त, अत्यन्त रम्य, अति सुन्दर तथा ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंके लिये दुर्गम धाम है॥ ४-५॥ वह स्थान चारों ओरसे आकर्षक अमृतमय महासागरसे घिरा हुआ है, बहुमूल्य रत्न-सम्पदाओंसे सुसम्पन्न है तथा अग्निके समान प्रभावाला है॥ ६॥ उसके मध्यमें रत्ननिर्मित चहारदीवारीसे युक्त, चारों दिशाओंमें चार द्वारोंवाला, मोतियोंकी जालियोंसे अत्यन्त सुशोभित और चित्रमय ध्वजा-पताकाओंसे अत्यन्त अलंकृत एक सुरम्य पुर है। हाथोंमें विचित्र खट्वाङ्ग धारण किये हुए, लाल नेत्रोंवाले, हजारों भैरव उन द्वारोंकी सदा रखवाली करते रहते हैं॥ ७-८॥

तस्या आज्ञां विना यानि समुल्लङ्घ्य सुरासुराः।
न शक्नुवन्ति वै गन्तुं ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः॥ ९ ॥
तन्मध्ये मन्दिरं रम्यं नानारत्नविनिर्मितम्।
मणिस्तम्भशतैर्युक्तं सुवर्णेनातिवेष्टितम्॥ १० ॥
तन्मध्येऽयुतसिंहाढ्यं रत्नसिंहासनं महत्।
तस्योपरि प्रविन्यस्तशवोपरि महेश्वरी॥ ११ ॥
महाविद्या महाकाली सदा तिष्ठति नारद।
सर्वेषां हृत्सरोजस्था सैव मायामयी शुभा॥ १२ ॥
ब्रह्माण्डकोटिकोटीनां सृष्टिस्थितिविनाशिनी।
एकैव सा महादेवी स्वेच्छया ब्रह्मरूपिणी॥ १३ ॥
विजयादिचतुःषष्टियोगिन्यः परिचारिकाः।
पुरकर्माणि कुर्वन्ति सदा सावहिता मुने॥ १४ ॥
तस्यास्तु दक्षिणे भागे महाकालः सदाशिवः।
तेन सार्धं महाकाली हृष्टा संरमते सदा॥ १५ ॥
एवमन्तःपुरं तस्या भैरवैर्बहिरन्वितम्।
अत्याश्चर्यतमं सौम्यं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम्॥ १६ ॥
ब्रह्मेशविष्णुभिः सार्धं समागत्य महामते।
तस्या दर्शनमात्रेण सुराधीशः पुरन्दरः।
मुक्तोऽभवद्ब्रह्महत्याजनिताद्घोरकिल्बिषात् ॥ १७ ॥
तदैव ददृशुस्तत्र ब्रह्मविष्णुपुरन्दराः।
प्रसादाद्देवदेवस्य कालीं परमदेवताम्॥ १८ ॥
तद्बहिर्वर्णये वत्स शृणुष्वावहितो मुने।
सर्वतो वेष्टितं रत्नप्राकारैर्बहिरङ्गनम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्द्वारं रत्नतोरणभूषितम्॥ १९ ॥
तानि रक्षन्त्यविरतं सर्वे तु गणनायकाः।
तदन्तश्चोपयोगिन्यः कामाख्याद्या महामते॥ २० ॥
तद्बहिर्दर्शनाकाङ्क्षिब्रह्माणः कतिकोटयः।
विष्णवश्च तथाऽसंख्या वर्तन्ते दर्शनोत्सुकाः॥ २१ ॥
स्थिता ध्यानसमासक्ता नानाब्रह्माण्डवासिनः।

भगवती दुर्गाकी आज्ञाके बिना देवता, राक्षस तथा ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी उन द्वारोंको लाँघकर भीतर नहीं जा सकते हैं॥ ९॥ उस पुरके मध्यमें अनेकविध रत्नोंसे निर्मित, मणियोंके सैकड़ों खम्भोंसे सुशोभित तथा चारों ओरसे स्वर्णसे मढ़ा हुआ एक सुन्दर मन्दिर है। उस मन्दिरके मध्यमें दस हजार सिंहोंसे सुशोभित एक विशाल रत्नसिंहासन है। देवर्षि नारद! उसके ऊपर रखे हुए शवके ऊपर महाविद्यास्वरूपिणी महाकाली महेश्वरी सदा विराजमान रहती हैं॥ १०-११½ ॥ सभी प्राणियोंके हृदय-कमलमें विराजमान रहनेवाली, कल्याणकारिणी, मायास्वरूपिणी तथा ब्रह्मरूपा एकमात्र वे महादेवी ही अपनी इच्छासे करोड़ों-करोड़ ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली हैं॥ १२-१३ ॥ मुने! विजया आदि चौंसठ योगिनियाँ सावधान होकर परिचारिकाके रूपमें सदा उस पुरके काम-काज करती रहती हैं॥ १४॥ उन भगवतीके दाहिने भागमें महाकाल सदाशिव विराजमान हैं। जिनके साथ प्रसन्न होकर महाकाली सदा विहार करती रहती हैं॥ १५ ॥

इस प्रकार उन महाकालीका अन्तःपुर बाहरसे भैरवोंके द्वारा रक्षित, अत्यन्त आश्चर्यमय, सुन्दर तथा ब्रह्मा आदिके लिये भी परम दुर्लभ है॥ १६ ॥ महामते! ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशके साथ यहाँ आकर देवाधीश इन्द्र महाकालीके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्याजनित घोर पापसे मुक्त हो गये थे। उस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रने देवाधिदेव सदाशिवकी कृपासे ही वहाँपर परम देवता भगवती कालीका दर्शन प्राप्त किया था॥ १७-१८ ॥ वत्स! मुने! अब मैं उसके बाहरका वर्णन कर रहा हूँ; आप सावधान होकर सुनिये। रत्ननिर्मित परकोटोंसे चारों ओरसे घिरा हुआ बाहरकी ओर एक आँगन है। उसमें रत्नके तोरणों (बन्दनवारों)-से सुशोभित चारों दिशाओंमें चार द्वार हैं। समस्त गणनायक उन द्वारोंकी निरन्तर रक्षा करते रहते हैं और महामते! उनके भीतर कामाख्या आदि उपयोगिनियाँ रक्षकके रूपमें स्थित रहती हैं॥ १९-२० ॥ उसके बाहर अनेक ब्रह्माण्डोंमें निवास करनेवाले कई करोड़ ब्रह्मा तथा असंख्य विष्णु भगवतीके दर्शनकी उत्कट अभिलाषाके साथ उनमें ध्यान-परायण होकर सदा उपस्थित रहते हैं॥ २१½ ॥

तद्बहिस्तु चतुर्द्वारं नानारत्नपरिष्कृतम्॥ २२॥

रक्षन्ति कोटिशस्तानि गणा द्वाराणि सर्वदा।
तद्बहिः कोटिशः सन्ति इन्द्राद्यास्त्रिदशेश्वराः॥ २३॥

ध्याननिष्ठाश्चिरेणापि सकृद्दर्शनकाङ्क्षिणः॥ २४॥

एवं बहुविधं द्वारं नानारत्नपरिष्कृतम्।
रक्षन्ति कोटिशः सर्वे देव्याज्ञापरिपालकाः॥ २५॥

पारिजातवनं रम्यमुत्तरे परिकीर्तितम्।
प्रफुल्लं कुसुमाकीर्णं चित्रभ्रमरसंकुलम्॥ २६॥

वसन्तः सर्वदा तत्र वायुर्वाति शनैः शनैः।
विचित्रपक्षिरूपेण ब्रह्मविष्णुमुखाः सुराः॥ २७॥

गायन्ति चरितं काल्यास्तस्मिन्मधुरनिःस्वनैः।
पूर्वस्थं मुनिशार्दूल रम्यं चारुतरं सरः॥ २८॥

स्वर्णपङ्कजकह्लारकुमुदैरतिशोभितम्।
गुञ्जितभ्रमरश्रेणीपक्षवातप्रकम्पितैः।
चम्पकाशोकपुष्पैश्च कूलं तस्य मनोहरम्॥ २९॥

विचित्रमणिसोपानैः परितः परिशोभितम्।
एवं तस्याः पुरं रम्यं वाचातीतं महामते॥ ३०॥

तथान्यासां च विद्यानां नवानामपि तत्र वै।
एवं प्रत्येकतो रम्यं पुरमस्ति पृथक् पृथक्॥ ३१॥

तासां च दक्षिणे भागे नानारूपः सदाशिवः।
आस्ते पृथक् पृथक् तेन रमते सा पृथक् पृथक्॥ ३२॥

उसके बाहर अनेक प्रकारके रत्नोंसे विनिर्मित चार द्वार हैं। करोड़ों गण उन द्वारोंकी सदा रखवाली करते रहते हैं। उन द्वारोंके बाहर इन्द्र आदि करोड़ों देवेश्वर केवल एक बार भगवतीके दर्शनकी आकाङ्क्षा लेकर उनके ध्यानमें तत्पर रहते हुए बहुत देरतक प्रतीक्षारत रहते हैं॥ २२—२४॥ इसी प्रकार भगवतीकी आज्ञाका पालन करनेवाले करोड़ों सेवक अनेकविध रत्नोंसे परिष्कृत अन्य बहुत-से द्वारोंकी रक्षा करते रहते हैं॥ २५॥ उस पुरके उत्तरमें विचित्र भ्रमरोंसे युक्त तथा खिले हुए पुष्पोंसे सुशोभित अत्यन्त रमणीय पारिजातवन प्रसिद्ध है। उस वनमें सर्वदा वसन्त छाया रहता है और मन्द-मन्द हवा बहती रहती है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवता विचित्र पक्षियोंका रूप धारण कर महाकालीके चरितका मधुर स्वरोंमें गान करते रहते हैं॥ २६-२७½॥

मुनिश्रेष्ठ! उस पुरके पूर्वभागमें अत्यन्त सुन्दर तथा सुरम्य सरोवर स्थित है। वह सरोवर स्वर्णिम कमल, कह्लार तथा कुमुदके पुष्पोंसे अत्यन्त शोभित रहता है। गुञ्जार करते हुए भ्रमरसमुदायके पंखोंसे प्रवाहित वायुसे हिलते हुए चम्पक तथा अशोक-पुष्पोंसे उस सरोवरका तट अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता है। वह सरोवर विविध वर्णोंकी मणियोंसे निर्मित सोपानोंसे चारों ओरसे मण्डित है॥ २८-२९½॥

महामते! इस प्रकार भगवतीका वह सुरम्य पुर वर्णनसे परे है। इसी प्रकार वहाँपर अन्य नौ [महा] विद्याओंमें प्रत्येकका अलग-अलग सुन्दर पुर है और उनके भी दाहिने भागमें नानाविध रूप धारण किये भगवान् सदाशिव पृथक्-पृथक् विराजमान हैं। उन सदाशिवके साथ वे [महा] विद्याएँ पृथक्-पृथक् विहार करती रहती हैं॥ ३०—३२॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीब्रह्ममयीमहाकालीस्थानवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'श्रीब्रह्ममयीमहाकालीस्थानवर्णन' नामक उनसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५९॥

साठवाँ अध्याय

वृत्रासुरके वधके लिये देवराज इन्द्रका दधीचिसे अस्थियाँ माँगना, दधीचिका प्राण-त्याग, इन्द्रद्वारा दधीचिकी अस्थियोंसे वज्र बनाकर वृत्रासुरका संहार

श्रीनारद उवाच

देवदेव महेशान विस्तरेण मम प्रभो।
इन्द्रस्य ब्रह्महत्याऽभूद्यथा स च महामतिः॥ १॥

ब्रह्माद्याश्चागमन्देवा महाकालीदिदृक्षवः।
देवदेवप्रसादेन यथा ब्रह्मादयश्च ते॥ २॥

व्यतीत्य सर्वलोकान्वै तस्या लोकमुपागमन्।
यथा च तत्पुरद्वारं भैरवैरभिरक्षितम्॥ ३॥

व्यतीत्यान्तःपुरगता यथा देवीं व्यलोकयन्।
ददृशुर्यादृशीं मूर्तिमेतदाचक्ष्व साम्प्रतम्॥ ४॥

श्रीमहादेव उवाच

ब्रह्मदत्तवरोद्भूतः पूर्वं वृत्रो महासुरः।
निर्जित्य सकलान्देवान्स्वयमिन्द्रो बभूव ह॥ ५॥

चन्द्रसूर्याग्निमरुतां कुबेरस्य यमस्य च।
अपहृत्याधिपत्यं स महाबलपराक्रमः।
ऐकाधिपत्यं चक्रे वै त्रिषु लोकेषु नारद॥ ६॥

ब्रह्मणा कल्पितो मृत्युर्दधीचेरस्थिनिर्मितात्।
महास्त्राद्देवराजस्य हस्तात्तस्य दुरात्मनः॥ ७॥

बृहस्पत्युपदेशेन देवराजः पुरन्दरः।
सम्प्रार्थ्य पद्मयोनिं तज्ज्ञातवान्मुनिसत्तम॥ ८॥

ततो दधीचेर्निकटं स्वयमिन्द्रः समभ्यगात्।
तदस्थिभिक्षामन्विच्छञ्जगतां त्राणहेतवे॥ ९॥

श्रीनारदजी बोले—देवदेव! महेश्वर! प्रभो! जिस तरहसे इन्द्रको ब्रह्महत्याका पाप लगा, जिस तरहसे वे महामति इन्द्र तथा ब्रह्मा आदि देवता महाकालीके दर्शनकी इच्छासे गये, जिस प्रकारसे वे ब्रह्मा आदि देवगण देवाधिदेव शिवकी कृपासे सभी लोकोंको पार करके उन भगवतीके लोकमें पहुँचे और वे भैरवोंद्वारा रक्षित उनके पुरके द्वारोंको पार कर अन्तःपुरमें गये तथा जिस तरह उन्होंने देवीको देखा एवं उन भगवतीकी जैसी मूर्तिका दर्शन किया; यह सब अब आप मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १—४॥

श्रीमहादेवजी बोले—पूर्वकालमें ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये वरसे उत्पन्न महान् असुर वृत्र सभी देवताओंको जीतकर स्वयं इन्द्र हो गया। नारद! महान् बल तथा पराक्रमवाले उस वृत्रासुरने चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, मरुद्गण, कुबेर तथा यमके अधिकारोंको छीनकर तीनों लोकोंपर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था॥ ५-६॥ ब्रह्माजीने दधीचिकी अस्थिसे बनाये गये महास्त्रके द्वारा देवराज इन्द्रके हाथसे उस दुरात्माकी मृत्यु सुनिश्चित की थी। मुनिवर! देवराज इन्द्रने बृहस्पतिके निर्देशानुसार पद्मयोनि ब्रह्माजीसे प्रार्थना करके इस रहस्यको जाना। तत्पश्चात् इन्द्र मुनि दधीचिके पास स्वयं गये और लोकोंकी रक्षाके निमित्त भिक्षाके रूपमें उनकी अस्थिकी याचना की॥ ७—९॥



स प्रणम्य महात्मानं दधीचिं मुनिसत्तमम्।
कृताञ्जलिपुटः प्राह दधीचिः स्वागतं मुने॥ १०॥

ततो मुनिरपि ज्ञात्वा देवराजं समागतम्।
उत्थाय आसनं दत्त्वा पप्रच्छ कुशलादिकम्॥ ११॥

किमर्थमत्रागमनं देवराज वदस्व तत्।
इत्युक्तो मुनिना प्राह देवराजो मुनिं मुने॥ १२॥

अस्माकं यादृशं वृत्तं युष्माकं किमगोचरम्।
ब्रह्मदत्तवरोद्भूतो वृत्रो नाम महासुरः।
विजित्यास्मांल्लोकपालान् त्रिलोकेशोऽभवत्स्वयम्॥ १३॥

वयं तु तद्भयात्सर्वे स्वर्गं त्यक्त्वा दिवौकसः।
मनुष्या इव मर्त्येऽस्मिन्वसामो मुनिपुङ्गव॥ १४॥

न यज्ञभागं प्राप्नोमि नार्चयन्ति च केचन।
एवं दुर्गतिमापन्नः किमन्यत्कथयामि ते॥ १५॥

निस्तारयसि चेद्देवांस्त्वमेव कृपया मुने।
दुःखार्णवनिमग्नानां निष्कृतिस्तु त्वमेव हि॥ १६॥

दधीचिरुवाच

जानामि सर्वं यद्भूतमपरं यद्भविष्यति।
विज्ञानचक्षुषैरिन्द्र किं करोमि वदस्व तत्॥ १७॥

इन्द्र उवाच

कथयिष्यामि किं ब्रह्मन्भयं मे जायते भृशम्।
यदर्थं त्वामनुप्राप्तस्तच्छृणुष्व महामुने॥ १८॥

न तस्य मृत्युर्विधिना कल्पितोऽन्यप्रकारतः।
त्वदस्थिनिर्मितास्त्रेभ्यस्तेनाहमागतोऽस्मि भोः॥ १९॥

एतत्ते कथितं सर्वं यदर्थमहमागतः।
इदानीं मुनिशार्दूल यथायोग्यं विवेचय॥ २०॥

मुने! उन इन्द्रने दोनों हाथ जोड़कर मुनिश्रेष्ठ महात्मा दधीचिको प्रणाम किया और दधीचिने कहा—'आपका स्वागत है'॥ १०॥ तत्पश्चात् मुनि दधीचि भी देवराज इन्द्रको आया हुआ जानकर अपने स्थानसे उठ खड़े हुए और उन्होंने आसन देकर कुशल आदि पूछा तथा कहा—देवराज! आपका यहाँ आगमन किसलिये हुआ, उसे मुझे बतलाइये॥ ११$\frac{1}{2}$॥ दधीचि मुनिके ऐसा कहनेपर देवराज इन्द्रने उनसे कहा—मुने! हमलोगोंका जैसा समाचार है, वह क्या आपको ज्ञात नहीं है?॥ १२$\frac{1}{2}$॥

ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये वरदानसे उत्पन्न वृत्र नामक महान् असुर हम लोकपालोंको जीतकर स्वयं त्रिलोकेश हो गया है। मुनिश्रेष्ठ! हम सभी देवतागण उसके भयसे स्वर्ग छोड़कर मनुष्योंकी भाँति इस मृत्युलोकमें निवास कर रहे हैं॥ १३-१४॥ मैं न तो यज्ञभाग प्राप्त कर पा रहा हूँ और न कोई हमारी पूजा ही कर रहे हैं। इस प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त हुआ मैं आपसे और कुछ क्या कहूँ। मुने! आप ही कृपा करके यदि देवताओंका उद्धार करें, तभी दुःखरूपी सागरमें निमग्न हम देवताओंका उद्धार हो सकेगा, आप ही हमारे उद्धारक हैं॥ १५-१६॥

दधीचि बोले—जो हो चुका है और जो आगे होगा, वह सब मैं अपने विशिष्ट विज्ञानरूपी नेत्रोंसे जान रहा हूँ। इन्द्र! मुझे क्या करना है, वह मुझे बताइये॥ १७॥

इन्द्र बोले—ब्रह्मन्! मैं क्या कहूँ! मुझे बड़ा भय लग रहा है। महामुने! मैं जिसके लिये आपके पास आया हूँ, उसे सुनिये॥ १८॥ ब्रह्माजीने उस वृत्रासुरकी मृत्यु किसी अन्य प्रकारसे निश्चित नहीं की है, अपितु आपकी अस्थियोंसे बनाये गये अस्त्रोंसे ही उसकी मृत्यु सम्भव है। [प्रभो!] इसीलिये मैं आपके पास आया हूँ। मुनिश्रेष्ठ! जिसके लिये मेरा आगमन हुआ है। वह सब मैंने आपसे बता दिया। अब जैसा उचित हो, वैसा आप विचार करें॥ १९-२०॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तो देवराजेन मुनीन्द्रः समचिन्तयत्।
किमेनं विमुखं कुर्यां किं वा देहं त्यजाम्यहम्॥ २१॥
एवं द्वैधमना भूत्वा किञ्चित्कालं महामतिः।
देहत्यागं विनिश्चित्य देवराजमुवाच ह॥ २२॥

दधीचिरुवाच

सम्भ्रष्टराज्या यदि देवसंघा
निस्तारमायान्ति महासुरेन्द्रात्।
मदस्थिभिस्तत्खलु देवराज
त्यक्ष्यामि योगेन शरीरमेतत्॥ २३॥
धन्यं शरीरं खलु तस्य देहिनो
यस्य व्ययः स्यात्परसौख्यहेतवे।
अनित्यमेतत्स हि धर्ममेव
नित्यस्तदेनं परिसन्त्यजामि॥ २४॥
इत्येवमुक्त्वा स मुनिस्तदा मुने
जाज्वल्यमानं निजतेजसा ह्यलम्।
योगेन सन्त्यज्य शरीरमेत-
दवाप मोक्षं सुरराजसम्मुखे॥ २५॥
इन्द्रस्तदालोक्य विनिःश्वसन्मुहु-
र्धिगस्तु लोकान्विषयैषिणोऽस्मान्।
आक्षिप्य सम्भूय विषण्णमानस-
स्तस्थौ स कालं कियदेव तत्र सः॥ २६॥
ततस्तदस्थीन्यवगृह्य सादरो
महासुरेन्द्रस्य वधार्थमेव सः।
नानाविधास्त्राणि विनिर्मिमे मुने
तैरस्थिभिर्देवगणेन मन्त्रयन्॥ २७॥
ततः सुरैः सार्धममोघविक्रमो
महासुरं देवदुरासदं ययौ।
महोग्रधन्वा सुरवृन्दनायकः
समाह्वयच्चापि महाहवे रिपुम्॥ २८॥
ततः प्रवृत्ते तु मुने महाहवे
दैत्येश्वरं तं निजघान वासवः।
तदस्थिसंनिर्मिततीव्रमार्गणै-
र्वज्रेण चक्रेण महोज्ज्वलेन च॥ २९॥

श्रीमहादेवजी बोले—देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर मुनीश्वर दधीचि सोचने लगे कि क्या मैं इन इन्द्रको निराश करके लौटा दूँ अथवा अपनी देहका त्याग करूँ। इस प्रकार कुछ समय द्विविधामें पड़े हुए महामति दधीचिने अन्तमें देह-त्यागका निश्चय कर देवराज इन्द्रसे कहा—॥ २१-२२॥

दधीचि बोले—देवराज! यदि राज्यसे च्युत देवतागण मेरी अस्थियोंके द्वारा महान् असुरराज वृत्रसे छुटकारा पाते हैं तो मैं अवश्य ही योगबलसे अपना यह शरीर त्याग दूँगा॥ २३॥ उसी प्राणीका शरीर धन्य है, जिसका उपयोग दूसरेके सुखके लिये हो। यह शरीर तो अनित्य है और धर्म ही नित्य है, अतः मैं इस शरीरका त्याग कर रहा हूँ॥ २४॥

मुने! ऐसा कहकर उन दधीचिमुनिने योगके द्वारा अपने तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान अपने शरीरको देवराज इन्द्रके सामने ही त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया॥ २५॥

यह देखकर देवराज इन्द्र बार-बार दीर्घ श्वास लेते हुए 'लौकिक विषयोंकी कामना करनेवाले हम देवताओंको धिक्कार है' इस प्रकार अपनी निन्दा करके विषादपूर्ण मनसे कुछ समयतक वहींपर खड़े रहे॥ २६॥ मुने! तत्पश्चात् उनकी अस्थियोंको आदरपूर्वक ग्रहण कर उन देवराज इन्द्रने देवगणोंसे मन्त्रणा करके उस महान् असुरराज वृत्रासुरके वधके लिये उन अस्थियोंसे अनेक प्रकारके अस्त्र बनाये॥ २७॥

तदनन्तर सफल पराक्रमवाले, प्रचण्ड धनुर्धर, देवगणोंके नायक इन्द्र देवताओंके लिये दुर्जेय उस महान् असुर वृत्रके पास देवताओंके साथ गये और उन्होंने उस शत्रुको महायुद्धके लिये ललकारा॥ २८॥ मुने! तत्पश्चात् महान् युद्ध छिड़ जानेपर देवेन्द्रने उन अस्थियोंसे निर्मित बाणों, वज्र तथा अति प्रज्वलित चक्रसे उस दैत्यपति वृत्रासुरको मार डाला॥ २९॥

एवं सुरेन्द्रस्य बभूव पातकं
तद्ब्रह्महत्याकृतमेव नारद।
शृणु प्रवक्ष्यामि च साम्प्रतं यथा
ददर्श कालीं जगदेकमातरम्॥ ३०॥

नारद! इस प्रकार इन्द्रको अपने द्वारा की गयी उस ब्रह्महत्याका पाप लगा। जिस प्रकार उन इन्द्रने जगत्‌की एकमात्र जननी महाकालीका दर्शन किया, अब मैं उस प्रसंगका वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यानसे सुनिये॥ ३०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे दधीचिप्राणत्यागे देवराजस्य ब्रह्महत्यावर्णने षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'दधीचिप्राणत्यागमें देवराज-ब्रह्महत्यावर्णन' नामक साठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ अध्याय

इन्द्रका ब्रह्महत्याके पापसे ग्रस्त होना, महर्षि गौतमकी सम्मतिसे इन्द्रका ब्रह्मलोक जाना तथा इन्द्र और ब्रह्माका वैकुण्ठलोक जाना

श्रीमहादेव उवाच

निहत्य समरे दैत्यं वृत्रं समरदुर्जयम्।
ऐरावतं समारुह्य सर्वैर्देवगणैर्वृतः॥ १॥

ब्रह्मर्षिभिस्तूयमानो महोत्सवसमुत्सुकः।
प्रविवेश पुरं स्वीयं सहस्राक्षो महामते॥ २॥

उपविश्य सभायां स देवर्षीन्देवपुङ्गवान्।
पप्रच्छावनतो भूत्वा स्निग्धगम्भीरया गिरा॥ ३॥

इन्द्र उवाच

दधीचिर्मुनिशार्दूलो मम वाक्यानुसारतः।
अस्थीनि मह्यं दातुं वै देहं त्यक्त्वा दिवं गतः॥ ४॥

तन्मे जाता ब्रह्महत्या ततो मुक्तः कथञ्चन।
भवामि ब्रूत मे विप्राः किं करिष्यामि साम्प्रतम्॥ ५॥

ऋषय ऊचुः

जीवन्मुक्तो मुनिश्रेष्ठः स्वेच्छया स दिवं गतः।
सम्पूर्णा ब्रह्महत्या ते न जाता वृत्रसूदन॥ ६॥

अश्वमेधं महायज्ञं महापातकनाशनम्।
कुरुष्व देवराज त्वं तत्पापशमनाय हि॥ ७॥

बृहस्पतिरपि श्रुत्वा तथेत्याह महामतिः।
ऊचुर्देवा अपि तथा ततः शान्तमना हरिः॥ ८॥

विवेशान्तःपुरं देवाः स्वं स्वं स्थानं ततो ययुः॥ ९॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामते! युद्धमें दुर्धर्ष वृत्रासुरका संहार करके ऐरावत हाथीपर आरूढ़ होकर सभी देवगणोंसे घिरे तथा ब्रह्मर्षियोंसे स्तूयमान एवं विजयोत्सवके लिये उत्सुक देवराज इन्द्रने अपनी पुरीमें प्रवेश किया॥ १-२॥ अपनी सभामें बैठकर नम्रतापूर्वक इन्द्रने श्रेष्ठ देवगणों और देवर्षियोंसे स्निग्ध गम्भीर वाणीमें पूछा—॥ ३॥

इन्द्र बोले—मुनिश्रेष्ठ दधीचि मेरे कथनानुसार अपनी अस्थियाँ मुझे देनेके लिये अपना शरीर त्यागकर स्वर्ग चले गये। इस कारण मुझे ब्रह्महत्याका पाप लगा है, मैं उससे कैसे मुक्त होऊँ, इसके लिये अब क्या करूँ? विप्रगण! आप कृपापूर्वक मुझे बतायें॥ ४-५॥

ऋषिगण बोले—वे मुनिश्रेष्ठ दधीचि तो जीवन्मुक्त थे और वे स्वेच्छासे स्वर्ग गये, इस कारण वृत्रसूदन! आपको पूरी ब्रह्महत्या नहीं लगी है। देवराज! उस पापका नाश करनेके लिये महापापोंका नाश करनेवाले अश्वमेध नामक महायज्ञको आप करें॥ ६-७॥ महाबुद्धिमान् बृहस्पति एवं अन्य देवताओंने भी ऐसा सुनकर इसमें अपनी सहमति बतायी। तब शान्तचित्त होकर इन्द्र अन्तःपुरमें चले गये। देवगण भी अपने-अपने स्थानको गये॥ ८-९॥

ततः सुरपतिर्यज्ञमश्वमेधं यथाविधि।
चकार मुनिशार्दूल बहुसद्व्ययपूर्वकम्॥ १०॥
तत आगत्य देवर्षिरेकदा नारदो मुनिः।
प्राह तं सुरवृन्दानामधिपं सुरसंसदि॥ ११॥
तवापि कृतयज्ञस्य ब्रह्महत्या प्रवर्तते।
ततस्तत्क्षालनार्थं त्वं यतस्व सुरभूपते॥ १२॥

इन्द्र उवाच

अश्वमेधो महायज्ञः कृतस्तत्पापशान्तये।
तथापि वर्तते तत्किं करिष्यामि वदस्व तत्॥ १३॥

नारद उवाच

गुरुं गौतममिन्द्र त्वं पृच्छ गत्वा महामते।
कथयिष्यत्युपायं ते स हि सर्वार्थविन्मुनिः॥ १४॥
गुरोर्वाक्यं परं शास्त्रं गुरोर्वाक्यं परं तपः।
गुरुस्तुष्टो वदान्यश्च तद्भवत्येव नान्यथा॥ १५॥
प्रायश्चित्तं गुरोर्वाक्यं सर्ववेदेषु सम्मतम्।
तदाज्ञया कर्म कृत्वा पापान्निष्कृतिमाप्स्यसि॥ १६॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्तः स मुनिः प्रायात्पुनः स्वस्थानमुत्तमम्।
इन्द्रश्चापि ययौ शीघ्रं गौतमस्यालयं तथा॥ १७॥
ददर्श तं महात्मानं मध्याह्नार्कसमप्रभम्।
लसत्पिङ्गजटामौलिं ब्रह्मध्यानपरायणम्॥ १८॥
दृष्ट्वैवं स्वगुरुं साक्षान्महेशमिव वृत्रहा।
कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणनामापतन्मुनिम्॥ १९॥
समाधिविरमे ज्ञात्वा देवराजं समागतम्।
पप्रच्छ गौतमस्तात कुशलं ब्रूहि साम्प्रतम्॥ २०॥

इन्द्र उवाच

प्रभो त्वद्दर्शनादेव सर्वं मे कुशलं मुने।
भवान्यस्य गुरुस्तस्य विद्यते नाशुभं क्वचित्॥ २१॥
किं त्वेकं कृतवान्पापं न तं पश्यति सर्वथा।
तेन त्वां समनुप्राप्तो गुरुं निस्तारहेतुकम्॥ २२॥

मुनिश्रेष्ठ! तब देवराज इन्द्रने विधिपूर्वक बहुत दान-दक्षिणासहित अश्वमेधयज्ञ किया॥ १०॥ एक बार देवताओंकी सभामें देवर्षि नारदने पधारकर देवराजसे कहा—देवराज! आपने यद्यपि यज्ञ कर लिया है, किंतु ब्रह्महत्या अभी भी आपको लगी हुई है, उसे मिटानेके लिये आपको यत्न करना चाहिये॥ ११-१२॥

इन्द्र बोले—मैंने उस पापकी शान्तिके लिये अश्वमेध महायज्ञ किया, फिर भी वह वर्तमान ही है, अब आप ही बतायें, मैं क्या करूँ?॥ १३॥

नारदजी बोले—बुद्धिमान् इन्द्र! आप अपने गुरु गौतम ऋषिके पास जाकर इसका उपाय पूछें। वे मुनि सर्वज्ञ हैं और आपको इसका उपाय अवश्य बतायेंगे। गुरुका कथन श्रेष्ठ शास्त्र है, गुरुका कथन श्रेष्ठ तप है। करुणामय गुरु प्रसन्न होकर जैसा कह देते हैं वही होता है, उससे भिन्न नहीं। सभी वेदोंका यही मत है कि गुरुकी आज्ञाके अनुसार कर्म करना ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है। उनके आज्ञानुसार कर्म करके पापसे आपकी मुक्ति हो जायगी॥ १४—१६॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहनेपर नारदमुनि अपने उत्तम स्थानको चले गये और इन्द्र भी शीघ्र ही महर्षि गौतमके आश्रमपर गये॥ १७॥ उन्होंने मध्याह्नके सूर्यके समान तेजस्वी, सिरपर पिङ्गवर्णी जटाओंसे सुशोभित और ब्रह्मके ध्यानमें लीन उन महात्मा गौतमको देखा॥ १८॥ वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रने साक्षात् शिवके समान अपने गुरुको देखकर उनकी प्रदक्षिणा की और पृथ्वीपर दण्डवत् गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया॥ १९॥ समाधिके विराम होनेपर गौतम ऋषिने देवराजको आया जानकर उनसे पूछा—तात! अब अपनी कुशल बतायें॥ २०॥

इन्द्र बोले—प्रभो! आपके दर्शनसे ही मेरा सब कुशल-मङ्गल है। मुने! जिसके आप-जैसे गुरु हों, उसके लिये कहीं अमङ्गल नहीं हो सकता, किंतु मुझसे अनजानेमें एक पाप हो गया है, जिसके निस्तारहेतु मैं आप गुरुवरके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ॥ २१-२२॥

वृत्रासुरवधार्थाय दधीचेरस्थिसंग्रहात्।
सञ्जाता ब्रह्महत्या मे दुर्निवर्त्या महामते॥ २३॥
तस्यास्तु शमनार्थाय वाजिमेधं महामखम्।
कृतवांश्च तदाप्येषा कदाचिन्न निवर्तते॥ २४॥
तदहं दीनचित्तोऽस्मि गुरो निस्तारकारकम्।
उपायं वद मे नाथ ब्रह्महत्यानिवर्तकम्॥ २५॥
त्वं यस्य त्राणकर्तासि गुरुः परमधर्मवित्।
तस्य पापं स्थिरतरं जातं मे बहुदुःखदम्॥ २६॥

गौतम उवाच

वत्स खेदं त्यज न ते पापं स्थास्यति वै चिरम्।
ब्रवीम्युपायं श्रुत्वा तत्पूर्वपापप्रशान्तये॥ २७॥
यः कश्चिद्ब्राह्मणो नैव दधीचिर्मुनिसत्तमः।
द्वितीय इव विश्वेशो जीवन्मुक्तो महामतिः॥ २८॥
तस्य हत्यावशाज्जातं पापं घोरतरं तव।
किं नश्यत्यश्वमेधेन यज्ञेन सुरनन्दन॥ २९॥
एनां तु ब्रह्महत्यां त्वं यदि त्यक्तुं समिच्छसि।
पश्य गत्वा महाकालीं महापातकनाशिनीम्॥ ३०॥

इन्द्र उवाच

कीदृशी सा महाकाली कुत्रास्ते पापनाशिनी।
तन्मे वद ततो गत्वा तां पश्यामि महेश्वरीम्॥ ३१॥

गौतम उवाच

वेदागमेषु सर्वेषु यथादृष्टं तथोदितम्।
न मया ज्ञायते कुत्र महाकाली परात्परा॥ ३२॥
सर्वाभिः श्रुतिभिः प्रोक्तं दृष्ट्वा कालीं महेश्वरीम्।
विनाशयति पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि॥ ३३॥

इन्द्र उवाच

न निस्तारं प्रपश्यामि पापादस्मात्कथञ्चन।
यतः सा कुत्र इत्येव नैव ज्ञास्ये कदाचन॥ ३४॥

महामते! वृत्रासुरके वधके लिये दधीचिमुनिकी अस्थियाँ लेनेके कारण मुझे दुर्निवारिणी ब्रह्महत्या लग गयी है। उसके शमनके लिये मैंने अश्वमेधयज्ञ भी किया, किंतु फिर भी उसका सम्भवतः निवारण नहीं हो रहा है। गुरो! मेरा चित्त अत्यन्त दुःखी है, नाथ! आप इस ब्रह्महत्याके निवारणका उपाय मुझे बताइये जिससे मेरा निस्तार हो। धर्मके मर्मज्ञ आप जिसके रक्षक और गुरु हैं, उसपर भी यह बहुत दुःखदायक पाप स्थायीरूपसे लग गया है॥ २३—२६॥

गौतम बोले—वत्स! तुम दुःखी मत होओ, तुम्हारा पाप बहुत समयतक नहीं टिकेगा। मैं तुम्हारी बात सुनकर उस पूर्व पापकी शान्तिके लिये उपाय बताता हूँ॥ २७॥

मुनिश्रेष्ठ दधीचि कोई साधारण ब्राह्मण नहीं थे। वे जीवन्मुक्त महात्मा दूसरे विश्वेश्वरके ही समान थे। सुरनन्दन! उनकी हत्यासे उत्पन्न तुम्हारा घोर पाप अश्वमेधयज्ञसे कैसे मिट सकता है! यदि तुम इस ब्रह्महत्यासे मुक्त होना चाहते हो तो वहाँ जाकर महापातकनाशिनी भगवती महाकालीके दर्शन करो॥ २८—३०॥

इन्द्र बोले—वे पापनाशिनी महाकाली कैसी हैं और कहाँ रहती हैं, यह मुझे बताइये, जिससे मैं जाकर उन महेश्वरीके दर्शन कर सकूँ॥ ३१॥

गौतम बोले—मैंने वेद और आगम शास्त्रोंमें जैसा देखा है, वैसा आपको बताया। मुझे नहीं मालूम कि परात्परा महाकाली कहाँ विराजती हैं। सभी श्रुतियोंमें ऐसा बताया गया है कि महेश्वरी महाकालीके दर्शनसे मनुष्य अपने ब्रह्महत्यादिक पापोंको भी नष्ट कर देता है॥ ३२-३३॥

इन्द्र बोले—मुझे लगता है कि इस पापसे मेरी मुक्ति नहीं हो सकेगी; क्योंकि मुझे कभी यही ज्ञात नहीं हो पायेगा कि वे जगदम्बा कहाँ विराजती हैं॥ ३४॥

गौतम उवाच

महोग्रतपसा कालीं योगिनस्तत्त्वदर्शिनः।
पश्यन्ति बहुकालेन युगान्तोदीक्षितेन च॥ ३५॥
तथाचरति यस्तस्य समायाति पुरःसरम्।
महाकाली जगद्धात्री योगगम्या सनातनी॥ ३६॥
सुराणामधिपस्त्वं तु सर्वदा राष्ट्रपालकः।
त्यक्त्वा राज्यं कथं योग्यस्तपः कर्तुं भविष्यसि॥ ३७॥
तस्मादन्यं ह्युपायं ते महाकालीप्रदर्शने।
न पश्यामि विना तस्या आलये गमनादृते॥ ३८॥
तस्मात्त्वमनुसन्धाय पुरीं तस्याः पुरन्दर।
तत्र गत्वा महाकालीं पश्य ब्रह्मादिदुर्लभाम्॥ ३९॥
उपायमनुसन्धाने वक्ष्यामि सुरनायक।
गत्वादौ ब्रूहि लोकानां पितामहमनामयम्॥ ४०॥
सोऽपि चेच्चैव जानाति स्वयं भूत्वा तु यत्नवान्।
अनुसन्धास्यते नूनं महाकाल्याः पुरं ततः॥ ४१॥
स चेद्यद्यनुसन्धाता तदावश्यं महामते।
भविष्यत्यनुसन्धानं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते॥ ४२॥

इन्द्र उवाच

न तवाज्ञा वृथा देव भविष्यति कदाचन।
यास्येऽहं ब्रह्मसान्निध्यं तत्रोपायं भविष्यति॥ ४३॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा देवराजस्तं त्रिधा कृत्वा प्रदक्षिणम्।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ ब्रह्मलोकं तदा ययौ॥ ४४॥
पुष्पकं रथमारुह्य मन्त्रिभिः सह नारद।
उवाच स यथावृत्तं गौतमेनाभिभाषितम्॥ ४५॥
तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा देवराजमुवाच ह।
न ज्ञायते मया तस्याः पुरं कुत्र सुराधिप॥ ४६॥
कृपया देवकार्यार्थं स्वयमाविर्बभौ यदा।
तदा दृष्टा महाकाली ब्रह्मरूपा सनातनी॥ ४७॥
पुनः सान्तर्हिता भूत्वा सर्वदेवस्य पश्यतः।
इत्येवमेव जानामि न पुरं ज्ञायते मया॥ ४८॥

गौतम बोले—तत्त्वदर्शी योगीजन दीर्घकालतक युगान्तदर्शिणी उग्र तपस्यासे महाकालीके दर्शन करते हैं। जो ऐसा कर पाता है उसके समक्ष योगगम्या, सनातनी, जगन्माता महाकाली प्रकट हो जाती हैं, किंतु तुम तो देवताओंके राजा हो और राष्ट्रका पालन करनेवाले हो, राज्यपालनके दायित्वको छोड़कर तुम ऐसा तप कैसे कर सकोगे? इसलिये उनके भुवनमें जानेके अतिरिक्त उनके दर्शनका दूसरा उपाय तुम्हारे लिये मुझे नहीं दिखायी देता। अतः पुरन्दर! तुम उनकी पुरीका पता लगाकर और वहाँ जाकर ब्रह्मादिके लिये दुर्लभ भगवती महाकालीका दर्शन करो॥ ३५—३९॥ सुरनायक! उनकी पुरीको खोजनेका उपाय तुम्हें बताता हूँ, तुम्हें सबसे पहले निर्विकार लोकपितामह ब्रह्माजीके पास जाकर पूछना चाहिये। वे यदि स्वयं यत्नपूर्वक खोज करेंगे तो महाकालीकी पुरीका पता अवश्य लग जायगा। अतः महामते! ब्रह्मा जिसकी खोज करें, उसका पता अवश्य ही हो जाता है—यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ४०—४२॥

इन्द्र बोले—देव! आपकी आज्ञा कभी व्यर्थ नहीं होगी, मैं ब्रह्माजीके पास जाऊँगा, जिससे कोई उपाय अवश्य होगा॥ ४३॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारदजी! ऐसा कहकर देवराजने मुनिकी तीन परिक्रमाएँ कीं और उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर अपने मन्त्रियोंसहित पुष्पक विमानपर बैठकर उन्होंने ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान किया तथा महर्षि गौतमने जैसा बताया था, वह सारा वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया॥ ४४-४५॥ ऐसा सुनकर भगवान् ब्रह्माने देवराज इन्द्रसे कहा कि सुराधिप! उन महाकालीकी नगरी कहाँ है, यह मैं नहीं जानता। देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये कृपापूर्वक जब वे स्वयं प्रकट हुई थीं, उसी समय मैंने उन सनातनी ब्रह्मरूपा महाकालीके दर्शन किये थे। तत्पश्चात् सभी देवताओंके देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गयी थीं। मैं इतना ही जानता हूँ, उनकी नगरीका मुझे ज्ञान नहीं॥ ४६—४८॥

इन्द्र उवाच

ब्रह्मंस्त्वं चेन्न जानासि पुरं तस्यास्तदा कथम्।
ज्ञातव्यं वा मया पारं प्राप्स्यते पापसञ्चयात्॥ ४९॥

ब्रह्मोवाच

त्वयि राजनि देवानां यदि स्थास्यति पातकम्।
तदा बहुविधोत्पातं भविष्यति सुरालये॥ ५०॥

तस्माच्च पापशान्त्यर्थं यत्नवानस्मि वै ध्रुवम्।
सर्वथैवानुसंधास्ये पुरं तस्याः सुगोपितम्॥ ५१॥

यदि तामनुपश्यामि तव कार्यानुरोधतः।
भविष्यामि तदा मुक्तः किमु कार्यमतः परम्॥ ५२॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमाश्वास्य देवानामधिपं स पितामहः।
वैकुण्ठं प्रययौ दिव्यं रथमारुह्य नारद॥ ५३॥

इन्द्रोऽपि रथमारुह्य पुष्पकं तस्य पृष्ठतः।
प्रययौ विष्णुना गुप्तं पुरं वैकुण्ठमुत्तमम्॥ ५४॥

ततो ब्रह्मा समाश्वास्य देवराजमुवाच ह।
शृणु वत्स वचो मे त्वं बहिस्तिष्ठ सुरेश्वर॥ ५५॥

अहमन्तःपुरं यामि ततस्त्वमनुयास्यसि।
आज्ञप्तो देवदेवेन ब्रह्मणा विष्णुरूपिणा॥ ५६॥

तच्छ्रुत्वा ब्रह्मवचनं देवराजस्तथाकरोत्।
ब्रह्मा ययौ जगन्नाथो यत्रास्ते भगवान्हरिः॥ ५७॥

लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तो हृदि कौस्तुभमण्डितः।
नवीनजलदश्यामः शङ्खचक्रगदाधरः॥ ५८॥

तं दृष्ट्वा भगवान्विष्णुः पप्रच्छ स्वागतं विभुः।
ब्रह्मा प्राह जगन्नाथं स्वागतं त्वत्प्रसादतः॥ ५९॥

देवदेवः पुरद्वारि दर्शनार्थं समागतः।
प्रतीक्षते तवानुज्ञामत्रायातुं जनार्दन॥ ६०॥

तच्छ्रुत्वा गरुडं प्राह भगवान्विष्णुरव्ययः।
प्रवेशय सुराणां तमधिपं पुरमध्यके॥ ६१॥

इन्द्र बोले—ब्रह्मन्! जब आप ही उनकी नगरीको नहीं जानते, तब मैं कैसे जान पाऊँगा और इस ब्रह्महत्यारूपी सञ्चित पापसे मुझे कैसे मुक्ति मिल सकेगी?॥ ४९॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओंके राजा यदि आपमें यह पातक टिका रहेगा तो स्वर्गमें बहुत-से उत्पात होने लगेंगे। इसलिये इस पापका निवारण करनेके लिये मैं निश्चितरूपसे प्रयत्नशील हूँ। जगदम्बाकी अत्यन्त गोपनीय नगरीको मैं सब प्रकारसे खोजूँगा। यदि आपके कार्यसम्पादनमें भगवतीके दर्शन मुझे हो गये तो मैं मुक्त हो जाऊँगा। इससे बढ़कर करणीय कार्य अन्य कुछ नहीं है॥ ५०—५२॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारदजी! इस प्रकार देवराज इन्द्रको आश्वासन देकर पितामह ब्रह्माजी दिव्य रथपर आरूढ़ होकर वैकुण्ठधामको चले गये॥ ५३॥ इन्द्र भी अपने पुष्पक विमानपर पीछे-पीछे चलते हुए भगवान् विष्णुके द्वारा रक्षित उत्तम लोक वैकुण्ठधाम गये॥ ५४॥ तब ब्रह्माजीने देवराज इन्द्रको आश्वस्त करते हुए कहा कि वत्स! सुरेश्वर! मेरी बात सुनो और तुम बाहर ही ठहरो। मैं भगवान् विष्णुके धामके अंदर प्रवेश कर रहा हूँ तब परब्रह्म भगवान् विष्णुकी आज्ञा प्राप्त होनेपर तुम भी भीतर आ जाना॥ ५५-५६॥ ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर देवराज इन्द्रने वैसा ही किया। ब्रह्माजी वहाँ पहुँचे, जहाँ जगन्नाथ भगवान् विष्णु विराजमान थे। उनके हृदयपर कौस्तुभमणि शोभा पा रही थी, नवीन मेघके समान उनका श्यामवर्ण था। उन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रखे थे तथा लक्ष्मी एवं सरस्वती उनके साथ विराजमान थीं॥ ५७-५८॥

ब्रह्माजीको आया देखकर भगवान् विष्णुने शुभागमनविषयक प्रश्न पूछे। ब्रह्माजीने भगवान्से कहा कि आपकी कृपासे सानन्द आगमन हुआ है। जनार्दन! देवराज इन्द्र भी आपके दर्शनार्थ आये हैं और वैकुण्ठलोकके द्वारपर यहाँ प्रवेशहेतु आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ ५९-६०॥ यह सुनकर अच्युत भगवान् विष्णुने गरुडको आज्ञा दी कि देवराज इन्द्रको वैकुण्ठके अंदर ले आओ॥ ६१॥

तच्छ्रुत्वा गरुडस्तूर्णं गत्वा तद्द्वारमुत्तमम्।
प्रवेशयामास मुने तदन्तःपुरमुत्तमम्॥ ६२॥
इन्द्रस्तु दण्डवद्भूमौ प्रणिपत्य जगत्पतिम्।
कृताञ्जलिपुटः प्राह धन्योऽहं तव दर्शनात्॥ ६३॥
त्वत्पादपङ्कजजनिः सुरवृन्दवन्द्या
गङ्गा पुनाति सकलानि जगन्ति धन्या।
तत्त्वां दृशा यदिह सर्वसुरैकवन्द्यं
पश्यामि भाग्यमतुलं मम पूर्वजातम्॥ ६४॥
इत्येवं परमेश्वरं सुरपतिर्विष्णुं स्तुवन्भक्तितो
ब्रह्माज्ञां प्रतिलभ्य गौतममुनेर्वाक्यं समावेदयत्।
श्रुत्वा श्रीकमलापतिः सुरपतेर्वाक्यं ततो विस्मितः
प्रासीन्मौनमुखः पितामहपुरस्त्रैलोक्यसम्पालकः॥ ६५॥

मुने! यह सुनकर गरुड शीघ्रतापूर्वक द्वारपर गये और उन्होंने इन्द्रको श्रेष्ठ धामके अंदर प्रवेश कराया॥ ६२॥ इन्द्रने भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर जगत्पति भगवान् विष्णुसे कहा कि आपके दर्शनसे मैं धन्य हुआ॥ ६३॥

जब आपके चरणकमलसे निकली हुई देवपूजित सौभाग्यशालिनी भगवती गङ्गा सभी लोकोंको पवित्र करती हैं तो फिर सभी देवताओंके वन्दनीय आपका इन आँखोंसे मैं साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ, यह मेरे पूर्वकृत शुभ कर्मोंसे उत्पन्न अतुलनीय अहोभाग्य है॥ ६४॥ इस प्रकार परमेश्वर भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक स्तुति करके ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर इन्द्रने गौतममुनिकी कही बातें निवेदित कीं। इन्द्रकी बात सुनकर विस्मित हुए त्रिलोकीके पालनकर्ता कमलापति भगवान् श्रीविष्णु ब्रह्माजीके समक्ष मौन रह गये॥ ६५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे गौतमवाक्याद्ब्रह्ममयीस्थानानुसन्धानार्थं देवराजस्य चतुर्मुखविष्णुलोकगमनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'गौतमके कथनानुसार ब्रह्ममयीस्थानानुसन्धानार्थ देवराजका चतुर्मुखविष्णुलोकगमन' नामक इकसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६१॥

बासठवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका इन्द्रसे महाकालीके लोकके विषयमें अनभिज्ञता व्यक्त करना; ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रका शिवलोक जाना तथा भगवान् शिवके साथ भगवती महाकालीके लोकमें जाना

श्रीमहादेव उवाच

एवं भूत्वा कियत्कालं मौनी कमललोचनः।
उवाच देवराजं तं मृदुवाक्येन नारद॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

न मया ज्ञायते देवी कुत्रास्ते सा महेश्वरी।
महाकाली ब्रह्मरूपा विश्वरूपा सनातनी॥ २॥
यत्र तिष्ठति सा देवी जानीते तन्महेश्वरः।
तत्र गच्छ महेशानं यथावृत्तं निवेदय॥ ३॥
अहमप्यागमिष्येऽद्य द्रष्टुं देव्याः पुरं महत्।
द्रक्ष्यामि चक्षुषा देवीं किमु कार्यमतः परम्॥ ४॥

श्रीमहादेवजी बोले—नारदजी! कुछ देर मौन रहकर कमललोचन भगवान् विष्णुने मीठी वाणीमें देवराज इन्द्रसे कहा—॥ १॥

श्रीभगवान् बोले—मुझे यह ज्ञात नहीं है कि वे ब्रह्मरूपा सर्वस्वरूपा सनातनी महेश्वरी महाकाली कहाँ विराजती हैं। वे देवी जहाँ रहती हैं, उसे महेश्वर भगवान् शिव जानते हैं। इसलिये उन्हीं महेश्वरके पास जाओ और उनसे पूरी बात निवेदित करो। मैं भी देवीके दिव्य लोकको देखने आऊँगा। इन नेत्रोंसे देवीके दर्शन होंगे, इससे बढ़कर और क्या कार्य होगा?॥ २—४॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा तं जगन्नाथो गरुडं सहसोत्थितः।
प्रययौ शिवसान्निध्यं ब्रह्मणा सहितः प्रभुः॥ ५ ॥

इन्द्रश्च रथमारुह्य तयोः पश्चाद्ययौ मुने॥ ६ ॥

दृष्ट्वा तांस्तु समायातान्नन्दी बुद्धिमतां वरः।
महेशसन्निधिं गत्वा कथयामास तत्क्षणात्॥ ७ ॥

देवदेव जगन्नाथ विष्णुर्नारायणः स्वयम्।
आगतो ब्रह्मणा सार्धं देवराजेन च प्रभो॥ ८ ॥

तमाह शम्भुः शीघ्रं तान्प्रवेशय महामते।
तच्छ्रुत्वा सोऽपि गत्वा तान्पुरं प्रावेशयन्मुने॥ ९ ॥

ते शम्भोः सन्निधिं गत्वा प्रणिपत्यातिभक्तितः।
पार्वतीसहितं तं च प्रणेमुर्मुनिपुङ्गव॥ १०॥

ततस्तानाह विश्वेशः कथमत्र समागताः।
द्रुतं वदत युष्माकं किं कार्यं समुपस्थितम्॥ ११॥

श्रीविष्णुरुवाच

इन्द्रोऽयं ब्रह्महत्यायाः प्रायश्चित्तं महामतिः।
पप्रच्छ मुनिशार्दूलं गौतमं शास्त्रवित्तमम्॥ १२॥

स च प्राह महाकालीं पश्य तस्याः पुरं व्रजन्।
पुरं तु कुत्र तन्नैव जानामि सुरनायक॥ १३॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य ब्रह्मणोऽन्तिकमागतः।
पप्रच्छ तं पुरं देव्याः कुत्र तन्मे वद प्रभो॥ १४॥

स प्राह नैव जानामि कुत्र देव्याः पुरं महत्।
ततो ब्रह्मा समायातः सुरेन्द्रेण ममान्तिकम्॥ १५॥

पप्रच्छ मां तथेन्द्रोऽपि ब्रह्मणा प्रेरितः प्रभो।
तच्छ्रुत्वा विस्मयाविष्टः सह ताभ्यामिहागतः॥ १६॥

त्वमवश्यं हि जानासि महाकाल्याः पुरं विभो।
स त्वमस्मान्महादेव्याः पुरं नीत्वा प्रदर्शय॥ १७॥

अयमिन्द्रो महाबाहुस्त्रिलोकेशो महेश्वर।
महापातकयुक्तश्चेत्कथं तिष्ठेज्जगत्त्रयम्॥ १८॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु सहसा ही गरुड़पर आरूढ़ होकर ब्रह्माजीके साथ भगवान् शिवके पास गये। मुने! इन्द्र भी अपने विमानपर चढ़कर उन दोनोंके पीछे चले। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ नन्दीने उन सबको आया देखकर तत्क्षण भगवान् शिवके निकट जाकर निवेदन किया॥ ५—७॥ महादेव! विश्वनाथ! प्रभो! पितामह ब्रह्मा और देवराज इन्द्रके साथ भगवान् नारायण स्वयं उपस्थित हुए हैं॥ ८॥ महामते! मुने! भगवान् शिवने नन्दीसे कहा कि उन्हें शीघ्र ले आओ। ऐसा सुनकर वे नन्दी भी वहाँ जाकर उन सबको शिवलोकमें ले आये॥ ९॥ मुनिश्रेष्ठ! भगवान् शिवकी सन्निधिमें जाकर उन्होंने अत्यन्त भक्तिपूर्वक पार्वतीसहित भगवान् शंकरको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तब विश्वनाथ भगवान् शंकरने उनसे पूछा कि आपलोग किस कारणसे यहाँ आये हैं, आपलोगोंका कौन-सा कार्य आ पड़ा है, इसे शीघ्र बताइये॥ १०-११॥

श्रीविष्णु बोले—इन बुद्धिमान् इन्द्रने शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनिवर गौतमसे ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त पूछा था। उन्होंने बताया कि सुरश्रेष्ठ! भगवती महाकालीके लोकमें जाकर उनके दर्शन करो, किंतु उनका लोक कहाँ है, यह मैं नहीं जानता। उनकी यह बात सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीके पास आये और उन्होंने उनसे पूछा—प्रभो! जगदम्बिकाका दिव्य लोक कहाँ है, यह मुझे बताइये। उन्होंने भी कहा कि देवीका दिव्य लोक कहाँ हैं, यह मैं नहीं जानता। तब ब्रह्मा इन्द्रको लेकर मेरे पास आये॥ १२—१५॥ प्रभो! ब्रह्माजीकी प्रेरणासे इन्द्रने मुझसे भी यही बात पूछी। यह सुनकर विस्मित हुआ मैं उन दोनोंके साथ यहाँ आया हूँ। विभो! आप अवश्य ही महाकालीके दिव्य लोकको जानते हैं, इसलिये आप कृपापूर्वक हम सबको महादेवीके पुर ले जाकर देवीके दर्शन कराइये॥ १६-१७॥ महेश्वर! यह महाबाहु त्रिलोकेश इन्द्र यदि ब्रह्महत्याके महापातकसे युक्त रहेगा तो त्रिलोकी कैसे रहेगी?॥ १८॥

श्रीशिव उवाच

योगेन लक्षवर्षस्य तत्स्थानं ज्ञातवानहम्।
यूयमागच्छत तथा यास्येऽहं मधुसूदन।
दर्शयिष्यामि तां देवीं नीत्वा तस्याः पुरं द्रुतम्॥ १९॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा नन्दिनं प्राह वृषं सज्जीकुरु द्रुतम्।
यास्यामोऽद्य महाकाल्याः पुरं रत्नपरिष्कृतम्॥ २०॥
तच्छ्रुत्वा सोऽपि सहसा तथा चक्रे महामुने॥ २१॥
ततः समारुह्य वृषं महेश्वरो
विष्णुश्च तार्क्ष्यं जितवायुवेगकम्।
ब्रह्मा विमानं मणिभिः परिष्कृतं
प्रायान्महेन्द्रोऽपि च पुष्पकं तथा॥ २२॥
पथि व्रजन्तो गगने सुरोत्तमा
ऊचुः समागम्य परस्परं मुने।
परात्परा सैव महामहेश्वरी
श्रीकालिकाया नहि विद्यते परा॥ २३॥
सृजत्यलं सैव जगन्महेश्वरी
सम्पाति सर्वासु विपत्सु सा तथा।
अन्ते तथा संहरते च विश्वं
निमित्तमात्रं तु वयं त्रयस्त्विति॥ २४॥
एवं वदन्तो बहुधा सुरोत्तमा
व्यतीत्य पन्थानमुपागमन्मुने।
श्रीकालिकाया नगरं महामुने
स्वर्णादिभिश्चित्रितमद्भुतोत्तमम्॥ २५॥
विलोक्य सर्वत्र पुरन्दरस्तथा
ब्रह्मा च विष्णुश्च बभूव विस्मितः।
अन्योन्यमूचुः समुपेत्य मत्पुरं
धिगस्तु मन्ये च विनिर्मितं मुधा॥ २६॥
एवं विलोक्य नगरं जगदम्बिकाया
ब्रह्मेन्द्रविष्णुगिरिशाः परितो भ्रमन्तः।
तस्थुश्चिरं सकलविस्मृतवाञ्छितार्थाः
कोऽपि स्मरेन्नहि किमर्थमिहागताः स्मः॥ २७॥

श्रीशिवजी बोले—मधुसूदन! एक लाख वर्षोंतक तपस्या करके मैंने उस स्थानका ज्ञान प्राप्त किया है। आप सभी मेरे साथ आयें, मैं वहाँ ले चलूँगा। शीघ्र ही उनके लोकमें पहुँचकर उन भगवतीके दर्शन कराऊँगा॥ १९॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर भगवान् शिवने नन्दीको शीघ्र वृषवाहन तैयार करनेकी आज्ञा दी और कहा कि हम सभी आज ही महाकालीके रत्नमण्डित लोकको जायँगे॥ २०॥ महामुने! यह सुनकर नन्दीने शीघ्र ही उस आज्ञाका पालन किया। तब महेश्वर शिव वृषवाहनपर आरूढ़ होकर, भगवान् विष्णु वायुसे भी द्रुतगामी गरुडपर, पितामह ब्रह्मा मणिजटित विमानपर तथा इन्द्र भी अपने पुष्पक विमानपर आरूढ़ होकर चले॥ २१-२२॥ मुने! आकाशमार्गसे जाते हुए श्रेष्ठ देवोंने एकत्र होकर परस्पर वार्तालापमें ऐसा कहा कि वे ही महामहेश्वरी पराशक्ति हैं और श्रीमहाकालीसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं॥ २३॥ वे ही महेश्वरी इस जगत्का सृजन करती हैं, सारी विपत्तियोंसे इसकी रक्षा करती हैं और अन्तमें इसका संहार भी करती हैं। हम तीनों तो निमित्तमात्र हैं॥ २४॥ मुने! इस प्रकार देवीके अनेकशः गुणगान करते हुए वे श्रेष्ठ देवगण मार्गको पारकर श्रीमहाकालीके श्रेष्ठ लोकमें आये, जो स्वर्णादिसे मण्डित होकर अद्भुत शोभाको प्राप्त हो रहा था॥ २५॥

वहाँ पहुँचकर तथा चारों ओरकी शोभा देखकर इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु अत्यन्त चकित हुए और आपसमें कहने लगे कि हमारे लोकोंको धिक्कार है, लगता है कि इनकी रचना व्यर्थ ही हुई है॥ २६॥ ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र चारों ओर भ्रमण करते हुए भगवती जगदम्बिकाके उस नगरकी शोभा देखकर देरतक स्थित रहे और अपने सभी अभीष्ट उद्देश्योंको भूलकर किसीको भी यह स्मरण नहीं रहा कि वे वहाँ क्यों उपस्थित हुए हैं॥ २७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे ब्रह्मादीनां देवराजेन सह भगवतीस्थानगमने द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'ब्रह्मादिका इन्द्रके साथ भगवतीस्थानगमन' नामक बासठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

ब्रह्मा, विष्णु और शिवका महाकालीके दर्शन करना, ब्रह्मा और विष्णुद्वारा भगवती महाकालीकी स्तुति, भगवतीका इन्द्रको दर्शन देना तथा इन्द्रका ब्रह्महत्याजनित पापसे मुक्त होना

श्रीमहादेव उवाच

कदाचित्तत्र योगिन्यः पुष्पाहार्यः समागताः।
ता उचुस्तान्महात्मानः किमर्थं समुपागताः॥ १॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तासां स्मृत्वागमनकारणम्।
प्रोचुर्देवीं महाकालीं स्वयं द्रष्टुं समागताः॥ २॥

योगिन्य ऊचुः

यदि देवीं महाकालीं द्रष्टुमेव समागताः।
तदात्र सुचिरं स्थित्वा किं निरीक्षथ सादराः॥ ३॥

अहो देव्या महामाया ययेदं मोह्यते जगत्।
तयैव मोहिता यूयं विस्मृताः प्रकृतं ध्रुवम्॥ ४॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा ता ययुस्तेऽपि सर्वे ऊचुः परस्परम्।
चिरमागत्य च वयं किं कुर्मो ह्यत्र संस्थिताः॥ ५॥

विष्णुः प्राह महादेवं किमेवं मोह्यते त्वया।
बहुकालं समायाता द्रष्टुं कालीं महेश्वर॥ ६॥

अद्यापि दृष्टा नो देवी महाकाली महेश्वरी॥ ७॥

श्रीशिव उवाच

अद्यैव गत्वा पश्यामो देवीं भुवनमातरम्।
प्रविशामः पुरीं देव्याः शुद्धां रत्नविनिर्मिताम्॥ ८॥

इत्युक्तास्ते सुरश्रेष्ठा ध्यायन्तो हृदि कालिकाम्।
गन्तुमन्तःपुरं देव्याः प्रययुर्मुनिपुङ्गव॥ ९॥

ततः स गोपुरं गत्वा महादेवः सुरोत्तमान्।
उवाच ब्रह्मविष्ण्वादीन्हर्षोत्फुल्लविलोचनः॥ १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—कुछ समय बाद पुष्प चुननेवाली योगिनियाँ वहाँ आयीं। उन्होंने उन महापुरुषोंसे पूछा कि आप किस कारण यहाँ आये हैं?॥ १॥ उनकी बात सुनकर उन्हें अपने आनेका कारण याद आया और उन्होंने कहा कि हम साक्षात् महाकालीके दर्शन करने आये हैं॥ २॥

योगिनियाँ बोलीं—यदि आपलोग देवी महाकालीके दर्शनहेतु ही आये हैं तो यहाँ खड़े रहकर इतनी देरसे आदरपूर्वक क्या देख रहे हैं?॥ ३॥ देवीकी महामाया आश्चर्यजनक है, जिसने इस संसारको मोहित कर रखा है, उसीने आपलोगोंको भी मोहित किया है। आप अपने वर्तमान लक्ष्यको भूल गये हैं॥ ४॥

श्रीमहादेवजी बोले—इतना कहकर वे सभी चली गयीं और सभी देवता परस्पर कहने लगे कि इतनी देरसे यहाँ आकर हमलोग खड़े-खड़े क्या कर रहे हैं!॥ ५॥ भगवान् विष्णुने सदाशिवसे कहा कि आपके द्वारा हमलोग इतनी देरसे क्यों मोहित किये जा रहे हैं? महेश्वर! हमलोग तो भगवती महाकालीके दर्शनार्थ आये हुए हैं, किंतु उन महेश्वरी देवी महाकालीके अबतक भी दर्शन नहीं हुए॥ ६-७॥

श्रीशिवजी बोले—हमलोग आज ही चलकर जगन्माता परमेश्वरीके दर्शन करेंगे और जगदम्बाके रत्नजटित पवित्र लोकमें प्रवेश करेंगे॥ ८॥ मुनिश्रेष्ठ! भगवान् शिवके इस प्रकार कहनेपर वे श्रेष्ठ देवगण अपने हृदयमें भगवती महाकालीका ध्यान करते हुए उनके दिव्यधामके अंदर प्रवेश करनेहेतु चल पड़े॥ ९॥ तब नगरद्वारपर पहुँचकर हर्षसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले भगवान् शिवने ब्रह्मा, विष्णु आदि उन श्रेष्ठ देवोंसे कहा—॥ १०॥

दोधूयमानः पवनेन चोच्छ्रितो
विद्युत्प्रभो हेमविचित्रितांशुकः।
सिंहध्वजोऽयं जगदम्बिकापुरः-
प्रासादशीर्षे परिदृश्यते महान्॥ ११॥

सर्वैः परित्यज्य विमानयानकं
स्थित्वा क्षितौ साम्प्रतमेव भक्तितः।
प्रणम्यतां सा जगदेकवन्दिता
पुरप्रवेशाखिलविघ्नशान्तये ॥ १२॥

एवं समाकर्ण्य शिवेन भाषितं
क्षितौ तदा ते ह्यवतीर्य भक्तितः।
दृष्ट्वा ध्वजं नेमुरुपद्रवान्पुरः-
प्रवेशविघ्नान्ददृशुः समन्ततः॥ १३॥

ततः शम्भुं पुरस्कृत्य ब्रह्मविष्णुपुरन्दराः।
विविशुर्नगरीं देव्या रक्षितां भैरवीगणैः॥ १४॥

दृष्ट्वा तु नगरीं दिव्यां वैकुण्ठेशोऽपि चेतसा।
निनिन्द च पुरं दिव्यमात्मनो विस्मयान्वितः॥ १५॥

ततोऽन्तःपुरबाह्ये तु ददृशुर्गणनायकम्।
चतुर्भुजं महाबाहुं स्थूलकायं गजाननम्॥ १६॥

तमाह भगवान् रुद्रः प्रीत्या परमया युतः।
वत्स गत्वा महाकालीं द्रुतं मे वचनं वद॥ १७॥

ब्रह्मा विष्णुः सुरेन्द्रश्च त्वां द्रष्टुं भक्तिभावतः।
आयाताः शम्भुमासाद्य पुरद्वारि महेश्वरि॥ १८॥

तैः सार्धं पुरबाह्ये च रुद्रश्चाप्यवतिष्ठते।
आज्ञां विधेहि तैः सार्धमायातुं वृषभध्वजम्॥ १९॥

इति श्रुत्वा वचः शम्भोस्त्वरितं गणनायकः।
जगामान्तःपुरं देव्याः कथितुं शिवभाषितम्॥ २०॥

स प्रणम्य महादेवीं प्राञ्जलिः शिवभाषितम्।
न्यवेदयद् यथावच्च महादेव्यै महामते॥ २१॥

तदाकर्ण्य जगन्माता त्वरितं तं गणनायकम्।
उवाच वत्स गच्छ त्वं क्षिप्रं तान् देववृन्दकान्॥ २२॥

ब्रह्माण्डा बहवः सन्ति ब्रह्माद्या अपि तत्रगाः।
कस्माद् ब्रह्माण्डादायाताः श्रुत्वा सर्वं निवेदय॥ २३॥

यह विद्युत्प्रभाके समान प्रभायुक्त, स्वर्णखचित वस्त्रसे बना हुआ, अत्यन्त उच्च, विशाल तथा श्रेष्ठ सिंहध्वज भगवती जगदम्बिकाके प्रासादशिखरपर पवनके द्वारा लहराता हुआ दिखायी दे रहा है॥ ११॥ आप सब अपने विमानों और वाहनोंसे पृथ्वीपर उतरकर भक्तिपूर्वक उन जगत्पूज्या भगवतीको प्रणाम करें, जिससे इस नगरमें प्रवेश करनेमें कोई विघ्न न हो॥ १२॥

भगवान् शिवकी यह बात सुनकर उन सभीने अपने वाहनोंसे धरातलपर उतरकर तथा ध्वजकी ओर देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उन्होंने उस नगरीमें प्रवेशको वर्जित करनेवाले विघ्नोंको भी चारों ओर देखा॥ १३॥ तब भगवान् शिवको आगे करके ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रने भैरवीगणोंसे रक्षित जगदम्बाकी उस दिव्य नगरीमें प्रवेश किया॥ १४॥ उस दिव्य नगरीको देखकर वैकुण्ठपति भगवान् विष्णुने भी अपने मनमें विस्मित होते हुए अपने दिव्य लोककी निन्दा की॥ १५॥ तब अन्तःपुरके द्वारपर उन्होंने महाबाहु स्थूलकाय, चतुर्भुज गणनायक गजाननको देखा। भगवान् रुद्रने उन गणनायकसे परम प्रीतिपूर्वक कहा कि वत्स! तुम शीघ्र जाकर महाकालीको [इस प्रकार] मेरा संदेश दो— ॥ १६-१७॥ 'महेश्वरी! ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र शिवके साथ भक्तिपूर्वक आपके दर्शनकी इच्छासे नगरद्वारपर आये हैं। उनके साथ रुद्र भी पुरके बाहर खड़े हैं। आप उन देवताओंके साथ वृषभध्वज रुद्रको अंदर आनेकी आज्ञा प्रदान करें'॥ १८-१९॥ शिवके ये वचन सुनकर गणनायक शीघ्रतापूर्वक महादेवीके अन्तःपुरमें शिवजीके संदेशको बताने चले गये॥ २०॥

महामते! उन्होंने महादेवीको हाथ जोड़कर प्रणाम करके भगवान् शिवका संदेश उनसे यथावत् निवेदित कर दिया॥ २१॥ यह सुनकर जगन्माताने गणनायकसे तुरंत कहा—वत्स! तुम शीघ्र उन देवताओंके पास जाओ और पता करके मुझे बताओ कि ये देवगण किस ब्रह्माण्डसे आये हैं; क्योंकि ब्रह्माण्ड तो अनेक हैं और वहाँ रहनेवाले ब्रह्मादि भी अनेक हैं॥ २२-२३॥

श्रुत्वा स वाक्यं गत्वा चापृच्छद्वै देवतागणान्।
ते ऊचुर्विस्मयाविष्टा न जानेऽन्यान् सुरेश्वरान्॥ २४॥

पुनर्गत्वाऽब्रवीत्सोऽपि तैरुक्तं जगदम्बिकाम्।
उवाचानय विश्वेशं विष्णुं चाथ प्रजापतिम्॥ २५॥

ततः स समुपागत्य शिवविष्णुप्रजापतीन्।
अन्तःपुरं महादेव्याः प्रापयामास नारद॥ २६॥

इन्द्रः स्थितः पुरे बाह्ये दुःखितो दीनमानसः।
अदृष्ट्वा तां परामाद्यां साक्षात्प्रकृतिरूपिणीम्॥ २७॥

महेशप्रमुखास्ते तु मन्दिरद्वारमुत्तमम्।
सम्प्राप्य ददृशुर्देवीं रत्नसिंहासनोपरि॥ २८॥

प्रावासनां मुक्तकेशीं भीमनेत्रत्रयोज्ज्वलाम्।
चतुर्भुजां महाघोरां कोटिसूर्यसमप्रभाम्॥ २९॥

रत्नोत्तमसमूहेन ज्वलत्कुण्डलमण्डिताम्।
अनर्घ्यानेकरत्नौघभूषितां जलदद्युतिम्॥ ३०॥

दिगम्बरीं भीमदंष्ट्रां विश्ववन्द्यैरपि स्तुताम्॥ ३१॥

सर्वान्तःस्थामुत्तमस्थां मुण्डमालाविराजिताम्।
वीजितां रत्नदण्डेन चामरेण सखीगणैः॥ ३२॥

दुरीक्षां ते तदातीव कालानलसमप्रभाम्।
दक्षपार्श्वे महादेव्या महाकालं सदाशिवम्॥ ३३॥

ददृशुर्भीमनेत्रास्यं जटामुकुटमण्डितम्।
कपालखट्वाङ्गकरं मदघूर्णितलोचनम्॥ ३४॥

शशाङ्काङ्कितमूर्धानं भिन्नाञ्जननिभं प्रभुम्।
अनादिपुरुषं पूर्णं जगदन्तकरं परम्॥ ३५॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशं नागेन्द्रकृतभूषणम्।
द्वीपिचर्माम्बरधरं चिताभस्मविभूषितम्॥ ३६॥

यह सुनकर गणनायकने देवगणोंके पास जाकर उनसे पूछा। इसपर वे देवगण अत्यन्त चकित होकर बोले कि हम तो किन्हीं अन्य देवेश्वरोंको नहीं जानते॥ २४॥ तब गणनायकने पुनः जाकर उनकी बात भगवती जगदम्बिकासे कही, उन्होंने गणनायकको ब्रह्मा, विष्णु और शिवको लानेकी आज्ञा दी॥ २५॥ नारद! तब वे गणनायक लौटकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भगवतीके अन्तःपुरमें ले गये॥ २६॥ इन्द्र साक्षात् प्रकृतिरूपा आद्या भगवतीके दर्शनसे वञ्चित होकर दुःखी मनसे उस नगरीके बाहर ही खड़े रहे॥ २७॥

महेश आदि प्रमुख देवगणोंने अन्तःपुरके श्रेष्ठ द्वारपर आकर रत्नसिंहासनपर विराजमान महादेवीके दर्शन किये॥ २८॥ वे श्रेष्ठ आसनपर विराजमान थीं, उनके केशपाश खुले हुए थे, उनकी तीन भयानक तेजस्विनी आँखें थीं और वे चार भुजाओंसे सुशोभित हो रही थीं। कोटि सूर्योंके समान उनकी प्रभा थी और वे अत्यन्त भयावह थीं। उन्होंने श्रेष्ठ रत्नसमूहोंसे देदीप्यमान कुण्डल धारण कर रखे थे। वे अनेक बहुमूल्य रत्नोंके आभूषणोंसे सुशोभित थीं और मेघके समान कान्तिवाली थीं। विकराल दाढ़ोंसे युक्त वे दिगम्बरस्वरूपमें विराजमान थीं तथा विश्ववन्द्य देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे। सभीमें विद्यमान रहनेवाली तथा उत्तमलोकमें निवास करनेवाली, मुण्डमालासे सुशोभित उन जगदम्बाकी सेवामें सखियाँ रत्नजटित दण्डवाले चँवर डुला रही थीं॥ २९—३२॥ उसी समय उन त्रिदेवोंने कठिनाईपूर्वक जिनका दर्शन सम्भव था और जो कालाग्निके समान तेजस्विनी थीं, उन महादेवीकी दाहिनी ओर स्थित महाकाल सदाशिवको देखा॥ ३३॥

उनके नेत्र और मुख भय उत्पन्न करनेवाले थे। वे जटामुकुटसे सुशोभित थे तथा उन्होंने हाथमें कपाल और खट्वाङ्ग धारण कर रखा था एवं उनकी आँखें मदसे घूम रही थीं। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र सुशोभित था, उनकी आभा कज्जलके समान कृष्णवर्णकी थी। ऐसे अनादि पुरुष, लोकसंहारक, कोटि सूर्यके समान आभासे युक्त, सर्पका आभूषण धारण किये, व्याघ्रचर्मको धारण करनेवाले और चिताभस्मसे विभूषित परमेश्वरका उन्होंने दर्शन किया॥ ३४—३६॥

अथ ते दण्डवद्भूमौ निपत्य जगदीश्वरीम्।
प्रणेमुः परमेशानं महाकालं च नारद॥ ३७॥
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः।
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्महाकालेन तेन वै॥ ३८॥
एकत्वमनुसम्प्राप सहसा मुनिसत्तम।
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च न दृष्ट्वा तं सदाशिवम्॥ ३९॥
चिन्तयामासतुस्तौ तु क्व गतोऽसौ महेश्वरः।
इन्द्रस्य दर्शनं देव्या भविष्यति न वा किमु॥ ४०॥
इति चिन्तयतोर्वत्स तयोः सा जगदीश्वरी।
महाकालेन सहिता त्वदृश्या समभूत्क्षणात्॥ ४१॥
तत्रैव संस्थिता काली महाकालश्च शंकरः।
न तौ तन्मायया मुग्धौ ददृशाते महामुने॥ ४२॥
ततो ब्रह्मा च विष्णुश्च देव्या दर्शनकातरौ।
कृताञ्जलिपुटौ कालीं भक्त्या तुष्टुवतुर्मुने॥ ४३॥

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

नमामि त्वा विश्वकर्त्रीं परेशीं
नित्यामाद्यां सत्यविज्ञानरूपाम्।
वाचातीतां निर्गुणां चातिसूक्ष्मां
ज्ञानातीतां शुद्धविज्ञानगम्याम्॥ ४४॥
पूर्णां शुद्धां विश्वरूपां सुरूपां
देवीं वन्द्यां विश्ववन्द्यामपि त्वाम्।
सर्वान्तःस्थामुत्तमस्थानसंस्था-
मीडे कालीं विश्वसम्पालयित्रीम्॥ ४५॥
मायातीतां मायिनीं वापि मायां
भीमां श्यामां भीमनेत्रां सुरेशीम्।
विद्यां सिद्धां सर्वभूताशयस्था-
मीडे कालीं विश्वसंहारकर्त्रीम्॥ ४६॥
नो ते रूपं वेत्ति शीलं न धाम
नो वा ध्यानं नापि मन्त्रं महेशि।
सत्तारूपे त्वां प्रपद्ये शरण्ये
विश्वाराध्ये सर्वलोकैकहेतुम्॥ ४७॥

नारदजी! तब उन त्रिदेवोंने वेदवर्णित विविध स्तोत्रोंसे स्तुति करके भूमिपर दण्डवत् गिरकर जगदीश्वरी महादेवी और परमेश्वर महाकालको प्रणाम किया॥ ३७½॥ मुनिवर! इसी बीच शिवजी सहसा उन महाकालके साथ एकाकार हो गये। तब ब्रह्मा और विष्णुने सदाशिवको न देखकर यह विचार किया कि महेश्वर शिव कहाँ चले गये? उन्हें यह भी चिन्ता हुई कि इन्द्रको देवीके दर्शन होंगे अथवा नहीं॥ ३८—४०॥

वत्स! वे दोनों इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि वे जगदीश्वरी महादेवी महाकालके साथ उसी क्षण अदृश्य हो गयीं॥ ४१॥ महामुने! यद्यपि महाकाली और महाकाल शंकर वहीं उपस्थित थे, किंतु देवीकी मायासे प्रभावित ब्रह्मा और विष्णु उनको नहीं देख रहे थे॥ ४२॥ मुने! तब ब्रह्मा और विष्णु देवीके दर्शनके लिये व्याकुल होकर हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक महाकालीकी स्तुति करने लगे—॥ ४३॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले—सर्वसृष्टिकारिणी, परमेश्वरी, सत्यविज्ञानरूपा, नित्या, आद्याशक्ति! आपको हम प्रणाम करते हैं। आप वाणीसे परे हैं, निर्गुण और अति सूक्ष्म हैं, ज्ञानसे परे और शुद्ध विज्ञानसे प्राप्य हैं॥ ४४॥ आप पूर्णा, शुद्धा, विश्वरूपा, सुरूपा, वन्दनीया तथा विश्ववन्द्या हैं। आप सबके अन्तःकरणमें वास करती हैं एवं सारे संसारका पालन करती हैं। दिव्य स्थाननिवासिनी आप भगवती महाकालीको हमारा प्रणाम है॥ ४५॥ महामायास्वरूपा आप मायामयी तथा मायासे अतीत हैं, आप भीषण, श्यामवर्णवाली, भयंकर नेत्रोंवाली परमेश्वरी हैं। आप सिद्धियोंसे सम्पन्न, विद्यास्वरूपा, समस्त प्राणियोंके हृदयप्रदेशमें निवास करनेवाली तथा सृष्टिका संहार करनेवाली हैं, आप महाकालीको हमारा नमस्कार है॥ ४६॥ महेश्वरी! हम आपके रूप, शील, दिव्य धाम, ध्यान अथवा मन्त्रको नहीं जानते। शरण्ये! विश्वाराध्ये! हम सारी सृष्टिकी कारणभूता और सत्तास्वरूपा आपकी शरणमें हैं॥ ४७॥

द्यौस्ते शीर्षं नाभिदेशो नभश्च
चक्षूंषि ते चन्द्रसूर्यानलास्ते।
उन्मेषास्ते सुप्रबोधो दिवा च
रात्रिर्मातश्चक्षुषोस्ते निमेषम्॥ ४८॥

वाक्यं देवा भूमिरेषा नितम्बं
पादौ गुल्फं जानुजङ्घस्त्वधस्ते।
प्रीतिर्धर्मोऽधर्मकार्यं हि कोपः
सृष्टिर्बोधः संहृतिस्ते तु निद्रा॥ ४९॥

अग्निर्जिह्वा ब्राह्मणास्ते मुखाब्जं
संध्ये द्वे ते भ्रूयुगं विश्वमूर्तिः।
श्वासो वायुर्बाहवो लोकपालाः
क्रीडा सृष्टिः संस्थितिः संहृतिस्ते॥ ५०॥

एवंभूतां देवि विश्वात्मिकां त्वां
कालीं वन्दे ब्रह्मविद्यास्वरूपाम्।
मातः पूर्णे ब्रह्मविज्ञानगम्ये
दुर्गेऽपारे साररूपे प्रसीद॥ ५१॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं ताभ्यां स्तुता काली प्रसन्ना मुनिसत्तम।
महाकालेन सहिता भूयः संदर्शनं ददौ॥ ५२॥

भूयश्च शंकरस्तस्मान्महाकालशरीरतः।
निःससार महाबाहू रजताद्रिसमप्रभः॥ ५३॥

स प्राह परमेशानीमिन्द्रोऽपि समुपागतः।
त्वां द्रष्टुं भक्तिभावेन पुरबाह्ये स्थितस्तु सः॥ ५४॥

आज्ञापय तमानीय त्वत्समीपं महेश्वरि।
दर्शयामि परामेतां मूर्तिं ते दिव्यलक्षणाम्॥ ५५॥

इति शम्भोः समाकर्ण्य वचनं जगदम्बिका।
उवाच तं महादेवं महाकाली महामते॥ ५६॥

देव्युवाच

यद्यानेतुं महादेव देवराजं ममालये।
समिच्छसि तदैतत्त्वं कुरु कार्यं सुरोत्तम॥ ५७॥

माता! द्युलोक आपका सिर है, नभोमण्डल आपका नाभिप्रदेश है। चन्द्र, सूर्य और अग्नि आपके त्रिनेत्र हैं, आपका जगना ही सृष्टिके लिये दिन और जागरणका हेतु है एवं आपका आँखें मूँद लेना ही सृष्टिके लिये रात्रि है॥ ४८॥

देवता आपकी वाणी हैं, यह पृथ्वी आपका नितम्बप्रदेश तथा पाताल आदि नीचेके भाग आपके जङ्घा, जानु, गुल्फ और चरण हैं। धर्म आपकी प्रसन्नता और अधर्म कार्य आपके कोपके लिये है। आपका जागरण ही इस संसारकी सृष्टि है और आपकी निद्रा ही इसका प्रलय है॥ ४९॥ अग्नि आपकी जिह्वा है, ब्राह्मण आपके मुखकमल हैं। दोनों संध्याएँ आपकी दोनों भ्रुकुटियाँ हैं, आप विश्वरूपा हैं, वायु आपका श्वास है, लोकपाल आपके बाहु हैं और इस संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा संहार आपकी लीला है॥ ५०॥ पूर्णे! ऐसी सर्वस्वरूपा आप महाकालीको हमारा प्रणाम है। आप ब्रह्मविद्यास्वरूपा हैं। ब्रह्मविज्ञानसे ही आपकी प्राप्ति सम्भव है। सर्वसाररूपा, अनन्तस्वरूपिणी माता दुर्गे! आप हमपर प्रसन्न हों॥ ५१॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उन दोनोंके स्तुति करनेपर भगवती महाकाली प्रसन्न हुईं और उन्होंने महाकालके साथ उन्हें पुनः दर्शन दिया॥ ५२॥ महाबाहु भगवान् शंकर भी महाकालके उस शरीरसे पुनः बाहर निकलकर रजतपर्वतके समान आभासे युक्त हो सुशोभित होने लगे। उन्होंने जगदम्बासे कहा कि इन्द्र भी भक्तिभावसे आपके दर्शनहेतु आये हैं और नगरके बाहर प्रतीक्षामें खड़े हैं। महेश्वरी! आप आज्ञा दें तो आपके पास लाकर आपके इस दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रेष्ठ विग्रहके उन्हें दर्शन करा दें॥ ५३—५५॥ महामते! भगवान् शंकरके ये वचन सुनकर जगदम्बिका महाकालीने महादेवसे कहा—॥ ५६॥

देवी बोलीं—महादेव! यदि आप देवराज इन्द्रको मेरे दिव्य लोकमें लाना चाहते हैं तो सुरश्रेष्ठ! आप ऐसा करें॥ ५७॥

तस्य भूतं महत्पापं दधीचेरस्थिसंग्रहात्।
तन्नष्टं प्रायशो देव मत्पुराद्बहिरागमात्॥ ५८॥
अपरं विद्यते किञ्चित्तस्योपशमनाय तु।
अन्तर्गेहरजः किञ्चिद्देहि तस्मै महामते॥ ५९॥
ततो निर्धूतपापः स समायातु ममान्तिके।
सम्प्राप्स्यति च मे दृष्टिं दुर्लभामपि वासवः॥ ६०॥

श्रीमहादेव उवाच

इति काल्या समादिष्टः सोऽपि गत्वा महेश्वरः।
अन्तर्गेहरजस्तस्मै दत्त्वा पुरमवेशयत्॥ ६१॥
तत इन्द्रः प्रविश्यान्तर्गेहं देव्या महामुने।
प्रणम्य पादे पादे तां निपत्य धरणीतले॥ ६२॥
सम्प्राप मन्दिरद्वारं शिवेन सह नारद।
दृष्ट्वा त्रैलोक्यजननीं दुर्लभां त्रिदशेश्वरैः॥ ६३॥
सहस्राक्षोऽपतद्भूमौ प्रणमद्दण्डवत्तदा।
उत्थाय वेदवेदाङ्गकथितैः स्तोत्रकैरपि॥ ६४॥
तुष्टाव तां जगद्वन्द्यां महाकालीं सुरोत्तमः।
ततः पुनर्मुनिश्रेष्ठ प्रणिपत्य महेश्वरीम्।
स्वं स्वं स्थानमुपाजग्मुर्ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः॥ ६५॥
इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ यत्पृष्टं भवता मम।
पुण्यं सुमहदाख्यानं महाकालीप्रदर्शनम्॥ ६६॥
य इदं शृणुयाद्भक्त्या पठेद्वा प्रयतो नरः।
तस्य नो विद्यते पापमपि ब्रह्मवधादिजम्॥ ६७॥
भवत्यपि महापुण्यं अश्वमेधशतोद्भवम्।
आरोग्यं विपुलं वित्तं पुत्रपौत्रादिसम्पदः॥ ६८॥
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां वा दिनक्षये।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा स देव्याः पदमाप्नुयात्॥ ६९॥
अमावस्यानिशीथे वा पौर्णमास्यां पठेच्च यः।
गवामयुतदानस्य सम्यक् फलमवाप्नुयात्॥ ७०॥
विनश्यन्त्यापदः सद्यः सम्पदाशु प्रवर्तते।
न भयं विद्यते नापि शत्रुतस्तस्य नारद॥ ७१॥
संग्रामे विजयो नित्यं भवेद्देव्याः प्रसादतः॥ ७२॥

देव! दधीचिकी हड्डियाँ ग्रहण करनेका उसका जो [ब्रह्महत्यारूपी] महापाप था, वह तो मेरे धामके बाहर आनेसे ही प्रायः नष्ट हो गया है। महामते! जो कुछ बचा है उसके शमनके लिये मेरे इस अन्तर्गृहके थोड़े-से रजकण उन्हें दे दें। तदनन्तर पापरहित हुआ इन्द्र जब मेरे समीप आयेगा तब मेरे दुर्लभ दर्शन उसे प्राप्त हो सकेंगे॥ ५८—६०॥

श्रीमहादेवजी बोले—महाकालीसे इस प्रकार आदेश पाकर महेश्वर शिवने वहाँ जाकर महादेवीके अन्तःपुरकी रज इन्द्रको देकर उसे दिव्यलोकमें प्रवेश कराया॥ ६१॥ महामुने! इन्द्रने महादेवीके अन्तःपुरमें प्रवेश करके पद-पदपर पृथ्वीतलपर गिरकर जगदम्बिकाके चरणोंमें प्रणाम किया॥ ६२॥ नारदजी! इन्द्र भगवान् सदाशिवके साथ भगवतीके भवनके द्वारपर आये और उन्होंने देवदुर्लभ त्रैलोक्यजननीको देखकर भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर उन्हें प्रणाम किया, तत्पश्चात् सुरश्रेष्ठ इन्द्रने उठकर वेद-शास्त्रोंमें वर्णित स्तोत्रोंसे उन जगद्वन्द्या महाकालीका स्तवन किया। तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ! महेश्वरीको पुनः प्रणाम करके ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवगण अपने-अपने लोकको चले गये॥ ६३—६५॥

मुनिश्रेष्ठ! आपने मुझसे जो पूछा था वह महाकालीके दिव्य दर्शनका अत्यन्त पुण्यमय आख्यान मैंने आपसे बताया॥ ६६॥ जो मनुष्य भक्तिके साथ प्रयत्नपूर्वक इस आख्यानका पाठ अथवा श्रवण करता है उसके ब्रह्महत्याजनित पाप नहीं रहते हैं। उसे सौ अश्वमेधयज्ञोंसे होनेवाले महापुण्यकी प्राप्ति होती है तथा स्वास्थ्य, अपार सम्पत्ति और पुत्र-पौत्रादिका सुख प्राप्त होता है॥ ६७-६८॥ जो मनुष्य अष्टमी, चतुर्दशी अथवा नवमीकी रात्रिको ध्यानपूर्वक इसका पाठ करता है, वह देवीके श्रेष्ठ लोकको प्राप्त करता है। अमावास्याकी अर्द्धरात्रिमें तथा पूर्णिमाको जो इसका पाठ करता है, उसे दस हजार गायोंके दानका पूर्ण फल प्राप्त होता है। नारदजी! उसके संकट तुरंत नष्ट हो जाते हैं और शीघ्र ही उसकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त होता है। उसे शत्रुओंसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता और जगदम्बाकी कृपासे संग्राममें उसकी सदा ही विजय होती है॥ ६९—७२॥

पितृश्राद्धदिने यस्तु पठेदेतत्समाहितः।
संतुष्टा पितरस्तस्य भुञ्जते कव्यमुत्तमम्॥ ७३॥

अन्यायोपात्तवित्तादिकृतं वापि महामुने।
पितॄणां परमप्रीतिदायकं तद्भवेदिति॥ ७४॥

पितरोंके श्राद्धदिवसपर जो एकाग्रचित्त होकर इसका पाठ करता है, उसके पितृगण संतुष्ट होकर श्रेष्ठ कव्यका भोग करते हैं॥ ७३॥ महामुने! यदि अन्यायसे उपार्जित धनसे भी श्राद्ध किया जाता है अथवा इस प्रकारकी अन्य कोई त्रुटि हो जाती है तो भी पितरोंके लिये वह श्राद्ध परम प्रीतिदायक हो जाता है॥ ७४॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीभगवतीद्वारगमनाद्देवराजब्रह्महत्याहरणोपाख्याने त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'श्रीभगवतीद्वारगमनसे देवराजब्रह्महत्याहरणोपाख्यान' नामक तिरसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ अध्याय

भगवान् शंकरके गायनसे विष्णुका द्रवीभूत होना, ब्रह्माजीद्वारा उस द्रवरूप गङ्गाको अपने कमण्डलुमें धारण करना, भगवती गङ्गाका द्रवमयी हो पृथ्वीपर आना

श्रीनारद उवाच

कथितं महदाख्यानं कृपया परमेश्वर।
धन्यं पुण्यतमं दिव्यं महापातकनाशनम्॥ १॥

यत्पृष्टं भगवत्यास्ते तत्त्वमव्यक्तमद्भुतम्।
जन्मकर्मादिकं चापि नित्याया अपि लीलया॥ २॥

तत्रांशेनावतीर्णायाः प्रकृत्या हिमवद्गृहे।
गङ्गायाः श्रोतुमिच्छामि भूयश्चरितमुत्तमम्॥ ३॥

यथा द्रवमयी भूता मूर्तिरेकाघहारिणी।
यथा पुनाति सा देवी त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४॥

यथा चावातरत्पृथ्व्यां लोकानां त्राणहेतवे।
एतदन्यच्च माहात्म्यं विस्तरेण वद प्रभो॥ ५॥

श्रीनारदजी बोले—परमेश्वर! आपने कृपापूर्वक महापापनाशक, पुण्यप्रद, धन्य करनेवाला और दिव्य आख्यान मुझे सुनाया। मैंने जैसा पूछा था—आपने भगवतीके उस अद्भुत तथा रहस्यमय तत्त्वको और उन नित्या महामायाके जन्मकर्मादिककी लीलाकथाएँ भी सुनायीं। अब आगे उन भगवती परा प्रकृतिके अंशसे हिमवान्‌के घरमें उत्पन्न भगवती गङ्गाके दिव्य चरित्रको सुननेकी मेरी इच्छा है॥ १—३॥ प्रभो! जिस प्रकार जगदम्बाकी वह एकमात्र पापहारिणी द्रवमयी मूर्ति उत्पन्न हुई और जिस प्रकार वे इस चराचर त्रिलोकको पवित्र करती रहती हैं और जिस प्रकार संसारके उद्धारहेतु उन्होंने पृथ्वीपर अवतार लिया—यह सब तथा अन्य भी उनका माहात्म्य मुझे विस्तारसे बताइये॥ ४-५॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि पुण्यात्पुण्यतमं परम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापी जन्मसंसारबन्धनात्॥ ६॥

पूर्वं विष्णुः समाकर्ण्य गङ्गोद्वाहमहोत्सवम्।
दिदृक्षुः शंकरं हृष्टं गङ्गया सहितं प्रभुम्।
वैकुण्ठमानयामास स्वपुरीं प्रीतमानसः॥ ७॥

ब्रह्माद्याश्चापि वै देवास्तत्र याता महामुने।
द्रष्टुं तं परमेशानं विष्णुं च जगतः प्रभुम्॥ ८॥

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! सुनो, मैं तुम्हें पुण्योंमें भी परम श्रेष्ठ पुण्यस्वरूपिणी कथा सुनाता हूँ, जिसे सुनकर पापी मनुष्य भी जन्म-मरणवाले इस संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ६॥ प्राचीन कालमें गङ्गाके विवाह-महोत्सवकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने गङ्गासहित प्रसन्न हुए भगवान् शंकरको देखनेकी इच्छासे सत्कारपूर्वक उन्हें अपनी वैकुण्ठपुरीमें बुलाया। महामुने! ब्रह्मादि देवगण भी परमेश्वर शिव तथा जगन्नाथ विष्णुके दर्शनकी लालसासे वहाँ पहुँचे॥ ७-८॥

तत्र श्रुत्वा चापरेऽपि मरीच्याद्या महर्षयः।
विविशुश्चारु निर्माय सभां दिव्यासनोपरि॥ ९ ॥
रत्नसिंहासने रम्ये उपवेश्य महेश्वरम्।
हृष्टः प्राह जगन्नाथः कुरु गानं महेश्वर॥ १०॥
सतीवियोगदुःखार्तश्चिरं विह्वलमानसः।
स्थितोऽसि सा सतीयं त्वां पुनराप निजांशतः॥ ११॥
दृष्ट्वा त्वां सुप्रसन्नास्यं सगङ्गं हृष्टमानसम्।
सर्व एव प्रहृष्टाः स्मो वयं त्रिदशवन्दित॥ १२॥
तद्गानमतिसम्प्रीतिजनकं त्वन्मुखाच्च्युतम्।
श्रोतुमिच्छामि विश्वेश कुरु गानं महेश्वर॥ १३॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोरमिततेजसः।
शम्भुः सुललितं गानं चक्रेऽत्यद्भुतमुत्तमम्॥ १४॥
प्रथमं गानमाकर्ण्य ब्रह्माद्यास्त्रिदशेश्वराः।
मुमुहुः सर्व एवातिमनोज्ञं मुनिसत्तम॥ १५॥
द्वितीयं समुपाकर्ण्य वैकुण्ठेशोऽथ नारद।
विसंज्ञः पतितो भूमौ रोमाञ्चितकलेवरः॥ १६॥
तृतीयं गानमाकर्ण्य स एव परमेश्वरः।
बभूव द्रवरूपी तु क्षणेन मुनिसत्तम॥ १७॥
विष्णौ जलमयीभूते वैकुण्ठं प्लावितं पुरम्।
बभूव व्याप्तं तोयेन सर्वतो मुनिसत्तम॥ १८॥
ततः प्राप्य प्रबोधं तु ब्रह्माद्यास्त्रिदशोत्तमाः।
ददृशुः सकलं व्याप्तं तोयेन हरिमन्दिरम्॥ १९॥
अन्यच्च जलसम्पूर्णं स्थानं तस्मिन्पुराजिरे।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा हृषीकेशं विस्मयं परमं ययुः॥ २०॥
ब्रह्मा तदुपधार्याथ शिवगानसमुद्भवम्।
हरेर्द्रवत्वं तत्तोयं कमण्डलुमुपानयत्॥ २१॥
तत्तोयप्राप्तिमात्रेण कमण्डलुगता तु या।
गङ्गाया मूर्तिरेकासीद्द्रवरूपापरा च सा॥ २२॥
ब्रह्मा कमण्डलौ कृत्वा गङ्गां नीरमयीं मुने।
प्रययौ स्वपुरं लक्ष्मीमाश्वास्य च सरस्वतीम्॥ २३॥

यह बात सुनकर मरीचि आदि दूसरे महर्षिगण भी एक सुन्दर सभाका निर्माण करके वहाँ दिव्य आसनोंपर विराजमान हो गये। एक सुन्दर रत्नसिंहासनपर महेश्वर शिवको बैठाकर प्रसन्नचित्तसे भगवान् विष्णुने निवेदन किया—महेश्वर! कोई गीत सुनाइये॥ ९-१०॥ आप दीर्घकालतक सतीके वियोगसे दुःखित और व्यग्रचित्त रहे हैं। उन सतीने अपने अंशावतारसे आपको पुनः प्राप्त कर लिया है। देववन्दित! आपको गङ्गाके साथ प्रसन्नचित्त और प्रसन्नमुख देखकर हम सब भी बड़े प्रसन्न हैं। विश्वेश! इसलिये अत्यन्त प्रीति उत्पन्न करनेवाला आपके मुखसे निकला हुआ गान हम सुनना चाहते हैं। महेश्वर! आप कृपापूर्वक गायन करें॥ ११—१३॥ अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके ऐसे वचन सुनकर भगवान् शंकरने अत्यन्त अद्भुत, श्रेष्ठ और मनोहर गायन प्रस्तुत किया॥ १४॥

मुनिश्रेष्ठ! अत्यन्त मनोहारी पहले गीतको सुनकर सभी ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवगण मुग्ध हो गये। नारदजी! दूसरे गीतको सुनकर वैकुण्ठपति भगवान् विष्णुके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे संज्ञाशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। मुनिश्रेष्ठ! तीसरे गीतको सुनकर वे परमेश्वर भगवान् विष्णु क्षणभरमें द्रवीभूत हो गये। मुनिश्रेष्ठ! विष्णुके द्रवीभूत होनेसे वैकुण्ठमें बाढ़ आ गयी और चारों ओर जल व्याप्त हो गया॥ १५—१८॥ तब ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवगणोंने सचेत होकर समस्त विष्णुधाम वैकुण्ठको जलसे व्याप्त देखा। उस लोकके अन्य सभी स्थानोंको विष्णुकी जलमयी मूर्तिसे व्याप्त देख-देखकर वे अत्यन्त विस्मित हुए॥ १९-२०॥ तदनन्तर शिवके गायनसे भगवान् विष्णुकी द्रवरूपताको जानकर ब्रह्माजीने उस जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया। गङ्गाकी एक मूर्ति [भगवान् शिवके साथ] थी और उस कमण्डलुमें प्राप्त जलसे उनकी दूसरी द्रवमयी मूर्ति भी प्राप्त हो गयी॥ २१-२२॥ मुने! गङ्गाकी जलमयी मूर्तिको कमण्डलुमें लेकर लक्ष्मी और सरस्वतीको आश्वस्त करके ब्रह्माजी अपने धामको चले गये॥ २३॥

शिवस्तु गङ्गया सार्धं कैलासं समुपागमत्।
गताश्चान्ये दिवं सर्वे त्रिदशा अपि नारद॥ २४॥

एवं द्रवमयी भूत्वा गङ्गा ब्रह्मकमण्डलौ।
संस्थिता मुनिशार्दूल देवी त्रैलोक्यपावनी॥ २५॥

इदानीं शृणु सा देवी प्राप्य विष्णुपदं शुभा।
विष्णुपादोद्भवेत्याख्यामनुप्राप सुरेश्वरी॥ २६॥

ततः सा प्रार्थिता पृथ्व्यां यथा चावातरत्स्वयम्।
परित्राणाय लोकानां चतुर्दिक्षु चतुर्मुखी॥ २७॥

भगवान् शिव भी गङ्गाको साथ लेकर कैलास आ गये। नारदजी! सभी अन्य देवगण भी स्वर्गको चले गये॥ २४॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार द्रवमयी होकर त्रैलोक्यपावनी गङ्गा ब्रह्माके कमण्डलुमें स्थित हो गयीं॥ २५॥ जिस प्रकार देवी गङ्गा विष्णुपद पहुँचीं और उन सुरेश्वरीने 'विष्णुपादोद्भवा' नाम प्राप्त किया और लोकोद्धारहेतु प्रार्थना किये जानेपर उन्होंने जिस प्रकार पृथ्वीपर अवतार लिया तथा जैसे चतुर्मुखी होकर सबके कल्याणके लिये चारों दिशाओंमें वे बह निकलीं, अब उस आख्यानको सुनो॥ २६-२७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे शिवनारदसंवादे गङ्गाया द्रवरूपवर्णने चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत शिव-नारद-संवादमें 'गङ्गाका द्रवरूपवर्णन' नामक चौंसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका वामनरूपमें अवतार लेकर राजा बलिसे तीन पग भूमिका दान लेना, तीन पगोंमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको नापकर बलिको पाताल भेज देना

श्रीमहादेव उवाच

विरोचनसुतो राजा बलिर्दैत्यगणाधिपः।
जहार देवराजस्य त्रैलोक्यं धर्मतत्परः॥ १॥

ततोऽदितिर्देवमाता पुत्रराज्यापहारणे।
दुःखिता प्रार्थयामास विष्णुं त्रिजगतां प्रभुम्॥ २॥

ततः प्रसन्नो भगवान्प्रत्यक्षं समुपागतः।
उवाच देवमातस्त्वं वृणु यत्ते समीहितम्।
दास्यामि परमप्रीत्या तपसोग्रेण तोषितः॥ ३॥

अदितिरुवाच

यदि प्रसन्नो भगवन्वरं मे त्वं प्रयच्छसि।
तदा बलिहृतं राज्यमिन्द्राय त्वं समर्पय॥ ४॥

श्रीभगवानुवाच

वैरोचनो न वध्यो मे प्रह्लादान्वयसम्भवः।
मद्भक्तो धर्मनिष्ठश्च यशस्वी लोकविश्रुतः॥ ५॥

तस्माद्वामनरूपेण सम्भूय त्वयि कश्यपात्।
याच्ञया समुपाहृत्य छलाल्लोकत्रयं पुनः।
वासवाय प्रदास्यामि त्वत्पुत्रायादिते ध्रुवम्॥ ६॥

श्रीमहादेवजी बोले—विरोचनपुत्र धर्मात्मा दैत्यराज बलिने देवराज इन्द्रसे त्रैलोक्यका राज्य छीन लिया। तब देवमाता अदितिने अपने पुत्रोंका राज्य छिन जानेसे दुःखी होकर त्रिलोकीनाथ विष्णुकी प्रार्थना की॥ १-२॥ तब प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और कहा कि देवमाता! तुम यथेच्छ वरदान माँग लो, तुम्हारी उग्र तपस्यासे सन्तुष्ट हुआ मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें [वह] प्रदान करूँगा॥ ३॥

अदिति बोलीं—भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो बलिद्वारा अपहृत इन्द्रका राज्य उसे लौटा दें॥ ४॥

श्रीभगवान् बोले—प्रह्लादके वंशमें उत्पन्न होनेके कारण विरोचनपुत्र बलि मेरे लिये अवध्य है। वह धर्मनिष्ठ, यशस्वी, लोकविख्यात और मेरा भक्त है। इसलिये देवी अदिति! महर्षि कश्यपसे आपके गर्भसे वामनरूपमें अवतरित होकर मैं छलपूर्वक भिक्षामें त्रिलोकीका राज्य लेकर तुम्हारे पुत्र इन्द्रको पुनः दे दूँगा॥ ५-६॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्यै वरं दत्त्वा भगवान्पुरुषोत्तमः।
सहसाऽन्तर्दधे विष्णुः सर्वलोकेश्वरेश्वरः॥ ७॥
अथ विष्णुर्देवमातुर्गर्भगेहमुपागमत्।
जन्मने दैत्यराजस्य राज्यापहरणेच्छया॥ ८॥
सा च तं सुषुवे पुत्रं वामनं चारुरूपिणम्।
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सुचारुमुखपङ्कजम्॥ ९॥
स ह्येकदा द्विजैः सार्धं द्विजरूपी जनार्दनः।
आससाद महात्मानं बलिं धर्मपरायणम्॥ १०॥
सोऽयाचत बलिं भूमिं त्रिपादपरिसम्मिताम्।
तच्छ्रुत्वा चाह तं राजा स्वल्पं किं याचसे द्विज॥ ११॥
द्वीपं वा वर्षमेकं वा ग्रामं वापि तदर्धकम्।
न याचसे कथं विप्र दास्ये तुभ्यं न संशयः॥ १२॥
स्वल्पं दानं द्विजसुत दातुः कीर्तिविनाशकम्।
तस्मात्स्वल्पतरं दातुं न तुभ्यं रोचते मनः॥ १३॥

श्रीवामन उवाच

किं तेन ते महाराज यन्मया काङ्क्षितं तव।
तदेव देहि नाकीर्तिस्तव तेन भविष्यति॥ १४॥
मह्यं त्रिपादभूदानपुण्यं कीर्तिकरं परम्।
भविष्यति महाराज यथा भूतं न भावि च॥ १५॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं वचनमाकर्ण्य वामनस्य महात्मनः।
सभ्या ऊचुर्महाराजं बलिं धर्मपरायणम्॥ १६॥

सभ्या ऊचुः

यद्याचते द्विजसुतस्तदेव त्वं प्रयच्छ भो।
ग्रहीतुस्तुष्टिदं दानं सफलं कीर्तिवर्धनम्॥ १७॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा तस्मै द्विजातये।
त्रिपादसम्मितां भूमिं दातुं तिलकुशं दधे॥ १८॥
एतस्मिन्नेव काले तु दैत्यानां गुरुराह तम्।
क्षणं तिष्ठ महाराज वचनं मेऽवधारय॥ १९॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार उसे वरदान देकर सर्वलोकाधिपति पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सहसा अन्तर्धान हो गये॥ ७॥ तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिका राज्य अपहरण करनेकी इच्छासे जन्म लेनेके लिये देवमाता अदितिके गर्भमें प्रवेश किया॥ ८॥

अदितिने सुन्दर रूपवाले पुत्र वामनको जन्म दिया, जो सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त थे तथा जिनका मुखकमल अत्यन्त मनोहर था॥ ९॥ एक बार ब्राह्मणरूपी वे जनार्दन अन्य ब्राह्मणोंके साथ धर्मपरायण महात्मा बलिके पास आये। उन्होंने बलिसे तीन पग भूमिकी याचना की; जिसे सुनकर राजा बलिने कहा—द्विज! इतनी छोटी याचना क्यों करते हो। विप्र! कोई द्वीप, वर्ष, ग्राम अथवा आधा ग्राम ही क्यों नहीं माँग लेते! मैं निश्चय ही आपको वह समर्पित कर दूँगा। ब्राह्मणपुत्र! थोड़ा दान देनेसे दाताकी कीर्ति नष्ट होती है, इसलिये इतना स्वल्प दान आपको देनेका मन नहीं करता॥ १०—१३॥

श्रीवामन बोले—महाराज! आपको इससे क्या प्रयोजन है? मैंने जो माँगा है, वही मुझे दे दें। इससे आपका कोई अपयश नहीं होगा। महाराज! मुझे तीन पग भूमिदानका पुण्य आपके लिये अत्यन्त कीर्तिकर होगा, जैसी कीर्ति न किसीकी हुई और न भविष्यमें होगी॥ १४-१५॥

श्रीमहादेवजी बोले—महात्मा वामनके ऐसे वचन सुनकर सभासदोंने धर्मात्मा महाराज बलिसे कहा—॥ १६॥

सभासदोंने कहा—ये ब्राह्मणपुत्र जो माँगते हैं, आप वही दे दें; क्योंकि दान लेनेवालेको सन्तुष्ट करनेवाला दान ही सफल और कीर्ति बढ़ानेवाला होता है॥ १७॥

श्रीमहादेवजी बोले—उनकी यह बात सुनकर राजाने उस ब्राह्मणको तीन पैरके मापकी भूमि देनेके लिये तिल और कुश हाथमें लिया॥ १८॥ उसी समय दैत्यगुरु शुक्राचार्यने दैत्यराज बलिसे कहा—महाराज! क्षणभर ठहरें और मेरी बात ध्यानसे सुनें!

नायं द्विजसुतो नूनं द्विजरूपी जनार्दनः।
मायया वामनो भूत्वा त्वदन्तिकमुपागतः॥ २०॥

यद्याचते मुहुस्तत्र त्रिपादपरिसम्मिताम्।
भूमिं तदिन्द्रकार्यार्थं निश्चितं विद्धि भूपते॥ २१॥

त्वयैतस्मै यदि पुनस्त्रिपादपरिसम्मिता।
भूमिः प्रदीयते तर्हि तव लोकत्रयं ध्रुवम्।
नेष्यत्ययं चातिखर्वो दातुमिन्द्राय निश्चितम्॥ २२॥

बलिरुवाच

कुलदेवः कथं विष्णुर्मम लोकत्रयं गुरो।
सम्प्रदास्यति चेन्द्राय मत्तो नीत्वा छलेन वा॥ २३॥

भृगुरुवाच

नासाध्यं विद्यते विष्णोर्देवकार्यानुरोधिनः।
किञ्चिदत्र महाराज दारुणं कर्म निश्चितम्॥ २४॥

स एव भगवान्नूनमदित्या गर्भसम्भवः।
मायया वामनो भूत्वा त्वत्तो भूमिं प्रयाचते॥ २५॥

तस्माद्राजंस्त्वमेतस्मै भूमिं मा देहि कश्चन।
यदि त्रैलोक्यराज्यं त्वं समिच्छसि महामते॥ २६॥

बलिरुवाच

दास्यामीत्येवमुक्त्वाहं न दास्ये वा कथं गुरो।
दास्यामि वा कथं भूमिं छलग्राही ह्ययं यदि॥ २७॥

श्रीमहादेव उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा शुक्रो दानवपूजितः।
मुहुस्तं वारयामास भूमिदानसमुद्यतम्॥ २८॥

तच्छ्रुत्वा स तु धर्मात्मा तूष्णींभूय महामुने।
निश्चित्य चेतसा दानं गुरोर्वचनमब्रवीत्॥ २९॥

बलिरुवाच

गुरो यदि स्वयं विष्णुर्मायावामनरूपधृक्।
त्रैलोक्यं याचते तर्हि किं मे भाग्यमतः परम्॥ ३०॥

यस्य प्रीतिं समुद्दिश्य दानं किमपि मानवः।
कुर्वन्यत्फलमाप्नोति तदनन्ततमं मतम्॥ ३१॥

तस्मै वामनरूपाय विष्णवे द्विजरूपिणे।
त्रैलोक्यं सम्प्रदास्यामि किं मे भाग्यमतः परम्॥ ३२॥

ये सामान्य ब्राह्मणपुत्र नहीं हैं। निश्चय ही ये ब्राह्मणरूपी भगवान् विष्णु हैं, जो छलसे वामनका रूप धारण करके आपके पास आये हैं। राजन्! ये बार-बार जो आपसे तीन पग परिमाणकी भूमिकी याचना कर रहे हैं, वह निश्चय ही इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेहेतु है, ऐसा जानें। यदि आप इन्हें तीन पग परिमाणकी भूमिका दान कर देते हैं तो निश्चय ही आपका त्रिलोकीका साम्राज्य ये वामन शीघ्र इन्द्रको देनेके लिये ले जायँगे॥ १९—२२॥

बलि बोले—भगवान् विष्णु तो हमारे कुलदेवता हैं, गुरो! वे भला छलपूर्वक त्रिलोकीका राज्य मुझसे छीनकर इन्द्रको क्यों देंगे!॥ २३॥

भृगु बोले—महाराज! देवताओंका कार्य सम्पादन करनेमें लगे हुए विष्णुके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। वे कोई भी कठोर कार्य उस निमित्त कर सकते हैं। निश्चित वे भगवान् विष्णु ही अदितिके गर्भसे वामनरूपमें जन्म लेकर छलपूर्वक आपसे भूमिकी याचना कर रहे हैं। इसलिये राजन्! यदि यह त्रिलोकीका साम्राज्य आपको अपने पास रखना है तो आप इन्हें कोई भूमिदान न करें॥ २४—२६॥

बलि बोले—गुरो! 'दूँगा'—ऐसा कहकर अब भला इन्हें दान कैसे न दूँ और यदि ये छलपूर्वक दान लेने आये हैं तो इन्हें भूमि कैसे दूँ?॥ २७॥

श्रीमहादेवजी बोले—राजाकी यह बात सुनकर दानवोंसे पूजित शुक्राचार्यने भूमिदानके लिये उद्यत बलिको पुनः रोका। महामुने! शुक्राचार्यकी बात सुनकर कुछ देर मौन रहकर धर्मात्मा बलिने अपने मनमें दान करनेका निश्चय किया और गुरुजीसे ऐसा कहा—॥ २८-२९॥

बलि बोले—गुरो! यदि भगवान् विष्णु स्वयं छलसे वामनका रूप धारण करके मुझसे त्रिलोकीका राज्य माँगें तो इससे बड़ा मेरा क्या सौभाग्य होगा! जिनकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे मनुष्य जो भी दान करता है, उसका उसे अनन्त फल प्राप्त होता है, ब्राह्मणरूपमें पधारे उन्हीं वामनरूप विष्णुको यदि मैं त्रिलोकीका दान करूँ तो यह मेरा परम सौभाग्य होगा॥ ३०—३२॥

विष्णोः सम्प्रीतये कर्म न करोति विमूढधीः।
करोति यस्तु सन्क्वापि निमज्जति न वै गुरो॥ ३३॥

तस्माद्वामनरूपाय विष्णवे द्विजरूपिणे।
त्रिपादभूमिं दास्यामि प्रीतिं तस्य समुद्दिशन्॥ ३४॥

इत्युक्त्वा स गुरुं राजा विष्णोः प्रीतिं समुद्दिशन्।
त्रिपादसम्मितां भूमिं ददौ तस्मै परात्मने॥ ३५॥



स स्वस्तीत्येवमाभाष्य वामनो मुनिसत्तम।
विश्वरूपी बभौ विष्णुस्त्रिपादो जगदीश्वरः॥ ३६॥

तस्यैकं तु पदं वत्स ब्रह्माण्डं स्फोटयत्तदा।
ऊर्ध्वं जगाम ब्रह्माण्डे तदा तस्मिन्पदाम्बुजे॥ ३७॥

कमण्डलुस्थितं तत्तु तोयं प्रादात्प्रजापतिः।
तदा नीरमयी गङ्गा प्राप्य विष्णोः परं पदम्।
तत्रैवावस्थितिं चक्रे सर्वपापप्रणाशिनी॥ ३८॥

विष्णुस्तु प्राह राजानं बलिं धर्मपरायणम्।
सापराध इव स्पृष्ट्वा पादेनैकेन तच्छिरः॥ ३९॥

तव लोकत्रयं वत्स न्यस्तं तिष्ठतु साम्प्रतम्।
शक्राय तावत्पातालं व्रज त्वं सह दानवैः॥ ४०॥

तवापि देवराजत्वं भविष्यत्यष्टमे मनौ।
तदा लोकत्रयं भूयस्त्वमाप्स्यसि न संशयः॥ ४१॥

गुरो! जो मूढमति हैं वे ही भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये कर्म नहीं करते, जो उनकी प्रीतिहेतु कर्म करते हैं उनकी कभी अधोगति नहीं होती। इसलिये ब्राह्मणवेशमें आये इन वामनरूपधारी विष्णुको तीन पग भूमिका दान उनकी प्रसन्नताहेतु मैं अवश्य दूँगा॥ ३३-३४॥ गुरुजीसे इस प्रकार कहकर महाराज बलिने भगवान् विष्णुकी प्रीतिको लक्ष्य करके उन परमात्माको तीन पग भूमिका दान कर दिया॥ ३५॥

मुनिश्रेष्ठ! उन वामनरूपधारी त्रिविक्रम जगदीश्वर विष्णुने 'स्वस्ति'—ऐसा कहकर विराट् रूप धारण कर लिया॥ ३६॥ वत्स! उनका एक पैर ब्रह्माण्डका अतिक्रमण करता हुआ उसके ऊपर निकल गया। तब उस चरणकमलको प्रजापति ब्रह्माने अपने कमण्डलुमें स्थित जलसे प्रक्षालित किया। जलरूपिणी, सर्वपापनाशिनी गङ्गा भगवान् विष्णुके चरणकमलको पाकर वहीं विद्यमान हो गयीं॥ ३७-३८॥ भगवान् विष्णुने एक पैरसे उसके सिरको छूते हुए धर्मपरायण राजा बलिसे अपराधीकी भाँति ऐसा कहा—वत्स! इस समय तुम्हारा त्रिलोकीका राज्य इन्द्रके पास न्यासरूपमें रहे और तुम दानवोंको साथ लेकर पाताललोकको चले जाओ। आठवें मनुके काल (मन्वन्तर)-में तुम्हें भी इन्द्रपद मिलेगा, तब तुम त्रिलोकीका राज्य पुनः प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३९—४१॥

इति विष्णोर्वचः श्रुत्वा बलिः सर्वासुरैः सह।
पातालं प्रययौ विष्णुं प्रणिपत्य महामुने॥ ४२॥

वैकुण्ठे जगतां नाथः प्रययौ त्रिदशेश्वरः।
गङ्गा तु संस्थिता तस्य चरणे लोकपावनी॥ ४३॥

महामुने! भगवान् विष्णुके ऐसे वचन सुनकर सभी असुरोंके साथ बलि उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके पाताललोकको चले गये॥ ४२॥ जगन्नाथ सुरेश्वर भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोकको चले गये और लोकपावनी गङ्गा उनके चरणोंमें स्थित हो गयीं॥ ४३॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे वामनावतारप्रस्तावे बलिपातालयात्राकथने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत वामनावतारके प्रस्तावमें 'बलिपातालयात्राकथन' नामक पैंसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा भगवती गङ्गाकी प्रार्थना करना तथा गङ्गाद्वारा पुनः तीनों लोकोंमें आनेका आश्वासन देना, भगीरथद्वारा भगवान् विष्णु, भगवती गङ्गा और भगवान् शिवकी आराधना

श्रीमहादेव उवाच

एवं हरितनुं प्राप्तां ज्ञात्वा गङ्गां विधिस्तथा।
शून्यं कमण्डलुं चापि विलोक्य मुनिसत्तम॥ १॥

चेतसा चिन्तयामास क्षणं त्रिदशवन्दितः।
इयं द्रवमयी गङ्गा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा॥ २॥

पुण्यात्पुण्यतमा धन्या स्थिता मम कमण्डलौ।
प्राप्ता हरिपदाम्भोजं निश्चला समभूदियम्॥ ३॥

नूनं नदी स्वयं भूत्वा स्वर्गं मर्त्यं रसातलम्।
पवित्रं प्रकरिष्यन्ती सिद्धसङ्गमवाप्स्यति॥ ४॥

तदहं तपसा सद्यो देवीं गङ्गां सुरेश्वरीम्।
भूयो विष्णुपदाम्भोजाद्द्रावयिष्यामि निश्चितम्॥ ५॥

इति संचिन्त्य स विधिर्वैकुण्ठं समुपागतः।
गङ्गां सम्प्रार्थयामास स्थितां विष्णुतनौ मुने॥ ६॥

चिरं प्रार्थयतस्तस्य गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
प्रत्यक्षं समुपागत्य वचनं त्विदमब्रवीत्॥ ७॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! देववन्दित पितामह ब्रह्माजीने भगवती गङ्गाको भगवान् विष्णुके चरणकमलमें स्थित जानकर अपने कमण्डलुको जलविहीन देखकर कुछ क्षणके लिये मनमें विचार किया कि ये द्रवमयी गङ्गा तीनों लोकोंमें अब दुर्लभ हो गयीं॥ १-२॥ मेरे कमण्डलुमें स्थित ये गङ्गा भगवान् विष्णुके चरणकमलको प्राप्त करके अत्यन्त पुण्यमयी और धन्य होकर वहीं स्थिर हो गयीं। निश्चय ही ये स्वयं नदी होकर स्वर्लोक, मृत्युलोक तथा पाताल-लोकको पवित्र करती हुई सिद्धजनोंके सांनिध्यको प्राप्त करेंगी। इसलिये मैं शीघ्र ही तपके द्वारा सुरेश्वरी देवी गङ्गाको पुनः भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निश्चय ही द्रवित करूँगा॥ ३—५॥ मुने! ऐसा विचार कर ब्रह्मा भी वैकुण्ठलोक आये और भगवान् विष्णुके चरणकमलमें स्थित गङ्गाकी प्रार्थना करने लगे। उनके चिरकालतक प्रार्थना करनेपर त्रैलोक्यपावनी गङ्गाने प्रत्यक्ष होकर इस प्रकार कहा—॥ ६-७॥

गङ्गोवाच

अहं हरितनौ ब्रह्मन्स्थास्ये कालं कियद्ध्रुवम्।
ततो द्रवमयी भूत्वा विष्णोः पादाम्बुजात्पुनः।
निःसृत्य पावयिष्यामि लोकत्रयमसंशयम्॥ ८॥
स्तुता भगीरथेनाहं राज्ञा चामिततेजसा।
भागीरथीति विख्याता यास्येऽहं धरणीतले॥ ९॥
उद्धृत्य तत्पितॄन्सर्वान्सिद्धसङ्गमवाप्य च।
पातालं सम्प्रविश्यामि लोकानां त्राणहेतवे॥ १०॥

ब्रह्मोवाच

अहं वाप्यनुजानामि ज्ञानदृष्ट्या सुरोत्तमे।
भगीरथस्य राज्ञस्त्वं कीर्तिं संवर्धयिष्यसि॥ ११॥
अहं चापि तदर्थं त्वां प्रार्थये शिवसुन्दरि।
यत्त्वं भूयो विनिःसृत्य त्रैलोक्यमधियास्यसि॥ १२॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो गङ्गा भगवती स्वयमन्तर्दधेऽचिरात्।
ब्रह्मापि स्वपुरं प्रायात् सर्वलोकपितामहः॥ १३॥
अथ विष्णुतनुं प्राप्तां गङ्गां द्रवमयीं क्षितौ।
आनेतुं गुरुणादिष्टः पितॄञ्छापप्रभावतः॥ १४॥
भस्मीभूतान्मुनीन्द्रस्य कपिलस्यातितेजसः।
उद्दिधीर्षुर्महात्मा स राजा सगरवंशजः॥ १५॥
भगीरथः परात्मानं विष्णुं लोकेश्वरेश्वरम्।
चिरमाराधयामास यतात्मा मुनिसत्तम॥ १६॥
ततः प्रसन्नो भगवान्परात्मा पुरुषोत्तमः।
प्रत्यक्षं समभूत्तस्य राज्ञः पुण्यतमात्मनः॥ १७॥
तं दृष्ट्वा जगतां नाथं शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरं सुपर्णस्थं वनमालाविराजितम्॥ १८॥
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ स्तोत्रमाह महीपतिः॥ १९॥

गङ्गाजी बोलीं—ब्रह्मन्! मैं कुछ समयतक निश्चितरूपसे भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहमें निवास करूँगी, उसके बाद भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निकलकर द्रवमयी होकर पुनः तीनों लोकोंको पवित्र करूँगी, इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है॥ ८॥ अमित तेजस्वी राजा भगीरथके द्वारा स्तुति करनेपर 'भागीरथी' के नामसे विख्यात होकर मैं पृथ्वीलोकमें जाऊँगी तथा उनके सम्पूर्ण पूर्वजोंका उद्धार कर और सिद्धजनोंके सांनिध्यको प्राप्त करनेके उपरान्त त्रिलोकीकी रक्षाके लिये पाताललोकमें प्रवेश करूँगी॥ ९-१०॥

ब्रह्माजी बोले—सुरोत्तमे! मैं भी अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह जानता हूँ कि आप राजा भगीरथकी कीर्तिको बढ़ायेंगी। शिवसुन्दरी! मैं भी इसीलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निकलकर पुनः त्रिलोकीमें विराजमान हों॥ ११-१२॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब भगवती गङ्गा शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं तथा लोकपितामह ब्रह्माजी भी अपने ब्रह्मलोकको प्रस्थान कर गये॥ १३॥ मुनिश्रेष्ठ! अतितेजस्वी मुनिवर कपिलके शापसे भस्मीभूत अपने पितरोंका उद्धार करनेकी इच्छासे गुरु वसिष्ठके द्वारा आदिष्ट होकर सगरके वंशज जितेन्द्रिय राजा भगीरथने विष्णुपदको प्राप्त द्रवमयी गङ्गाको पृथ्वीपर लानेके लिये लोकनाथाधिपति परमात्मा भगवान् विष्णुकी चिरकालपर्यन्त आराधना की॥ १४—१६॥ तब परमात्मा भगवान् पुरुषोत्तम प्रसन्न होकर अत्यन्त पुण्यात्मा राजा भगीरथके सामने प्रकट हो गये॥ १७॥

गरुडपर विराजमान, वनमालासे विभूषित, पीताम्बरधारी, हाथमें शङ्ख, चक्र और गदाको धारण किये हुए उन जगन्नाथ विष्णुभगवान्को देखकर एवं साष्टाङ्ग प्रणाम कर राजा भगीरथने इस प्रकार उनकी स्तुति की—॥ १८-१९॥

भगीरथ उवाच

त्रैलोक्यपावन जगत्परिवन्द्यपाद
विश्वेश विश्वप महापुरुषप्रधान।
नारायणाच्युत हरे मधुकैटभारे
विष्णो प्रसीद परमेश्वर ते नमोऽस्तु॥ २०॥

विश्वैककारण पुराण जगन्निधान
श्रीवत्सलाञ्छन विभो मधुसूदनाख्य।
गोविन्द वामन जनार्दन विश्वमूर्ते
विष्णो प्रसीद परमेश्वर ते नमोऽस्तु॥ २१॥

अत्यन्तविक्रम जगन्मय वासुदेव
दैत्यान्तकान्तक भयान्तक कान्त पूर्ण।
वैकुण्ठ माधव धराधर चारुरूप
विष्णो प्रसीद परमेश्वर ते नमोऽस्तु॥ २२॥

लक्ष्मीपतेऽमरपते जगदेकनाथ
मायाश्रयैक करुणामय केशवेश।
आनन्दसान्द्र कमलेक्षण शुद्धबोध
वाणीपतेऽखिलपते सततं नतोऽस्मि॥ २३॥

नमस्ते विश्वरूपाय विष्णवेऽमिततेजसे।
सच्चिदानन्दरूपाय शुद्धज्ञानात्मने नमः॥ २४॥

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
यत्त्वां पश्यामि नेत्राभ्यां देवैरपि सुदुर्लभम्॥ २५॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्यादिस्तुतिवाक्यैस्तु स स्तुतो जगदीश्वरः।
उवाच नृपशार्दूलं भगीरथमरिन्दमम्॥ २६॥

श्रीभगवानुवाच

किं तेऽभिलषितं राजन्वरं तद्वरयाधुना।
प्रीत्याहं सम्प्रदास्यामि तव भावेन निश्चितम्॥ २७॥

भगीरथ उवाच

पितरो ब्रह्मशापेन भस्मीभूय मम प्रभो।
अधोगतिमनुप्राप्तास्तेषां निष्कृतिकारणात्॥ २८॥

गङ्गां द्रवमयीं नेतुं क्षित्यामिच्छामि पावनीम्॥ २९॥

भगीरथ बोले—तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले, जगत्‌के द्वारा वन्दित चरणवाले, विश्वके पालनहार, महापुरुषोंमें श्रेष्ठ, विश्वेश, नारायण, अच्युत, हरि, मधुकैटभके शत्रु विष्णो! आप हमपर प्रसन्न हों, परमेश्वर! आपको नमस्कार है॥ २०॥ विश्वके एकमात्र कारण, सनातन, जगदाधार, श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित, विभो, मधुसूदन, गोविन्द, वामन, जनार्दन, विश्वमूर्ति, विष्णो! आप हमपर प्रसन्न हों, परमेश्वर! आपको नमस्कार है॥ २१॥ वासुदेव! आप अत्यन्त पराक्रमी, विश्वरूप, दैत्योंका नाश करनेवाले, यमस्वरूप, भयको दूर करनेवाले हैं। कान्तिमय, पूर्णस्वरूप, वैकुण्ठ, माधव, पृथ्वीको धारण करनेवाले, सुन्दरस्वरूपवाले विष्णो! आप हमपर प्रसन्न हों, परमेश्वर! आपको नमस्कार है॥ २२॥ लक्ष्मीकान्त, सुरश्रेष्ठ, विश्वके एकमात्र स्वामी, मायाके एकमात्र आश्रय, करुणामय, केशव, ईश, घनानन्दस्वरूप, कमलनयन, शुद्ध ज्ञानस्वरूप, वाणीके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके स्वामीको मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ॥ २३॥ अत्यन्त तेजस्वरूप, विश्वरूप विष्णुको नमस्कार है, शुद्ध ज्ञानात्मा सच्चिदानन्दस्वरूपको नमस्कार है। आज मेरा जन्म और तप दोनों सफल हुआ; क्योंकि देवताओंके लिये भी दुर्लभ आपको मैं अपने नेत्रोंसे देख रहा हूँ॥ २४-२५॥

श्रीमहादेवजी बोले—इन स्तुतिवाक्योंसे स्तवन किये जानेपर भगवान् विष्णुने शत्रुसूदन नृपश्रेष्ठ भगीरथसे कहा—॥ २६॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! आपका क्या अभीष्ट है, उसे अब माँग लीजिये, आपकी भक्तिसे प्रसन्न मैं उसे निश्चितरूपसे प्रदान करूँगा॥ २७॥

भगीरथ बोले—प्रभो! मेरे पूर्वज ब्रह्मशापसे भस्मीभूत होकर अधोगतिको प्राप्त हो गये हैं, उनके उद्धारके लिये मैं द्रवमयी पवित्र गङ्गाको पृथ्वीपर ले जाना चाहता हूँ॥ २८-२९॥

सा ते तनुमनुप्राप्य स्थिता त्रैलोक्यपावनी।
कमण्डलुकृतावासा ब्रह्मणः परमात्मनः॥ ३०॥
तां त्वं ददासि चेद्गङ्गां स्वशरीरकृतालयाम्।
तदा मे पितरः सर्वे प्रयान्ति परमं पदम्॥ ३१॥
एतदेव जगन्नाथ वाञ्छितं विद्यते मम।
त्वत्तः सर्वात्मना देव प्रणतानां कृपाकर॥ ३२॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स क्षितितलं गत्वा गङ्गा द्रवमयी स्वयम्।
मच्छरीराद्विनिःसृत्योद्धरिष्यति पितॄंस्तव॥ ३३॥
त्वं तु तां परमाराध्यां देवानामपि दुर्लभाम्।
सम्प्रार्थय महाराज तथा शम्भुं जगत्पतिम्।
ततः सम्पत्स्यतेऽभीष्टं सर्वमेव भगीरथ॥ ३४॥

श्रीमहादेव उवाच

इति तस्मै वरं दत्त्वा भगवान्पुरुषोत्तमः।
अन्तर्दधे मुनिश्रेष्ठ राज्ञस्तस्य समीपतः॥ ३५॥
स तु गत्वा महाराजो हिमाद्रेरुत्तरं शिरः।
गङ्गामाराधयामास यतात्मा मुनिसत्तम॥ ३६॥
गते तु बहुसाहस्रे वर्षे तस्य तपस्यतः।
प्रसन्ना समभूद्गङ्गा शिवशक्तिः स्मितानना॥ ३७॥
सा प्रत्यक्षमनुप्राप्य राजानं यतमानसम्।
उवाच राजन्वृणु तं यत्तेऽभिलषितं वरम्॥ ३८॥

भगीरथ उवाच

मातस्त्वं सुप्रसन्ना मे यदि त्वं शिवसुन्दरी।
तदा हरिपदाम्भोजान्निःसृत्यैहि धरातले॥ ३९॥



परमेश्वर ब्रह्माके कमण्डलुमें निवास करनेवाली वे त्रैलोक्यपावनी गङ्गा आपके श्रीविग्रहको प्राप्त होकर स्थित हो गयी हैं। आप अपने शरीरमें स्थित उन गङ्गाको यदि प्रदान कर देंगे तो मेरे सभी पूर्वज परमपदको प्राप्त हो जायँगे। भक्तोंपर सब प्रकारसे कृपा करनेवाले देव! जगन्नाथ! आपसे यही मेरी अभिलाषा है॥ ३०—३२॥

श्रीभगवान् बोले—वत्स! ये द्रवमयी गङ्गा मेरे शरीरसे निकलकर स्वयं पृथ्वीपर जाकर आपके पूर्वजोंका उद्धार करेंगी। महाराज भगीरथ! आप उन परमाराध्या, देवताओंके लिये भी दुर्लभ गङ्गा तथा भगवान् विश्वनाथकी प्रार्थना करें। तब आपका सारा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा॥ ३३-३४॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार भगवान् पुरुषोत्तम राजा भगीरथको वर प्रदान कर वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ३५॥ मुनिसत्तम! वे संयतेन्द्रिय महाराज भगीरथ हिमालयके उत्तरी शिखरपर जाकर भगवती गङ्गाकी आराधना करने लगे। उनके हजारों वर्ष तपस्या करनेपर स्मितमुखी शिवशक्ति-स्वरूपिणी भगवती गङ्गा प्रसन्न हो गयीं। भगवती गङ्गाने संयतेन्द्रिय राजाके समक्ष प्रकट होकर कहा राजन्! आपका जो अभिलषित वर हो उसे माँग लीजिये॥ ३६—३८॥

भगीरथ बोले—माता, शिवसुन्दरी! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकलकर पृथ्वीतलपर चलें और पृथ्वीको पवित्र

पवित्रां धरणीं कृत्वा प्रविश्य विवरस्थलम्।
उद्धारय पितॄन्पूर्वान्मुनिना भस्मसात्कृतान्॥ ४० ॥

पितॄणां यदि निस्तारं करोषि त्रिदशस्तुते।
तदाहं कृतकृत्यः स्यामेतन्मे वाञ्छितं शिवम्॥ ४१ ॥

गङ्गोवाच

एवमस्तु महाराज विष्णुपादाम्बुजादहम्।
विनिःसृत्योद्धरिष्यामि तव पूर्वतमान्पितॄन्॥ ४२ ॥

त्वत्तः सम्प्रार्थिता यस्माद्भूत्वा विष्णुपदाम्बुजात्।
क्षिताववतरिष्यामि तस्मात्कन्या भवाम्यहम्॥ ४३ ॥

तेन भागीरथीत्याख्या लोके मे सम्भविष्यति।
त्वया तु जगतां नाथः शम्भुर्गत्वा प्रसाद्यताम्॥ ४४ ॥

स मे प्रियतमो भर्ता तस्याहं वशवर्तिनी।
तेन गन्तुं न शक्नोमि विना तस्याज्ञया प्रभो॥ ४५ ॥

तस्मात्प्रसन्नतां याते शंकरे त्वयि भूपते।
मेरुशृङ्गं समारुह्य शङ्खं जलदनिःस्वनम्॥ ४६ ॥

सन्ध्मास्यसि यदा राजंस्तदा विष्णुपदाम्बुजात्।
विनिःसृत्य विनिर्भिद्य ब्रह्माण्डमतिवेगिता।
त्वदानुगा वसुमतीं यास्यामि जलरूपिणी॥ ४७ ॥

उद्धृत्य त्वत्पितॄन्सर्वान्विवरं समुपेत्य च।
पातालमनुयास्यामि तव कीर्तिविवर्धिनी॥ ४८ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती गङ्गा शंकरगेहिनी।
पश्यतो नृपतेस्तस्य क्षणादन्तरधीयत॥ ४९ ॥

भगीरथश्च भूपालो पितॄणां कीर्तिवर्धनः।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने गङ्गाभिदर्शनात्॥ ५० ॥

गत्वा गङ्गाज्ञया राजा धर्मात्माऽसौ भगीरथः।
महेशं प्रार्थयामास तस्मिन्नेव नगोत्तमे॥ ५१ ॥

निराहारी शताब्दं तु नियतात्मा महामते।
ततः प्रसन्नो देवेशः शंकरः प्रभुरव्ययः।
प्रत्यक्षं समभूत्तस्य पञ्चास्यो वृषभध्वजः॥ ५२ ॥

करके विवरमें प्रविष्ट होकर मुनिके द्वारा भस्मसात् किये गये मेरे पूर्वजोंका उद्धार करें। देवताओंकी वन्दनीया! यदि आप मेरे पूर्वजोंका उद्धार कर दें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, यही मेरी मङ्गलमयी अभिलाषा है॥ ३९—४१॥

गङ्गाजी बोलीं—महाराज! 'ऐसा ही होगा'। मैं भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकलकर आपके सभी पूर्वजोंका उद्धार करूँगी॥ ४२॥ आपसे प्रार्थित होकर मैं भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकलकर पृथ्वीपर अवतरित होऊँगी। इसीलिये आपकी कन्या होऊँगी और इस संसारमें 'भागीरथी' इस नामसे प्रसिद्ध होऊँगी, आप जाकर विश्वनाथ भगवान् शंकरको प्रसन्न करें। प्रभो! वे मेरे प्रियतम पति हैं तथा मैं उनकी वशवर्तिनी हूँ, इसलिये मैं उनकी आज्ञाके बिना नहीं जा सकती॥ ४३—४५॥ भूपते! आपपर भगवान् शिवके प्रसन्न हो जानेसे मेरु शिखरपर चढ़कर जब आप मेघगर्जनके समान शङ्खध्वनि करेंगे, राजन्! तब भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकलकर ब्रह्माण्डको अत्यन्त वेगपूर्वक विदीर्ण करके जलरूपमें मैं आपके पीछे-पीछे पृथ्वीपर जाऊँगी और विवरमें प्रविष्ट होकर आपके सभी पूर्वजोंका उद्धार करके आपकी कीर्तिको बढ़ानेवाली मैं पातालमें चली जाऊँगी॥ ४६—४८॥

श्रीमहादेवजी बोले—ऐसा कहकर वे शंकरप्रिया भगवती गङ्गा राजा भगीरथके देखते-ही-देखते क्षणभरमें अन्तर्धान हो गयीं और अपने पूर्वजोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले राजा भगीरथ भगवती गङ्गाके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ मानने लगे॥ ४९-५०॥ महामते! धर्मात्मा राजा भगीरथने भगवती गङ्गाकी आज्ञासे उसी श्रेष्ठ कैलासपर्वतपर जाकर जितेन्द्रिय तथा निराहार रहते हुए सौ वर्षोंतक भगवान् शंकरकी प्रार्थना की। तब देवेश्वर, अविनाशी, पञ्चानन, वृषभध्वज भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये॥ ५१-५२॥

तं वीक्ष्य रजताभासं पञ्चास्यं शूलधारिणम्।
व्याघ्राजिनपरीधानं जटामण्डितमस्तकम्॥ ५३॥
विभूतिलिप्तसर्वाङ्गं नीलकण्ठं स्मिताननम्।
नागेन्द्रभूषितं चारुचन्द्रार्धकृतशेखरम्॥ ५४॥
दण्डवत्पतितो राजा नाम्नामष्टसहस्रकैः।
तुष्टाव देवदेवेशं पूर्णं सर्वसुरोत्तमम्॥ ५५॥

रजतकी तरह कान्तिवाले, पञ्चानन, शूलधारी, व्याघ्रचर्म धारण किये हुए, जटासे विभूषित मस्तकवाले, समस्त शरीरमें विभूति धारण किये हुए, स्मितवदन नीलकण्ठ, भुजङ्गभूषण, शिरोभूषणके रूपमें सुन्दर अर्धचन्द्रको धारण किये हुए भगवान् शंकरको देखकर राजा भगीरथ साष्टाङ्ग प्रणाम करके एक हजार आठ नामोंसे उन देवदेवेश पूर्णब्रह्म सर्वसुरोत्तमकी स्तुति करने लगे॥ ५३—५५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे भगीरथगङ्गासंवादे श्रीशिवदर्शनप्राप्तिर्नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत भगीरथ-गङ्गा-संवादमें 'श्रीशिवदर्शनप्राप्ति' नामक छाछठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

भगीरथद्वारा अनेक नामोंसे भगवान् शिवका स्तवन तथा मनोभिलषित वरकी प्राप्ति, शिवसहस्रनामस्तोत्रपाठका माहात्म्य

भगीरथ उवाच

ॐ नमस्ते पार्वतीनाथ देवदेव परात्पर।
अच्युतानघ पञ्चास्य भीमास्य रुचिरानन॥ १॥
व्याघ्राजिनधरानन्त पारावारविवर्जित।
पञ्चानन महासत्त्व महाज्ञानमय प्रभो॥ २॥
अजितामितदुर्धर्ष विश्वेश परमेश्वर।
विश्वात्मन्विश्वभूतेश विश्वाश्रय जगत्पते॥ ३॥
विश्वोपकारिन्विश्वैकधाम विश्वाश्रयाश्रय।
विश्वाधार सदानन्द विश्वानन्द नमोऽस्तु ते॥ ४॥
शर्व सर्वविदज्ञानविवर्जित सुरोत्तम।
सुरवन्द्य सुरस्तुत्य सुरराज सुरोत्तम॥ ५॥
सुरपूज्य सुरध्येय सुरेश्वर सुरान्तक।
सुरारिमर्दक सुरश्रेष्ठ तेऽस्तु नमो नमः॥ ६॥
त्वं शुद्धः शुद्धबोधश्च शुद्धात्मा जगतां पतिः।
शम्भुः स्वयंभूरत्युग्र उग्रकर्मोग्रलोचन॥ ७॥

भगीरथ बोले—पार्वतीनाथ, देवदेव, परात्पर, अच्युत, अनघ, पञ्चास्य, भीमास्य, रुचिरानन, ओङ्कारस्वरूप आपको नमस्कार है। व्याघ्राजिनधर, अनन्त, पारावारविवर्जित, पञ्चानन, महासत्त्व, महाज्ञानमय, प्रभु। अजित, अमित, दुर्धर्ष, विश्वेश, परमेश्वर, विश्वात्मा, विश्व, भूतेश, विश्वाश्रय, जगत्पति, विश्वोपकारी, विश्वैकधाम, विश्वाश्रयाश्रय, विश्वाधार, सदानन्द, विश्वानन्द आपको नमस्कार है। शर्व, सर्वविद्, अज्ञानविवर्जित, सुरोत्तम, सुरवन्द्य, सुरस्तुत्य, सुरराज, सुरोत्तम॥ १—५॥ सुरपूज्य, सुरध्येय, सुरेश्वर, सुरान्तक, सुरारिमर्दक, सुरश्रेष्ठ आपको बार-बार नमस्कार है। आप शुद्ध, शुद्धबोध, शुद्धात्मा, जगतां पति, शम्भु, स्वयंभू, अत्युग्र, उग्रकर्मा, उग्रलोचन हैं।

उग्रप्रभावश्चात्युग्रमर्दकोत्युग्ररूपवान् ।
उग्रकण्ठः शिवः शान्तः सर्वशान्तिविधायकः ॥ ८ ॥

सर्वार्थदः शिवाधारः शिवाय निरमित्रजित्।
शिवदः शिवकर्ता च शिवहन्ता शिवेश्वरः ॥ ९ ॥

शिशुशैशवयुक्तश्च पिङ्गकेशो जटाधरः।
गङ्गाधरकपर्दी च जटाजूटविराजितः ॥ १० ॥

जटिलो जटिलाराध्यः सर्वदोन्मत्तमानसः।
उन्मत्तकेश उन्मत्त उन्मत्तानामधीश्वरः ॥ ११ ॥

उन्मत्तलोचनो भीमस्त्रिनेत्रो भीमलोचनः।
बहुनेत्रो द्विनेत्री च रक्तनेत्रः सुनेत्रक ॥ १२ ॥

दीर्घनेत्रश्च पिङ्गाक्षः सुप्रभाक्ष्यः सुलोचनः।
सोमनेत्रोऽग्निनेत्राख्यः सूर्यनेत्रः सुवीर्यवान् ॥ १३ ॥

पद्माक्षः कमलाक्षश्च नीलोत्पलदलेक्षणः।
सुलक्षणः शूलपाणिः कपाली कपिलेक्षणः ॥ १४ ॥

व्याघूर्णनयनो धूतो व्याघ्रचर्माम्बरावृतः।
श्रीकण्ठो नीलकण्ठाख्यः शितिकण्ठः सुकण्ठकः ॥ १५ ॥

चन्द्रचूडश्चन्द्रधरश्चन्द्रमौलिः शशाङ्कभृत्।
शशिकान्तः शशाङ्काभः शशाङ्काङ्कितमूर्धजः ॥ १६ ॥

शशाङ्कवदनो वीरो वरदो वरलोचनः।
शरच्चन्द्रसमाभासः शरदिन्दुसमप्रभः ॥ १७ ॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चन्द्रास्यश्चन्द्रशेखरः ।
अष्टमूर्तिर्महामूर्तिर्भीममूर्तिर्भयानकः ॥ १८ ॥

भयदाता भयत्राता भयहर्तृभयोज्झितः।
निर्भूतो भूतवन्द्यश्च भूतात्मा भूतभावनः ॥ १९ ॥

कौपीनवासा दुर्वासा विवासा कामिनीपतिः।
करालः कीर्तिदो वैद्यः किशोरः कामनाशनः ॥ २० ॥

उग्रप्रभाव, अत्युग्रमर्दक, अत्युग्ररूपवान्, उग्रकण्ठ, शिव, शान्त, सर्वशान्तिविधायक, सर्वार्थद, शिवाधार, निरमित्रजित्, शिवद, शिवकर्ता, शिवहन्ता, शिवेश्वर आप शिवको नमस्कार है। शिशु, शैशवयुक्त, पिङ्गकेश, जटाधर, गङ्गाधर, कपर्दी, जटाजूटविराजित ॥ ६—१० ॥ जटिल, जटिलाराध्य, सर्वद, उन्मत्तमानस, उन्मत्तकेश, उन्मत्त, उन्मत्तानामधीश्वर, उन्मत्तलोचन, भीम, त्रिनेत्र, भीमलोचन, बहुनेत्र, द्विनेत्री, रक्तनेत्र, सुनेत्रक, दीर्घनेत्र, पिङ्गाक्ष, सुप्रभाक्ष्य, सुलोचन, सोमनेत्र, अग्निनेत्राख्य, सूर्यनेत्र, सुवीर्यवान्, पद्माक्ष, कमलाक्ष, नीलोत्पलदलेक्षण, सुलक्षण, शूलपाणि, कपाली, कपिलेक्षण, व्याघूर्णनयन, धूत, व्याघ्रचर्माम्बरावृत, श्रीकण्ठ, नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, सुकण्ठक ॥ ११—१५ ॥ चन्द्रचूड, चन्द्रधर, चन्द्रमौलि, शशाङ्कभृत्, शशिकान्त, शशाङ्काभ, शशाङ्काङ्कित-मूर्धज, शशाङ्कवदन, वीर, वरद, वरलोचन, शरच्चन्द्र-समाभास, शरदिन्दुसमप्रभ, कोटिसूर्यप्रतीकाश, चन्द्रास्य, चन्द्रशेखर, अष्टमूर्ति, महामूर्ति, भीममूर्ति, भयानक, भयदाता, भयत्राता, भयहर्ता, भयोज्झित, निर्भूत, भूतवन्द्य, भूतात्मा, भूतभावन, कौपीनवासा, दुर्वासा, विवासा, कामिनीपति, कराल, कीर्तिद, वैद्य, किशोर, कामनाशन ॥ १६—२० ॥



कीर्तिरूपः कुन्तधारी कालकूटकृताशनः।
कालकूटसुरूपी च कुलमन्त्रप्रदीपकः॥ २१॥
कलाकाष्ठात्मकः काशीविहारी कुटिलाननः।
महाकाननसंवासी कालीप्रीतिविवर्धनः॥ २२॥
कालीधरः कामचारिन्कुलकीर्तिविवर्धनः।
कामाद्रिः कामुकवरः कार्मुकी काममोहितः॥ २३॥
कटाक्षः कनकाभासः कनकोज्ज्वलगात्रकः।
कामातुरः क्कणत्पादः कुटिलभ्रुकुटीधरः॥ २४॥
कार्तिकेयपिता कोकनदभूषणभूषितः।
खट्वाङ्गयोद्धा खड्गी च गिरीशो गगनेश्वरः॥ २५॥

कीर्तिरूप, कुन्तधारी, कालकूटकृताशन, कालकूट-सुरूपी, कुलमन्त्रप्रदीपक, कलाकाष्ठात्मक, काशीविहारी, कुटिलानन, महाकाननसंवासी, कालीप्रीतिविवर्धन, कालीधर, कामचारी, कुलकीर्तिविवर्धन, कामाद्रि, कामुकवर, कार्मुकी, काममोहित, कटाक्ष, कनकाभास, कनकोज्ज्वलगात्रक, कामातुर, क्कणत्पाद, कुटिलभ्रुकुटीधर, कार्तिकेयपिता, कोकनदभूषणभूषित, खट्वाङ्गयोद्धा, खड्गी, गिरीश, गगनेश्वर॥ २१—२५॥

गणाध्यक्षः खेटकधृक् खर्वः खर्वतरः खगः।
खगारूढः खगाराध्यः खेचरः खेचरेश्वरः॥ २६॥
खेचरत्वप्रदः क्षोणीपतिः खेचरमर्दकः।
गणेश्वरो गणपिता गरिष्ठो गणभूपतिः॥ २७॥
गुरुर्गुरुतरो ज्ञेयो गङ्गापतिरमर्षणः।
गीतप्रियो गीतरतः सुगोप्यो गोपवृन्दपः॥ २८॥
गवारूढो जगद्धर्ता गोस्वामी गोस्वरूपकः।
गोप्रदो गोधरो गृध्रो गरुत्मान् गोकृतासनः॥ २९॥
गोपीशो गुरुतातश्च गुहावासी सुगोपितः।
गजारूढो गजास्यश्च गजाजिनधरोऽग्रजः॥ ३०॥

गणाध्यक्ष, खेटकधृक्, खर्व, खर्वतर, खग, खगारूढ, खगाराध्य, खेचर, खेचरेश्वर, खेचरत्वप्रद, क्षोणीपति, खेचरमर्दक, गणेश्वर, गणपिता, गरिष्ठ, गण-भूपति, गुरु, गुरुतर, ज्ञेय, गङ्गापति, अमर्षण, गीतप्रिय, गीतरत, सुगोप्य, गोपवृन्दप, गवारूढ, जगद्धर्ता, गोस्वामी, गोस्वरूपक, गोप्रद, गोधर, गृध्र, गरुत्मान्, गोकृतासन, गोपीश, गुरुतात, गुहावासी, सुगोपित, गजारूढ, गजास्य, गजाजिनधर, अग्रज॥ २६—३०॥

ग्रहाध्यक्षो ग्रहगणो दुष्टग्रहविमर्दकः।
गानरूपी गानरतः प्रचण्डो गानविह्वलः॥ ३१॥
गानमत्तो गुणी गुह्यो गुणग्रामाशयो गुणः।
गूढबुद्धिर्गूढमूर्तिर्गूढपादविभूषितः॥ ३२॥
गोप्ता गोलोकवासी च गुणवान्गुणिनां वरः।
हरो हरितवर्णाक्षो मृत्युर्मृत्युञ्जयो हरिः॥ ३३॥
हव्यभुग्हरिसम्पूज्यो हविर्हविर्भुजां वरः।
अनादिरादिः सर्वाद्य आदितेयवरप्रदः॥ ३४॥
अनन्तविक्रमो लोके लोकानां पापहारकः।
गीष्पतिः सद्गुणोपेतः सगुणो निर्गुणो गुणी॥ ३५॥

ग्रहाध्यक्ष, ग्रहगण, दुष्टग्रहविमर्दक, गानरूपी, गानरत, प्रचण्ड, गानविह्वल, गानमत्त, गुणी, गुह्य, गुणग्रामाशय, गुण, गूढबुद्धि, गूढमूर्ति, गूढपादविभूषित, गोप्ता, गोलोकवासी, गुणवान्, गुणिनां वर, हर, हरितवर्णाक्ष, मृत्यु, मृत्युञ्जय, हरि, हव्यभुक्, हरिसम्पूज्य, हवि, हविर्भुजां वर, अनादि, आदि, सर्वाद्य, आदितेयवरप्रद, लोके अनन्तविक्रम, लोकानां पापहारक, गीष्पति, सद्गुणोपेत, सगुण, निर्गुण, गुणी॥ ३१—३५॥

गुणप्रीतो गुणवरो गिरिजानायको गिरिः।
गौरीभर्ता गुणाढ्यश्च गोश्रेष्ठासनसंस्थितः॥ ३६॥

पद्मासनः पद्मनेत्रः पद्मतुष्टः सुपद्मकः।
पद्मवक्त्रः पद्मकरः पद्मारूढपदाम्बुजः॥ ३७॥

पद्मप्रियतमः पद्मालयः पद्मप्रकाशकः।
पद्मकाननसंवासः पद्मकाननभुञ्जकः॥ ३८॥

पद्मकाननसंवासी पद्मारण्यकृतालयः।
प्रफुल्लवदनोत्फुल्लकमलाक्षप्रफुल्लकृत्॥ ३९॥

फुल्लेन्दीवरसंतुष्टः प्रफुल्लकमलासनः।
फुल्लाम्भोजकरोत्फुल्लमानसः पापहारकः॥ ४०॥

गुणप्रीत, गुणवर, गिरिजानायक, गिरि, गौरीभर्ता, गुणाढ्य, गोश्रेष्ठासनसंस्थित, पद्मासन, पद्मनेत्र, पद्मतुष्ट, सुपद्मक, पद्मवक्त्र, पद्मकर, पद्मारूढपदाम्बुज, पद्मप्रियतम, पद्मालय, पद्मप्रकाशक, पद्मकाननसंवास, पद्मकाननभुञ्जक, पद्मकाननसंवासी, पद्मारण्यकृतालय, प्रफुल्लवदनोत्फुल्लकमलाक्षप्रफुल्लकृत्, फुल्लेन्दीवर-संतुष्ट, प्रफुल्लकमलासन, फुल्लाम्भोजकरोत्फुल्लमानस, पापहारक॥ ३६—४०॥

पापापहारी पुण्यात्मा पुण्यकीर्तिः सुपुण्यवान्।
पुण्यः पुण्यतमो धन्यः सुपूतात्मा परात्मकः॥ ४१॥

पुण्येशः पुण्यदः पुण्यनिरतः पुण्यभाजनः।
परोपकारी पापिष्ठनाशकः पापहारकः॥ ४२॥

पुरातनः पूर्वहीनः परद्रोहविवर्जितः।
पीवरः पीवरमुखः पीनकायः पुरान्तकः॥ ४३॥

पाशी पशुपतिः पाशहस्तः पाषाणविट्पतिः।
पलात्मकः परावेत्ता पाशबद्धविमोचकः॥ ४४॥

पशूनामधिपः पाशच्छेत्ता पाशविभेदकः।
पाषाणधारी पाषाणशयानः पाशिपूजितः॥ ४५॥

पापापहारी, पुण्यात्मा, पुण्यकीर्ति, सुपुण्यवान्, पुण्य, पुण्यतम, धन्य, सुपूतात्मा, परात्मक, पुण्येश, पुण्यद, पुण्यनिरत, पुण्यभाजन, परोपकारी, पापिष्ठनाशक, पापहारक, पुरातन, पूर्वहीन, परद्रोहविवर्जित, पीवर, पीवरमुख, पीनकाय, पुरान्तक, पाशी, पशुपति, पाशहस्त, पाषाणविट्पति, पलात्मक, परावेत्ता, पाशबद्धविमोचक, पशूनामधिप, पाशच्छेत्ता, पाशविभेदक, पाषाणधारी, पाषाणशयान, पाशिपूजित॥ ४१—४५॥ पश्वारूढ,

पश्वारूढः पुष्पधनुः पुष्पवृन्दसुपूजितः।
पुण्डरीकः पीतवासा पुण्डरीकाक्षवल्लभः॥ ४६॥

पानपात्रकरः पानमत्तः पानातिभूतकः।
पोष्टा पोष्टवरः पूतः परित्राताऽखिलेश्वरः॥ ४७॥

पुण्डरीकाक्षकर्ता च पुण्डरीकाक्षसेवितः।
पल्लवस्थः प्रपीठस्थः पीठभूमिनिवासकः॥ ४८॥

पिता पितामहः पार्थः प्रसन्नाभीष्टदायकः।
पितॄणां प्रीतिकर्ता च प्रीतिदः प्रीतिभाजनः॥ ४९॥

प्रीत्यात्मकः प्रीतवशी सुप्रीतः प्रीतिकारकः।
प्रीतिहृत्प्रीतिरूपात्मन् प्रीतियुक्तस्त्वमेव हि॥ ५०॥

पुष्पधनु, पुष्पवृन्दसुपूजित, पुण्डरीक, पीतवासा, पुण्डरीकाक्षवल्लभ, पानपात्रकर, पानमत्त, पानातिभूतक, पोष्टा, पोष्टवर, पूत, परित्राता, अखिलेश्वर, पुण्डरीकाक्षकर्ता, पुण्डरीकाक्षसेवित, पल्लवस्थ, प्रपीठस्थ, पीठभूमिनिवासक, पिता, पितामह, पार्थ, प्रसन्नाभीष्टदायक, पितॄणां प्रीतिकर्ता, प्रीतिद, प्रीतिभाजन, प्रीत्यात्मक, प्रीतवशी, सुप्रीत, प्रीतिकारक, प्रीतिहृत्, प्रीतिरूपात्मा, प्रीतियुक्त॥ ४६—५०॥

प्रणतार्तिहरः प्राणवल्लभः प्राणदायकः।
प्राणी प्राणस्वरूपश्च प्राणग्राही सुनिर्दयः॥ ५१॥
प्राणनाथः प्रीतमनाः सर्वेषां प्रपितामहः।
वृद्धः प्रवृद्धरूपश्च प्रेतः प्रणयिनां वरः॥ ५२॥
पराधीशः परं ज्योतिः परनेत्रः परात्मकः।
पारुष्यरहितः पुत्री पुत्रदः पुत्ररक्षकः॥ ५३॥
पुत्रप्रियः पुत्रवश्यः पुत्रवत्परिपालकः।
परित्राता परावासः परचेताः परेश्वरः॥ ५४॥
पतिः सर्वस्य सम्पाल्यः पवमानः परान्तकः।
पुरहा पुरुहूतश्च त्रिपुरारिः पुरान्तकः॥ ५५॥

प्रणतार्तिहर, प्राणवल्लभ, प्राणदायक, प्राणी, प्राणस्वरूप, प्राणग्राही, सुनिर्दय, प्राणनाथ, प्रीतमना, सर्वेषां प्रपितामह, वृद्ध, प्रवृद्धरूप, प्रेत, प्रणयिनां वर, पराधीश, परं ज्योति, परनेत्र, परात्मक, पारुष्यरहित, पुत्री, पुत्रद, पुत्ररक्षक, पुत्रप्रिय, पुत्रवश्य, पुत्रवत् परिपालक, परित्राता, परावास, परचेता, परेश्वर, सर्वस्य पति, सम्पाल्य, पवमान, परान्तक, पुरहा, पुरुहूत, त्रिपुरारि, पुरान्तक॥ ५१—५५॥

पुरन्दरातिसम्पूज्यः प्रधर्षो दुष्प्रधर्षणः।
पटुः पटुतरः प्रौढः प्रपूज्यः पर्वतालयः॥ ५६॥
पुलिनस्थः पुलस्त्याख्यः पिङ्गचक्षुः प्रपन्नगः।
अभीरुरसिताङ्गश्च चण्डरूपः सिताङ्गकः॥ ५७॥
सर्वविद्याविनोदश्च सर्वसौख्ययुतः सदा।
सुखहर्ता सर्वसुखी सर्वलोकैकपावनः॥ ५८॥
सदावनः सारदश्च सुसिद्धः शुद्धरूपकः।
सारः सारतरः सूर्यः सोमः सर्वप्रकाशकः॥ ५९॥
सोममण्डलधारी च समुद्रः सिन्धुरूपवान्।
सुरज्येष्ठः सुरश्रेष्ठः सुरासुरनिषेवितः॥ ६०॥

पुरन्दरातिसम्पूज्य, प्रधर्ष, दुष्प्रधर्षण, पटु, पटुतर, प्रौढ, प्रपूज्य, पर्वतालय, पुलिनस्थ, पुलस्त्याख्य, पिङ्गचक्षु, प्रपन्नग, अभीरु, असिताङ्ग, चण्डरूप, सिताङ्गक, सर्वविद्याविनोद, सर्वसौख्ययुत, सुखहर्ता, सर्वसुखी, सर्वलोकैकपावन, सदावन, सारद, सुसिद्ध, शुद्धरूपक, सार, सारतर, सूर्य, सोम, सर्वप्रकाशक, सोममण्डलधारी, समुद्र, सिन्धुरूपवान्, सुरज्येष्ठ, सुरश्रेष्ठ, सुरासुरनिषेवित॥ ५६—६०॥

सर्वधर्मविनिर्युक्तः सर्वलोकनमस्कृतः।
सर्वाचारसुतः सौरः शाक्तः परमवैष्णवः॥ ६१॥
सर्वधर्मविधानज्ञः सर्वाचारपरायणः।
सर्वरोगप्रशमनः सर्वरोगापहारकः॥ ६२॥
प्रकृष्टात्मा महात्मा च सर्वधर्मप्रदर्शकः।
सर्वसम्पद्युतः सर्वसम्पद्दानसमेक्षणः॥ ६३॥
सहास्यवदनो हास्ययुक्तः प्रहसिताननः।
साक्षी समक्षवक्ता च सर्वदर्शी समस्तवित्॥ ६४॥
सकलज्ञः समर्थज्ञः सुमनाः शैवपूजितः।
शोकप्रशमनः शोकहन्ताऽशोच्यः शुभान्वितः॥ ६५॥

सर्वधर्मविनिर्युक्त, सर्वलोकनमस्कृत, सर्वाचारसुत, सौर, शाक्त, परमवैष्णव, सर्वधर्मविधानज्ञ, सर्वाचारपरायण, सर्वरोगप्रशमन, सर्वरोगापहारक, प्रकृष्टात्मा, महात्मा, सर्वधर्मप्रदर्शक, सर्वसम्पद्युत, सर्वसम्पद्दानसमेक्षण, सहास्यवदन, हास्ययुक्त, प्रहसितानन, साक्षी, समक्षवक्ता, सर्वदर्शी, समस्तवित्, सकलज्ञ, समर्थज्ञ, सुमना, शैवपूजित, शोकप्रशमन, शोकहन्ता, अशोच्य, शुभान्वित॥ ६१—६५॥

शैलज्ञः शैलजानाथः शैलनाथः शनैश्चरः।
शशाङ्कसदृशज्योतिः शशाङ्कार्धविराजितः॥ ६६॥
साधुप्रियः साधुतमः साध्वीपतिरलौकिकः।
शून्यरूपः शून्यदेहः शून्यस्थः शून्यभावनः॥ ६७॥
शून्यगामी श्मशानस्थः श्मशानाधिपतिः सुवाक्।
शतसूर्यप्रभः सूर्यः सूर्यदीप्तः सुरारिहा।
शुभान्वितः शुभतनुः शुभबुद्धिः शुभात्मकः॥ ६८॥
शुभान्विततनुः शुक्लतनुः शुक्लप्रभान्वितः।
सुशौक्लः शुक्लदशनः शुक्लाभः शुक्लमाल्यधृक्॥ ६९॥
शुक्लपुष्पप्रियः शुक्लवसनः शुक्लकेतनः।
शेषालङ्करणः शेषरहितः शेषवेष्टितः॥ ७०॥

शैलज्ञ, शैलजानाथ, शैलनाथ, शनैश्चर, शशाङ्कसदृश-ज्योति, शशाङ्कार्धविराजित, साधुप्रिय, साधुतम, साध्वीपति, अलौकिक, शून्यरूप, शून्यदेह, शून्यस्थ, शून्यभावन, शून्यगामी, श्मशानस्थ, श्मशानाधिपति, सुवाक्, शतसूर्यप्रभ, सूर्य, सूर्यदीप्त, सुरारिहा, शुभान्वित, शुभतनु, शुभबुद्धि, शुभात्मक, शुभान्विततनु, शुक्लतनु, शुक्लप्रभान्वित, सुशौक्ल, शुक्लदशन, शुक्लाभ, शुक्लमाल्यधृक्, शुक्लपुष्पप्रिय, शुक्लवसन, शुक्लकेतन, शेषालङ्करण, शेषरहित, शेषवेष्टित॥ ६६—७०॥

शेषारूढः शेषशायी शेषाङ्गदविराजितः।
सतीप्रियश्च सशकः समदर्शी समाधिमान्॥ ७१॥
सत्सङ्गी सत्प्रियः सङ्गी निःसङ्गी सङ्गवर्जितः।
सहिष्णुः शाश्वतैश्वर्यः सामगानरतः सदा॥ ७२॥
सामवेत्ता साम्यतरः श्यामापतिरशेषभुक्।
तारिणीपतिराताम्रनयनस्त्वरिताप्रियः॥ ७३॥
तारात्मकस्त्वग्वसनस्तरुणीरमणे रतः।
तृप्तिरूपस्तृप्तिकर्ता तारकारिनिषेवितः॥ ७४॥
वायुकेशो भैरवेशो भवानीशो भवान्तकः।
भवबन्धुर्भवहरो भवबन्धनमोचकः॥ ७५॥

शेषारूढ, शेषशायी, शेषाङ्गदविराजित, सतीप्रिय, सशक, समदर्शी, समाधिमान्, सत्सङ्गी, सत्प्रिय, सङ्गी, निःसङ्गी, सङ्गवर्जित, सहिष्णु, शाश्वतैश्वर्य, सामगानरत, सामवेत्ता, साम्यतर, श्यामापति, अशेषभुक्, तारिणीपति, आताम्रनयन, त्वरिताप्रिय, तारात्मक, त्वग्वसन, तरुणी-रमणे रत, तृप्तिरूप, तृप्तिकर्ता, तारकारिनिषेवित, वायुकेश, भैरवेश, भवानीश, भवान्तक, भवबन्धु, भवहर, भवबन्धनमोचक॥ ७१—७५॥

अभिभूतोऽभिभूतात्मा सर्वभूतप्रमोहकः।
भुवनेशो भूतपूज्यो भोगमोक्षफलप्रदः॥ ७६॥
दयालुर्दीननाथश्च दुःसहो दैत्यमर्दकः।
दक्षकन्यापतिर्दुःखनाशको धनधान्यदः॥ ७७॥
दयावान् दैवतश्रेष्ठो देवगन्धर्वसेवितः।
नानायुधधरो नानापुष्पगुच्छविराजितः॥ ७८॥
नानासुखप्रदो नानामूर्तिधारी च नर्तकः।
नित्यविज्ञानसंयुक्तो नित्यरूपोऽनिलोऽनलः॥ ७९॥
लब्धवर्णो लघुतरो लघुत्वपरिवर्जितः।
लोलाक्षो लोकसम्पूज्यो लावण्यपरिसंयुतः॥ ८०॥

अभिभूत, अभिभूतात्मा, सर्वभूतप्रमोहक, भुवनेश, भूतपूज्य, भोगमोक्षफलप्रद, दयालु, दीननाथ, दुःसह, दैत्यमर्दक, दक्षकन्यापति, दुःखनाशक, धनधान्यद, दयावान्, दैवतश्रेष्ठ, देवगन्धर्वसेवित, नानायुधधर, नानापुष्पगुच्छविराजित, नानासुखप्रद, नानामूर्तिधारी, नर्तक, नित्यविज्ञानसंयुक्त, नित्यरूप, अनिल, अनल, लब्धवर्ण, लघुतर, लघुत्वपरिवर्जित, लोलाक्ष, लोकसम्पूज्य, लावण्यपरिसंयुत॥ ७६—८०॥

नपुरी न्यासससंस्थश्च नागेशो नगपूजितः।
नारायणो नारदश्च नानाभरणभूषितः॥ ८१॥
नगभूतो नग्रदेशो नग्रः सानन्दमानसः।
नमस्यो नतनाभिश्च नम्रमूर्धाभिवन्दितः॥ ८२॥
नन्दिकेशो नन्दिपूज्यो नानानीरजमध्यगः।
नवीनबिल्वपत्रौघतुष्टो नवघनद्युतिः॥ ८३॥
नन्दः सानन्द आनन्दमयश्चानन्दविह्वलः।
नालसंस्थः शोभनस्थः सुस्थः सुस्थमतिस्तथा॥ ८४॥
स्वल्पासनो भीमरुचिर्भुवनान्तकराम्बुदः।
आसन्नः सिकतालीनो वृषासीनो वृषासनः॥ ८५॥
वैरस्यरहितो वार्यो व्रती व्रतपरायणः।
ब्राह्मयो विद्यामयो विद्याभ्यासी विद्यापतिस्तथा॥ ८६॥
घण्टाकारो घोटकस्थो घोररावघनस्वनः।
घूर्णचक्षुरघूर्णात्मा घोरहासो गभीरधीः॥ ८७॥
चण्डीपतिश्चण्डमूर्तिश्चण्डमुण्डी प्रचण्डवाक्।
चितासंस्थश्चितावासश्चितिदण्डकरः सदा॥ ८८॥
चिताभस्माभिसंलिप्तश्चितानृत्यपरायणः।
चिताप्रमोदी चित्साक्षी चिन्तामणिरचिन्तकः॥ ८९॥
चतुर्वेदमयश्चक्षुश्चतुराननपूजितः।
चिरवासाश्चकोराक्षश्चलन्मूर्तिश्चलेक्षणः॥ ९०॥
चलत्कुण्डलभूषाढ्यश्चलद्भूषणभूषितः।
चलन्नेत्रश्चलत्पादश्चलन्नूपुरराजितः॥ ९१॥
स्थावरः स्थिरमूर्तिश्च स्थावरेशः स्थिरासनः।
स्थापकास्थैर्यनिरतः स्थूलरूपी स्थलालयः॥ ९२॥
स्थैर्यातिपः स्थितिपरः स्थाणुरूपी स्थलाधिपः।
ऐहिको मदमत्तश्च महीमण्डलपूजितः॥ ९३॥
महीप्रियो मत्तरवो मीनकेतुर्विमर्दकः।
मीनरूपो मीनसंस्थो मृगहस्तो मृगासनः॥ ९४॥
मार्गस्थो मेखलायुक्तो मैथिलीश्वरपूजितः।
मिथ्याहीनो मङ्गलदो माङ्गल्यो मकरासनः॥ ९५॥

नपुरी, न्याससंस्थ, नागेश, नगपूजित, नारायण, नारद, नानाभरणभूषित, नगभूत, नग्रदेश, नग्र, सानन्दमानस, नमस्य, नतनाभि, नम्रमूर्धाभिवन्दित, नन्दिकेश, नन्दिपूज्य, नानानीरजमध्यग, नवीन-बिल्वपत्रौघतुष्ट, नवघनद्युति, नन्द, सानन्द, आनन्दमय, आनन्दविह्वल, नालसंस्थ, शोभनस्थ, सुस्थ, सुस्थमति, स्वल्पासन, भीमरुचि, भुवनान्तकराम्बुद, आसन्न, सिकतालीन, वृषासीन, वृषासन॥ ८१—८५॥

वैरस्यरहित, वार्य, व्रती, व्रतपरायण, ब्राह्मय, विद्यामय, विद्याभ्यासी, विद्यापति, घण्टाकार, घोटकस्थ, घोररावघनस्वन, घूर्णचक्षु, अघूर्णात्मा, घोरहास, गभीरधी, चण्डीपति, चण्डमूर्ति, चण्डमुण्डी, प्रचण्डवाक्, चितासंस्थ, चितावास, चितिदण्डकर, चिताभस्माभिसंलिप्त, चितानृत्यपरायण, चिताप्रमोदी, चित्साक्षी, चिन्तामणि, अचिन्तक, चतुर्वेदमय, चक्षु, चतुराननपूजित, चिरवासा, चकोराक्ष, चलन्मूर्ति, चलेक्षण॥ ८६—९०॥

चलत्कुण्डलभूषाढ्य, चलद्भूषणभूषित, चलन्नेत्र, चलत्पाद, चलन्नूपुरराजित, स्थावर, स्थिरमूर्ति, स्थावरेश, स्थिरासन, स्थापकास्थैर्यनिरत, स्थूलरूपी, स्थलालय, स्थैर्यातिप, स्थितिपर, स्थाणुरूपी, स्थलाधिप, ऐहिक, मदमत्त, महीमण्डलपूजित, महीप्रिय, मत्तरव, मीनकेतु, विमर्दक, मीनरूप, मीनसंस्थ, मृगहस्त, मृगासन, मार्गस्थ, मेखलायुक्त, मैथिलीश्वरपूजित, मिथ्याहीन, मङ्गलद, माङ्गल्य, मकरासन॥ ९१—९५॥

मत्स्यप्रियो मधुरगीर्मधुपानपरायणः।
मृदुवाक्यपरः सौरप्रियो मोदान्वितस्तथा॥ ९६ ॥
मुण्डालिर्भूषणो दण्डी उद्दण्डोज्ज्वललोचनः।
असाध्यसाधकः शूरसेव्यः शोकापनोदनः॥ ९७ ॥
श्रीपतिः श्रीसुसेव्यश्च श्रीधरः श्रीनिकेतनः।
श्रीमतां श्रीस्वरूपश्च श्रीमाञ्श्रीनिलयस्तथा॥ ९८ ॥
श्रमादिक्लेशरहितः श्रीनिवासः श्रियान्वितः।
श्रद्धालुः श्राद्धदेवश्च श्राद्धो मधुरवाक्तथा॥ ९९ ॥
प्रलयाग्न्यर्कसंकाशः प्रमत्तनयनोज्ज्वलः।
असाध्यसाधकः शूरसेव्यः शोकापनोदनः॥ १०० ॥

मत्स्यप्रिय, मधुरगी, मधुपानपरायण, मृदुवाक्यपर, सौरप्रिय, मोदान्वित, मुण्डालि, भूषण, दण्डी, उद्दण्डोज्ज्वललोचन, असाध्यसाधक, शूरसेव्य, शोकापनोदन, श्रीपति, श्रीसुसेव्य, श्रीधर, श्रीनिकेतन, श्रीमतां श्रीस्वरूप, श्रीमान्, श्रीनिलय, श्रमादिक्लेशरहित, श्रीनिवास, श्रियान्वित, श्रद्धालु, श्राद्धदेव, श्राद्ध, मधुरवाक्, प्रलयाग्न्यर्कसंकाश, प्रमत्तनयनोज्ज्वल, असाध्यसाधक, शूरसेव्य, शोकापनोदन॥ ९६—१०० ॥

विश्वभूतमयो वैश्वानरनेत्रोऽधिमोहकृत्।
लोकत्राणपरोऽपारगुणः पारविवर्जितः॥ १०१ ॥
अग्निजिह्वो द्विजास्यश्च विश्वास्यः सर्वभूतधृक्।
खेचरः खेचराधीशो सर्वगः सार्वलौकिकः॥ १०२ ॥
सेनानीजनकः क्षुब्धाब्धिवारिक्षोभविनाशकः।
कपालविलसद्धस्तः कमण्डलुभृदर्चितः॥ १०३ ॥
केवलात्मस्वरूपश्च केवलज्ञानरूपकः।
व्योमालयनिवासी च बृहद्व्योमस्वरूपकः॥ १०४ ॥
अम्भोजनयनाम्भोधिशयानः पुरुषातिगः।
निरालम्बावलम्बश्च सम्भोगानन्दरूपकः॥ १०५ ॥

विश्वभूतमय, वैश्वानरनेत्र अधिमोहकृत, लोकत्राणपर, अपारगुण, पारविवर्जित, अग्निजिह्व, द्विजास्य, विश्वास्य, सर्वभूतधृक्, खेचर, खेचराधीश, सर्वग, सार्वलौकिक, सेनानीजनक, क्षुब्धाब्धिवारिक्षोभविनाशक, कपालविलसद्धस्त, कमण्डलुभृत्, अर्चित, केवलात्मस्वरूप, केवलज्ञानरूपक, व्योमालयनिवासी, बृहद्व्योमस्वरूपक, अम्भोजनयनाम्भोधिशयान, पुरुषातिग, निरालम्बावलम्ब, सम्भोगानन्दरूपक॥ १०१—१०५ ॥

योगनिद्रामयो लोकप्रमोहापहरात्मकः।
बृहद्वक्त्रो बृहन्नेत्रो बृहद्बाहुर्बृहद्बलः॥ १०६ ॥
बृहत्सर्पाङ्गदो दुष्टबृहद्बलविमर्दकः।
बृहद्भुजबलोन्मत्तो बृहत्तुण्डो बृहद्वपुः॥ १०७ ॥
बृहदैश्वर्ययुक्तश्च बृहदैश्वर्यदः स्वयम्।
बृहत्सम्भोगसंतुष्टो बृहदानन्ददायकः॥ १०८ ॥
बृहज्जटाजूटधरो बृहन्माली बृहद्धनुः।
इन्द्रियाधिष्ठितः सर्वलोकेन्द्रियविमोहकृत्॥ १०९ ॥
सर्वेन्द्रियप्रवृत्तिकृत् सर्वेन्द्रियनिवृत्तिकृत्।
प्रवृत्तिनायकः सर्वविपत्तिपरिनाशकः॥ ११० ॥

योगनिद्रामय, लोकप्रमोहापहरात्मक, बृहद्वक्त्र, बृहन्नेत्र, बृहद्बाहु, बृहद्बल, बृहत्सर्पाङ्गद, दुष्टबृहद्बलविमर्दक, बृहद्भुजबलोन्मत्त, बृहत्तुण्ड, बृहद्वपु, बृहदैश्वर्ययुक्त, बृहदैश्वर्यद, बृहत्संभोगसंतुष्ट, बृहदानन्ददायक, बृहज्जटाजूटधर, बृहन्माली, बृहद्धनु, इन्द्रियाधिष्ठित, सर्वलोकेन्द्रियविमोहकृत्, सर्वेन्द्रियप्रवृत्तिकृत्, सर्वेन्द्रियनिवृत्तिकृत्, प्रवृत्तिनायक, सर्वविपत्तिपरिनाशक॥ १०६—११० ॥

प्रवृत्तिमार्गनेता त्वं स्वतन्त्रेच्छामयः स्वयम्।
सत्प्रवृत्तिरतो नित्यं दयानन्दशिवाधरः॥ १११॥
क्षितिरूपस्तोयरूपी विश्वतृप्तिकरस्तथा।
तर्पस्तर्पणसम्प्रीतस्तर्पकस्तर्पणात्मकः॥ ११२॥
तृप्तिकारणभूतश्च सर्वतृप्तिप्रसाधकः।
अभेदाभेदकोच्छिद्यच्छेदकोऽछेद्य एव हि॥ ११३॥
अच्छिन्नधन्वाच्छिन्नेषुरच्छिन्नध्वजवाहनः।
अधृष्टः समधृष्टास्त्रः समधृष्ट्यबलोन्नतः॥ ११४॥
चित्रयोधी चित्रकर्मा विश्वसंकर्षकः स्वयम्।
भक्तानामीप्सितकरः सर्वेप्सितफलप्रदः॥ ११५॥
वाञ्छिताभीष्टफलदो भिन्नज्ञानप्रवर्तकः।
बोधनात्मा बोधनार्थातिगः सर्वप्रबोधकृत्॥ ११६॥
त्रिजटश्चैकजटिलश्चलज्जटभयानकः।
जटाटीरो जटाजूटस्पृष्टावरवचः स्वयम्॥ ११७॥
षाण्मातुरस्य जनकः शक्तिप्रहरतां वरः।
अनर्घास्त्रप्रहारी चानर्घधन्वा महार्घ्यपात्॥ ११८॥
योनिमण्डलमध्यस्थः मुखयोनिरजृम्भनः।
महाद्रिसदृशः श्वेतः श्वेतपुष्पस्त्रगन्वितः॥ ११९॥
मकरन्दप्रियो नित्यं मासर्तुहायनात्मकः।
नानापुष्पप्रसूर्नानापुष्पैरर्चितगात्रकः॥ १२०॥
षडङ्गयोगनिरतः सदायोगार्द्रमानसः।
सुरासुरनिषेव्याङ्घ्रिर्विलसत्पादपङ्कजः॥ १२१॥
सुप्रकाशितवक्त्राब्जः सितेतरगलोज्ज्वलः।
वैनतेयसमारूढः शरदिन्दुसहस्त्रवत्॥ १२२॥
जाज्वल्यमानस्तेजोभिर्ज्वालापुञ्जो यमः स्वयम्।
प्रज्वलद्विद्युदाभश्च साट्टहासभयंकरः॥ १२३॥
प्रलयानलरूपी च प्रलयाग्निरुचिः स्वयम्।
जगतामेकपुरुषो जगतां प्रलयात्मकः॥ १२४॥
प्रसीद त्वं जगन्नाथ जगद्योने नमोऽस्तु ते॥ १२५॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं नामसहस्त्रेण राज्ञा वै संस्तुतो हरः।
प्रत्यक्षमगमत्तस्य सुप्रसन्नमुखाम्बुजः॥ १२६॥

प्रवृत्तिमार्गनेता, स्वतन्त्रेच्छामय, सत्प्रवृत्तिरत, दयानन्दशिवाधर, क्षितिरूप, तोयरूपी, विश्वतृप्तिकर, तर्प, तर्पणसम्प्रीत, तर्पक, तर्पणात्मक, तृप्तिकारण-भूत, सर्वतृप्तिप्रसाधक, अभेदाभेदकोच्छिद्यच्छेदक, अछेद्य, अछिन्नधन्वा, अच्छिन्नेषु, अच्छिन्नध्वजवाहन, अधृष्ट, समधृष्टास्त्र, समधृष्ट्यबलोन्नत, चित्रयोधी, चित्रकर्मा, विश्वसंकर्षक, भक्तानामीप्सितकर, सर्वेप्सितफलप्रद॥ १११—११५॥

वाञ्छिताभीष्टफलद, भिन्नज्ञानप्रवर्तक, बोधनात्मा, बोधनार्थातिग, सर्वप्रबोधकृत्, त्रिजट, एकजटिल, चलज्जटभयानक, जटाटीर, जटाजूटस्पृष्टावरवच, षाण्मातुरस्य जनक, शक्तिप्रहरतां वर, अनर्घास्त्रप्रहारी, अनर्घधन्वा, महार्घ्यपात्, योनिमण्डलमध्यस्थ, मुखयोनि, अजृम्भन, महाद्रिसदृश, श्वेत, श्वेतपुष्पस्त्रगन्वित, मकरन्दप्रिय, मासर्तुहायनात्मक, नानापुष्पप्रसू, नानापुष्पैरर्चितगात्रक॥ ११६—१२०॥ षडङ्गयोगनिरत, सदायोगार्द्रमानस, सुरासुरनिषेव्याङ्घ्रि, विलसत्पादपङ्कज, सुप्रकाशितवक्त्राब्ज, सितेतरगलोज्ज्वल, वैनतेयसमारूढ, शरदिन्दुसहस्त्रवत्, तेजोभि जाज्वल्यमान, ज्वालापुञ्ज, यम, प्रज्वलद्विद्युदाभ, साट्टहासभयंकर, प्रलयानलरूपी, प्रलयाग्निरुचि, जगतामेकपुरुष, जगतां प्रलयात्मक॥ १२१—१२४॥ जगद्योने! जगन्नाथ! आपको नमस्कार है, आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ १२५॥

श्रीमहादेवजी बोले—राजा भगीरथके द्वारा इस प्रकार एक हजार नामोंसे स्तुति करनेपर अत्यन्त प्रसन्न मुखकमलवाले भगवान् शंकर उनके समक्ष प्रकट हो गये॥ १२६॥

स तं विलोक्य त्रिदशैकनाथं
पञ्चाननं श्वेतरुचिं प्रसन्नम्।
वृषाधिरूढं भुजगाङ्गदैर्युतं
ननर्त राजा धरणीभुजां वरः ॥ १२७ ॥

प्रोवाच चेदं परमेश्वराद्य मे
एतानि सर्वाणि सुखार्थकानि।
तपश्च होमश्च मनुष्यजन्म
यत्त्वां प्रपश्यामि दृशा परेशम्॥ १२८ ॥

मत्तो न त्वन्योस्ति महीतले वा
स्वर्गे यतस्त्वं मम नेत्रगोचरः।
सुरासुराणामपि दुर्लभेक्षणः
परात्परः पूर्णमयो निरामयः ॥ १२९ ॥

ततस्तमेवं प्रतिभाषमाणं
प्राह प्रपन्नार्तिहरो महेश्वरः।
किं ते मनोवाञ्छितमेव विद्यते
वृणुष्व तत्पुत्र ददामि तुभ्यम्॥ १३० ॥

स चाह पूर्वं कपिलस्य शापतः
पातालरन्ध्रे मम पूर्ववंशजाः।
भस्मीबभूवुः सगरस्य पुत्रा
महाबला देवसमानविक्रमाः ॥ १३१ ॥

तेषां तु निस्तारणकाम्यया ह्यहं
गङ्गां धरण्यामभिनेतुमीहे।
सा तु त्वदीया परमा हि शक्तिः
विनाज्ञया ते नहि याति पृथ्वीम्॥ १३२ ॥

तदेतदिच्छामि समेत्य गङ्गा
क्षितौ महावेगवती महानदी।
प्रविश्य तस्मिन्विवरे महेश्वरी
पुनातु सर्वान्सगरस्य पुत्रान्॥ १३३ ॥



देवताओंके एकमात्र स्वामी, पञ्चानन, श्वेतकान्तियुक्त, वृषपर आरूढ़, सर्पोंके बाजूवन्दसे सम्पन्न, प्रसन्न भगवान् शिवको देखकर राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज भगीरथ नाचने लगे और कहने लगे—परमेश्वर! आज! मेरी तपस्या, होम और मानवजन्म—ये सभी सुखके साधन सफल हो गये; क्योंकि आप परमेश्वरका मैं अपने नेत्रोंसे दर्शन कर रहा हूँ॥ १२७-१२८॥

इस पृथ्वीपर अथवा स्वर्गमें मेरे समान कोई दूसरा नहीं है; क्योंकि मैं आपका दर्शन कर रहा हूँ। आप परात्पर, पूर्णमय, निर्विकार हैं तथा देवता और असुरोंके लिये भी आपका दर्शन दुर्लभ है॥ १२९॥ तदनन्तर शरणागतोंकी पीड़ाका हरण करनेवाले भगवान् महेश्वरने ऐसा कहते हुए भगीरथसे कहा—पुत्र! तुम्हारे मनमें कौन-सी अभिलाषा है, उसे माँगो। मैं तुम्हें वह दूँगा॥ १३०॥ उन्होंने कहा कि पूर्वकालमें महाराज सगरके महाबलशाली पुत्र, देवताओंके समान पराक्रमी मेरे पूर्व वंशज कपिलमुनिके शापसे पातालमें भस्मीभूत हो गये हैं। उन्हीं लोगोंके उद्धारकी इच्छासे मैं गङ्गाको पृथ्वीपर ले जाना चाहता हूँ। वे तो आपकी परम शक्ति हैं इसलिये वे आपकी आज्ञाके बिना पृथ्वीपर नहीं जा रही हैं॥ १३१-१३२॥ मैं यह चाहता हूँ कि महावेगवती महानदी महेश्वरी गङ्गा पृथ्वीपर आकर उस पाताल-विवरमें प्रवेश कर महाराजा सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र करें॥ १३३॥

इत्येवमाकर्ण्य वचः परेश्वरः
प्रोवाच वाक्यं क्षितिपालपुङ्गवम्।
मनोरथस्तेऽयमवेहि पूर्णो
मम प्रसादादचिराद्भविष्यति॥ १३४॥

ये चापि मां भक्तित एव मर्त्या
स्तोत्रेण चानेन नृप स्तुवन्ति।
तेषां तु पूर्णाः सकला मनोरथा
ध्रुवं भविष्यन्ति मम प्रसादात्॥ १३५॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं स वरं लब्ध्वा राजा हृष्टमनास्ततः।
दण्डवत्प्रणिपत्याह धन्योऽहं त्वत्प्रसादतः॥ १३६॥

ततश्चान्तर्दधे देवः क्षणादेव महामते।
राजा निर्वृत्तचेताः स बभूव मुनिसत्तम॥ १३७॥

राज्ञा कृतमिदं स्तोत्रं सहस्त्रनामसंज्ञकम्।
यः पठेत्परया भक्त्या स कैवल्यमवाप्नुयात्॥ १३८॥

न चेह दुःखं कुत्रापि जायते तस्य नारद।
जायते परमैश्वर्यं प्रसादाच्च महेशितुः॥ १३९॥

महापदि भये घोरे यः पठेत्स्तोत्रमुत्तमम्।
शम्भोर्नामसहस्त्राख्यं सर्वमङ्गलवर्धनम्॥ १४०॥

महाभयहरं सर्वं सुखसम्पत्तिदायकम्।
स मुच्यते महादेवप्रसादेन महाभयात्॥ १४१॥

दुर्भिक्ष्ये लोकपीडायां देशोपद्रव एव वा।
सम्पूज्य परमेशानं धूपदीपादिभिर्मुने॥ १४२॥

यः पठेत्परया भक्त्या स्तोत्रं नामसहस्त्रकम्।
न तस्य देशे दुर्भिक्षं न च लोकादिपीडनम्॥ १४३॥

न चान्योपद्रवो वापि भवेदेतत्सुनिश्चितम्।
पर्जन्योऽपि यथाकाले वृष्टिं तत्र करोति हि॥ १४४॥

यत्रेदं पठ्यते स्तोत्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
सर्वसस्ययुता पृथ्वी तस्मिन्देशे भवेद्ध्रुवम्॥ १४५॥

न दुष्टबुद्धिर्लोकानां तत्रस्थानां भवेदपि।
नाकाले मरणं तत्र प्राणिनां जायते मुने॥ १४६॥

ऐसा सुनकर परमेश्वर भगवान् शंकरने राजाओंमें श्रेष्ठ भगीरथसे कहा कि आप यह जानिये कि मेरी कृपासे आपका यह मनोरथ अविलम्ब ही पूर्ण होगा॥ १३४॥ राजन्! जो मानव इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन करेंगे, मेरी कृपासे निश्चित ही उनके सभी मनोरथ पूर्ण होंगे॥ १३५॥

श्रीमहादेवजी बोले—प्रसन्नमनवाले राजा भगीरथने ऐसा वरदान प्राप्त कर भगवान् शंकरको दण्डवत् प्रणाम कर कहा कि आपकी कृपासे मैं धन्य हो गया॥ १३६॥ महामते! मुनिश्रेष्ठ! तब भगवान् शंकर क्षणभरमें ही अन्तर्धान हो गये और राजा भगीरथ भी पूर्णमनोरथ हो गये॥ १३७॥ जो मनुष्य राजा भगीरथके द्वारा किये गये इस सहस्त्रनामवाले स्तोत्रका परम भक्तिके साथ पाठ करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। नारद! इस संसारमें उसे कहीं भी दुःख नहीं होता और भगवान् शंकरकी कृपासे उसे परम ऐश्वर्य प्राप्त होता है॥ १३८-१३९॥

जो व्यक्ति महान् विपत्तिमें तथा कठिन भयकी स्थितिमें समस्त मङ्गलोंकी वृद्धि करनेवाले, महाभयको दूर करनेवाले, सभी प्रकारकी सुख-सम्पत्तिको देनेवाले भगवान् शम्भुके सहस्त्रनामसंज्ञक इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करता है, वह महादेवजीकी कृपासे महाभयसे मुक्त हो जाता है॥ १४०-१४१॥ मुने! अकाल पड़नेपर, लोगोंके पीड़ित होनेपर अथवा देशमें उपद्रव होनेपर धूप-दीप आदि उपचारोंसे भगवान् शंकरकी पूजा कर जो परम भक्तिसे इस सहस्त्रनामस्तोत्रका पाठ करता है, उसके देशमें न दुर्भिक्ष रहता है न लोगोंको कष्ट होता है और न ही अन्य कोई उपद्रव ही होता है तथा बादल भी यथासमय वृष्टि करते हैं, यह सुनिश्चित है॥ १४२—१४४॥ मुने! जिस स्थानपर सभी पापोंको नष्ट करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, वहाँकी भूमि निश्चितरूपसे सभी धान्योंसे सम्पन्न रहती है। वहाँके लोग कभी भी दुष्ट बुद्धिवाले नहीं होते और वहाँके प्राणियोंकी अकालमृत्यु नहीं होती॥ १४५-१४६॥

न हिंसास्तत्र हिंसन्ति देवदेवप्रसादतः।
धन्या देशाः प्रजा धन्या यत्र देशे महेश्वरम्॥ १४७॥

सम्पूज्य पार्थिवं लिङ्गं पठेद्यत्रेदमुत्तमम्।
चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुने मासि भक्तितः॥ १४८॥

यः पठेत्परमेशस्य नाम्नां दशशताख्यकम्।
स्तोत्रमत्यन्तसुखदं न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ १४९॥

वायुतुल्यबलो नूनं विहरेद्धरणीतले।
धनेशतुल्यो धनवान्कन्दर्पसमरूपवान्॥ १५०॥

विहरेद्देवतातुल्यो निग्रहानुग्रहे क्षमः।
गङ्गायां वा कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा महेश्वरम्।
परिपूज्य पठेद्यस्तु स कैवल्यमवाप्नुयात्॥ १५१॥

काश्यां यस्तु पठेदेतत्स्तोत्रं परममङ्गलम्।
तस्य पुण्यं मुनिश्रेष्ठ किमहं कथयामि ते॥ १५२॥

एतत्स्तोत्रप्रसादेन स जीवन्नेव मानवः।
साक्षान्महेशतामेति मुक्तिरन्ते करास्थिता॥ १५३॥

प्रत्यहं प्रपठेदेतद्बिल्वमूले नरोत्तमः।
स सालोक्यमवाप्नोति देवदेवप्रसादतः॥ १५४॥

यो ह्येतत्पाठयेत्स्तोत्रं सर्वपापनिबर्हणम्।
स मुच्यते महापापात्सत्यं सत्यं वदामि ते॥ १५५॥

न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नापमृत्युभयं तथा।
न तं द्विषन्ति राजानो न वा व्याधिभयं भवेत्॥ १५६॥

जिस देशमें फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको पार्थिवलिङ्गमें भगवान् महेश्वरकी भक्तिपूर्वक पूजा करके इस उत्तम स्तोत्रका पाठ किया जाता है, देवाधिदेव भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँके हिंसक जन्तु भी हिंसावृत्तिका परित्याग कर देते हैं, वे देश धन्य हैं तथा वहाँकी प्रजा भी धन्य है॥ १४७-१४८॥

जो व्यक्ति भगवान् शंकरके अत्यन्त सुखदायक इस सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करता है, उसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती। वह वायुके समान बलवान्, कुबेरके समान धनवान् तथा कामदेवके समान रूपवान् होकर निश्चय ही पृथ्वीपर विहार करता है। वह अनुग्रह तथा निग्रह (नियन्त्रण)-में समर्थ होकर देवताके समान विचरण करता है। गङ्गा, कुरुक्षेत्र अथवा प्रयागमें भगवान् शंकरकी पूजा करके जो मनुष्य इस सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १४९—१५१॥

मुनिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति काशीमें इस परम मङ्गलदायक स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पुण्यके विषयमें मैं आपसे क्या कहूँ। इस स्तोत्रके प्रभावसे वह मानव जीते-जी साक्षात् महेश्वरत्वको प्राप्त हो जाता है तथा अन्तमें मुक्ति उसके हाथमें स्थित रहती है॥ १५२-१५३॥ जो नरश्रेष्ठ बिल्ववृक्षके मूलके पास बैठकर इस स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, उसे देवाधिदेव भगवान् शंकरके प्रसादसे सालोक्यमुक्ति प्राप्त होती है॥ १५४॥ जो मनुष्य सभी पापोंको दूर करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह महापापसे मुक्त हो जाता है, यह मैं आपसे सच-सच कहता हूँ। उसको न ग्रहोंकी पीड़ा होती है, न अकालमृत्युका भय रहता है, न उससे राजा लोग द्वेष करते हैं और न ही उसे रोगका भय रहता है॥ १५५-१५६॥

पठेदेतद्धृदि ध्यात्वा देवदेवं सनातनम्।
सर्वदेवमयं पूर्णं रजताद्रिसमप्रभम्॥ १५७॥
प्रफुल्लपङ्कजास्यं च चारुरूपं वृषध्वजम्।
जटाजूटज्वलत्कालकूटशोभितविग्रहम्॥ १५८॥
त्रिशूलं डमरुं चैव दधानं दक्षवामयोः।
द्वीपिचर्माम्बरधरं शान्तं त्रैलोक्यमोहनम्॥ १५९॥
एवं हृदि नरो भक्त्या विभाव्यैतत्पठेद्यदि।
इह भुक्त्वा परं भोगं परत्र च महामते॥ १६०॥
शम्भोः स्वरूपतां याति किमन्यत्कथयामि ते॥ १६१॥

महामते! जो मनुष्य सर्वदेवमय, पूर्णस्वरूप, रजतके पर्वतके समान प्रभावाले, खिले हुए कमलके समान मुखवाले, सुन्दररूपसे सम्पन्न, जटाजूटसे देदीप्यमान, कालकूटसे सुशोभित विग्रहवाले, दक्षिण तथा वामहस्तमें क्रमशः त्रिशूल एवं डमरू धारण करनेवाले, व्याघ्रचर्माम्बरधारी, शान्तस्वरूप और तीनों लोकोंको मोहित करनेवाले वृषध्वज देवाधिदेव, सनातन भगवान् शिवका अपने हृदयमें ध्यान करके तथा हृदयमें उनकी भावना करते हुए भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ऐहिक श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर परलोकमें भगवान् शिवके सारूप्य मोक्षको प्राप्त करता है। आपसे और अधिक क्या कहूँ॥ १५७—१६१॥

तत्रैव सद्भक्तियुतः पठेदिदं
स्तोत्रं मम प्रीतिकरं परं मुने।
मर्त्यो हि योऽन्यः खलु सोऽपि कृच्छ्रं
जगत्पवित्रायत एव पापतः॥ १६२॥

मुने! वहीं जो अन्य मनुष्य उत्तम भक्तिसे युक्त होकर मुझे परम प्रसन्न करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह निश्चय ही कठिन संसारको पापसे [मुक्त करके] पवित्र कर देता है॥ १६२॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीशिवनारदसंवादे गङ्गाया आगमनोपाख्याने भगीरथमुखनिर्गतशिवसहस्रनामकथनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीशिव-नारद-संवादमें गङ्गाके आगमनोपाख्यानमें 'भगीरथमुखनिर्गत-शिवसहस्रनामकथन' नामक सड़सठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

भगवती गङ्गाका भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे निकलकर सुमेरु पर्वतपर आना, पृथ्वीद्वारा गङ्गाकी स्तुति, इन्द्रकी प्रार्थनापर गङ्गाकी एक धाराका स्वर्गमें प्रतिष्ठित होना तथा दूसरी धाराका सुमेरुके दक्षिण शिखरका भेदन करना

श्रीमहादेव उवाच

अथ राजा स पुण्यात्मा ज्येष्ठे मासि शुभेऽहनि।
हस्तायां मङ्गलदिने शुक्लपक्षे महामुने॥ १॥
आरुरोह रथं दिव्यं ध्मायन्शङ्खं महास्वनम्।
स रथस्थो महाबाहुर्व्यराजत महामुने॥ २॥
मध्याह्नार्क इवातीव तेजसा ह्यमितेन वै।
सर्वाभरणसम्पन्नो मुकुटोज्ज्वलमस्तकः॥ ३॥
तेजस्वी रुचिरश्यामः सुवासा रक्तलोचनः।
राजर्षी राजवर्यश्च सुप्रसन्नमुखाम्बुजः॥ ४॥
काकपक्षधरो धन्यो राजन्यतिलको बलिः।

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! इस प्रकार पुण्यात्मा राजा भगीरथ ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें हस्त नक्षत्रसे युक्त मङ्गलवार शुभ दिनको उच्च ध्वनिमें शङ्ख बजाते हुए रथपर आरूढ़ हो गये। महामुने! रथपर आरूढ़ राजा भगीरथ मध्याह्नकालीन सूर्यकी भाँति अपरिमित अतीव तेजसे सुशोभित हो रहे थे। वे सभी आभूषणोंसे सम्पन्न, मस्तकपर उज्ज्वल मुकुट धारण किये हुए, तेजसम्पन्न, सुन्दर श्याम वर्णवाले, शोभनीय वस्त्र धारण किये हुए, रक्तनेत्रोंवाले, राजाओंमें श्रेष्ठ राजर्षि, कमलकी भाँति प्रसन्न मुखवाले, सुविभक्त केशराशिसे विभूषित, बली राजाओंमें श्रेष्ठ तथा धन्यभाक् थे॥ १—४½॥

रथश्च विमलाभासो नानारत्नविभूषितः॥ ५ ॥
सुमेरुशृङ्गसंकाशः कान्त्यातीव व्यराजत॥ ६ ॥
चित्रध्वजपताकाभिर्हयैः काञ्चनभूषितैः।
विरेजे रथराजस्तु राज्ञः सूर्यरथोपमः॥ ७ ॥
एतस्मिन्नन्तरे क्षोणी ज्ञात्वा तं नृपसत्तमम्।
गङ्गावतारकं भूमौ दिव्यरूपं समागमत्॥ ८ ॥
सा तं प्रणम्य राजानं धर्मात्मानं भगीरथम्।
अब्रवीन्मुनिशार्दूल वाक्यं सुरुचिरं तदा॥ ९ ॥

धरण्युवाच

राजन्धर्ममयः साक्षात्त्वं महात्मा महीक्षितः।
ज्ञातं मया समुद्धर्तुं पितॄन्सगरवंशजान्॥ १०॥
गङ्गां पुण्यतमां धन्यां विष्णोर्देहकृताश्रयाम्।
समानेष्यसि यत्रासन्सगरा भस्मरूपिणः॥ ११॥
तत्र ते प्रार्थयाम्येतच्चतुर्दिक्ष्वेव भूपते।
आसमुद्राच्चतुर्धारा भूत्वा मां स पुनाति वै॥ १२॥
यथा तथा विधातव्यं त्वया पुण्यात्मना सदा।

राजोवाच

यदा हरिपदाम्भोजान्निसृत्य द्रवरूपिणी॥ १३॥
शाम्भवी सा महाशक्तिर्मेरुशृङ्गमवाप्स्यति।
तदा त्वयापि सा देवी समाराध्या सुरेश्वरी॥ १४॥
अहं च प्रार्थयिष्यामि त्वत्कृते तां विशेषतः।
ततस्ते सम्भवित्री सा यथेष्टफलदायिनी॥ १५॥
अहं स्वर्गपुरं यामि तामानेतुमनाः क्षितौ।
त्वमेहि तत्र तां भक्त्या सम्प्रार्थयितुमुत्तमाम्॥ १६॥

श्रीमहादेव उवाच

राज्ञा सहैव सा क्षोणी सुप्रसन्नमुखाम्बुजा।
स्वर्गाभिगमने चक्रे मतिं स्थिरतरां मुने॥ १७॥
ततः प्राह स राजापि सारथिं रथिनां वरः।
वाहयस्व रथं तूर्णं स्वर्गं नय महाबल॥ १८॥

उनका रथ स्वच्छ, कान्तियुक्त, विभिन्न रत्नोंसे सुशोभित, सुमेरुशृङ्गके समान विशाल और अपनी अत्यधिक कान्तिसे सुशोभित था। राजाका वह महान् रथ सूर्यके रथके समान, स्वर्णालङ्कारोंसे सुशोभित घोड़ों तथा विभिन्न ध्वज-पताकाओंसे सुसज्जित था॥ ५—७॥ तदनन्तर पृथ्वी दिव्यरूपवाले नृपश्रेष्ठ भगीरथको भूमिपर गङ्गाका अवतरण करानेवाला जानकर उनके सम्मुख प्रकट हो गयीं। मुनिश्रेष्ठ! धर्मात्मा राजा भगीरथको नमस्कार कर पृथ्वीने राजासे इस प्रकार सुन्दर वचन कहा—॥ ८-९॥

पृथ्वी बोलीं—राजन्! आप पृथ्वीपालक महात्मा तथा साक्षात् धर्मस्वरूप हैं। मुझे ज्ञात हुआ है कि आप सगरके वंशज अपने पितरोंके उद्धारके लिये भगवान् विष्णुके शरीरमें स्थित, धन्य, पवित्रतम गङ्गाको वहाँ लायेंगे जहाँ आपके पूर्वज भस्मरूपमें अवस्थित हैं॥ १०-११॥ इसलिये भूपते! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप पुण्यात्मा वैसा करें, जिससे वे गङ्गा चारों दिशाओंमें समुद्रपर्यन्त चार धाराओंमें होकर मुझे पवित्र करती रहें॥ १२½॥

राजा बोले—जब वे शाम्भवी महाशक्ति द्रवरूप होकर भगवान् विष्णुके पदकमलसे निकलकर मेरुशृङ्गको प्राप्त करेंगी तब आप भी सुरेश्वरी भगवतीकी आराधना कीजियेगा॥ १३-१४॥

मैं भी आपके लिये विशेषरूपसे उनसे प्रार्थना करूँगा, तब आपके लिये वे मनोवाञ्छित फल देनेवाली होंगी। मैं उन्हें पृथ्वीपर लानेका संकल्प करके स्वर्गमें जा रहा हूँ। आप भी उन श्रेष्ठ भगवतीकी भक्तिपूर्वक प्रार्थना करनेके लिये वहाँ आवें॥ १५-१६॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! खिले हुए कमलके समान मुखवाली उन पृथ्वीने राजा भगीरथके साथ ही स्वर्गमें जानेका दृढ़ निश्चय किया। तब रथियोंमें श्रेष्ठ राजाने सारथिसे कहा—महाबली! रथको शीघ्रतासे चलाओ और स्वर्गलोकमें ले चलो॥ १७-१८॥

तच्छ्रुत्वा चालयामास सारथिस्तुरगोत्तमान्।
वायुतुल्यप्रवेगान्वै तत्क्षणान्मुनिसत्तम॥ १९॥

ततः सम्प्राप सहसा मेरुशृङ्गं रथोत्तमः।
राजा दध्मौ महाशङ्खं युगान्तजलदस्वनम्॥ २०॥

स शब्दः समनुप्राप वैकुण्ठनगरं यदा।
तदा विष्णुपदाम्भोजान्निःसृत्य द्रवरूपिणी॥ २१॥

गङ्गा कलकलध्वानं कृत्वा वेगवती स्वयम्।
पपात मेरुशृङ्गे तु प्रकृतिर्नीररूपिणी॥ २२॥

तदा राजातिहृष्टात्मा शङ्खशब्दं विहाय वै।
ननर्त कृतकृत्यः सन्दृष्ट्वा गङ्गां द्रवात्मिकाम्॥ २३॥

विरते शङ्खशब्दे तु सापि वेगं विहाय वै।
विरराम कियत्कालं तस्मिन्मेरोस्तु शीर्षके॥ २४॥

एतस्मिन्नन्तरे क्षोणी गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
समुपागत्य तुष्टाव स्तोत्रेणानेन भक्तितः॥ २५॥

धरण्युवाच

देवि गङ्गे जगद्धात्रि ब्रह्मरूपे सुरेश्वरि।
लोकनिस्तारणार्थाय द्रवरूपे प्रसीद मे॥ २६॥

तवाम्बुकणिकां भक्त्याप्यभक्त्या वापि यः स्पृशेत्।
सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ २७॥

ये त्वां पश्यन्ति लोका हि पापात्मानोऽपि वै सकृत्।
न तेऽपि यमदण्ड्याः स्युर्देवि गङ्गे नमोऽस्तु ते॥ २८॥

मुनिश्रेष्ठ! यह सुनकर सारथिने वायुतुल्य तीव्र वेगवाले उत्तम घोड़ोंको तुरंत चलाया॥ १९॥ तब वह उत्तम रथ मेरुशृङ्गपर सहसा पहुँच गया। तदनन्तर राजाने प्रलयकालीन घनगर्जनके समान महाशङ्ख बजाया॥ २०॥ जब शङ्खकी ध्वनि वैकुण्ठधामको प्राप्त हुई तब नीररूपिणी पराप्रकृति भगवती गङ्गा द्रवरूपमें होकर भगवान् विष्णुके पदकमलसे निकलकर कल-कल ध्वनि करती हुई वेगपूर्वक मेरुशृङ्गपर गिरीं॥ २१-२२॥



तब अतिप्रसन्न राजा जलधारारूपी गङ्गाको देखकर कृतकृत्य हो गये और शङ्ख बजाना छोड़कर नाचने लगे॥ २३॥ शङ्खकी ध्वनि शान्त हो जानेपर भगवती गङ्गाने भी अपने वेगको छोड़कर मेरुपर्वतके शिखरपर कुछ समयतक विश्राम किया॥ २४॥ उसी समय पृथ्वी त्रैलोक्यपावनी गङ्गाके समीप आकर इस स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगीं—॥ २५॥

पृथ्वी बोलीं—जगत्का पालन करनेवाली सुरेश्वरी, ब्रह्मरूपिणी तथा लोकका उद्धार करनेके लिये द्रवरूप धारण करनेवाली देवी गङ्गे! मुझपर प्रसन्न होइये॥ २६॥

जो व्यक्ति भक्ति अथवा अभक्तिसे भी आपके जलकणका स्पर्श करता है; वह भी मुक्तिको प्राप्त करता है। देवी गङ्गे! आपको नमस्कार है॥ २७॥ जो पापीजन आपका एक बार भी दर्शन कर लेते हैं, उन्हें यमराजके दण्डका भय नहीं होता। देवी गङ्गे! आपको नमस्कार है॥ २८॥

ये स्मरन्ति सकृन्नाम गङ्गेति परमाक्षरम्।
न तस्यास्ति समो लोके देवो वा मानुषोऽपि वा॥ २९॥

त्वां नमन्ति सदा भक्त्या प्रकृतिं द्रवरूपिणीम्।
न तेषां दुर्गतिः क्वापि न वा भीतिर्यमादपि॥ ३०॥

प्राप्नुवन्ति परं मोक्षं गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते।
त्वमेका परमा शक्तिः सर्वभूताशये स्थिता॥ ३१॥

अविद्योच्छेदिनी विद्या गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते।
अविद्याधारिणी विद्या विष्णुदेहकृतालये।
विष्णुपादाब्जसम्भूते देवि गङ्गे नमोऽस्तु ते॥ ३२॥

विश्वात्मिके जगद्वन्द्ये शिवध्यानपरायणे।
गिरिराजसुते देवि गङ्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ३३॥

त्वयि भक्तिस्त्वयि प्रीतिस्त्वयि श्रद्धा मतिस्त्वयि।
येषामस्ति न ते मृत्योर्वशमायान्ति कुत्रचित्॥ ३४॥

नवाऽधः पतनं तेषां न वा दुःखं न वा भयम्।
त्वत्प्रसादाद्भवेद्देवि गङ्गे मातर्नमोऽस्तु ते॥ ३५॥

शुद्धबोधात्मिके सर्वलोकचैतन्यरूपिणी।
प्रसीद गङ्गे पापानि ध्वंस विश्वेशि ते नमः॥ ३६॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं संस्तुवन्तीं तां धरणीं जगदम्बिका।
गङ्गा प्राह वचो देवीं दिव्यरूपां महामुने॥ ३७॥

गङ्गोवाच

क्षिते किं याचसे मत्तस्तद्ब्रूहि तव वाञ्छितम्।
किमर्थं स्तौषि धरणि दृष्ट्वा मां वै द्रवात्मिकाम्॥ ३८॥

धरण्युवाच

अनुगृह्य महात्मानं राजानं त्वं भगीरथम्।
प्रयासि विवरस्थानं यत्रास्य पितरः पुरा।
भस्मीभूता मुनेः शापात्सगरस्य महामखे॥ ३९॥

दिव्य अक्षरोंसे युक्त 'गङ्गा' इस नामका जो एक बार स्मरण कर लेते हैं, उनके समान इस लोकमें देवता अथवा मनुष्य कोई भी नहीं होता॥ २९॥ द्रवरूपिणी पराप्रकृति आपको जो सदा भक्तिपूर्वक नमन करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती और यमराजसे भय भी नहीं रहता, वे उत्तम मोक्षको प्राप्त करते हैं। देवी गङ्गे! आपको नमस्कार है॥ ३०½॥ आप एकमात्र परम शक्ति हैं, सभी प्राणियोंके हृदयमें वास करती हैं, अविद्याको दूर करनेवाली विद्यास्वरूपिणी हैं, देवी गङ्गे! आपको नमस्कार है। आप अविद्या (माया)-को धारण करनेवाली विद्यास्वरूपा हैं, भगवान् विष्णुके विग्रहमें वास करती हैं तथा भगवान् विष्णुके चरणकमलसे उत्पन्न हुई हैं, देवी गङ्गे! आपको नमस्कार है॥ ३१-३२॥ देवि! आप विश्वात्मा, विश्वकी वन्दनीया, भगवान् शङ्करके ध्यानमें लगी रहनेवाली तथा गिरिराजपुत्री हैं, देवी गङ्गे! आपको नमस्कार है॥ ३३॥ जिनकी आपमें भक्ति, प्रीति, श्रद्धा और बुद्धि है, उन्हें कभी भी मृत्युका भय नहीं होता। देवी गङ्गे! आपकी कृपासे उनका न अधःपतन होता है, न उन्हें दुःख और भय ही प्राप्त होता है। माता! आपको नमस्कार है॥ ३४-३५॥ विश्वेशि गङ्गे! आप शुद्ध ज्ञानस्वरूपिणी, सभी प्राणियोंमें चेतनारूपसे स्थित हैं। भगवती! आप प्रसन्न होइये और पापोंका नाश कीजिये, आपको नमस्कार है॥ ३६॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! इस प्रकार स्तुति करती हुई उन दिव्यरूपा पृथ्वीसे जगदम्बिका गङ्गाने इस प्रकार कहा—॥ ३७॥

गङ्गाजी बोलीं—धरणी! क्षिते! आप मुझसे क्या माँगती हैं, वह अपना वाञ्छित मुझे बतायें। मुझ द्रवरूपिणीको देखकर आप किसलिये स्तुति कर रही हैं?॥ ३८॥

पृथ्वी बोलीं—आप महात्मा राजा भगीरथपर कृपा करके पूर्वकालमें महाराजा सगरके महायज्ञमें मुनिके शापसे जहाँ इनके पूर्वज भस्मीभूत हैं, उस विवरकी ओर प्रस्थान कर रही हैं॥ ३९॥

अत्रैतत्प्रार्थये दिक्षु चतुर्ष्वेव सुरेश्वरि।
आसमुद्राच्चतुर्धारा भूत्वा त्वं मम पृष्ठतः।
विहृत्य सरितां श्रेष्ठे पवित्रं कुरु मे तनुम्॥ ४०॥

सुरेश्वरि, सरित्श्रेष्ठे! मैं आपसे यही प्रार्थना करती हूँ कि समुद्रपर्यन्त चारों दिशाओंमें चार धाराओंमें विभक्त होकर मेरे तलपर विहार करके मेरे इस शरीरको पवित्र कीजिये॥ ४०॥

गङ्गोवाच

भगीरथस्तुता विष्णोः पदं त्यक्त्वाहमागता।
न तस्याभिमतादन्यत्कर्तुं शक्नोमि किञ्चन॥ ४१॥

गङ्गाजी बोलीं—राजा भगीरथद्वारा स्तुति किये जानेपर भगवान् विष्णुके चरणकमलको छोड़कर मैं आयी हूँ। अतः उन भगीरथकी इच्छाके अतिरिक्त कुछ भी करनेमें मैं सक्षम नहीं हूँ॥ ४१॥

श्रीमहादेव उवाच

ततो भगीरथो राजा धरणीहितकाम्यया।
प्रणिपत्य वचः प्राह गङ्गां परमवेगिनीम्॥ ४२॥

श्रीमहादेवजी बोले—तब राजा भगीरथने पृथ्वीके हितकी इच्छासे साष्टाङ्ग प्रणाम करके उत्तम वेगवाली गङ्गासे इस प्रकार कहा—॥ ४२॥

राजोवाच

मातर्गङ्गे महाभागे पुण्ये पुण्यतमोत्तमे।
धरणीयमनुग्राह्या त्वया त्रिदशवन्दिते॥ ४३॥

राजा बोले—महाभागा, पुण्या, पुण्यतमोंमें श्रेष्ठतमा तथा सुरवन्दिता मा गङ्गे! इन पृथ्वीपर आप कृपा कीजिये॥ ४३॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं मतमभिज्ञाय राज्ञस्तस्य महामतेः।
पश्चिमोत्तरपूर्वासु त्रिधा भूत्वानुवेगिनी।
निःससार जगन्माता स्वर्गात्त्रैलोक्यपावनी॥ ४४॥

अपरैका महाधारा भगीरथपथानुगा।
अवाच्यां दिशि मार्गे तु स्वर्गे वेगवती बभौ॥ ४५॥

सा धारा प्लावयित्वा च स्वर्गं सुरतरङ्गिणी।
दक्षिणाभिमुखी वेगात्कियद्दूरं जगाम ह॥ ४६॥

अग्रे भगीरथो राजा मध्याह्नार्कसमप्रभः।
अपूर्वं रथमारुह्य ध्मायन्शङ्खमुपागमत्॥ ४७॥

त्रिदिवं प्लवमानं तु दृष्ट्वा देवाः सकिन्नराः।
देव्यश्च समुपागत्य गङ्गां भक्त्याभ्यपूजयन्॥ ४८॥

अथाह देवराजस्तं राजानं सूर्यवंशजम्।
विनयेन महाबाहुं सहितः सर्वदैवतैः॥ ४९॥

भो भो क्षत्रियशार्दूल पुण्यकीर्ते भगीरथ।
त्रैलोक्यदुर्लभां गङ्गां नीत्वा यासि महीतले।
क्षणं तिष्ठ महाभाग वचोऽस्माकं निशामय॥ ५०॥

श्रीमहादेवजी बोले—महाबुद्धिमान् राजाके इस प्रकारके विचारको जानकर त्रैलोक्यपावनी जगन्माता गङ्गा पश्चिम, उत्तर और पूर्व दिशाओंमें तीन धाराओंमें विभक्त होकर स्वर्गलोकसे चल पड़ीं॥ ४४॥ दक्षिण दिशाकी ओर राजा भगीरथके पथका अनुगमन करती हुई एक दूसरी तीव्रधारा स्वर्गमें सुशोभित हुई॥ ४५॥ सुरतरङ्गिणीकी वह धारा स्वर्गको आप्लावित करती हुई दक्षिणाभिमुखी होकर तीव्र वेगसे कुछ दूरतक चली॥ ४६॥ आगे-आगे मध्याह्नकालीन सूर्यकी भाँति कान्तिमान् राजा भगीरथ अद्वितीय रथपर आरूढ़ होकर शङ्ख बजाते हुए चले॥ ४७॥ स्वर्गको आप्लावित देखकर देवियाँ तथा किन्नरोंके साथ देवता गङ्गाके समीप आकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने लगे॥ ४८॥ सभी देवताओंके साथ देवराज इन्द्रने महाबाहु सूर्यवंशी राजा भगीरथसे विनयपूर्वक इस प्रकार कहा—पुण्यकीर्ति! क्षत्रियश्रेष्ठ! आप त्रैलोक्यदुर्लभ गङ्गाको लेकर पृथ्वीपर जा रहे हैं। महाभाग! कुछ क्षण रुककर हमारी बात सुन लीजिये॥ ४९-५०॥

इति देवाधिराजस्य वचः श्रुत्वा भगीरथः।
विरम्य तत्र देवेशं प्रत्युवाच पुरन्दरम्॥ ५१॥

कमर्थं देवराज त्वं ममादिशसि तद्वद।
करिष्यामि तदेवाहं तवाज्ञावशगः प्रभो॥ ५२॥

देवराज उवाच

आनीता भवता गङ्गा ब्रह्मादीनां सुदुर्लभा।
क्षितावेव समग्रां तां नीत्वा यासि कथं नृप॥ ५३॥

एका सुललिता धारा स्वर्गे वाप्यवतिष्ठतु।
यथा मर्त्ये तथा स्वर्गे कीर्तिस्तेऽपि विराजताम्॥ ५४॥

श्रीमहादेव उवाच

इति देवाधिराजस्य वचनं वै निशम्य सः।
राजा सम्प्रार्थयामास गङ्गां तत्र महामुने॥ ५५॥

मातर्गङ्गे महाभागे धारैका ते सुरालये।
सम्पावनार्थं देवानामपि तिष्ठतु शोभना॥ ५६॥

इत्येवं प्रार्थिता राज्ञा गङ्गा द्रवमयी तदा।
भूत्वाऽपरा महाधारा उत्तराभिमुखी ययौ॥ ५७॥

सा तु धारा महापुण्या स्वर्गलोकस्य पावनी।
मन्दाकिनीति विख्याता स्थिता स्वर्गपुरे मुने॥ ५८॥

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सर्वे देवर्षयस्तथा।
स्नानावगाहनं नित्यं कुर्वन्ति परमादृताः॥ ५९॥

अथ राजा तु संध्माय शङ्खं भूयो रथोपरि।
दक्षिणां दिशमभ्यायाद्गङ्गां कृत्वा तु पृष्ठतः॥ ६०॥

सुमेरोर्दक्षिणं शृङ्गं समवाप्य भगीरथः।
दृष्ट्वा तुङ्गं महाबाहुर्गङ्गामाह कृताञ्जलिः॥ ६१॥

मातरेनं महाशृङ्गं निर्भिद्याहं कथं शिवे।
पृथिव्यां त्वां नयिष्यामि तन्मे वद सुरोत्तमे॥ ६२॥

गङ्गोवाच

अहमत्रैव तिष्ठामि त्वं चोल्लङ्घ्य गिरेः शिरः।
दक्षिणं पार्श्वमभ्येहि रथेनानेन भूपते॥ ६३॥

देवराज इन्द्रकी यह बात सुनकर वहाँ रुककर राजा भगीरथने उनको प्रत्युत्तर दिया॥ ५१॥ प्रभो! देवराज! किस प्रयोजनसे आप मुझे ऐसा आदेश दे रहे हैं। वह बतायें, मैं आपकी आज्ञाके अधीन हूँ। मैं वैसा ही करूँगा॥ ५२॥

देवराज बोले—राजन्! ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ गङ्गा आपके द्वारा लायी गयी हैं। आप उन सम्पूर्ण गङ्गाको पृथ्वीपर ही क्यों ले जा रहे हैं?॥ ५३॥ गङ्गाकी एक सुन्दर, ललित धारा स्वर्गमें भी रहे। मृत्युलोककी भाँति स्वर्गलोकमें भी आपकी कीर्ति सुशोभित हो॥ ५४॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! देवराज इन्द्रकी यह बात सुनकर राजा भगीरथ भगवती गङ्गाकी वहींपर प्रार्थना करने लगे—माता गङ्गे! महाभागे! आपकी एक ललित धारा देवताओंको पवित्र करनेके लिये स्वर्गमें भी रहे॥ ५५-५६॥ तब राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर द्रवमयी गङ्गा दूसरी महाधाराके रूपमें परिणत होकर उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ीं॥ ५७॥ मुने! स्वर्गलोकको पवित्र करनेवाली वह महापुण्यमयी धारा मन्दाकिनीके नामसे विख्यात होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हो गयी॥ ५८॥ वहाँ गन्धर्वोंसहित सभी देवता तथा ऋषिगण अत्यन्त आदरके साथ नित्य स्नान तथा अवगाहन करते हैं॥ ५९॥ राजा भगीरथने पुनः रथपर शङ्ख बजाकर भगवती गङ्गाको पीछे करके दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया॥ ६०॥ सुमेरु पर्वतके दक्षिण शिखरको प्राप्तकर और उसे ऊँचा देखकर महाबाहु राजा भगीरथने हाथ जोड़कर भगवती गङ्गासे कहा—माता! शिवे! मैं इस महाशिखरको भेदकर आपको पृथ्वीपर कैसे ले चलूँ। सुरोत्तमे! वह मुझे बताइये॥ ६१-६२॥

गङ्गाजी बोलीं—राजन्! मैं यहाँ रुकती हूँ। आप इस रथसे गिरिशिखरको पारकर दक्षिण भागकी ओर चले जाइये॥ ६३॥

तत्र त्वया कृते शङ्खनिस्वनेऽतिसुघोरके।
अहं परमवेगेन विनिर्भिद्य गिरेः शिरः।
अन्विष्य रथमार्गं ते चानुयास्यामि निश्चितम्॥ ६४॥

वहाँ आपके द्वारा ऊँची ध्वनिमें शङ्ख बजानेपर मैं तीव्र वेगसे पर्वतके शिखरको भेदकर आपके रथ-मार्गका अनुसरण करके निश्चित ही पीछे-पीछे आ जाऊँगी॥ ६४॥

श्रीमहादेव उवाच

इति गङ्गाज्ञया राजा व्यतीत्य शिखरं गिरेः।
महता रथवेगेन दक्षिणं पार्श्वमाययौ॥ ६५॥

तत्र दध्मौ महाशङ्खं युगान्तजलदस्वनम्।
तेनासीत्तुमुलः शब्दो व्याप्तं तेन नभोऽन्तरम्॥ ६६॥

तमाकर्ण्य महाशब्दं गङ्गा परमवेगिनी।
निर्भिद्य दक्षिणं शृङ्गं मेरोः स्वयमवातरत्॥ ६७॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार गङ्गाकी आज्ञासे राजा भगीरथ पर्वतके शिखरको पारकर तीव्र वेगवाले रथसे दक्षिण भागमें आ गये॥ ६५॥ वहाँ उन्होंने प्रलयकालीन मेघगर्जनके समान महान् शङ्खध्वनि की, उससे घोर शब्द हुआ, जिससे नभोमण्डल व्याप्त हो गया॥ ६६॥ परमवेगिनी भगवती गङ्गा उस घोर नादको सुनकर सुमेरु पर्वतके दक्षिण शिखरको भेदकर स्वयं अवतरित हो गयीं॥ ६७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे गङ्गानिर्गमनं मेरोर्दक्षिणशृङ्गभेदनान्निर्गमनं नाम चाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'गङ्गानिर्गमन-मेरोर्दक्षिणशृङ्गभेदनान्निर्गमन' नामक अड़सठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

भगवान् शंकरके जटाजूटसे निकलकर गङ्गाका भूतलपर आगमन, मेना और हिमालयद्वारा उनका पूजन

श्रीमहादेव उवाच

ज्येष्ठे शुक्लदशम्यां तु गङ्गा वै निःससार ह।
परित्राणाय लोकानां महापातकिनामपि॥ १॥

तस्यां स्नानं तपो दानं गङ्गायां मुनिसत्तम।
महाफलप्रदं तद्वन्महापातकनाशनम्॥ २॥

दशजन्मार्जितं पापं हरते तत्र जाह्नवी।
तस्मात्सा दशमी प्रोक्ता मुने दशहरातिथिः॥ ३॥

हस्तमङ्गलयोगे तु तस्यां भागीरथी स्वयम्।
पापं दशविधं हन्ति दशजन्मसु सञ्चितम्॥ ४॥

स्नानावगाहनैर्नृणां तस्मात्तस्यां प्रयत्नतः।
स्नातव्यं देहिभिः सर्वैर्महापापान्मुमुक्षुभिः॥ ५॥

श्रीमहादेवजी बोले—ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको महापापी जनोंके भी उद्धारके लिये भगवती गङ्गा प्रकट हुईं॥ १॥ मुनिश्रेष्ठ! उस तिथिमें गङ्गामें स्नान, दान और तप करनेसे महान् पुण्यफलकी प्राप्ति होती है; और उसी तरह महापातकोंका नाश होता है॥ २॥ मुने! उस दिन गङ्गा दस जन्मोंमें अर्जित पापोंका नाश करती हैं। इसीलिये वह दशमी दशहरा तिथि कही जाती है॥ ३॥ हस्त नक्षत्र तथा मङ्गलवारका दशमी तिथिके साथ योग होनेपर स्नान तथा अवगाहन करनेवाले मनुष्योंके दस जन्मोंमें सञ्चित दस प्रकारके पापोंका* भागीरथी स्वयं नाश कर देती हैं। इसलिये महापापोंसे मुक्ति चाहनेवाले सभी देहधारियोंको प्रयत्नपूर्वक गङ्गामें स्नान करना चाहिये॥ ४-५॥

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥ (मनु० १२। ७, ६, ५)

अर्थात् बिना दिये हुए दूसरेकी वस्तु लेना, शास्त्रवर्जित हिंसा करना तथा परस्त्रीगमन करना—तीन प्रकारके शारीरिक (कायिक) पाप हैं, कटु बोलना, झूठ बोलना, परोक्षमें किसीका दोष कहना तथा निष्प्रयोजन बातें करना—चार प्रकारके वाचिक पाप हैं और दूसरेके द्रव्यको अन्यायसे लेनेका विचार करना, मनसे दूसरेका अनिष्ट चिन्तन करना तथा नास्तिक बुद्धि रखना—तीन प्रकारके मानसिक पाप हैं।

अथ स्वर्गाद्विनिःसृत्य राज्ञस्तस्य रथानुगा।
महावेगवती गङ्गा दक्षिणां दिशमाययौ॥ ६ ॥
पथि देवर्षिगन्धर्वैर्मनुजैश्चातिभक्तितः।
चित्रपुष्पसमूहैश्च बिल्वपत्राक्षतादिभिः॥ ७ ॥
समपूज्यत सा गङ्गा चारुदूर्वादलैरपि।
तैः पुष्पैश्चित्रिता गङ्गा शुद्धस्फटिकसन्निभा॥ ८ ॥
फेनैः सुरुचिरा वेगवती सुरतरङ्गिणी।
व्यतीत्य पर्वतान्दुर्गान्दुर्भेद्यान्भीमनिःस्वना॥ ९ ॥
द्रावयन्ती गजान्सिंहान्निषधाख्यं महाबलम्।
व्यतीत्य हेमकूटं च हिमाद्रेः प्राप सन्निधिम्॥ १० ॥
तत्रागत्य महावेगवती गङ्गा बभौ तदा।
शम्भोर्मौलौ समारोढुं फेनराशिविचित्रिता॥ ११ ॥
अथ ज्ञात्वा महादेवो गङ्गां निकटमागताम्।
मौलौ विस्तीर्णजटया बद्ध्वा सेतुमितस्ततः।
हिमाद्रेः शिखरे तस्थौ तां धर्तुं शिरसा मुने॥ १२ ॥
अथ वै ज्येष्ठमासस्य पौर्णमास्यां दिनार्धके।
गङ्गावेगादनुप्राप शम्भोर्मौलिं महामते॥ १३ ॥
स ज्ञात्वा मौलिमापन्नां गङ्गां गङ्गाधरस्तदा।
ननर्त परमानन्दः पूर्णात्मा जगदीश्वरः॥ १४।
प्रमथास्तस्य देवस्य कोटिकोटिसहस्रशः।
ननृतुः पार्श्वतस्तुष्टा वीक्ष्य नृत्यं महेशितुः॥ १५ ॥
गङ्गा शम्भोः शिरः प्राप्य परमानन्दसंयुता।
व्यचरत्फेनपुष्पौघरुचिराऽतितरङ्गिणी ॥ १६ ॥
राजा तु पश्चादालोक्य गङ्गया रहितां दिशम्।
नृत्यन्तं देवदेवं च महाचिन्तापरोऽभवत्॥ १७ ॥
तत्र श्रुत्वा महाशब्दं शम्भोर्मौलौ भगीरथः।
गङ्गां शम्भुशिरःप्राप्तां मेने परमकोपनाम्॥ १८ ॥

तदनन्तर महावेगवती भगवती गङ्गा स्वर्गसे निकलकर राजाके रथका अनुगमन करती हुई दक्षिण दिशामें आयीं॥ ६॥ मार्गमें देवर्षि, गन्धर्वों तथा मनुष्योंद्वारा विभिन्न प्रकारके पुष्पसमूहों, बिल्वपत्रों, अक्षत तथा सुन्दर दूर्वादलों आदिसे परम भक्तिपूर्वक भगवती गङ्गाकी पूजा की गयी। उन पुष्पोंसे शोभायमान, शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाली, सुरतरङ्गिणी, वेगवती, भीषण ध्वनि करनेवाली तथा फेनोंसे सुशोभित भगवती गङ्गा दुर्भेद्य दुर्गम पर्वतोंको पारकर हाथी-सिंहोंको भगाती हुई, विशाल निषध नामक तथा हेमकूट पर्वतको पारकर हिमालयकी संनिधिमें आ गयीं॥ ७—१०॥ वहाँ आकर फेनराशिसे अद्भुत प्रतीत होनेवाली महावेगवती गङ्गा भगवान् शंकरके मस्तकपर आसीन होनेके लिये सुशोभित होने लगीं॥ ११॥

मुने! इस प्रकार भगवती गङ्गाको निकट आया हुआ जानकर भगवान् शंकर मस्तकपर विस्तृत जटाओंका सेतु बाँधकर उन्हें सिरपर धारण करनेके लिये हिमालयके शिखरपर इधर-उधर विराजमान हो गये॥ १२॥ महामते! ज्येष्ठमासकी पूर्णिमा तिथिको मध्याह्नमें गङ्गा भगवान् शम्भुके मस्तकपर वेगपूर्वक पहुँच गयीं॥ १३॥ गङ्गाको अपने मस्तकपर आयी हुई जानकर पूर्णात्मा, जगदीश्वर परमानन्दस्वरूप गङ्गाधर आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगे। भगवान् शंकरका नृत्य देखकर उनके पार्श्वस्थ करोड़ों-करोड़ प्रमथगण भी प्रसन्न होकर नाचने लगे॥ १४-१५॥

भगवती गङ्गा भगवान् शंकरके मस्तकको प्राप्त कर परमानन्दित होकर फेन और पुष्पसमूहोंसे सुशोभित हो नाना तरंगोंसे युक्त होकर विचरण करने लगीं॥ १६॥ तदनन्तर राजा भगीरथ पीछेकी ओर भगवती गङ्गासे रहित दिशाको देखकर तथा देवाधिदेव भगवान् शंकरको नाचते हुए देखकर अत्यन्त चिन्तातुर हो गये॥ १७॥ तब राजा भगीरथने भगवान् शंकरके मस्तकपर भगवती गङ्गाके महानादको सुनकर यह माना कि वे अत्यन्त कोपवती गङ्गा भगवान् शिवके मस्तकपर पहुँच गयी हैं॥ १८॥

ततो महास्वनं शङ्खं राजा दध्मौ भगीरथः।
तच्छ्रुत्वा व्यचरद्गङ्गा गवेषन्ती विनिर्गमम्॥ १९॥

शम्भोर्मौलौ महावेगा भगीरथवशानुगा।
अप्राप्य निःसृतिद्वारं शङ्खध्वन्युपकर्षिता।
निनाय च मुने तत्र वर्षमेकं महानदी॥ २०॥

अथ राजा महादेवं नृत्यन्तं प्रणिपत्य च।
प्राञ्जलिः प्राह धर्मात्मा सूर्यवंशप्रदीपनः॥ २१॥

राजोवाच

देवदेव जगद्वन्द्य प्रणतानां कृपाकर।
देहि शीर्षात्सुरधुनीं पितॄणां त्राणहेतवे॥ २२॥

त्वयैव मे वरो दत्तो गङ्गा त्रिपथगा स्वयम्।
विवरस्थानमभ्येति मत्पितॄनुद्धरिष्यति॥ २३॥

सेयं हरितनोश्चापि मयाऽऽनीता त्वया हृता।
निष्कृतिस्तत्कथं देव मत्पितॄणां भविष्यति॥ २४॥

तस्मात्तां देहि निःसार्य शिरसः परमेश्वर।
त्वया दत्तं वरं पूर्णं सफलं कुरु शंकर॥ २५॥

श्रीशिव उवाच

दास्यामि सरितां श्रेष्ठां तुभ्यं राजन्न संशयः।
पितॄणां ते विमुक्त्यर्थं प्राक्स्वीकृतवशेन हि॥ २६॥

किंत्वियं ज्येष्ठमासस्य दशम्यां शुक्लपक्षके।
हस्तमङ्गलयोगेन मच्छीर्षान्निःसरिष्यति।
तावत्तिष्ठ महीपाल शिखरेऽस्मिन्महामते॥ २७॥

श्रीमहादेव उवाच

इति श्रुत्वा मुनिश्रेष्ठ राजा तत्र भगीरथः।
प्रतीक्ष्य तां तिथिं कालं व्यतीयाय कियत्तरम्॥ २८॥

ततः प्राप्य तिथिं तां तु राजा दध्मौ महास्वनम्।
शङ्खं दिव्यतुषाराभं गङ्गे गङ्गेति चाब्रुवन्॥ २९॥

तच्छ्रुत्वा सा महावेगवती कलकलं ध्वनिम्।
कृत्वा शम्भुजटामध्ये बभ्राम सरितां वरा॥ ३०॥

तत्पश्चात् राजा भगीरथने महाध्वनिवाला शङ्ख बजाया, जिसे सुनकर गङ्गा बाहर निकलनेका मार्ग खोजती हुई विचरण करने लगीं॥ १९॥

मुने! राजा भगीरथकी वशवर्तिनी महावेगवती महानदी भगवती गङ्गाने शङ्खकी ध्वनिसे आकर्षित होकर बाहर निकलनेका मार्ग न प्राप्तकर भगवान् शिवके मस्तकपर एक वर्षका समय बिता दिया॥ २०॥ सूर्यवंशदीपक, धर्मात्मा राजा भगीरथने नाचते हुए भगवान् सदाशिवको साष्टाङ्ग प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहा— ॥ २१॥

राजा बोले—शरणागतोंपर कृपा करनेवाले जगद्वन्द्य, देवाधिदेव! मेरे पितरोंका उद्धार करनेके लिये अपने मस्तकसे भगवती गङ्गाको मुझे प्रदान कर दीजिये। आपने ही मुझे वरदान दिया था और कहा था कि त्रिपथगा गङ्गा स्वयं विवरस्थानपर पहुँचकर तुम्हारे पूर्वजोंका उद्धार करेंगी। भगवान् विष्णुके विग्रहसे मेरे द्वारा लायी गयी उन्हीं गङ्गाका आपने हरण कर लिया तो देव! मेरे पितरोंका उद्धार कैसे होगा। इसलिये परमेश्वर! आप उनको अपने सिरसे निकालकर मुझे दे दें और शंकर! आप अपने दिये हुए वरदानको सफल करें॥ २२—२५॥

श्रीशिवजी बोले—राजन्! पूर्वमें स्वीकृत वचनके अनुसार आपके पूर्वजोंकी मुक्तिके लिये सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा आपको दे दूँगा, इसमें संदेह नहीं है॥ २६॥ किंतु ये ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिके दिन हस्त नक्षत्र और मङ्गलवारका योग होनेपर मेरे मस्तकसे निकलेंगी। महीपाल! महामते! तबतक आप इस पर्वतशिखरपर ठहरे रहें॥ २७॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! राजा भगीरथने ऐसी बात सुनकर उस तिथि और समयकी प्रतीक्षामें कुछ काल वहाँ व्यतीत किया॥ २८॥ तत्पश्चात् उस तिथिके आ जानेपर राजा भगीरथने दिव्य तुषारकी आभा तथा महाध्वनिवाले महाशङ्खको 'गङ्गे-गङ्गे' कहते हुए बजाया॥ २९॥ इसे सुनकर सरिताओंमें श्रेष्ठ वे महावेगवती गङ्गा भगवान् शंकरकी जटाके मध्य कल-कल ध्वनि करती हुई घूमने लगीं॥ ३०॥

अप्राप्य निःसृतिद्वारं पीडिता शङ्खनिःस्वनैः।
शम्भोः शरणमापन्ना गङ्गा तं समुवाच ह॥ ३१॥

गङ्गोवाच

प्रभो देव जगन्नाथ तवाहं शरणं गता।
देहि वर्त्म विनिर्यामि भगीरथवशानुगा॥ ३२॥

पृथिव्यां सर्वभूतानां निस्तारार्थं महेश्वर।
व्यथितास्मि भृशं राज्ञः शङ्खध्वानेन कर्षिता॥ ३३॥

श्रीमहादेव उवाच

इति गङ्गावचः श्रुत्वा शम्भुः सव्येन पाणिना।
जटाबन्धं विनिर्भिद्य दक्षिणस्यां दिशि क्षणात्॥ ३४॥

ततः सा निर्ययौ शम्भोः शीर्षान्निःसृत्य सस्वना।
दक्षिणां दिशमत्युग्रवेगाद्राज्ञो रथं प्रति॥ ३५॥

राजाऽपि चालयामास रथं हेमपरिष्कृतम्॥ ३६॥

ध्मायन्शङ्खं महाशब्दं सत्वरो मुनिसत्तम।

ततो गिरिपतेः पृष्ठे विहरन्तीं सरिद्वराम्॥ ३७॥

गच्छन्तीं गजसिंहादीन्द्रावयन्तीं दिशो दश।
श्रुत्वा मेना गिरीन्द्रश्च द्रष्टुं निकटमाययौ॥ ३८॥

तौ दृष्ट्वा पितरौ गङ्गा प्रणिपत्य सुरोत्तमा।
ताभ्यां सम्पूजिता तूर्णं पपात धरणीतले॥ ३९॥

ततः समभवत्पुष्पवृष्टिर्दिक्षु विदिक्षु च।
लोकानां जयशब्दश्च सर्वतः समपद्यत॥ ४०॥

सम्प्राप्य धरणीपृष्ठं गङ्गा भागीरथी तदा।
जज्वाल तेजसाऽतीव तप्तकाञ्चनसन्निभा॥ ४१॥

वेगश्चतुर्गुणश्चासीन्निःस्वनश्च महत्तरः।
तथापि धरणी गङ्गालाभादानन्दिताभवत्॥ ४२॥

सापि वेगवती गङ्गा रथनेमिगतं मुने।
पन्थानं मृगयन्त्यागाद्दक्षिणस्यां कलस्वना॥ ४३॥

निकलनेका द्वार न प्राप्त होनेपर शङ्खकी ध्वनिसे व्याकुल भगवती गङ्गाने भगवान् शङ्करके शरणागत होकर उनसे कहा— ॥ ३१॥

गङ्गाजी बोलीं—प्रभो, देव, जगन्नाथ, महेश्वर! मैं आपकी शरणागत तथा राजा भगीरथकी वशवर्तिनी हूँ। अतः आप मुझे मार्ग दीजिये, जिससे मैं पृथ्वीपर स्थित सभी प्राणियोंके उद्धारके लिये बाहर निकल सकूँ। राजा भगीरथकी शङ्खकी ध्वनिसे आकर्षित मैं अत्यन्त पीड़ित हूँ॥ ३२-३३॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार भगवती गङ्गाकी बात सुनकर भगवान् शंकरने उसी क्षण बायें हाथसे दक्षिण दिशाकी तरफ अपने जटाबन्धको खोल दिया, तदनन्तर वे भगवती गङ्गा घोर गर्जना करती हुई भगवान् शम्भुके सिरसे निकलकर अत्यधिक तीव्र गतिसे दक्षिण दिशामें राजा भगीरथके रथकी ओर चल पड़ीं॥ ३४-३५॥

मुनिश्रेष्ठ! राजा भगीरथ भी महाशब्दवाले शङ्खको बजाते हुए स्वर्णपरिष्कृत रथको वेगपूर्वक चलाने लगे॥ ३६½॥ नदियोंमें श्रेष्ठ सुरनदी 'गङ्गा' पर्वतराज हिमालयके पृष्ठभागपर विहार करती हुई गजों, सिंहों आदि जन्तुओंको दसों दिशाओंमें भगाती हुई जा रही हैं, ऐसा सुनकर मेना तथा पर्वतराज हिमालय उनको देखनेके लिये उनके समीप आ गये॥ ३७-३८॥ माता-पिता दोनोंको देखकर सुरश्रेष्ठ भगवती गङ्गा साष्टाङ्ग प्रणाम कर उन दोनोंसे पूजित होकर शीघ्रतासे पृथ्वीतलपर गिरीं॥ ३९॥ तदनन्तर दिग्-दिगन्तरोंमें पुष्पकी वर्षा होने लगी और चारों तरफ लोगोंकी जयध्वनि गूँजने लगी॥ ४०॥ तब भागीरथी गङ्गा पृथ्वीतलको प्राप्त कर तपाये हुए सोनेकी आभाके समान अपने तेजसे दीप्तिमान् होने लगीं॥ ४१॥ उनका वेग चौगुना बढ़ गया तथा स्वर भी अधिक तीव्र हो गया, फिर भी पृथ्वी भगवती गङ्गाके लाभसे आनन्दित हुई॥ ४२॥ मुने! वेगवती गङ्गा रथसे बने हुए मार्गको खोजती हुई अपनी कल-कल ध्वनिके साथ दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़ीं॥ ४३॥

वृक्षान्शालपियालादीन्द्रोणपुष्पवनानि च।
सर्वांश्च नगरग्रामगृहादीनि च सर्वतः॥ ४४॥
प्लावयित्वा महादेवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः।
प्राभ्यधावत वेगेन भगीरथवशानुगा॥ ४५॥

शाल, चिरौंजी आदि समस्त वृक्षों तथा द्रोणपुष्पके वनों और नगर, ग्राम तथा गृह आदिको चारों तरफसे आप्लावित करके देवर्षियोंके द्वारा स्तुत होती हुई राजा भगीरथकी वशवर्तिनी महादेवी भगवती गङ्गा उनके पीछे-पीछे तीव्र गतिसे बहने लगीं॥ ४४-४५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे शम्भोर्जटाजूटं निर्भिद्य मेनाहिमाचलदर्शनपूजनानन्तरं भूपृष्ठागमनं नाम ऊनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'भगवान् शंकरके जटाजूटका भेदन करके मेना एवं हिमाचलके दर्शन और पूजनके बाद भूपृष्ठागमन' नामक उनहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

भगवती भागीरथीका हरिद्वार, प्रयाग होते हुए काशी-आगमन, जह्नुऋषिके आश्रममें जाना और फिर समुद्रतटपर पहुँचना

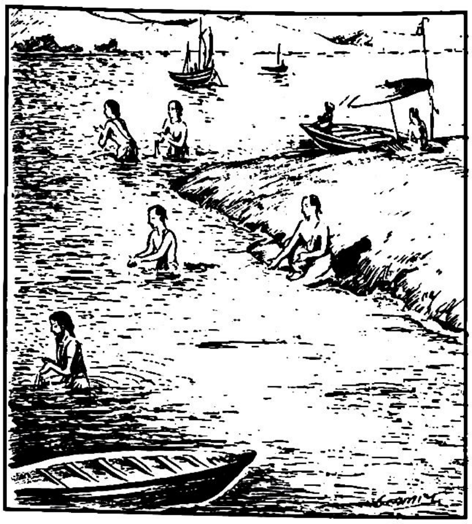
श्रीमहादेव उवाच

व्यतीत्यैवं महादेवी योजनानां बहूनि सा।
हरिद्वारं समायाता राज्ञा तेन महात्मना॥ १॥
तत्र सप्तर्षयो वीक्ष्य गङ्गां देवसुदुर्लभाम्।
अभ्यर्च्य वीक्ष्य सानन्दाः शङ्खशब्देन नारद॥ २॥
दध्मुस्तेऽपि महाशङ्खान् सप्तसप्तसु दिक्षु च।
तच्छ्रुत्वा सप्तधाराभूद्गङ्गा भागीरथी तदा॥ ३॥
परमं वेगमास्थाय राज्ञस्तस्य समीपतः।
ततो निर्भिद्य पाषाणं वेगात्सा शाम्भवी परा॥ ४॥
अग्निकोणमुखी प्रायात्सरिद्भिः सङ्गतापगा।
प्रयागदेशमागत्य सार्धं यमुनया शिवा॥ ५॥
सरस्वत्या च संमिश्रा समभून्मुनिपुङ्गव।
तत्र भागीरथी पुण्या देवानामपि दुर्लभा॥ ६॥
तत्र स्नानं तपो दानं पुण्यात्पुण्यतरं मुने।
अपि ब्रह्मादयः सर्वे सुराधीशाश्च तत्र वै।
स्नात्वा पवित्रमात्मानं मन्यन्तेऽन्यस्य का कथा॥ ७॥
ततः पूर्वमुखी भूत्वा कियद्दूरं महेश्वरी।
द्रष्टुं महेश्वरं काश्यामुत्तराभिमुखी ययौ॥ ८॥

श्रीमहादेवजी बोले—इस प्रकार महादेवी गङ्गा बहुत योजन दूरीको पारकर उन महात्मा राजा भगीरथके साथ हरिद्वार आ गयीं॥ १॥ नारद! वहाँ सप्तर्षियोंने देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ गङ्गाको देखकर शङ्खकी ध्वनिके साथ आनन्दपूर्वक उनकी पूजा की और उन सातों ऋषियोंने भी सातों दिशाओंमें पृथक्-पृथक् महाशङ्ख बजाये। तब उस शङ्खध्वनिको सुनकर भागीरथी गङ्गा तीव्र वेग धारण कर राजा भगीरथके समीपमें ही सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं। तत्पश्चात् पराशाम्भवी भगवती गङ्गाने वेगपूर्वक पाषाणोंको तोड़कर नदियोंके साथ मिलकर आग्नेयदिशाकी ओर प्रस्थान किया॥ २—४½॥ मुनिश्रेष्ठ! शिवा भगवती गङ्गा प्रयागमें आकर यमुना और सरस्वतीके साथ मिल गयीं। प्रयागमें पुण्यमयी भागीरथी गङ्गा देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। मुने! वहाँ किये गये स्नान, तप और दान पुण्यसे भी पुण्यतर हैं। वहाँ ब्रह्मादि तथा सभी सुराधीश भी स्नान कर अपने-आपको पवित्र मानते हैं तो फिर अन्यकी क्या बात है॥ ५—७॥

तत्पश्चात् महेश्वरी गङ्गा पूर्वाभिमुख होकर कुछ दूर चलकर भगवान् शंकरका दर्शन करनेके लिये उत्तराभिमुखी होकर काशीको प्राप्त हुईं॥ ८॥

तत्र पुण्यतमा गङ्गा महापापविमोचनी।
महामोक्षप्रदा काशी यथा तद्वच्च सा मुने॥ ९॥



ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि देहं सन्त्यजतः शिवा।
निर्वाणमोक्षदा देवी तत्र गङ्गा सुरोत्तमा॥ १०॥

न तत्र त्यजतां देहं देहिनां पापिनामपि।
अपेक्षा विद्यते मुक्तौ सत्यं सत्यं महामुने॥ ११॥

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥ १२॥

अथ गङ्गां तु सम्प्राप्तां काशीं परमवेगिनीम्।
दृष्ट्वा क्षेत्राभिसंरक्षाकारी भैरवपुङ्गवः॥ १३॥

दण्डमुद्यम्य वेगेन प्राभ्यधावत नारद।
स प्राह गङ्गां दुर्धर्षः का त्वं नीरमयी कुतः॥ १४॥

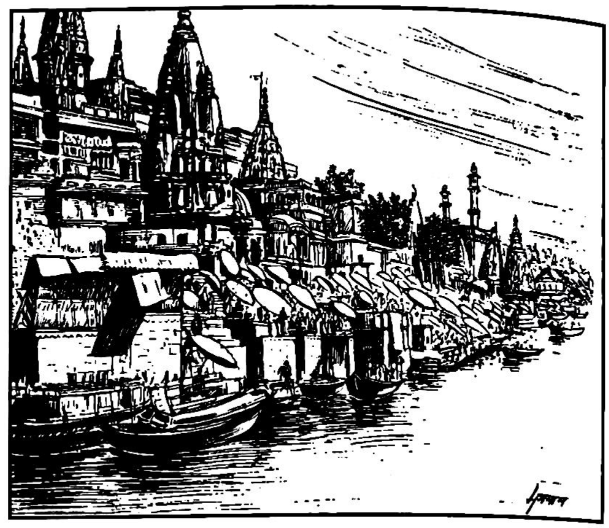
समायाता कथं काशीं सम्प्लावयसि निम्नगे।
पुरीयं देवदेवस्य शङ्करस्य महात्मनः॥ १५॥

एतस्य रक्षकं किं त्वं मां न जानासि भैरवम्।
अथ गङ्गाऽब्रवीद्वाक्यं भैरवं भीमलोचनम्॥ १६॥

उद्यद्दण्डकरं घोरं साक्षात्कालं युगान्तकम्।
अहं द्रवमयी गङ्गा देवी शङ्करगेहिनी॥ १७॥

आयाता धरणीपृष्ठं शम्भोर्मौलौ प्रतिष्ठिता।
द्रष्टुं विश्वेश्वरं काश्यां निकटं समुपागता।
न काशीं प्लावयिष्येऽहं तिष्ठ त्वं कालभैरव॥ १८॥

मुने! जिस प्रकार काशी महामोक्षप्रदा हैं, उसी प्रकार



पुण्यतमा भगवती गङ्गा महान् पापोंका नाश करनेवाली हैं॥ ९॥ वहाँ ज्ञान अथवा अज्ञानपूर्वक देह त्याग करनेवाले प्राणीको सुरोत्तमा कल्याणी भगवती गङ्गा शाश्वत शान्तिप्रद मोक्ष प्रदान करती हैं॥ १०॥ महामुने! काशीमें देह त्याग करनेवाले पापी प्राणियोंको भी मुक्तिके लिये अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं होती, यह मैं सच-सच कहता हूँ॥ ११॥ भगवती गङ्गा सभी स्थानोंपर सुलभ हैं, किंतु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसङ्गम—इन तीन स्थानोंपर गङ्गाकी प्राप्ति दुर्लभ है॥ १२॥

नारद! इस प्रकार परमवेगवती गङ्गाको काशीमें आयी हुई देखकर काशीक्षेत्रकी रक्षा करनेवाले भैरवश्रेष्ठ (कालभैरव) दण्ड लेकर तीव्रगतिसे उनकी ओर दौड़े। दुर्धर्ष भैरवने गङ्गासे कहा—द्रवमयी तुम कौन हो और कहाँसे आयी हो, निम्नगे! तुम काशीको क्यों जलाप्लावित कर रही हो? यह देवाधिदेव महात्मा भगवान् शङ्करकी नगरी है। इस नगरीके संरक्षक मुझ भैरवको क्या तुम नहीं जानती हो!॥ १३—१५½॥ तदनन्तर भीषण नेत्रवाले, हाथमें दण्ड उठाये हुए, साक्षात् प्रलयंकारी महाकालसदृश भैरवसे भगवती गङ्गाने यह वचन कहा—॥ १६½॥ मैं द्रवमयी भगवती गङ्गा भगवान् शंकरकी प्रिया हूँ और पृथ्वीतलपर आयी हूँ तथा भगवान् शंकरके शीशपर प्रतिष्ठित होकर भगवान् विश्वेश्वरके दर्शनके लिये उनके निकट काशी आयी हूँ। कालभैरव! आप रुकिये, मैं काशीको जलाप्लावित नहीं करूँगी॥ १७-१८॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमुक्तो महाबाहुर्गङ्गया कालभैरवः।
संहृत्य दण्डं तां नेमे देवीं शङ्करगेहिनीम्॥ १९॥

एवं सम्मानिता तत्र भैरवेण महात्मना।
कामाख्यां द्रष्टुमुद्युक्ता गङ्गा पूर्वानताभवत्॥ २०॥

तदभिज्ञाय राजापि किञ्चित्कालं महामतिः।
सारथिं वारयामास शङ्खध्मानं न्यवारयत्॥ २१॥

एतस्मिन्नेव काले तु जह्नुः शङ्खमवादयत्।
तच्छ्रुत्वा चातिवेगेन गङ्गा तस्याश्रमं ययौ॥ २२॥

तत्र वेगेन गच्छन्तीं दृष्ट्वा गङ्गां भगीरथः।
भूयो दध्मौ महाशङ्खं महाजलदनिःस्वनम्॥ २३॥

तच्छब्दं सा निशम्याथ पूर्वशब्दं बुबोध च।
जह्नुनाम्ना मुनीन्द्रेण हृता परमतेजसा॥ २४॥

ततः श्रुत्वा भगवती गङ्गा क्रोधान्विता मुने।
तस्याश्रमं प्लावयितुं ययौ वेगसमाश्रिता॥ २५॥

तज्ज्ञात्वा स मुनिश्चापि ब्रह्मतेजोबलेन च।
गण्डूषीकृत्य तां गङ्गां समस्तां निःपपौ हठात्॥ २६॥

ततश्च समभूच्छब्दो हा हेति दिवि सर्वतः।
क्षितौ च मनुजादीनां सर्वेषां प्राणिनां तथा॥ २७॥

रुरोद राजा दुःखार्तः पृथ्वी दुःखमवाप च।
दिशश्च व्याकुला आसन् म्लानतेजा दिवाकरः॥ २८॥

ततो रुदन्तं संवीक्ष्य राजानं भक्तवत्सला।
उवाच शङ्खं भूयस्त्वं वादयस्व भगीरथ॥ २९॥

न मां संरक्षितुं शक्तः कोऽपि लोके महामते।
त्वच्छङ्खनिःस्वनाकृष्टमानसामतिवेगिनीम्॥ ३०॥

गङ्गयैवं समादिष्टो राजा हृष्टमनाः पुनः।
दध्मौ शङ्खं महाशब्दं क्षोभयन्धरणीतलम्॥ ३१॥

तच्छ्रुत्वा सा महादेवी जानु निर्भिद्य तस्य वै।
निःससार महावेगा सहसातितरङ्गिणी॥ ३२॥

श्रीमहादेवजी बोले—भगवती गङ्गाके इस प्रकार कहनेपर महाबाहु कालभैरवने अपने दण्डको नीचे करके शिवप्रिया भगवती गङ्गाको नमस्कार किया॥ १९॥ महात्मा भैरवके द्वारा इस प्रकार सम्मानित होकर भगवती गङ्गा कामाख्यापीठका दर्शन करनेके लिये पूर्वाभिमुखी हो गयीं॥ २०॥ उनका अभिप्राय जानकर महाबुद्धिमान् राजा भगीरथने भी कुछ क्षणके लिये अपने सारथिको रोक दिया और शङ्ख बजाना भी बंद कर दिया॥ २१॥ उसी समय जह्नुऋषिने शङ्खध्वनि की, जिसे सुनकर भगवती गङ्गा तीव्रवेगसे उनके आश्रममें चली गयीं॥ २२॥ राजा भगीरथने वेगसे वहाँ जाती हुई भगवती गङ्गाको देखकर महामेघगर्जन करनेवाला अपना महाशङ्ख पुनः बजाया। महाशङ्खकी उस ध्वनिको सुनकर और उसे पूर्वपरिचित समझकर वे जान गयीं कि परम तेजस्वी मुनीश्वर जह्नुने [मेरा] हरण किया है॥ २३-२४॥ मुने! उस ध्वनिको सुनकर भगवती गङ्गा क्रोधान्वित होकर जह्नु ऋषिके आश्रमको बहानेके लिये परम वेगके साथ बह चलीं॥ २५॥ जह्नु ऋषिने भी गङ्गाका अभिप्राय जानकर अपने ब्रह्मतेजके बलसे हठात् अपने हाथकी अञ्जलिमें भरकर उस सम्पूर्ण गङ्गाको पी लिया॥ २६॥ उसके बाद आकाश तथा पृथ्वीलोकमें मनुष्यों आदि सभी प्राणियोंमें हाहाकार मच गया॥ २७॥

राजा भगीरथ दुःखसे पीड़ित होकर रोने लगे, पृथ्वी भी दुःखी हो गयी, दिशाएँ व्याकुल हो गयीं तथा भगवान् भास्करका तेज म्लान हो गया॥ २८॥ तत्पश्चात् राजाको रोते हुए देखकर भक्तवत्सला गङ्गाने कहा—भगीरथ! आप पुनः अपने महाशङ्खको बजायें॥ २९॥ महामते! आपके शङ्खकी महाध्वनिसे आकृष्ट मनवाली, अति वेगवती मुझको रोक रखनेमें इस संसारमें कोई समर्थ नहीं है॥ ३०॥ गङ्गाके द्वारा इस प्रकार आदेश प्राप्त होनेपर प्रमुदित राजाने पृथ्वीको क्षुब्ध करनेवाला महाशङ्ख पुनः बजाया॥ ३१॥ शङ्खध्वनिको सुनकर वे महादेवी भगवती गङ्गा जह्नुमुनिकी जङ्घाका भेदन कर सहसा अत्यन्त तरङ्गयुक्त होकर तीव्रधाराके साथ निकल पड़ीं॥ ३२॥

ततो गङ्गातिवेगेन मुनिजङ्घाद्बहिर्गता।
मुनिश्चापि तदा ज्ञात्वा नत्वा स्तुतिमथाकरोत्॥ ३३॥

मुनिरुवाच

मातस्त्वं परमासि शक्तिरतुला सर्वाश्रया पावनी
लोकानां सुखमोक्षदाखिलजगत्संवन्द्यपादाम्बुजा।
न त्वां वेद विधिर्न वा स्मररिपुर्नो वा हरिर्नापरे
सञ्जानन्ति शिवे महेशशिरसा मान्ये कथं वेद्म्यहम्॥ ३४॥

किं तेऽहं प्रवदामि रूपचरितं यच्चेतसो दुर्गमं
पारावारविवर्जितं सुरधुनी ब्रह्मादिभिः पूजिता।
स्वेच्छाचारिणि संवितत्य करुणां स्वीयैर्गुणैर्मां शिवे
पुण्यं त्वं तु कृतागसं शरणगं गङ्गे क्षमस्वाम्बिके॥ ३५॥

धन्यं मे भुवि जन्म कर्म च तथा धन्यं तपो दुष्करं
धन्यं मे नयनं यतस्त्रिनयनाराध्या दृशालोकये।
धन्यं मत्करयुग्मकं तव जलं स्पृष्टं यतस्तेन वै
धन्यं मत्तनुरप्यहो तव जलं तस्मिन्यतः सङ्गतम्॥ ३६॥

नमस्ते पापसंहर्त्रि हरमौलिविराजिते।
नमस्ते सर्वलोकानां हिताय धरणीगते॥ ३७॥

स्वर्गापवर्गदे देवि गङ्गे पतितपावनि।
त्वामहं शरणं यातः प्रसन्ना मां समुद्धर॥ ३८॥

श्रीमहादेव उवाच

एवं स्तुता मुनीन्द्रेण गङ्गा तं मुनिसत्तमम्।
दिव्यरूपधरोवाच सुप्रसन्नमुखाम्बुजा॥ ३९॥

गङ्गोवाच

अहं तव सुता तात यतस्त्वद्देहनिर्गता।
तव नास्त्यपराधोऽत्र मुने त्वं सुस्थिरो भव॥ ४०॥

तत्पश्चात् भगवती गङ्गा अत्यन्त वेगपूर्वक जह्नुमुनिकी जङ्घासे बाहर आ गयीं। यह जानकर मुनिने भी भगवती गङ्गाको नमस्कार कर इस प्रकार स्तुति की— ॥ ३३॥

मुनि बोले—माता! आप सर्वश्रेष्ठ, अतुलनीया पराशक्ति, सर्वाश्रयदात्री, लोगोंको पवित्र करनेवाली, आनन्द और मोक्षको प्रदान करनेवाली तथा सम्पूर्ण जगत्‌द्वारा वन्दित चरणकमलवाली हैं। आपको ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश (तत्त्वतः) नहीं जानते तथा अन्य लोग भी नहीं जानते। भगवान् शिवके मस्तकसे सम्मानित शिवे! फिर मैं आपको कैसे जान सकता हूँ!॥ ३४॥ मैं आपके अचिन्त्य और अपार रूप तथा चरित्रका क्या वर्णन करूँ? ब्रह्मादि देवताओंके द्वारा पूजित आप सुरनदीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। स्वतन्त्ररूपसे विचरण करनेवाली शिवे! माता! आप अपने शुभ गुणोंसे पुण्य तथा करुणाका विस्तार करके मुझ कृतापराध और शरणागतको क्षमा कीजिये॥ ३५॥ मेरा इस पृथ्वीपर जन्म और कर्म दोनों धन्य हुए, मेरी कठिन तपस्या धन्य हुई तथा मेरे ये दोनों नेत्र भी धन्य हुए; जो त्रिलोचन भगवान् शंकरकी आराध्या आपका मैं अपने नेत्रोंसे दर्शन कर रहा हूँ। आपके जलके स्पर्शसे ये मेरे दोनों हाथ धन्य हो गये और यह मेरा शरीर भी धन्य हुआ है, जिसमें आपका पावन जल गया॥ ३६॥

पापोंका संहार करनेवाली, भगवान् शंकरके मस्तकपर विराजमान तथा सभी प्राणियोंके हितके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण आपको नमस्कार है, नमस्कार है॥ ३७॥ देवी गङ्गे! आप स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली हैं, पतितोंको पवित्र करनेवाली हैं, मैं आपकी शरणमें हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होकर मेरा उद्धार कीजिये॥ ३८॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनीश्वर जह्नुके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर प्रसन्न मुखकमलवाली, दिव्यरूपधरा भगवती गङ्गाने मुनिश्रेष्ठ जह्नुसे कहा— ॥ ३९॥

गङ्गाजी बोलीं—तात! मैं आपकी पुत्री हूँ; क्योंकि मैं आपके शरीरसे निकली हूँ। मुने! इसमें आपका कोई अपराध नहीं है; आप स्थिरचित्त हों॥ ४०॥

अद्य प्रभृति मे नाम जाह्नवीत्यभवत्पितः।
कीर्तिस्ते हि मुनिश्रेष्ठ लोके ख्याता भविष्यति॥ ४१॥
ये स्मरिष्यन्ति लोकेऽत्र जाह्नवीति सकृन्मुने।
न तेषां प्रभविष्यन्ति पापानि दुःखमेव वा॥ ४२॥
त्वं च मे परमो भक्तस्तवैव चरितं च ये।
स्मरिष्यन्ति मुनिश्रेष्ठ तेषां तुष्टा ह्यहं सदा॥ ४३॥

श्रीमहादेव उवाच

एवमाभाष्य बहुधा गङ्गा तं मुनिसत्तमम्।
पूजिता तेन सद्भक्त्या गन्तुमिच्छुर्महामतिम्।
राजानमब्रवीद्वाक्यं पुण्यकीर्तिं भगीरथम्॥ ४४॥

गङ्गोवाच

त्वया सम्प्रार्थिता तात त्यक्त्वा विष्णुशरीरकम्।
आगताहं महीपृष्ठं तेनैव वशगा तव॥ ४५॥
प्राच्यामहं समभवं कामाख्यादर्शनेच्छया।
तत्र प्रथममेवाभून्मुनिना सह वैरसम्॥ ४६॥
तत्त्वां पृच्छामि ते यत्र गमने वर्तते रुचिः।
तत्राहमनुयास्यामि यथारुचि तथा वद॥ ४७॥

राजोवाच

दक्षिणस्यां मुनेः शापान्मम पूर्वपितामहाः।
भस्मीभूतास्तु येषां त्वामुद्धाराय धरातलम्।
आनीतवानहं तेषामुद्धाराय द्रुतं व्रज॥ ४८॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्युक्त्वा तं महाबाहुः पुनः शङ्खमपूरयत्।
गङ्गापि प्रययौ पश्चाद्दक्षिणां दिशमेव हि॥ ४९॥
ततो राजा कियद्दूरं गत्वा श्रान्तो भगीरथः।
विरराम रथोपस्थः सारथिश्च श्रमातुरः॥ ५०॥

पिता! आजसे मेरा नाम 'जाह्नवी' हो गया। मुनिश्रेष्ठ! इस संसारमें आपकी कीर्ति विख्यात होगी॥ ४१॥ मुने! इस संसारमें जो लोग मेरा जाह्नवीके नामसे एक बार भी स्मरण करेंगे; उन्हें पाप अथवा दुःख नहीं होंगे॥ ४२॥ मुनिश्रेष्ठ! आप मेरे परमभक्त हैं। जो लोग आपके चरित्रका स्मरण करेंगे, उनपर मैं सदा प्रसन्न रहूँगी॥ ४३॥

श्रीमहादेवजी बोले—उन मुनिश्रेष्ठसे इस प्रकार अनेकशः कहकर भगवती गङ्गाने उनके द्वारा भक्तिपूर्वक पूजित होकर पुण्यकीर्ति महामति राजा भगीरथके पास जानेकी इच्छासे ऐसा कहा—॥ ४४॥

गङ्गाजी बोलीं—तात! आपके द्वारा प्रार्थना करनेपर मैं भगवान् विष्णुके शरीरको त्यागकर पृथ्वीतलपर चली आयी हूँ और आपके वशीभूत हूँ। कामाख्या महापीठके दर्शनकी इच्छासे मैं पूर्वाभिमुख हो गयी थी। प्रारम्भमें ही वहाँ जह्नुमुनिके साथ कुछ विरसता आ गयी। इसलिये मैं आपसे पूछती हूँ कि आपकी जहाँ जानेकी इच्छा हो, वहीं मैं आपके पीछे-पीछे चलूँगी। आपकी जैसी इच्छा हो, वैसे ही बतायें॥ ४५—४७॥

राजा बोले—मुनिके शापसे भस्मीभूत मेरे पूर्वज दक्षिण दिशामें हैं, जिनके उद्धारके लिये मैं आपको पृथ्वीतलपर लाया हूँ, अतः उनके उद्धारके लिये शीघ्र चलें॥ ४८॥

श्रीमहादेवजी बोले—महाबाहु राजा भगीरथने इस प्रकार कहकर पुनः महाशङ्खको बजाया। भगवती गङ्गा भी उनके पीछे दक्षिण दिशामें चल पड़ीं। तब थके हुए राजा भगीरथ कुछ दूर चलकर रथपर बैठकर विश्राम करने लगे और थका हुआ सारथि भी विश्राम करने लगा।

एतस्मिन्नन्तरे जह्नोर्मुनेः पुत्री महामते।
पद्माऽभ्यवादयच्छङ्खं दिदृक्षुर्भगिनीं मुने॥ ५१॥
तच्छ्रुत्वा चञ्चला देवी तच्छब्दं प्रति वेगिता।
वह्निकोणमुखी प्रागात्स्वल्पदूरं सुनिम्नगा॥ ५२॥
राजा विलोक्य गच्छन्तीं गङ्गामन्यत्र तत्क्षणात्।
सारथिं कथयामास चालयाश्वान्द्रुतं सखे॥ ५३॥
गङ्गान्यत्र निशम्यैव शङ्खध्मानविमोहिता।
संधावति यथा गौर्वा वत्सशब्दातिकर्षिता॥ ५४॥
एवमुक्त्वा स राजापि द्रुतं शङ्खमवादयत्।
सारथिश्च रथं तूर्णं चालयामास नारद॥ ५५॥
तदाकर्ण्य पुनर्देवी राज्ञस्तस्य रथानुगा।
समभूत्तेन पद्मातिक्रुद्धा जलमयी बभौ॥ ५६॥
सा तु पूर्वदिशं प्रायाद्विस्तीर्णसलिला नदी।
पुण्या वेगवती सिन्धुराजेनापि सुसङ्गता॥ ५७॥
ततः सा तु महादेवी गङ्गा या पापहारिणी।
वेगं परममास्थाय दक्षिणां दिशमभ्ययात्॥ ५८॥
अन्वेषयन्ती सगरान्वयांस्तु
समुद्रसान्निध्यमुपेत्य वेगिता।
धारासहस्त्रैः परितोऽस्य विस्तृता
बभौ स तस्याः कलनिःस्वनाकुलः॥ ५९॥
सिन्धुस्तदाज्ञाय सुरेशपूजितां
गङ्गां महावेगवतीं समागताम्।
आगत्य धारां परिसंवितत्य वै
अभ्यार्चयत्पुष्पसुगन्धधूपकैः॥ ६०॥

महामते! मुने! इसी बीच जह्नुमुनिकी पुत्री पद्माने अपनी बहन भगवती गङ्गाको देखनेकी इच्छासे शङ्ख बजाया। शङ्खकी ध्वनि सुनकर चञ्चला महादेवी गङ्गा उस शब्दकी ओर अग्निकोणमुखी होकर कुछ दूर चली गयीं। उसी क्षण राजा भगीरथने भगवती गङ्गाको दूसरी ओर जाती हुई देखकर अपने सारथिसे कहा—सखे! घोड़ोंको तेज चलाओ। जैसे गौ अपने बछड़ेकी ध्वनिसे आकृष्ट होकर उसकी ओर दौड़ती है, उसी प्रकार शङ्खकी ध्वनिको सुनते ही मोहित होकर भगवती गङ्गा दूसरी ओर भागी जा रही हैं॥ ४९—५४॥

नारद! इतना कहकर राजा भगीरथने भी शीघ्र ही शङ्ख बजाया तथा सारथिने भी रथको तीव्र गतिसे चलाया॥ ५५॥ यह सुनकर पुनः भगवती गङ्गा राजाके रथकी अनुगामिनी हो गयीं। इसी कारण पद्मा अत्यन्त क्रुद्ध होकर जलरूपमें सुशोभित होने लगीं। वह पुण्यसलिला पद्मा विस्तृत प्रवाहसे वेगपूर्वक पूर्व दिशाकी ओर चलीं और सिन्धुराजमें मिल गयीं॥ ५६-५७॥ तत्पश्चात् पापका हरण करनेवाली भगवती महादेवी गङ्गा अत्यन्त वेगपूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर चली गयीं॥ ५८॥ भगवती गङ्गा राजा सगरके वंशजोंका अन्वेषण करती हुई वेगपूर्वक समुद्रके निकट पहुँचकर हजारों धाराओंमें उसके चारों ओर फैल गयीं। वह समुद्र उनके कल-कल निनादसे व्याप्त होकर सुशोभित होने लगा॥ ५९॥ समुद्रने देवेन्द्रसे पूजित महावेगवती भगवती गङ्गाको आयी हुई जान करके वहाँ आकर अपनी धारा चारों ओर फैलाकर पुष्प, गन्ध तथा धूप आदिसे [उनका] अर्चन किया॥ ६०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीजह्नुतनयासमुद्रतीरप्राप्तिर्नाम सप्ततितमोध्यायः॥ ७०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'श्रीजह्नुतनयासमुद्रतीरप्राप्ति' नामक सत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

भगवती गङ्गाका पाताललोकमें प्रवेश कर सगरपुत्रोंका उद्धार करना

श्रीमहादेव उवाच

ततः सा सिन्धुना सङ्गं समवाप्य महामुने।
परमं मोदमापन्ना विवरं समुपेत्य च॥ १॥

पातालमुपसङ्गम्य कपिलस्यान्तिकं ययौ।
कपिलस्त्वथ विज्ञाय गङ्गां देवादिदुर्लभाम्॥ २॥

आगतां लोकभाग्येन पाद्याद्यैः समपूजयत्।
तेन सम्पूजिता गङ्गा प्रत्युवाच महामुनिम्॥ ३॥

मुने ब्रूहि द्रुतं कुत्र सागरा भस्मरूपिणः।
ततः संदर्शयामास मुनिः सगरसन्ततीः॥ ४॥

दृष्ट्वा गङ्गापि तद्भस्मात्मानं प्रापयत क्षणात्।
प्लावयामास वेगेन सर्वतो भस्मसात्कृतान्॥ ५॥

सगरान्सरितां श्रेष्ठा गङ्गा त्रैलोक्यगामिनी।
तत्क्षणात्सागरास्ते तु दिव्यरूपधराऽभवन्॥ ६॥

अपूर्वं रथमास्थाय ब्रह्मलोकमुपागमन्।
पितॄणां निष्कृतिं दृष्ट्वा राजा परमहर्षितः॥ ७॥

ननर्त स रथोपस्थे जय गङ्गेति संस्तुवन्।
दध्मौ शङ्खं महाशब्दं रोमाञ्चितकलेवरः॥ ८॥

तेजस्वी तरुणादित्यसन्निभो राजवन्दितः।
गङ्गा तद्ध्वनिमाकर्ण्य महावेगं समाश्रिता॥ ९॥

विवरद्वारतो भस्म मर्त्यलोकमुपानयत्।
धारानुसंस्थिता चैका पातालेऽपि सुनिर्मला॥ १०॥

ख्याता भोगवती सा तु सर्वलोकफलप्रदा।
सा तथा क्रमतो गत्वा कारुण्यं जलमाविशत्।
ब्रह्माण्डं भासते यत्र मुने शतसहस्रशः॥ ११॥

भगीरथस्तु सम्पूज्य गङ्गां सागरसङ्गताम्।
प्रणम्य स्वपुरं प्रायात्प्रसन्नात्मा महीश्वरः॥ १२॥

एवं भगवती गङ्गा विष्णुदेहकृतालया।
हिताय सर्वभूतानां पृथिव्यां समुपागमत्॥ १३॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामुने! तब भगवती गङ्गा समुद्रके साथ संयुक्त हो विवरसे होकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक पाताल पहुँचकर कपिलमुनिके निकट गयीं॥ १½॥ कपिलमुनिने देवता आदिके लिये भी दुर्लभ गङ्गाजीको संसारके सौभाग्यसे आयी जानकर उनकी पाद्य आदिसे पूजा की॥ २½॥ उन महामुनिसे सम्यक् रूपसे पूजित होकर भगवती गङ्गाने कहा—मुने! शीघ्र बताइये कि भस्मरूपी सगरपुत्र कहाँ हैं? तब मुनिने उन्हें सगरपुत्रोंको दिखाया॥ ३-४॥ गङ्गाजीने भी उस भस्मको देखकर क्षणभरमें अपनेमें समाहित कर लिया। नदियोंमें श्रेष्ठ त्रैलोक्यगामिनी गङ्गा भस्मसात् किये गये उन सगरपुत्रोंको वेगपूर्वक सभी ओरसे बहा ले गयीं। उसी क्षण सगरपुत्र दिव्य रूपधारी होकर अलौकिक रथमें आरूढ़ हो ब्रह्मलोकको चले गये॥ ५-६½॥

अपने पितरोंके उद्धारको देखकर राजा (भगीरथ) परम प्रसन्न हो 'जय गङ्गे' ऐसी स्तुति करते हुए रथमें नृत्य करने लगे॥ ७½॥ राजाओंद्वारा वन्दित, मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, रोमाञ्चित शरीरवाले राजाने महान् शब्द करनेवाले शङ्खको बजाया। उस ध्वनिको सुनकर महान् वेगका आश्रय ले गङ्गा विवरद्वारसे (सगरपुत्रोंकी) भस्मको मृत्युलोकमें ले आयीं॥ ८-९½॥ उनकी एक अत्यन्त निर्मल धारा पातालमें भी स्थित रह गयी, जो 'भोगवती' नामसे प्रसिद्ध और समस्त लोकोंके लिये फलदायिनी है॥ १०½॥ मुने! वे भगवती गङ्गा करुणामयी होकर धीरे-धीरे जलमें समाविष्ट हो गयीं, जहाँ सैकड़ों हजार ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते रहते हैं॥ ११॥ प्रसन्न मनवाले राजा भगीरथ भी सागरगामिनी गङ्गाका पूजन कर और उन्हें प्रणाम कर अपने नगरको चले आये।॥ १२॥ भगवान् विष्णुके शरीरमें निवास करनेवाली भगवती गङ्गा सभी प्राणियोंके कल्याणके लिये इस प्रकार पृथ्वीपर आयीं॥ १३॥

य इदं पुण्यमाख्यानं गङ्गावतरणं क्षितौ।
पठेद्वा पाठयेद्वापि तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥ १४॥

आयुर्वृद्धिर्भवेत्तस्य यशोवृद्धिश्च जायते।
सर्वत्र लभते सौख्यं मङ्गलं सर्वतो भवेत्॥ १५॥

पितृश्राद्धदिने विप्रसन्निधौ भक्तितत्परः।
प्रपठेद्य इदं तस्य पितरः परमां गतिम्॥ १६॥

समुपायान्ति संतृप्ताः पापिनोऽपि महामते।
अकालेऽप्यथवाऽदेशे कृतं दम्भाश्रितैरपि।
पितॄणां परमप्रीतिकारणं तद्भवेद्ध्रुवम्॥ १७॥

एकादशीदिने भक्त्या यः पठेत्प्रयतो नरः।
तस्य गङ्गाप्रसादेन सर्वसिद्धिः प्रजायते॥ १८॥

अतुलं वर्धते सौख्यं पुत्रदारादिसंकुलम्।
गृहाश्रमं श्रियायुक्तं भवेद्देव्याः प्रसादतः॥ १९॥

काश्यां यः प्रपठेदेतत्पुण्याख्यानं महामुने।
स साक्षादेव विश्वेशो लोकानां मोक्षदायकः॥ २०॥

तस्य सन्दर्शनात्पापी मुच्यते घोरपातकात्।
संक्रान्त्यां पौर्णमास्यां वा यः पठेदेतदुत्तमम्।
पुण्याख्यानं स चाप्नोति वाजिमेधफलादिकम्॥ २१॥

गङ्गातीरं समभ्येत्य स्नात्वा नियममास्थितः।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि न तस्यास्ति समो भुवि॥ २२॥

लिखितं तिष्ठते वापि गेहे यस्यैतदुत्तमम्।
तेषां न प्रभवेत्क्वापि दौर्भाग्यं वा रिपुः क्वचित्॥ २३॥

आजन्म गङ्गास्नानस्य फलं चापि समुद्भवेत्।
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न वा बन्धुवियोजनम्॥ २४॥

न व्याधिपीडनं वापि जायते शत्रुतो भयम्।
गङ्गासमं क्षितौ तीर्थं विद्यते न महामुने।
तस्मात्तस्याः समाख्यानं महापुण्यतमं स्मृतम्॥ २५॥

गङ्गाके पृथ्वीपर अवतरणकी इस पुण्यमयी कथाको जो पढ़ता या पढ़ाता है, उसकी मुक्ति उसके हाथमें रहती है। उसकी आयु और कीर्तिकी वृद्धि होती है, सर्वत्र उसे सुखकी प्राप्ति होती है और सब प्रकारसे मङ्गल होता है॥ १४-१५॥ पितृश्राद्धके दिन भक्तिपूर्वक जो ब्राह्मणोंके सांनिध्यमें इसका पाठ करता है उसके पापी पितर भी तृप्त होकर परमगतिको प्राप्त करते हैं। महामते दम्भका आश्रय लेकर अकालमें अथवा अप्रशस्त देशमें किया गया भी वह [श्राद्धादि] कार्य निश्चय ही पितरोंकी परम प्रसन्नताका कारण होता है॥ १६-१७॥ एकादशीके दिन जो मनुष्य संयत होकर भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, गङ्गाजीकी कृपासे उसको सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उसके पुत्र, स्त्री, परिवार-सम्बन्धी सुखकी अतुलनीय वृद्धि होती है। देवीकी कृपासे उसका गृहस्थाश्रम लक्ष्मीसम्पन्न हो जाता है॥ १८-१९॥

महामुने! इस पुण्यमय आख्यानका जो काशीमें विधिपूर्वक पाठ करता है, वह संसारको मोक्ष प्रदान करनेवाले साक्षात् विश्वनाथके ही समान हो जाता है, उसके दर्शनमात्रसे पापी घोर पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ २०½॥ संक्रान्ति या पूर्णिमा तिथियोंपर जो इस उत्तम आख्यानका पाठ करता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलादिको प्राप्त करता है॥ २१॥ गङ्गाके किनारे जाकर जो स्नान करके विधि-विधानपूर्वक इसे पढ़ता या सुनता है, उसके समान पृथ्वीपर दूसरा कोई नहीं होता॥ २२॥ यह उत्तम आख्यान लिखितरूपमें जिसके घरमें स्थित रहता है, उसपर दुर्भाग्य या शत्रुका कोई प्रभाव नहीं होता। उसे आजन्म गङ्गास्नानका फल प्राप्त होता है, उसे न तो ग्रहपीड़ा होती है और न ही बन्धु-बान्धवोंका वियोग होता है, न उसे रोगोंसे कष्ट होता है और न ही शत्रुओंसे भय होता है॥ २३-२४½॥ महामुने! गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ इस पृथ्वीपर नहीं है, इसलिये उनका आख्यान अत्यन्त पुण्यमय कहा गया है॥ २५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीगङ्गाविवरस्थलद्वारात्पातालप्राप्तिर्नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत 'श्रीगङ्गाविवरस्थलद्वारात्पातालप्राप्ति' नामक इकहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

गङ्गाजीके स्मरण, दर्शन और स्नानका माहात्म्य, गङ्गाजीकी महिमाके संदर्भमें सर्वान्तक व्याधका आख्यान

श्रीमहादेव उवाच

सेयं सुरधुनी पुण्या महापातकनाशिनी।
स्पर्शनाद्दर्शनाच्चापि निर्वाणफलदायिनी॥ १॥

इदानीं शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं मुनिसत्तम।
गङ्गाया द्रवरूपिण्याः संक्षेपेण समाहितः॥ २॥

प्रातरुत्थाय यो गङ्गां हेलयापि नरः स्मरेत्।
न तस्याशुभभीतिस्तु विद्यते भुवनत्रये॥ ३॥

प्रवर्तते गृहे सम्पद्विनश्यन्त्यापदः क्षणात्।
पापानि संक्षयं यान्ति जन्मान्तरकृतान्यपि॥ ४॥

भवन्ति च सुपुण्यानि चाक्षयानि महामते।
दुःस्वप्नदर्शने वापि विपत्तावतिदुर्गमे।
स्मृत्वा गङ्गां सकृन्मर्त्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ५॥

क्रियारम्भे स्मरेद्देवीं गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्।
तदा सा सफला भूयादथाविधिकृतापि च॥ ६॥



जपहोमादिसंसक्तः प्राकृतं यदि भाषते।
तदा स्मृत्वा सकृद्गङ्गां पुनः कर्म समाचरेत्॥ ७॥

मुमुक्षुर्यत्र कुत्रापि यदि गङ्गामनुस्मरेत्।
तदा तन्मुक्तये गङ्गासन्निधौ वसते स्वयम्॥ ८॥

सर्वार्थसाधिनी गङ्गा सर्वपापप्रमोचिनी।
सर्वाशुभविहन्त्री च सर्वसम्पत्प्रदायिनी॥ ९॥

श्रीमहादेवजी बोले—ये पुण्यमयी गङ्गा अपना दर्शन करने तथा अपने जलका स्पर्श करनेमात्रसे प्राणियोंके महापातकोंका नाश कर देती हैं तथा उन्हें मोक्षफल प्रदान करती हैं॥ १॥ मुनिश्रेष्ठ! अब मैं द्रवरूपिणी गङ्गाके माहात्म्यका संक्षेपमें वर्णन करूँगा; आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ २॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर अनिच्छासे भी गङ्गाका स्मरण कर लेता है, उसे तीनों लोकोंमें अमङ्गलका भय नहीं होता है। महामते! उसके घरमें सम्पदा आ जाती है, क्षणभरमें उसकी सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। जन्म-जन्मान्तरमें किये गये पाप भी नष्ट हो जाते हैं तथा उसके पुण्य अक्षय हो जाते हैं। दुःस्वप्न देखनेपर, विपत्तिकालमें तथा अत्यन्त दुर्गम स्थानपर एक बार भी गङ्गाका स्मरण कर लेनेपर मनुष्य कष्टोंसे छुटकारा पा जाता है, इसमें संदेह नहीं है॥ ३—५॥

किसी क्रियाके आरम्भमें यदि कोई त्रैलोक्यपावनी गङ्गाका स्मरण करे तो अविधिपूर्वक भी की गयी वह क्रिया सफल हो जाती है। जप, होम आदि अनुष्ठानोंमें लगा हुआ प्राणी यदि अप्रासंगिक वचनका उच्चारण कर लेता है तब उसे एक बार गङ्गाका स्मरण करके उस कार्यमें पुनः प्रवृत्त होना चाहिये। यदि मोक्षकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जहाँ कहीं भी गङ्गाका स्मरण कर ले तो गङ्गा उसकी मुक्तिके लिये स्वयं उसकी संनिधिमें निवास करती हैं॥ ६—८॥ गङ्गा समस्त कामनाओंकी सिद्धि करनेवाली, सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली, समग्र अमङ्गलोंको मिटा देनेवाली तथा सभी सम्पदाओंको प्रदान करनेवाली हैं॥ ९॥

स्वर्गापवर्गदा पुंसां प्रत्यक्षा प्रकृतिः स्वयम्।
यस्तां नैव स्मरेत्तस्य विफलं जीवनं स्मृतम्॥ १०॥

सर्वतीर्थकृतस्नानैः सर्वदेवाभिपूजनैः।
सर्वयज्ञतपोदानैः सर्वतीर्थाभिदर्शनैः॥ ११॥

सर्वाभिवन्द्यपादाब्जवन्दनैः स्तवनैरपि।
यथा न जायते पुण्यं तथा गङ्गास्मृतेर्भवेत्॥ १२॥

नाम्ना सहस्रमध्ये तु सत्यं सत्यं महामुने।
भगवत्याः परं नाम गङ्गेति समुदीरितम्॥ १३॥

नीचोऽपि कथितः श्रेष्ठो गङ्गास्मृतिपरायणः।
प्रोक्तस्त्वनुत्तमो नीचो गङ्गास्मृतिपराङ्मुखः॥ १४॥

न गङ्गास्मरणं यत्र दिने समुपजायते।
तद्दिनं दुर्दिनं ज्ञेयं मेघच्छन्नं न दुर्दिनम्॥ १५॥

मिथ्याभाषणजं पापं परदाराभिसम्भवम्।
अवैधहिंसाजनितं सुरापानादिजं तथा॥ १६॥

अन्यच्च दुरितं किञ्चिद्यद्यदस्ति महामते।
तत्सर्वं विलयं याति गङ्गानामानुसंस्मृतेः॥ १७॥

गङ्गामुद्दिश्य यो गच्छेन्नरः प्रयतमानसः।
पदे पदेऽश्वमेधः स्याद्वाजपेयशतं तथा॥ १८॥

नृत्यन्ति पितरः सर्वे गङ्गामुद्दिश्य गच्छताम्।
पापानि प्रपलायन्ते गर्हितान्यपि दूरतः॥ १९॥

मुमूर्षुर्जाह्नवीयात्रां कुरुते यस्तु मानवः।
तं दृष्ट्वा दूरतो यान्ति यमदूता भयार्दिताः॥ २०॥

देहावसानकं तस्य यत्र कुत्रापि सम्भवेत्।
तत्रैव मुक्तिर्विज्ञेया गङ्गायां तु विशेषतः॥ २१॥

साक्षात् परा प्रकृति गङ्गा स्वयं प्रकट होकर मनुष्योंको स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। जो उनका स्मरण नहीं करता है, उसका जीवन व्यर्थ कहा गया है॥ १०॥

जो पुण्य सभी तीर्थोंमें किये गये स्नान, सभी देवताओंके पूजन, सब प्रकारके यज्ञ-तप-दान आदि, समस्त तीर्थोंके दर्शन तथा सभी प्राणियोंसे पूजित चरणकमलवाले परमेश्वरके वन्दन और स्तवनसे नहीं होता है, वह गङ्गाके स्मरणमात्रसे प्राप्त हो जाता है॥ ११-१२॥

महामुने! भगवती गङ्गाके हजार नामोंमें गङ्गा—यह नाम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, यह कथन सत्य है, सत्य है। गङ्गाके स्मरणमें तत्पर रहनेवाला नीच प्राणी भी श्रेष्ठ कहा गया है और गङ्गाके स्मरणसे विमुख रहनेवाला उत्तम प्राणी भी नीच कहा गया है। जिस दिन गङ्गाका स्मरण नहीं किया जाता है, वही दिन दुर्दिन है। मेघाच्छन्न दिन दुर्दिन नहीं है॥ १३—१५॥

महामते! मिथ्या भाषणसे उत्पन्न, परस्त्रीगमनजन्य, अवैध हिंसासे उत्पन्न, सुरापान आदिसे होनेवाले तथा अन्य जो कोई भी पाप हों, वे सब गङ्गाजीके नामके स्मरणमात्रसे विलीन हो जाते हैं॥ १६-१७॥

जो विशुद्धात्मा मनुष्य गङ्गास्नानको उद्देश्य करके यात्रा करता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है। गङ्गास्नानके निमित्त जानेवाले मनुष्यके सभी पितरगण प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं और उसके महानिन्दनीय पाप भी दूरसे ही भाग जाते हैं॥ १८-१९॥

जो आसन्नमृत्यु मनुष्य गङ्गा-यात्रा करता है, उसे देखकर यमदूत भयाक्रान्त हो दूर चले जाते हैं। उस यात्रामें जहाँ-कहीं भी उसका देहावसान हो जाय, वहींपर उसकी मुक्ति समझ लेनी चाहिये, विशेषरूपसे गङ्गामें मृत्यु हो जानेपर तो मुक्ति अवश्य ही होती है॥ २०-२१॥

गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं पथि भाग्यादुपस्थितम्।
आतिथ्यं कुरुते यस्तु तस्य पुण्यार्धकं स्मृतम्॥ २२॥

प्रणमेच्चापि तं यस्तु विनयेनाभिभाषते।
सोऽपि पापात्प्रमुच्येत सत्यं सत्यं न संशयः॥ २३॥

यस्तु मोहात्तिरस्कुर्यात्स पापात्मा तु नारद।
पच्यते नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ २४॥

कृतापराधो यदि वा भवेद्गङ्गानुगो जनः।
सोऽपि त्याज्यः क्षितीशेन न च दण्ड्यः कथञ्चन॥ २५॥

गङ्गामुद्दिश्य सङ्गच्छन् श्रान्तो यस्य जलं पिबेत्।
कूपवापीतडागानां तस्य भाग्यं महत्तरम्॥ २६॥

अशक्तो गमने यस्तु व्रजन्तं जाह्नवीं प्रति।
यानैः प्रस्थापयेद्वत्स तस्य पुण्यं निबोध मे॥ २७॥

पितरः परमां प्रीतिं प्राप्नुवन्ति च शाश्वतीम्।
पुण्यं च जायते तस्य पापं सर्वं विनश्यति॥ २८॥

अन्ते च मृत्युर्विज्ञेयो निश्चितं जाह्नवीजले।
पृथिव्यां परमा कीर्तिः सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी॥ २९॥

शाश्वती जायते तस्य चान्ते गङ्गास्मृतिर्भवेत्।
गङ्गादर्शनमात्रेण ब्रह्महापि नरः क्षणात्।
मुच्यते घोरपापेभ्यो मुने नास्त्यत्र संशयः॥ ३०॥

आगत्य प्रणमेद्देवीं यस्तु भक्त्या समाहितः।
शरीरं सार्थकं तस्य नृषु जन्म च सार्थकम्॥ ३१॥

धन्याश्च पितरस्तस्य स तु धन्यतमः स्मृतः।
न तस्य विद्यते पापं नापि मृत्युभयं तथा॥ ३२॥

अतुलं लभते सौख्यं परत्र च महामते।
गङ्गायां जायते मृत्युर्गङ्गास्मृतिपुरःसरः॥ ३३॥

गङ्गाको उद्देश्य करके जानेवाले मनुष्यको भाग्यवश मार्गमें पाकर जो मनुष्य उसका आतिथ्य करता है, उसे (गङ्गाप्राप्तिका) आधा पुण्य मिल जाता है—ऐसा कहा गया है। साथ ही जो मनुष्य उसे (गङ्गार्थीको) प्रणाम करता है और उससे विनम्रभावसे बातचीत करता है, वह भी पापमुक्त हो जाता है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं है। नारद! जो पापात्मा मनुष्य अज्ञानवश उसका अनादर करता है, वह चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालतक (कल्पपर्यन्त) घोर नरकमें दुःख भोगता है॥ २२—२४॥

अपराध करनेवाला मनुष्य भी यदि गङ्गाके निमित्त गमन करता है तो राजाको चाहिये कि वह ऐसे व्यक्तिको छोड़ दे और उसे किसी प्रकार दण्डित न करे॥ २५॥

गङ्गाको उद्देश्य करके जानेवाला थका हुआ मनुष्य जिसके कुएँ, बावली या सरोवरका जल पी लेता है, उस मनुष्यका महान् भाग्य समझना चाहिये। वत्स! स्वयं चल सकनेमें असमर्थ जो मनुष्य गङ्गा-स्नानके लिये प्रस्थान करते हुए किसी दूसरे व्यक्तिको वाहन आदिसे पहुँचवा देता है; उसे प्राप्त होनेवाले पुण्यके विषयमें मुझसे सुनो। उसके पितरोंको शाश्वत परम प्रसन्नताकी प्राप्ति होती है। उसे पुण्य प्राप्त होता है और उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। अन्तमें उसकी मृत्यु गङ्गाके जलमें निश्चित समझनी चाहिये। पृथ्वीलोकमें उसे पुत्र-पौत्रसे युक्त संतति तथा अक्षय परम कीर्तिकी प्राप्ति होती है और अन्तकालमें गङ्गाका स्मरण होता है॥ २६—२९½॥

मुने! ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य भी गङ्गाके दर्शनमात्रसे क्षणभरमें घोर पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य गङ्गाके पास आ करके भक्तिपरायण होकर गङ्गादेवीको प्रणाम करता है, उसका शरीर तथा मानवजन्म सार्थक है॥ ३०-३१॥ उसके पितर धन्य हैं और उसे तो धन्यतम कहा गया है। उसे पाप नहीं लगता और मृत्युका भी भय नहीं रह जाता। महामते! वह मनुष्य परलोकमें अतुलनीय सुख प्राप्त करता है, उसकी गङ्गामें मृत्यु होती है और आगे भी निरन्तर उसे गङ्गा-स्मरण बना रहता है॥ ३२-३३॥

दर्शनात्कृतकृत्याश्च गङ्गायाः सर्वदेवताः।
ऋषयश्च महात्मानो मानवानां तु का कथा॥ ३४॥

सम्पर्केनापि यो गङ्गां सम्पश्यति महामते।
न सोऽपि यमदण्ड्यः स्यात्कृतपापसहस्रकः॥ ३५॥

अत्र ते शृणु वक्ष्यामि रहस्यमतिशोभनम्।
सेतिहासं मुनिश्रेष्ठ गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्॥ ३६॥

पुराऽऽसीदतिदुर्धर्षः शबरान्वयसम्भवः।
व्याधः परमपापात्मा नाम्ना सर्वान्तको बली॥ ३७॥

आजीवं विनिहत्यैव प्राणिनः स बहून् बलात्।
मांसादिविक्रयं कृत्वा स्वकुटुम्बमबीभरत्॥ ३८॥

परस्त्रीगमनं चक्रे परद्रव्यापहारणम्।
न तु धर्माश्रितं कर्म कृतं तेन दुरात्मना॥ ३९॥

स ह्येकदा वनं गत्वा हत्वाऽनेकविधान्पशून्।
नद्यास्तीरं समासाद्य भ्रान्तश्चक्रेऽवगाहनम्॥ ४०॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा चित्रसेनो नृपोत्तमः।
मृगयार्थं समायातस्तस्मिन्नेव हि कानने॥ ४१॥

स ददर्श दुरात्मानं व्याधं सर्वान्तकाह्वयम्।
मांसभारसमायुक्तं स्वपुरे गमनोद्यतम्॥ ४२॥

एतस्मिन्नेव काले तु राजा दृष्ट्वा मृगोत्तमम्।
बाणं धनुषि सन्धाय लक्षं चक्रे महाबलः॥ ४३॥

मृगस्तु वीक्ष्य राजानमुद्यतास्त्रं महौजसम्।
प्राभ्यधावत वेगेन राजा बाणं समाहिनोत्॥ ४४॥

तेन विद्धो मृगः सोऽपि तस्य व्याधस्य सन्निधिम्।
उपागमन्मुनिश्रेष्ठ स्रवद्रक्तपरिप्लुतः॥ ४५॥

व्याधस्त्वदृष्ट्वा राजानं मृगं दृष्ट्वा च विह्वलम्।
पाशेन बद्ध्वा जगृहे राजा तच्च व्यलोकयत्॥ ४६॥

ततः स राजाऽप्यागत्य क्रुद्धस्तं पापचेतसम्।
बबन्ध बलवान्पाशैर्विविधैर्मुनिसत्तम॥ ४७॥

ततस्तु मृगमादाय राजा तं चापि पापिनम्।
स्वपुरं प्रति निर्यातः समारुह्य हयोत्तमम्॥ ४८॥

भगवती गङ्गाके दर्शनसे सभी देवता, ऋषिगण तथा महात्मा भी कृतकृत्य होते हैं, फिर मनुष्योंका क्या कहना? महामते! जो मनुष्य सम्पर्कसे भी भगवती गङ्गाका दर्शन प्राप्त कर लेता है, हजारों पाप करनेवाला होनेपर भी वह यमदण्डका भागी नहीं होता॥ ३४-३५॥ मुनिश्रेष्ठ! अब मैं आपसे इतिहाससहित गङ्गाके उत्तम माहात्म्य तथा अत्यन्त सुन्दर रहस्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये—॥ ३६॥

पूर्वकालमें शबर जातिमें उत्पन्न सर्वान्तक नामक एक परम पापी, बलवान् तथा अत्यन्त क्रूर व्याध था। वह जीवनभर बहुत-से प्राणियोंको बलपूर्वक मारकर उनके मांस आदि बेचकर अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता था। वह परस्त्रीगमन तथा पराये धनका हरण करता था। उस दुरात्माने कभी भी धार्मिक कृत्य नहीं किया॥ ३७—३९॥

एक समयकी बात है उस व्याधने वनमें जाकर अनेकविध पशुओंका वध किया और फिर इधर-उधर घूमते हुए गङ्गानदीके तटपर आकर स्नान किया॥ ४०॥ इसी बीच नृपश्रेष्ठ राजा चित्रसेन आखेट करनेके लिये उसी वनमें पहुँच गये। उन्होंने मांसका बोझा लेकर अपने पुरको जानेके लिये तत्पर उस सर्वान्तक नामक दुरात्मा व्याधको देखा॥ ४१-४२॥ इसी समय महाबली राजा चित्रसेनने एक सुन्दर मृगको देखकर धनुषपर बाण चढ़ाकर उसकी ओर निशाना साधा॥ ४३॥ वह मृग बाण चलानेको उद्यत, महान् ओजस्वी राजा चित्रसेनको देखकर बड़ी तेजीसे भागा, तभी राजाने बाण चला दिया॥ ४४॥ मुनिश्रेष्ठ! बाणसे बिधा हुआ वह मृग रक्तसे लथपथ होकर उस व्याधके पास आया॥ ४५॥ व्याधने राजाको नहीं देखा और उस व्याकुल मृगको देखकर उसने उसे पाशमें बाँधकर उठा लिया और राजाने उसे ऐसा करते हुए देखा॥ ४६॥

मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् उन क्रुद्ध बलशाली राजा चित्रसेनने भी वहाँ आकर अनेक पाशोंसे उस पापात्मा व्याधको बाँध दिया। तदनन्तर उस पापी व्याधको तथा मृगको लेकर राजा चित्रसेन उत्तम घोड़ेपर सवार होकर अपने पुरकी ओर निकल पड़े॥ ४७-४८॥

तत्र नावं समारुह्य गङ्गां राजा समातरत्।
व्याधो ददर्श तां देवीं तदा सम्पर्कतो मुने॥ ४९॥

ततो राजा समागत्य पुरं तं पापचेतसम्।
कारागारेऽतिसंक्रुद्धः स्थापयामास दुःसहे॥ ५०॥

ततः काले गते तत्र व्याधः सर्वान्तकाह्वयः।
ममार बद्ध्वा तं पाशैर्यमदूता उपागमन्॥ ५१॥

एतस्मिन्नेव काले तु शिवदूताः शिवाज्ञया।
निर्जित्य यमदूतांस्ताञ्शिवलोकमुपानयन्॥ ५२॥

ततस्ते निर्जिता दूता धर्मराजमुपेत्य च।
न्यवेदयन्यथावृत्तं शिवदूताभिचेष्टितम्॥ ५३॥

तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु चित्रगुप्तं महामतिम्।
पप्रच्छ एष व्याधः किं नीतः सर्वेशसन्निधिम्॥ ५४॥

पश्यास्य विद्यते पापं पुण्यं वापि तथा कियत्।
विना पापं न पश्यामि पुण्यं किञ्चिदहं पुनः॥ ५५॥

ततः स चित्रगुप्तस्तु धर्माधर्मविवेचकः।
न्यवेदयच्च सम्पर्काद्गङ्गादर्शनमुत्तमम्॥ ५६॥

सर्वपापहरं पुण्यं महापातकनाशनम्।
तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्य धर्मराजो महामते।
गङ्गां प्रणम्य दूतांस्तानिदं वचनमब्रवीत्॥ ५७॥

धर्मराज उवाच

दूताः पश्यन्ति ये गङ्गां सम्पर्केणातिपावनीम्।
न ते कदाचिन्मे दण्ड्या अपि पापशतैर्युताः॥ ५८॥

ये स्मरन्ति सकृद्गङ्गां देवीं पतितपावनीम्।
न ते कदाचिन्मे दण्ड्या अपि पापशतैर्वृताः॥ ५९॥

ये ध्यायन्ति सदा भक्त्या देवीं तां द्रवरूपिणीम्।
न तेऽपि मम दण्ड्या वै कृतपापशता अपि॥ ६०॥

येऽभ्यर्चन्ति तु तां गङ्गां विनिमज्जन्ति वाम्भसि।
न ते कदाचिन्मे दण्ड्या महापातकिनो जनाः॥ ६१॥

जाते समय राजाने नावपर चढ़कर गङ्गाको पार किया और मुने! उस समय सम्पर्कमें आ जानेसे व्याधने उन भगवती गङ्गाको देख लिया॥ ४९॥ तत्पश्चात् अपने पुर आकर अत्यन्त कुपित राजाने उस पापात्मा व्याधको कठोर कारागारमें डाल दिया॥ ५०॥ तब कुछ समय बीतनेपर वह सर्वान्तक नामक व्याध कारागारमें मर गया। इसके बाद यमदूत उसे पाशोंसे बाँधकर ले जाने लगे॥ ५१॥ ठीक उसी समय भगवान् शंकरकी आज्ञासे शिवगण उन यमदूतोंको हराकर उस व्याधको शिवलोक ले गये। शिवगणोंसे पराजित यमदूतोंने धर्मराजके पास पहुँचकर 'शिवगणोंने जो कुछ किया था वह सब उनसे कह दिया'॥ ५२-५३॥ उसे सुनकर धर्मराजने महान् बुद्धिवाले चित्रगुप्तसे पूछा—'यह व्याध सर्वेश्वर शिवके सांनिध्यमें क्यों ले जाया गया? आप यह देखिये कि इसका कितना पुण्य है तथा कितना पाप है? क्योंकि पुण्य तथा पापके अलावा मैं कुछ भी नहीं देखता हूँ'॥ ५४-५५॥ तब धर्माधर्मका विवेचन करनेवाले चित्रगुप्तने उस व्याधके द्वारा सम्पर्कके कारण किये गये सभी पापोंका हरण करनेवाले तथा महापातकोंका विनाश करनेवाले पुण्यदायक उत्तम गङ्गादर्शनके विषयमें बता दिया। महामते! उसे सुनकर धर्मराज अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए और गङ्गाको प्रणाम करके उन दूतोंसे यह बात कहने लगे—॥ ५६-५७॥

धर्मराज बोले—दूतो! जो लोग सम्पर्कसे भी अति पावनी भगवती गङ्गाका दर्शन करते हैं, वे सैकड़ों पापोंसे युक्त रहनेपर भी मेरे द्वारा कभी दण्डित नहीं किये जाते। पतितोंका उद्धार करनेवाली भगवती गङ्गाका जो एक बार भी स्मरण कर लेते हैं, वे सैकड़ों पापोंसे घिरे रहनेपर भी मेरे द्वारा कभी दण्डित नहीं किये जाते॥ ५८-५९॥ जो लोग उन द्रवरूपिणी गङ्गादेवीका भक्तिपूर्वक निरन्तर ध्यान करते हैं, सैकड़ों पाप करनेपर भी वे मेरे दण्डनीय नहीं हैं॥ ६०॥

जो लोग भगवती गङ्गाका पूजन करते हैं तथा उनके जलमें अवगाहन करते हैं, वे महापातकी होते हुए भी मेरे द्वारा कभी दण्डित नहीं होते॥ ६१॥

गङ्गायां त्यजतां देहमहमाज्ञावशः स्वयम्।
ते नमस्याः सुरेन्द्राणां दण्डशङ्कास्ति तत्कुतः ॥ ६२ ॥

गङ्गामें देहत्याग करनेवाले प्राणियोंकी आज्ञाके मैं स्वयं अधीन हूँ। वे लोग इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी नमस्कारके योग्य हैं तो फिर मेरे द्वारा उन्हें दण्डित करनेकी शंका ही कहाँ है! ॥ ६२ ॥

श्रीमहादेव उवाच

इत्येवं विनिशम्य ते यमभटा गङ्गाप्रभावं मुने
वक्त्राच्छ्रीयमराजधर्मविदुषो जग्मुः परं विस्मयम्।
अध्यायं प्रपठेत्समाहितमना यश्चैनमत्युत्तमं
नो भीतिः खलु विद्यते यमभटात्तस्योरुपापादपि ॥ ६३ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुने! इस प्रकार वे यमदूत धर्मज्ञानी श्रीयमराजके मुखसे गङ्गाकी ऐसी महिमा सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस उत्तम अध्यायका पाठ करता है, उसे महापाप करनेपर भी यमदूतोंसे कोई भय नहीं होता ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीगङ्गामाहात्म्यकथने द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीगङ्गामाहात्म्यकथन' नामक बहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

गङ्गास्नानकी महिमा, गङ्गाके समीप श्राद्ध, जप, दान तथा तर्पणका माहात्म्य और काशीकी महिमा

श्रीमहादेव उवाच

गङ्गायां तु कृतस्नानो मुच्यते घोरपातकात्।
ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ १ ॥

पतितोऽपि महादेव्याः प्रसादान्मुनिसत्तम।
विना मन्त्रादिभिश्चापि सद्भक्तिविधुरोऽपि च ॥ २ ॥

सकृत्स्नात्वा नरो ज्ञानादज्ञानादपि मुच्यते।
अनन्तं जायते पुण्यमक्षयं सप्तजन्मजम् ॥ ३ ॥

वित्तं परमसौख्यं च जायते जाह्नवीतटे।
विध्युक्तेन कृतस्नाने भक्त्या गङ्गाजले मुने ॥ ४ ॥
निर्धूतपापः परमं पदं याति नरोत्तमः ॥ ५ ॥

अन्यत्रापि स्मरन् गङ्गां यदि स्नानं समाचरेत्।
तत्रापि लभते पुण्यं गङ्गास्नानजतुल्यकम् ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्महत्या करनेवाला, गोवध करनेवाला, सुरापान करनेवाला तथा गुरुपत्नीगामी महापापी भी गङ्गामें स्नान कर लेनेपर महादेवी गङ्गाकी कृपासे घोर पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १½ ॥ श्रेष्ठ भक्तिसे हीन मनुष्य भी बिना मन्त्र आदिके ही, ज्ञानपूर्वक अथवा अज्ञानपूर्वक मात्र एक बार गङ्गास्नान करके मुक्त हो जाता है ॥ २½ ॥ मुने! गङ्गातटपर भक्तियुक्त होकर विधिपूर्वक गङ्गाजलमें स्नान करनेसे मनुष्यको सात जन्मोंमें हो सकनेवाला अनन्त तथा अक्षय पुण्य प्राप्त होता है और उसे विपुल धन तथा परम सुखकी प्राप्ति होती है। वह नरश्रेष्ठ सभी पापोंसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है ॥ ३—५ ॥ यदि मनुष्य गङ्गाका स्मरण करते हुए अन्यत्र कहीं भी स्नान करता है तो वहाँ भी उसे गङ्गास्नानसे होनेवाले पुण्यके समान पुण्य प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

प्रातः स्नानं तु यः कुर्यात्प्रत्यहं जाह्नवीजले।
स पुण्यात्मा मुनिश्रेष्ठ साक्षाच्छम्भुरिवापरः॥ ७ ॥

तं दृष्ट्वा पापिनो पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः।
तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधानतः।
यः कुर्याज्जाह्नवीतोये तस्य पुण्यं निबोध मे॥ ८ ॥

उद्धृत्योभयवंश्यानां पितॄणां बहुकोटिशः।
स्वयं शंकरतामेति देहं त्यक्त्वा न संशयः॥ ९ ॥

महायज्ञसहस्राणि व्रतपूजाशतानि च।
नार्हन्ति जाह्नवीस्नानकलामेकां महामुने॥ १० ॥

माघस्य शुक्लसप्तम्यां गङ्गायामरुणोदये।
स्नात्वा प्रमुच्यते प्राणी जन्मसंसारबन्धनात्॥ ११ ॥

तस्मिन्नेव दिने सूर्यं पूजयन् जाह्नवीतटे।
मुक्तो भवेन्महारोगाद्रोगी सत्यं न संशयः॥ १२ ॥

पौर्णमास्यां नरः स्नात्वा विधिवज्जाह्नवीजले।
निर्धूतपापः सायुज्यमन्ते प्राप्नोति शम्भुना॥ १३ ॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तु स्नात्वा दृष्ट्वा च जाह्नवीम्।
महापातकसंघैस्तु मुच्यते नात्र संशयः॥ १४ ॥

चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां स्नात्वा विधिविधानतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥ १५ ॥

आरोग्यमतुलैश्वर्यं यदन्यच्च मनोगतम्।
सर्वं सम्पद्यते गङ्गाप्रसादान्मुनिपुङ्गव॥ १६ ॥

अन्यच्चापि दिने यस्मिन्कस्मिन्नपि महामते।
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥ १७ ॥

मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल गङ्गाके जलमें स्नान करता है, उस पुण्यात्माको साक्षात् दूसरे शिवके समान ही समझना चाहिये। उसके दर्शनसे पापीलोग पापसे मुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है॥ ७½ ॥ जो मनुष्य तुला, मकर और मेषकी संक्रान्तियोंमें गङ्गाजलमें प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान करता है, उसके पुण्यके विषयमें मुझसे सुनिये। वह मनुष्य उभयकुल (मातृ-पितृकुल)-के करोड़ों पितरोंका उद्धार करके अन्तमें अपना शरीर त्यागकर शिवत्वको प्राप्त हो जाता है; इसमें संदेह नहीं है॥ ८-९ ॥

महामुने! हजारों महायज्ञ तथा सैकड़ों व्रत और पूजा आदि गङ्गास्नानकी एक कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ १० ॥ माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमीतिथि (अचला सप्तमी)-को अरुणोदयकालमें गङ्गास्नान करनेपर मनुष्य सांसारिक जन्म-मरणके बन्धनसे छूट जाता है। उस दिन गङ्गाके तटपर सूर्यकी पूजा करनेसे रोगी महारोगसे मुक्त हो जाता है; यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२ ॥ पूर्णिमातिथिको गङ्गाके जलमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ १३ ॥ कार्तिकमासकी पूर्णिमाको गङ्गाका दर्शन करने तथा उनमें स्नान करनेसे मनुष्य महापातकोंके समूहसे मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है॥ १४ ॥ चैत्रमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको विधि-विधानपूर्वक गङ्गामें स्नान करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम पदको प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! आरोग्य, अतुलनीय ऐश्वर्य तथा अन्य जो भी मनोवाञ्छित रहता है—वह सब गङ्गाकी कृपासे प्राप्त हो जाता है॥ १५-१६ ॥ महामते! इसके अतिरिक्त किसी भी दिन गङ्गास्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है और परम पद प्राप्त करता है॥ १७ ॥

संतर्पयन्ति गङ्गायां पितॄन्ये तु समाहिताः।
तेषां तु पितरो यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥ १८॥

उत्सृज्य गङ्गासलिलं नान्यत्र तर्पयेत्पितॄन्।
तर्पयेद्यदि मोहेन प्रायश्चित्ती भवेत्तदा॥ १९॥

पितॄन्संतर्पयेद्यो हि गङ्गायां सुसमाहितः।
स एव प्रोच्यते पुत्रो नान्यः पुत्रः समुच्यते॥ २०॥

गङ्गातीर्थं समासाद्य श्राद्धं कुर्याच्च तर्पणम्।
पितॄणां तृप्तये मर्त्यस्त्वन्यथा नरकं व्रजेत्॥ २१॥

गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं वीक्ष्य तस्य पितामहाः।
श्राद्धं बुभुक्षवः सर्वे नृत्यन्ति प्रहसन्ति च॥ २२॥

निराशाः पितरो यान्ति श्राद्धाभावे यतो मुने।
तस्मात्स निरयं याति यदि श्राद्धं न चाचरेत्॥ २३॥

गङ्गासलिलपक्वान्नं देवानामपि दुर्लभम्।
तदन्नेन कृते श्राद्धे पितरो यान्ति निर्वृतिम्॥ २४॥

संतुष्टाः पितरो यस्य तस्य जन्म च सार्थकम्।
विफलं जीवनं तस्य पितरो यस्य कोपिताः॥ २५॥

रुष्टैः पितृगणैर्नॄणां धर्मो नैव प्रजायते।
तस्मात्पितॄन्सुसंतर्प्य धर्मकर्म समाचरेत्॥ २६॥

गङ्गायां यदि भाग्येन चन्द्रसूर्यग्रहं लभेत्।
तदा स्नात्वा पितृश्राद्धं कुर्याद्विधिविधानतः।
अक्षय्यं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄणां तृप्तिकारकम्॥ २७॥

गङ्गाश्राद्धशतं श्रेष्ठं निर्वाणपददायकम्।
पुरश्चर्यां तदा कृत्वा सिद्धमन्त्रो भवेत्पुमान्॥ २८॥

असाध्यं साधयेच्चापि शिवतुल्यो भवेत्स्वयम्।
पुरश्चरणकृच्छ्राद्धं कारयेदन्यतोऽपि वा॥ २९॥

न श्राद्धविरहं कुर्यात्कदाचिदपि मोहितः।

जो लोग एकाग्रचित्त होकर गङ्गामें पितरोंका तर्पण करते हैं, उनके पितर निर्विकार ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं॥ १८॥ गङ्गाजल उपलब्ध रहनेपर उसे छोड़कर अन्य जलसे पितरोंका तर्पण नहीं करना चाहिये। यदि कोई अज्ञानवश ऐसा करता है तो वह प्रायश्चित्तका भागी होता है॥ १९॥ जो समाहित होकर गङ्गामें पितरोंका तर्पण करता है, उसे ही पुत्र कहा जाता है, अन्यको पुत्र नहीं कहा जाता॥ २०॥

मनुष्यको अपने पितरोंकी तृप्तिके लिये गङ्गातीर्थमें जाकर श्राद्ध तथा तर्पण करना चाहिये, अन्यथा वह नरकगामी होता है॥ २१॥ गङ्गाको उद्देश्य करके जाते हुए मनुष्यको देखकर श्राद्धभोगकी इच्छा रखनेवाले उसके पितर प्रसन्न होकर हँसने तथा नाचने लगते हैं॥ २२॥ मुने! श्राद्ध न करनेके कारण पितर निराश होकर लौट जाते हैं। अतः यदि मनुष्य अपने पितरोंका श्राद्ध नहीं करता है तो वह नरकमें पड़ता है॥ २३॥ गङ्गाके जलमें पकाया हुआ अन्न देवताओंको भी दुर्लभ है। उस अन्नसे श्राद्ध किये जानेपर पितरोंको संतृप्ति होती है॥ २४॥ जिसके पितर सन्तुष्ट रहते हैं, उसका जन्म सार्थक है और जिसके पितर कुपित रहते हैं उसका जीवन निरर्थक है॥ २५॥ पितरोंके रुष्ट रहनेपर मनुष्योंको धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है। अतः पितरोंको भलीभाँति तृप्त करके ही धार्मिक कृत्य करना चाहिये॥ २६॥

चन्द्र अथवा सूर्यग्रहणके अवसरपर यदि भाग्यसे गङ्गाका सांनिध्य प्राप्त होता है तो उस समय गङ्गामें स्नान करके विधि-विधानपूर्वक पितृश्राद्ध करना चाहिये। वह श्रेष्ठ श्राद्ध अक्षय, पितरोंको तृप्त करनेवाला, सौ गङ्गाश्राद्धोंके समान और मोक्षपद प्रदान करनेवाला होता है॥ २७½॥ उस समय पुरश्चरण करनेसे मनुष्य मन्त्रोंको सिद्ध कर लेता है। वह असाध्य कार्योंको भी सम्पन्न कर लेता है और स्वयं शिव-तुल्य हो जाता है। पुरश्चरण कर रहे मनुष्यको किसी दूसरे अधिकारी पुरुषसे अपने पितरोंका श्राद्ध करा लेना चाहिये। किंतु अज्ञानवश उसे अपने पितरोंको कभी श्राद्धसे वञ्चित नहीं करना चाहिये॥ २८-२९½॥

अक्षय्यायां युगाख्यायां स्नात्वा वै जाह्नवीजले ॥ ३० ॥
पितॄन्संतर्प्य दानेन न पुनर्जन्मभाग्भवेत् ॥ ३१ ॥
गङ्गायां तु पुरश्चर्यां कृत्वा पापविवर्जितः ।
सिद्धमन्त्रो महाज्ञानी भवेद्वै साधकोत्तमः ॥ ३२ ॥
दानं ध्यानं जपो होमोऽभ्यर्चनं श्राद्धतर्पणम् ।
बहुपुण्यकरं प्रोक्तं गङ्गायां मुनिसत्तम ॥ ३३ ॥
गङ्गायां मोहतो नैव विण्मूत्रं विसृजेन्नरः ।
विसृजन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ३४ ॥
असत्यभाषणं लोभं हित्वा च परनिन्दनम् ।
परद्रोहादिकं पापं वर्जयेत्सुसमाहितः ॥ ३५ ॥
यदि कुर्याच्च मोहेन तदा तत्पापशान्तये ।
कृत्वा स्नानं नमस्कृत्य क्षेत्रादन्तर्हितो भवेत् ॥ ३६ ॥
यस्तु गङ्गां महादेवीं प्रकृतिं नीररूपिणीम् ।
नदीति मन्यते मोहात्स याति नरकान्बहून् ॥ ३७ ॥
साक्षाद्ब्रह्ममयीं पूर्णां लोकानां त्राणहेतवे ।
द्रवरूपेण निर्याता शक्तिराद्येति भावयेत् ॥ ३८ ॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ३९ ॥
महाफलप्रदा गङ्गा तस्मात्तत्र विशेषतः ।
प्रयतः स्नानदानादीन्कुर्यान्मर्त्यो महामतिः ॥ ४० ॥
काश्यां यस्तु समागत्य गङ्गायां विधिवन्नरः ।
स्नानमुत्तरवाहिन्यां कुरुते भक्तिभावतः ॥ ४१ ॥
स साक्षाच्छिवतामेति देवपूज्यतमः स्मृतः ।
पितॄणां तर्पणं चापि तत्र निर्वाणदायकम् ॥ ४२ ॥

अक्षय कही जानेवाली तथा युगादि तिथियों*पर गङ्गाके जलमें स्नान करके श्राद्ध तथा दान आदिसे पितरोंको संतृप्त करनेसे मनुष्य पुनर्जन्मका भागी नहीं होता ॥ ३०-३१ ॥ उत्तम साधक गङ्गामें पुरश्चरण करके पापसे रहित होकर मन्त्रसिद्ध तथा महाज्ञानी हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! गङ्गाके सांनिध्यमें किये गये दान, ध्यान, जप, होम, पूजन तथा श्राद्ध-तर्पण आदि महान् पुण्यकारक कहे गये हैं ॥ ३२-३३ ॥

भूलकर भी मनुष्यको गङ्गामें मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। गङ्गामें मल-मूत्रका विसर्जन करनेवाला व्यक्ति चौदह इन्द्रोंके भोगकालतक (एक कल्पपर्यन्त) नरकमें वास करता है ॥ ३४ ॥ पुण्यात्मा व्यक्तिको चाहिये कि असत्य भाषण तथा लोभका त्याग करके परनिन्दा और परद्रोह आदि पापोंसे रहित हो जाय। यदि भूलसे ऐसा कर देता है, तब उस पापकी शान्तिके लिये उसे गङ्गास्नान करके तथा भगवती गङ्गाको प्रणाम करके उस क्षेत्रसे अन्यत्र हट जाना चाहिये ॥ ३५-३६ ॥ जो पुरुष जलरूपिणी, पूर्णा, परा प्रकृति तथा साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी भगवती गङ्गाको अज्ञानवश नदी—ऐसा मानता है, वह अनेक नरकोंमें जाता है। आदिशक्ति ही प्राणियोंकी रक्षाके लिये द्रवरूपमें निकली हुई हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

गङ्गा सभी स्थानोंपर तो सुलभ हैं, किंतु हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसङ्गम—इन तीन स्थानोंपर दुर्लभ हैं। इन स्थानोंपर गङ्गा महान् फल प्रदान करती हैं। अतः महान् बुद्धिवाले मनुष्यको चाहिये कि वहाँपर विशेष प्रयत्नके साथ स्नान, दान आदि कृत्योंको करे ॥ ३९-४० ॥ जो मनुष्य काशीमें आकर भक्तिभावसे सम्पन्न हो विधिपूर्वक उत्तरवाहिनी गङ्गामें स्नान करता है, वह साक्षात् शिवत्वको प्राप्त हो जाता है। वह व्यक्ति देवताओंका भी अत्यन्त पूजनीय कहा गया है और वहाँपर किया गया पितृतर्पण भी निर्वाण प्रदान करता है ॥ ४१-४२ ॥

* कार्तिक शुक्ल नवमी (सत्ययुग), वैशाख शुक्ल तृतीया (त्रेतायुग), माघमासकी अमावास्या (द्वापरयुग) तथा भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी (कलियुग)-इन चार तिथियोंको युगोंकी आदि तिथि कहा गया है। (विष्णुपुराण ३। १४। १२-१३)

सर्वतीर्थादिनिलया काशी विश्वेश्वरालया।
दुर्लभा पृथिवीबाह्या पृथिव्यन्तःस्थितापि च॥ ४३॥

सा स्थली जाह्नवीतोयं जलं यत्र महामते।
तत्र मुक्तिः करस्था तु देहिनां पापिनामपि॥ ४४॥

अन्नपूर्णान्नदा यत्र माता देहभृतां स्वयम्।
गङ्गा च जलदा यत्र ज्ञानदा च सरस्वती॥ ४५॥

ब्राह्मादितो मुनिश्रेष्ठ यत्र मृत्युः परं पदम्।
पिता विश्वेश्वरो यत्र मोक्षमार्गोपदेशकः॥ ४६॥

तां काशीं यो न सेवेत विधिना वञ्चितस्तु सः।
मणिकर्ण्यां कृतस्नानः काश्यां विश्वेश्वरं प्रभुम्।
सम्पूज्य बिल्वपत्राद्यैः शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ४७॥

गङ्गामृत्तिकया कृत्वा तिलकं मुनिसत्तम।
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म तत्सर्वं पूर्णतामियात्॥ ४८॥

यत्रकुत्रापि गङ्गायाः सलिलैर्देवपूजनम्।
श्राद्धाभिषेककर्मादि कुरुते मानवोत्तमः॥ ४९॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि विधिहीनं भवेद्यदि।
अकालेऽप्यथ वा देशे श्राद्धादिपरिवर्जिते॥ ५०॥

दाम्भिकं भावमास्थाय कृतं वा द्रव्यवर्जितम्।
अशुद्धद्रव्यसंघेन कृतं वा पापचेतसा।
सम्पूर्णफलदं सर्वं तथापि खलु तद्भवेत्॥ ५१॥

विश्वेश्वर सदाशिवकी नगरी काशी अत्यन्त दुर्लभ है तथा सभी तीर्थोंकी आदि-निवासस्थली है। वह पृथ्वीमण्डलके अन्तर्गत रहते हुए भी भूमण्डलसे पृथक् है [भगवान् विश्वनाथके त्रिशूलपर स्थित है]। महामते! ऐसी दिव्य भूमि तथा भगवती गङ्गाका पावन जल जहाँ है, वहाँ पापी प्राणियोंके लिये भी मुक्ति हाथमें ही है॥ ४३-४४॥ जहाँ देहधारियोंकी माता अन्नपूर्णा स्वयं अन्न प्रदान करती हैं, जहाँ भगवती गङ्गा जल और भगवती सरस्वती ज्ञान प्रदान करती हैं। मुनिश्रेष्ठ! जहाँ मृत्यु ब्राह्म आदिसे श्रेष्ठ परम पद [मोक्ष]-को प्रदान करती हैं और जहाँपर जगत्पिता विश्वेश्वर मोक्षमार्गके उपदेशकके रूपमें विराजमान हैं; उस काशीका जो सेवन नहीं करता, वह विधाताके द्वारा ठग लिया गया है। काशीमें मणिकर्णिकापर स्नान करनेवाला व्यक्ति बिल्वपत्र आदिसे भगवान् विश्वेश्वरका पूजन करके शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ४५—४७॥ मुनिश्रेष्ठ! गङ्गाकी मिट्टीसे तिलक धारण करके मनुष्य जो कुछ कर्म करता है, वह सब पूर्ण हो जाता है॥ ४८॥ जहाँ-कहीं भी श्रेष्ठ मनुष्य गङ्गाके जलसे देवपूजन, श्राद्ध तथा अभिषेक आदि कर्म करता है—वह कर्म चाहे ज्ञान अथवा अज्ञानसे हो, विधिहीन हो गया हो, श्राद्ध आदिके लिये अविहित देश अथवा कालमें किया गया हो, दम्भभावनासे युक्त होकर या द्रव्यरहित रूपमें अथवा अन्यायोपार्जित द्रव्योंसे या पापयुक्त मनसे ही किया गया हो; फिर भी वह निश्चितरूपसे सम्पूर्ण फल प्रदान करनेवाला होता है॥ ४९—५१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीगङ्गामाहात्म्यकथने त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीगङ्गामाहात्म्यकथन' नामक तिहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

गङ्गामाहात्म्य-कथनके प्रसंगमें धनाधिप वैश्यकी कथा

श्रीमहादेव उवाच

गङ्गायां संत्यजन्देहं ज्ञानतो मुनिसत्तम।
कैवल्यं समवाप्नोति मानवः पापवर्जितः॥ १ ॥

अज्ञानाच्छिवसायुज्यं त्यक्त्वा तत्र कलेवरम्।
प्राप्नुयान्मानवो गङ्गाप्रसादादतिपातकी॥ २ ॥

मृतस्य यत्रकुत्रापि मांसमस्थि च नारद।
प्रपतेज्जाह्नवीतोये सोऽपि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ३ ॥

यदि पापसहस्रं स्याद्ब्रह्महत्यादिगर्हितम्।
यत्रकुत्रस्थितं मांसमस्थिगङ्गाजलं लभेत्।
मृतस्य सोऽपि निर्याति स्वर्गं लोकमनामयम्॥ ४ ॥

गङ्गायां च जले मुक्तिर्वाराणस्यां जले स्थले।
जले स्थले चान्तरिक्षे त्रिधा सागरसङ्गमे॥ ५ ॥

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि शृणु सावहितो मुने।
आश्चर्यं महदाख्यानं मुने श्रोतृसुखावहम्॥ ६ ॥

आसीत्परमपापात्मा वैश्यो नाम्ना धनाधिपः।
दस्युकर्मरतो नित्यं परदाररतः सदा॥ ७ ॥

स पापात्मा त्यजन्देहं यमस्य वशतामगात्।
यमस्तं पातयामास नरके त्वसिपत्रके॥ ८ ॥

देहस्तस्य त्वनिर्दग्धः स्थितोऽरण्यस्य मध्यतः।
तं चखाद शृगालस्तु क्षुधार्तो मुनिसत्तम॥ ९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ज्ञानपूर्वक गङ्गामें देहत्याग करनेवाला मनुष्य पापसे मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १॥ महापातकी मनुष्य अज्ञानतापूर्वक भी उसमें शरीर त्यागकर गङ्गाजीकी कृपासे शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ २॥ नारद! जहाँ-कहीं भी मृत्युको प्राप्त प्राणीका मांस अथवा अस्थि आदि गङ्गाके जलमें पड़ जाता है, वह प्राणी भी स्वर्ग प्राप्त करता है, चाहे उसने ब्रह्महत्या आदि हजारों निन्दित पाप किये हों। मरे हुए प्राणीके जहाँ-कहीं भी पड़े हुए मांस अथवा अस्थि आदिको यदि गङ्गाजलकी प्राप्ति हो जाती है तो वह भी निर्विकार स्वर्गलोकको प्राप्त हो जाता है॥ ३-४॥ गङ्गाके जलमें मरनेसे मुक्ति मिल जाती है, वाराणसीक्षेत्रमें कहीं भी जल अथवा स्थलमें मरनेसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है और गङ्गासागरसङ्गमपर जल, स्थल और अन्तरिक्ष—इन तीनोंमें कहीं भी मरनेपर मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ५॥

मुने! अब मैं इस संदर्भमें एक कथाका वर्णन करूँगा, आप सावधान होकर सुनिये। मुने! यह आख्यान अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा श्रोताको सुख प्रदान करनेवाला है॥ ६॥ धनाधिप नामक एक महापापी वैश्य था। वह प्रतिदिन चोरीके काममें लगा रहता और सदा परायी स्त्रियोंमें आसक्त रहता था। वह पापात्मा देह-त्याग कर यमराजके पास पहुँचा और यमराजने उसे असिपत्र नामक नरकमें डाल दिया॥ ७-८॥ उसका बिना जला शरीर जंगलके बीचमें पड़ा रहा। मुनिश्रेष्ठ! भूखसे पीड़ित एक सियार उस मृतदेहको खाने लगा॥ ९॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र कानने मुनिसत्तम।
आगत्य गृध्रराजस्तं शृगालं प्राभ्यधावत॥ १० ॥

मुनिश्रेष्ठ! इसी बीच उस जंगलमें रहनेवाला एक गीधराज वहाँ आकर सियारकी ओर दौड़ा [और स्वयं उसे खाने लगा] ॥ १० ॥

वियद्गतोऽतिश्रान्तस्तु गङ्गायां समुपेत्य वै।
पपौ जलं मुनिश्रेष्ठ तत्र तन्मांसमाविशत्॥ ११ ॥

तत्तोयस्पर्शमात्रेण स पापी घोरकिल्बिषात्।
विमुक्तः शांकरं देहं प्राप्य स्वर्गं जगाम ह॥ १२ ॥

मुनिश्रेष्ठ! अत्यन्त थका हुआ वह गीध आकाशमें उड़ गया और गङ्गातटपर आकर उसने जल पीया। उसकी चोंचपर लगा हुआ मांस गङ्गाजलमें गिर गया। उस जलके स्पर्शमात्रसे वह पापी [वैश्य] घोर पापसे मुक्त हो गया और शिवरूप होकर स्वर्ग चला गया॥ ११-१२ ॥

रक्षकास्त्वसिपत्रस्थं गच्छन्तं वीक्ष्य पापिनम्।
धर्मराजमुपागत्य वचनं चेदमब्रुवन्॥ १३ ॥

असिपत्र नरकके रक्षक वहाँ स्थित उस पापीको वहाँसे जाते हुए देखकर धर्मराजके पास आकर यह वचन कहने लगे— ॥ १३ ॥

रक्षका ऊचुः

प्रभोऽसिपत्रे नरके यः पापी रक्षितस्त्वया।
स साक्षाच्छाङ्करं देहं प्राप्य स्वर्गं जगाम ह॥ १४॥

तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्य यमः प्राह भटान्प्रति।
विज्ञाय कारणं तस्य ज्ञानदृष्ट्या तपोधनः॥ १५ ॥

रक्षकगण बोले—प्रभो! आपने जिस पापीको असिपत्र नरकमें रखा था, वह तो साक्षात् शिवदेह प्राप्त कर स्वर्ग चला गया। यह सुनकर तपोधन यमराजको महान् आश्चर्य हुआ। पुनः अपनी ज्ञानदृष्टिसे उसका कारण जानकर वे अपने रक्षकोंसे कहने लगे— ॥ १४-१५ ॥

यम उवाच

दूता गङ्गाजलस्पर्शाच्छृगालकवलीकृते।
मांसे चातिनिकृष्टोऽपि मुक्तोऽसौ सहसाऽभवत्॥ १६ ॥

यमराज बोले—दूतो! [मृत्यूपरान्त] जिसका मांस सियारके द्वारा खा लिया गया, ऐसा यह पापी भी अपने मांसके गङ्गाजलके स्पर्शसे सहसा मुक्त हो गया॥ १६ ॥

श्रीमहादेव उवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्य दूताः स्वस्थानमाययुः।
स्मरन्तो जाह्नवीतोयमाहात्म्यं मुनिसत्तम॥ १७॥

स तु स्वर्गपुरे देवैः स्तूयमानो महामते।
सम्प्राप्य शिवसायुज्यं मुमोद सुचिरं मुने॥ १८ ॥

एवं भगवती गङ्गा महापातकनाशिनी।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि मोक्षदा च यतस्ततः॥ १९ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ऐसा सुनकर यमदूतोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे गङ्गाजलकी महिमाका स्मरण करते हुए अपने स्थानपर आ गये॥ १७॥ महामते! मुने! स्वर्गलोकमें देवताओंके द्वारा स्तुत होते हुए वह शिवसायुज्य प्राप्त करके सदाके लिये आनन्दित हो गया॥ १८॥ इस प्रकार महापातकोंका नाश करनेवाली भगवती गङ्गा जिस किसी भी प्रकारसे दर्शन या स्पर्श हो जानेपर मोक्ष प्रदान कर देती हैं॥ १९॥

सर्वात्मना नरो भक्त्या गङ्गामेव समाश्रयेत्।
अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्नैयत्यवर्जितः।
तस्मात्प्रागेव तां गङ्गां मुमुक्षुः समुपाश्रयेत्॥ २०॥

अतर्कितमिवागम्य शमनोऽतिदुरासदः।
यावत्केशान्न गृह्णाति तावद्गङ्गामुपाश्रयेत्॥ २१॥

पुत्रमित्रकलत्रादि न बन्धुः कथ्यते मुने।
गङ्गैव परमा बन्धुर्भवमोचनकारिणी॥ २२॥

दर्शनात्स्पर्शनान्नामकीर्तनाद्ध्यानतोऽपि च।
सुखदा मोक्षदा गङ्गा बन्धुः परम ईरिता॥ २३॥

महाघोरतरे याम्ये भये निर्भयदायिनीम्।
गङ्गां ये नाश्रयन्तीह ज्ञेयास्ते चात्मघातिनः॥ २४॥

वृथा पुत्रादिकं सर्वं मोहबन्धप्रवर्तकम्।
शाश्वतीमुक्तिदा गङ्गेत्येवं मत्वा समाश्रयेत्॥ २५॥

मुमूर्षुं प्रापयेद्गङ्गां निर्वाणपददायिनीम्।
सोऽपि निर्वाणमायाति जाह्नव्यास्तु प्रसादतः॥ २६॥

गङ्गैव परमो बन्धुर्गङ्गैव परमं सुखम्।
गङ्गैव परमं वित्तं गङ्गैव परमा गतिः॥ २७॥

गङ्गैव परमा मुक्तिर्गङ्गा सारतरेति ये।
विभावयन्ति तेषां तु न दूरस्था कदाचन॥ २८॥

गङ्गेति वदतां गङ्गा पृष्ठतश्चानुधावति।
शङ्खस्वनाद्यथा पूर्वं भगीरथमुपाययौ॥ २९॥

गङ्गातीरं परित्यज्य योऽन्यत्र निवसेन्नरः।
करस्थां संत्यजन्मुक्तिं सोऽन्वेषी नरकस्य तु॥ ३०॥

मनुष्यको सभी प्रकारसे भक्तिपूर्वक गङ्गाका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। मृत्यु आज अथवा सौ वर्षोंके अन्तमें नियत और अवश्यम्भावी है। अतः उससे पहले ही मोक्ष चाहनेवालेको भगवती गङ्गाका आश्रय ले लेना चाहिये॥ २०॥ अति दुर्धर्ष यम जबतक अप्रत्याशित रूपसे आकर केशोंको पकड़ नहीं लेता, उससे पहले ही गङ्गाका आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिये॥ २१॥

मुने! पुत्र, मित्र तथा स्त्री आदि कोई भी [यथार्थ] बन्धु नहीं कहे जा सकते हैं। इस संसारसे मुक्त करनेवाली भगवती गङ्गा ही परम बन्धु हैं॥ २२॥ दर्शन, स्पर्श, नाम-कीर्तन अथवा ध्यान करनेसे भी सुख और मोक्ष प्रदान करनेवाली भगवती गङ्गा परम बन्धु कही गयी हैं॥ २३॥ अत्यन्त घोर यम-यातनाके भयसे अभय प्रदान करनेवाली गङ्गाका जो आश्रय नहीं लेते, उन्हें आत्मघाती समझना चाहिये॥ २४॥ मोहबन्धनकी ओर प्रवृत्त करनेवाले पुत्र आदि सभी व्यर्थ हैं। गङ्गा ही शाश्वत मुक्ति देनेवाली हैं—ऐसा मानकर गङ्गाका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ २५॥ निर्वाणपद देनेवाली गङ्गातक मरणासन्न व्यक्तिको पहुँचा देना चाहिये। इससे वह पहुँचानेवाला भी भगवती गङ्गाकी कृपासे मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २६॥

'गङ्गा ही परम बन्धु हैं, गङ्गा ही परम सुख हैं, गङ्गा ही परम धन हैं, गङ्गा ही परम गति हैं, गङ्गा ही परम मुक्ति हैं और गङ्गा ही परम तत्त्व हैं', जो लोग ऐसी भावना रखते हैं, गङ्गा उनसे कभी भी दूर नहीं रहती हैं॥ २७-२८॥ 'गङ्गा'—ऐसा उच्चारण करनेवालेके पीछे-पीछे गङ्गा उसी प्रकार दौड़ती हैं, जैसे पूर्वकालमें भगीरथकी शङ्ख-ध्वनिसे गङ्गा उनके पीछे-पीछे चली थीं॥ २९॥ जो मनुष्य गङ्गाका तट छोड़कर अन्यत्र निवास करता है, वह मानो अपने हाथमें स्थित मुक्तिका त्याग करके नरककी खोज करता है॥ ३०॥

धन्यः स देशो यत्रास्ति गङ्गा त्रैलोक्यपावनी।
गङ्गाहीनस्तु यो देशो न प्रदेशः स भण्यते॥ ३१॥

गङ्गातीरे वरं भिक्षा वरं प्राणवियोजनम्।
अन्यत्र पृथिवीपत्वं न नरः प्रार्थयेत्क्वचित्॥ ३२॥

यस्मिन्देशे वसेदेको गङ्गाभक्तिपरो नरः।
सोऽपि पुण्यतमो देशस्तत्र दानं महाफलम्॥ ३३॥

श्राद्धं च तर्पणं तत्र पितॄणां तृप्तिकारकम्।
अनन्तफलदं ज्ञेयं जपहोमादिकं तथा॥ ३४॥

गङ्गा नाम परं सौख्यं गङ्गा नाम परं तपः।
गङ्गेति संस्मरन्नित्यं तस्य नास्ति यमाद्भयम्॥ ३५॥

वह देश धन्य है, जहाँ तीनों लोकोंको पवित्र कर देनेवाली गङ्गा रहती हैं। जो देश गङ्गासे रहित है, उसे प्रशस्त देश नहीं कहा जा सकता॥ ३१॥ गङ्गाके तटपर रहते हुए भिक्षा माँगना भी श्रेष्ठ है तथा वहाँ प्राणान्त हो जाना भी श्रेयस्कर है। किंतु गङ्गाको छोड़कर मनुष्यको अन्य स्थानपर राज्य प्राप्त करनेकी भी कामना नहीं करनी चाहिये॥ ३२॥

गङ्गाकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाला एक भी मनुष्य जिस देशमें रहता है, वह देश भी परम पुण्यशाली है और वहाँपर दिया गया दान महान् फल देनेवाला होता है। वहाँपर किया गया श्राद्ध तथा तर्पण पितरोंको तृप्त करनेवाला होता है। वहाँपर किये गये जप-होम आदिको अनन्त फल देनेवाला समझना चाहिये॥ ३३-३४॥ गङ्गाका नाम ही परम सुख है तथा गङ्गाका नाम परम तप है। जो मनुष्य 'गङ्गा'—इस नामका नित्य स्मरण करता है, उसे यमराजका भय नहीं रहता॥ ३५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे गङ्गामाहात्म्ये शृगालकवलितस्यारण्यमृतधनाधिपमांसस्य गङ्गाजलस्पर्शेन धनाधिपमुक्तिपदगमनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें गङ्गामाहात्म्यमें 'सियारके द्वारा खाये गये जंगलमें मृत धनाधिपके मांसका गङ्गाजलस्पर्शसे धनाधिप-मुक्तिपदगमन' नामक चौहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

गङ्गाजीका अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र तथा उसका माहात्म्य

श्रीनारद उवाच

गङ्गा नाम परं पुण्यं कथितं परमेश्वर।
नामानि कति शस्तानि गङ्गायाः प्रणिशंस मे॥ १॥

श्रीनारदजी बोले—परमेश्वर! आपने बताया कि 'गङ्गा' नाम परम पुण्यदायी है। गङ्गाके और भी कितने श्रेष्ठ नाम हैं, उन्हें मुझे बताइये॥ १॥

श्रीमहादेव उवाच

नाम्नां सहस्रमध्ये तु नामाष्टशतमुत्तमम्।
जाह्नव्या मुनिशार्दूल तानि मे शृणु तत्त्वतः॥ २॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! गङ्गाके एक हजार नामोंमें एक सौ आठ नाम अत्युत्तम हैं। आप मुझसे उन नामोंको तत्त्वतः सुन लीजिये—॥ २॥

ॐ गङ्गा त्रिपथगा देवी शम्भुमौलिविहारिणी।
जाह्नवी पापहन्त्री च महापातकनाशिनी॥ ३ ॥

पतितोद्धारिणी स्रोतस्वती परमवेगिनी।
विष्णुपादाब्जसम्भूता विष्णुदेहकृतालया॥ ४ ॥

स्वर्गाब्धिनिलया साध्वी स्वर्णदी सुरनिम्नगा।
मन्दाकिनी महावेगा स्वर्णशृङ्गप्रभेदिनी॥ ५ ॥

देवपूज्यतमा दिव्या दिव्यस्थाननिवासिनी।
सुचारुनीररुचिरा महापर्वतभेदिनी॥ ६ ॥

भागीरथी भगवती महामोक्षप्रदायिनी।
सिन्धुसङ्गगता शुद्धा रसातलनिवासिनी॥ ७ ॥

महाभोगा भोगवती सुभगानन्ददायिनी।
महापापहरा पुण्या परमाह्लाददायिनी॥ ८ ॥

पार्वती शिवपत्नी च शिवशीर्षगतालया।
शम्भोर्जटामध्यगता निर्मला निर्मलानना॥ ९ ॥

महाकलुषहन्त्री च जह्नुपुत्री जगत्प्रिया।
त्रैलोक्यपावनी पूर्णा पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी॥ १० ॥

जगत्पूज्यतमा चारुरूपिणी जगदम्बिका।
लोकानुग्रहकर्त्री च सर्वलोकदयापरा॥ ११ ॥

याम्यभीतिहरा तारा पारा संसारतारिणी।
ब्रह्माण्डभेदिनी ब्रह्मकमण्डलुकृतालया॥ १२ ॥

१. [ओङ्कारस्वरूपिणी] गङ्गा, २. त्रिपथगा देवी, ३. शम्भुमौलिविहारिणी, ४. जाह्नवी, ५. पापहन्त्री, ६. महापातकनाशिनी, ७. पतितोद्धारिणी, ८. स्रोतस्वती, ९. परमवेगिनी, १०. विष्णुपादाब्जसम्भूता, ११. विष्णुदेहकृतालया, १२. स्वर्गाब्धिनिलया, १३. साध्वी, १४. स्वर्णदी, १५. सुरनिम्नगा, १६. मन्दाकिनी, १७. महावेगा, १८. स्वर्णशृङ्गप्रभेदिनी, १९. देवपूज्यतमा, २०. दिव्या, २१. दिव्यस्थाननिवासिनी, २२. सुचारुनीररुचिरा, २३. महापर्वतभेदिनी, २४. भागीरथी, २५. भगवती, २६. महामोक्षप्रदायिनी, २७. सिन्धुसङ्गगता, २८. शुद्धा, २९. रसातल-निवासिनी॥ ३—७॥

३०. महाभोगा, ३१. भोगवती, ३२. सुभगानन्ददायिनी, ३३. महापापहरा, ३४. पुण्या, ३५. परमाह्लाददायिनी, ३६. पार्वती, ३७. शिवपत्नी, ३८. शिवशीर्षगतालया, ३९. शम्भोर्जटामध्यगता, ४०. निर्मला, ४१. निर्मलानना, ४२. महाकलुषहन्त्री, ४३. जह्नुपुत्री, ४४. जगत्प्रिया, ४५. त्रैलोक्यपावनी, ४६. पूर्णा, ४७. पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी, ४८. जगत्पूज्यतमा, ४९. चारुरूपिणी, ५०. जगदम्बिका, ५१. लोकानुग्रहकर्त्री, ५२. सर्वलोकदयापरा, ५३. याम्यभीतिहरा, ५४. तारा, ५५. पारा, ५६. संसारतारिणी, ५७. ब्रह्माण्डभेदिनी, ५८. ब्रह्मकमण्डलुकृतालया॥ ८—१२॥

सौभाग्यदायिनी पुंसां निर्वाणपददायिनी।
अचिन्त्यचरिता चारुरुचिरातिमनोहरा॥ १३॥

मर्त्यस्था मृत्युभयहा स्वर्गमोक्षप्रदायिनी।
पापापहारिणी दूरचारिणी वीचिधारिणी॥ १४॥

कारुण्यपूर्णा करुणामयी दुरितनाशिनी।
गिरिराजसुता गौरीभगिनी गिरिशप्रिया॥ १५॥

मेनकागर्भसम्भूता मैनाकभगिनीप्रिया।
आद्या त्रिलोकजननी त्रैलोक्यपरिपालिनी॥ १६॥

तीर्थश्रेष्ठतमा श्रेष्ठा सर्वतीर्थमयी शुभा।
चतुर्वेदमयी सर्वा पितृसंतृप्तिदायिनी॥ १७॥

शिवदा शिवसायुज्यदायिनी शिववल्लभा।
तेजस्विनी त्रिनयना त्रिलोचनमनोरमा॥ १८॥

सप्तधारा शतमुखी सगरान्वयतारिणी।
मुनिसेव्या मुनिसुता जह्नुजानुप्रभेदिनी॥ १९॥

मकरस्था सर्वगता सर्वाशुभनिवारिणी।
सुदृश्या चाक्षुषीतृप्तिदायिनी मकरालया॥ २०॥

सदानन्दमयी नित्यानन्ददा नगपूजिता।
सर्वदेवाधिदेवैश्च परिपूज्यपदाम्बुजा॥ २१॥

एतानि मुनिशार्दूल नामानि कथितानि ते।
शस्तानि जाह्नवीदेव्याः सर्वपापहराणि च॥ २२॥

य इदं पठते भक्त्या प्रातरुत्थाय नारद।
गङ्गायाः परमं पुण्यं नामाष्टशतमेव हि॥ २३॥

तस्य पापानि नश्यन्ति ब्रह्महत्यादिकान्यपि।
आरोग्यमतुलं सौख्यं लभते नात्र संशयः॥ २४॥

यत्र कुत्रापि संस्नायात्पठेत्स्तोत्रमनुत्तमम्।
तत्रैव गङ्गास्नानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्॥ २५॥

५९. सौभाग्यदायिनी, ६०. पुंसां निर्वाणपददायिनी, ६१. अचिन्त्यचरिता, ६२. चारुरुचिरातिमनोहरा, ६३. मर्त्यस्था, ६४. मृत्युभयहा, ६५. स्वर्गमोक्षप्रदायिनी, ६६. पापापहारिणी, ६७. दूरचारिणी, ६८. वीचिधारिणी, ६९. कारुण्यपूर्णा, ७०. करुणामयी, ७१. दुरितनाशिनी, ७२. गिरिराजसुता, ७३. गौरीभगिनी, ७४. गिरिशप्रिया ७५. मेनकागर्भसम्भूता, ७६. मैनाकभगिनीप्रिया, ७७. आद्या, ७८. त्रिलोकजननी, ७९. त्रैलोक्यपरिपालिनी, ८०. तीर्थश्रेष्ठतमा, ८१. श्रेष्ठा, ८२. सर्वतीर्थमयी, ८३. शुभा, ८४. चतुर्वेदमयी, ८५. सर्वा, ८६. पितृसंतृप्तिदायिनी ॥ १३—१७॥

८७. शिवदा, ८८. शिवसायुज्यदायिनी, ८९. शिववल्लभा, ९०. तेजस्विनी, ९१. त्रिनयना, ९२. त्रिलोचनमनोरमा, ९३. सप्तधारा, ९४. शतमुखी, ९५. सगरान्वयतारिणी, ९६. मुनिसेव्या, ९७. मुनिसुता, ९८. जह्नुजानुप्रभेदिनी, ९९. मकरस्था, १००. सर्वगता, १०१. सर्वाशुभनिवारिणी, १०२. सुदृश्या, १०३. चाक्षुषीतृप्तिदायिनी, १०४. मकरालया, १०५. सदानन्दमयी, १०६. नित्यानन्ददा, १०७. नगपूजिता, १०८. सर्वदेवाधिदेवैः परिपूज्यपदाम्बुजा॥ १८—२१॥

मुनिश्रेष्ठ! मैंने आपसे भगवती गङ्गाके ये श्रेष्ठ नाम बता दिये। ये नाम समस्त पापोंका विनाश करनेवाले हैं॥ २२॥

नारद! जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर गङ्गाके इन परम पुण्य देनेवाले एक सौ आठ नामोंको भक्तिपूर्वक पढ़ता है, उसके ब्रह्महत्या आदि पाप भी नष्ट हो जाते हैं तथा वह अतुलनीय आरोग्य एवं सुख प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २३-२४॥

जहाँ-कहीं भी स्नान करके मनुष्य यदि इस उत्तम स्तोत्रका पाठ करे, तो उसे वहींपर गङ्गास्नानका फल निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है॥ २५॥

प्रत्यहं प्रपठेदेतद्‌गङ्गानामशताष्टकम्।
सोऽन्ते गङ्गामनुप्राप्य प्रयाति परमं पदम्॥ २६॥

गङ्गायां स्नानसमये यः पठेद्भक्तिसंयुतः।
सोऽश्वमेधसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः॥ २७॥

गवामयुतदानस्य यत्फलं समुदीरितम्।
तत्फलं समवाप्नोति पञ्चम्यां प्रपठन्नरः॥ २८॥

कार्तिक्यां पौर्णमास्यां तु स्नात्वा सागरसङ्गमे।
यः पठेत्स महेशत्वं याति सत्यं न संशयः॥ २९॥

सिन्धुना तीर्थराजेन सर्वतीर्थमयी स्वयम्।
संगता समभूद्यत्र तीर्थं नास्ति ततोऽधिकम्॥ ३०॥

अन्यत्र जाह्नवीतीर्थे निर्वाणं ज्ञानतो भवेत्।
वाराणस्यां स्थले वापि जले वा मुनिसत्तम॥ ३१॥

ज्ञानादज्ञानतश्चापि विज्ञानं परिकल्पितम्।
स्थले वा जाह्नवीतोये गगनेऽज्ञानतोऽपि च।
अज्ञानादपि संत्यज्य देहं मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ३२॥

तत्र त्यजति यो देहं नरोऽन्यस्येच्छया मुने।
सोऽपि निर्वाणमाप्नोति महातीर्थप्रसादतः॥ ३३॥

तीर्थश्रेष्ठतमां गङ्गां नृणां सर्वार्थसाधिनीम्।
शक्तीं नीरमयीं मूर्तिं लोकनिस्तारकारिणीम्॥ ३४॥

अविद्याछेदिनीं देवीं ब्रह्मविद्याप्रदायिनीम्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना समुपाश्रयेत्॥ ३५॥

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्।
पवित्रं परमं गुह्यं महापातकनाशनम्॥ ३६॥

यश्चैतन्महदाख्यानं प्रपठेद्भक्तिसंयुतः।
स देव्याः पदवीं याति मुने नास्त्यत्र संशयः॥ ३७॥

जो मनुष्य गङ्गाके एक सौ आठ नामोंवाले स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, वह अन्तमें गङ्गाको प्राप्त होकर परमपद प्राप्त कर लेता है॥ २६॥ जो मनुष्य गङ्गामें स्नानके समय भक्तिपरायण होकर इसका पाठ करता है, वह हजारों अश्वमेधयज्ञोंका फल प्राप्त करता है॥ २७॥ पञ्चमी तिथिको इसका पाठ करनेवाला मनुष्य वह फल प्राप्त करता है जो फल दस हजार गायोंके दानका कहा गया है॥ २८॥ कार्तिक पूर्णिमाको गङ्गासागरसङ्गममें स्नान करके जो मनुष्य इसका पाठ करता है, वह शिवत्वको प्राप्त हो जाता है, यह सच है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ २९॥ स्वयं सर्वतीर्थमयी गङ्गाने जहाँ समुद्र तथा तीर्थराजके साथ सङ्गम किया है, उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है॥ ३०॥ दूसरे स्थानके गङ्गातीर्थमें ज्ञानसे मुक्ति होती है, किंतु मुनिश्रेष्ठ! वाराणसीमें भूमिपर अथवा जलमें कहीं भी ज्ञान या अज्ञानपूर्वक विज्ञानकी प्राप्ति कही गयी है। यहाँ स्थलपर, गङ्गाजलमें अथवा आकाशमें ज्ञान या अज्ञान किसी भी तरहसे शरीरका त्याग करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। मुने! वहाँपर जो मनुष्य किसी अन्य (पुरुषार्थ)-की इच्छासे भी देहत्याग करता है, वह भी महातीर्थकी कृपासे मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ३१—३३॥

मृत्युने मेरे केशोंको पकड़ रखा है—ऐसा सोचकर मनुष्यको तीर्थोंमें सर्वश्रेष्ठ, मनुष्योंके सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाली, शक्तिस्वरूपिणी, जलमयी मूर्ति, लोकोंका उद्धार करनेवाली, अविद्याका नाश करनेवाली तथा ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाली भगवती गङ्गाका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ ३४-३५॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे उत्तम, परम पवित्र, गुप्त तथा महापातकोंका नाश करनेवाले गङ्गामाहात्म्यका वर्णन कर दिया॥ ३६॥

मुने! जो मनुष्य भक्तिसे युक्त होकर इस उत्तम आख्यानको पढ़ता है, वह भगवती गङ्गाके दिव्य धामको प्राप्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है॥ ३७॥

यत्रैतत्पठ्यते पुण्यं गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम्।
तत्र गङ्गा वसेत्साक्षात्सर्वतीर्थैः समावृता॥ ३८॥

अत्र यत्क्रियते कर्म दैवं पित्र्यं च मानवैः।
तदक्षयतमं लोके फलदं परिकीर्तितम्॥ ३९॥

लिखितं तिष्ठते यत्र पुण्याख्यानमिदं मुने।
तद्देशं न स्पृशेत्पापं भयात्सत्यं न संशयः॥ ४०॥

आसन्ने मृत्युकाले तु भक्त्या यः शृणुयान्नरः।
न मृत्युवशतामेति स याति परमां गतिम्॥ ४१॥

एकादश्यां कृतस्नानस्तुलसीबिल्वसंनिधौ।
उपोष्य प्रपठेदेतत्स याति परमां गतिम्॥ ४२॥

पितृश्राद्धदिने यस्तु पठेद्विप्रस्य संनिधौ।
तस्य तृप्तिमुपायान्ति पितरः शाश्वतीं मुने॥ ४३॥

महाष्टम्यां निशीथे तु प्रपठेन्मानवोत्तमः।
स याति परमं सौख्यं महादेव्याः प्रसादतः॥ ४४॥

आत्यन्तिकं मुनिश्रेष्ठ फलमेतस्य कथ्यते।
नैतस्य सदृशं लोके पुण्याख्यानं प्रगीयते॥ ४५॥

महापापहरं पुण्यं स्मृतं पुण्यतमादपि।
एतदाख्यानमाकर्ण्य नरः स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ४६॥

जिस स्थानपर इस पवित्र गङ्गामाहात्म्यका पाठ किया जाता है, वहाँपर गङ्गा सभी तीर्थोंके साथ प्रत्यक्षरूपसे निवास करती हैं। यहाँ मनुष्य जो भी देवकार्य या पितृकार्य करता है, वह कर्म इस लोकमें अक्षय फल देनेवाला कहा गया है॥ ३८-३९॥

मुने! यह पावन आख्यान जहाँ लिखा हुआ स्थित रहता है, पाप उस स्थानको भयके मारे स्पर्शतक नहीं करता है, यह बात सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ४०॥ मरणासन्न-स्थितिमें पड़ा हुआ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह मृत्युके अधीन नहीं होता और परम गतिको प्राप्त होता है॥ ४१॥ एकादशी तिथिको स्नान करके जो व्यक्ति उपवासपूर्वक तुलसी या बिल्ववृक्षके समीप बैठकर इसे ध्यानपूर्वक पढ़ता है, वह परम गति प्राप्त करता है॥ ४२॥ मुने! जो मनुष्य पितरोंके श्राद्धके दिन ब्राह्मणके सांनिध्यमें इसका पाठ करता है, उसके पितर शाश्वत तृप्ति प्राप्त करते हैं॥ ४३॥ जो श्रेष्ठ मानव महाष्टमीकी अर्धरात्रिमें इसे ध्यानपूर्वक पढ़ता है, वह महादेवी गङ्गाकी कृपासे परम आनन्दको प्राप्त हो जाता है॥ ४४॥ मुनिश्रेष्ठ! इस आख्यानके पाठका अनन्त फल कहा गया है। संसारमें इसके समान पुण्य प्रदान करनेवाला कोई भी आख्यान नहीं बताया जाता है॥ ४५॥ यह आख्यान महापापोंका हरण करनेवाला तथा पुण्यतमसे भी अधिक पुण्यदायी कहा गया है। इस आख्यानका श्रवण करके मनुष्य स्वर्गलोक [परम गति] प्राप्त कर लेता है॥ ४६॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीगङ्गादेव्या अष्टोत्तरशतनामपूर्वकमाहात्म्यवर्णने पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीगङ्गादेवीका अष्टोत्तरशतनामपूर्वकमाहात्म्यवर्णन' नामक पचहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

कामरूपतीर्थ (कामाख्या-शक्तिपीठ)-के माहात्म्यका वर्णन

श्रीनारद उवाच

प्रभो देव जगन्नाथ श्रुत्वा तव मुखाम्बुजात्।
गङ्गामाहात्म्यमतुलं पवित्रोऽस्मि न संशयः॥ १॥

भूयस्ते श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यमतिविस्तरात्।
कामरूपस्य तीर्थस्य तत् समाचक्ष्व साम्प्रतम्॥ २॥

श्रीनारदजी बोले—प्रभो! देव! जगन्नाथ! आपके मुखकमलसे भगवती गङ्गाके अतुलनीय माहात्म्यको सुनकर मैं पवित्र हो गया हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं है। पुनः आपसे कामरूपतीर्थका माहात्म्य अत्यन्त विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ। अब आप उसे सुनायें॥ १-२॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणु सावहितो वक्ष्ये माहात्म्यं मुनिसत्तम।
कामरूपस्य तीर्थस्य यत्र साक्षात्स्वयं शिवा।
प्रत्यक्षफलदा मर्त्ये स्थानं नास्ति ततोऽधिकम्॥ ३॥

यत्र देवाः सगन्धर्वा ब्रह्माद्याश्च सुरोत्तमाः।
प्रत्यहं समुपागत्य सेवन्ते भक्तितत्पराः॥ ४॥

योनिरूपा महामाया पूर्णाद्या परमेश्वरी।
पृथ्व्यां लोकहितार्थाय यत्रास्ते निजलीलया॥ ५॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! आप सावधान होकर सुनिये। मैं कामरूपतीर्थका माहात्म्य बताता हूँ जहाँ प्रत्यक्ष फल देनेवाली साक्षात् भगवती शिवा स्वयं विराजमान हैं। मृत्युलोकमें इससे उत्तम कोई तीर्थ नहीं है जहाँ गन्धर्वोंसहित देवगण तथा ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवता प्रतिदिन आकर भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं और जहाँ पृथ्वीपर लोगोंके कल्याणके लिये योनिरूपमें महामाया पूर्णा आदिशक्ति परमेश्वरी लीलापूर्वक विराजती हैं॥ ३—५॥

यत्राकार्षीत्तपः पूर्वं ब्रह्मा विष्णुस्तथेश्वरः।
अभीप्सुर्भगवत्यास्तु कामाक्ष्ये मुनिसत्तम॥ ६॥

मुनिश्रेष्ठ! पूर्वमें भगवतीके प्रत्यक्ष दर्शनकी इच्छा रखनेवाले पितामह ब्रह्मा, विष्णु तथा भगवान् शंकरने उस कामाक्ष्य-क्षेत्रमें तप किया था॥ ६॥

यत्र कृत्वा पुरश्चर्यां वसिष्ठो मुनिसत्तमः।
सिद्धमन्त्रोऽभवत्पूर्वं सृष्टिकर्त्रेव चापरः॥ ७॥

अव्याहताज्ञा ये चान्ये सिद्धा देवर्षयस्तथा।
ते सर्वे मुनिशार्दूल कामाख्यायाः प्रसादतः॥ ८॥

सिद्धमन्त्राः समभवंस्तत्र जप्त्वा महामनुम्।
खेचरत्वमनुप्रापुस्तथा देवाधिपूज्यताम्॥ ९॥

पूर्व कालमें जहाँ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने पुरश्चरण करके मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त कर ली और वे दूसरे सृष्टिकर्ताकी भाँति हो गये। मुनिश्रेष्ठ! जो अन्य देवता, ऋषिगण तथा सिद्धगण अव्याहत आज्ञावाले हुए हैं वे सभी भगवती कामाख्याकी कृपासे ही हुए हैं। वे भगवती कामाख्याके महामन्त्रका जप करके मन्त्रसिद्ध हुए, उन्होंने आकाशमें विचरण करनेकी शक्ति प्राप्त की तथा देवताओंके द्वारा पूज्य हो गये॥ ७—९॥

योनिरूपां भगवतीं सुगुप्तां मुनिसत्तम।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा सुसम्पूज्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ १०॥

विहरेत्पृथिवीपृष्ठे शूलपाणिरिवापरः।
निग्रहानुग्रहे शक्तो देवानामपि नारद॥ ११॥

तदाज्ञावशगाः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
नासाध्यं विद्यते तस्य मुने लोकत्रये तथा॥ १२॥

तस्यैव जन्म सफलं यो गत्वा योनिमण्डले।
प्रणमेत्परया भक्त्या देवीं त्रिपुरभैरवीम्॥ १३॥

क्षेत्रस्पर्शनमात्रेण ब्रह्महापि नरः क्षणात्।
मुच्यते नात्र संदेहः कामाख्यायाः प्रसादतः॥ १४॥

कामाख्यादर्शनं वत्स देवानामपि दुर्लभम्।
तद्यः पश्यति कामाख्यां स देवपरिपूजितः॥ १५॥

जन्मान्तरसहस्रैस्तु संचितं पापपुञ्जकम्।
क्षणेन भस्मसात्कुर्यात्कामाख्यायाः प्रदर्शनम्॥ १६॥

गोपनीयं त्वया वत्स नान्यत्रैतत्प्रकाश्यताम्।
कामाख्यासदृशं तीर्थं नास्त्येव धरणीतले॥ १७॥

अङ्गप्रत्यङ्गपातेन सत्याः पुण्यतमो मुने।
देशो भारतखण्डेऽस्मिन्नृणां पापप्रणाशकः॥ १८॥

अङ्गेषु भगवत्यास्तु योनिः श्रेष्ठतमा यतः।
योनिरूपा हि सा देवी सर्वासु स्त्रीष्ववस्थिता॥ १९॥

सा योनिः पतिता यत्र तत्र साक्षात्स्वयं सती।
तेन नास्ति समं स्थानं पुण्यदं धरणीतले॥ २०॥

मुनिश्रेष्ठ! मनुष्य योनिरूपा, अतिगोपनीय भगवती कामाख्याका दर्शन, स्पर्श और पूजन करके जीवन्मुक्त हो जाता है और दूसरे शंकरकी तरह पृथ्वीतलपर विचरण करता है। नारद! वह देवताओंको भी दण्डित तथा पुरस्कृत करनेमें समर्थ हो जाता है। मुने! इन्द्र आदि सभी प्रमुख देवगण उसकी आज्ञाके अधीन हो जाते हैं। उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है॥ १०—१२॥ जो मनुष्य योनिमण्डलमें जाकर परम देवी त्रिपुरभैरवी [कामाख्या]-को भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है, उसका ही जन्म सफल होता है॥ १३॥

ब्रह्महत्या करनेवाला मनुष्य भी भगवती कामाख्याके पुण्यक्षेत्रका स्पर्श करनेमात्रसे उनकी कृपासे क्षणभरमें पापसे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ १४॥ वत्स! भगवती कामाख्याका दर्शन देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। जो व्यक्ति उनका दर्शन करता है, वह देवताओंके द्वारा विशेषरूपसे पूजित होता है॥ १५॥ हजारों जन्म-जन्मान्तरमें किये हुए सञ्चित पापसमूह भगवती कामाख्याके दर्शनमात्रसे क्षणभरमें ही भस्मीभूत हो जाते हैं॥ १६॥ वत्स! इस पृथ्वीतलपर देवी भगवती कामाख्याके शक्तिपीठके समान कोई तीर्थ नहीं है। यह गोपनीय रहस्य आपको अन्यत्र प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ १७॥

मुने! इस भारतवर्षमें भगवती सतीके अङ्ग-प्रत्यङ्गके गिरनेसे यह देश मनुष्योंके पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्यमय है॥ १८॥ भगवतीके सभी अङ्गोंमें योनि-अङ्ग सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि वे देवी योनिरूपमें सभी स्त्रियोंमें अवस्थित हैं॥ १९॥ वह योनि जिस स्थानपर गिरी, वहाँ साक्षात् स्वयं भगवती सती प्रतिष्ठित हैं। इस पृथ्वीपर उसके समान पुण्यदायक कोई स्थान नहीं है॥ २०॥

शम्भुर्वाराणसीक्षेत्रे नराणां मुक्तिदायकः।
आराध्यः सिद्धगन्धर्वैर्देवकिन्नरराक्षसैः॥ २१॥

स शम्भुः काङ्क्षते यत्र मुक्तिं तस्मान्महेश्वरीम्।
प्रत्यहं समुपागत्य स्थानं नास्ति ततोऽधिकम्॥ २२॥

प्रदक्षिणं कृतं येन तीर्थं श्रीयोनिमण्डलम्।
कृतं लोकत्रयं तेन प्रदक्षिणमशेषतः॥ २३॥

निर्माल्यं शिरसा यस्तु कामाख्यायाः प्रधारयेत्।
स देवपूज्यतामेत्य विहरेद्भैरवोपमः॥ २४॥

न तस्य विद्यते भीतिः कुत्रापि धरणीतले।
भयदाः प्रपलायन्ते भयात्तस्य सुदूरतः॥ २५॥

प्रसादो येन केनापि दत्तो देव्या महामुने।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यो नात्र कार्या विचारणा॥ २६॥

उत्तमोऽपि मुने वर्णो न्यूनवर्णादवाप्य वै।
प्रसादं भक्षयेद्भक्त्या नत्वा च शिरसा पुनः।
विभूतिं समवाप्नोति कैवल्यं तत्प्रसादतः॥ २७॥

तत्र श्राद्धं कृतं येन पितॄणां तृप्तिमिच्छता।
गयाश्राद्धं कृतं तेन सहस्राब्दं न संशयः॥ २८॥

लौहित्ये तु कृतस्नानः प्रयतः साधकोत्तमः।
पुरश्चर्यां नरः कृत्वा सिद्धमन्त्रो भवेद्ध्रुवम्॥ २९॥

अव्याहताज्ञः स भवेन्महेश्वर इवापरः।
भूचरः खेचरत्वं च प्राप्नुयात्तत्प्रसादतः॥ ३०॥

सिद्धों, गन्धर्वों, देवताओं, किन्नरों और राक्षसोंके आराध्य भगवान् शंकर वाराणसी (काशी)-क्षेत्रमें प्राणियोंको मुक्ति देनेवाले हैं, वे भगवान् शंकर भी जहाँ महेश्वरी कामाख्याके पास प्रतिदिन आकर मुक्ति प्रदान करनेकी सामर्थ्य प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा करते हैं, उससे बढ़कर पवित्र स्थान अन्य कोई नहीं है॥ २१-२२॥

जिसने श्रीयोनिमण्डल तीर्थकी प्रदक्षिणा कर ली, उसने तीनों लोकोंकी पूर्णरूपसे प्रदक्षिणा कर ली॥ २३॥ जो भगवती कामाख्याका निर्माल्य सिरपर धारण करता है वह देवताओंके द्वारा पूजित होकर भैरवके समान विचरण करता है। इस पृथ्वीतलपर कहीं भी उसको भय नहीं है। उसके भयसे भय प्रदान करनेवाले बहुत दूर भाग जाते हैं॥ २४-२५॥ महामुने! जिस किसीके द्वारा देवी भगवतीका दिया गया प्रसाद प्राप्त होते ही ग्रहण कर लेना चाहिये, इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ २६॥ मुने! उत्तम वर्णका व्यक्ति भी निम्न वर्णके व्यक्तिसे प्राप्त भगवतीके प्रसादको भक्तिपूर्वक सिरसे प्रणाम करके उसे ग्रहण कर लेता है तो वह भगवतीकी कृपासे तत्क्षण ऐश्वर्य और मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ २७॥ अपने पितरोंकी तृप्तिकी इच्छासे जिसने उस शक्तिपीठमें श्राद्ध किया, उसने मानो हजार वर्षोंतक गयाश्राद्ध कर लिया, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २८॥ जो जितेन्द्रिय उत्तम साधक ब्रह्मपुत्र नदमें स्नान करके भगवतीके मन्त्रका पुरश्चरण करता है, उसका मन्त्र निश्चित ही सिद्ध हो जाता है, वह अमोघ आज्ञावाला होकर दूसरे भगवान् शंकरके समान हो जाता है और उनके अनुग्रहसे पृथ्वीपर चलनेवाला आकाशचारी हो जाता है॥ २९-३०॥

कालादींस्तत्र मोहेन कदाचिन्न विचारयेत्।
पुरश्चर्याविधौ मन्त्री विचार्य नरकं व्रजेत्॥ ३१॥

भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें मन्त्र जपनेवाले व्यक्तिको अज्ञानवश भी पुरश्चरणकी विधिमें काल आदि मुहूर्तका विचार नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा विचार करता है तो नरकमें जाता है॥ ३१॥

सुरत्वं सुरराजत्वं ब्रह्मत्वं वा शिवत्वकम्।
विष्णुत्वं सुलभं तत्र जपतां भैरवीमनुम्॥ ३२॥

शक्तिपीठमें भगवती भैरवीका मन्त्र जपनेवालोंको सुरत्व, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व, शिवत्व अथवा विष्णुत्व सुलभतासे प्राप्त हो जाता है॥ ३२॥

जमदग्निसुतो रामः कार्तवीर्यवधेच्छया।
तत्र कृत्वा पुरश्चर्यां प्रत्यक्षं विष्णुतामगात्॥ ३३॥

तथैव भुवि ये चान्ये कुर्युस्तत्र पुरस्क्रियाम्।
ते सर्वे समतामेत्य अन्ते मोक्षमवाप्नुयुः॥ ३४॥

कार्तवीर्यको मारनेकी इच्छासे जमदग्नि ऋषिके पुत्र परशुरामने उन्हीं भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें पुरश्चरण करके साक्षात् विष्णुरूपताको प्राप्त किया था॥ ३३॥ उसी प्रकार पुरश्चरणविधिसे जो अन्य लोग पृथ्वीपर भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें मन्त्र जपते हैं, वे अन्तमें देवी भगवतीकी सारूप्य मुक्ति प्राप्त करते हैं॥ ३४॥

कामाख्या परमं तीर्थं कामाख्या परमं तपः।
कामाख्या परमो धर्मः कामाख्या परमा गतिः॥ ३५॥

कामाख्या परमं वित्तं कामाख्या परमं पदम्।
विभाव्यैवं मुनिश्रेष्ठ न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ ३६॥

मुनिश्रेष्ठ! कामाख्या सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, कामाख्या सर्वश्रेष्ठ तपस्या है, कामाख्या सर्वश्रेष्ठ धर्म है, कामाख्या परम गति है, कामाख्या सर्वश्रेष्ठ धन है तथा कामाख्या परम पद है—इस प्रकारकी भावना करनेवाले (मनुष्य)-का पुनर्जन्म नहीं होता॥ ३५-३६॥

दर्शनं बहुसाहस्रयजन्मान्तरसुसंचितम्।
विद्यते सुमहत्पुण्यं यस्य तस्यैव जायते॥ ३७॥

जिस मनुष्यके अनेक सहस्रजन्मोंके संचित महान् पुण्य होते हैं, उसीको भगवतीका दर्शन होता है॥ ३७॥

तीर्थं श्रीकामरूपाख्यं देवानामपि दुर्लभम्।
अन्येषां दुर्लभं ज्ञेयं देवीलोकं यथा मुने॥ ३८॥

मुने! जिस प्रकार देवीलोक अन्य लोगोंके लिये दुर्लभ कहा गया है, उसी प्रकार भगवती कामाख्याका श्रीकामरूप नामक [शक्तिपीठ] तीर्थ देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ ३८॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे कामाख्यामाहात्म्यवर्णने षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'कामाख्यामाहात्म्यवर्णन' नामक छिहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

कामरूपतीर्थमें प्रतिष्ठित दस महाविद्याओंका वर्णन तथा कामाख्याकवच

श्रीनारद उवाच

कामरूपे महाक्षेत्रे काऽधिष्ठात्री महेश्वरी।
विद्यानां दशमूर्तीनां तन्मे ब्रूहि महेश्वर॥ १ ॥

श्रीमहादेव उवाच

दशैवैता महाविद्याः क्षेत्रस्था मुनिसत्तम।
साधकानां हितार्थाय जपपूजाफलप्रदाः॥ २ ॥

कामाख्या कालिका देवी स्वयमाद्या सनातनी।
तस्याः पार्श्वे स्थिताश्चान्या नव विद्या महामते॥ ३ ॥

सर्वविद्यात्मिका काली कामाख्यारूपिणी यतः।
ततस्तां तत्र सम्पूज्य पूजयित्वेष्टदेवताम्।
इष्टमन्त्रं जपेद्भक्त्या सिद्धमन्त्रो भवेत्तदा॥ ४ ॥

ध्यायतां परमेशानीं कामाख्यां कालिकां पराम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां घोरनेत्रत्रयोज्ज्वलाम्॥ ५ ॥

चतुर्भुजां भीमदंष्ट्रां युगान्तजलदद्युतिम्।
मणिसिंहासने न्यस्तां सिंहप्रेताम्बुजस्थिताम्॥ ६ ॥

हरिः सिंहः शवः शम्भुर्ब्रह्मा कमलरूपधृक्।
ललजिह्वां महाघोरां किरीटकनकोज्ज्वलाम्॥ ७ ॥

अनर्घ्यमणिमाणिक्यघटितैर्भूषणोत्तमैः।
अलङ्कृतां जगद्धात्रीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ८ ॥

श्रीनारदजी बोले—महेश्वर! कामरूप महाक्षेत्रमें दस महाविद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी महेश्वरी कौन हैं? उनके विषयमें हमें बताइये॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! साधकोंके हितसम्पादनके लिये जप और पूजाका फल प्रदान करनेवाली ये दसों महाविद्याएँ इस शक्तिपीठमें स्थित हैं॥ २॥

महामते! भगवती कामाख्या ही स्वयं आदिशक्ति सनातनी देवी कालिका हैं। उनके बगलमें अन्य नौ महाविद्याएँ प्रतिष्ठित हैं॥ ३॥ सर्वविद्यात्मिका काली ही कामाख्यारूपिणी हैं। उस शक्तिपीठमें उनकी तथा अपने इष्टदेवताकी पूजा करके भक्तिपूर्वक जो इष्ट मन्त्रका जप करता है, उसका मन्त्र सिद्ध हो जाता है॥ ४॥

जो रक्तवस्त्र धारण करनेवाली, तीन भयंकर नेत्रोंसे सुशोभित, चार भुजाओं और विकराल दन्तावली तथा प्रलयकालीन मेघोंकी आभासे सुशोभित हैं; जो मणिसिंहासनपर विराजमान हैं और सिंह, प्रेत तथा कमलपर आसीन हैं—ऐसी परमेश्वरी महाकालिका भगवती कामाख्याका ध्यान करनेवाले भक्तोंके लिये भगवतीका वाहन सिंह विष्णुस्वरूप, शव शिवस्वरूप तथा कमल ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। लपलपाती जिह्वावाली, अत्यन्त घोरस्वरूपिणी, स्वर्णकिरीटसे प्रकाशित, बहुमूल्य मणि-माणिक्यसे जटित उत्तम आभूषणोंसे अलंकृत तथा सृष्टि-पालन-संहार करनेवाली जगद्धात्री कामाख्याकी सदा उपासना करनी चाहिये॥ ५—८॥

वामे तारा भगवती दक्षिणे भुवनेश्वरी।
अग्नौ तु षोडशीविद्या नैर्ऋत्यां भैरवी स्वयम्॥ ९ ॥

वायव्यां छिन्नमस्ता च पृष्ठतो बगलामुखी।
ऐशान्यां सुन्दरी विद्या चोर्द्ध्वमातङ्गनायिका॥ १० ॥

याम्यां धूमावती विद्या महापीठस्य नारद।
अधस्ताद्भगवान्रुद्रो भस्माचलमयः स्वयम्॥ ११ ॥

ब्रह्मविष्णुमुखाश्चान्ये देवाः शक्तिसमन्विताः।
सदा संनिहितास्तत्र पीठे लोके सुदुर्लभे॥ १२ ॥

तत्र सम्पूजयेद्देवीं परिवारसमन्विताम्।
विविधैरुपचारैश्च यथाविभवविस्तरैः॥ १३ ॥

इच्छन्देव्याः परां प्रीतिं सद्भक्त्या प्रयतो नरः।
न पुनर्जननाशङ्का विद्यते मुनिसत्तम॥ १४॥

बिल्वपत्रं महादेव्यै यो दद्याद्भक्तिभावतः।
स साक्षाच्छङ्करो ज्ञेयः सर्वलोकेश्वरेश्वरः॥ १५ ॥

त्रिपत्रं बिल्वपत्रं तु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
यदात्मकमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ १६ ॥

तद्ददाति च यो देव्यै पूर्णायै मुनिसत्तम।
सम्पूर्णजगतो दानफलं सम्प्राप्नुयान्नरः॥ १७ ॥

सम्पूर्णकामो भूपृष्ठे विहरेन्मानवोत्तमः।
तस्य जन्म च सम्पूर्णं न पुनर्जायते क्वचित्॥ १८ ॥

तत्र यो भक्तिभावेन भस्माचलमयं शिवम्।
पूजयेद्भस्मलिप्ताङ्गो बिल्वपत्रैर्महामते।
स याति परमं मोक्षं भुक्त्वा भोगं मनोरथम्॥ १९ ॥

रुद्राक्षं बिभृयान्नित्यं शैवः शाक्तोऽथ वैष्णवः।
युक्तस्तेन महापुण्यं कृत्वा कर्म समश्नुते॥ २० ॥

नारद! इस महापीठके वामभागमें भगवती तारा, दक्षिणभागमें भुवनेश्वरी, अग्निकोणमें षोडशीविद्या, नैर्ऋत्यकोणमें स्वयं भैरवी, वायव्यकोणमें छिन्नमस्ता, पृष्ठभागमें बगलामुखी, ईशानकोणमें सुन्दरी विद्या, ऊर्ध्व भागमें मातङ्गनायिका तथा दक्षिणभागमें धूमावती विद्या प्रतिष्ठित हैं। नीचेके भागमें भस्माचलस्वरूप स्वयं भगवान् शंकर विराजमान हैं॥ ९—११॥

पितामह ब्रह्मा तथा भगवान् विष्णु और जो अन्य प्रमुख देवता हैं, वे सभी शक्तिसे समन्वित होकर भगवती कामाख्याके लोकदुर्लभ शक्तिपीठमें निरन्तर प्रतिष्ठित रहते हैं॥ १२॥ मुनिश्रेष्ठ! भगवतीको परम प्रसन्न करनेकी इच्छावाला जो जितेन्द्रिय व्यक्ति भक्तिपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार प्राप्त वैभवके अनुकूल विविध उपचारोंसे शक्तिपीठमें परिकरसहित भगवतीकी पूजा करता है, उसको पुनर्जन्मकी आशंका नहीं रहती॥ १३-१४॥ जो व्यक्ति भक्तिभावसे महादेवी भगवतीको बिल्वपत्र अर्पित करता है, उसे साक्षात् सर्वलोकेश्वरेश्वर शंकर ही जानना चाहिये॥ १५॥ तीन पत्तेवाला बिल्वपत्र ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक है। यह जड़-चेतनरूप समस्त संसार उससे व्याप्त है॥ १६॥

मुनिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति उस बिल्वपत्रको पूर्णा भगवती देवीको अर्पण करता है, उसे सम्पूर्ण संसारका दान करनेका फल प्राप्त होता है। वह उत्तम मनुष्य पूर्णकाम होकर पृथ्वीपर विचरण करता है। उसका यह जन्म कृतार्थ हो जाता है तथा कहीं पुनर्जन्म नहीं होता॥ १७-१८॥ महामते! भगवतीके उस शक्तिपीठमें शरीरमें भस्म लगाकर भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति भस्माचलस्वरूप भगवान् शंकरकी पूजा करता है, वह मनचाहा भोग प्राप्त कर परम मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ १९॥ शैव, शाक्त तथा वैष्णवको सर्वदा रुद्राक्ष धारण किये रहना चाहिये। रुद्राक्षसे युक्त होकर जो व्यक्ति कर्म करता है, वह महापुण्य प्राप्त करता है॥ २०॥

रुद्राक्षधारी सम्पूज्य रुद्रं संहारकारकम्।
रुद्रत्वं समवाप्नोति क्षेत्रेऽस्मिन्नात्र संशयः॥ २१॥

अमायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा दिनक्षये।
नवम्यां रजनीयोगे योजयेद्भैरवीमनुम्॥ २२॥

क्षेत्रेऽस्मिन्प्रयतो भूत्वा निर्भयः साहसं वहन्।
तस्य साक्षाद्भगवती प्रत्यक्षं जायते ध्रुवम्॥ २३॥

आत्मसंरक्षणार्थाय मन्त्रसंसिद्धयेऽपि च।
प्रपठेत्कवचं देव्यास्ततो भीतिर्न जायते॥ २४॥

तस्मात्पूर्वं विधायैवं रक्षां सावहितो नरः।
प्रजपेत्स्वेष्टमन्त्रस्तु निर्भीतो मुनिसत्तम॥ २५॥

नारद उवाच

कवचं कीदृशं देव्या महाभयनिवर्तकम्।
कामाख्यायास्तु तद्ब्रूहि साम्प्रतं मे महेश्वर॥ २६॥

श्रीमहादेव उवाच

शृणुष्व परमं गुह्यं महाभयनिवर्तकम्।
कामाख्यायाः सुरश्रेष्ठ कवचं सर्वमङ्गलम्॥ २७॥

यस्य स्मरणमात्रेण योगिनीडाकिनीगणाः।
राक्षस्यो विघ्नकारिण्यो याश्चान्या विघ्नकारिकाः॥ २८॥

क्षुत्पिपासा तथा निद्रा तथान्ये ये च विघ्नदाः।
दूरादपि पलायन्ते कवचस्य प्रसादतः॥ २९॥

निर्भयो जायते मर्त्यस्तेजस्वी भैरवोपमः।
समासक्तमनाश्चापि जपहोमादिकर्मसु।
भवेच्च मन्त्रतन्त्राणां निर्विघ्नेन सुसिद्धये॥ ३०॥

[कामाख्या-कवच]

ओं प्राच्यां रक्षतु मे तारा कामरूपनिवासिनी।
आग्नेय्यां षोडशी पातु याम्यां धूमावती स्वयम्॥ ३१॥

भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें रुद्राक्ष धारण किया हुआ व्यक्ति संहारकारक भगवान् रुद्रकी पूजाकर रुद्रत्वको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २१॥ भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें अमावास्या, चतुर्दशी, अष्टमी अथवा तिथिक्षय होनेपर या नवमी तिथिकी रात्रिमें भगवती भैरवीका साहसपूर्वक जो जितेन्द्रिय व्यक्ति निर्भय होकर मन्त्र जपता है, उसे निश्चित ही भगवतीका प्रत्यक्ष दर्शन होता है॥ २२-२३॥ आत्मसंरक्षा तथा मन्त्रसिद्धिके लिये जो व्यक्ति देवी भगवतीके कवचका पाठ करता है उस व्यक्तिको कभी भय नहीं होता॥ २४॥ मुनिश्रेष्ठ! इसलिये पूर्वमें मनुष्यको रक्षाविधान करके निर्भीक होकर सावधानीपूर्वक अपने इष्ट-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २५॥

नारदजी बोले—महेश्वर! महाभयको दूर करनेवाला भगवती कामाख्याका कवच कैसा है, वह अब हमें बतायें॥ २६॥

श्रीमहादेवजी बोले—सुरश्रेष्ठ! भगवती कामाख्याका परम गोपनीय, महाभयको दूर करनेवाला तथा सर्वमङ्गलदायक वह कवच सुनिये, जिसकी कृपा तथा स्मरणमात्रसे सभी योगिनी-डाकिनीगण, विघ्नकारी राक्षसियाँ तथा बाधा उत्पन्न करनेवाले अन्य उपद्रव, भूख, प्यास, निद्रा तथा अन्य विघ्नदायक दूरसे ही पलायन कर जाते हैं॥ २७—२९॥ [इस कवचके प्रभावसे] मनुष्य भयरहित, तेजस्वी तथा भैरवतुल्य हो जाता है। जप, होम आदि कर्मोंमें समासक्त मनवाले भक्तकी मन्त्र-तन्त्रोंमें सिद्धि निर्विघ्न हो जाती है॥ ३०॥

[कामाख्या-कवच]

कामरूपमें निवास करनेवाली भगवती तारा पूर्व दिशामें, षोडशीदेवी अग्निकोणमें तथा स्वयं धूमावती दक्षिण दिशामें रक्षा करें॥ ३१॥

नैर्ऋत्यां भैरवी पातु वारुण्यां भुवनेश्वरी।
वायव्यां सततं पातु छिन्नमस्ता महेश्वरी॥ ३२॥

कौबेर्यां पातु मे देवी श्रीविद्या बगलामुखी।
ऐशान्यां पातु मे नित्यं महात्रिपुरसुन्दरी॥ ३३॥

ऊर्ध्वं रक्षतु मे विद्या मातङ्गी पीठवासिनी।
सर्वतः पातु मे नित्यं कामाख्या कालिका स्वयम्॥ ३४॥

ब्रह्मरूपा महाविद्या सर्वविद्यामयी स्वयम्।
शीर्षे रक्षतु मे दुर्गा भालं श्रीभवगेहिनी॥ ३५॥

त्रिपुरा भ्रूयुगे पातु शर्वाणी पातु नासिकाम्।
चक्षुषी चण्डिका पातु श्रोत्रे नीलसरस्वती॥ ३६॥

मुखं सौम्यमुखी पातु ग्रीवां रक्षतु पार्वती।
जिह्वां रक्षतु मे देवी जिह्वाललनभीषणा॥ ३७॥

वाग्देवी वदनं पातु वक्षः पातु महेश्वरी।
बाहू महाभुजा पातु कराङ्गुलीः सुरेश्वरी॥ ३८॥

पृष्ठतः पातु भीमास्या कट्यां देवी दिगम्बरी।
उदरं पातु मे नित्यं महाविद्या महोदरी॥ ३९॥

उग्रतारा महादेवी जङ्घोरू परिरक्षतु।
गुदं मुष्कं च मेढ्रं च नाभिं च सुरसुन्दरी॥ ४०॥

पादाङ्गुलीः सदा पातु भवानी त्रिदशेश्वरी।
रक्तमांसास्थिमज्जादीन्पातु देवी शवासना॥ ४१॥

महाभयेषु घोरेषु महाभयनिवारिणी।
पातु देवी महामाया कामाख्यापीठवासिनी॥ ४२॥

भस्माचलगता दिव्यसिंहासनकृताश्रया।
पातु श्रीकालिकादेवी सर्वोत्पातेषु सर्वदा॥ ४३॥

नैर्ऋत्यकोणमें भैरवी, पश्चिम दिशामें भुवनेश्वरी और वायव्यकोणमें भगवती महेश्वरी छिन्नमस्ता निरन्तर मेरी रक्षा करें॥ ३२॥ उत्तर दिशामें श्रीविद्या देवी बगलामुखी तथा ईशानकोणमें महात्रिपुरसुन्दरी सदा मेरी रक्षा करें॥ ३३॥ भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें निवास करनेवाली मातङ्गी विद्या ऊर्ध्वभागमें और भगवती कालिका कामाख्या स्वयं सर्वत्र मेरी नित्य रक्षा करें॥ ३४॥ ब्रह्मरूपा महाविद्या सर्वविद्यामयी स्वयं दुर्गा सिरकी रक्षा करें और भगवती श्रीभवगेहिनी मेरे ललाटकी रक्षा करें॥ ३५॥ त्रिपुरा दोनों भौंहोंकी, शर्वाणी नासिकाकी, देवी चण्डिका आँखोंकी तथा नीलसरस्वती दोनों कानोंकी रक्षा करें॥ ३६॥

भगवती सौम्यमुखी मुखकी, देवी पार्वती ग्रीवाकी और जिह्वाललनभीषणा देवी मेरी जिह्वाकी रक्षा करें॥ ३७॥ वाग्देवी वदनकी, भगवती महेश्वरी वक्षःस्थलकी, महाभुजा दोनों बाहुकी तथा सुरेश्वरी हाथकी अङ्गुलियोंकी रक्षा करें॥ ३८॥ भीमास्या पृष्ठभागकी, भगवती दिगम्बरी कटिप्रदेशकी और महाविद्या महोदरी सर्वदा मेरे उदरकी रक्षा करें॥ ३९॥ महादेवी उग्रतारा जङ्घा और ऊरुओंकी एवं सुरसुन्दरी गुदा, अण्डकोश, लिङ्ग तथा नाभिकी रक्षा करें॥ ४०॥ भवानी त्रिदशेश्वरी सदा पैरकी अङ्गुलियोंकी रक्षा करें और देवी शवासना रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा आदिकी रक्षा करें॥ ४१॥ भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें निवास करनेवाली, महाभयका निवारण करनेवाली देवी महामाया भयंकर महाभयसे रक्षा करें॥ ४२॥ भस्माचलपर स्थित दिव्य सिंहासनपर विराजमान रहनेवाली श्रीकालिकादेवी सदा सभी प्रकारके विघ्नोंसे रक्षा करें॥ ४३॥

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं कवचेनापि वर्जितम्।
तत्सर्वं सर्वदा पातु सर्वरक्षणकारिणी॥ ४४॥

जो स्थान कवचमें नहीं कहा गया है, अतएव रक्षासे रहित है उन सबकी रक्षा सर्वदा भगवती सर्वरक्षणकारिणी करें॥ ४४॥

इदं तु परमं गुह्यं कवचं मुनिसत्तम।
कामाख्याया मयोक्तं ते सर्वरक्षाकरं परम्॥ ४५॥

मुनिश्रेष्ठ! मेरे द्वारा आपसे कहा गया सभी प्रकारकी रक्षा करनेवाला भगवती कामाख्याका जो यह उत्तम कवच है, वह अत्यन्त गोपनीय एवं श्रेष्ठ है॥ ४५॥

अनेन कृत्वा रक्षां तु निर्भयः साधको भवेत्।
न तं स्पृशेद्भयं घोरं मन्त्रसिद्धिविरोधकम्॥ ४६॥

इस कवचसे रक्षित होकर साधक निर्भय हो जाता है। मन्त्रसिद्धिका विरोध करनेवाले भयंकर भय उसका कभी स्पर्शतक नहीं करते हैं॥ ४६॥

जायते च मनःसिद्धिर्निर्विघ्नेन महामते।
इदं यो धारयेत्कण्ठे बाहौ वा कवचं महत्॥ ४७॥

महामते! जो व्यक्ति इस महान् कवचको कण्ठमें अथवा बाहुमें धारण करता है, उसे निर्विघ्न मनोवाञ्छित सिद्धि मिलती है॥ ४७॥

अव्याहताज्ञः स भवेत्सर्वविद्याविशारदः।
सर्वत्र लभते सौख्यं मङ्गलं तु दिने दिने॥ ४८॥

वह अमोघ आज्ञावाला होकर सभी विद्याओंमें प्रवीण हो जाता है तथा सभी जगह दिनानुदिन मङ्गल और सुख प्राप्त करता है॥ ४८॥

यः पठेत्प्रयतो भूत्वा कवचं चेदमद्भुतम्।
स देव्याः पदवीं याति सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४९॥

जो जितेन्द्रिय व्यक्ति इस अद्भुत कवचका पाठ करता है, वह भगवतीके दिव्य धामको जाता है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ४९॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे श्रीमहाकामाख्याकवचवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥

॥ इस प्रकार महाभागवत महापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'श्रीमहाकामाख्याकवचवर्णन' नामक सतहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

कामाख्यादेवी तथा सदाशिव भगवान् शंकरकी उपासनाका विशेष महत्त्व, बिल्वपत्र तथा बिल्ववृक्षकी महिमा एवं कामाख्यापीठका माहात्म्य

श्रीमहादेव उवाच

वैशाखस्य तृतीयायां तत्र सम्पूज्य चण्डिकाम्।
यो जपेत्परमं मन्त्रं तस्य कोटिगुणोत्तरम्॥ १॥
जायते सुमहत्पुण्यं न पुनर्जन्म विद्यते।

श्रीमहादेवजी बोले—वहाँ [भगवती कामाख्याके शक्तिपीठमें] जो व्यक्ति वैशाखकी तृतीया तिथिको भगवती चण्डिकाकी पूजा करके उनके श्रेष्ठ मन्त्रका जप करता है उसको करोड़ों गुणा अधिक पुण्य प्राप्त होता है तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ १-१½॥

शिवरात्रिचतुर्दश्यां रात्रौ सम्पूज्य शङ्करम्॥ २ ॥

सर्वतीर्थमये तस्मिन्क्षेत्रे देवादिदुर्लभे।
उपोष्य नियतो भूत्वा प्रहरे प्रहरे नरः॥ ३ ॥

पूजयेत्परया भक्त्या मां सदा तत्र संस्थितः।
प्राप्नोति स महापुण्यं वाजिमेधशतोद्भवम्॥ ४ ॥

अन्यच्च यन्महापुण्यं स्नानदानादिसम्भवम्।
काश्यां तत्र दिने चापि पूजने यत्फलं तथा॥ ५ ॥

गवां कोटिसहस्राणां कुरुक्षेत्रे प्रदानतः।
यत्फलं जायते तस्मादधिकं मुनिसत्तम॥ ६ ॥

एकं मे बिल्वपत्रं यः प्रदद्याद्भक्तिभावतः।
स याति परमां मुक्तिं सत्यं सत्यं न संशयः॥ ७ ॥

स्वर्णपुष्पसहस्रैश्च मणिमाणिक्यसंचयैः।
अनर्घ्यरत्नैरभ्यर्चा न तथा प्रीतिकारिका॥ ८ ॥

यथा प्रीतिकरं बिल्वपत्रं मम महामुने।
बिल्वमूले प्रपूज्याथ शङ्करं लोकशङ्करम्॥ ९ ॥

सुरश्रेष्ठत्वमाप्नोति न ततो विच्युतिर्भवेत्।
बिल्वमूले वसेत्तीर्थं सर्वश्रेष्ठतमं परम्।
तत्र सम्पूजनं शम्भोर्महापातकनाशनम्॥ १० ॥

ब्रह्मरूपी स्वयं रुद्रः सर्वलोकहिताय वै।
पृथिव्यां संस्थितः साक्षात्सर्वलोकेश्वरेश्वरः॥ ११ ॥

अतः पुण्यतमं स्थानं महापातकनाशनम्।
बिल्वमूलं मुनिश्रेष्ठ सर्वतीर्थान्महत्तरम्॥ १२ ॥

चतुर्दशी तिथिको शिवरात्रिके दिन रात्रिमें मुझ शंकरकी पूजा करके देवताओंके लिये भी दुर्लभ सर्वतीर्थस्वरूप भगवती कामाख्याके उस शक्तिपीठमें उपवास करके सावधान होकर मनुष्योंको प्रत्येक प्रहरमें सदा वहाँ स्थित रहकर परम भक्तिपूर्वक [देवीकी] पूजा करनी चाहिये [ऐसा करनेसे] वह सैकड़ों अश्वमेधयज्ञ करनेके समान महापुण्य प्राप्त करता है और काशीमें स्नान-दानादि-जन्य जो फल प्राप्त होता है, वह कामाख्यापीठमें शिवरात्रिके पूजनसे प्राप्त हो जाता है॥ २—५॥ मुनिश्रेष्ठ! कुरुक्षेत्रमें करोड़ों गायोंका दान करनेसे जो फल होता है, उससे अधिक फल उसे प्राप्त हो जाता है॥ ६॥ भक्तिपूर्वक जो व्यक्ति मुझे एक बिल्वपत्र प्रदान करता है, वह उत्तम मुक्तिको प्राप्त करता है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ७॥

महामुने! हजारों स्वर्ण-पुष्पोंके अर्पण करनेसे, मणिमाणिक्यके समूहोंका अर्पण करनेसे तथा मूल्यवान् रत्नोंके द्वारा पूजा करनेसे मुझे वैसी प्रसन्नता नहीं होती जैसी बिल्वपत्र चढ़ानेसे होती है। बिल्ववृक्षके नीचे लोककल्याणकारी भगवान् शंकरकी पूजा करके मनुष्य श्रेष्ठ सुरत्व प्राप्त करता है और उससे उसका वियोग नहीं होता॥ ८-९½॥ बिल्ववृक्षके मूलमें उत्तमोत्तम तीर्थोंका वास होता है। वहाँ भगवान् शंकरकी पूजा करनेसे महापातकका नाश होता है॥ १०॥ सभी लोकोंके कल्याणके लिये सर्वलोकेश्वरेश्वर ब्रह्मरूप साक्षात् रुद्र [बिल्व-वृक्षके रूपमें] पृथ्वीपर प्रतिष्ठित हैं॥ ११॥

मुनिश्रेष्ठ! इसलिये बिल्ववृक्षका मूल महापातकका नाश करनेवाला तथा सभी तीर्थोंसे उत्तम है॥ १२॥

गङ्गा काशी गयातीर्थं प्रयागश्च महामते।
कुरुक्षेत्रं च यमुना तथैव च सरस्वती॥ १३॥

गोदावरी नर्मदा च तथान्यत्तीर्थमुत्तमम्।
सदा सन्निहितं ज्ञेयं बिल्वमूलेषु नारद॥ १४॥

तत्र यत्क्रियते कर्म दैवं पैत्रं विधानतः।
तदक्षयतमं ज्ञेयं कोटिजन्मसु निश्चितम्॥ १५॥

यस्तु बिल्वतरोर्मूले देहं त्यजति मानवः।
स याति परमं सौख्यं पदं ब्रह्मादिदुर्लभम्॥ १६॥

एवं पुण्यतमो यस्माद्बिल्ववृक्षः परात्परः।
शम्भोः प्रीतिकरो नित्यं तस्मात्तस्य त्रिपत्रिकैः॥ १७॥

पूजयित्वा महेशानं मुच्यते भवबन्धनात्।
फलं तस्य तथा शम्भोः परमाह्लाददायकम्॥ १८॥

दत्त्वा तस्मै नरः सद्यो महापुण्यं समश्नुते।
अन्यत्र यत्र कुत्रापि बिल्वपत्रादिकं मुने॥ १९॥

महाप्रीतिकरं ज्ञेयं कामरूपे विशेषतः।
अन्यत्ते किं मुने वक्ष्ये कामाख्यातीर्थतः क्वचित्॥ २०॥

नापरं विद्यते स्थानं महापुण्यफलप्रदम्।
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां सर्वतीर्थमये शुभे॥ २१॥

लौहित्ये विधिवत्स्नात्वा तत्तोयैर्जगदम्बिकाम्।
पूजयेत्तत्र यो भक्त्या स मुक्तो भवबन्धनात्॥ २२॥

सर्वतीर्थमयं स्थानं सर्वतीर्थाधिकं परम्।
योनिपीठं महादेव्याः सर्वदेवसुदुर्लभम्॥ २३॥

महामते नारद! गङ्गा, काशी, गयातीर्थ, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा तथा अन्य उत्तम तीर्थ सदा बिल्ववृक्षके मूलमें सन्निहित रहते हैं—ऐसा जानना चाहिये। वहाँ जो देव तथा पितृकर्म विधानपूर्वक किया जाता है, वह निश्चित ही करोड़ों जन्मोंतक अक्षय रहता है, ऐसा जानना चाहिये॥ १३—१५॥

जो मनुष्य बिल्ववृक्षके नीचे देह-त्याग करता है, वह परम आनन्द तथा ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी दुर्लभ पद प्राप्त करता है॥ १६॥ यह बिल्ववृक्ष पुण्यतम, श्रेष्ठतम तथा भगवान् शंकरके लिये सदा प्रीतिकारक है, इसलिये तीन पत्तोंवाले बिल्वपत्रसे भगवान् शंकरकी पूजा करके मनुष्य संसारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। बिल्व-फल भगवान् शंकरके लिये परम आनन्ददायक है जिसे समर्पित कर मनुष्य सद्यः महापुण्य प्राप्त कर लेता है॥ १७-१८½॥

मुने! बिल्वके पत्र तथा फल अन्यत्र जहाँ-कहीं भी [भगवान् शिवके लिये] महाप्रीतिकारक होते हैं, किंतु पुण्यक्षेत्र कामरूपमें इन्हें विशेष रूपसे [प्रीतिदायक] जानना चाहिये॥ १९½॥ मुने! आपसे अन्य क्या कहूँ। भगवती कामाख्याके शक्तिपीठसे बढ़कर महापुण्य फलप्रदायक कहीं कोई दूसरा स्थान नहीं है॥ २०॥ चैत्रमासके शुक्लपक्षमें अष्टमीतिथिके दिन सर्वतीर्थमय शुभ लौहित्य [ब्रह्मपुत्र नद]-में विधिवत् स्नान करके उसके जलसे जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक जगदम्बिका कामाख्यादेवीकी पूजा करता है, वह संसारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥ २१-२२॥

महादेवीका योनिपीठ सर्वतीर्थस्वरूप, सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ तथा सभी देवताओंके लिये भी दुर्लभ स्थान है॥ २३॥

सर्वदेवमयी पूर्णा यत्र पूज्यतमा स्वयम्।
सर्वतीर्थमयं पुण्यं लौहित्यं च सुदुर्लभम्॥ २४॥

अष्टमी च महापुण्या तिथिः परमदुर्लभा।
एतेषां संगतिर्यस्य बहुपुण्यवशेन वै।
तस्य भूयः क्षितौ जन्मशङ्कैव हि न विद्यते॥ २५॥

तत्र यस्तर्पयेद्भक्त्या पितॄन् लौहित्यवारिणा।
तस्य ते पितरो यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥ २६॥

अन्यच्चापि तपो दानं तत्र पुण्यफलप्रदम्।
अन्यतीर्थसहस्रेभ्यो ह्यधिकं मुनिसत्तम॥ २७॥

यथा पूज्यतमा लोके भवानी भवसुन्दरी।
पत्रेषु तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च शोभनम्॥ २८॥

यथा मायाविनां श्रेष्ठः पुरुषः स गदाधरः।
तथा तीर्थेषु सर्वेषु श्रेष्ठं श्रीयोनिपीठकम्॥ २९॥

य इदं तीर्थराजस्य योनिपीठस्य नारद।
माहात्म्यं शृणुयान्मर्त्यः स देव्याः पदवीमियात्॥ ३०॥

इत्युक्तं तीर्थराजस्य योनिपीठस्य नारद।
माहात्म्यं परमं गुह्यं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥ ३१॥

सर्वदेवमयी भगवती पूर्णा जहाँ साक्षात् पूज्यतमा हैं, सर्वतीर्थमय ब्रह्मपुत्र नद भी पुण्यप्रद और दुर्लभ है, महापुण्यदायी अष्टमीतिथि भी परम दुर्लभ है—इन तीनोंका योग बहुत पुण्यसंचयसे जिसे मिलता है, उसके पृथ्वीपर पुनः जन्मकी आशंका ही नहीं रहती॥ २४-२५॥ भगवती कामाख्याके उस शक्तिपीठमें जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक ब्रह्मपुत्र नदके जलसे अपने पितरोंका तर्पण करता है, उसके सभी पितर निर्विकार ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं॥ २६॥ मुनिश्रेष्ठ! वहाँ किये गये अन्य तप तथा दान भी पुण्यफलदायी हैं, जो अन्य हजारों तीर्थोंमें किये उन कार्योंसे अधिक पुण्यफल प्रदान करनेवाले होते हैं॥ २७॥ इस संसारमें जिस प्रकार शिवप्रिया भगवती भवानी पूज्यतमा हैं, पत्तोंमें तुलसीपत्र और बिल्वपत्र श्रेष्ठ हैं, जैसे लीलाधारियोंमें गदाधर भगवान् विष्णु श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी तीर्थोंमें कामाख्याका श्रीयोनिपीठ श्रेष्ठ है॥ २८-२९॥ नारद! जो व्यक्ति योनिपीठ तीर्थराजके इस माहात्म्यको सुनता है, वह देवीके परम पदको प्राप्त कर लेता है॥ ३०॥ नारद! इस प्रकार मैंने योनिपीठ तीर्थराजके अत्यन्त गोपनीय माहात्म्यको बताया। पुनः आप क्या सुनना चाहते हैं॥ ३१॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे योनिपीठमाहात्म्यवर्णनेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'योनिपीठ-माहात्म्यवर्णन' नामक अठहत्तरवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७८॥

उन्यासीवाँ अध्याय

तुलसी, बिल्व और आँवलावृक्षका माहात्म्य

श्रीनारद उवाच

श्रुतं भवन्मुखाम्भोजान्माहात्म्यं परमेश्वर।
योनिपीठस्य तीर्थस्य महापातकनाशनम्॥ १ ॥

तत्र त्वयोक्तं संक्षेपाद्बिल्वपत्रस्य चेश्वर।
अनुत्तमं महापुण्यं माहात्म्यं तच्च संश्रुतम्॥ २ ॥

साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि तुलस्याः परमाद्भुतम्।
माहात्म्यमथ संक्षेपाद्रुद्राक्षस्य शिवस्य वै।
पूजायाश्च महादेव संक्षेपादनुशाधि मे॥ ३ ॥

श्रीमहादेव उवाच

तुलस्याः शृणु माहात्म्यं संक्षेपेण महामते।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ४ ॥

तुलसीद्रुमरूपस्तु भगवान्पुरुषोत्तमः।
सर्वलोकपरित्राता विश्वात्मा विश्वपालकः॥ ५ ॥

दर्शनात्स्पर्शनान्नामकीर्तनाद्धारणादपि।
प्रदानात्पापसंहर्त्री नराणां तुलसी सदा॥ ६ ॥

प्रातरुत्थाय सुस्नातो यः पश्येत्तुलसीद्रुमम्।
स सर्वतीर्थसंसृष्टिफलमाप्नोत्यसंशयम्॥ ७ ॥

दृष्ट्वा गदाधरं देवं क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे।
यत्पुण्यं समवाप्नोति तुलसीदर्शनाच्च तत्॥ ८ ॥

दिनं तच्च शुभं प्रोक्तं तुलसी यत्र दृश्यते।
न तत्र जायते तस्य विपत्तिः कुत्रचिन्मुने॥ ९ ॥

अपि जन्मान्तरकृतं पापमत्यन्तगर्हितम्।
विनश्यति मुनिश्रेष्ठ तुलसीवृक्षदर्शनात्॥ १०॥

श्रीनारदजी बोले—परमेश्वर! महान् पातकोंका नाश करनेवाले योनिपीठतीर्थका माहात्म्य आपके मुखकमलसे मैंने सुना। ईश्वर! आपने जो सर्वश्रेष्ठ, महापुण्यदायक बिल्वपत्रका माहात्म्य संक्षेपमें वहाँपर बताया; वह भी मैंने सुना। अब मैं तुलसीपत्रका परम अद्भुत माहात्म्य सुनना चाहता हूँ तथा महादेव! संक्षेपमें रुद्राक्ष और भगवान् शिवकी पूजाके विषयमें भी संक्षेपमें मुझे उपदेश दें॥ १—३॥

श्रीमहादेवजी बोले—महामते! तुलसीका माहात्म्य संक्षेपमें सुनिये, जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४॥ सभी लोगोंके रक्षक, विश्वात्मा, विश्वपालक भगवान् पुरुषोत्तम ही तुलसीवृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ ५॥ दर्शन, स्पर्श, नाम-संकीर्तन, धारण तथा प्रदान करनेसे भी तुलसी मनुष्योंके सभी पापोंका सर्वदा नाश करती हैं॥ ६॥ प्रातः उठकर स्नान करके जो व्यक्ति तुलसीवृक्षका दर्शन करता है, उसे सभी तीर्थोंके संसर्गका फल निःसंदेह प्राप्त हो जाता है॥ ७॥ श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रमें भगवान् गदाधरके दर्शन करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही तुलसीवृक्षके दर्शन करनेसे प्राप्त होता है॥ ८॥ मुने! वही दिन शुभ कहा गया है, जिस दिन तुलसीवृक्षका दर्शन होता है और तुलसीवृक्षका दर्शन करनेवाले व्यक्तिको कहींसे भी विपत्ति नहीं आती॥ ९॥ मुनिश्रेष्ठ! जन्म-जन्मान्तरका किया अत्यन्त निन्दित पाप भी तुलसीवृक्षके दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाता है॥ १०॥

अशुचिर्वा शुचिर्वापि यः स्पृशेत्तुलसीदलम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तस्तत्क्षणाच्छुद्धतामियात् ॥ ११ ॥

प्रयाति च पदं विष्णोरन्ते देवसुदुर्लभम्।
तुलसीस्पर्शनं मुक्तिस्तुलसीस्पर्शनं व्रतम्॥ १२ ॥

प्रदक्षिणीकृता येन तुलसी मुनिसत्तम।
कृतः प्रदक्षिणस्तेन विष्णुः साक्षान्न संशयः ॥ १३ ॥



तुलसीं प्रणमेद्यस्तु भक्त्या मानवसत्तमः।
स याति विष्णुसायुज्यं न पुनः प्रपतेत्क्षितौ ॥ १४ ॥

तुलसीकाननं यत्र तत्र साक्षाज्जनार्दनः।
लक्ष्मीसरस्वतीयुक्तो मोदते मुनिसत्तम॥ १५ ॥

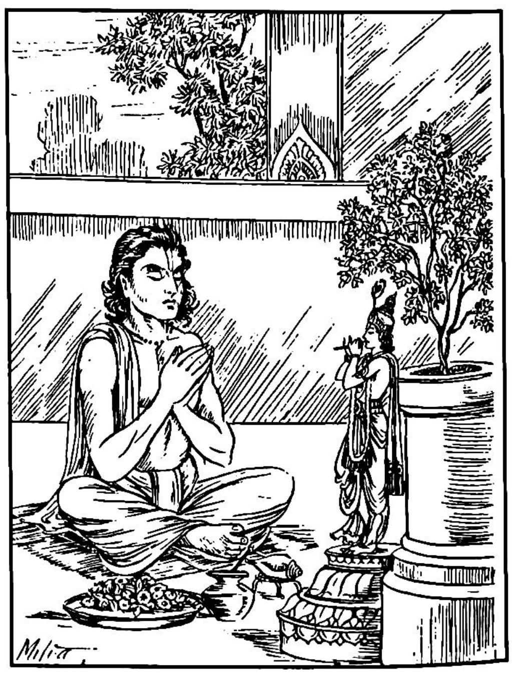
यत्र विष्णुर्जगन्नाथः सर्वदेवमयः प्रभुः।
तत्राहं सह रुद्राक्षैः सावित्र्या च प्रजापतिः ॥ १६ ॥

तस्मात्तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्।
यो गच्छेत्स व्रजेद्विष्णोर्वैकुण्ठनगरं मुने॥ १७ ॥

स्नात्वा प्रमार्जयेद्यस्तु तत्क्षेत्रं पापनाशनम्।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ १८ ॥

पवित्र अथवा अपवित्र स्थितिमें जो व्यक्ति तुलसीपत्रका स्पर्श कर लेता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर उसी क्षण शुद्ध हो जाता है तथा अन्तमें देवोंके लिये भी दुर्लभ विष्णुपदको प्राप्त करता है। तुलसीका स्पर्श करना ही मुक्ति है और वही परम व्रत है॥ ११-१२ ॥

मुनिश्रेष्ठ! जिस व्यक्तिने तुलसीवृक्षकी प्रदक्षिणा कर ली, उसने साक्षात् भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा कर ली, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ १३॥ जो मानवश्रेष्ठ भक्तिपूर्वक तुलसीको प्रणाम करता है, वह भगवान् विष्णुके सायुज्यको प्राप्त करता है और पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता॥ १४॥ मुनिश्रेष्ठ! जहाँ तुलसी-कानन है, वहाँ लक्ष्मी और सरस्वतीके साथ साक्षात् भगवान् जनार्दन प्रसन्नतापूर्वक विराजमान रहते हैं॥ १५ ॥ जहाँ सर्वदेवमय जगन्नाथ भगवान् विष्णु रहते हैं, वहीं रुद्राक्षके सहित मैं तथा पितामह ब्रह्मा सावित्रीके साथ रहते हैं। मुने! इसलिये वह उत्तम स्थान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, उस [तुलसीके] श्रेष्ठ स्थानमें जो जाता है, वह भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधामको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति स्नान करके उस पापनाशक क्षेत्रका मार्जन करता है, वह भी पापसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें जाता है॥ १६—१८ ॥



य: कुर्यात्तुलसीमूलमृदा तिलकमुत्तमम्।
कपाले कण्ठदेशे च कर्णे करकुचद्वये॥ १९॥
ब्रह्मरन्ध्रे तथा पृष्ठे पार्श्वयोर्नाभिदेशके।
स पुण्यात्मा मुनिश्रेष्ठ विज्ञेयो वैष्णवोत्तमः॥ २०॥

तुलसीपुष्पवृन्तेन पूजयेद्यो जनार्दनम्।
सोऽप्युक्तो वैष्णवश्रेष्ठः सर्वपापविवर्जितः॥ २१॥

वैशाखे कार्तिके माघे प्रातः स्नात्वा विधानतः।
यो ददाति सुरेशाय विष्णवे परमात्मने॥ २२॥
तुलसीपत्रकं तस्य फलं बहुगुणं स्मृतम्।
गवामयुतदानस्य वाजपेयशतस्य च॥ २३॥

यत्फलं समवाप्नोति कार्तिके पूजनाद्धरेः।
तुलसीपत्रकैस्तद्वत्तुलसीपुष्पकैरपि ॥ २४॥

तुलसीकानने यस्तु जगन्नाथं समर्चयेत्।
महाक्षेत्रकृतायाः स पूजायाः फलमाप्नुयात्॥ २५॥

तुलस्या रहितं नैव कर्म कुर्याद्विचक्षणः।
कुर्वन्न कर्मणस्तस्य सम्यक्फलमवाप्नुयात्॥ २६॥

तुलस्या रहिता संध्या कालातीतेव निष्फला॥ २७॥

तुलसीवृन्दमध्ये तु निर्माय हरिमन्दिरम्।
तृणैर्वेष्टकवृन्दैर्वा तत्र यः स्थापयेद्धरिम्।
नियतं सेवनासक्तः स हरेः समतामियात्॥ २८॥

यस्तु तत्तुलसीवृक्षं विष्णुरूपं विभाव्य च।
त्रिविधं प्रणमेन्मर्त्यः स विष्णोः समतां व्रजेत्॥ २९॥

मुनिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति तुलसीवृक्षके मूलकी मिट्टीसे ललाट, कण्ठ, दोनों कान, दोनों हाथ, स्तन, मस्तक, पीठ, दोनों बगल तथा नाभिपर उत्तम तिलक लगाता है, उस पुण्यात्माको श्रेष्ठ वैष्णव समझना चाहिये॥ १९-२०॥

जो व्यक्ति तुलसीमञ्जरीसे भगवान् विष्णुका पूजन करता है, उसे भी सभी पापोंसे रहित श्रेष्ठ वैष्णव कहा गया है॥ २१॥

जो व्यक्ति वैशाख, कार्तिक तथा माघमासमें प्रातःकाल स्नानकर परमात्मा सुरेश्वर भगवान् विष्णुको विधि-विधानसे तुलसीपत्र अर्पित करता है, उसका पुण्यफल अनन्त कहा गया है॥ २२½॥ दस हजार गायें दान करने तथा सैकड़ों वाजपेययज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल कार्तिकमासमें तुलसीके पत्तों तथा तुलसी-मञ्जरीसे भगवान् विष्णुका पूजन करनेसे प्राप्त होता है॥ २३-२४॥ जो तुलसी-काननमें भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह महाक्षेत्र [भगवती कामाख्याके शक्तिपीठ]-में की गयी पूजाका फल प्राप्त करता है॥ २५॥ बुद्धिमान् व्यक्तिको तुलसीपत्ररहित कोई पुण्यकार्य नहीं करना चाहिये। यदि कोई करता है तो उस कर्मका सम्पूर्ण फल उसे नहीं प्राप्त होता। तुलसीपत्रसे रहित संध्या-वन्दन कालातीत संध्याकी तरह निष्फल हो जाता है॥ २६-२७॥ तुलसी-काननके मध्यमें तृणों अथवा वल्कलवृन्दोंसे भी भगवान् विष्णुके मन्दिरका निर्माण कर जो उसमें भगवान् विष्णुको स्थापित करता है तथा उनकी भक्तिमें निरन्तर लगा रहता है; वह भगवान् विष्णुके साम्य (सारूप्यमुक्ति)-को प्राप्त करता है॥ २८॥ जो व्यक्ति तुलसीवृक्षको भगवान् विष्णुके रूपमें समझकर तीन प्रकार* (शरीर, मन और वाणी)-से उन्हें प्रणाम करता है, वह भगवान् विष्णुके साम्य (सारूप्यमुक्ति)-को प्राप्त करता है॥ २९॥

* तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्। हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

जो पुरुष क्षण-क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे आपकी कृपाका ही भलीभाँति अनुभव करता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है, एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित करता रहता है—इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परम पदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र! (श्रीमद्भागवत १०।१४।८)

नमस्ते देवदेवेश सुरासुरजगद्गुरो।
त्राहि मां घोरसंसारान्नमस्तेऽस्तु तवानघ॥ ३०॥

यस्तु श्रीतुलसीं मर्त्यः प्रणमेत्तारिणीं धिया।
त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य सप्तधा वा महामते।
मन्त्रेणानेन सद्भक्त्या स तरेद्घोरसंकटम्॥ ३१॥

त्रैलोक्यनिस्तारपरायणे शिवे
यथैव गङ्गा सरितां वरा स्वयम्।
तथैव लोकत्रयपावनार्थं
द्रुमेषु साक्षात्तुलसीस्वरूपिणी॥ ३२॥

त्वं ब्रह्मविष्णुप्रमुखैः सुरोत्तमैः
पुराऽर्चिता विश्वपवित्रहेतवे।
जाता धरण्यां जगदेकवन्द्ये
नमामि भक्त्या तुलसि प्रसीद॥ ३३॥

एवं यः प्रणमत्येनां प्रत्यहं मुनिसत्तम।
तस्य सर्वार्थदा देवी यत्र कुत्रापि तिष्ठतः॥ ३४॥

तुलसी सर्वदेवानां परमा प्रीतिवर्धिनी॥ ३५॥

सर्वदेवाधिसंस्थानं यत्रास्ते तुलसीवनम्।
पितरः परया प्रीत्या वसन्ति तुलसीवने॥ ३६॥

अवश्यं तुलसी देया पितृदेवार्चनादिषु।
अदत्त्वा मनुजैः सम्यङ् न कर्मफलमाप्यते॥ ३७॥

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य पितॄणां च विशेषतः।
सर्वेषामेव देवानां देवीनां च महामते॥ ३८॥

परमप्रीतिदा ज्ञेया तुलसी लोकमुक्तिदा।
तस्माद्धि तुलसी देया दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ ३९॥

सुरासुरजगद्गुरो! देवदेवेश! आपको नमस्कार है। अनघ! इस भयावह संसारसे मेरी रक्षा कीजिये, आपको नमस्कार है॥ ३०॥

महामते! जो व्यक्ति बुद्धिपूर्वक तीन बार अथवा सात बार प्रदक्षिणा करके संसारसे उद्धार करनेवाली भगवती तुलसीको इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है वह घोर संकटसे मुक्त हो जाता है॥ ३१॥ तीनों लोकोंके उद्धारमें तत्पर शिवे! जिस तरह साक्षात् गङ्गा सभी नदियोंमें श्रेष्ठ हैं, उसी तरह तीनों लोकोंको पवित्र करनेके लिये वृक्षोंमें साक्षात् तुलसीस्वरूपिणी (आप) श्रेष्ठ हैं॥ ३२॥

तुलसी! आप ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवताओंके द्वारा पूर्वमें पूजित हुई हैं, आप विश्वको पवित्र करनेके हेतु पृथ्वीपर उत्पन्न हुई हैं, विश्वकी एकमात्र वन्दनीया आपको मैं नमस्कार करता हूँ, आप प्रसन्न हों॥ ३३॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार जो व्यक्ति तुलसीको प्रतिदिन प्रणाम करता है, वह जहाँ-कहीं भी स्थित है, भगवती तुलसी उसकी सभी कामनाओंको पूर्ण करती हैं। भगवती तुलसी सभी देवताओंकी परम प्रसन्नताको बढ़ानेवाली हैं॥ ३४-३५॥

जहाँ तुलसीवन होता है वहाँ देवताओंका वास होता है और पितृगण परम प्रीतिपूर्वक तुलसीवनमें निवास करते हैं॥ ३६॥ पितृ-देवार्चन आदि कार्योंमें तुलसीपत्र अवश्य प्रदान करना चाहिये। इन कार्योंमें तुलसीपत्र न देनेपर मनुष्य उस कर्मका सम्यक् फल प्राप्त नहीं करते॥ ३७॥ महामते! लोकमुक्तिदा भगवती तुलसीको त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु, सभी देवी-देवताओं और विशेषरूपसे पितृगणोंके लिये परम प्रसन्नता देनेवाली समझना चाहिये। इसलिये देव तथा पितृकार्योंमें तुलसी-पत्र अवश्य समर्पित करना चाहिये॥ ३८-३९॥

यत्रास्ते तुलसीवृक्षस्तत्र भागीरथी स्वयम्।
तीर्थैः समस्तैः सहिता वसतिं कुरुते सदा॥ ४०॥

तस्मात्तत्र मुनिश्रेष्ठ देहं संत्यजतां नृणाम्।
गङ्गायां मरणे यादृक् फलं स्यात्तादृगेव हि॥ ४१॥

धात्रीवृक्षश्च चेत्तत्र वर्तते बहुभाग्यतः।
तदधिकतरं ज्ञेयं स्थलं तद्बहुपुण्यदम्॥ ४२॥

तत्र देहभृतां देहपरित्यागान्महामते।
अज्ञानतोऽपि मुक्तिः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः॥ ४३॥

एतयोः सन्निधौ यत्र बिल्ववृक्षोऽपि विद्यते।
तत्स्थानं हि महातीर्थं साक्षाद्वाराणसीसमम्॥ ४४॥

तत्र सम्पूजनं शम्भोर्देव्या विष्णोश्च भावतः।
बहुपुण्यप्रदं ज्ञेयं महापातकनाशनम्॥ ४५॥

तत्रैकं बिल्वपत्रं यो महेशाय निवेदयेत्।
स साक्षात्परमेशस्य पदवीं समवाप्नुयात्॥ ४६॥

तथा विष्णुं च सम्पूज्य तुलस्यामलकीदलैः।
प्रयाति विष्णोः सायुज्यं सत्यमेव महामते॥ ४७॥

तत्रैकं बिल्वपत्रं यो महेशायाथ विष्णवे।
देव्यै वा प्रददातीह सोऽपि पापाद्विमुच्यते॥ ४८॥

तत्र प्राणान् परित्यज्य मोक्षं प्राप्नोति मानवः।
न पुनर्जन्म चाप्नोति तत्क्षेत्रस्य प्रभावतः॥ ४९॥

इत्युक्तं ते मुनिश्रेष्ठ माहात्म्यं वै समासतः।
य इदं शृणुयान्मर्त्यः सोऽपि स्वर्गमवाप्नुयात्॥ ५०॥

जहाँ तुलसीवृक्ष स्थित है, वहाँ सभी तीर्थोंके साथ साक्षात् भगवती गङ्गा सदा निवास करती हैं। मुनिश्रेष्ठ! इसलिये तुलसीवृक्षके निकट देहत्याग करनेवाले मनुष्योंको वही फल प्राप्त होता है, जो गङ्गामें देहत्याग करनेका होता है॥ ४०-४१॥ यदि अत्यन्त भाग्यवशात् आँवलेका वृक्ष भी वहाँपर स्थित हो तो वह स्थान बहुत अधिक पुण्य प्रदान करनेवाला समझना चाहिये। महामते! देहधारियोंका यदि उस स्थलपर अज्ञानसे भी देहत्याग हो जाता है तो उनकी मुक्ति हो जाती है, यह बात सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

जहाँ इन दोनों (तुलसी और आँवला)-के निकट बिल्ववृक्ष भी है, वह स्थान साक्षात् वाराणसीके समान महातीर्थस्वरूप है। उस स्थानपर भगवान् शंकर, देवी भगवती तथा भगवान् विष्णुका भक्तिभावसे किया गया पूजन महापातकोंका नाश करनेवाला तथा बहुपुण्यप्रदायक जानना चाहिये। जो व्यक्ति वहाँ एक बिल्वपत्र भी भगवान् शंकरको अर्पण कर देता है; वह साक्षात् भगवान् शिवके दिव्य लोकको प्राप्त करता है॥ ४४—४६॥

महामते! उसी प्रकार तुलसीपत्र तथा धात्रीपत्र (आँवलेके पत्तों)-द्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा करनेसे वह व्यक्ति भगवान् विष्णुकी सायुज्यमुक्तिको प्राप्त कर लेता है, यह सत्य है॥ ४७॥ जो व्यक्ति वहाँ भगवान् विष्णु, भगवान् शिव अथवा देवी भगवतीको एक बिल्वपत्र अर्पण करता है, वह भी पापसे मुक्त हो जाता है॥ ४८॥ मनुष्य वहाँ प्राण त्यागकर उस क्षेत्रके प्रभावसे मोक्ष प्राप्त करता है तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ ४९॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने इनका माहात्म्य संक्षेपमें आपसे कहा। जो मनुष्य इस माहात्म्यको सुनता है, वह भी स्वर्गलोक प्राप्त करता है॥ ५०॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे तुलसीमाहात्म्यवर्णने आमलकबिल्वसंयोगकथनं नाम ऊनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें तुलसीमाहात्म्यवर्णनमें 'आमलकबिल्वसंयोगकथन' नामक उन्यासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

रुद्राक्षका माहात्म्य तथा उसके धारणका फल

श्रीमहादेव उवाच

इदानीं शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं मुनिसत्तम।
रुद्राक्षस्य परं गुह्यं पुण्याख्यानं समासतः॥ १॥

अङ्गेषु धारणात्सर्वदेहिनां पापसंचयम्।
विनाशयति रुद्राक्षफलं जन्मशतार्जितम्॥ २॥

गुरोरप्रणतेर्जातं देवानां च महात्मनाम्।
अप्रणामादद्विजातीनां दर्पादज्ञानतोऽपि वा॥ ३॥

यत्पापं संचितं पूर्वं जन्मकोटिषु नारद।
तत्पापं नाशमायाति शिरसाप्यभिधारणात्॥ ४॥

असत्यभाषणाल्लोभात्परोच्छिष्टादिभक्षणात्।
सुरापानाच्च सम्भूतं यत्पापं जन्मकोटिषु।
कण्ठेऽभिधारणादस्य तत्पापं नाशमाप्नुयात्॥ ५॥

परद्रव्यापहाराच्च परदेहातिताडनात्।
अस्पृश्यवस्तुसंस्पर्शात्तथा गर्ह्यपरिग्रहात्॥ ६॥

यत्पापं संचितं पूर्वं कोटिजन्मसु नारद।
तत्पापं नाशमायाति करे रुद्राक्षधारणात्॥ ७॥

असत्प्रसङ्गं श्रुत्वा च यत्पापं पूर्वसंचितम्।
तत्पापं नाशमायाति कर्णे रुद्राक्षधारणात्॥ ८॥

परस्त्रीगमनाद्ब्रह्मवधाद्वेदस्य कर्मणः।
संत्यागात्संचितं पापं यत्पूर्वं बहुजन्मसु।
तत्पापं नाशमायाति यत्र कुत्रापि धारणात्॥ ९॥

रुद्राक्षभूषणैर्युक्तं दृष्ट्वा सम्प्रणमेत्तु यः।
सोऽपि पापात्प्रमुच्येत कृतपापशतोऽपि चेत्॥ १०॥

श्रीमहादेवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! अब मैं रुद्राक्षकी महिमा तथा उसके परम पवित्र और गोपनीय आख्यानका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यानसे सुनिये॥ १॥ रुद्राक्षका फल अङ्गोंमें धारण करनेसे वह सभी मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पापसमूहोंका विनाश कर देता है॥ २॥ नारद! अभिमानपूर्वक अथवा अज्ञानसे गुरु, देवताओं, महात्माओं तथा द्विजातियोंको प्रणाम न करनेसे उत्पन्न हुए करोड़ों पूर्वजन्मोंका जो पाप संचित रहता है, वह सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाता है॥ ३-४॥

लोभसे, असत्य-भाषण तथा उच्छिष्ट आदि पदार्थोंके भक्षण और सुरापानसे होनेवाले करोड़ों जन्मोंका जो पाप होता है, वह कण्ठमें रुद्राक्षके धारण करनेसे विनष्ट हो जाता है॥ ५॥ नारद! दूसरोंके धनका हरण करने, दूसरोंके शरीरपर अत्यधिक चोट पहुँचाने, अस्पृश्य पदार्थोंका स्पर्श करने तथा निन्दित वस्तुओंको ग्रहण करनेसे करोड़ों पूर्वजन्मोंका जो पाप संचित रहता है, वह पाप हाथमें रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाता है॥ ६-७॥

निन्दनीय बातोंको सुननेसे पूर्वजन्मोंका जो संचित पाप होता है, वह कानमें रुद्राक्ष धारण करनेसे विनष्ट हो जाता है॥ ८॥ परस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या तथा वैदिक [नित्य]-कर्मोंके त्याग करनेसे अनेक पूर्वजन्मोंका जो भी पाप संचित रहता है, वह पाप शरीरमें जहाँ-कहीं भी रुद्राक्ष धारण करनेसे नष्ट हो जाता है॥ ९॥ रुद्राक्षसे भूषित व्यक्तिको देखकर जो मनुष्य उसे प्रणाम करता है, वह सैकड़ों पाप करनेपर भी पापसे मुक्त हो जाता है॥ १०॥

रुद्राक्षधारी विहरेन्महारुद्र इवापरः।
निर्भयो धरणीपृष्ठे देवपूज्यतमः स्वयम्॥ ११॥

विधृत्य चैकं रुद्राक्षं शम्भुं वा परमेश्वरीम्।
विष्णुं वा योऽर्चयेत्सोऽपि शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ १२॥

अविधृत्य नरो यस्तु रुद्राक्षं मुनिसत्तम।
कुरुते पैतृकं कर्म दैवं वापि विमोहितः।
न तस्य फलमाप्नोति वृथा तत्कर्म च स्मृतम्॥ १३॥

रुद्राक्षमालया मन्त्रं यो जपेच्छिवदुर्गयोः।
स प्रयाति नरः स्वर्गं महादेवप्रसादतः॥ १४॥

काश्यां वा जाह्नवीक्षेत्रे तीर्थेऽन्यस्मिंश्च वा नरः।
रुद्राक्षरहितः कर्म नैव कुर्यात्कदाचन॥ १५॥

एकवक्त्रं तु रुद्राक्षं गृहे यस्य हि वर्तते।
तस्य गेहे वसेल्लक्ष्मीः सुस्थिरा मुनिसत्तम॥ १६॥

न दौर्भाग्यं भवेत्तस्य नापमृत्युः कदाचन।
बिभर्ति यस्तु तं कण्ठे बाहौ वा मुनिसत्तम॥ १७॥

तस्य प्रसन्नो भगवाञ्शम्भुर्देवः सुदुर्लभः।
कुरुते यत्परं धर्मकर्म तच्च महाफलम्॥ १८॥

रुद्राक्षधारी संत्यज्य देहं वै यत्र कुत्रचित्।
अवश्यं स्वर्गमाप्नोति तत्र नास्त्येव संशयः॥ १९॥

गङ्गायां तु विशेषेण फलदं तस्य धारणम्।
काश्यां ततोऽधिकं ज्ञेयं किमन्यत्कथयामि ते॥ २०॥

इति ते कथितं पुण्यं माहात्म्यं मुनिसत्तम।
रुद्राक्षस्य तु संक्षेपान्महापातकनाशनम्॥ २१॥

रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य देवताओंमें पूज्यतम साक्षात् दूसरे महारुद्रकी भाँति पृथ्वीतलपर निर्भय होकर विचरण करता है॥ ११॥ जो मनुष्य एक भी रुद्राक्ष धारण करके भगवान् शिव, भगवती परमेश्वरी अथवा भगवान् विष्णुका पूजन करता है, वह भी शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १२॥ मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य बिना रुद्राक्ष धारण किये अज्ञानवश कोई भी पितृ अथवा देवकर्म करता है, वह उसका फल नहीं प्राप्त करता है और वह कर्म भी व्यर्थ कहा गया है॥ १३॥

जो मनुष्य रुद्राक्षकी मालासे शिव तथा दुर्गाके मन्त्रका जप करता है, वह महादेवकी कृपासे स्वर्ग जाता है॥ १४॥ रुद्राक्षसे रहित होकर काशी, गङ्गाक्षेत्र अथवा अन्य तीर्थक्षेत्रमें कभी भी कोई धार्मिक कर्म नहीं करना चाहिये॥ १५॥

मुनिश्रेष्ठ! जिस मनुष्यके घरमें एकमुखी रुद्राक्ष रहता है, उसके घरमें भलीभाँति स्थिर होकर लक्ष्मी निवास करती हैं। मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य कण्ठमें अथवा भुजापर उस एकमुखी रुद्राक्षको धारण करता है, उसके दुर्भाग्यका उदय नहीं होता और न तो उसकी अकालमृत्यु होती है। अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाले भगवान् शिव उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। वह मनुष्य जो भी श्रेष्ठ धर्म तथा कर्म करता है, वह महान् फलदायक होता है॥ १६—१८॥

रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य जहाँ-कहीं भी अपने देहका त्याग करके निश्चय ही स्वर्ग प्राप्त करता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है॥ १९॥

गङ्गामें रुद्राक्ष धारण विशेषरूपसे फल प्रदान करता है और काशीमें उससे भी अधिक फल समझना चाहिये, इस सम्बन्धमें आपसे और क्या कहूँ॥ २०॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे महापातकोंका नाश करनेवाले तथा कल्याणकारी रुद्राक्ष-माहात्म्यका संक्षेपमें वर्णन किया॥ २१॥

य इदं प्रपठेद्भक्त्या शृणुयाद्वापि यो नरः।
प्राप्नोति स पदं शम्भोरपि देवैः सुदुर्लभम्॥ २२॥

बिल्वमूले पठेदेतच्चतुर्दश्यामुपोषितः।
स मुच्यते महापापादपि जन्मशतार्जितात्॥ २३॥

गङ्गायां वा कुरुक्षेत्रे काश्यां वा मुनिसत्तम।
सेतुबन्धे महातीर्थे गङ्गासागरसङ्गमे॥ २४॥

शिवरात्रिचतुर्दश्यां यः पठेच्छिवसन्निधौ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ २५॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस माहात्म्यका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह देवताओंके लिये भी दुर्लभ शिवपद प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य निराहार रहकर बिल्ववृक्षके नीचे चतुर्दशीके दिन इसका पाठ करता है, वह सैकड़ों जन्मोंके अर्जित महापापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २२-२३॥ मुनिश्रेष्ठ! जो मनुष्य शिवरात्रि—चतुर्दशीके दिन भगवान् शिवकी संनिधिमें गङ्गा, कुरुक्षेत्र, काशी, सेतुबन्ध रामेश्वर तथा महातीर्थ गङ्गासागरसङ्गममें इसका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोक प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीमहादेवनारदसंवादे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनेऽशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीमहादेव-नारद-संवादमें 'रुद्राक्षमाहात्म्य' वर्णन नामक अस्सीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

कलियुगके मानवोंका स्वभाव तथा भगवान् शंकरकी उपासना और शिवनामसंकीर्तनकी महिमा

श्रीमहादेव उवाच

शृणुष्वावहितो वत्स माहात्म्यं भक्तिभावतः।
पूजायाः श्रीमहेशस्य संक्षेपेण ममाग्रतः॥ १॥

श्रीमहादेवजी बोले—वत्स! भगवान् शंकरकी पूजाका माहात्म्य मुझसे भक्तिभाव तथा ध्यानपूर्वक संक्षेपमें सुनिये॥ १॥

कलौ सर्वे भविष्यन्ति मानवा धर्मवर्जिताः।
सदा पापरताः सर्वे सत्यधर्मपराङ्मुखाः॥ २॥

परदाररता नित्यं परद्रोहपरायणाः।
परनिन्दारताश्चैव परवित्तापहारिणः॥ ३॥

गुरुभक्तिविहीनाश्च गुरुनिन्दारताः सदा।
स्वस्वकर्मविहीनाश्च धनलुब्धाः कलौ युगे॥ ४॥

भविष्यन्ति द्विजाः सर्वे शूद्राचाररताः सदा।
श्रुतिहीनास्तपोहीना योगाभ्यासविवर्जिताः॥ ५॥

कलियुगमें सभी मानव सदा धर्महीन, पापाचारी तथा सत्यधर्मसे पराङ्मुख हो जायँगे। वे नित्य परायी स्त्रियोंमें आसक्त, दूसरेसे ईर्ष्या करनेवाले, दूसरोंकी निन्दामें लगे हुए तथा दूसरेके धनका अपहरण करनेवाले होंगे। कलियुगमें वे सदा गुरुभक्तिविहीन, गुरुकी निन्दा-परायण, अपने-अपने कर्मसे विमुख तथा धनके लोभी होंगे॥ २—४॥ सभी द्विज सदा शूद्रकी तरह आचरणवाले, वेद, तप तथा योगाभ्याससे रहित हो जायँगे॥ ५॥

भविष्यन्ति कलौ वत्स शिश्नोदरपरायणाः।
स्त्रियः सर्वा भविष्यन्ति पतिभक्तिविवर्जिताः॥ ६ ॥

भ्रष्टाश्च प्रायशस्ता वै श्वश्रूद्रोहपरायणाः।
अल्पसस्या वसुमती नराश्चान्नविवर्जिताः॥ ७ ॥

करग्रहरता नित्यं राजानो म्लेच्छरूपिणः।
भविष्यति सतां हानिरसतामुन्नतिः सदा॥ ८ ॥

एवं घोरकलौ चापि नराणां पापचेतसाम्।
मुक्तिप्रदं महादेवपूजनं मुनिसत्तम॥ ९ ॥

निर्माय पार्थिवं लिङ्गं शिवशक्त्यात्मकं परम्।
पूजयेत्प्रयतो भूत्वा नहि तं बाधते कलिः॥ १०॥

उपायो विद्यते नान्यः सत्यं सत्यं कलौ युगे।
शम्भोराराधनात्स्वल्पसाधनान्मुनिसत्तम ॥ ११॥

मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा
अयत्नसाध्यं वदनेन वाद्यम्।
फलं च सायुज्यपदप्रदानं
निःस्वस्य विश्वेश्वर एव देवः॥ १२॥

शम्भोराराधनसमं नास्ति कर्म कलौ युगे।
शाक्तो वा वैष्णवः शैवः पूर्वं सम्पूज्य शंकरम्॥ १३॥

पश्चात्प्रपूजयेत्स्वेष्टदेवतां भक्तिभावतः।
आदौ लिङ्गं प्रपूज्येत बिल्वपत्रैश्च नारद।
अन्यथा शूद्रवत्सर्वं शिवपूजां विना कृतम्॥ १४॥

व्यतिक्रमं तु यो दर्पान्मोहाद्वापि समाचरेत्।
सोऽधः पतति पापात्मा तस्यार्चा विफला भवेत्॥ १५॥

वत्स! कलियुगमें [मनुष्य] शिश्नोदरपरायण (कामुक और उदरपूर्तिमें संलग्न) हो जायँगे। सभी स्त्रियाँ पतिभक्तिविहीन होंगी। वे प्रायः भ्रष्ट तथा अपनी साससे द्वेष करनेवाली होंगी॥ ६$\frac{1}{2}$॥ पृथ्वीपर बहुत थोड़ा अन्न उत्पन्न होगा और लोग अन्नविहीन हो जायँगे। करग्रहणमें निरन्तर संलग्न राजा लोग म्लेच्छ हो जायँगे। सदा सज्जनोंकी हानि होगी तथा दुर्जनोंकी उन्नति होगी॥ ७-८॥ मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकारके घोर कलियुगमें भगवान् शिवका पूजन पापबुद्धि मनुष्योंके लिये भी मुक्ति प्रदान करनेवाला होगा॥ ९॥ जो व्यक्ति शिवशक्तिस्वरूप [भगवान् शंकरके] पार्थिव लिङ्गका निर्माण करके संयतेन्द्रिय होकर उसका पूजन करता है, उसे कलि बाधा नहीं पहुँचाता। मुनिश्रेष्ठ! मैं यह ध्रुव सत्य कहता हूँ कि इस कलियुगमें थोड़े-से साधनोंसे भी सम्पन्न होनेवाले भगवान् शंकरके पूजनके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है॥ १०-११॥

मिट्टीकी मूर्ति, बिल्वपत्रसे पूजा, बिना प्रयत्नसे साध्य मुखका वाद्य (गाल बजाना) और इन सबसे प्राप्त होनेवाला फल है—भगवान् शिवका सायुज्यमुक्तिलाभ। इसलिये अकिंचन भक्तोंके लिये भगवान् विश्वनाथ ही एकमात्र देवता हैं॥ १२॥ इस कलियुगमें भगवान् शिवकी आराधनाके समान कोई सत्कर्म नहीं है। शाक्त, वैष्णव अथवा शैवोंको पूर्वमें भगवान् शंकरकी पूजा करके तब भक्तिपूर्वक अपने इष्ट देवताकी पूजा करनी चाहिये। नारद! प्रारम्भमें बिल्वपत्रोंसे शिवलिङ्गकी पूजा करनी चाहिये; क्योंकि भगवान् शिवकी पूजाके बिना किया हुआ सभी कर्म शूद्रके द्वारा अनुष्ठित कर्मके समान हो जाता है॥ १३-१४॥

जो पापी मनुष्य अहंकार अथवा अज्ञानसे इस क्रमका उल्लंघन करता है, उसका अधःपतन हो जाता है और उसकी पूजा निष्फल होती है॥ १५॥

यो ध्यायति महादेवं सर्वलोकेश्वरेश्वरम्।
स तेन साम्यमायाति न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ १६॥

पूजयेद्यस्तु सद्भक्त्या सर्वदेवात्मकं शिवम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात्॥ १७॥

पाद्यं यस्तु महेशाय ददाति मनुजोत्तमः।
सोऽपि पापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ १८॥

अर्घ्यादिकं तु यत्किञ्चिद्दीयते शम्भवे मुने।
सर्वं तत्सम्प्रदद्याच्च लिङ्गोपरि कियत्कियत्॥ १९॥

अग्राह्यं तन्महाबुद्धे प्रसादं नापि भक्षयेत्।
विष्णोर्ग्राह्यं च नान्यस्य ग्रहणाद्विष्णुकोपभाक्॥ २०॥

शालग्रामशिलास्पर्शात्सर्वं तद्ग्राह्यमेव च।
अनादिलिङ्गनिर्माल्यं भुक्त्वा शङ्करतां व्रजेत्।
प्रसादं भक्षयेन्मर्त्यः स्वयं शङ्करतां व्रजेत्॥ २१॥

शिवं यः पूजयेद्भक्त्याप्यभक्त्या वापि नारद।
स नैव यमदण्ड्यः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः॥ २२॥

आरोग्यमतुलं सौख्यं प्रजापुष्टिविवर्धनम्।
शिवलिङ्गार्चनं कृत्वा प्राप्नुयान्मानवोत्तमः॥ २३॥

यो नृत्यति महेशस्य सन्निधौ भक्तितत्परः।
स प्राप्य शाम्भवं लोकं मोदते सुचिरं मुने॥ २४॥

गीतं वाद्यं च यः कुर्यान्मनुजः शिवसन्निधौ।
स शम्भोरन्तिकस्थायी भवेत्तत्प्रमथेश्वरः॥ २५॥

जो सर्वलोकेश्वरेश्वर भगवान् महादेवका पूजन करता है, उसकी सारूप्यमुक्ति हो जाती है तथा उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ १६॥ जो मनुष्य सद्भक्तिपूर्वक सर्वदेवमय भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोक प्राप्त करता है॥ १७॥

जो मानवश्रेष्ठ भगवान् शंकरको पाद्य समर्पित करता है, वह भी पापसे मुक्त होकर स्वर्गलोक प्राप्त करता है॥ १८॥ मुने! भगवान् शम्भुको अर्घ्यादि जो कुछ पूजनोपचार समर्पित किये जाते हैं, वे सब शिवलिङ्गके ऊपर भी थोड़े-थोड़े चढ़ाने चाहिये॥ १९॥ महाबुद्धे! भगवान् शंकरका निर्माल्य और प्रसाद अग्राह्य हो जाता है, उसका भक्षण नहीं करना चाहिये। विष्णुभगवान्‌का प्रसाद ग्राह्य होता है, अन्यका नहीं। उसे ग्रहण करनेसे वह भगवान् विष्णुका कोपभाजन होता है॥ २०॥

शालग्रामशिलाके स्पर्शसे वह शिवनिर्माल्य भी ग्राह्य हो जाता है तथा अनादि लिङ्गों (ज्योतिर्लिङ्गों आदि स्वयम्भू लिङ्गों)-का निर्माल्य ग्रहण कर व्यक्ति शिवसायुज्यको प्राप्त करता है। मनुष्य भगवान् शिवका प्रसाद भक्षण करे और स्वयं शिवत्वको प्राप्त करे॥ २१॥

नारद! जो व्यक्ति भक्तिभावपूर्वक अथवा भक्तिभावरहित भी भगवान् शंकरकी पूजा करता है, वह यमराजके दण्डका भागी नहीं होता, यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं है॥ २२॥ भगवान् शंकरके लिङ्गका अर्चन करके मानवश्रेष्ठ आरोग्य, अतुल आनन्द, संतति तथा पुष्टिकी वृद्धिको प्राप्त करता है॥ २३॥ मुने! जो व्यक्ति भगवान् शंकरकी संनिधिमें भक्तिपूर्वक नृत्य करता है, वह दिव्य शिवलोकको प्राप्त कर दीर्घकालतक आनन्दमग्न रहता है॥ २४॥ जो मानव भगवान् शंकरकी संनिधिमें गीत-वाद्यसे सेवा करता है, वह भगवान् शंकरके समीप रहकर उनके प्रमथोंका स्वामी हो जाता है॥ २५॥

यत्र देशे वसेच्छम्भुपूजाभक्तिपरायणः।
सोऽपि पुण्यतमो देशो गङ्गाहीनोऽपि चेन्मुने॥ २६॥

बिल्वमूले महादेवं यः पूजयति भक्तितः।
सोऽश्वमेधसहस्त्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्॥ २७॥

गङ्गायां यो महादेवं बिल्वपत्रैः प्रपूजयेत्।
स कैवल्यमवाप्नोति कृतपापशतोऽपि चेत्॥ २८॥

काश्यां यः पूजयेच्छम्भुं हेलयापि नरोत्तमः।
तस्यान्ते मुक्तिदाता स महेशः स्वयमेव हि॥ २९॥

पुण्ये भारतखण्डे तु स्थलं यत्पुण्यदायकम्।
तत्र सम्पूज्य विश्वेशं न पुनर्जन्मभाग्भवेत्॥ ३०॥

हिमाद्रेर्दक्षिणे पार्श्वे गङ्गासागरसङ्गमम्।
यावत्पुण्यतमो देशः सर्वकामफलप्रदः॥ ३१॥

एतस्मिन्नास्ति कर्मान्यच्छिवपूजासमं मुने।
महापापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारकम्॥ ३२॥

असंख्यानि च कर्माणि पुण्यदानि महामुने।
उक्तान्यनेकशास्त्रेषु नृणां पापहराणि वै॥ ३३॥

तेषु श्रेष्ठतमं ज्ञेयं शिवसम्पूजनं परम्।
कीर्तनं शिवनाम्नश्च दुर्गानाम्नो विशेषतः॥ ३४॥

दुर्गायाः पूजनं तद्वद्रामनामप्रकीर्तनम्।
श्रवणं तद्गुणानां च तीर्थेषु भ्रमणं तथा।
विज्ञेयं परमं श्रेष्ठं कलौ पातकनाशनम्॥ ३५॥

मुने! जिस देशमें भगवान् शिवकी पूजा एवं भक्तिमें परायण मनुष्य निवास करते हैं, गङ्गाविहीन होते हुए भी वह देश पुण्यतम कहा गया है॥ २६॥ जो व्यक्ति बिल्ववृक्षके मूलमें भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरका पूजन करता है, वह निश्चितरूपसे हजारों अश्वमेधयज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करता है॥ २७॥

जो व्यक्ति भगवती गङ्गामें भगवान् शंकरका बिल्वपत्रोंसे पूजा करता है, सैकड़ों पाप करनेवाला होनेपर भी वह मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ २८॥ जो श्रेष्ठ व्यक्ति काशीमें अनिच्छासे भी भगवान् शंकरकी पूजा करता है, उसे अन्तमें स्वयं भगवान् महेश्वर मुक्ति प्रदान कर देते हैं॥ २९॥ पवित्र भारतवर्षमें जो पुण्यक्षेत्र हैं वहाँ भगवान् विश्वेश्वरकी पूजा करके मनुष्य पुनर्जन्मका भागी नहीं होता॥ ३०॥ हिमालयके दक्षिणभागमें गङ्गासागर-सङ्गमतक जितना भी पवित्र देश है, वह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है॥ ३१॥

मुने! इस देशमें भगवान् शंकरके पूजनके समान कोई श्रेष्ठ कर्म नहीं है, जो महापापको हरनेवाला पुण्यदायी तथा सभी प्रकारकी आपत्तियोंका निवारण करनेवाला है॥ ३२॥ महामुने! अनेक शास्त्रोंमें मनुष्योंके पापोंको हरनेवाले असंख्य पुण्यदायक कर्म बताये गये हैं, उनमें भगवान् शंकरके पूजन, शिवनाम-संकीर्तन तथा भगवती दुर्गाके नाम-संकीर्तनको विशेषरूपसे उत्तमोत्तम जानना चाहिये॥ ३३-३४॥ भगवती दुर्गाका पूजन एवं उसी प्रकार भगवान् रामके नाम [जप]- संकीर्तन तथा उनके गुणोंके श्रवण और तीर्थोंमें भ्रमणको कलिकालमें पापनाशका श्रेष्ठ उपाय जानना चाहिये॥ ३५॥

संस्मृत्य शम्भोर्नामानि यत्किंचित्कुरुते नरः।
कर्म वेदादिशास्त्रोक्तं तदक्षय्यतमं भवेत्॥ ३६॥

शिवेति विश्वनाथेति विश्वेशेति हरेति च।
गौरीपते प्रसीदेति यो नरो भाषते सकृत्॥ ३७॥

तस्य संरक्षणार्थाय पृष्ठतः प्रमथैः सह।
शूलमादाय वेगेन स्वयं धावति शूलभृत्॥ ३८॥

शिवनाम स्मरन्मर्त्यस्त्यक्त्वा देहं महामते।
साक्षान्महेशतां याति कृतपापशतोऽपि चेत्॥ ३९॥

यत्र कुत्र च संस्थाय संस्मरेत्परमेश्वरम्।
तत्रैव सर्वतीर्थानि निवसन्ति महामते॥ ४०॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टं मुनिसत्तम।
महापापहरं पुण्यं सर्वमङ्गलदं परम्॥ ४१॥

य इदं शृणुयान्मर्त्यः सश्रद्धः पठतेऽथवा।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम्॥ ४२॥



जो व्यक्ति भगवान् शम्भुके नामोंको स्मरण कर वेद तथा शास्त्रोंमें बताये गये कर्म करता है, उसका किया हुआ कर्म अक्षय्यतम हो जाता है॥ ३६॥ 'शिव! विश्वनाथ! विश्वेश! हर! गौरीपते! आप प्रसन्न हों'—इस प्रकार जो व्यक्ति एक बार भी कहता है, उसकी रक्षाके लिये उसके पीछे अपने प्रमथगणोंके साथ वेगपूर्वक शूलपाणि भगवान् शिव शूल लेकर स्वयं दौड़ पड़ते हैं॥ ३७-३८॥ महामते! सैकड़ों पाप करनेवाला मनुष्य भी शिवनामका स्मरण करते हुए शरीरको त्याग करके साक्षात् शिवसायुज्यको प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥ महामते! जहाँ-कहीं रहकर जो व्यक्ति भगवान् शंकरका स्मरण करता है, वहीं सभी तीर्थोंका निवास हो जाता है॥ ४०॥

मुनिश्रेष्ठ! जो आपने पूछा, वह महापापको हरनेवाला, पुण्यदायक तथा सभी प्रकारके परम मङ्गलको प्रदान करनेवाला प्रसंग मैंने कह दिया। जो मनुष्य श्रद्धासहित इसको पढ़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर श्रेष्ठ पदको प्राप्त करता है॥ ४१-४२॥

व्यास उवाच

एतावदुक्तं देवेन पृष्टेन मुनिना स्वयम्।
खण्डेऽस्मिञ्जैमिने वाक्यं पुण्यं परमशोभनम्॥ ४३॥

एतद्यः शृणुयान्मर्त्यः पठेद्वा भक्तिसंयुतः।
सोऽन्ते निर्वाणमाप्नोति भुक्त्वा भोगान्मनोगतान्॥ ४४॥

सुगुप्तमेतत्परमं कथितं शूलपाणिना।
महात्मने मुनीन्द्राय नारदाय महामते।
यस्य संविद्यते गेहे तमापन्न स्पृशेत्क्वचित्॥ ४५॥

य इदं परमाख्यानं श्रावयेद्विष्णुसन्निधौ।
सद्भक्त्या जैमिने तस्य पापं नश्यति तत्क्षणात्॥ ४६॥

अप्यनेकशतं कोटिजन्मान्तरसुसंचितम्।
एतदाकर्ण्य संत्यज्य पापं मोक्षमवाप्नुयात्॥ ४७॥

व्यासजी बोले—जैमिने! इस खण्डमें देवर्षि नारदके द्वारा पूछनेपर स्वयं भगवान् शिवने इतना कहा, जो पुण्यदायक और परम शोभनीय है॥ ४३॥ जो मानव भक्तिपूर्वक इसको पढ़ता या सुनता है, वह अभीष्ट भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है॥ ४४॥

महामते भगवान् शूलपाणि शंकरके द्वारा मुनीश्वर नारदजीके लिये कहा गया यह प्रसंग अत्यन्त गोपनीय और श्रेष्ठ है, जिसके घरमें यह [ग्रन्थ] स्थित रहता है, उसे आपत्तियाँ कभी स्पर्श भी नहीं करतीं॥ ४५॥

जैमिने! जो इस उत्तम आख्यानको भगवान् विष्णुके समीप भक्तिपूर्वक सुनाता है, उसी क्षण उसका पाप नष्ट हो जाता है॥ ४६॥ इस परम आख्यानके श्रवणसे अनेक करोड़ जन्म-जन्मान्तरोंके सञ्चित पापपुञ्जको भी त्यागकर [मनुष्य] मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ४७॥

॥ इति श्रीमहाभागवते महापुराणे श्रीवेदव्यासजैमिनिसंवादे श्रीमहादेवदेवर्षिनारदप्रश्नोत्तरकथने एकाशीतितमोऽध्यायः॥ ८१॥

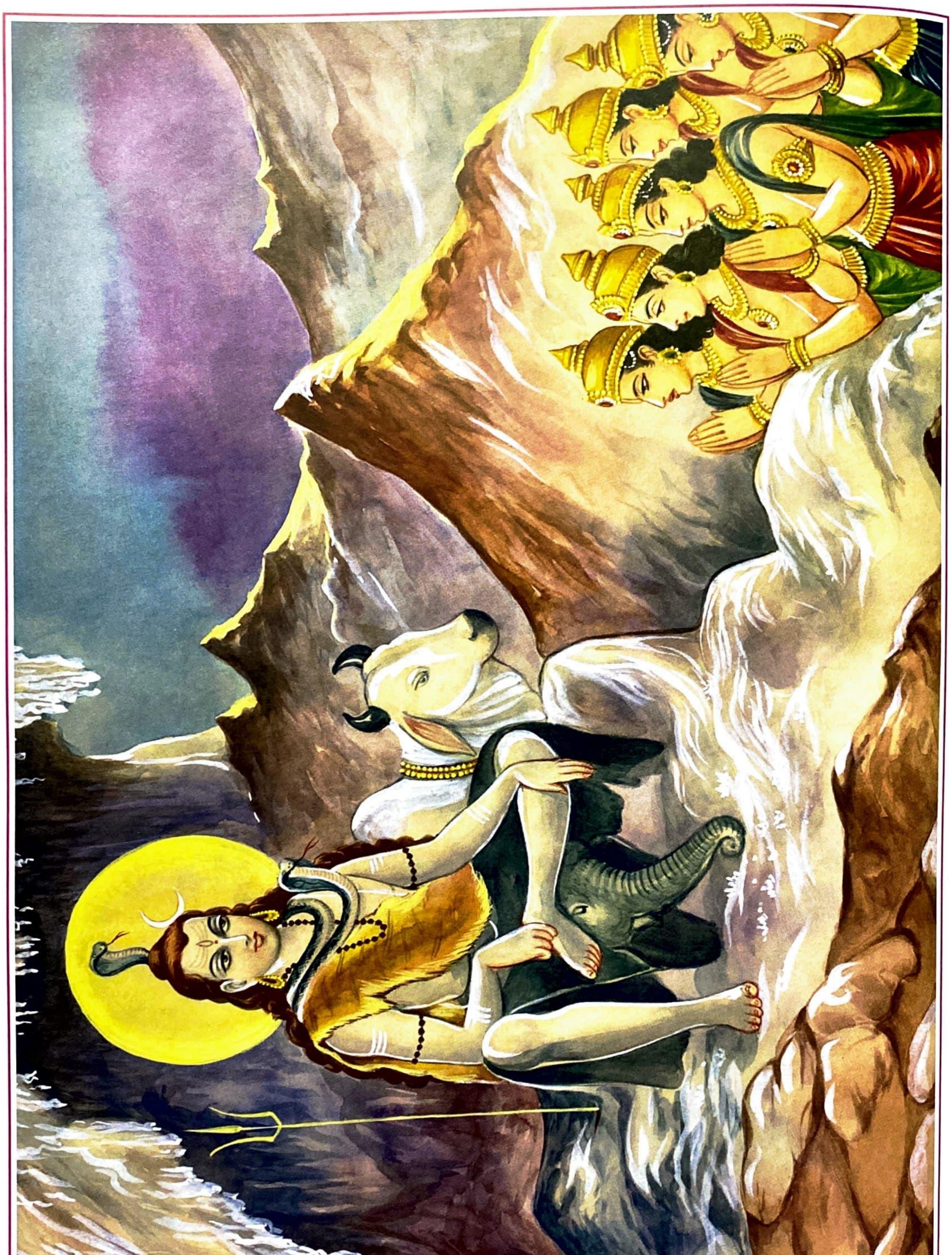
॥ समाप्तं चेदं महाभागवतं नाम महापुराणम्॥

॥ इस प्रकार श्रीमहाभागवतमहापुराणके अन्तर्गत श्रीवेदव्यास-जैमिनि-संवादमें 'श्रीमहादेवदेवर्षिनारदप्रश्नोत्तरकथन' नामक इक्यासीवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८१॥

॥ यह महाभागवत [देवीपुराण] नामक महापुराण समाप्त हुआ॥



त्रिदेवोंद्वारा आदिशक्ति पराम्बाकी स्तुति

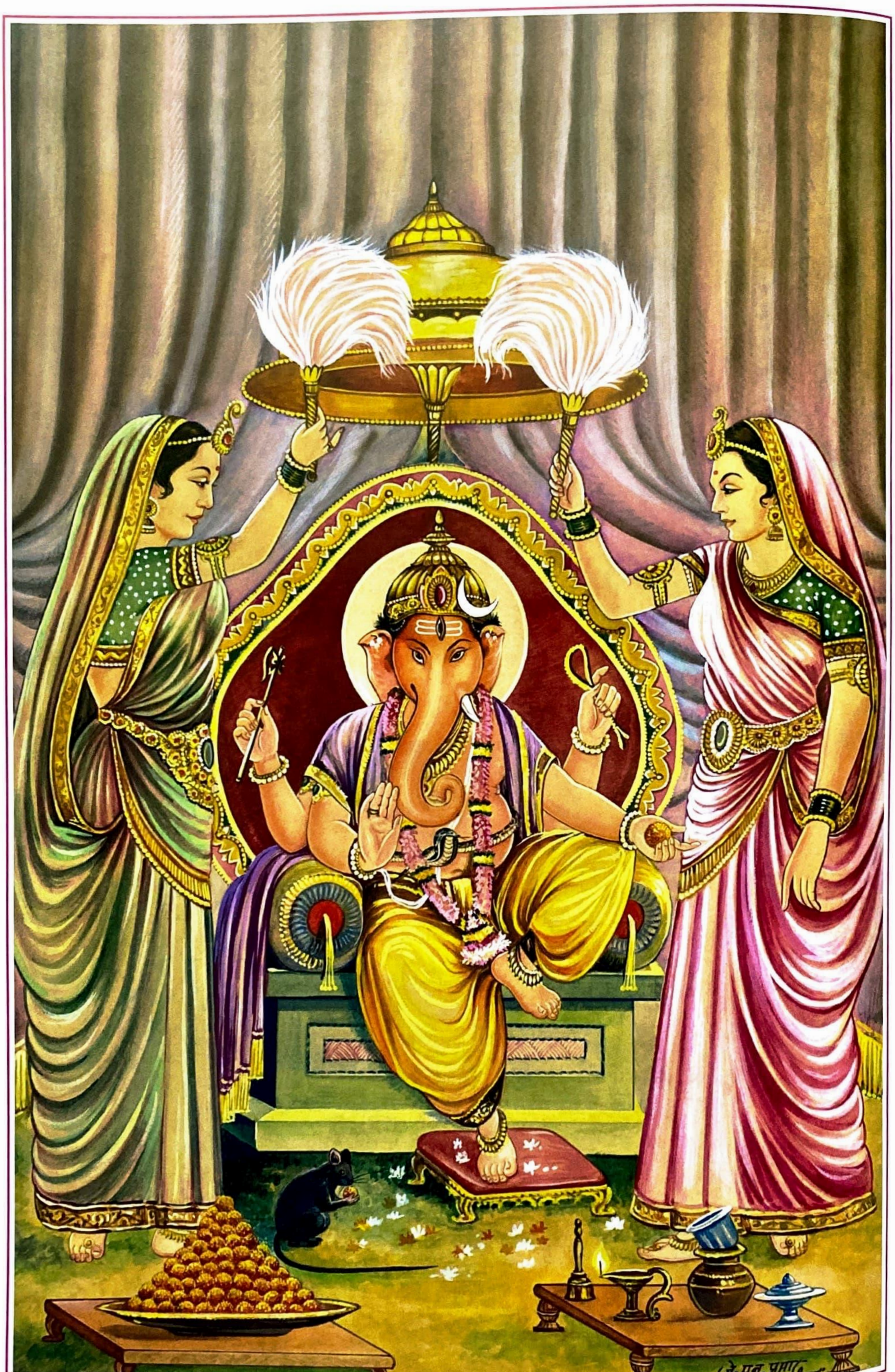


देवताओं की भगवान सदाशिव से प्रार्थना

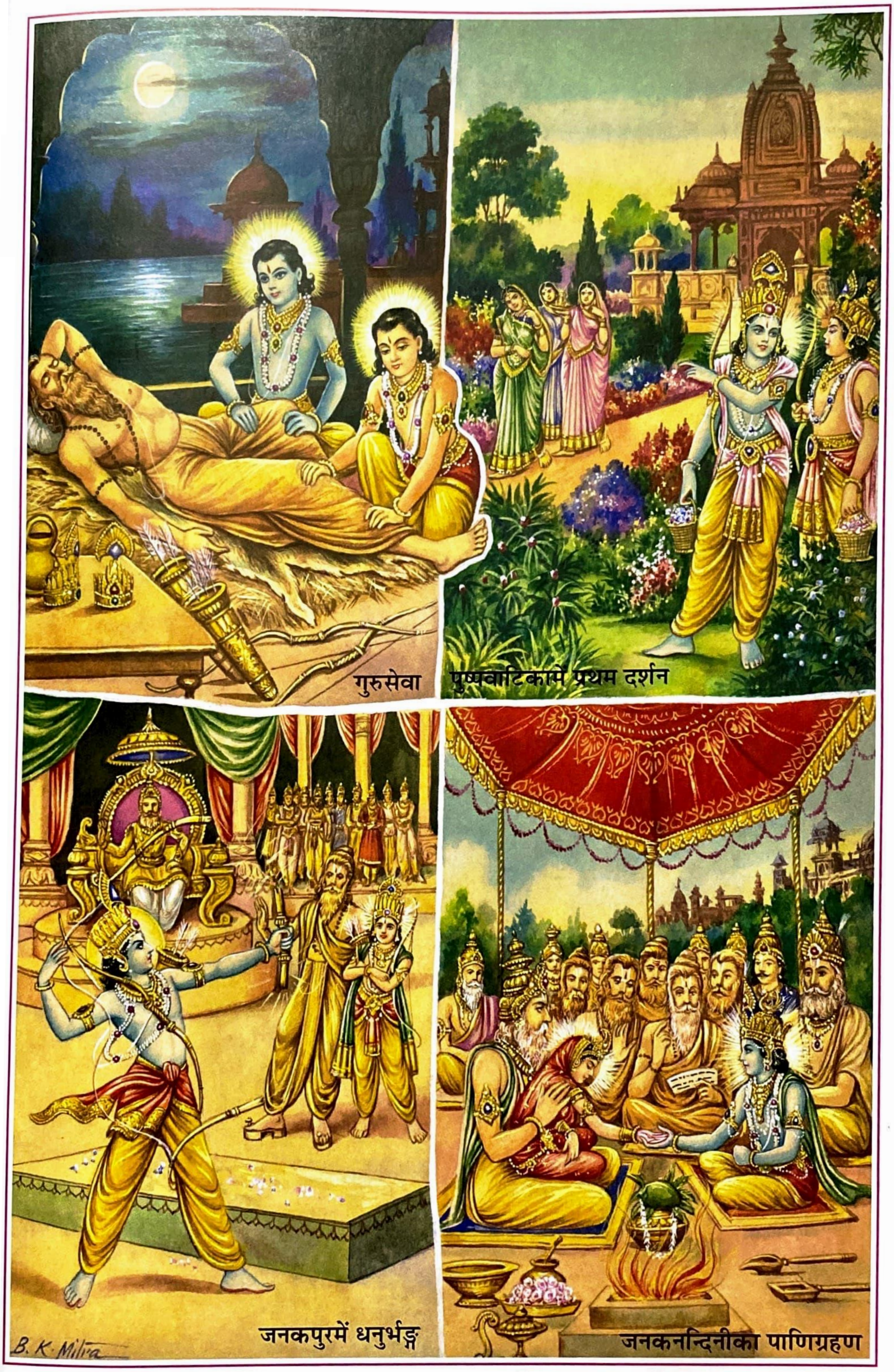
देवताओं की भगवान सदाशिव से प्रार्थना



अपर्णा पार्वतीको भगवान् शिवके दर्शन



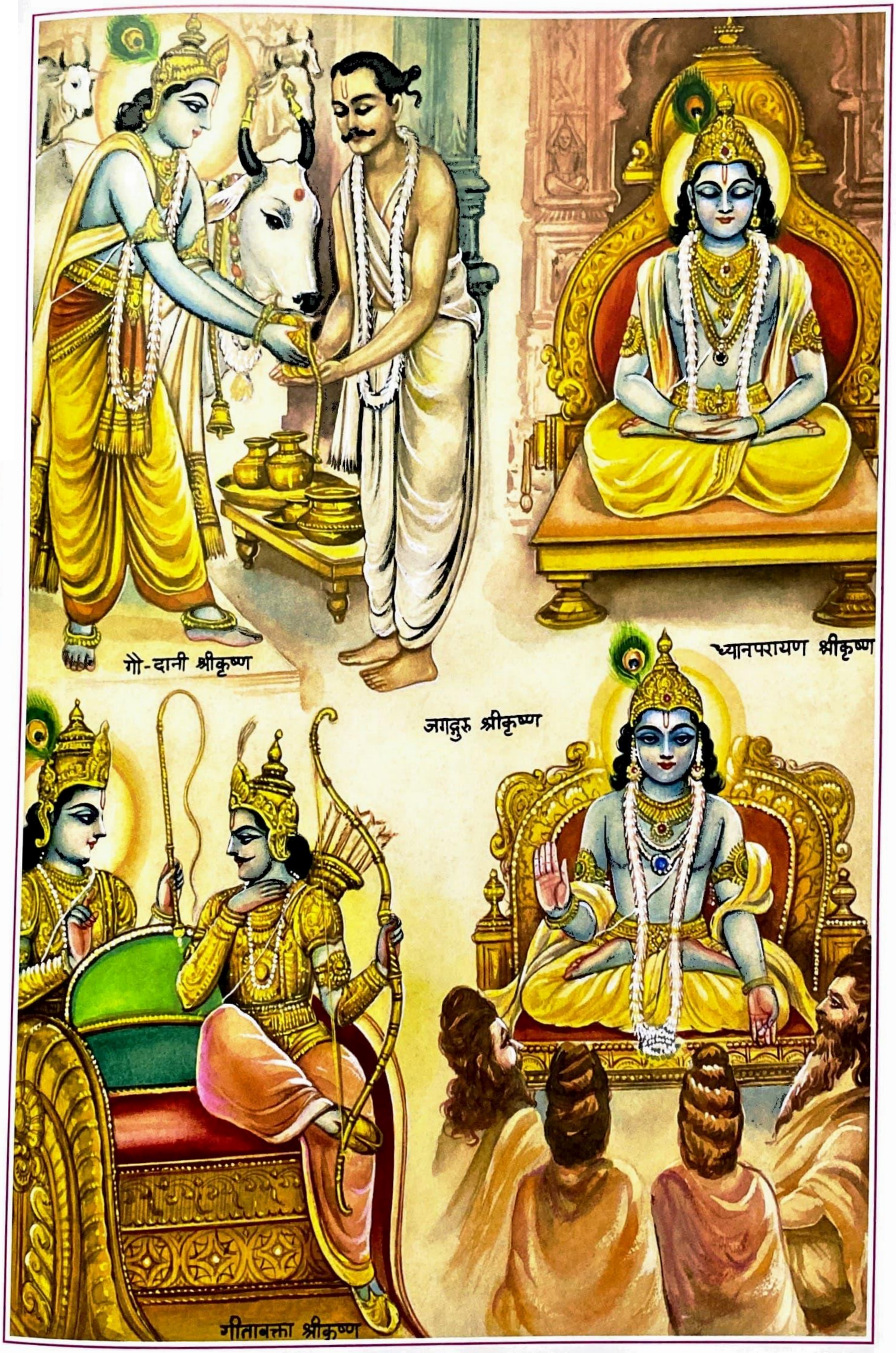
सिद्धि-बुद्धिसहित प्रथम पूज्य भगवान् गणेश



मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीलाएँ



ऋषि-मुनियों तथा देवी-देवताओंद्वारा भगवती दुर्गाकी आराधना



योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके विविध रूप



राज राजेश्वरी भगवती त्रिपुर सुंदरी का चिद्विलास

राज राजेश्वरी भगवती त्रिपुर सुंदरी का चिद्विलास